॥ श्रीजगदम्बिकायै नमः ॥

1793

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण

[प्रथम खण्ड, स्कन्ध १ से ६ तक]

हिन्दी-अनुवाद श्लोकाङ्कसहित

गीताप्रेस गोरखपुर

GITA PRESS, GORAKHPUR

गीताप्रेस, गोरखपुर

कल्याण

श्रीमद्देवीभागवताङ्क

(पूर्वार्ध)

[श्लोकसंख्यासहित भाषानुवाद]

गीताप्रेस, गोरखपुर

दुर्गति-नाशिनि दुर्गा जय जय, काल-विनाशिनि काली जय जय।
उमा-रमा-ब्रह्माणी जय जय, राधा-सीता-रुक्मिणि जय जय॥
साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, जय शंकर।
हर हर शंकर दुखहर सुखकर अघ-तम-हर हर हर शंकर॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
जय जय दुर्गा, जय मा तारा। जय गणेश जय शुभ-आगारा॥
जयति शिवाशिव जानकिराम। गौरीशंकर सीताराम॥
जय रघुनन्दन जय सियाराम। व्रज-गोपी-प्रिय राधेश्याम॥
रघुपति राघव राजाराम। पतितपावन सीताराम॥

(संस्करण २,२५,०००)

नमोऽस्तु सततं जगदम्बिकायै

यस्याः प्रभावमखिलं न हि वेद धाता
नो वा हरिर्न गिरिशो न हि चाप्यनन्तः।
अंशांशका अपि च ते किमुतान्यदेवा-
स्तस्यै नमोऽस्तु सततं जगदम्बिकायै॥
यत्पादपङ्कजरजः समवाप्य विश्वं
ब्रह्मा सृजत्यनुदिनञ्च बिभर्ति विष्णुः।
रुद्रश्च संहरति नेतरथा समर्था-
स्तस्यै नमोऽस्तु सततं जगदम्बिकायै॥

जिनके सम्पूर्ण प्रभावको ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा भगवान् शेष भी भलीभाँति नहीं जान सकते, जबकि वे उन्हींके अंशज भी हैं, तब भला दूसरे देवता उन्हें कैसे जान सकेंगे? ऐसी उन भगवती जगदम्बिकाको मेरा निरन्तर प्रणाम है। जिनके चरण-कमलोंकी धूलि पाकर ब्रह्मा समस्त संसारकी रचना करते हैं, भगवान् विष्णु निरन्तर पालन करते हैं और रुद्र संहार करते हैं; दूसरे किसी उपायसे वे अपना-अपना कार्य करनेमें समर्थ नहीं हो सकते—ऐसी उन भगवती जगदम्बिकाको मेरा निरन्तर प्रणाम है।

❖ मूल्य—₹ १००
(एक सौ रुपये)

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका, सहसम्पादक—डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : www.gitapress.org | e-mail : Kalyan@gitapress.org | ✆ (0551) 2334721
सदस्यता-शुल्क—व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।
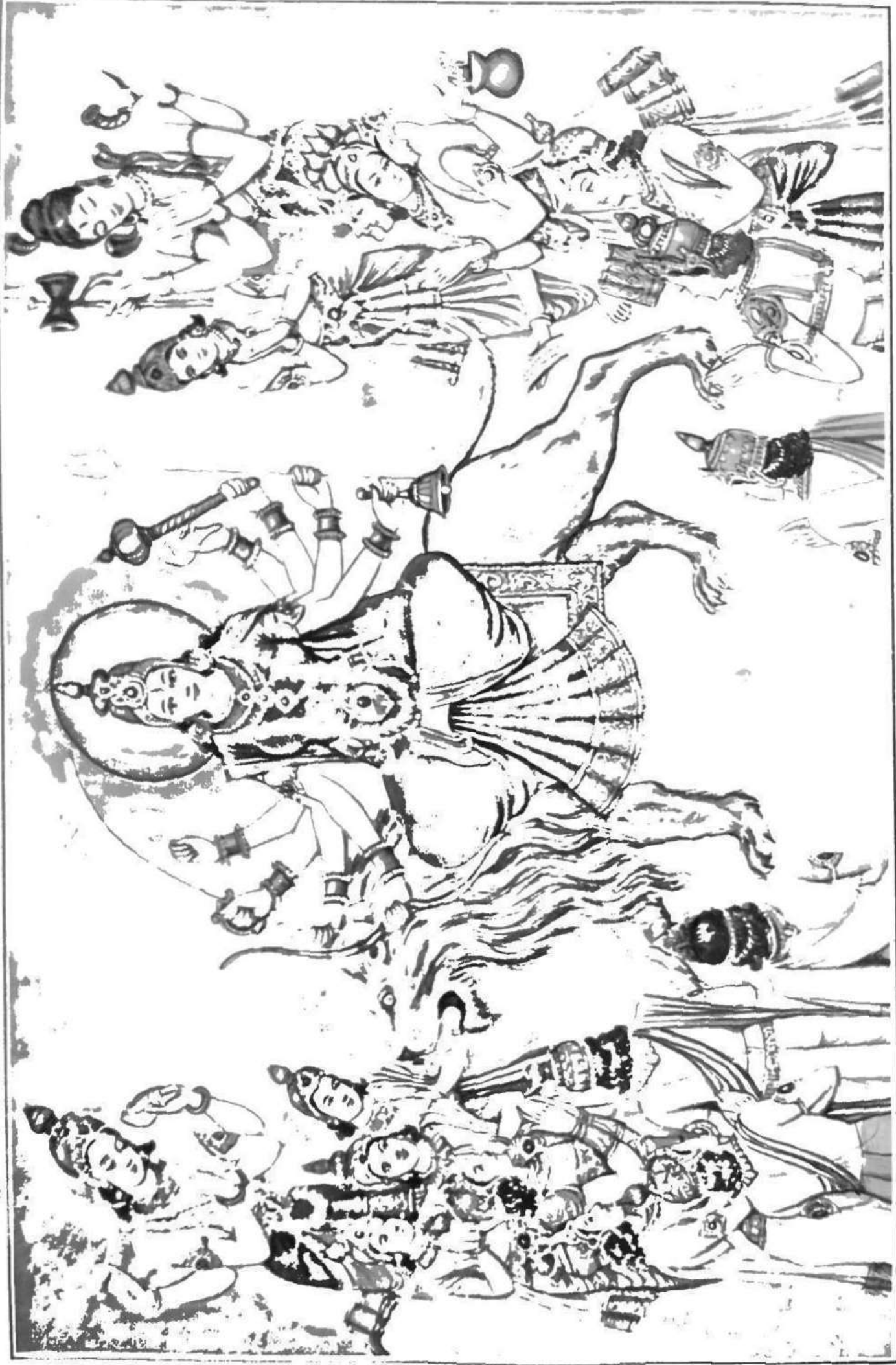
देवताओंद्वारा सिंहवाहिनी श्रीदुर्गाकी स्तुति

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

कल्याण

नमो देव्यै जगद्धात्र्यै शिवायै सततं नमः। दुर्गायै भगवत्यै ते कामदायै नमो नमः॥
नमः शिवायै शान्त्यै ते विद्यायै मोक्षदे नमः। विश्वव्याप्त्यै जगन्मातर्जगद्धात्र्यै नमः शिवे॥

गोरखपुर, सौर माघ, वि० सं० २०६४, श्रीकृष्ण-सं० ५२३३, जनवरी २००८ ई०

पूर्ण संख्या ९७४

देवताओंद्वारा किया गया देवीका स्तवन

नमो देवि विश्वेश्वरि प्राणनाथे सदानन्दरूपे सुरानन्ददे ते।
नमो दानवान्तप्रदे मानवानामनेकार्थदे भक्तिगम्यस्वरूपे॥
न ते नामसंख्यां न ते रूपमीदृक्तथा कोऽपि वेदादिदेवस्वरूपे।
त्वमेवासि सर्वेषु शक्तिस्वरूपा प्रजासृष्टिसंहारकाले सदैव॥
न वा ते गुणानामियत्तां स्वरूपं वयं देवि जानीमहे विश्ववन्द्ये।
कृपापात्रमित्येव मत्वा तथास्मान्भयेभ्यः सदा पाहि पातुं समर्थे॥

हे विश्वेश्वरि! हे प्राणोंकी स्वामिनि! सदा आनन्दरूपमें रहनेवाली तथा देवताओंको आनन्द प्रदान करनेवाली हे देवि! आपको नमस्कार है। दानवोंका अन्त करनेवाली, मनुष्योंकी समस्त कामनाएँ पूर्ण करनेवाली तथा भक्तिके द्वारा अपने रूपका दर्शन देनेवाली हे देवि! आपको नमस्कार है। हे आदिदेवस्वरूपिणि! आपके नामोंकी निश्चित संख्या तथा आपके इस रूपको कोई भी नहीं जान सकता। सबमें आप ही विराजमान हैं। जीवोंके सृजन और संहारकालमें शक्तिस्वरूपसे सदा आप ही कार्य करती हैं। हे देवि! हे विश्ववन्द्ये! हमलोग न आपके गुणोंकी सीमा जानते हैं और न आपका स्वरूप ही जानते हैं। अतः रक्षा करनेमें समर्थ हे देवि! हमें केवल अपना कृपापात्र मानकर आप भयोंसे निरन्तर हमारी रक्षा करती रहें। [**श्रीमद्देवीभागवत**]

॥ श्रीहरिः ॥

'कल्याण' के सम्मान्य सदस्यों और प्रेमी पाठकोंसे नम्र निवेदन

१-'कल्याण' के ८२वें वर्ष—सन् २००८ का यह विशेषाङ्क 'श्रीमद्देवीभागवताङ्क' आपलोगोंकी सेवामें प्रस्तुत है। इसमें ४७२ पृष्ठोंमें पाठ्य-सामग्री और ८ पृष्ठोंमें विषय-सूची आदि है। कई बहुरंगे एवं रेखाचित्र भी दिये गये हैं। डाकसे सभी ग्राहकोंको विशेषाङ्क-प्रेषणमें लगभग एक माहका समय लग जाता है।

२-वार्षिक सदस्यता-शुल्क प्रेषित करनेपर भी किसी कारणवश यदि विशेषाङ्क वी०पी०पी० द्वारा आपके पास पहुँच गया हो तो उसे डाकघरसे प्राप्त कर लेना चाहिये एवं प्रेषित की गयी राशिका पूरा विवरण (मनीऑर्डर पावतीसहित) यहाँ भेज देना चाहिये जिससे जाँचकर आपके सुविधानुसार राशिकी उचित व्यवस्था की जा सके। सम्भव हो तो उक्त वी०पी०पी० से किसी अन्य सज्जनको ग्राहक बनाकर उसकी सूचना यहाँ नये सदस्यके पूरे पतेसहित देनी चाहिये। ऐसा करके आप 'कल्याण' को आर्थिक हानिसे बचानेके साथ-साथ 'कल्याण' के पावन प्रचारमें सहयोगी भी हो सकेंगे।

३-इस अङ्कके लिफाफे (कवर)-पर आपकी सदस्य-संख्या एवं पता छपा है, उसे कृपया जाँच लें तथा अपनी सदस्य-संख्या सावधानीसे नोट कर लें। रजिस्ट्री अथवा वी०पी०पी० का नम्बर भी नोट कर लेना चाहिये। पत्र-व्यवहारमें सदस्य-संख्याका उल्लेख नितान्त आवश्यक है; क्योंकि इसके बिना आपके पत्रपर हम समयसे कार्यवाही नहीं कर पाते हैं। डाकद्वारा अङ्कोंके सुरक्षित वितरणमें सही पता एवं पिन-कोड आवश्यक है। अतः अपने लिफाफेपर छपा अपना पता जाँच लेना चाहिये।

४-*'कल्याण'* एवं *'गीताप्रेस-पुस्तक-विभाग'* की व्यवस्था अलग-अलग है। अतः पत्र तथा मनीऑर्डर आदि सम्बन्धित विभागको अलग-अलग भेजना चाहिये।

'कल्याण' के उपलब्ध पुराने विशेषाङ्क

वर्ष	विशेषाङ्क	मूल्य (रु०)	वर्ष	विशेषाङ्क	मूल्य (रु०)	वर्ष	विशेषाङ्क	मूल्य (रु०)
६	श्रीकृष्णाङ्क	१२०	३०	सत्कथा-अङ्क	१००	५३	सूर्याङ्क	७०
७	ईश्वराङ्क	९०	३१	तीर्थाङ्क	१००	५६	वामनपुराण	८५
९	शक्ति-अङ्क	१२०	३४	सं० देवीभागवत (मोटा टाइप)	१५०	५९	श्रीमत्स्यमहापुराण	१५०
१०	योगाङ्क	१००	३५	सं० योगवासिष्ठ	१००	६६	सं० भविष्यपुराण	११०
१२	संत-अङ्क	१५०	३६	सं० शिवपुराण (बड़ा टाइप)	१३०	६९	गो-सेवा-अङ्क	७५
१५	साधनाङ्क	१२०	३७	सं० ब्रह्मवैवर्तपुराण	१२०	७१	कूर्मपुराण	८०
१९	सं० पद्मपुराण	१५०	३९	श्रीभगवन्नाम-महिमा और		७२	भगवल्लीला-अङ्क	६५
२०	गो-अङ्क	१२०		प्रार्थना-अङ्क	९०	७३	वेदकथाङ्क	८०
२१	सं० मार्कण्डेयपुराण	६०	४३	परलोक और पुनर्जन्माङ्क	१२०	७४	सं० गरुडपुराण	१००
२१	सं० ब्रह्मपुराण	७०	४४-४५	गर्गसंहिता [भगवान्		७५	आरोग्य-अङ्क (संवर्धित सं०)	१३०
२२	नारी-अङ्क	१४०		श्रीराधाकृष्णकी दिव्य		७६	नीतिसार-अङ्क	८०
२३	उपनिषद्-अङ्क	१२५		लीलाओंका वर्णन]	८०	७७	भगवत्प्रेम-अङ्क	
२४	हिन्दू-संस्कृति-अङ्क	१५०	४४-४५	अग्निपुराण (मूल संस्कृतका			(११ मासिक अङ्क उपहारस्वरूप)	१००
२५	सं० स्कन्दपुराणाङ्क	१८०		हिन्दी अनुवाद)	१३०	७८	व्रतपर्वोत्सव-अङ्क	१००
२६	भक्त-चरिताङ्क	१४०	४५	नरसिंहपुराण-सानुवाद	६०	७९	देवीपुराण [महाभागवत]	
२७	बालक-अङ्क	११०	४८	श्रीगणेश-अङ्क	९०		शक्तिपीठाङ्क	८०
२८	सं० नारदपुराण	१२०	४९	श्रीहनुमान-अङ्क	९०	८०	संस्कार-अङ्क	८५
२९	संतवाणी-अङ्क	११०	५१	सं० श्रीवराहपुराण	७५	८१	अवतार-कथाङ्क	९०

सभी अङ्कोंपर डाक-व्यय अतिरिक्त देय होगा। गीताप्रेस-पुस्तक-विक्री-विभागसे प्राप्य हैं।

व्यवस्थापक—'कल्याण'-कार्यालय, पत्रालय—गीताप्रेस—२७३००५, जनपद—गोरखपुर, (उ०प्र०)

॥ श्रीहरि: ॥

'श्रीमद्देवीभागवताङ्क' की विषय-सूची

मङ्गलाचरण

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या

चतुर्थ स्कन्ध

पंचम स्कन्ध

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या

षष्ठ स्कन्ध

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या

चित्र-सूची

(रंगीन-चित्र)

(रेखा-चित्र)

विषय	पृष्ठ-संख्या

श्रीमद्देवीभागवतमाहात्म्य

देवीभागवतं नाम पुराणं परमोत्तमम्। त्रैलोक्यजननी साक्षाद् गीयते यत्र शाश्वती॥
श्रीमद्भागवतं यस्तु पठेद्वा शृणुयादपि। श्लोकार्धं श्लोकपादं वा स याति परमां गतिम्॥
पूजितं यद्गृहे नित्यं श्रीभागवतपुस्तकम्। तद्गृहं तीर्थभूतं हि वसतां पापनाशकम्॥
यस्तु भागवतं देव्याः पठेद् भक्त्या शृणोति वा। धर्ममर्थं च कामं च मोक्षं च लभते नरः॥
सुधां पिबन्नेक एव नरः स्यादजरामरः। देव्याः कथामृतं कुर्यात् कुलमेवाजरामरम्॥
अष्टादशपुराणानां मध्ये सर्वोत्तमं परम्। देवीभागवतं नाम धर्मकामार्थमोक्षदम्॥
ये शृण्वन्ति सदा भक्त्या देव्या भागवतीं कथाम्। तेषां सिद्धिर्न दूरस्था तस्मात् सेव्या सदा नृभिः॥
दिनमर्धं तदर्धं वा मुहूर्तं क्षणमेव वा। ये शृण्वन्ति नरा भक्त्या न तेषां दुर्गतिः क्वचित्॥
तावद् गर्जन्ति तीर्थानि पुराणानि व्रतानि च। यावन्न श्रूयते सम्यग् देवीभागवतं नरैः॥
तावत् पापाटवी नृणां क्लेशदादभ्रकण्टका। यावन्न परशुः प्राप्तो देवीभागवताभिधः॥
तावत् क्लेशावहं नृणामुपसर्गमहातमः। यावन्नैवोदयं प्राप्तो देवीभागवतोष्णगुः॥
इदमखिलकथानां सारभूतं पुराणं निखिलनिगमतुल्यं सप्रमाणानुविद्धम्।
पठति परमभावाद्यः शृणोतीह भक्त्या स भवति धनवान्वै ज्ञानवान्मानवोऽत्र॥

श्रीमद्देवीभागवत नामक पुराण सभी पुराणोंमें अतिश्रेष्ठ है, जिसमें तीनों लोकोंकी जननी साक्षात् सनातनी भगवतीकी महिमा गायी गयी है। जो श्रीमद्देवीभागवतके आधे श्लोक या चौथाई श्लोकको भी प्रतिदिन सुनता या पढ़ता है, वह परमगतिको प्राप्त होता है। जिस घरमें नित्य श्रीमद्देवीभागवतग्रन्थका पूजन किया जाता है, वह घर तीर्थस्वरूप हो जाता है तथा उसमें निवास करनेवाले लोगोंके पापोंका नाश हो जाता है। जो व्यक्ति भक्ति-भावसे देवीके इस भागवतपुराणका पाठ अथवा श्रवण करता है; वह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्त कर लेता है। अमृतके पानसे तो केवल एक ही मनुष्य अजर-अमर होता है, किंतु भगवतीका कथारूप अमृत सम्पूर्ण कुलको ही अजर-अमर बना देता है। सभी अठारह पुराणोंमें यह श्रीमद्देवीभागवतपुराण सर्वश्रेष्ठ है और धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षको प्रदान करनेवाला है। जो लोग सदा भक्ति-श्रद्धापूर्वक श्रीमद्देवीभागवतकी कथा सुनते हैं, उन्हें सिद्धि प्राप्त होनेमें रंचमात्र भी विलम्ब नहीं होता, इसलिये मनुष्योंको इस पुराणका सदा पठन-श्रवण करना चाहिये। पूरे दिन, दिनके आधे समयतक, चौथाई समयतक, मुहूर्तभर अथवा एक क्षण भी जो लोग भक्तिपूर्वक इसका श्रवण करते हैं, उनकी कभी भी दुर्गति नहीं होती। समस्त तीर्थ, पुराण और व्रत [अपनी श्रेष्ठताका वर्णन करते हुए] तभीतक गर्जना करते हैं, जबतक मनुष्य श्रीमद्देवीभागवतका सम्यक् रूपसे श्रवण नहीं कर लेते। मनुष्योंके लिये पापरूपी अरण्य तभीतक दुःखप्रद एवं कंटकमय रहता है, जबतक श्रीमद्देवीभागवतरूपी परशु (कुठार) उपलब्ध नहीं हो जाता। मनुष्योंको उपसर्ग (ग्रहण)-रूपी घोर अन्धकार तभीतक कष्ट पहुँचाता है, जबतक श्रीमद्देवीभागवतरूपी सूर्य उनके सम्मुख उदित नहीं हो जाता। इस संसारमें जो मनुष्य विशेष श्रद्धाके साथ उच्च विचारोंसे युक्त होकर सम्पूर्ण पुराणोंके सारस्वरूप, समस्त वेदोंकी तुलना करनेवाले तथा नानाविध प्रमाणोंसे परिपूर्ण इस श्रीमद्देवीभागंवतपुराणका पाठ करता है तथा इसका भक्तिपूर्वक श्रवण करता है, वह ऐश्वर्य तथा ज्ञानसे सम्पन्न हो जाता है। [श्रीमद्देवीभागवत]

श्रीमद्देवीभागवतसुभाषितसुधा

येन केनाप्युपायेन कालातिवाहनं स्मृतम्।
व्यसनैरिह मूर्खाणां बुधानां शास्त्रचिन्तनैः॥

जिस किसी प्रकारसे समय तो बीतता ही रहता है, किंतु मूर्खोंका समय व्यर्थ दुर्व्यसनोंमें बीतता है और विद्वानोंका समय शास्त्रचिन्तनमें जाता है। (१।१।१२)

मूर्खेण सह संयोगो विषादपि सुदुर्जरः।
विज्ञेन सह संयोगः सुधारससमः स्मृतः॥

मूर्खके साथ स्थापित किया गया सम्पर्क विषसे भी अधिक अनिष्टकर होता है, इसके विपरीत विद्वानोंका सम्पर्क पीयूषरसके तुल्य माना गया है। (१।६।५)

न गृहं बन्धनागारं बन्धने न च कारणम्।
मनसा यो विनिर्मुक्तो गृहस्थोऽपि विमुच्यते॥

गृह बन्धनागार नहीं है और न बन्धनका कारण ही है। जो मनसे बन्धनमुक्त है, वह गृहस्थ-आश्रममें रहते हुए भी मुक्त हो जाता है। (१।१४।५५)

कामः क्रोधः प्रमादश्च शत्रवो विविधाः स्मृताः।
बन्धुः सन्तोष एवास्य नान्योऽस्ति भुवनत्रये॥

काम, क्रोध, प्रमाद आदि अनेक प्रकारके शत्रु बताये गये हैं; किंतु व्यक्तिका सच्चा बन्धु तो एकमात्र सन्तोष ही है; तीनों लोकोंमें दूसरा कोई भी नहीं है। (१।१७।४७)

भ्रमन्सर्वेषु तीर्थेषु स्नात्वा स्नात्वा पुनः पुनः।
निर्मलं न मनो यावत्तावत्सर्वं निरर्थकम्॥

सभी तीर्थोंमें घूमते हुए वहाँ बार-बार स्नान करके भी यदि मन निर्मल नहीं हुआ तो वह सब व्यर्थ हो जाता है। (१।१८।३८)

शत्रुर्मित्रमुदासीनो भेदाः सर्वे मनोगताः।
एकात्मत्वे कथं भेदः सम्भवेद् द्वैतदर्शनात्॥

शत्रुता, मित्रता या उदासीनताके सभी भेदभाव मनमें ही रहते हैं। एकात्मभाव होनेपर भेदभाव नहीं रहता; यह तो द्वैतभावसे ही उत्पन्न होता है। (१।१८।४१)

प्रयत्नश्चोद्यमे कार्यो यदा सिद्धिं न याति चेत्॥
तदा दैवं स्थितं चेति चित्तमालम्बयेद् बुधः।

प्रयत्नपूर्वक उद्यम तो करना ही चाहिये, यदि सफलता न मिले तो बुद्धिमान् मनुष्य मनमें विश्वास कर ले कि दैव यहाँ प्रबल है। (२।८।३९-४०)

धर्मेण हन्यते व्याधिर्येनायुः शाश्वतं भवेत्॥

धर्माचरणसे व्याधि नष्ट होती है और उससे आयु स्थिर होती है। (२।१०।३७)

मूर्खा यत्र सुगर्विष्ठा दानमानपरिग्रहैः।
तस्मिन्देशे न वस्तव्यं पण्डितेन कथञ्चन॥

जहाँ दान, मान तथा परिग्रहसे मूर्खलोग महान् गौरवशाली माने जाते हैं, उस देशमें पण्डितजनको किसी प्रकार भी नहीं रहना चाहिये। (३।१०।४१)

द्रव्यशुद्धिः क्रियाशुद्धिर्मन्त्रशुद्धिश्च भूमिप।
भवेद्यदि तदा पूर्णं फलं भवति नान्यथा॥

यदि द्रव्यशुद्धि, क्रियाशुद्धि और मन्त्रशुद्धिके साथ कर्म सम्पन्न होता है, तब पूर्ण फलकी प्राप्ति अवश्य होती है; अन्यथा नहीं होती। (३।१२।७)

अन्यायोपार्जितेनैव द्रव्येण सुकृतं कृतम्।
न कीर्तिरिह लोके च परलोके न तत्फलम्॥

अन्यायके द्वारा उपार्जित किये गये धनसे यदि पुण्य कार्य किया जाता है तो इस लोकमें यशकी प्राप्ति नहीं होती और परलोकमें उसका कोई फल भी नहीं मिलता। (३।१२।८)

आर्तस्य रक्षणे पुण्यं यज्ञाधिकमुदाहृतम्।
भयत्रस्तस्य दीनस्य विशेषफलदं स्मृतम्॥

किसी दुःखी प्राणीकी रक्षा करनेमें यज्ञ करनेसे भी अधिक पुण्य बताया गया है। भयभीत तथा दीनकी रक्षाको तो और भी अधिक फलदायक कहा गया है। (३।१५।५७)

वृथा तीर्थं वृथा दानं वृथाध्ययनमेव च।
लोभमोहावृतानां वै कृतं तदकृतं भवेत्॥

लोभ तथा मोहसे घिरे हुए लोगोंका तीर्थ, दान, अध्ययन—सब व्यर्थ हो जाता है; उनका किया हुआ वह सारा कर्म न करनेके समान हो जाता है। (३।१६।५५)

धर्मो जयति नाधर्मः सत्यं जयति नानृतम्।

धर्मकी जय होती है, अधर्मकी नहीं। सत्यकी जय होती है, असत्यकी नहीं। (३।१९।५९)

स्वकर्मफलयोगेन प्राप्य दुःखमचेतनः।
निमित्तकारणे वैरं करोत्यल्पमतिः किल॥

अपने द्वारा उपार्जित कर्मफल भोगनेमें दुःख प्राप्त होनेके कारण अज्ञानी तथा अल्पबुद्धिवाला प्राणी निमित्त कारणके प्रति शत्रुता करने लगता है। (३।२०।४४)

दुःखे दुःखाधिकान्पश्येत्सुखे पश्येत्सुखाधिकम्।
आत्मानं शोकहर्षाभ्यां शत्रुभ्यामिव नार्पयेत्॥

मनुष्यको चाहिये कि दुःखकी स्थितिमें अधिक दुःखवालोंको तथा सुखकी स्थितिमें अधिक सुख-वालोंको देखे; अपने आपको हर्ष-शोकरूपी शत्रुओंके अधीन न करे। (३।२५।७)

यथेन्द्रवारुणं पक्वं मिष्टं नैवोपजायते।
भावदुष्टस्तथा तीर्थे कोटिस्नातो न शुध्यति॥

जिस प्रकार इन्द्रवारुणका फल पक जानेपर भी मीठा नहीं होता, उसी प्रकार दूषित भावनाओंवाला मनुष्य तीर्थमें करोड़ों बार स्नान करके भी पवित्र नहीं हो पाता।(४।८।३६)

प्रथमं मनसः शुद्धिः कर्तव्या शुभमिच्छता।
शुद्धे मनसि द्रव्यस्य शुद्धिर्भवति नान्यथा॥

कल्याणकी कामना करनेवाले पुरुषको सर्वप्रथम अपने मनको शुद्ध कर लेना चाहिये। मनके शुद्ध हो जानेपर द्रव्यशुद्धि स्वतः हो जाती है। इसके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है। (४।८।३७)

कार्यमित्रं परिक्षिप्य धर्ममित्रं समाश्रयेत्।

अपना ही कार्य साधनेमें तत्पर रहनेवाले मित्रका त्यागकर धर्ममार्गपर चलनेवाले मित्रका ही अवलम्बन करना चाहिये। (५।२६।१५)

परोपतापनं कर्म न कर्तव्यं कदाचन।
न सुखं विन्दते प्राणी परपीडापरायणः॥

दूसरेको कष्ट पहुँचानेका कृत्य कभी नहीं करना चाहिये, दूसरेको कष्ट देनेमें संलग्न प्राणी कभी सुख नहीं पाता। (६।३।२३)

विश्वासघातकर्तारो नरकं यान्ति निश्चयम्॥
निष्कृतिर्ब्रह्महन्तॄणां सुरापानां च निष्कृतिः॥
विश्वासघातिनां नैव मित्रद्रोहकृतामपि।

विश्वासघात करनेवाले निश्चय ही नरकमें जाते हैं। ब्राह्मणकी हत्या करनेवालों और मद्यपान करनेवालोंके लिये तो प्रायश्चित्त है, परंतु विश्वासघातियों और मित्रद्रोहियोंके लिये कोई प्रायश्चित्त नहीं है। (६।६।३०—३२)

मन्त्रकृद् बुद्धिदाता च प्रेरकः पापकारिणाम्।
पापभाक्स भवेन्नूनं पक्षकर्ता तथैव च॥

पाप करनेका परामर्श देनेवाला, पाप करनेके लिये बुद्धि देनेवाला, पापकी प्रेरणा देनेवाला तथा पाप करनेवालोंका पक्ष लेनेवाला भी निश्चय ही पापकर्ताके समान पापभाजन होता है। (६।७।६)

परोपदेशे कुशला प्रभवन्ति नराः किल।
कर्ता चैवोपदेष्टा च दुर्लभः पुरुषो भवेत्॥

लोग दूसरोंको उपदेश देनेमें बहुत कुशल होते हैं, परंतु उपदेश देनेवाला और उसका पालन करनेवाला पुरुष दुर्लभ होता है। (६।८।१३)

यादृशं कुरुते कर्म तादृशं फलमाप्नुयात्।
अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्॥

जो जैसा कर्म करता है, उसे वैसा फल प्राप्त होता है। किये गये शुभ-अशुभ कर्मका फल अवश्य ही भोगना पड़ता है। (६।९।६७)

कामक्रोधौ तथा लोभो ह्यहङ्कारो मदस्तथा॥
सर्वविघ्नकरा ह्येते तपस्तीर्थव्रतेषु च।

काम, क्रोध, लोभ, अहंकार तथा मद—ये सभी तपस्या, तीर्थसेवन और व्रतोंमें विघ्नकारी होते हैं। (६।१२।२०-२१)

लोभात्त्यजन्ति धर्मं वै कुलधर्मं तथैव हि।
मातरं भ्रातरं हन्ति पितरं बान्धवं तथा॥
गुरुं मित्रं तथा भार्यां पुत्रं च भगिनीं तथा।
लोभाविष्टो न किं कुर्यादकृत्यं पापमोहितः॥

लोभके वशीभूत प्राणी अपने सदाचार तथा कुलधर्मका भी परित्याग कर देते हैं। वे अपने माता, पिता, भाई, बान्धव, गुरु, मित्र, पत्नी, पुत्र तथा बहनतकका वध कर देते हैं। इस प्रकार लोभके वशीभूत मनुष्य पापसे विमोहित होकर कौन-सा दुष्कर्म नहीं कर डालता! (६।१६।४८-४९)

नैकत्र सुखसंयोगो दुःखयोगस्तु नैकतः।
घटिकायन्त्रवत्कामं भ्रमणं सुखदुःखयोः॥

न तो अकेले सुखका संयोग होता है और न तो दुःखका; घटीयन्त्रकी भाँति सुख तथा दुःखका भ्रमण होता रहता है। (६।३०।२३)

दुर्लभो मानुषो देहः प्राणिनां क्षणभङ्गुरः।
तस्मिन्प्राप्ते तु कर्तव्यं सर्वथैवात्मसाधनम्॥

क्षणभरमें नष्ट हो जानेवाला यह मानवशरीर प्राणियोंके लिये अत्यन्त दुर्लभ है। इसके प्राप्त होनेपर सम्यक् प्रकारसे आत्मकल्याण कर लेना चाहिये। (६।३०।२५)

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण (पूर्वार्ध)—सिंहावलोकन

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

नरश्रेष्ठ भगवान् श्रीनर-नारायण और भगवती सरस्वती तथा व्यासदेवको नमन करके पुराणकी चर्चा करनी चाहिये।

पुराणोंमें श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणका अत्यन्त महिमामय स्थान है। पुराणोंकी परिगणनामें वेदतुल्य, पवित्र और सभी लक्षणोंसे युक्त यह पुराण पाँचवाँ है। शक्तिके उपासक इस पुराणको 'शाक्तभागवत' कहते हैं। इस ग्रन्थरत्नके आदि-मध्य और अन्तमें—सर्वत्र भगवती आद्याशक्तिकी महिमाका प्रतिपादन किया गया है। इस पुराणमें परब्रह्म परमात्माके मातृरूप और उसकी उपासनाका वर्णन है। भगवती आद्याशक्तिकी लीलाएँ अनन्त हैं, उन लीलाकथाओंका प्रतिपादन ही ग्रन्थका मुख्य प्रतिपाद्य विषय है, जिनके सम्यक् अवगाहनसे साधकों—भक्तोंका मन देवीके पदपद्मपरागका भ्रमर बनकर मुक्तिमार्गका पथिक बन जाता है।

श्रीवेदव्यासजीने राजा जनमेजयको यह पुराण स्वयं सुनाया था। पूर्वकालमें जनमेजयके पिता राजा परीक्षित् तक्षकनागद्वारा काट लिये गये। अत: पिताकी संशुद्धि (शुभ गति)-के लिये राजाने तीनों लोकोंकी जननी भगवती देवीका विधिवत् पूजन-अर्चन करके नौ दिनोंतक व्यासजीके मुखारविन्दसे इस श्रीमद्देवीभागवतपुराणका श्रवण किया। इस नवाहयज्ञके पूर्ण हो जानेपर राजा परीक्षित्ने उसी समय दिव्य रूप धारण करके देवीका सालोक्य प्राप्त किया। राजा जनमेजय अपने पिताकी दिव्य गति देखकर और महर्षि वेदव्यासकी विधिवत् पूजा करके परम प्रसन्न हुए।

माहात्म्य—अठारह पुराणोंमें यह श्रीमद्देवीभागवतपुराण सर्वश्रेष्ठ है तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्षको प्रदान करनेवाला है। इस पावन पुराणकी महिमा कहाँतक कही जाय—जो फल कठिन तपस्याओं, व्रतों, तीर्थसेवन, अनेकविध दान, नियमों, यज्ञों, हवन एवं जप आदिके करनेसे नहीं प्राप्त होता है, वह फल मनुष्योंको श्रीमद्देवीभागवतके नवाहयज्ञसे प्राप्त हो जाता है।

यद्यपि इस पुराणके कथाश्रवणमें महीनों तथा दिनोंका कोई नियम नहीं है, अतएव मनुष्योंद्वारा इसका सदा ही पठन-श्रवण किया जाना चाहिये। वैसे आश्विन, चैत्र, माघ तथा आषाढ़—इन महीनोंके चारों नवरात्रोंमें इस पुराणके श्रवणका विशेष फल बताया गया है। जिस घरमें नित्य श्रीमद्देवीभागवतपुराणका पूजन किया जाता है, वह घर तीर्थस्वरूप हो जाता है तथा उसमें निवास करनेवाले लोगोंके पापका नाश हो जाता है।

इस श्रीमद्देवीभागवत नामक परम पावन पुराणका प्राकट्य भगवती श्रीजगदम्बिकाके श्रीमुखसे आधे श्लोकके रूपमें हुआ। तत्पश्चात् शिष्य-परम्परासे उसीका विस्तार हुआ। इस पुराणमें अठारह हजार श्लोक हैं। श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यासने बारह स्कन्धोंमें इसकी रचना की है। पूरे पुराणमें कुल ३१८ अध्याय हैं।

एक बार नैमिषारण्यमें शौनक आदि महर्षियोंने मुनिवर सूतजीसे स्वर्ग तथा मोक्षका सुख प्रदान करनेवाले और भगवतीकी उत्तम महिमाका वर्णन करनेवाले इस पुराणको सुननेकी इच्छा प्रकट की। इसपर श्रीसूतजीने आद्याशक्ति महामाया जगज्जननी भगवती जगदम्बिकाका ध्यान करके इस पुराणकी पावन कथाका कहना प्रारम्भ किया।

सर्वप्रथम पाँच अध्यायोंमें श्रीमद्देवीभागवतके माहात्म्यका वर्णन करते हुए स्यमन्तकमणिकी कथा, राजा सुद्युम्नकी कथा तथा राजा दुर्दमको भगवती जगदम्बाकी कृपासे मन्वन्तराधिप-पुत्रकी प्राप्तिकी कथा सूतजीने ऋषियोंको श्रवण करायी।

माहात्म्यवर्णनके अनन्तर ऋषियोंके आग्रह करनेपर सूतजीने श्रीमद्देवीभागवतपुराणकी श्रवणविधि, श्रवणकर्ताके लिये पालनीय नियम तथा कथाश्रवणके फल आदिका वर्णन किया।

इस श्रीमद्देवीभागवतको सुननेके प्राय: सभी अधिकारी हैं। शक्ति-उपासकके अतिरिक्त गणेशभक्त, सूर्योपासक, शैव, वैष्णव, इसके साथ ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र—चारों वर्णोंके स्त्री-पुरुष एवं ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासी—ये सभी सकाम भावसे अथवा निष्कामभावसे कथाश्रवण कर सकते हैं।

जो लोग ब्रह्मा-विष्णु और शिवमें भेददृष्टि रखते हैं, देवीकी भक्तिसे रहित हैं; पाखण्डी, हिंसक तथा दुष्ट हैं, विद्वानोंसे द्वेष रखनेवाले तथा नास्तिक हैं, परस्त्री, पराया धन, ब्राह्मणधन तथा देवसम्पत्तिके हरणमें लुब्ध रहते हैं—वे कथाश्रवणके अधिकारी नहीं हैं। श्रोताको चाहिये कि वह ब्रह्मचर्यका पालन करे, पृथ्वीपर सोये, सत्य बोले, जितेन्द्रिय रहे तथा

कथाकी समाप्तितक संयमपूर्वक पत्तलपर भोजन करे। वह देवभक्त, उदार, लोभरहित और हिंसा आदिसे रहित हो तथा काम, क्रोध, लोभ, मद, मात्सर्य, ईर्ष्या, राग-द्वेष, पाखण्ड और अहंकारको भी छोड़ दे। कथाव्रतीको सर्वदा विनयशील, सरलचित्त, पवित्र, दयालु, कम बोलनेवाला तथा उदार मनवाला होना चाहिये।

कथावाचकके लिये संयमी, शास्त्रज्ञ, देवीकी आराधनामें तत्पर, दयालु, निर्लोभी, दक्ष, धैर्यशाली तथा वक्तृत्वसम्पन्न होना उत्तम माना गया है। व्यासके आसनपर बैठा हुआ पौराणिक ब्राह्मण जबतक कथा समाप्त न हो जाय, तबतक किसीको भी प्रणाम न करे।

जिस प्रकार नदियोंमें गंगा, देवताओंमें शिव, काव्योंमें वाल्मीकीय रामायण, तेजस्वियोंमें भगवान् सूर्य, आनन्द देनेवालोंमें चन्द्रमा, सब धनोंमें सुयश, क्षमाशीलोंमें पृथ्वी, गम्भीरतामें समुद्र, मन्त्रोंमें गायत्री तथा पापनाशके उपायोंमें भगवत्स्मरण श्रेष्ठ है; उसी प्रकार अठारहों पुराणोंमें यह श्रीमद्देवीभागवतपुराण सर्वश्रेष्ठ है।

गायत्रीसे बढ़कर न कोई धर्म है, न तप है, न कोई देवता है और न कोई मन्त्र ही है। भगवती अपना गुणगान करनेवालेकी रक्षा करती हैं। इसी कारण इन्हें गायत्री कहा जाता है। वे भगवती गायत्री इस पुराणमें अपने रहस्योंसहित विराजती हैं। इस कारणसे इस महापुराणके सदृश दूसरा कोई उत्तम पुराण इस लोकमें नहीं है।

अमृतसागरके तटपर कल्पवृक्षकी वाटिकासे सुशोभित, मणिद्वीपमें स्थित, बहुवर्णचित्रित चिन्तामणिमय भवनमें तथा परमशिवके हृदयमें विराजमान रहनेवाली और मन्द-मन्द मुसकानयुक्त मुखमण्डलवाली जगदम्बाका ध्यान करनेसे मनुष्य सांसारिक सुखोंका उपभोग करता है और अन्तमें निश्चय ही मोक्ष प्राप्त करता है।

प्रथम स्कन्ध

नारदजीका व्यासजीको देवीकी महिमा बताना— प्राचीन कालमें एक समय व्यासजीने गौरैया-दम्पतीको अपने दो नवजात शिशुओंको स्नेह करते देखा। यह देखकर व्यासजीके मनमें पुत्र-प्राप्तिकी इच्छा हो आयी, साथ ही उन्होंने यह भी सोचा कि पुत्ररहित मनुष्यकी सद्गति नहीं होती, परंतु गृहस्थाश्रम चलानेके लिये पत्नी और धनकी आवश्यकता होती है, जो मेरे पास नहीं हैं। इस प्रकार चिन्तन करते हुए व्यासजीका मन अत्यन्त खिन्न हो गया, अन्ततः उन्होंने तपस्या करनेके लिये मेरुपर्वतपर जानेका निश्चय किया। तदनन्तर उन्होंने मनमें विचार किया कि मैं किस देवताकी आराधना करूँ, जिससे मेरे अभीष्टकी सिद्धि हो? संयोगवश उसी समय नारदजी वहाँ आ गये। कुशल-प्रश्नके बाद नारदजीने व्यासजीसे पूछा—हे द्वैपायन! आप किस कारणसे चिन्ताग्रस्त हैं? मुझे बतायें।

व्यासजीने कहा—हे महर्षे! सन्तानहीनकी सद्गति नहीं होती, अतः आप मुझे यह बतायें कि पुत्र-प्राप्तिके लिये मैं किस देवताका आराधन करूँ? इस प्रश्नके उत्तरमें नारदजीने व्यासजीसे एक प्राचीन वृत्तान्त सुनाते हुए कहा कि एक बार मेरे पिता ब्रह्माजीने भगवान् विष्णुको ध्यानमें स्थित होकर कठोर तप करते देखा, उन्हें तपस्या करते देखकर ब्रह्माजीको बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने भगवान् विष्णुसे पूछा—हे देवाधिदेव! हे जगन्नाथ! हे भूत-भविष्य-वर्तमानके स्वामी! आप किसलिये यह कठोर तपस्या कर रहे हैं? हे जनार्दन! आप किसके ध्यानमें लीन हैं? हे जगन्नाथ! मैं तो यही जानता हूँ कि आप ही आदिस्वरूप, सबके कारण, निर्माता, पालनकर्ता, संहारक तथा सभी कार्योंको सम्पादित करनेवाले हैं? भगवान् शंकरसहित मैं और अन्य सभी देवता आपके आदेशसे अपने-अपने दायित्वोंका निर्वहन करते हैं। मैं तो तीनों लोकोंमें आपसे बढ़कर अन्य किसी देवताको नहीं जानता हूँ, फिर आप किस देवताका ध्यान कर रहे हैं?

ब्रह्माजीका वचन सुनकर भगवान् विष्णुने उनसे कहा—हे ब्रह्मन्! किसी शक्तिके द्वारा ही आप सृष्टिके कर्ता हैं, मैं भर्ता हूँ और शंकरजी हर्ता हैं। उस शक्तिके न रहनेपर आप न तो सृष्टि-रचना कर सकते हैं, न मैं पालन-कार्य कर सकनेमें समर्थ हो सकता हूँ और न तो शंकरजी संहार कर सकते हैं। उसी शक्तिका अवलम्बन प्राप्तकर मैं सदा तपश्चरण करता रहता हूँ। हे विभो! हम सभी निरन्तर उसी शक्तिके अधीन रहते हैं। तिर्यग्योनिमें उत्पन्न होना किसीके लिये भी प्रिय नहीं होता। मैं अपनी इच्छासे वामन, वाराह आदि योनियोंमें उत्पन्न नहीं होता हूँ, अपितु इसमें उसी शक्तिकी प्रेरणा ही परम कारण है। भला, मैं स्वतन्त्र होता तो मेरा सिर क्यों कटता और घोड़ेका सिरवाला 'हयग्रीव-अवतार' मैं क्यों लेता? अतएव मैं स्वतन्त्र नहीं हूँ, अपितु सर्वथा उसी शक्तिके अधीन हूँ और निरन्तर उसी शक्तिका ध्यान करता रहता हूँ।

इस प्रकार नारदजीने व्यासजीसे देवीकी सर्वोत्तमताका प्रतिपादन करनेवाला आख्यान सुनाकर उन्हें पुत्र-प्राप्तिके

लिये भगवतीके चरणारविन्दका ध्यान करनेका परामर्श दिया।

व्यासजीकी तपस्या और पुत्र-प्राप्ति—नारदजीका उपदेश सुनकर व्यासजी मेरुपर्वतपर तपस्या करने लगे। वे वाग्बीज मन्त्रका जप करते हुए सौ वर्षोंतक भगवान् शंकर और भगवती सदाशिवाकी आराधनामें तत्पर रहे। उनकी इस उग्र तपस्यासे इन्द्र भयभीत हो गये। उन्होंने भगवान् शंकरसे व्यासजीकी तपस्याका कारण पूछा। इसपर भगवान् शंकरने इन्द्रसे कहा कि व्यासजी पुत्र-प्राप्तिके लिये तपस्या कर रहे हैं, मैं इन्हें कल्याणकारी पुत्र प्रदान करूँगा। इन्द्रसे ऐसा कहकर भगवान् शंकर व्यासजीके पास गये और उन्हें पुत्र-प्राप्तिका वरदान दिया।

इसके अनन्तर व्यासजी अपने आश्रममें आकर अग्नि प्रकट करनेकी दृष्टिसे अरणि-मन्थन करने लगे। अरणीसे प्रकटित अग्निको देखकर व्यासजीके मनमें पुत्रोत्पत्तिका भाव आया, परंतु वे विचार करने लगे कि मुझे पत्नी तो है नहीं तथा स्त्री तो सदा बन्धनकी कारण ही बनी रहती है, इसलिये गृहस्थ होनेकी मुझमें प्रवृत्ति भी नहीं है।

उसी समय उन्हें घृताची नामक एक अप्सरा दृष्टिगोचर हुई, उसे देखकर मुनिके हृदयमें कामभावका संचार हो गया और एकाएक उनका तेज उस अरणीपर गिर गया। घृताची अप्सरा शापके भयसे भयभीत होकर शुकीका रूप धारणकर उड़ गयी। उस अरणीसे ही भगवान् शिवके वरदानस्वरूप परम तेजस्वी शुकदेवजीका जन्म हुआ। उत्पन्न होते ही तेजस्वी शुकदेवजी बड़े हो गये। व्यासजीने उनके उपनयनतकके सभी संस्कार कर दिये, उसी समय आकाशसे दिव्य मृगचर्म, कमण्डलु तथा दण्ड पृथ्वीपर आ गिरे और उन्हें लेकर शुकदेवजी गुरु बृहस्पतिके पास विद्याध्ययनके लिये चले गये।

श्रीवेदव्यासजी तथा शुकदेवजीका संवाद—विद्याध्ययन सम्पन्नकर शुकदेवजी अपने पिता व्यासजीके पास आ गये। उन्हें देखकर व्यासजी अत्यन्त प्रसन्न हुए तथा विवाह करनेका प्रस्ताव रखा और कहा कि गृहस्थ-आश्रममें रहकर देवताओं और पितरोंका यजन करो, परंतु विरक्त शुकदेवजीने इसे स्वीकार न करते हुए कहा कि पिताजी! पुत्र-कलत्रके बन्धनमें फँसा हुआ प्राणी कभी भी बन्धनमुक्त नहीं हो पाता। इस संसारमें आत्मज्ञानको छोड़कर कौन-सा सुख है? दुर्लभ मानव-शरीरको पाकर तथा वेद-शास्त्रोंका अध्ययन करके भी यदि मनुष्य इस संसारमें बँधता है तो दूसरा भला कौन बन्धनमुक्त हो सकता है? विद्या तो वही है, जो शीघ्र ही भवबन्धनसे मुक्त कर दे।

व्यासजीने शुकदेवजीको समझानेका बहुत प्रयास किया और कहा कि जो मनसे बन्धनमुक्त है तथा जो न्यायमार्गसे धनोपार्जन करता है, शास्त्रोक्त कर्मोंका विधिवत् सम्पादन करता है, पितृश्राद्ध आदि यज्ञ करता है, सर्वदा सत्य बोलता है तथा पवित्र रहता है; वह गृहमें रहते हुए भी मुक्त हो जाता है, किंतु व्यासजीकी इन बातोंसे श्रीशुकदेवजी प्रभावित नहीं हुए और उन्होंने कहा—हे पवित्रात्मन्! इस कर्मभूमिमें मनुष्यजन्म अति दुर्लभ है। आप मुझे ऐसा ज्ञान दीजिये, जिससे मैं गर्भवासजनित महान् भयसे मुक्त हो जाऊँ।

शुकदेवजीकी यह प्रवृत्ति देखकर व्यासजीने कहा—हे पुत्र! मेरेद्वारा रचित श्रीमद्देवीभागवतपुराणको तुम पढ़ो, जिसे सुननेमात्रसे सत् और असत् वस्तुओंका यथार्थ ज्ञान हो जाता है। सर्वप्रथम आधे श्लोकमें इस पुराणका ज्ञान भगवती पराशक्तिने भगवान् विष्णुको देते हुए कहा—'यह सारा जगत् मैं ही हूँ, मेरे सिवा दूसरी कोई अविनाशी वस्तु है ही नहीं।' भगवान् विष्णुसे यह ज्ञान ब्रह्माजीको मिला और ब्रह्माजीने इसे नारदजीको बताया तथा नारदजीसे यह मुझे प्राप्त हुआ, फिर मैंने इसकी बारह स्कन्धोंमें व्याख्या की। व्यासजीके कहनेपर शुकदेवजीने श्रीमद्देवीभागवतपुराणका अध्ययन तो किया, परंतु उन्हें शान्ति नहीं मिल सकी।

जनकजीका शुकदेवजीको ज्ञानोपदेश देना—शुकदेवजीको चिन्तित देखकर व्यासजीने कहा कि पुत्र! यदि मेरे उपदेशसे तुम्हें शान्ति नहीं मिलती तो राजा जनकके पास मिथिलापुरी चले जाओ; वे राजर्षि जीवन्मुक्त, ब्रह्मज्ञानका चिन्तन करनेवाले, शान्तचित्त एवं पवित्र आत्मा हैं। वे जलमें कमलपत्रकी भाँति संसारमें रहते हैं, घरमें रहकर भी मुक्त हैं। व्यासजीका वचन सुनकर शुकदेवजी मिथिलापुरी जानेके लिये उत्सुक हो गये। पिताको प्रणामकर तथा उनकी प्रदक्षिणा करके शुकदेवजी दो वर्षोंमें मेरुपर्वत और एक वर्षमें हिमालयको पार करके मिथिलापुरी पहुँच गये। वहाँकी ऐश्वर्यसम्पदाको उन्होंने देखा। यद्यपि द्वारपालने पहले उन्हें रोका, परंतु उनकी वार्तासे प्रभावित होकर उसने शुकदेवजीको एक अत्यन्त रमणीय कक्षमें प्रवेश कराया। शुकदेवजीके आनेका समाचार सुनकर महाराज जनकने उनका स्वागत-सत्कारकर आगमनका प्रयोजन पूछा। शुकदेवजीने कहा—संशययुक्त चित्तवाला समझकर मेरे पिताजीने मुझे आपके पास भेजा है। हे राजेन्द्र! मैं मोक्षका अभिलाषी हूँ। तप, तीर्थ, व्रत, यज्ञ, स्वाध्याय और ज्ञान—

इनमेंसे जो मोक्षका साक्षात् साधन हो, वह मुझे बताइये।

जनकजी बोले—मोक्षमार्गावलम्बी व्यक्तिको यह उचित है कि वह अध्ययन समाप्त करनेके बाद विवाह करके पत्नीके साथ गृहस्थाश्रममें रहते हुए न्यायोपार्जित धनसे सर्वदा सन्तुष्ट रहकर किसीसे कोई आशा न रखे, पापोंसे बचते हुए सत्य वचन बोले और मन, वचन, कर्मसे सदा पवित्र रहे।

शुकदेवजीसे यह पूछनेपर कि चित्तमें वैराग्य और ज्ञान-विज्ञान उत्पन्न हो जानेपर व्यक्तिको गृहस्थाश्रममें रहना चाहिये अथवा वनोंमें, इसपर जनकजीने कहा—हे मानद! इन्द्रियाँ बड़ी बलवान् होती हैं, वे वशमें नहीं रहतीं; वे अपरिपक्व बुद्धिवाले मनुष्यके मनमें नाना प्रकारके विकार उत्पन्न कर देती हैं। यदि मनुष्यके मनमें भोजनकी, शयनकी, सुखकी और पुत्रकी इच्छा बनी रहे तो वह संन्यासी होकर भी इन विकारोंसे मुक्त नहीं हो सकता। वासनाओंका जाल बड़ा ही कठिन होता है, इसलिये उसकी शान्तिके लिये मनुष्यको क्रमसे उसका त्याग करना चाहिये।

गृहस्थाश्रममें रहते हुए भी जो शान्त, बुद्धिमान् तथा आत्मज्ञानी होता है; वह न तो प्रसन्न होता है और न खेद करता है; वह हानि-लाभमें समानभाव रखता है। जो पुरुष शास्त्रप्रतिपादित कर्म करता हुआ; सभी प्रकारकी चिन्ताओंसे मुक्त रहता हुआ आत्मचिन्तनसे सन्तुष्ट रहता है, वह नि:सन्देह मुक्त हो जाता है।

हे अनघ! देखिये, मैं राजकार्य करता हुआ भी जीवन्मुक्त हूँ। मैं अपनी इच्छानुसार सभी कार्य करता हूँ, किंतु मुझे शोक या हर्ष कुछ भी नहीं होता। जिस प्रकार मैं अनेक भोगोंको भोगता हुआ तथा अनेक कार्योंको करता हुआ भी अनासक्त हूँ, उसी प्रकार आप भी मुक्त हो जाइये।

हे द्विज! मन ही महान् सुख-दु:खका कारण है। इसीके निर्मल होनेपर सब कुछ निर्मल हो जाता है, विषयी मन बन्धन और निर्विषयी मन मुक्तिका प्रदाता है। यह देह मेरी है—यही बन्धन है और यह देह मेरी नहीं है—यही मुक्ति है। बन्धन शरीर और घरमें नहीं है, अपितु अहंता और ममतामें है।

शुकदेवजीका गृहस्थाश्रममें प्रवेश—जनकजीके उपदेशसे शुकदेवजीकी सारी शंकाएँ समाप्त हो गयीं। वे पिताके आश्रममें लौट आये। फिर उन्होंने पितरोंकी सुन्दर कन्या पीवरीसे विवाह करके गृहस्थाश्रमके नियमोंका पालन किया। उन्हें चार पुत्र और एक कन्या हुई, जिनका उन्होंने विवाह आदि भी सम्पन्न किया। तदनन्तर कुछ समय बाद शुकदेवजी सब कुछ त्यागकर कैलासके सुरम्य शिखरपर चले गये और नि:संग भावसे अविचल ध्यान लगाकर उन्होंने मुक्तिपदको प्राप्त किया।*

इधर पुत्रवियोगसे व्यासजी अत्यन्त दु:खी हुए। शोकसन्तप्त व्यासजीको अपनी माता सत्यवतीका ध्यान आया। वे अपने जन्मस्थानपर गये। वहाँ उन्हें माँ सत्यवतीका समाचार निषादराजसे मालूम हुआ। कालान्तरमें चित्रांगद और विचित्रवीर्यकी मृत्युके बाद कुरुवंशकी बेल समाप्त होनेको आ गयी तो सत्यवतीने व्यासजीका स्मरण किया और उनसे वंशरक्षाकी प्रार्थना की। इसपर व्यासजीने नियोगविधिसे धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुरको उत्पन्न किया।

हयग्रीवावतारकी कथा—एक समयकी बात है, भगवान् विष्णु दस हजार वर्षोंतक युद्ध करनेके कारण थक गये थे, अत: वे एक शुभ स्थानपर पद्मासन लगाकर बैठ गये। उस समय उन्होंने पृथ्वीपर स्थित प्रत्यंचा चढ़े हुए धनुषपर अपना कण्ठप्रदेश टिका लिया था और संयोगवश उन्हें इसी अवस्थामें गहरी निद्रा आ गयी।

कालान्तरमें देवताओंने एक यज्ञ करनेका निश्चय किया और इसके लिये वे ब्रह्मा और शिवजीके साथ यज्ञाधिपति विष्णुके पास गये। उन्हें निद्राके वशीभूत अचेत पड़ा देखकर देवताओंको यह सोचकर बड़ी चिन्ता हुई कि निद्राभंग करना महान् दोष है और यज्ञ भी अवश्यकरणीय है।

इसपर सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीने दीमकका सृजन किया और उसे यज्ञमें आस-पास गिरे हव्यको प्राप्त करनेका अधिकार देकर भगवान् विष्णुके धनुषकी डोरीको काट देनेको कहा। ब्रह्माजीके इस प्रकार कहनेपर दीमकने धनुषकी डोरी काट दी। उस डोरीके कटते ही ब्रह्माण्डको विक्षुब्ध कर देनेवाली भयंकर ध्वनि हुई और सर्वत्र अन्धकार छा गया। थोड़ी देर बाद जब अन्धकार दूर हुआ तो देवताओंने देखा कि भगवान् विष्णुका सिरविहीन धड़ पड़ा है और सिर गायब है। यह घटना देखकर देवगण स्तब्ध रह गये, वे करुणापूर्ण रुदन करने लगे। सबको किंकर्तव्यविमूढ देखकर ब्रह्माजीने सभी देवताओंसे भगवती जगदम्बाकी स्तुति करनेको कहा। देवताओंका

* श्रीमद्भागवतमें शुकदेवजीके जन्म आदिकी कथा अन्य प्रकारसे है। ये कथाएँ कल्पान्तरकी मानी जाती हैं। इसलिये कोई संशय नहीं करना चाहिये।

कष्ट देखकर और उनकी स्तुति सुनकर आद्याशक्ति भगवती जगदम्बा प्रकट हुईं और देवताओंको आश्वासन देते हुए वे बोलीं—एक बार भगवान् विष्णु लक्ष्मीको देखकर अकारण हँसने लगे थे। दुर्भाग्यसे उस समय लक्ष्मीमें तामसी भाव आ गया और उन्होंने यह सोचकर कि भगवान् विष्णु मेरे मुखको देखकर हँस रहे हैं, शाप दे दिया कि तुम्हारा सिर कट जायगा। इसलिये इनका सिर कटकर लवणसागरमें गिर गया है, परंतु इस घटनामें भी तुमलोगोंका हित ही निहित है; क्योंकि प्राचीनकालमें हयग्रीव नामके एक दैत्यने मेरे मायाबीजमन्त्रका जप करते हुए घोर तपस्या की थी। उसकी तपस्यासे प्रसन्न होकर मैं प्रकट हुई और उससे वरदान माँगनेको कहा। इसपर उसने यह वरदान माँगा कि मेरे ही स्वरूपवालेसे मेरी मृत्यु हो।

अत: विष्णुके धड़में एक घोड़ेका सिर काटकर लगा दो, ये ही हयग्रीवस्वरूपसे उस हयग्रीव नामक दैत्यका वध करेंगे। देवीके ऐसा कहनेपर विश्वकर्माने अपनी तीक्ष्ण तलवारसे एक घोड़ेका सिर काटकर भगवान् विष्णुके धड़पर जोड़ दिया। इस प्रकार भगवान् विष्णुका हयग्रीव-अवतार हुआ और देवीकी कृपासे उन्होंने हयग्रीवदैत्यका वधकर देवताओंको संकटमुक्त किया।

देवीकी कृपासे विष्णुद्वारा मधु-कैटभका वध— प्रलयावस्थामें जब तीनों लोक महाजलराशिमें विलीन हो गये तब देवाधिदेव भगवान् विष्णु शेष-शय्यापर सो गये। उस समय उनके कानोंकी मैलसे मधु-कैटभ नामक दो महाबली दानव उत्पन्न हुए। विशाल समुद्रमें रहते हुए वे दोनों सोचने लगे कि हम कौन हैं ? हमारा जन्म क्यों हुआ ? इस जलराशिका आधार क्या है ? इस प्रकार जब वे सोच रहे थे, उसी समय आकाशवाणीसे उन्हें वाग्बीजमन्त्र (ऐं) सुनायी दिया। उन दैत्योंने उस मन्त्रको हृदयंगम कर लिया और इन्द्रियोंका संयमकर एक हजार वर्षोंतक उसका जप करते रहे। उनकी इस घोर तपस्यासे प्रसन्न होकर आद्याशक्ति भगवतीने आकाशवाणीके माध्यमसे कहा कि मैं प्रसन्न हूँ, तुम दोनों अपना मनोवांछित वर माँगो। तब उन दानवोंने कहा कि हे देवि! हमारी मृत्यु हमारे इच्छानुसार हो। देवीने कहा—तुम दोनों अपनी इच्छासे ही मृत्युको प्राप्त होओगे, इसमें सन्देह नहीं।

वर प्राप्त करनेके बाद उन मदोन्मत्त दानवोंने सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीको कमलके आसनपर बैठे देखा। उन्हें देखकर युद्धकी लालसासे वे दोनों कहने लगे—हे सुव्रत! आप हमलोगोंके साथ युद्ध कीजिये, अन्यथा यह कमल-आसन छोड़ दीजिये; क्योंकि कोई वीर ही इस शुभ आसनके योग्य है। उन दानवोंके इस कथनको सुनकर भयातुर हो ब्रह्माजी कमलनालमें प्रविष्ट होकर भगवान् विष्णुकी स्तुति करने लगे, परंतु योगनिद्राके वशीभूत होनेके कारण भगवान् विष्णु जग नहीं सके। तब ब्रह्माजीने पराम्बा भगवती योगनिद्राकी स्तुति की। उनकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर वे तामसीदेवी भगवान् विष्णुके शरीरसे निकलकर आकाशमें स्थित हो गयीं और भगवान् विष्णु जम्हाई लेते हुए सचेत हो गये।

अपने सामने भयसे काँपते ब्रह्माजीको देखकर भगवान् विष्णुने उनसे भयका कारण पूछा तो ब्रह्माजीने मधु-कैटभके वृत्तान्तका वर्णन किया। इसपर भगवान् विष्णुने ब्रह्माजीको आश्वासन देते हुए दैत्योंको युद्धके लिये ललकारा। भगवान् विष्णुने पाँच हजार वर्षोंतक उन दैत्योंसे युद्ध किया, परंतु उनका वध न कर सके तो उन्होंने आद्याशक्ति पराम्बा भगवतीका स्मरण किया; जिससे उन्हें यह ज्ञात हुआ कि पराम्बा भगवतीने इन्हें इच्छामृत्युका वरदान दिया है। इसपर उन्होंने देवी भुवनेश्वरीकी स्तुति की और उन मदोन्मत्त दैत्योंके वधमें निमित्त बननेको कहा। भगवान् विष्णुकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर भगवती जगदम्बाने मधु-कैटभको मोहित कर दिया। तब वे दोनों विष्णुभगवान्से कहने लगे कि हे विष्णो! तुम हमलोगोंसे कोई वरदान माँग लो। इसपर भगवान् विष्णुने कहा कि यदि तुम दोनों मुझपर प्रसन्न हो तो मेरे हाथों मारे जाओ। भगवतीकी मायासे मोहित उन दोनोंने भगवान् विष्णुकी जंघापर अपने सिर रख दिये और विष्णुने सुदर्शनचक्रसे उनके मस्तक काट दिये। इस प्रकार भगवती जगदम्बाकी कृपासे मधु-कैटभ नामक दैत्योंका वध हुआ।

इसके अनन्तर बुधके जन्मकी कथा, राजा सुद्युम्नकी इला नामक स्त्रीके रूपमें परिणति, इलाका बुधसे विवाह तथा पुरूरवाकी उत्पत्ति तथा राजा पुरूरवा एवं उर्वशीकी कथाका वर्णन भी प्रथम स्कन्धमें प्राप्त होता है।

द्वितीय स्कन्ध

वेदव्यासजीका प्राकट्य— द्वितीय स्कन्धकी कथाका प्रारम्भ व्यासजीके जन्मसे होता है। अद्रिका नामकी एक अप्सराने अपने चंचल स्वभावके कारण प्राणायाम करते हुए एक ब्राह्मणके ध्यानमें विघ्न डाला, जिससे उस क्रोधित ब्राह्मणके शापसे यमुनाके जलमें उसे मछली होना पड़ा।

कालान्तरमें राजा उपरिचरके तेजसे मछलीके पेटसे एक बालक मत्स्य तथा एक बालिका मत्स्यगन्धाका जन्म हुआ। आगे चलकर एक घटनाक्रममें मत्स्यगन्धाके किशोरावस्था प्राप्त होनेपर पराशरमुनि उसपर आसक्त हो गये और उसीसे व्यासमुनिका जन्म हुआ। जो पुराणों और महाभारतके रचयिता तथा वेदोंका विभाग करनेवाले हुए। व्यासजी भगवान् विष्णुके अंशावतार थे। जन्म लेते ही वे बड़े हो गये और तपस्या करनेके लिये चले गये।

पराशरमुनिके वरदानसे व्यासजीको जन्म देनेके बाद भी मत्स्यगन्धा कन्या ही बनी रही और उसके शरीरसे दिव्य सुगन्ध निकलती थी। यही मत्स्यगन्धा सत्यवती नामसे विख्यात हुई और कुरुवंशी महाराज शन्तनुकी दूसरी पत्नी बनी।

राजा परीक्षित्का राज्याभिषेक—आगेकी कथामें राजा शन्तनु, गंगा और भीष्मके पूर्वजन्मकी कथा आती है। गंगाजीद्वारा राजा शन्तनुका पतिरूपमें वरण, गंगाके आठवें पुत्रके रूपमें राजा भीष्मका जन्म, भीष्मद्वारा आजीवन ब्रह्मचर्यव्रत धारण करनेकी प्रतिज्ञा और शन्तनुका सत्यवतीसे विवाह सम्पन्न होनेकी कथा है। तदनन्तर महर्षि दुर्वासाके द्वारा कुन्तीको अमोघ कामदमन्त्र प्राप्त होता है। मन्त्रके प्रभावसे कन्यावस्थामें ही कर्णके जन्म, कुन्तीका राजा पाण्डुसे विवाह, मन्त्र-प्रयोगसे कुन्ती और माद्रीसे पाँचों पाण्डवोंके जन्मकी कथा आती है। पाँचों पाण्डवोंका द्रुपदकन्या द्रौपदीसे विवाह तथा भगवान् श्रीकृष्णकी बहन सुभद्रासे अर्जुनका विवाह होता है, जिससे महान् वीर अभिमन्युका जन्म होता है और महाभारतके युद्धमें उसकी मृत्यु भी होती है। अभिमन्युके पुत्र परीक्षित्का जन्म होता है। महाभारतके युद्धमें धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंकी मृत्यु हो जाती है। अतः धृतराष्ट्र युधिष्ठिरके संरक्षणमें रहते हैं। धृतराष्ट्र युधिष्ठिरसे प्राप्त धनके द्वारा अपने सौ पुत्रोंका और्ध्वदैहिक कर्म तथा पिण्डदान आदि कृत्य करके गान्धारीको साथ लेकर वनके लिये प्रस्थान करते हैं। साथमें कुन्ती तथा महामति विदुर भी उनका अनुसरण करते हैं। कालान्तरमें विदुर, धृतराष्ट्र, गान्धारी और कुन्तीका वनमें प्राणान्त हो जाता है। पाँचों पाण्डव अपने पौत्र परीक्षित्को राजा बनाकर द्रौपदीसहित हिमालयकी ओर प्रस्थान करते हैं और वहीं उनका स्वर्गारोहण हो जाता है।

राजा परीक्षित्ने साठ वर्षोंतक धर्मपूर्वक समस्त पृथ्वीका पालन किया। एक दिन वे आखेटके लिये वनमें गये और कलिके प्रभावसे प्रभावित होकर एक ऋषिके गलेमें उन्होंने मरा हुआ सर्प डाल दिया। जिसके कारण मुनिपुत्रने सात दिनोंमें तक्षकसर्पके द्वारा राजाको डँसनेका शाप दे दिया। राजाके द्वारा अपनी सुरक्षाकी पूरी व्यवस्था की गयी, परंतु वे मृत्युसे बच नहीं सके।

राजा परीक्षित्की मृत्युके बाद उनके पुत्र जनमेजय राजा बने। उन धर्मात्मा राजाके राज्यमें प्रजा अत्यन्त सुखी थी। एक दिन उत्तंक नामक मुनि उनके पास आये। उत्तंकमुनिने जनमेजयको सर्प-सत्र करके सर्पोंका संहारकर अपने पिताका बदला लेनेकी प्रेरणा की, परंतु राजा जनमेजयने कहा कि मुनिवर! मेरे पिताकी मृत्यु तो मुनिपुत्रके शापके कारण हुई थी, फिर इसमें तक्षकसर्पका क्या दोष है? इसपर उत्तंकने उन्हें बताया कि कश्यप नामका एक मन्त्रवेत्ता ब्राह्मण आपके पिताको जीवित करनेके लिये आ रहा था, परंतु तक्षकने उसे धन देकर मार्गमें ही वापस कर दिया, अतः आपके पिताकी मृत्युमें तक्षक दोषी है।

आस्तीकमुनिद्वारा सर्पसत्र रोकना—उत्तंकमुनिका यह वचन सुनकर राजा जनमेजय बहुत दुःखी हुए और उन्होंने सर्पसत्र प्रारम्भ किया, जिसमें हवनकुण्डकी प्रज्वलित अग्निमें सहस्रों सर्प गिरकर मरने लगे। उस समय आस्तीक नामके मुनि वहाँ पधारे और उन्होंने राजा जनमेजयको सर्पसत्र रोकनेकी प्रेरणा की। आस्तीकमुनिके समझानेपर राजाने सर्पसत्र बन्द कर दिया। इस प्रकार आस्तीकमुनिने नागवंशकी रक्षा की।

सर्पसत्र रोकनेके बाद अशान्तचित्त राजा जनमेजयको श्रीवैशम्पायनजीने महाभारतकी कथा सुनायी, परंतु उन्हें शान्ति नहीं मिली। उन्होंने महामुनि वेदव्यासजीसे कहा—हे भगवन्! मेरे मनको शान्ति नहीं मिल रही है, आप कोई ऐसा उपाय करें, जिससे दुर्गतिको प्राप्त मेरे पिता शीघ्र स्वर्ग चले जायँ। इसपर व्यासजीने कहा—हे राजन्! आप देवीयज्ञ करके श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणका श्रवण कीजिये। इस पुराणके श्रवणसे आपके चित्तको परम शान्तिकी प्राप्ति होगी और आपके पितरोंको अक्षय स्वर्ग प्राप्त होगा। इस प्रकार द्वितीय स्कन्धकी कथा पूर्ण होती है।

तृतीय स्कन्ध

त्रिदेवोंको भगवतीकी महामाया और मणिलोकका दर्शन—तृतीय स्कन्धका प्रारम्भ महाराज जनमेजयके ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति और उत्पत्तिकर्ता-सम्बन्धी प्रश्नसे होता है। राजा जनमेजयने यह भी जानना चाहा कि भगवती अम्बा कौन हैं,

उनके यज्ञका क्या विधान है ? सर्वश्रेष्ठ देवता कौन है—इन प्रश्नोंके उत्तरमें व्यासजीने पूर्वकालमें नारदसे हुए एक संवादको सुनाया, जो नारदजीको ब्रह्माजीने इस प्रकार बताया था—

मधु-कैटभसे युद्ध करते हुए जब भगवान् विष्णुको पाँच हजार वर्ष बीत गये और वे दानव न मारे जा सके तो भगवान् विष्णुने भगवती महामायाका स्मरण किया। भगवतीने विष्णुकी दयनीय स्थिति देखकर उन दानवोंको अपने दृष्टिपातसे मोहित कर दिया और तब विष्णुने उनका वध कर दिया। उस समय भगवान् शंकर भी वहाँ आ गये और हम तीनोंने उन आद्याशक्ति महामाया भगवतीकी भक्तिपूर्वक स्तुति की। इसपर प्रसन्न होकर भगवतीने हम सबसे कहा—हे ब्रह्मा-विष्णु-महेश! अब आपलोग सृष्टि, पालन एवं संहारके अपने-अपने कार्य प्रमादरहित होकर कीजिये। उसी समय एक रमणीक विमान वहाँ आ उपस्थित हुआ, जिसपर भगवतीकी आज्ञासे हम तीनों आरूढ़ हो गये। मनकी गतिसे उड़ता हुआ वह विमान स्वर्गलोकसदृश एक लोकमें पहुँचा, जहाँका राजा इन्द्रके जैसा था। उसके बाद वह विमान ब्रह्मलोक पहुँच गया। वहाँ ब्रह्माजी तथा मूर्तरूप वेद-वेदांगों, समुद्रों और नदियों आदिको देखकर हम तीनों आश्चर्यचकित हो गये। इसके बाद वह विमान क्रमशः कैलास और वैकुण्ठधाम गया और वहाँ हमलोगोंने शिव और विष्णुको भी अपने-अपने गणों और परिकरोंके साथ देखा। तदनन्तर वह विमान भगवतीके दिव्य धाम मणिद्वीपमें पहुँचा। वहाँ विमानसे उतरकर हमलोग भगवतीके दिव्य मन्दिरकी ओर गये, पर जैसे ही द्वारपर पहुँचे वैसे ही हम तीनों स्त्रीरूपमें परिणत हो गये। उस स्त्रीवेषमें हम तीनोंने भगवतीके चरणकमलोंके दर्शन किये। हमारे प्रणाम करनेपर भगवतीने अपनी कृपादृष्टि हमपर डाली; उसी समय हमने उनके चरणकमलोंके नखरूपी दर्पणमें समस्त स्थावरजंगमात्मक ब्रह्माण्डके साथ-साथ स्वयंको भी देखा। सूर्य, चन्द्रमा, इन्द्र, वरुण, कुबेर, वायु, अग्नि, पर्वत, समुद्र आदि भी उसमें दिखायी दे रहे थे। यह सब देखकर हम सब आश्चर्यचकित हो गये।

भगवान् विष्णुने उन भगवती भुवनेश्वरीकी स्तुति करते हुए कहा—हे भवानि! आपके द्वारा रचित इस ब्रह्माण्डप्रपंचमें न जाने कितने ब्रह्माण्ड भरे पड़े हैं, हे देवि! मैं आपके चरणोंमें बार-बार नमन करता हूँ। भगवान् शंकरने उन जगदम्बाकी स्तुति करते हुए कहा—हे शिवे! आपकी इस लीलाको हम नहीं जान सकते। हे देवि! मुझपर दयाकर अपने नवार्ण-मन्त्रका दान दीजिये, जिसका निरन्तर जपकर मैं सदाके लिये सुखी हो जाऊँ। भगवतीने प्रसन्न होकर नवार्ण-मन्त्रका उच्चारण किया, जिसे शिवजीने ग्रहणकर भगवतीके चरणोंमें प्रणाम किया। तदनन्तर मैंने (ब्रह्माजीने) पूछा—हे देवि! आप और परब्रह्ममें क्या भेद है? इसपर भगवती जगदम्बिकाने कहा—मैं और परब्रह्म सदा एक ही हैं। हममें कोई भेद नहीं है; क्योंकि जो वे हैं, वही मैं हूँ और जो मैं हूँ, वही वे हैं। बुद्धिभ्रमसे ही हम दोनोंमें भेद दिखायी पड़ता है। अब आपलोग जाइये और अपने-अपने लोकोंकी रचनाकर उसमें निवास कीजिये।

यह कहकर भगवतीने अपनी महासरस्वती नामक शक्तिको मुझे अपनी सहचरी बनानेके लिये प्रदान किया। इसी प्रकार उन्होंने अपनी महालक्ष्मी नामक शक्ति विष्णुको और महाकाली नामक शक्ति भगवान् शंकरको प्रदान की। भगवतीने हमसे कहा—जो विष्णु हैं, वे ही साक्षात् शिव हैं और जो शिव हैं, वे ही विष्णु हैं। उन दोनोंमें भेद करनेवाला नरकगामी होता है। तत्पश्चात् हम तीनों भगवतीसे विदा होकर विमानपर आये और पुनः पुरुषरूपमें हो गये। उस विमानसे हम पुनः वहीं पहुँच गये, जहाँ विष्णुने मधु-कैटभका वध किया था।

त्रिगुणमयी सृष्टिका निरूपण—जनमेजयको यह प्रसंग सुनाकर व्यासजीने उन्हें नारदजीद्वारा बताया गया वह प्रसंग सुनाया, जो नारदजीसे ब्रह्माजीने कहा था। नारदजीने ब्रह्माजीसे कहा—हे पितामह! निर्गुणा शक्ति और निर्गुण परमात्मा कैसे हैं? ब्रह्माजीने कहा—हे नारद! जो शक्ति हैं, वे ही परमात्मा हैं और जो परमात्मा हैं, वे ही परम शक्ति मानी गयी हैं। इन दोनोंमें विद्यमान सूक्ष्म अन्तरको कोई नहीं जान सकता। सगुण मनुष्य निर्गुण परमात्माका दर्शन नहीं कर सकता। स्थूल और सूक्ष्मभेदसे परमात्माके दो रूप होते हैं, उनमें ज्ञानरूप निराकारस्वरूप सबका कारण कहा गया है। परमात्माका स्थूल विराट् स्वरूप—ब्रह्माण्ड पंच महाभूतोंकी पंचीकरण-क्रियासे बना है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश—ये पंचमहाभूत हैं तथा गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द—ये इनकी पंचतन्मात्राएँ हैं। गुण तीन हैं—सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण। सत्त्वगुणका वर्ण श्वेत है, यह सर्वदा धर्मके प्रति प्रीति उत्पन्न करता है। सरलता, सत्य, शौच, श्रद्धा, क्षमा, धैर्य, कृपा, लज्जा, शान्ति और सन्तोष—ये सत्त्वगुणीके लक्षण हैं। रजोगुण रक्तवर्णवाला कहा गया है। रजोगुणीमें ईर्ष्या, द्रोह, मत्सर, स्तम्भन, उत्कण्ठा, निद्रा,

अभिमान, मद एवं गर्व होते हैं। तमोगुणका वर्ण कृष्ण होता है। यह मोह और विषाद उत्पन्न करता है। आलस्य, अज्ञान, निद्रा, दीनता, भय, विवाद, कायरता, कुटिलता, क्रोध, विषमता, नास्तिकता और परदोषदर्शन—ये तमोगुणीके लक्षण हैं। किसी भी प्राणीमें सत्त्वगुण, रजोगुण तथा तमोगुण अकेले नहीं रहते, अपितु मिश्रित धर्मवाले वे तीनों गुण एक-दूसरेके आश्रयीभूत होकर रहते हैं। केवल सत्त्वगुण कहीं भी परिलक्षित नहीं होता है। गुणोंके परस्पर मिश्रीभाव होनेसे सत्त्वगुण भी मिश्रित दिखायी देता है। यदि ये तीनों गुण परस्पर मिश्रित न होते तो उनके स्वभावमें एक-सी ही प्रवृत्ति रहती, किंतु तीनों गुणोंमें मिश्रण होनेके कारण ही विभिन्नताएँ दिखायी पड़ती हैं। उदाहरणके लिये राजकीय सेना रजोगुणयुक्त होती है, परंतु दुष्टोंसे रक्षा करनेके कारण सज्जनोंको वह सत्त्वगुणसम्पन्न और दुर्जनोंको तमोगुणी दिखायी देती है।

देवीके सारस्वत बीजमन्त्रकी महिमा—इस प्रकार यह सम्पूर्ण सृष्टि त्रिगुणमयी है। भगवती परमेश्वरी ही कार्यभेदसे सगुणा और निर्गुणा दोनों हैं। वे ही इस सत् और असद्रूप जगत्की रचना करती हैं। समस्त देवता उनकी शक्तिसे युक्त होकर अपने-अपने कार्य-सम्पादनमें समर्थ होते हैं। ये भगवती नामोच्चारणमात्रसे मनोवांछित फल देनेवाली हैं। 'ऐं' इनका बीजमन्त्र है। सत्यव्रत नामक एक निरक्षर तथा महामूर्ख ब्राह्मणने इस मन्त्रका बिन्दुरहित अशुद्ध उच्चारण करके भी सिद्धि प्राप्त कर ली थी। उस ब्राह्मण सत्यव्रतने किरातके बाणसे घायल एक सूअरको देखकर दयावश 'ऐ-ऐ' कहा। उस बिन्दुरहित सारस्वत बीजमन्त्रके प्रभावसे उसके हृदयमें समस्त विद्याएँ प्रस्फुटित हो गयीं।

व्यासजीने जनमेजयको भगवतीका यह अत्युत्तम माहात्म्य सुनाते हुए कहा कि परम भक्तिपूर्वक सदैव भगवतीकी अर्चना करनी चाहिये।

देवीयज्ञकी महिमा—राजा जनमेजयने कहा—हे स्वामिन्! मैं देवीयज्ञ करूँगा, आप उस यज्ञकी विधि, मन्त्र, होमद्रव्य, ब्राह्मणसंख्या और दक्षिणा आदिके विषयमें सम्यक् रूपसे बताइये।

व्यासजी बोले—हे राजन्! सात्त्विक, राजस और तामसभेदसे यज्ञ तीन प्रकारके होते हैं। जिस यज्ञमें देश, काल, द्रव्य, मन्त्र, ब्राह्मण तथा श्रद्धा सात्त्विक हों; वह सात्त्विक यज्ञ है। पाण्डवोंके यज्ञमें द्रव्य अन्यायोपार्जित था, इसलिये राजसूययज्ञकी पूर्णताके बाद भी पाण्डवों तथा द्रौपदीको नाना प्रकारके कष्ट सहन करने पड़े। अभिमानपूर्वक क्षत्रियों और वैश्योंद्वारा किये जानेवाले पशुबलिसम्बन्धी यज्ञ राजस यज्ञ कहे जाते हैं। क्रोध, ईर्ष्या और क्रूरतापूर्वक राक्षसोंद्वारा किये जानेवाले यज्ञ तामस यज्ञ कहे जाते हैं।

मोक्षकी कामनावाले विरक्त मुनियोंके लिये मानस यज्ञ कहा गया है। इस यज्ञमें मनका शुद्ध और गुणरहित होना आवश्यक है। यह यज्ञ मोक्षप्रदाता है। स्वर्ग-प्राप्तिकी इच्छावालेके लिये अग्निष्टोम यज्ञ बताया गया है। हे राजन्! आप देवीके बीजमन्त्रके जानकार विद्वान् ब्राह्मणोंद्वारा देवीयज्ञ कराइये, इसे पूर्वकालमें भगवान् विष्णुने किया था। इसीसे आपके पिताका उद्धार होगा।

राजा जनमेजयने कहा—हे व्यासजी! आप मुझे भगवान् विष्णुद्वारा किये गये देवीयज्ञके विषयमें बतायें। इसपर व्यासजीने बताया कि मणिद्वीपसे विमानद्वारा क्षीरसागरमें आनेपर त्रिदेवोंने पृथ्वीको उत्पन्न किया, परंतु उस समयतक पृथ्वी चलायमान थी, तब देवीने अपनी आधारशक्तिसे पृथ्वीको अचल किया। तदनन्तर उसपर सुमेरु आदि पर्वतोंकी रचना हुई। वैकुण्ठ, कैलास और स्वर्ग आदि लोकोंका निर्माण हुआ। ब्रह्माजीने मरीचि आदि मानसिक पुत्रोंकी सृष्टि की। मरीचिके पुत्र कश्यप हुए। कश्यपने दक्षप्रजापतिकी तेरह कन्याओंसे विवाह किया और उनसे ही सारी काश्यपी सृष्टि फैली, जिससे यह संसार भर गया।

एक समय भगवान् विष्णुको मणिद्वीपका स्मरण हो आया, तो उन्होंने अम्बायज्ञ करनेका निर्णय लिया। उन्होंने शिल्पियोंसे विशाल मण्डप बनवाया। ब्राह्मणगण बीजसहित देवीमन्त्रोंका जप करने लगे, प्रज्वलित अग्निमें आहुतियाँ दी जाने लगीं। उसी समय आकाशवाणी हुई—हे विष्णो! आप देवताओंमें श्रेष्ठतम होंगे, जब-जब पृथ्वीतलपर धर्मका ह्रास होगा, तब आप अपने अंशसे अवतार लेकर धर्मकी रक्षा करेंगे।

व्यासजीने देवीयज्ञके विषयमें बताकर राजा जनमेजयसे देवीमाहात्म्य-सम्बन्धी आख्यान इस प्रकार सुनाया—

सुबाहु तथा सुदर्शनपर जगदम्बाकी कृपा—अयोध्यामें भगवान् रामसे १५वीं पीढ़ी बाद ध्रुवसन्धि नामके राजा हुए। उनके दो स्त्रियाँ थीं। पट्टमहिषी थी कलिंगराज वीरसेनकी पुत्री मनोरमा और छोटी रानी थी उज्जयिनीनरेश युधाजित्की पुत्री लीलावती। मनोरमाके पुत्र हुए सुदर्शन और लीलावतीके शत्रुजित्। महाराजकी दोनोंपर ही समान दृष्टि थी। दोनों राजपुत्रोंका समान रूपसे लालन-पालन होने लगा।

इधर महाराजको आखेटका व्यसन कुछ अधिक था।

एक दिन वे शिकारमें एक सिंहके साथ भिड़ गये, जिसमें सिंहके साथ स्वयं भी स्वर्गगामी हो गये। मन्त्रियोंने उनकी पारलौकिक क्रिया करके सुदर्शनको राजा बनाना चाहा। इधर शत्रुजित्के नाना युधाजित्को इस बातकी खबर लगी तो वे एक बड़ी सेना लेकर इसका विरोध करनेके लिये अयोध्यामें आ डटे। इधर कलिंगनरेश वीरसेन भी सुदर्शनके पक्षमें आ गये। दोनोंमें युद्ध छिड़ गया, कलिंगाधिपति वीरसेन मारे गये। अब रानी मनोरमा डर गयी। वह सुदर्शनको लेकर एक धाय तथा महामन्त्री विदल्लके साथ भागकर महर्षि भारद्वाजके आश्रममें प्रयाग पहुँच गयी। युधाजित्ने अयोध्याके सिंहासनपर शत्रुजित्को अभिषिक्त किया और सुदर्शनको मारनेके लिये वे भारद्वाजके आश्रमपर पहुँचे; पर मुनिके भयसे वहाँसे उन्हें भागना पड़ा।

एक दिन भारद्वाजके शिष्यगण महामन्त्रीके सम्बन्धमें कुछ बातें कर रहे थे। कुछने कहा कि विदल्ल क्लीब (नपुंसक) है। दूसरोंने भी कहा—'यह सर्वथा क्लीब है।' सुदर्शन अभी बालक ही था। उसने बार-बार जो उनके मुँहसे क्लीब-क्लीब सुना तो स्वयं भी 'क्ली-क्ली' करने लगा। पूर्वपुण्यके कारण वह कालीबीजके रूपमें अभ्यासमें परिणत हो गया। अब वह सोते, जागते, खाते, पीते, 'क्ली-क्ली' रटने लगा। इधर महर्षिने उसके क्षत्रियोचित संस्कारादि भी कर दिये और थोड़े ही दिनोंमें वह भगवती तथा ऋषिकी कृपासे शस्त्र-शास्त्रादि सभी विद्याओंमें अत्यन्त निपुण हो गया। एक दिन वनमें खेलनेके समय उसे देवीकी दयासे अक्षय तूणीर तथा दिव्य धनुष भी पड़ा मिल गया। अब सुदर्शन भगवतीकी कृपासे पूर्ण शक्तिसम्पन्न हो गया।

इधर काशीमें उस समय राजा सुबाहु राज्य करते थे। उनकी कन्या शशिकला बड़ी विदुषी तथा देवीभक्ता थी। भगवतीने उसे स्वप्नमें आज्ञा दी कि 'तू सुदर्शनका अपने पतिरूपमें वरण कर ले। वह तेरी समस्त कामनाओंको पूर्ण करेगा।' शशिकलाने मनमें उसी समय सुदर्शनको पतिके रूपमें स्वीकार कर लिया। प्रातःकाल उसने अपना निश्चय माता-पिताको सुनाया। पिताने लड़कीको जोरोंसे डाँटा और एक असहाय वनवासीके साथ सम्बन्ध जोड़नेमें अपना अपमान समझा। उन्होंने अपनी कन्याके स्वयंवरकी तैयारी आरम्भ की। उन्होंने उस स्वयंवरमें सुदर्शनको आमन्त्रित भी नहीं किया; परंतु शशिकला भी अपने मार्गपर दृढ़ थी। उसने सुदर्शनको एक ब्राह्मणद्वारा देवीका सन्देश भेज दिया। सभी राजाओंके साथ वह भी काशी आ गया।

इधर शत्रुजित्को साथ लेकर उसके नाना अवन्तिनरेश युधाजित् भी आ धमके थे। शशिकलाद्वारा सुदर्शनके मन-ही-मन वरण किये जानेकी बात सर्वत्र फैल गयी थी। इसे भला, युधाजित् कैसे सहन कर सकते थे। उन्होंने सुबाहुको बुलाकर धमकाया। सुबाहुने इसमें अपनेको दोषरहित बतलाया। तथापि युधाजित्ने कहा—'मैं सुबाहुसहित सुदर्शनको मारकर कन्याका बलात् अपहरण करूँगा।' राजाओंको बालक सुदर्शनपर कुछ दया आ गयी। उन्होंने सुदर्शनको बुलाकर सारी स्थिति समझायी और भाग जानेकी सलाह दी।

सुदर्शनने कहा—'यद्यपि न मेरा कोई सहायक है और न मेरे पास कोई सेना ही है, तथापि मैं भगवतीके स्वप्नगत आदेशानुसार ही यहाँ स्वयंवर देखने आया हूँ। मुझे पूर्ण विश्वास है, वे मेरी रक्षा करेंगी। मेरी न तो किसीसे शत्रुता है और न मैं किसीका अकल्याण ही चाहता हूँ।'

प्रातःकाल स्वयंवर-प्रांगणमें राजालोग सज-धजकर आ बैठे तो सुबाहुने शशिकलासे स्वयंवरमें जानेके लिये कहा, पर उसने राजाओंके सामने होना सर्वथा अस्वीकार कर दिया। सुबाहुने राजाओंके अपमान तथा उनके द्वारा उपस्थित होनेवाले भयकी बात कही। शशिकला बोली—'यदि तुम सर्वथा कायर ही हो तो मुझे सुदर्शनके हवाले करके नगरसे बाहर छोड़ आओ।' कोई दूसरा रास्ता भी नहीं था, इसलिये सुबाहुने राजाओंसे तो कह दिया कि 'आपलोग कल स्वयंवरमें आइये, आज शशिकला नहीं आयेगी।' इधर रातमें ही उन्होंने संक्षिप्त विधिसे गुप्तरीत्या सुदर्शनसे शशिकलाका विवाह कर दिया और सबेरा होते ही उन्हें पहुँचाने लगे।

युधाजित्को भी बात किसी प्रकार मालूम हो गयी। वह रास्तेमें अपनी सेना लेकर सुदर्शनको मार डालनेके विचारसे स्थित था। सुदर्शन भी भगवतीका स्मरण करता हुआ वहाँ पहुँचा। दोनोंमें युद्ध छिड़नेवाला ही था कि भगवती साक्षात् प्रकट हो गयीं। युधाजित्की सेना भाग चली। युधाजित् अपने नाती शत्रुजित्के साथ खेत रहा।

राजा सुबाहु और सुदर्शनने भगवतीकी स्तुति की। भगवतीने प्रसन्न होकर राजा सुबाहुसे वर माँगनेको कहा। राजाने कहा—हे जगदम्बिके! आप सदैव इस काशीपुरीमें विराजमान रहिये और नगरकी रक्षा कीजिये। भगवती दुर्गाने कहा—हे राजन्! जबतक यह पृथ्वी रहेगी तबतक सभी लोगोंकी रक्षाके लिये मैं निरन्तर इस मुक्तिपुरी काशीमें निवास

करूँगी।

इस प्रकार कहकर भगवती अन्तर्धान हो गयीं। तदनन्तर सुदर्शनने अयोध्या तथा राजा सुबाहुने काशीमें भगवती दुर्गाकी स्थापना की।* काशीके सभी लोग भगवान् विश्वनाथके समान भगवती दुर्गाकी भी पूजा-उपासना करने लगे।

नवरात्रव्रत तथा कुमारीपूजन—इसके बाद महाराज जनमेजयने नवरात्रव्रतका विधान पूछा। व्यासजीने बताया कि आत्मकल्याणके इच्छुक मनुष्योंके लिये यह व्रत अवश्यकरणीय है। इस व्रतमें कुमारी-पूजनका बहुत महत्त्व है। दो वर्षसे दस वर्षतकको कन्याओंका इस व्रतमें पूजन करना चाहिये। कन्याएँ रोगरहित और सौन्दर्यमयी होनी चाहिये। जो कन्या किसी अंगसे हीन हो, कोढ़ या घावयुक्त हो, अन्धी, कानी, कुरूप, बहुत रोमवाली या रजस्वला हो—उस कन्याका पूजन नहीं करना चाहिये। इस व्रतका माहात्म्य बताते हुए व्यासजीने कहा कि कोसलदेशमें सुशील नामक एक अत्यन्त निर्धन वैश्य था। घरमें अन्न न होनेके कारण उसने अपने पुत्रको घरसे निकाल दिया था। वह अपनी पुत्रीका विवाह करनेमें भी असमर्थ था। किसी ब्राह्मणश्रेष्ठने उसकी दशापर दयार्द्र होकर उसे नवरात्रव्रत करनेका उपदेश दिया। उस वैश्यने नवरात्रका व्रत किया, जिससे प्रसन्न होकर महाष्टमीकी अर्धरात्रिको भगवतीने उसे दर्शन देकर कृतार्थ कर दिया।

स्वयं भगवान् श्रीरामने नारदजीके परामर्शसे रावणपर विजय प्राप्त करनेके लिये इस नवरात्रव्रतका अनुष्ठान किया था। अष्टमीकी मध्यरात्रिको भगवतीने साक्षात् दर्शन दिया और कहा कि हे नरोत्तम! देवताओंके अंशसे उत्पन्न ये वानर मेरी शक्तिसे सम्पन्न होकर आपके सहायक होंगे। आपके अनुज लक्ष्मण मेघनादका वध करेंगे और आप स्वयं पापी रावणका संहार करेंगे। इसके अनन्तर ग्यारह हजार वर्षोंतक आप भूतलका राज्यकर अपने लोकको प्रस्थान करेंगे। भगवतीका वरदान प्राप्तकर भगवान् रामने विजय प्राप्त की। इस प्रकार देवीके उत्तम माहात्म्यका वर्णन करनेवाला तीसरा स्कन्ध पूर्ण हुआ।

चतुर्थ स्कन्ध

कर्म-गतिका निरूपण—चतुर्थ स्कन्धका प्रारम्भ राजा जनमेजयके प्रश्नोंसे होता है। जनमेजयने व्यासजीके समक्ष अपनी बहुत सारी शंकाएँ प्रस्तुत कीं। श्रीकृष्ण स्वयं परब्रह्म परमात्मा थे तो फिर साक्षात् विष्णुने वसुदेवके पुत्ररूपमें कारागारमें जन्म क्यों ग्रहण किया, वसुदेव-देवकी भी देवताओंके पूज्य थे, पाण्डव भी देवताओंके अंशसे उत्पन्न थे और उनमें भी अर्जुन तो नरके अवतार थे, द्रौपदी लक्ष्मीके अंशसे उत्पन्न थीं, फिर इन सबको यहाँ पृथ्वीपर अनेक प्रकारके कष्ट क्यों सहन करने पड़े? जिन मुनिप्रवर नर-नारायणने मुक्तिहेतु कठोर तपस्या की थी, उन महातपस्वी तथा योगसिद्धसम्पन्न दोनों मुनियोंने कृष्ण तथा अर्जुनके रूपमें मानवशरीर क्यों प्राप्त किया? इसके अतिरिक्त और भी कई प्रकारकी शंकाएँ जनमेजयजीने प्रस्तुत कीं।

इन प्रश्नोंके उत्तरमें व्यासजीने कहा—हे राजन्! इस विषयमें क्या कहा जाय, कर्मोंकी बड़ी गहन गति होती है। कर्मकी गति जाननेमें देवता भी समर्थ नहीं हैं, मानवोंकी क्या बात है! आदि तथा अन्तसे रहित होते हुए भी समस्त जीव कर्मरूपी बीजसे नानाविध योनियोंमें बार-बार जन्म लेते हैं और मरते हैं। शुभ, अशुभ तथा मिश्र कर्मोंसे यह जगत् सदा व्याप्त रहता है। संचित, प्रारब्ध तथा वर्तमान—ये तीन प्रकारके कर्म बताये गये हैं। सुख-दुःख, वृद्धावस्था, मृत्यु, हर्ष, शोक, काम-क्रोध तथा लोभ आदि ये सभी देहगत गुण हैं, जो दैवके अधीन होकर सभी जीवोंको प्राप्त होते हैं। समस्त जीवोंकी उत्पत्ति कर्मके बिना हो ही नहीं सकती। अतएव कर्मबीजकी अनिवार्यतापर बुद्धिमान् पुरुषोंको सदा चिन्तन करना चाहिये। सभी देहधारी जीव चाहे मनुष्य, पशु या देवता हों—अपने कियेका शुभाशुभ फल पाते हैं।

देवकी और रोहिणी नामक वसुदेवजीकी पत्नियाँ पूर्वजन्ममें अदिति और सुरसा थीं, वरुणके शापसे उन्हें मानवयोनिमें जन्म लेना पड़ा। इसी प्रकार वसुदेवजी पूर्वजन्ममें महर्षि कश्यप थे, वरुणदेवकी गायोंका हरण कर लेनेके कारण उन्हें मानवयोनिमें गोपालकके रूपमें जन्म लेना पड़ा। अदितिने इन्द्रके द्वारा दितिके गर्भस्थ शिशुको नष्ट करा दिया था, इसलिये दितिने क्रुद्ध होकर उसे मृतवत्सा होनेका शाप दे दिया था। यही अदिति देवकी हुई और उसके छहों पुत्र जन्म लेते ही मार दिये गये।

व्यासजीने कहा—हे राजन्! ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त स्थावर-जंगम सभी प्राणी मायाके वशीभूत रहते हैं और वह माया उनके साथ क्रीडा करती है। यह माया सभीको मोहमें डाल देती है और जगत्में निरन्तर विकार उत्पन्न करती है। चूँकि यह संसार अहंकारसे उत्पन्न हुआ है, अतः वह राग-

* सुबाहुको प्राप्त वरदानके फलस्वरूप ही दुर्गाकुण्डमें स्थित हुई पराम्बा दुर्गा वाराणसीपुरीकी अद्यावधि रक्षा कर रही हैं।

द्वेषहीन हो ही कैसे सकता है? यहाँतक कि देवता भी तपस्वियोंसे द्वेषवश उनके तपको भंग करनेका प्रयास करते हैं।

नर-नारायणकी तपस्या—देवराज इन्द्रने धर्मपुत्र नर-नारायणको तप करते देखकर उन्हें विविध प्रलोभन दिये तथा मोहिनी मायासे भयभीत करना चाहा, परंतु वे अविचल रहे। अन्तमें उन्होंने कामदेव, रति, वसन्त और अप्सराओंका समूह उनके तपभंगहेतु भेजा। परंतु भगवतीके मायाबीजमन्त्रका जप कर रहे उन दोनोंपर इन सबका कोई प्रभाव नहीं पड़ा, बल्कि अप्सराओंके गर्वको भंग करनेके लिये नारायणने अनुपम सुन्दरी उर्वशीकी सृष्टि कर दी। इतना ही नहीं उन्होंने स्वर्गसे आयी सोलह हजार पचास अप्सराओंकी सेवाके लिये उतनी ही अप्सराएँ और उत्पन्न कर दीं। स्वर्गसे आयी अप्सराओंने मुनि नारायणका रूप और प्रभाव देखकर मोहित हो उनसे प्रार्थना की कि हे नाथ! अब आप हम सबके पति बन जायँ। इसपर नारायणने कहा—इस जन्ममें तो यह सम्भव नहीं है, परंतु कृष्णावतारमें तुम्हारी मनोकामना पूरी होगी।

अहंकार, राग-द्वेष देवताओंको ही नहीं ऋषि-मुनियोंको भी बाधित करता है, इसी अहंकारके कारण तपस्वी नर-नारायण और परम वैष्णव भक्त प्रह्लादमें एक हजार दिव्य वर्षोंतक भयंकर युद्ध हुआ। अन्तमें भगवान् विष्णुने आकर प्रह्लादको नर-नारायणका परिचय दिया।

वस्तुतः इस संसारका मूल कारण ही अहंकार है, उसीके कारण युद्ध होते हैं। राजस और तामस अहंकारके कारण कलह होते हैं। इस संसारचक्रका प्रवर्तन भी अहंकारके ही कारण होता है। यहाँतक कि साक्षात् नारायण श्रीहरिको भी नाना प्रकारकी योनियोंमें जन्म लेना पड़ता है। महर्षि भृगुके शापसे उन्हें मनुष्य-योनिमें जन्म लेना पड़ा तथा पत्नी-वियोगका दुःख सहन करना पड़ा।

कृष्णावतारकी कथा—व्यासजीने राजा जनमेजयसे भगवान् श्रीहरिके कृष्णावतारकी कथा सुनाते हुए कहा—हे राजन् द्वापरयुगमें पृथ्वीपर जरासन्ध, शिशुपाल, काशिराज, कंस, रुक्मी और नरकासुर-जैसे पापाचारी शासक हो गये थे। उनके पापभारसे व्यथित होकर पृथ्वी ब्रह्माजी और इन्द्रसहित भगवान् विष्णुके पास गयी। भगवान् विष्णुने ब्रह्माजीसे कहा—हे ब्रह्मन्! हम सब भगवतीके अधीन हैं, अतः हमें उन्हीं पराम्बा भगवती योगमायाकी शरणमें जाना चाहिये। उनके ऐसा कहनेपर देवताओंने भगवतीका श्रद्धा-भक्तिपूर्वक स्मरण किया। उनके स्मरण करते ही भगवतीने उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन देकर अपनी शक्तिसे श्रीकृष्ण और अर्जुनको निमित्त बनाकर पृथ्वीका भार दूर करनेका आश्वासन दिया।

इसके बाद व्यासजीने श्रीकृष्णजन्मकी कथा सुनायी। स्वयं साक्षात् परमात्माने पृथ्वीका भार उतारनेके लिये कंसके कारागारमें अवतार लिया और विभिन्न प्रकारकी लीलाएँ कीं। परब्रह्म परमात्मा होते हुए भी उन्हें पृथ्वीतलपर अनेक कष्ट उठाने पड़े। रुक्मिणीके पुत्र प्रद्युम्नका शम्बरासुरने अपनी मायासे प्रसूतिगृहसे ही हरण कर लिया था। तब श्रीकृष्णने भगवती महामायाका स्तवन किया। उनकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर जगदम्बाने उन्हें दर्शन दिया और कहा कि सोलह वर्षबाद तुम्हारा पुत्र शम्बरासुरको मारकर तुम्हारे पास स्वयं ही वापस आ जायगा। ऐसा कहकर भगवती अन्तर्धान हो गयीं।

रुक्मिणीके पुत्र प्रद्युम्नके बाद जाम्बवतीने भी वैसे ही पुत्रकी प्राप्तिके लिये भगवान् श्रीकृष्णसे कहा—इसपर श्रीकृष्णने भगवान् शंकरकी तपस्या की, जिससे प्रसन्न होकर भगवान् शंकरने उन्हें प्रत्येक रानीसे दस पुत्र होनेका वरदान दिया।

तत्पश्चात् भगवती पार्वतीने कहा—हे कृष्ण! इस संसारमें आप सर्वश्रेष्ठ गृहस्थ होंगे। सौ वर्ष व्यतीत होनेपर एक विप्र तथा गान्धारीके शापके कारण आपके कुलका नाश हो जायगा और आप अपने भाई बलरामके साथ यह शरीर छोड़कर दिव्य लोकको प्रयाण करेंगे। आपको भविष्यके विषयमें किसी प्रकारकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये; क्योंकि अवश्यम्भावी घटनाओंका कोई भी प्रतीकार सम्भव नहीं है। ऐसा कहकर भगवान् शिव समस्त देवताओं तथा पार्वतीसहित अन्तर्धान हो गये।

देवीमाहात्म्यका निरूपण—व्यासजीने कहा—हे राजन्! यद्यपि ब्रह्मा आदि देवता लोकके अधीश्वर हैं, पर वे भी उसी प्रकार उस मायाके अधीन रहते हैं, जैसे कठपुतली बाजीगरके अधीन रहती है। उनके पूर्वजन्मके संचित कर्म जिस प्रकारके होते हैं। उन्हींके अनुरूप परब्रह्मस्वरूपिणी माया उन्हें सदा प्रेरित किया करती हैं। उन भगवतीके हृदयमें किसी प्रकारकी विषमता अथवा निर्ममताका लेशमात्र भी नहीं रहता। वे अखिल भुवनकी ईश्वरी जीवोंको भवबन्धनसे छुटकारा दिलानेके लिये निरन्तर प्रयत्नशील रहती हैं। निर्मल अन्तःकरणवाले ऋषिगण उन्हीं आत्मस्वरूपिणी भगवतीका अपने हृदयमें आत्मसाक्षात्कार करके भवबन्धनसे मुक्त हुए हैं। इस प्रकार देवीके माहात्म्यनिरूपणमें चतुर्थ स्कन्धकी कथा पूर्ण होती है।

पंचम स्कन्ध

पंचम स्कन्धकी कथाके प्रारम्भमें जनमेजयने व्यासजीसे पूछा कि हे मुनिश्रेष्ठ! स्वयं भगवान् होते हुए भी श्रीकृष्णने शंकरजीकी तपस्या क्यों की? क्या उनमें कोई न्यूनता थी?

व्यासजीने कहा—हे राजन्! श्रीकृष्णने मानवदेह धारण करनेके कारण मानवोचित कार्य किये। जहाँतक श्रेष्ठताकी बात है तो ॐकारका 'अ' ब्रह्माका रूप है, 'उ' विष्णुका रूप है, 'म्' शिवका रूप है और अर्धमात्रा (चन्द्रबिन्दु) भगवती महेश्वरीका रूप है। ये उत्तरोत्तर क्रमसे एक दूसरेसे उत्तम हैं। वस्तुतः मकड़ीके तन्तु-जालमें फँसे कीटकी भाँति ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश आदि ये सभी देव उन भगवतीकी लीलासे मायारूपी बन्धनमें पड़ जाते हैं।

देवीमाहात्म्यमें महिषासुर आदि दैत्योंके वधकी कथा—राजा जनमेजयने भगवतीके ऐसे प्रभावको सुनकर व्यासजीसे उनकी महिमाका वर्णन करनेको कहा। इसपर व्यासजीने उन्हें महिषासुरके जन्म, तपस्या और वरदान-प्राप्तिकी कथा सुनायी। उस महिषासुरने ब्रह्मा, विष्णु और शिवसहित इन्द्रादि देवताओंको पराजित करके स्वर्गपर आधिपत्य कर लिया था। देवताओंकी दशा अत्यन्त दयनीय हो गयी थी, अतः इन्द्र ब्रह्माजी और भगवान् शंकरको साथ लेकर भगवान् विष्णुके पास गये। वहाँ उन ब्रह्मा आदि समस्त देवताओंके शरीरसे महान् तेजःपुंज निकला और उस तेजोराशिसे भगवती जगदम्बाका प्राकट्य हुआ। समस्त देवताओंने उन्हें आयुध और आभूषण समर्पित करके उनकी स्तुति की। देवीने देवताओंको आश्वासन देते हुए प्रचण्ड अट्टहास किया। उस अट्टहासको सुनकर महिषासुर उद्विग्न हो गया। उसने अपने अमात्यको अट्टहास करनेवालेकी खोजमें भेजा। देवीने महिषासुरके अमात्यको अपने प्राकट्यका उद्देश्य बताते हुए कहा कि या तो समस्त दैत्य पाताल चले जायँ अथवा यमलोक जानेके लिये तैयार हो जायँ। देवीका यह वचन सुनकर महिषासुरने क्रुद्ध होकर युद्ध करनेकी घोषणा की। भयंकर युद्ध हुआ, जिसमें क्रमशः महिषासुरके बाष्कल, दुर्मुख, चिक्षुर, ताम्र, बिडाल और असिलोमा आदि सभी सेनापति मारे गये। अन्तमें महिषासुर रणभूमिमें आया और अपने सेनानायकों दुर्धर, त्रिनेत्र और अन्धकके साथ मारा गया। उसके मर जानेपर सभी देवता, मुनिगण, मनुष्य और साधुजन प्रसन्न हो गये। देवताओंने भगवतीकी स्तुति की। देवीने कहा कि जब तुम सबको कोई घोर संकट पड़े तब मेरा स्मरण करना, मैं तुम सबकी रक्षा करूँगी। यह कहकर देवी अपने धाम मणिद्वीप चली गयीं और अयोध्याधिपति महाराज शत्रुघ्न भूमण्डलाधिपति हो गये। उनके शासनकालमें पृथ्वी सभी प्रकारके सुखोंसे परिपूर्ण थी।

भगवतीके इस उत्तम माहात्म्यको सुनानेके बाद व्यासजीने शुम्भ-निशुम्भके वधसम्बन्धी देवीके चरित्रको सुनाया। शुम्भ और निशुम्भने तपस्या करके ब्रह्माजीसे यह वरदान प्राप्त कर लिया था कि पुरुष-जातिका कोई भी देव, दानव या मानव उन्हें मार न सके। वरदानके प्रभावसे मदमत्त उन दोनोंने स्वर्गपर आक्रमण करके वहाँ अपना आधिपत्य जमा लिया। तब अत्यन्त कष्टमें पड़े देवताओंने भगवतीकी स्तुति की, जिससे प्रसन्न होकर वे प्रकट हुईं। देवताओंने उनसे शुम्भ-निशुम्भ तथा अन्य दानवोंके अत्याचारका वर्णन किया और उनसे त्राण दिलानेकी प्रार्थना की। देवताओंकी प्रार्थनापर भगवतीने अपना एक अन्य रूप प्रकट किया, जो 'कौशिकी' नामसे जाना गया। उनका दूसरा रूप 'कालिका' नामसे विख्यात हुआ। भगवतीके सुन्दर कौशिकी रूपको देखकर एक दिन शुम्भ-निशुम्भके एक सेवकने यह बात शुम्भको बतायी। शुम्भने अपना सुग्रीव नामक एक दूत भगवती कौशिकीके पास भेजा। कौशिकीने उसे अपना उद्देश्य बताते हुए कहा कि मैं देवताओंको स्वर्गका आधिपत्य और यज्ञ-भाग दिलानेके लिये आयी हूँ। तुमलोग पाताल चले जाओ, अन्यथा मुझसे युद्ध करो। जो मुझे युद्धमें पराजित करेगा, वही मेरा पाणिग्रहण कर सकेगा। शुम्भने भगवतीकी युद्धकी चुनौती सुनकर अपने सेनापतियों क्रमशः धूम्रलोचन, चण्ड-मुण्ड और रक्तबीजको विशाल वाहिनियोंके साथ भेजा; परंतु वे सभी भगवती कालिकाद्वारा मारे गये। शुम्भका भाई निशुम्भ भी भगवतीके हाथों मृत्युको प्राप्त हुआ। अन्तमें शुम्भ युद्ध करनेके लिये आया और भगवती कालिकाके हाथों मारा गया।

भगवतीके इस उत्तम चरितका आख्यान सुनकर राजा जनमेजयने व्यासजीसे पूछा कि हे मुने! इन उत्तम चरितोंद्वारा भगवतीकी आराधना सबसे पहले किसने की? इसपर व्यासजीने बताया कि स्वारोचिष नामक मन्वन्तरमें सुरथ नामके एक राजा हुए थे। शत्रुओंसे पराजित होकर वे महामुनि सुमेधाके आश्रममें रहने लगे, वहीं अपने परिवारसे परित्यक्त होकर विषादग्रस्त समाधि नामक एक वैश्य भी आकर रहने लगा। दोनों अत्यन्त दुःखित थे, उन्होंने सुमेधामुनिसे अपने दुःखकी निवृत्तिका उपाय बतानेकी प्रार्थना की। इसपर उन्होंने महामायाकी महिमाको एक दृष्टान्तद्वारा बताया कि ब्रह्मा, विष्णु आदि

देवगण भी मायासे प्रभावित हुए बिना नहीं रहते—

शिवपूजामें केतकी पुष्पका निषेध—एक बार ब्रह्मा-विष्णुमें परस्पर विवाद हुआ कि दोनोंमें श्रेष्ठ कौन है? उसी समय एक अखण्ड ज्योति लिंगके रूपमें प्रकट हुई तथा आकाशवाणी हुई कि आप दोनों इस लिंगके ओर-छोरका पता लगायें। जो पहले पता लगायेगा, वही श्रेष्ठ होगा। विष्णु पातालकी ओर गये और ब्रह्मा ऊपरकी ओर। विष्णु थककर वापस आ गये। ब्रह्माजी शिवके मस्तकसे गिरे हुए केतकी पुष्पको लेकर ऊपरसे लौट आये और विष्णुसे कहा कि यह केतकी पुष्प मैंने लिंगके मस्तकसे प्राप्त किया है। केतकी पुष्पने भी ब्रह्माके पक्षमें विष्णुको असत्य साक्ष्य दिया। इसपर भगवान् शिव प्रकट हो गये और उन्होंने असत्यभाषिणी केतकीपर क्रुद्ध होकर उसे सदाके लिये त्याग दिया। तब ब्रह्माजीने भी लज्जित होकर भगवान् विष्णुको नमस्कार किया। उसी दिनसे भगवान् शंकरकी पूजामें केतकी पुष्पके चढ़ानेका निषेध हो गया।

ऋषि बोले—हे राजन्! यह माया इतनी प्रबल है कि यह ज्ञानियोंको भी मोहमें डाल देती है। स्वयं देवाधिदेव लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु भी इस महामायासे अछूते नहीं हैं। जब देवता या मनुष्य इनकी स्तुति करते हैं, तब प्राणियोंके दुःखका नाश करनेके लिये वे भगवती जगदम्बा प्रकट होती हैं। वे भगवती दैवके अथवा कालके अधीन नहीं हैं। वे स्वयं जगत्का सृजन, पालन और संहार करती हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश तो निमित्तमात्र हैं। उन्होंने सरस्वती, लक्ष्मी तथा पार्वतीके रूपमें उन्हें अपनी शक्तियाँ प्रदान की हैं।

इस प्रकार देवीका माहात्म्य-वर्णन करनेके बाद ऋषिने उनके पूजन आदिकी विधि बताकर भगवतीकी आराधना करनेकी प्रेरणा दी। राजा सुरथ और वैश्य समाधि दोनोंने मुनिकी प्रेरणासे भगवतीका आराधन किया, जिससे प्रसन्न होकर भगवतीने प्रकट होकर उन्हें इच्छित वरदान दिया।

राजा सुरथ एवं समाधि वैश्यको वरदान—राजा सुरथने अपना राज्य प्राप्त करनेका वरदान माँगा, जिसके फलस्वरूप वे दस हजार वर्षोंतक भूमण्डलका शासन करके सावर्णिमनु हुए। समाधि वैश्यने मोक्ष देनेवाले दिव्य ज्ञानकी प्राप्तिका वरदान माँगा, जिसके फलस्वरूप वे ज्ञान प्राप्तकर जीवन्मुक्त हो गये। इस प्रकार पंचम स्कन्धकी कथा पूर्ण हुई।

षष्ठ स्कन्ध

वृत्रासुरके वधकी कथा—षष्ठ स्कन्धके प्रारम्भमें राजा जनमेजयने व्यासजीसे यह प्रश्न किया कि इन्द्रने भगवान् विष्णुकी सहायता लेकर वृत्रासुरको छलपूर्वक क्यों मारा? व्यासजीने विस्तारपूर्वक इस कथाका वर्णन किया। देवताओंमें श्रेष्ठ त्वष्टा नामके एक प्रजापति थे, जो महान् तपस्वी और देवताओंका कार्य करनेमें अतिकुशल थे। उन्होंने इन्द्रसे द्वेषके कारण तीन मस्तकोंसे सम्पन्न एक पुत्र उत्पन्न किया, जिसे 'त्रिशिरा' कहते हैं। वह एक मुखसे वेदाध्ययन करता था, दूसरे मुखसे मधुपान करता था और तीसरे मुखसे सब दिशाओंका निरीक्षण करता था। वह त्रिशिरा भोगका त्याग करके संयमी और धर्मपरायण तपस्वी होकर अत्यन्त कठोर तप करने लगा। उसके तपको देखकर इन्द्र भयभीत हो गये। उन्होंने तपभंग करनेके लिये अप्सराओंको भेजा, परंतु उसमें सफलता न मिलनेपर उन्होंने स्वयं जाकर अपने तीव्रगामी आयुध वज्रसे उसका वध कर दिया।

अपने पुत्रके वधका समाचार सुनकर त्वष्टा अत्यन्त क्रुद्ध हो गये और उन्होंने अथर्ववेदोक्त मन्त्रोंसे अग्निमें हवनकर एक तेजोमय प्रकाशमान पुरुषको प्रकट किया। त्वष्टाने अपने इस पुत्रका नाम 'वृत्रासुर' रखा और इसे इन्द्रके वधके लिये प्रेरित किया। वृत्रासुरने इन्द्रपर आक्रमणकर उन्हें पराजितकर उनके गजराज ऐरावतको छीन लिया। यद्यपि त्वष्टा इससे प्रसन्न हो गये, परंतु उन्होंने इन्द्रको मारनेके लिये अपनी शक्तिका संचय करनेकी दृष्टिसे ब्रह्माजीके प्रसन्नार्थ वृत्रको तपस्या करनेकी प्रेरणा की। वृत्रासुरने अपनी तपस्यासे ब्रह्माजीको प्रसन्नकर समस्त अस्त्र-शस्त्रोंसे अवध्यताका वरदान प्राप्तकर स्वर्गलोकपर आक्रमणकर वहाँ अपना आधिपत्य कर लिया। इन्द्रसहित सभी देवगण चिन्ताग्रस्त हो गये और वे ब्रह्मा तथा शिवजीके साथ भगवान् विष्णुके पास गये और उनसे अपनी रक्षाकी प्रार्थना की। भगवान् विष्णुने वृत्रासुरकी बलवत्ताको समझते हुए देवताओंको किसी प्रकार उससे मित्रता—सन्धि करने और विश्वासमें लेकर बादमें उसे मारनेकी योजना बतायी। इसके साथ ही महामाया भगवतीके प्रसन्नार्थ आराधना करनेके लिये भी कहा; क्योंकि भगवतीकी मायासे मोहित होकर ही वृत्रासुर सुगमतापूर्वक मारा जा सकेगा।

देवताओंने आराधनाकर भगवतीको प्रसन्न किया और वरदान प्राप्त किया। तदनन्तर इन्द्रने वृत्रासुरसे सन्धिकर उसे विश्वासमें लेकर छलपूर्वक उसका वध कर दिया।

इन्द्रको शापप्राप्ति—उधर त्वष्टाको जब अपने पुत्र वृत्रासुरके छलपूर्वक वधकी जानकारी हुई तो उन्होंने इन्द्रको दारुण कष्ट प्राप्त होनेका शाप दे दिया, इन्द्रको ब्रह्महत्या लग

गयी और वे इन्द्रपदसे च्युत हो गये। इन्द्र उस ब्रह्महत्यासे भयभीत होकर मानसरोवरमें स्थित एक कमलनालमें प्रविष्ट हो गये। स्वर्गकि इन्द्ररहित हो जानेसे अनेक उपद्रव होने लगे, अनावृष्टिके कारण पृथ्वी भी वैभवशून्य हो गयी। देवताओं और मुनियोंने इस प्रकारकी अराजकता देखकर राजर्षि नहुषको इन्द्र बना दिया।

राजा नहुषकी कथा—नहुष धर्मात्मा थे, पर राजसीवृत्ति और स्वर्गके सुखोंका उपभोग करते हुए वे इन्द्राणीके प्रति विषयासक्त हो गये। इन्द्राणी इन्द्रकी अनुपस्थितिसे वैसे ही दुःखी थी, इस नयी विपत्तिके आ जानेपर उसने देवगुरु बृहस्पतिकी शरण ली। बृहस्पतिके परामर्शसे शचीने भगवती जगदम्बाकी आराधना की, जिससे प्रसन्न होकर भगवतीने इन्द्राणीको दर्शन दिया और अपनी एक दूतीके साथ शचीको मानसरोवर भेजकर इन्द्रके दर्शन करा दिये।

शचीने इन्द्रको अपनी विपत्तिसे अवगत कराया। इसपर इन्द्रने अपनी पत्नी इन्द्राणीको यह परामर्श दिया कि तुम नहुषसे जाकर एकान्तमें कहना कि आप ऋषियोंद्वारा वहन किये जानेवाले दिव्य वाहनसे मेरे पास आयें, ऐसा होनेपर मैं प्रेमपूर्वक आपके वशमें हो जाऊँगी। शचीने ऐसा ही किया।

उधर भगवतीने नहुषकी बुद्धिको मोहित कर दिया, जिससे उस पापबुद्धिने इन्द्राणीकी प्राप्तिकी इच्छासे दिव्य मुनियोंको अपनी पालकीका वहन करनेमें लगा दिया। इतना ही नहीं उस मूढ़ राजाने तपस्विश्रेष्ठ महर्षि अगस्तिके सिरका पैरसे स्पर्श करते हुए 'सर्प-सर्प' कहा, जिससे क्रुद्ध होकर उन महामुनिने उसे सर्प होनेका शाप दे दिया। इस प्रकार नहुषके पतनके बाद भगवतीकी कृपासे इन्द्रको पुनः स्वर्गका राज्य प्राप्त हो गया।

राजा जनमेजयने यह आख्यान सुनकर व्यासजीसे पूछा—हे ब्रह्मन्! सौ यज्ञ करनेवाले देवताओंके स्वामी इन्द्रको भी अपने स्थानसे च्युत क्यों होना पड़ा? इस प्रश्नके उत्तरमें व्यासजीने उन्हें कर्मकी गहन गतिके बारेमें बताया।

विविध कर्मोंका निरूपण—शास्त्रोंमें संचित, वर्तमान और प्रारब्धके भेदसे कर्मकी तीन गतियाँ बतलायी गयी हैं। अनेक जन्मोंमें किया गया कर्म संचितकर्म कहा गया है; जो सात्त्विक, राजस और तामस तीन प्रकारका होता है। हे राजन्! बहुत समयके संचित शुभ या अशुभकर्म पुण्य या पापके रूपमें अवश्य ही भोगने पड़ते हैं। जीवोंके प्रत्येक जन्ममें संचितकर्म बिना भोग किये करोड़ों कल्पोंमें भी नहीं नष्ट होते। सबके शरीर-धारणका कारण उनका कर्म ही होता है। कर्मके समाप्त हो जानेपर प्राणियोंका जन्म लेना भी समाप्त हो जाता है। इसमें सन्देह नहीं है।

हे राजन्! ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र, देवता, दानव, यक्ष, गन्धर्व सभी कर्मके वशीभूत हैं। इन सभीको पूर्वकालमें किये शुभ-अशुभ कर्मोंका फल भोगना पड़ता है। देवांशसे उत्पन्न पाण्डव तथा नारायणके अंश श्रीकृष्णको भी यहाँ अनेक प्रकारके कष्ट भोगने पड़े।

युगधर्मके प्रभावसे साधुजनोंकी भी मति मलिन हो जाती है। इसी कारण तुम्हारे धर्मात्मा पिता राजा परीक्षित्‌ने एक तपस्वीके गलेमें मृत सर्प डाल दिया था। उनकी बुद्धिको कलिने ऐसा करनेके लिये प्रेरित किया था। कलियुगमें सत्यमूलक धर्मका सर्वथा क्षय हो जाता है। सत्ययुगमें सभी वर्णोंके लोग भगवती पराम्बाके पूजनमें आसक्त रहते हैं, त्रेतामें धर्मकी स्थिति सत्ययुगसे कम और द्वापरमें त्रेतासे कम होती है।

चित्तशुद्धिकी महिमा—हे राजन्! पृथ्वीपर अनेक पुण्यदायिनी नदियाँ, तीर्थ, सरोवर, अरण्य और क्षेत्र हैं; पर चित्तकी शुद्धि सबसे प्रधान है। चित्त शुद्ध न होनेसे तीर्थसेवनका कोई फल नहीं होता।

आहारकी शुद्धिसे ही अन्तःकरणकी शुद्धि होती है और चित्त शुद्ध होनेपर ही धर्मका प्रकाश होता है। आचारसंकरतासे धर्ममें व्यतिक्रम उत्पन्न होता है और धर्ममें विकृति होनेपर वर्णसंकरता उत्पन्न होती है। इस प्रकार सभी धर्मोंसे हीन कलियुगमें अपने-अपने वर्णाश्रमधर्मकी चर्चा भी कहीं नहीं सुनायी देती। धर्मज्ञ और श्रेष्ठजन भी अधर्म करने लग जाते हैं।

महर्षि वसिष्ठ और विश्वामित्रकी कथा—पूर्वकालमें पवित्र मानसरोवर तटपर रहते हुए विश्वामित्र और वसिष्ठ-जैसे श्रेष्ठ मुनियोंने दस हजार वर्षोंतक परस्पर युद्ध किया था। उन सत्त्वप्रधान मुनियोंका यह युद्ध उनके क्रोधके वशीभूत हो जानेके कारण हुआ था। सूर्यवंशी राजा हरिश्चन्द्र वसिष्ठजीके यजमान थे। वे वरुणदेवकी प्रसन्नताके लिये यज्ञ कर रहे थे, जिसमें शुनःशेप नामक एक ब्राह्मणपुत्रको यज्ञीय पशु बनाया गया था। विश्वामित्रने राजा हरिश्चन्द्रको ऐसा करनेसे रोका, परंतु प्रतिज्ञाबद्ध राजा न माने। अन्तमें विश्वामित्रजीने शुनःशेपसे वरुणमन्त्रका जप कराकर उसकी रक्षा की। विश्वामित्रने राजा हरिश्चन्द्रके इस व्यवहारसे क्रुद्ध होकर छलपूर्वक उनका राज्य छीन लिया। इससे वसिष्ठजी भी क्रुद्ध हो गये, उन्होंने

विश्वामित्रको बक हो जानेका तथा विश्वामित्रने वसिष्ठको आडी हो जानेका शाप दिया। इस प्रकार परस्पर शापग्रस्त और युद्धरत देखकर ब्रह्माजीने उन्हें समझाया और शापमुक्त किया।

राजा निमिका वृत्तान्त—वसिष्ठजीने इसी प्रकार क्रोधके वशीभूत होकर पूर्वकालमें राजा निमिको भी शाप दे दिया था। राजा निमि वसिष्ठजीके यजमान थे, वे एक देवीयज्ञ करना चाहते थे और उन्होंने इसे सम्पन्न करानेके लिये गुरु वसिष्ठसे प्रार्थना की, परंतु वसिष्ठजी उस समय इन्द्रका यज्ञ करानेके लिये चले गये और निमिसे बोले कि तुम यज्ञसामग्री एकत्रित करो। राजा निमिने समस्त यज्ञसामग्री एकत्रित करके सैकड़ों वर्षोंतक वसिष्ठजीकी प्रतीक्षाके अनन्तर गौतमऋषिको आचार्य बनाकर अपना यज्ञ प्रारम्भ करा दिया। इससे क्रुद्ध होकर वसिष्ठजीने उन्हें शाप दे दिया कि हे राजन्! तुम्हारा शरीर नष्ट हो जाय। इसपर राजा निमिने भी उन्हें शाप देते हुए कहा कि हे धर्मज्ञ! आपने क्रोधके वशीभूत होकर मुझे अकारण ही शाप दे दिया है। अत: आपकी यह क्रोधयुक्त देह आज ही नष्ट हो जाय। इससे वसिष्ठकी देह नष्ट हो गयी और पुन: उन्होंने मित्रावरुणके तेजसे अगस्तिके साथ एक कुम्भसे जन्म ग्रहण किया। राजा इक्ष्वाकुने उनका पालन-पोषण किया और कालान्तरमें वे उनके वंशके पुरोहित बने।

उधर भगवतीके यज्ञमें दीक्षित राजा निमिकी देहको ऋत्विजोंने मन्त्रशक्तिसे सुरक्षित बनाये रखा और यज्ञकी सम्यक् प्रकारसे पूर्ति हो जानेके बाद देवीके वरदानसे उन्हें निर्मल ज्ञानकी प्राप्ति हुई और समस्त प्राणियोंके नेत्रोंमें उनका निवास हो गया तथा प्राणियोंके नेत्रोंमें पलक गिरानेकी शक्ति आ गयी। निमिके निवासके कारण ही मनुष्य, पशु तथा पक्षी 'निमिष' (पलक गिरानेवाले) और देवता 'अनिमिष' (पलक न गिरानेवाले) हो गये। इसके अनन्तर मुनियोंने अरणिकाष्ठपर रखकर निमिकी देहका मन्थन किया, जिससे उन्हींके समान एक बालक उत्पन्न हुआ, जो 'मिथि', 'विदेह' और 'जनक' नामसे जाना गया तथा उनके कुलमें उत्पन्न सभी राजा 'विदेह' कहे गये। उन्होंने ही एक सुन्दर नगरीका निर्माण कराया, जो 'मिथिला' नामसे विख्यात है।

इसके अनन्तर राजाने पुन: प्रश्न किया कि वसिष्ठजी श्रेष्ठ ब्राह्मण और राजा निमिके पुरोहित थे तो भी राजा निमिने अपने गुरु और ब्राह्मण वसिष्ठको क्यों शाप दिया और क्षमा क्यों नहीं किया? इसपर व्यासजी बोले—हे राजन्! अजितेन्द्रिय प्राणियोंके लिये क्षमा अत्यन्त दुर्लभ है। कार्य-कारणस्वरूप अहंकारसे ही यह त्रिलोक उत्पन्न हुआ है तो फिर मनुष्य इससे वियुक्त कैसे रह सकता है? ब्रह्मा, विष्णु और शिव भी तीन गुणोंसे बँधे हुए हैं। परमात्मा और पराशक्ति दोनोंमें सदासे ऐक्य है, उनका स्वरूप अभिन्न है। इस ज्ञानसे मुक्ति हो जाती है।

ज्ञानके दो भेद—ज्ञान भी दो प्रकारका कहा गया है—प्रथम शाब्दिक ज्ञान, जो बुद्धिकी सहायतासे वेद और शास्त्रके अर्थज्ञानद्वारा प्राप्त हो जाता है। दूसरा अनुभव नामक ज्ञान है, जो दुर्लभ होता है। यह ज्ञान तब प्राप्त होता है, जब इसके जानने-वालेका संग हो जाता है। हे भारत! शब्दज्ञानसे कार्यकी सिद्धि नहीं होती, इसलिये अनुभवज्ञान ही विशेष महत्त्वपूर्ण है।

कर्म वही है, जो बन्धन न करे और विद्या वही है, जो मुक्तिके लिये हो। अन्य कर्म तो मात्र परिश्रमके लिये होता है तथा दूसरी विद्या तो मात्र शिल्पसम्बन्धी कौशल है। शील, परोपकार, क्रोधका अभाव, क्षमा, धैर्य और सन्तोष—यह सब विद्याका अत्यन्त उत्तम फल है।

हैहयवंशमें एकवीरकी कथा—हे राजन्! काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार—ये चार शत्रु शरीरमें सदा विद्यमान रहते हैं, इन्हींके प्रभावसे सत्त्वगुणी तपस्वी मुनिगण भी प्रभावित हो जाते हैं, फिर रजोगुणी और तमोगुणी क्षत्रियों तथा अन्य वर्णोंका तो कहना ही क्या? पूर्वकालमें हैहयवंशी क्षत्रियोंने क्रोधके वशीभूत होकर अपने पुरोहितकुलके भृगुवंशी ब्राह्मणोंका संहार कर डाला था। उन पापी हैहयोंने स्त्रियों और शिशुओंको भी नहीं छोड़ा। अन्तमें भगवतीकी कृपासे एक भार्गव-ब्राह्मणीकी जंघासे एक अत्यन्त तेजस्वी बालककी उत्पत्ति हुई। उसके तेजसे वे हैहयवंशी क्षत्रिय दृष्टिविहीन हो गये। पुन: उस बालककी स्तुति करनेपर उन्हें नेत्रज्योति मिली।

राजा जनमेजयने व्यासजीसे हैहयवंशी क्षत्रियोंकी उत्पत्तिके विषयमें पूछा। इसपर व्यासजीने बताया कि भगवान् विष्णु और भगवती लक्ष्मीसे उत्पन्न हैहयसंज्ञक 'एकवीर' नामवाले पुत्रसे इस वंशकी उत्पत्ति हुई। चूँकि अश्वरूपधारी भगवान् विष्णु और वडवारूपधारिणी भगवती लक्ष्मीसे इस पुत्रका जन्म हुआ था, इसीलिये इस वंशका 'हैहय' नाम पड़ा। एकवीरने भगवतीके सिद्धिप्रदायक मन्त्रसे दीक्षित होकर कालकेतु नामक राक्षसका वध किया और उसके द्वारा अपहृत राजा रैभ्यकी कन्या एकावलीसे विवाह किया। उस एकावलीसे उन्हें कृतवीर्य नामक पुत्रकी प्राप्ति हुई। कृतवीर्यका पुत्र कार्तवीर्य हुआ। इस प्रकार हैहयवंशकी वंशबेल वृद्धिको प्राप्त हुई।

इस अद्भुत आख्यानको सुनकर राजा जनमेजयने कहा

कि हे भगवन्! यह तो बड़े ही विस्मयकी बात है कि भगवान् विष्णुको घोड़ेका रूप धारण करना पड़ा, वे पुरुषोत्तम भगवान् तो सदा स्वतन्त्र रहते हैं, उन्हें ऐसा रूप क्यों धारण करना पड़ा?

इसपर व्यासजीने इस कथाका विस्तारसे वर्णन किया तथा कहा—हे राजन्! इस सारहीन जगत्में कभी किसीको सुख नहीं प्राप्त होता है। यह कहकर उन्होंने अपना जीवनवृत्त—जन्म, मातृविछोह, तपस्या, पुत्रप्राप्ति, पुनः पुत्रविछोह तथा धृतराष्ट्र, पाण्डु, विदुर आदिकी उत्पत्तिका वर्णन किया। तत्पश्चात् व्यासजीने पाण्डवोंके जन्म, उनकी शिक्षा-दीक्षा, विवाह, राजसूययज्ञ और वनवासकी कथा सुनायी। इसके अनन्तर व्यासजीने बताया कि पाण्डवों और द्रौपदीको वनवासमें अनेक प्रकारके दु:ख और अपमान सहने पड़े, जिन्हें देखकर ज्ञानवान् होते हुए भी मैं मोहित हो गया। इस प्रकार यह मोह ज्ञानियोंको भी विक्षुब्ध कर देता है। नारद तथा पर्वत-जैसे मुनियोंने इसी मोहके वशीभूत होकर दमयन्ती नामक एक राजकुमारीकी प्राप्तिके लिये एक-दूसरेको शाप दे दिया था। वस्तुतः माया अत्यन्त बलवती है और यह जगत् भी मायाके गुणोंसे ही विरचित है। काम, क्रोध, लोभ, ईर्ष्या, ममता, अहंकार और मद—इन शक्तिशाली विषयोंको जीतनेमें कोई सक्षम नहीं हो सकता। भगवती महामायाका चरित्र अत्यन्त अद्भुत है, उन्होंने ही स्थावर-जंगमात्मक जगत्को मोहित कर रखा है।

महामायाकी महिमामें देवर्षि नारदकी कथा—एक बार नारदजीके मनमें अहंकारवश यह भ्रान्ति हो गयी कि मैं इन्द्रियों, क्रोध और मायाको जीत लेनेवाला तपस्वी हूँ। इसपर भगवान् विष्णुने उन्हें समझाया कि जब मैं, ब्रह्मा, शिव और सनक आदि मुनि भी मायापर विजय नहीं प्राप्त कर सके तो तुम्हें ऐसा नहीं सोचना चाहिये। इसपर नारदजीने मायाको देखनेकी इच्छा प्रकट की।

भगवान् विष्णु गरुडपर उन्हें बैठाकर एक दिव्य रमणीय सरोवरके तटपर ले गये और उनसे उसमें स्नान करनेको कहा। उस सरोवरमें जैसे ही नारदजीने डुबकी लगायी, वे एक सुन्दर युवतीके रूपमें परिणत हो गये। सरोवरसे निकलनेपर उन्हें अपने स्वरूपका ज्ञान विस्मृत हो चुका था। भगवान् विष्णु वहाँसे अन्तर्धान हो चुके थे। इतनेमें ही तालध्वज नामक एक राजा उधर आ निकला और सुन्दर स्त्रीके रूपमें नारदजीको देखकर उसने उनसे प्रणय-याचना की। नारदजीको अपना ज्ञान तो विस्मृत हो ही चुका था, स्त्रीके रूपमें उन्हें आश्रयकी आवश्यकता भी थी, अतः वे राजा तालध्वजकी महारानी बन गये। कालान्तरमें वे अनेक पुत्रोंकी माता भी बने। उनके अनेक पौत्र भी हुए। इस प्रकार वे मायाविमोहित हो अपने परिवारमें ही अत्यन्त आसक्त हो गये, उनका दिव्य ज्ञान विस्मृत हो चुका था।

एक बार किसी दूसरे देशके राजाने तालध्वजके राज्यपर आक्रमण कर दिया। भयानक संग्राममें राजा तालध्वजके सभी पुत्र और पौत्र मारे गये। स्त्रीरूपधारी नारदजीने रणभूमिमें जाकर अपने पुत्र-पौत्रोंको मृत देखा तो विलाप करने लगे। इतनेमें वृद्ध ब्राह्मणरूपधारी भगवान् विष्णुने वहाँ आकर उनको जगत्की नश्वर गति समझाते हुए सरोवरमें स्नानकर मृत पुत्र-पौत्रोंको तिलांजलि देनेको कहा। तब जैसे ही स्त्रीरूपधारी नारदजीने उस सरोवरके जलमें डुबकी लगायी तो वे अपने वास्तविक नारदरूपमें आ गये। भगवान् विष्णु तटपर उनकी वीणा और मृगचर्म लिये खड़े थे। नारदजीको पुनः अपने स्वरूपकी स्मृति हो आयी तो वे विस्मयमें पड़ गये, उन्हें विस्मयान्वित देखकर भगवान् विष्णुने कहा—हे नारद! यहाँ आओ, वहाँ क्या कर रहे हो?

इधर राजा तालध्वज अपनी स्त्रीको सरोवरसे वापस न आया देखकर विलाप करने लगे। तब भगवान् विष्णु तथा नारदने उन्हें प्रबोधित किया। उनकी ज्ञानचर्चासे राजा तालध्वजके मनमें वैराग्यभाव उत्पन्न हो गया। इसके बाद भगवान् विष्णुने नारदजीसे कहा—हे महामते! देखो, यह सारा खेल महामायाजनित है।

श्रीमद्देवीभागवतकी महिमा—इस आख्यानको सुनाकर व्यासजीने राजा जनमेजयसे कहा—हे राजन्! जो माया स्थावर-जंगमरूप समस्त जगत्को अपने वशमें किये हुए है, वह माया भी सदा संविद्रूप परमतत्त्वमें स्थित रहती है। वह उसीके अधीन रहती हुई तथा उसीसे प्रेरित होकर जीवोंमें सदा मोहका संचार करती है। अतः विशिष्ट मायास्वरूपा भगवती जगदम्बाका ध्यान, पूजन, वन्दन तथा जप करना चाहिये। उन्हें छोड़कर अन्य कोई भी देवता उस मायाको दूर करनेमें समर्थ नहीं है। उनकी प्रसन्नताके लिये जो मनुष्य सम्पूर्ण पुराणोंके सारस्वरूप, वेदतुल्य इस श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणका श्रद्धा-भक्तिपूर्वक पाठ अथवा श्रवण करता है, वह ऐश्वर्यसम्पन्न तथा ज्ञानवान् हो जाता है। इस प्रकार देवीके माहात्म्यमें श्रीमद्देवीभागवतके षष्ठ स्कन्धकी कथा पूर्ण हुई। **—राधेश्याम खेमका**

॥ श्रीजगदम्बिकायै नमः ॥

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण

माहात्म्य

पहला अध्याय

सूतजीके द्वारा ऋषियोंके प्रति श्रीमद्देवीभागवतके श्रवणकी महिमाका कथन

सृष्टौ या सर्गरूपा जगदवनविधौ पालनी या च रौद्री
संहारे चापि यस्या जगदिदमखिलं क्रीडनं या पराख्या।
पश्यन्ती मध्यमाथो तदनु भगवती वैखरी वर्णरूपा
सास्मद्वाचं प्रसन्ना विधिहरिगिरिशाराधितालङ्करोतु॥

जगत्के सृष्टिकार्यमें जो उत्पत्तिरूपा, रक्षाकार्यमें पालनशक्तिरूपा, संहारकार्यमें रौद्ररूपा हैं, सम्पूर्ण विश्व-प्रपंच जिनके लिये क्रीडास्वरूप है, जो परा-पश्यन्ती-मध्यमा तथा वैखरी वाणीमें अभिव्यक्त होती हैं और जो ब्रह्मा-विष्णु-महेशद्वारा निरन्तर आराधित हैं, वे प्रसन्न चित्तवाली देवी भगवती मेरी वाणीको अलंकृत (परिशुद्ध) करें॥ १॥

[बदरिकाश्रमनिवासी प्रसिद्ध ऋषि] श्रीनारायण तथा नरोंमें श्रेष्ठ श्रीनर, भगवती सरस्वती और महर्षि वेदव्यासको प्रणाम करनेके पश्चात् ही जय (इतिहास-पुराणादि सद्ग्रन्थों)-का पाठ-प्रवचन करना चाहिये॥ २॥

ऋषिगण बोले—हे सूतजी! हे महामते! हे व्यासशिष्य! आप दीर्घजीवी हों; आप हमलोगोंको नानाविध पुण्यप्रदायिनी एवं मनोहारिणी कथाएँ सुनाते रहते हैं॥ ३॥

भगवान् विष्णुके सर्वपापविनाशक, परम पवित्र एवं उन अवतार-कथाओंसे सम्बन्धित अद्भुत चरित्रोंको हमने भक्तिपूर्वक सुना और इसी प्रकार हमने भगवान् शिवके अलौकिक चरित्र तथा भस्म और रुद्राक्षके ऐतिहासिक माहात्म्यका श्रवण आपके मुखारविन्दसे किया॥ ४-५॥

हमलोग अब ऐसी परम पावन कथा सुनना चाहते हैं, जो बिना प्रयासके ही मनुष्योंको भोग एवं मोक्ष प्रदान करनेमें पूर्णरूपसे सहायक हो॥ ६॥

हे महाभाग! अतः आप उस कथाका वर्णन करें, जिसके द्वारा मानव कलियुगमें भी सिद्धियाँ प्राप्त कर लें; क्योंकि हम आपसे बढ़कर किसी अन्यको नहीं जानते हैं, जो हमारी शंकाओंका निवारण कर सके॥ ७॥

सूतजी बोले—हे महाभाग ऋषियो! आपलोगोंने लोककल्याणकी भावनासे अत्यन्त उत्तम प्रश्न किया है, अतः मैं आप सभीके लिये समस्त शास्त्रोंका जो सार है, उसे पूर्णरूपसे बताऊँगा॥ ८॥
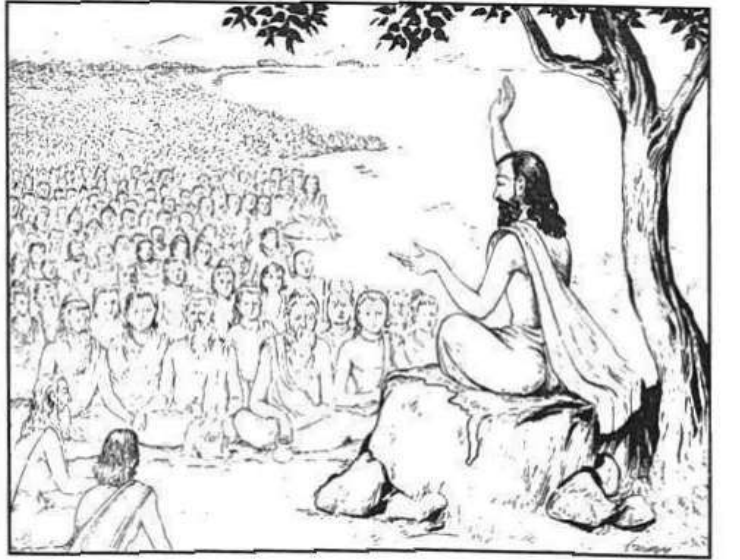
समस्त तीर्थ, पुराण और व्रत [अपनी श्रेष्ठताका वर्णन करते हुए] तभीतक गर्जना करते हैं, जबतक मनुष्य श्रीमद्देवीभागवतका सम्यक्रूपसे श्रवण नहीं कर लेते॥ ९॥

मनुष्योंके लिये पापरूपी अरण्य तभीतक दुःखप्रद एवं कंटकमय रहता है, जबतक श्रीमद्देवीभागवतरूपी परशु (कुठार) उपलब्ध नहीं हो जाता॥ १०॥

मनुष्योंको उपसर्ग (ग्रहण)-रूपी घोर अन्धकार तभीतक कष्ट पहुँचाता है, जबतक श्रीमद्देवीभागवतरूपी सूर्य उनके सम्मुख उदित नहीं हो जाते॥ ११॥

ऋषिगण बोले—हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ महाभाग सूतजी! आप हमें बतायें कि वह श्रीमद्देवीभागवतपुराण कैसा है और उसके श्रवणकी विधि क्या है? उस पुराणको कितने दिनोंमें सुनना चाहिये, [उसके श्रवणकी अवधिमें] पूजन-विधान क्या है, प्राचीन कालमें किन-किन मनुष्योंने इसे सुना और उनकी कौन-कौनसी कामनाएँ पूर्ण हुईं?॥ १२-१३॥

सूतजी बोले—प्राचीन कालमें पराशरऋषिद्वारा सत्यवतीके गर्भसे विष्णुके अंशस्वरूप मुनि व्यास उत्पन्न हुए, जिन्होंने वेदोंका चार विभाग करके उन्हें अपने शिष्योंको पढ़ाया॥ १४॥

पतितों, ब्राह्मणाधमों, वेदाध्ययनके अनधिकारियों, स्त्रियों एवं दूषित बुद्धिवाले मनुष्योंको धर्मका ज्ञान कैसे हो—मनमें ऐसा विचार करके भगवान् बादरायण व्यासजीने उनके धर्मज्ञानार्थ पुराण-संहिताका प्रणयन किया॥ १५-१६॥

उन भगवान् व्यासमुनिने अठारह पुराणों एवं महाभारतका प्रणयन करके सर्वप्रथम मुझे ही पढ़ाया॥ १७॥

उन पुराणोंमें श्रीमद्देवीभागवतपुराण भोग एवं मोक्षको देनेवाला है। व्यासजीने राजा जनमेजयको यह पुराण स्वयं सुनाया था॥ १८॥

पूर्वकालमें इन जनमेजयके पिता राजा परीक्षित् तक्षक-नागद्वारा काट लिये गये। अतः पिताकी संशुद्धि (शुभगति)-के लिये राजाने तीनों लोकोंकी जननी देवी भगवतीका विधिवत् पूजन-अर्चन करके नौ दिनोंतक व्यासजीके मुखारविन्दसे इस श्रीमद्देवीभागवतपुराणका श्रवण किया॥ १९-२०॥

इस नवाहयज्ञके सम्पूर्ण हो जानेपर राजा परीक्षित्ने उसी समय दिव्यरूप धारण करके देवीका सालोक्य प्राप्त किया॥ २१॥

राजा जनमेजय अपने पिताकी दिव्य गति देखकर और महर्षि वेदव्यासकी विधिवत् पूजा करके परम प्रसन्न हुए॥ २२॥

सभी अठारह पुराणोंमें यह श्रीमद्देवीभागवतपुराण सर्वश्रेष्ठ है और धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षको प्रदान करनेवाला है॥ २३॥

जो लोग सदा भक्ति-श्रद्धापूर्वक श्रीमद्देवीभागवतकी कथा सुनते हैं, उन्हें सिद्धि प्राप्त होनेमें रंचमात्र भी विलम्ब नहीं होता। इसलिये मनुष्योंको इस पुराणका सदा पठन-श्रवण करना चाहिये॥ २४॥

पूरे दिन, दिनके आधे समयतक, चौथाई समयतक, मुहूर्तभर अथवा एक क्षण भी जो लोग भक्तिपूर्वक इसका श्रवण करते हैं, उनकी कभी भी दुर्गति नहीं होती॥ २५॥

मनुष्य सभी यज्ञों, तीर्थों तथा दान आदि शुभ कर्मोंका जो फल प्राप्त करता है, वही फल उसे केवल एक बार श्रीमद्देवीभागवतपुराणके श्रवणसे प्राप्त हो जाता है॥ २६॥

सत्ययुग आदि युगोंमें तो अनेक प्रकारके धर्मोंका विधान था, किंतु कलियुगमें पुराण-श्रवणके अतिरिक्त मनुष्योंके लिये अन्य कोई सरल धर्म विहित नहीं है॥ २७॥

कलियुगमें धर्म एवं सदाचारसे रहित तथा अल्प आयुवाले मनुष्योंके कल्याणार्थ महर्षि वेदव्यासने अमृतरसमय श्रीमद्देवीभागवतनामक पुराणकी रचना की॥ २८॥

अमृतके पानसे तो केवल एक ही मनुष्य अजर-अमर होता है, किंतु भगवतीका कथारूप अमृत सम्पूर्ण कुलको ही अजर-अमर बना देता है॥ २९॥

श्रीमद्देवीभागवतके कथा-श्रवणमें महीनों तथा दिनोंका कोई भी नियम नहीं है। अतएव मानवोंद्वारा इसका सदा ही सेवन (पठन-श्रवण) किया जाना चाहिये॥ ३०॥

आश्विन, चैत्र, माघ तथा आषाढ़—इन महीनोंके चारों नवरात्रोंमें इस पुराणका श्रवण विशेष फल प्रदान करता है॥ ३१॥

अतएव श्रीमद्देवीभागवतका यह नवाहयज्ञ समस्त पुण्यकर्मोंसे अधिक फलदायक होनेके कारण मनुष्योंके लिये विशेष पुण्यप्रद कहा गया है॥ ३२॥

जो कलुषित हृदयवाले, पापी, मूर्ख, मित्रद्रोही, वेदोंकी निन्दा करनेवाले, हिंसामें रत और नास्तिक मार्गका अनुसरण करनेवाले मनुष्य हैं, वे भी कलियुगमें इस नवाहयज्ञके अनुष्ठानसे पवित्र हो जाते हैं॥ ३३॥

जो मनुष्य दूसरोंके धन तथा परायी स्त्रियोंके लिये लालायित रहते हैं, पापके बोझसे दबे हुए हैं और गो-ब्राह्मण-देवताओंकी भक्तिसे रहित हैं, वे भी इस नवाहयज्ञसे शुद्ध हो जाते हैं॥ ३४॥

जो फल कठिन तपस्याओं, व्रतों, तीर्थसेवन, अनेकविध दान, नियमों, यज्ञों, हवन एवं जप आदिके करनेसे प्राप्त नहीं होता है, वह फल मनुष्योंको श्रीमद्देवीभागवतके नवाहयज्ञसे प्राप्त हो जाता है॥ ३५॥

हे विप्रो! गंगा, गया, काशी, नैमिषारण्य, मथुरा, पुष्कर तथा बदरिकारण्य भी मनुष्योंको उतना शीघ्र पवित्र नहीं कर पाते हैं, जितना कि श्रीमद्देवीभागवतका यह नवाहयज्ञ लोगोंको पवित्र कर देता है॥ ३६॥

अतएव श्रीमद्देवीभागवतपुराण सभी पुराणोंमें श्रेष्ठतम है। इसे धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षकी प्राप्तिका उत्तम साधन माना गया है॥ ३७॥

जो आश्विन महीनेके शुक्लपक्षमें सूर्यके कन्याराशिमें पहुँचनेपर महाष्टमी तिथिको स्वर्ण-सिंहासनपर स्थित देवीके प्रीतिप्रद श्रीमद्देवीभागवत-ग्रन्थका पूजन करके उसे किसी योग्य ब्राह्मणको श्रद्धापूर्वक देता है, वह देवीके परमपदको प्राप्त करता है॥ ३८-३९॥

जो मनुष्य प्रतिदिन श्रीमद्देवीभागवतपुराणके एक अथवा आधे श्लोकका भी भक्तिपूर्वक पाठ करता है, वह जगदम्बाका कृपापात्र हो जाता है॥ ४०॥

महामारीसे उत्पन्न उपद्रवोंके भीषण भय तथा समस्त प्रकारके उत्पात (उल्कापात, भूकम्प, अतिवृष्टि, अनावृष्टि आदि) इस श्रीमद्देवीभागवतपुराणके श्रवणमात्रसे विनष्ट हो जाते हैं॥ ४१॥

बालग्रहों* (स्कन्दग्रह, स्कन्दापस्मार, शकुनी, रेवती, पूतना, अन्धपूतना, शीतपूतना, मुखमण्डिका और नैगमेष) तथा भूत-प्रेत आदिसे उत्पन्न भय इस श्रीमद्देवीभागवतपुराणके श्रवणसे बहुत दूरसे ही भाग जाते हैं॥ ४२॥

जो व्यक्ति भक्ति-भावसे देवीके इस भागवत-पुराणका पाठ अथवा श्रवण करता है; वह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्त कर लेता है॥ ४३॥

इस श्रीमद्देवीभागवतपुराणके श्रवणसे वसुदेवजी प्रसेनको खोजनेके लिये गये हुए और बहुत समयतक न लौटे हुए अपने प्रिय पुत्र श्रीकृष्णको प्राप्त करके प्रसन्न हुए॥ ४४॥

जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इस श्रीमद्देवीभागवतपुराणकी कथाको पढ़ता है तथा इसका श्रवण करता है, वह भोग तथा मोक्ष दोनों प्राप्त कर लेता है॥ ४५॥

अमृतस्वरूप इस श्रीमद्देवीभागवतके श्रवणसे पुत्रहीन मनुष्य पुत्रवान् हो जाता है, दरिद्र व्यक्ति धनसे सम्पन्न हो जाता है तथा रोगग्रस्त मनुष्य रोगसे मुक्त हो जाता है॥ ४६॥

वन्ध्या स्त्री, एक सन्तानवाली स्त्री अथवा वह स्त्री जिसकी सन्तान पैदा होकर मर जाती हो—वे भी श्रीमद्देवीभागवतपुराण सुनकर दीर्घ आयुवाला पुत्र प्राप्त करती हैं॥ ४७॥

जिस घरमें नित्य श्रीमद्देवीभागवतपुराणका पूजन किया जाता है, वह घर तीर्थस्वरूप हो जाता है तथा उसमें निवास करनेवाले लोगोंके पापोंका नाश हो जाता है॥ ४८॥

जो मनुष्य अष्टमी, नवमी अथवा चतुर्दशी तिथियोंको श्रद्धापूर्वक इसे पढ़ता या सुनता है, वह परम सिद्धिको प्राप्त करता है॥ ४९॥

इस श्रीमद्देवीभागवतपुराणका पाठ करनेवाला ब्राह्मण वेदवेत्ताओंमें अग्रगण्य हो जाता है, क्षत्रिय राजा हो जाता है, वैश्य धन-सम्पदासे सम्पन्न हो जाता है और शूद्र भी इसके श्रवणमात्रसे अपने कुल (बन्धु-बान्धवों)-के बीच श्रेष्ठता प्राप्त कर लेता है॥ ५०॥

॥ इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणके अन्तर्गत मानसखण्डमें श्रीमद्देवीभागवतमाहात्म्यका 'देवीभागवतश्रवणमाहात्म्यवर्णन' नामक पहला अध्याय पूर्ण हुआ॥ १॥

दूसरा अध्याय

श्रीमद्देवीभागवतके माहात्म्यके प्रसंगमें स्यमन्तकमणिकी कथा

ऋषिगण बोले—महाभाग वसुदेवजीने अपने पुत्रको किस प्रकार प्राप्त किया और वनमें भ्रमण करते हुए श्रीकृष्णने प्रसेनको कैसे खोजा? हे सुमते! हे सूतजी! किस विधिसे और किससे वसुदेवजीने श्रीमद्देवीभागवतपुराणका श्रवण किया; आप हमलोगोंको यह कथा बतायें॥ १-२॥

सूतजी बोले—भोजवंशी सत्राजित् द्वारकापुरीमें आनन्दपूर्वक निवास करता हुआ सूर्यकी आराधनामें तत्पर रहता था। वह सूर्यका परम भक्त एवं उनका मित्र था॥ ३॥

कुछ समयके पश्चात् सूर्यदेव उसके ऊपर प्रसन्न हो गये और उन्होंने उसे अपने लोकका दर्शन कराया। उसकी भक्ति तथा प्रेमसे अत्यन्त प्रसन्न हुए भगवान् सूर्यने सत्राजित्को स्यमन्तकमणि दे दी और वह उस मणिको अपने गलेमें धारण किये हुए द्वारका आ गया॥ ४-५॥

उसे देखकर मणिके तेजसे भ्रमित नागरिकोंने सत्राजित्को

* सुश्रुतसंहिता उत्तरतन्त्र २७। ४-५

सूर्य समझकर सुधर्मा नामक अपनी सभामें विराजमान श्रीकृष्णके पास पहुँचकर उनसे कहा॥ ६॥

हे जगत्पते! आपके दर्शनकी अभिलाषासे भगवान् सूर्य स्वयं आपके पास आ रहे हैं। यह बात सुनकर सभामें श्रीकृष्ण हँसकर बोले॥ ७॥

हे बाल-स्वभाव नागरिको! ये सूर्यभगवान् नहीं हैं; बल्कि सत्राजित् है, जो स्वयं सूर्यद्वारा प्रदत्त स्यमन्तक-मणिसे दीप्तिमान् होता हुआ यहाँ आ रहा है॥ ८॥

उसके पश्चात् ब्राह्मणोंको बुलाकर सत्राजित्ने स्वस्तिवाचन कराया और भलीभाँति पूजन करके उस मणिको अपने घरमें स्थापित किया॥ ९॥

वह मणि जहाँ रहती थी, वहाँ किसी प्रकारकी महामारी, दुर्भिक्ष तथा उपसर्ग (भूकम्प आदि प्राकृतिक संकट)-का भय उत्पन्न नहीं होता था और (उस मणिकी एक विशेषता यह भी थी कि) वह नित्य आठ भार* स्वर्ण दिया करती थी॥ १०॥

तदनन्तर एक दिन सत्राजित्के भाई प्रसेनने उस मणिको गलेमें धारणकर सिन्धुदेशीय घोड़ेपर सवार होकर आखेटके लिये वनकी ओर प्रस्थान किया। वहाँ वनमें किसी सिंहने उसे देखा और घोड़ेसहित प्रसेनको मारकर सिंहने वह मणि स्वयं ले ली॥ ११-१२॥

इसके पश्चात् महाबली ऋक्षराज जाम्बवान्ने मणि धारण करनेवाले उस सिंहको अपनी गुफाके द्वारपर देखकर और उसे मारकर मणि स्वयं ले ली॥ १३॥

पराक्रमी ऋक्षराजने वह मणि खेलनेके लिये अपने पुत्रको दे दी और वह बालक भी उस प्रदीप्त मणिको पाकर उसके साथ खेलने लगा॥ १४॥

कुछ काल बीतनेपर भी प्रसेनके वापस न लौटनेपर सत्राजित् अत्यन्त दुःखी हुआ और सोचने लगा कि मणि लेनेकी इच्छासे न जाने किसने प्रसेनको मार डाला॥ १५॥

इसी बीच द्वारकापुरमें नागरिकोंकी पारस्परिक बात-चीतसे किसी प्रकार यह किंवदन्ती फैल गयी कि मणिके लोभके वशीभूत श्रीकृष्णने ही प्रसेनका वध किया है॥ १६॥

श्रीकृष्णने भी जब अपने विषयमें अपयशकी वह बात सुनी तो उन्होंने अपने ऊपर लगे हुए कलंकके परिमार्जनहेतु प्रसेनके अन्वेषणार्थ नागरिकोंके साथ प्रस्थान किया॥ १७॥

वनमें पहुँचनेपर श्रीकृष्णने सिंहद्वारा मारे गये प्रसेनको देखा और तदनन्तर गिरे हुए रक्त-बिन्दुओंसे चिह्नित मार्गका अनुसरण करके सिंहको खोजते हुए वे कुछ दूर गये॥ १८॥

इसके पश्चात् एक गुफाके द्वारपर मरे हुए सिंहको देखकर भगवान् श्रीकृष्ण करुणायुक्त वाणीमें नागरिकोंसे बोले—मणिका हरण करनेवालेको खोजनेके लिये मैं इस गुफाके भीतर प्रवेश कर रहा हूँ। जबतक मैं वापस न आ जाऊँ, तुम लोग यहींपर ठहरो॥ १९-२०॥

वे द्वारकावासी 'ठीक है'—ऐसा बोलकर वहींपर ठहर गये और श्रीकृष्ण गुफाके भीतर प्रविष्ट हुए, जहाँ जाम्बवान्का घर था॥ २१॥

तत्पश्चात् वहाँ पहुँचनेपर श्रीकृष्णने ऋक्षराजके पुत्रको मणि धारण किये देखकर मणिको छीनना चाहा, इसपर उसकी धात्री (धाय) भयभीत होकर चिल्लाने लगी॥ २२॥

तब धात्रीकी आवाज सुनकर जाम्बवान् तुरंत वहाँ आ गया और वह अपने [पूर्व] स्वामी श्रीकृष्णके साथ दिन-रात निरन्तर युद्ध करने लगा॥ २३॥

* भारका परिमाण इस प्रकार है—
चतुर्भिर्व्रीहिभिर्गुञ्जं गुञ्जान्पञ्च पणं पलम्। अष्टौ धरणमष्टौ च कर्षं तांश्चतुरः पलम्।
तुलां पलशतं प्राहुर्भारं स्याद्विंशतिस्तुलाः॥
अर्थात् 'चार व्रीहि (धान)-की एक गुंजा, पाँच गुंजाका एक पण, आठ पणका एक धरण, आठ धरणका एक कर्ष, चार कर्षका एक पल, सौ पलकी एक तुला और बीस तुलाका एक भार कहलाता है।'

विदेहराज जनक तथा परम विरक्त श्रीशुकदेवजी
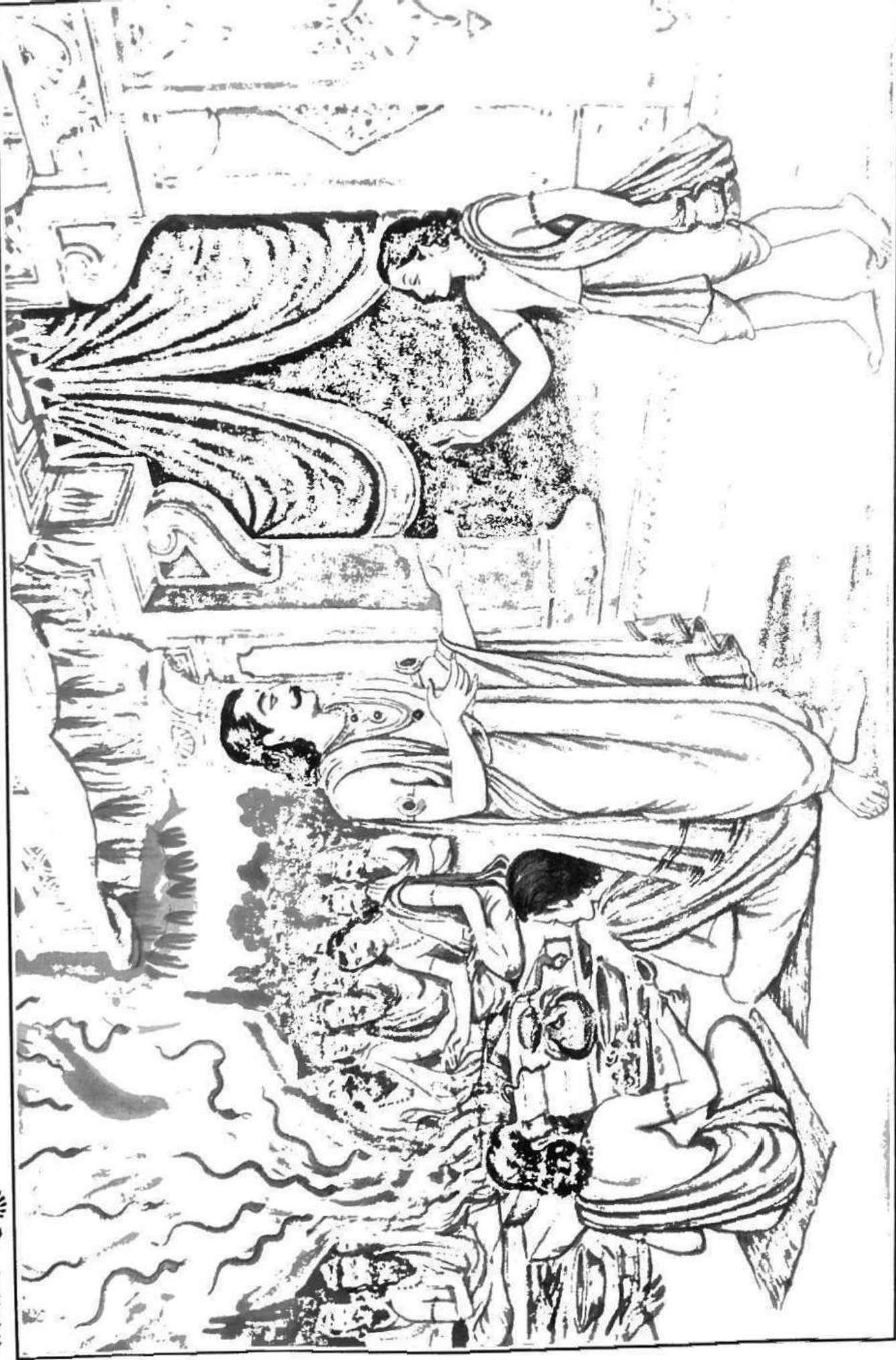
परीक्षित्-पुत्र महाराज जनमेजयके सर्पयज्ञमें आस्तीकका प्रवेश

इस प्रकार उन दोनोंके बीच सत्ताईस दिनोंतक भयंकर युद्ध हुआ। इधर द्वारकावासी गुफाके द्वारपर बारह दिनोंतक तो श्रीकृष्णके आगमनकी प्रतीक्षा करते हुए ठहरे रहे, किंतु इसके बाद वे भयभीत होकर अपने-अपने घर चले गये और वहाँ पहुँचकर उन्होंने लोगोंसे सारा वृत्तान्त कहा॥ २४-२५॥

द्वारकापुरीके सभी नागरिक यह सब सुनकर सत्राजित्की भर्त्सना करते हुए अत्यन्त शोकविह्वल हो गये। महाभाग वसुदेवजी अपने पुत्रका वह समाचार सुनकर परिवारसहित महान् शोकसे मूर्छित हो गये और बार-बार सोचने लगे कि मेरा कल्याण किस प्रकारसे हो?॥ २६-२७॥

उसी समय ब्रह्मलोकसे देवर्षि नारद वहाँ आ गये। वसुदेवजीने उठकर उन्हें प्रणाम करके विधिवत् उनकी पूजा की॥ २८॥

देवर्षि नारद महामति यदुश्रेष्ठ वसुदेवजीसे कुशल-क्षेम पूछकर उनसे बोले—आप क्यों चिन्तित हैं, यह मुझे बताइये॥ २९॥

वसुदेवजी बोले—मेरा अतिशय प्रिय पुत्र श्रीकृष्ण प्रसेनको खोजनेके लिये द्वारकाके नागरिकोंके साथ वनमें गया था, जहाँ उसने प्रसेनको मरा हुआ देखा। इसके पश्चात् प्रसेनको मारनेवाले सिंहको भी एक गुफाके द्वारपर मरा देखकर श्रीकृष्ण नागरिकोंको द्वारपर ही रोककर स्वयं गुफाके अन्दर चले गये। बहुत दिन व्यतीत हो चुके हैं, किंतु मेरा पुत्र अभीतक नहीं लौटा, जिससे मैं चिन्तित हूँ, अतः हे मुने! आप कोई ऐसा उपाय बताइये, जिससे मैं अपने प्रिय पुत्रको प्राप्त कर सकूँ॥ ३०—३२॥

नारदजी बोले—हे यदुश्रेष्ठ! आप पुत्रकी प्राप्तिके लिये अम्बिकादेवीकी आराधना कीजिये। उनकी आराधनासे शीघ्र ही आपका कल्याण होगा॥ ३३॥

वसुदेवजी बोले—हे भगवन्! वे देवी कौन हैं, वे महेश्वरी किस प्रकारके प्रभाववाली हैं तथा उनकी आराधना किस प्रकार की जाती है? हे देवर्षे! कृपा करके यह बतायें॥ ३४॥

नारदजी बोले—हे महाभाग वसुदेव! देवीके अतुलित माहात्म्यका विस्तारपूर्वक वर्णन करनेमें कौन समर्थ है? अतः मैं संक्षेपमें ही कह रहा हूँ, आप उसे सुनें॥ ३५॥

जो भगवती शाश्वत, सच्चिदानन्दस्वरूपा और परात्परतरा देवी हैं तथा जिनके द्वारा यह जगत् व्याप्त है, जिनकी आराधनाके प्रभावसे ही ब्रह्मा इस चराचर सृष्टिकी रचना करते हैं, जिनका स्तवन करके भगवान् विष्णु मधु-कैटभके भयसे मुक्त हुए तथा जिनकी कृपासे वे विश्वका पालन-पोषण करते हैं, जिनके कृपा-कटाक्षमात्रसे भगवान् शंकर जगत्का संहार करते हैं और जो संसारके बन्धनकी कारणरूपा हैं, वे ही मुक्ति प्रदान करनेवाली हैं, वे ही परम विद्यास्वरूपा हैं और वे ही समस्त ईश्वरोंकी भी ईश्वरी हैं॥ ३६—३९॥

अतः आप नवरात्रविधानके अनुसार जगदम्बाकी विधिवत् पूजा करके नौ दिनोंमें इस श्रीमद्देवीभागवत-पुराणका श्रवण कीजिये, जिसके श्रवणमात्रसे आप शीघ्र ही अपने पुत्रकी प्राप्ति कर लेंगे। इस पुराणका पाठ तथा श्रवण करनेवाले मनुष्योंसे भोग एवं मोक्ष दूर नहीं रहते॥ ४०-४१॥

नारदजीके ऐसा कहनेपर वे वसुदेवजी मुनिश्रेष्ठ नारदको प्रणाम करके अत्यन्त प्रेमपूर्वक कहने लगे॥ ४२॥

वसुदेवजी बोले—हे भगवन्! आपके इस कथनसे देवी-माहात्म्यसे सम्बन्धित एक अपना वृत्तान्त मुझे याद आ गया; मैं उसे कह रहा हूँ, आप सुनिये॥ ४३॥

पूर्वकालमें पापी कंसने आकाशवाणीके माध्यमसे देवकीके आठवें गर्भसे अपनी मृत्यु जानकर भयभीत हो भार्यासहित मुझको बन्दी बना लिया॥ ४४॥

तदनन्तर मैं अपनी पत्नी देवकीके साथ कारागारमें रहने लगा और पापी कंस भी मेरे पैदा होनेवाले पुत्रोंको एक-एक करके मारता रहा॥ ४५॥

इस प्रकार जब कंसके द्वारा मेरे छः पुत्र मार डाले गये तब मेरी निर्दोष भार्या देवी देवकी अत्यन्त शोकाकुल हो उठीं और दिन-रात दुखी रहने लगीं॥ ४६॥

तत्पश्चात् गर्गमुनिको बुलाकर उनका अभिवादन तथा पूजन करके पुत्र-प्राप्तिकी कामनासे मैंने उनसे देवकीका दुःख बताकर कहा—हे भगवन्! हे दयासिन्धो! हे मुनिवर! आप यदुकुलके गुरु हैं, अतः मुझे आयुष्मान् पुत्रकी प्राप्तिका कोई उपाय बताइये। इसके अनन्तर दयानिधान गर्गजी प्रसन्न होकर मुझसे कहने लगे॥ ४७-४८ $^{१}/_{२}$ ॥

गर्गजी बोले—हे महाभाग वसुदेव! अब आप उस सर्वश्रेष्ठ साधनको सुनिये। जो भगवती दुर्गा अपने भक्तोंकी दुर्गतिका विनाश कर देती हैं, आप उन कल्याणकारिणी देवीकी आराधना कीजिये। इससे शीघ्र ही आपका

कल्याण होगा; क्योंकि उनकी आराधनासे सभी लोगोंकी समस्त कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। दुर्गाकी उपासना करनेवाले मनुष्योंके लिये संसारमें कुछ भी दुर्लभ नहीं है॥ ४९-५१॥

गर्गमुनिके ऐसा कहनेपर मैं प्रसन्न हो गया और अपनी पत्नीसहित मुनिश्रेष्ठ गर्गको परम श्रद्धापूर्वक प्रणाम करके दोनों हाथ जोड़कर मैंने उनसे कहा॥ ५२॥

वसुदेवजी बोले—हे भगवन्! हे करुणासागर! हे गुरो! यदि आप मुझपर स्नेह रखते हैं तो मेरे कल्याणके निमित्त आप ही उन भगवती चण्डिकाकी आराधना कर दें। मैं तो कंसके घरमें बन्दी रहनेके कारण कुछ भी कर सकनेमें समर्थ नहीं हूँ। अतः हे महामते! अब आप ही इस दुःखसागरसे मेरा उद्धार कीजिये॥ ५३-५४॥

मेरे इस प्रकार कहनेपर वे मुनिश्रेष्ठ प्रसन्न होकर बोले—हे वसुदेव! आपकी प्रीतिके कारण मैं आपका कल्याण करूँगा॥ ५५॥

मेरे द्वारा प्रीतिपूर्वक प्रार्थना किये जानेके उपरान्त गर्गमुनि देवी दुर्गाकी आराधनाकी इच्छासे ब्राह्मणोंके साथ विन्ध्यपर्वतपर चले गये॥ ५६॥

वहाँ जाकर जप एवं पाठमें तत्पर रहते हुए गर्गमुनि जगत्की मातृस्वरूपा और भक्तोंकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाली भगवतीकी आराधना करने लगे॥ ५७॥

जप-पूजनादि अनुष्ठानोंकी समाप्तिके पश्चात् आकाशवाणी हुई कि हे मुने! मैं प्रसन्न हो गयी हूँ, अतएव तुम्हारे कार्यकी सिद्धि होगी॥ ५८॥

[समस्त प्रकारके पाप एवं अनाचारस्वरूप] पृथ्वीके भारका नाश करनेके लिये मुझसे प्रेरणा प्राप्तकर स्वयं भगवान् विष्णु अपने अंशसे वसुदेवकी भार्या देवकीके गर्भसे अवतार लेंगे॥ ५९॥

कंसके भयसे वसुदेवजी उस शिशुको लेकर शीघ्र ही गोकुलमें नन्दके घर पहुँचा देंगे और वहाँसे यशोदाकी कन्याको लाकर अपने घरमें राजा कंसको दे देंगे। तब कंस उस कन्याको मारनेके लिये उसे पृथ्वीपर पटक देगा॥ ६०-६१॥

तदनन्तर उसके हाथसे छूटकर मेरी अंशस्वरूपा वह कन्या तत्क्षण अलौकिक रूप धारण करके विन्ध्यपर्वतपर चली जायगी और निरन्तर जगत्का कल्याण करेगी॥ ६२॥

इस प्रकार उस आकाशवाणीको सुनकर गर्गमुनि भगवती जगदम्बाको प्रणाम करके प्रसन्न मनसे मथुरापुरी आ गये॥ ६३॥

आचार्य गर्गके मुखसे महादेवीके वरदानकी बात सुनकर मैं पत्नीसहित अत्यन्त प्रसन्न हुआ और परम आनन्दविभोर हो उठा॥ ६४॥

तभीसे मैं देवीके अत्युत्तम माहात्म्यको जान रहा हूँ और हे देवर्षे! आज भी आपके मुखारविन्दसे मैंने वही देवीमाहात्म्य सुना है॥ ६५॥

अतः हे प्रभो! अब आप ही मुझे श्रीमद्देवीभागवत सुनाइये। हे दयानिधान! मेरे सौभाग्यसे ही आप यहाँ पधारे हुए हैं॥ ६६॥

वसुदेवजीका वचन सुनकर प्रसन्न मनवाले नारदजीने शुभ दिन एवं शुभ नक्षत्रमें श्रीमद्देवीभागवतकी कथा आरम्भ की॥ ६७॥

कथामें आनेवाली विघ्न-बाधाओंके शमनार्थ ब्राह्मण देवीके नवाक्षर (ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे)-मन्त्रका जप तथा मार्कण्डेयपुराणमें वर्णित देवीस्तोत्रका पाठ करने लगे॥ ६८॥

प्रथम स्कन्धके आरम्भसे ही वसुदेवजी देवर्षि नारदके मुखसे निःसृत अमृतस्वरूप श्रीमद्देवीभागवतपुराणका भक्तिपूर्वक श्रवण करने लगे॥ ६९॥

नौवें दिन कथाकी समाप्ति होनेपर महामनस्वी वसुदेवजीने श्रीमद्देवीभागवतग्रन्थ तथा कथावाचक दोनोंकी प्रसन्नतापूर्वक पूजा की॥ ७०॥

उधर कन्दरामें श्रीकृष्ण तथा जाम्बवान्के बीच चल रहे युद्धमें श्रीकृष्णके मुष्टिकाप्रहारोंसे जाम्बवान्का शरीर अत्यन्त शिथिल पड़ गया था॥ ७१॥

उसी समय जाम्बवान्को भी पूर्वकालकी घटनाएँ याद आ गयीं और भगवान् श्रीकृष्णको परम भक्तिके साथ प्रणाम करके अपने अपराधके लिये क्षमा-याचना करते हुए उसने श्रीकृष्णसे कहा—अब मुझे ज्ञात हो गया कि आप रघुश्रेष्ठ श्रीराम ही हैं, जिनके भयंकर कोपसे सागर तथा लंकानगरी—दोनों क्षुब्ध हो गये थे और रावण अपने बन्धु-बान्धवोंसहित मारा गया था॥ ७२-७३॥

हे श्रीकृष्ण! वे राम आप ही हैं, अतः मेरी धृष्टताको क्षमा करें। मैं आपका सर्वथा सेवक हूँ, अतएव मेरेयोग्य जो भी कार्य हो, उसके लिये मुझे आदेश दीजिये॥ ७४॥

जाम्बवान्का वचन सुनकर जगत्पति श्रीकृष्ण बोले—हे ऋक्षराज! मणि प्राप्त करनेके लिये हमलोग इस कन्दरामें आये हुए हैं॥ ७५॥

तत्पश्चात् ऋक्षराज जाम्बवान्ने श्रीकृष्णकी विधिवत् पूजा करके स्यमन्तकमणि तथा अपनी पुत्री जाम्बवती उन्हें प्रसन्नतापूर्वक अर्पित कर दी॥ ७६॥

श्रीकृष्णने जाम्बवतीको पत्नीके रूपमें अंगीकार करके मणिको गलेमें धारण कर लिया और ऋक्षराज जाम्बवान्से विदा लेकर वे द्वारकापुरीके लिये प्रस्थित हुए॥ ७७॥

उधर द्वारकामें उदारहृदय श्रीवसुदेवजीने श्रीमद्देवी-भागवतपुराण-कथाकी समाप्तिके दिन ब्राह्मणोंको भोजन कराया तथा नानाविध दक्षिणाओंसे उन्हें सन्तुष्ट किया॥ ७८॥

जिस समय वे ब्राह्मण वसुदेवको आशीर्वचन प्रदान कर रहे थे, उसी समय भगवान् श्रीकृष्ण मणि धारण किये हुए पत्नी जाम्बवतीके साथ वहाँ आ पहुँचे॥ ७९॥

भार्यासहित भगवान् श्रीकृष्णको देखकर वसुदेवजी

तथा उपस्थित जनसमूहकी आँखें हर्षातिरेकके अश्रुसे परिपूर्ण हो गयीं और वे परम आनन्दित हुए॥ ८०॥

देवर्षि नारद भी श्रीकृष्णके आगमनसे हर्षित हुए और उन्होंने वसुदेवजी तथा श्रीकृष्णसे विदा लेकर ब्रह्मसभाके लिये प्रस्थान किया॥ ८१॥

जो मनुष्य निष्कपट भक्ति एवं शुद्ध हृदयसे भगवान्के इस विख्यात तथा कलंकनाशक चरित्रका पाठ एवं श्रवण करता है, वह पूर्ण सुखी हो जाता है, जगत्में उसकी सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं तथा मृत्युके अनन्तर वह मोक्षपद प्राप्त करता है॥ ८२॥

॥ इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणके अन्तर्गत मानसखण्डमें श्रीमद्देवीभागवतमाहात्म्यका 'वसुदेवजीका देवीभागवतनवाहश्रवणसे पुत्रप्राप्तिवर्णन' नामक दूसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ २॥

तीसरा अध्याय

श्रीमद्देवीभागवतके माहात्म्यके प्रसंगमें राजा सुद्युम्नकी कथा

सूतजी बोले—हे मुनिवरो! अब आपलोग एक अन्य इतिहास सुनिये, जिसमें इस देवीभागवतके माहात्म्यका वर्णन किया गया है॥ १॥

एक बार कुम्भयोनि लोपामुद्रापति महर्षि अगस्त्यने कुमार कार्तिकेयके पास जाकर उनकी भलीभाँति पूजा करके उनसे विविध प्रकारकी बातें पूछीं॥ २॥

भगवान् कार्तिकेयने दान-तीर्थ-व्रतादिके माहात्म्यसे परिपूर्ण अनेक कथाओंका वर्णन उनसे किया। उन्होंने वाराणसी, मणिकर्णिका, गंगा तथा अनेक तीर्थोंके माहात्म्यका अत्यन्त विस्तारपूर्वक वर्णन किया॥ ३-४॥

उसे सुनकर अगस्त्यमुनि परम प्रसन्न हुए और उन्होंने महातेजसम्पन्न कुमार कार्तिकेयसे लोक-कल्याणके लिये पुनः पूछा॥ ५॥

अगस्त्यजी बोले—हे तारकरिपु! हे भगवन्! हे प्रभो! आप मुझे देवीभागवतके माहात्म्य तथा उसके श्रवणकी विधि भी बतायें॥ ६॥

श्रीमद्देवीभागवत नामक पुराण सभी पुराणोंमें अतिश्रेष्ठ है, जिसमें तीनों लोकोंकी जननी साक्षात् सनातनी भगवतीकी

महिमा गायी गयी है ॥ ७ ॥

कार्तिकेय बोले—हे ब्रह्मन्! श्रीमद्देवीभागवतके माहात्म्यको विस्तारपूर्वक कहनेमें कौन समर्थ है? मैं इस समय संक्षेपमें इसे कहूँगा, आप सुनिये ॥ ८ ॥

जो शाश्वती, सच्चिदानन्दस्वरूपा, भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाली जगदम्बा हैं, वे स्वयं इस पुराणमें विराजमान रहती हैं ॥ ९ ॥

अतएव हे मुने! यह श्रीमद्देवीभागवत उन जगदम्बिकाकी वाङ्मयी मूर्ति है, जिसके पठन एवं श्रवणसे इस लोकमें कुछ भी दुर्लभ नहीं है ॥ १० ॥

विवस्वान्के एक पुत्र हुए, जो श्राद्धदेव नामसे प्रसिद्ध थे। सन्तानरहित होनेके कारण उन राजा श्राद्धदेवने वसिष्ठमुनिकी अनुमतिसे पुत्रेष्टि यज्ञ किया ॥ ११ ॥

तत्पश्चात् मनु श्राद्धदेवकी भार्या श्रद्धाने यज्ञके होतासे प्रार्थना की—हे ब्रह्मन्! आप कोई ऐसा उपाय करें, जिससे मुझे कन्याकी प्राप्ति हो ॥ १२ ॥

अत: होताने मनमें कन्या-प्राप्तिका संकल्प करते हुए आहुति डाली और उसके विपरीत भावके फलस्वरूप एक कन्या उत्पन्न हुई, जिसका नाम 'इला' रखा गया ॥ १३ ॥

इसके बाद पुत्रीको देखकर उदास मनवाले राजा श्राद्धदेवने गुरु वसिष्ठसे कहा—हे प्रभो! पुत्र-प्राप्तिके आपके संकल्पके विपरीत यह कन्या कैसे उत्पन्न हो गयी? ॥ १४ ॥

यह सुनकर महर्षि वसिष्ठने ध्यान लगाया, इसमें होताका व्यतिक्रम जानकर वे इलाको पुत्र बनानेकी कामनासे ईश्वरकी शरणमें गये ॥ १५ ॥

मुनिके तपप्रभाव और भगवान्की कृपासे सभी लोगोंके देखते-देखते इला कन्यासे पुरुषरूपमें परिवर्तित हो गयी ॥ १६ ॥

इसके बाद गुरु वसिष्ठने पूर्णरूपसे संस्कार करके उसका नाम 'सुद्युम्न' रखा। वे मनुपुत्र सुद्युम्न सभी नदियोंके निधानभूत सागरकी भाँति सभी विद्याओंके निधान हो गये ॥ १७ ॥

कुछ समय बीतनेपर सुद्युम्न युवा हुए और एक दिन सिन्धुदेशीय घोड़ेपर चढ़कर वे आखेटके लिये वनमें गये ॥ १८ ॥

अपने सहचरोंके साथ वे कुमार सुद्युम्न एक वनसे दूसरे वनमें जाते हुए भटकते रहे और फिर संयोगसे वे हिमालयकी तलहटीके उस वनमें पहुँच गये जहाँ किसी समय देवाधिदेव भगवान् शंकर अपनी भार्या अपर्णाके साथ आनन्दपूर्ण मुद्रामें रमण कर रहे थे ॥ १९-२० ॥

उसी समय भगवान् शंकरके दर्शनकी अभिलाषासे मुनिगण वहाँ आ गये और उन्हें देखकर पार्वतीजी लज्जित हो गयीं ॥ २१ ॥

तब शिव एवं पार्वतीको रमण करते देखकर उत्तम व्रत धारण करनेवाले वे मुनिगण वहाँसे लौटकर वैकुण्ठ-धामकी ओर चल दिये ॥ २२ ॥

तदनन्तर अपनी प्रियतमाको प्रसन्न करनेके लिये भगवान्ने उस अरण्यको शाप दे दिया कि आजसे जो भी पुरुष यहाँ प्रवेश करेगा, वह स्त्री हो जायगा ॥ २३ ॥

तभीसे पुरुषोंने उस वनमें जाना त्याग दिया था और संयोगवश वहाँ पहुँचते ही सुद्युम्न एक लावण्यमयी स्त्रीके रूपमें परिवर्तित हो गये ॥ २४ ॥

अपने सभी अनुचरोंको पुरुषसे स्त्री तथा घोड़ोंको घोड़ियोंमें रूपान्तरित हुआ देखकर सुद्युम्न आश्चर्यचकित हो गये। अब वह रूपवती तरुणी वन-वनमें विचरण करने लगी ॥ २५ ॥

एक बार वह बुधके आश्रमके समीप पहुँची। स्थूल तथा उन्नत स्तनोंवाली, बिम्ब-फलके समान लाल ओठोंवाली, कुन्दफूलके समान श्वेत दाँतोंवाली, सुन्दर मुख तथा कमलके समान नयनोंवाली उस सर्वांगसुन्दरी तरुणीको देखकर कामदेवके बाणोंसे बिंधे हुए अंगोंवाले भगवान् बुध उसपर मोहित हो गये ॥ २६-२७ ॥

वह सुन्दर भौंहोंवाली युवती भी चन्द्रपुत्र कुमार बुधपर आसक्त हो गयी और बुधके साथ रमण करती हुई उनके आश्रममें रहने लगी॥ २८॥

हे महर्षि अगस्त्य! कुछ समय बाद बुधने उस तरुणीसे पुरूरवा नामक पुत्रको उत्पन्न किया॥ २९॥

इस प्रकार बुधके आश्रममें रहते हुए कई वर्ष बीत जानेपर किसी समय उसे अपने पूर्व वृत्तान्तका स्मरण हो आया और वह दुःखित होकर आश्रमसे चली गयी॥ ३०॥

इसके बाद गुरु वसिष्ठके आश्रममें पहुँचकर उन्हें प्रणाम किया और सारा वृत्तान्त कहकर पुरुषत्वकी कामना करती हुई वह उनके शरणागत हो गयी॥ ३१॥

इस प्रकार सभी बातोंको जानकर वसिष्ठजी कैलास-पर्वतपर जाकर विधि-विधानसे भगवान् शंकरकी पूजा करके परम भक्तिसे उनकी स्तुति करने लगे॥ ३२॥

वसिष्ठजी बोले—शिव, शंकर, कपर्दी, गिरिजाके अर्धांग एवं चन्द्रमौलिको बार-बार नमस्कार है॥ ३३॥

मृड, सुखदाता, कैलासवासी, नीलकण्ठ, भक्तोंको भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाले आपको नमस्कार है॥ ३४॥

शिव, शिवस्वरूप, शरणागतभयहारी, वृषभवाहन, शरणदाता परमात्माको नमस्कार है॥ ३५॥

सृजन, पालन तथा संहारके समय ब्रह्मा, विष्णु तथा महेशरूपधारी, देवाधिदेव, वरदायक तथा त्रिपुरारिको मेरा नमस्कार है॥ ३६॥

यज्ञरूप तथा याजकोंके फलदाताको बार-बार नमस्कार है। आप गंगाधर, सूर्य-चन्द्र-अग्निस्वरूप त्रिनेत्रको मेरा नमस्कार है॥ ३७॥

इस प्रकार मुनि वसिष्ठके द्वारा स्तुति किये जानेपर करोड़ों सूर्यसदृश प्रभासे युक्त एवं भगवती पार्वतीके साथ नन्दीपर आरूढ़ वे जगत्पति भगवान् शंकर प्रकट हो गये॥ ३८॥

चाँदीके पर्वतके समान प्रभावाले, त्रिनेत्रधारी भगवान् चन्द्रशेखर शरणमें आये हुए मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठसे अत्यन्त प्रसन्न होकर बोले॥ ३९॥

श्रीभगवान्ने कहा—हे विप्रर्षे! आपके मनमें जो भी इच्छा हो, वह वर माँगिये। उनके इस प्रकार कहनेपर गुरु वसिष्ठने प्रणाम करके इलाकी पुरुषत्वप्राप्तिके लिये उनसे प्रार्थना की॥ ४०॥

इसके बाद प्रसन्न होकर शंकरजीने मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठसे कहा कि एक मासतक वह पुरुषरूपमें तथा एक मासतक नारीरूपमें रहेगी॥ ४१॥

इस प्रकार शिवजीसे वर प्राप्त करके महर्षि वसिष्ठने वर प्रदान करनेके लिये सदा उत्सुक रहनेवाली जगदम्बिका पार्वतीको प्रणाम किया॥ ४२॥

करोड़ों चन्द्रमाकी कला-कान्तिसे युक्त तथा सुन्दर मुसकानवाली भगवतीकी सम्यक् पूजा करके सदाके लिये इलाकी पुरुषत्वप्राप्तिकी कामनासे वसिष्ठजी श्रद्धापूर्वक उनकी स्तुति करने लगे॥ ४३॥

हे देवि! हे महादेवि! हे भक्तोंपर कृपा करनेवाली भगवति! आपकी जय हो। हे समस्त देवोंकी आराध्यस्वरूपा और अनन्त गुणोंकी आगार! आपकी जय हो॥ ४४॥

हे देवेश्वरि! हे शरणागतवत्सले! आपको बार-बार नमस्कार है। हे दुःखहारिणि! हे दुष्ट दानवोंका नाश करनेवाली भगवति! आपकी जय हो॥ ४५॥

हे भक्तिसे प्राप्त होनेवाली भगवति! हे महामाये! हे जगदम्बिके! हे भवसागरसे पार उतारनेके लिये नौकास्वरूप चरणकमलवाली! आपको नमस्कार है॥ ४६॥

आपके चरणकमलोंकी सेवासे ही ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश आदि देवता विश्वके सृजन, पालन तथा संहारहेतु सामर्थ्य प्राप्त करते हैं॥ ४७॥

पुरुषार्थचतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष) प्रदान करनेवाली हे देवेश्वरि! आप प्रसन्न हों। हे देवि! आपकी स्तुति करनेमें भला कौन समर्थ है, अतः मैं आपको केवल प्रणाम कर रहा हूँ॥ ४८॥

महर्षि वसिष्ठजीद्वारा इस प्रकार भक्ति-भावसे स्तुति किये जानेपर नारायणी पराम्बा दुर्गा भगवती तत्काल प्रसन्न हो गयीं॥ ४९॥

तदनन्तर भक्तजनोंका दुःख दूर करनेवाली महादेवीने मुनि वसिष्ठसे कहा—हे मुनिश्रेष्ठ! आप सुद्युम्नके घर जाकर भक्तिपूर्वक मेरी पूजा करें॥ ५०॥

हे द्विजश्रेष्ठ! सुद्युम्नको नौ दिनोंमें मुझे प्रसन्नता प्रदान करनेवाले श्रीमद्देवीभागवतपुराणका प्रेमपूर्वक श्रवण कराइये॥ ५१॥

उसके श्रवणमात्रसे उसे सर्वदाके लिये पुरुषत्वकी प्राप्ति हो जायगी। ऐसा कहकर भगवती पार्वती तथा भगवान् शंकर अन्तर्धान हो गये॥ ५२॥

इसके पश्चात् वसिष्ठजी उस दिशाको नमस्कारकर अपने आश्रमको लौट आये और सुद्युम्नको बुलाकर उन्होंने देवीकी आराधना करनेके लिये उन्हें आदेश दिया॥ ५३॥

आश्विनमासके शुक्लपक्षमें जगदम्बाकी विधिवत् पूजा करके वसिष्ठजीने राजाको नवरात्र-विधानके अनुसार श्रीमद्देवीभागवतपुराण सुनाया॥ ५४॥

इस प्रकार अमृतस्वरूप श्रीमद्देवीभागवतपुराणको भक्तिपूर्वक सुनकर और गुरु वसिष्ठका पूजन-वन्दन करके सुद्युम्नने सदाके लिये पुरुषत्व प्राप्त कर लिया॥ ५५॥

महर्षि वसिष्ठने सुद्युम्नका राज्याभिषेक किया और वे प्रजाओंको प्रसन्न रखते हुए धर्मपूर्वक भूमण्डलपर शासन करने लगे॥ ५६॥

सुद्युम्नने अत्यन्त श्रेष्ठ दक्षिणावाले भाँति-भाँतिके यज्ञ किये और अन्तमें पुत्रोंको राज्यका शासन सौंपकर वे देवीलोकको प्राप्त हुए॥ ५७॥

हे विप्रो! इस प्रकार मैंने आप लोगोंको इतिहाससहित देवीमाहात्म्य बता दिया। यदि कोई मनुष्य सद्भक्तिके साथ इसे पढ़ता अथवा सुनता है तो वह देवीकी कृपासे इस लोकमें सम्पूर्ण कामनाओंकी प्राप्ति करके अन्तमें देवीके परम सत्यस्वरूप सालोक्यको प्राप्त कर लेता है॥ ५८॥

॥ इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणके अन्तर्गत मानसखण्डमें श्रीमद्देवीभागवतमाहात्म्यका 'देवीभागवतनवाहश्रवणसे इलापुंस्त्वप्राप्तिवर्णन' नामक तीसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३॥

चौथा अध्याय

श्रीमद्देवीभागवतके माहात्म्यके प्रसंगमें रेवती नक्षत्रके पतन और पुनः स्थापनकी कथा तथा श्रीमद्देवीभागवतके श्रवणसे राजा दुर्दमको मन्वन्तराधिप-पुत्रकी प्राप्ति

सूतजी बोले—इस अलौकिक एवं विचित्र कथाको सुनकर पुनः सुननेकी इच्छावाले अगस्त्यजीने बड़ी विनम्रतापूर्वक भगवान् कार्तिकेयसे कहा—॥ १॥

अगस्त्यजी बोले—हे देवसेनापते! हे देव! मैंने यह विचित्र कथा सुन ली, अब आप श्रीमद्देवीभागवतका दूसरा माहात्म्य मुझे बतायें॥ २॥

कार्तिकेयजी बोले—हे मित्रावरुणसे प्रकट होनेवाले मुने! अब आप यह कथा सुनें, जिसके एक अंशमें भागवतकी महिमा कही गयी हो, धर्मका विशद वर्णन किया गया हो और गायत्रीका प्रसंग आरम्भ करके उसकी महिमा दर्शायी गयी हो, उसे भागवतके रूपमें जाना जाता है॥ ३-४॥

यह पुराण देवी भगवतीके माहात्म्यसे परिपूर्ण होनेके कारण देवीभागवत कहा जाता है। वे परा भगवती ब्रह्मा, विष्णु और महेशकी आराध्या हैं॥ ५॥

ऋतवाक् नामसे विख्यात एक महान् बुद्धिसम्पन्न मुनि थे। रेवती नक्षत्रके अन्तिम भाग गण्डान्तयोगमें उनके यहाँ समयानुसार एक पुत्र उत्पन्न हुआ॥ ६॥

उन्होंने उस पुत्रकी जातकर्म आदि क्रियाएँ तथा चूडाकरण एवं उपनयन आदि संस्कार भी विधिपूर्वक सम्पन्न किये॥ ७॥

महात्मा ऋतवाक्के यहाँ जबसे वह पुत्र उत्पन्न हुआ, उसी समयसे वे शोक तथा रोगसे ग्रस्त रहने लगे और क्रोध एवं लोभने उन्हें घेर लिया। उस बालककी माता भी अनेक रोगोंसे ग्रसित होकर नित्य शोकाकुल और अति दुःखी रहने लगीं॥ ८-९॥

मुनि ऋतवाक् अत्यन्त दुःखी और चिन्तित होकर सोचने लगे कि ऐसा क्या कारण है कि मेरे यह अत्यन्त दुर्मति पुत्र उत्पन्न हुआ॥ १०॥

[तरुणावस्थाको प्राप्त होनेपर] उसने किसी मुनिपुत्रकी पत्नीका बलपूर्वक हरण कर लिया। वह दुर्बुद्धि अपने माता-पिताकी शिक्षाओंपर कभी भी ध्यान नहीं देता था॥ ११॥

तदनन्तर अत्यन्त दुःखित मनवाले ऋतवाक्ने यह कहा कि मनुष्योंके लिये पुत्रहीन रह जाना अच्छा है, किंतु कुपुत्रकी प्राप्ति कभी भी ठीक नहीं है॥ १२॥

कुपुत्र स्वर्गमें गये हुए पितरोंको भी नरकमें गिरा देता है। वह जबतक जीवित रहता है, तबतक माता-पिताको केवल कष्ट ही देता रहता है॥ १३॥

अतएव माता-पिताको कष्ट पहुँचानेवाले पापी कुपुत्रके जन्मको धिक्कार है। ऐसा पुत्र मित्रोंका न तो उपकार कर सकता है और न शत्रुओंका अपकार ही॥ १४॥

संसारमें वे मानव धन्य हैं, जिनके घरमें परोपकारपरायण तथा माता-पिताको सुख देनेवाला पुत्र हुआ करता है॥ १५॥

कुपुत्रसे कुल नष्ट हो जाता है, कुपुत्रसे यश नष्ट हो

जाता है और कुपुत्रसे लौकिक तथा पारलौकिक—दोनों जगत्में दुःख तथा नारकीय यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं॥ १६॥

कुपुत्रसे वंश नष्ट हो जाता है, दुष्ट पत्नीसे जीवन नष्ट हो जाता है, विकृत भोजनसे दिन व्यर्थ चला जाता है और दुरात्मा मित्रसे सुख कहाँसे मिल सकता है!॥ १७॥

कार्तिकेयजी बोले—[हे अगस्त्यजी!] अपने दुष्ट पुत्रके दुराचरणोंसे निरन्तर सन्तप्त रहते हुए मुनि ऋतवाक्ने किसी दिन गर्गऋषिके पास जाकर पूछा—॥ १८॥

ऋतवाक् बोले—हे भगवन्! हे ज्योतिषशास्त्रके आचार्य! मैं आपसे अपने पुत्रकी दुःशीलताका कारण पूछना चाहता हूँ। हे प्रभो! आप उसे बतायें॥ १९॥

गुरुकी निरन्तर सेवा करते हुए मैंने विधिपूर्वक वेदाध्ययन किया और ब्रह्मचर्यव्रत पूर्ण करके विधि-विधानके साथ विवाह किया॥ २०॥

अपनी भार्याके साथ मैंने गृहस्थधर्मका सदैव यथोचित पालन किया और विधिपूर्वक पंचयज्ञका अनुष्ठान किया॥ २१॥

हे विप्र! नरकप्राप्तिके भयसे बचनेके लिये पुत्र प्राप्त करनेकी कामनासे मैंने विधिवत् गर्भाधान किया था न कि वासनात्मक सुखप्राप्तिकी इच्छासे॥ २२॥

हे मुने! दुःखदायी, माता-पिताके प्रति उद्दण्ड तथा बन्धु-बान्धवोंको पीड़ा पहुँचानेवाला यह पुत्र मेरे दोषसे अथवा अपनी माताके दोषसे उत्पन्न हुआ?॥ २३॥

तब ज्योतिषशास्त्रके ज्ञाता गर्गाचार्यने मुनि ऋतवाक्का यह वचन सुनकर सभी कारणोंपर सम्यक् रूपसे विचार करके कहा॥ २४॥

गर्गाचार्यजी बोले—हे मुने! इसमें न तो आपका दोष है, न बालककी माताका दोष है और न तो कुलका दोष है। रेवती नक्षत्रका अन्तिम भाग—गण्डान्तयोग ही इस बालककी दुर्विनीतताका कारण है॥ २५॥

हे मुने! अशुभ वेलामें आपके पुत्रका जन्म हुआ है, इसी कारण यह आपको दुःख दे रहा है; इसमें लेशमात्र भी अन्य कोई कारण नहीं है॥ २६॥

अतः हे ब्रह्मन्! इस दुःखके शमनके लिये आप प्रयत्नपूर्वक समस्त दुर्गतियोंका विनाश करनेवाली कल्याणी जगदम्बा दुर्गाकी आराधना कीजिये॥ २७॥

गर्गाचार्यजीका वचन सुनकर ऋतवाक्मुनि क्रोधसे मूर्च्छित हो गये और उन्होंने रेवतीको शाप दे दिया कि वह आकाशसे नीचे गिर जाय॥ २८॥

ऋतवाक्के शाप देते ही चमकता हुआ रेवती नक्षत्र सभी लोगोंके देखते-देखते आकाशसे कुमुदपर्वतपर जा गिरा॥ २९॥

वह कुमुदपर्वत रेवतीके गिरनेके कारण रैवतक नामसे प्रसिद्ध हुआ और उसी समयसे वह अत्यन्त रमणीक हो गया॥ ३०॥

रेवतीको शाप देकर मुनि ऋतवाक्ने महर्षि गर्गद्वारा बताये गये विधानके अनुसार देवी भगवतीकी सम्यक् आराधनाकर सुख और सौभाग्य प्राप्त किया॥ ३१॥

कार्तिकेयजी बोले—[हे अगस्त्यजी!] उस रेवती नक्षत्रके महान् तेजसे एक कन्या उत्पन्न हुई, जो अनुपम रूपवती होनेके कारण लोकमें दूसरी लक्ष्मीकी भाँति प्रतीत हो रही थी॥ ३२॥

रेवती नक्षत्रकी कान्तिसे प्रादुर्भूत उस कन्याको देखकर मुनि प्रमुचने प्रसन्न होकर उसका 'रेवती'—यह नाम रख दिया॥ ३३॥

तदनन्तर ब्रह्मर्षि प्रमुच उसे कुमुदाचलपर स्थित अपने आश्रममें ले आये और पुत्रीकी भाँति उसका धर्मपूर्वक पालन-पोषण करने लगे॥ ३४॥

समय पाकर यौवनको प्राप्त उस रूपवती कन्याको देखकर मुनिने विचार किया कि इस कन्याके योग्य वर कौन होगा?॥ ३५॥

बहुत अन्वेषणके बाद भी जब मुनिको उसके योग्य कोई वर नहीं मिला, तब वे अग्निशालामें प्रवेश करके अग्निदेवकी स्तुति करने लगे॥ ३६॥

प्रमुचऋषिके स्तुति-गानसे प्रसन्न होकर अग्निदेवने कन्याके योग्य वरका संकेत करते हुए कहा—हे मुने! इस कन्याके पति धर्मपरायण, बलशाली, वीर, प्रिय भाषण करनेवाले और अपराजेय राजा दुर्दम होंगे। तब अग्निदेवके इस वचनको सुनकर मुनि अत्यन्त प्रसन्न हुए॥ ३७-३८॥

संयोगसे उसी समय आखेटके बहाने दुर्दम नामक प्रतिभाशाली राजा मुनि प्रमुचके आश्रममें आ गये॥ ३९॥

बलवान् तथा अप्रतिम ओजसे सम्पन्न वे प्रियव्रतके वंशज राजा दुर्दम विक्रमशीलके पुत्र थे और कालिन्दीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे॥ ४०॥

मुनिके आश्रममें प्रवेशकर और उन्हें वहाँ न देखकर राजा दुर्दमने रेवतीको 'प्रिये'—इस शब्दसे सम्बोधित करके पूछा॥ ४१॥

राजा बोले—हे प्रिये! महर्षि भगवान् प्रमुच इस आश्रमसे कहाँ गये हुए हैं? हे कल्याणि! मुझे सच-सच बताओ; मैं उनके चरणोंका दर्शन करना चाहता हूँ॥ ४२॥

कन्या बोली—हे महाराज! महामुनि अग्निशालामें गये हुए हैं। राजा भी यह वचन सुनकर शीघ्रतापूर्वक आश्रमसे बाहर निकल आये॥ ४३॥

इसके बाद प्रमुचमुनिने राजलक्षणसम्पन्न एवं विनयावनत राजा दुर्दमको अग्निशालाके द्वारपर स्थित देखा॥ ४४॥

मुनिको देखकर राजाने प्रणाम किया और तदनन्तर मुनि प्रमुचने शिष्यसे कहा—हे गौतम! ये राजा अर्घ्य पानेके योग्य हैं, अतः शीघ्र ही इनके लिये अर्घ्य ले आओ। बहुत दिन बाद ये पधारे हुए हैं और विशेषरूपसे ये हमारे जामाता हैं—ऐसा कहकर मुनिने राजाको अर्घ्य प्रदान किया और राजाने भी विचार करते हुए उसे ग्रहण किया॥ ४५-४६॥

तत्पश्चात् राजाके अर्घ्य ग्रहण करके आसनपर बैठ जानेके उपरान्त मुनि प्रमुचने उन्हें आशीर्वचनोंसे अभिनन्दित करके उनका कुशल-क्षेम पूछा—हे राजन्! आप स्वस्थ तो हैं? आपकी सेना, कोष, बन्धु-बान्धव, सेवकगण, सचिव, नगर, देश आदिकी सर्वविध कुशलता तो है? हे नरेश! आपकी भार्या तो यहीं विद्यमान है और वह सकुशल है। अतएव, मैं उसकी कुशलता नहीं पूछूँगा, आप अपनी अन्य स्त्रियोंका कुशल-क्षेम बताइये॥ ४७-४९॥

राजा बोले—हे भगवन्! आपके कृपाप्रभावसे मेरी सर्वविध कुशलता है। हे ब्रह्मन्! अब मेरी यह जिज्ञासा है कि मेरी कौन-सी भार्या यहाँ है?॥ ५०॥

ऋषि बोले—हे पृथ्वीपते! संसारमें अप्रतिम लावण्यसे सम्पन्न रेवती नामक आपकी पत्नी यहाँ ही रहती है। क्या आप उसे नहीं जानते?॥ ५१॥

राजा बोले—हे प्रभो! सुभद्रा आदि मेरी पत्नियाँ तो घरपर ही हैं। हे भगवन्! मैं तो केवल उन्हें ही जानता हूँ। मैं रेवतीको तो नहीं जानता॥ ५२॥

ऋषि बोले—हे महामते! हे राजन्! इसी समय 'प्रिये' के सम्बोधनसे आपने जिससे पूछा था, अपनी उस योग्यतम प्रियाको आपने क्षणभरमें ही भुला दिया!॥ ५३॥

राजा बोले—हे मुने! आपने जो कहा, वह असत्य नहीं है; किंतु मैंने तो सामान्यरूपसे ऐसा कह दिया था। इसमें मेरा कोई दूषित भाव नहीं था, अतः आप मेरे ऊपर क्रोध न करें॥ ५४॥

ऋषि बोले—हे राजन्! आपका भाव दूषित नहीं था अपितु आपने सत्य ही कहा था। अग्निदेवके द्वारा प्रेरित किये जानेपर ही आपने ऐसा कहा था॥ ५५॥

'इसका पति कौन होगा'—ऐसा मेरे द्वारा आज अग्निदेवसे पूछे जानेपर उन्होंने कहा था कि इसके पति निश्चितरूपसे राजा दुर्दम ही होंगे॥ ५६॥

हे महीपते! अतः मेरे द्वारा प्रदत्त इस कन्याको आप स्वीकार कीजिये। आप इसे 'प्रिये' ऐसा सम्बोधित भी कर चुके हैं। अतएव अब शंकारहित होकर किसी अन्य विचारमें न पड़ें॥ ५७॥

मुनिका यह वचन सुनकर राजा दुर्दम चिन्तन करते हुए चुप हो गये और मुनि उनके वैवाहिक अनुष्ठानकी तैयारीमें जुट गये॥ ५८॥

इसके बाद विवाह-कार्यके लिये मुनिको तत्पर देखकर रेवतीने कहा—हे तात! आप मेरा विवाह रेवती नक्षत्रमें ही सम्पन्न करायें॥ ५९॥

ऋषि बोले—वत्से! विवाहके योग्य अन्य बहुत-से नक्षत्र हैं। रेवती नक्षत्रमें विवाह कैसे होगा; क्योंकि रेवती तो आकाशमें स्थित है ही नहीं॥ ६०॥

कन्या बोली—रेवती नक्षत्रके अतिरिक्त अन्य कोई भी नक्षत्र मेरे विवाहके लिये उचित नहीं है। अतः मैं प्रार्थना करती हूँ कि आप मेरा विवाह रेवती नक्षत्रमें ही

करें॥ ६१॥

ऋषि बोले—पूर्वकालमें मुनि ऋतवाक्ने रेवती नक्षत्रको पृथ्वीपर गिरा दिया था। इस प्रकार अन्य नक्षत्रमें यदि तुम्हारी श्रद्धा नहीं है, तब तुम्हारा विवाह कैसे होगा?॥ ६२॥

कन्या बोली—तात! क्या केवल एक ऋतवाक्ने ही तपश्चर्या की है? क्या आपने मन-वचन-कर्मसे ऐसी तप:साधना नहीं की है?॥ ६३॥

हे पिताजी! मैं आपके तपोबलको जानती हूँ; आप जगत्की सृष्टि करनेमें समर्थ हैं। अत: आप अपने तपके प्रभावसे रेवतीको पुनः आकाशमें स्थापित करके उसी नक्षत्रमें मेरा विवाह कीजिये॥ ६४॥

ऋषि बोले—तुम्हारा कल्याण हो। तुम जैसा मुझसे कह रही हो, वैसा ही होगा, तुम्हारे हितार्थ मैं आज ही रेवती नक्षत्रको सोममार्ग (नक्षत्र-मण्डल)-में स्थापित करूँगा॥ ६५॥

कार्तिकेयजी बोले—हे अगस्त्यजी! ऐसा कहकर मुनिने अपने तपोबलसे शीघ्र ही पूर्वकी भाँति रेवती नक्षत्रको फिरसे नक्षत्र-मण्डलमें स्थापित कर दिया॥ ६६॥

तदनन्तर मुनि प्रमुचने रेवती नक्षत्रमें वैवाहिक विधिके अनुसार महात्मा राजा दुर्दमको वह रेवती कन्या सौंप दी॥ ६७॥

इस प्रकार कन्याका विवाह कर देनेके उपरान्त मुनिने राजासे कहा—हे वीर! तुम्हारी क्या अभिलाषा है? मुझे बताओ, मैं उसे पूरी करूँगा॥ ६८॥

राजा बोले—हे मुने! मैं स्वायम्भुव मनुके वंशमें उत्पन्न हुआ हूँ, अत: मैं यही कामना करता हूँ कि आपकी कृपासे मुझे मन्वन्तराधिपति पुत्रकी प्राप्ति हो॥ ६९॥

मुनि बोले—यदि आपकी यह अभिलाषा है तो आप देवी भगवतीकी आराधना कीजिये। ऐसा करनेपर आपका पुत्र मनु अवश्य ही मन्वन्तराधिपति होगा॥ ७०॥

श्रीमद्देवीभागवत जो पंचम पुराणके रूपमें विख्यात है, उसका पाँच बार श्रवण करनेके उपरान्त आपको मनोवांछित पुत्र प्राप्त होगा॥ ७१॥

रेवतीके गर्भसे उत्पन्न रैवत नामवाला पाँचवाँ मनु वेदवेत्ता, शास्त्रोंके तत्त्वोंको जाननेवाला, धर्मपरायण तथा अपराजेय होगा॥ ७२॥

मुनि प्रमुचके इस प्रकार कहनेपर प्रसन्न होकर प्रतिभासम्पन्न राजा दुर्दमने मुनिको प्रणाम किया और वे भार्या रेवतीके साथ अपने नगर चले गये॥ ७३॥

महामति राजा दुर्दमने अपने पिता-पितामहसे प्राप्त राज्यपर शासन किया और उस धर्मात्माने औरस पुत्रोंकी भाँति अपनी प्रजाओंका पालन किया॥ ७४॥

एक बार उनके यहाँ महात्मा लोमशऋषि पधारे। राजा दुर्दमने उन्हें प्रणाम किया और उनका विधिवत् पूजनकर दोनों हाथ जोड़कर कहा॥ ७५॥

राजा बोले—हे भगवन्! हे मुने! यदि आप कृपा करें तो मैं पुत्र-प्राप्तिकी कामनासे आपसे देवीभागवत नामक पुराण सुनना चाहता हूँ॥ ७६॥

राजाका यह वचन सुनकर लोमशमुनि प्रसन्न हो गये और बोले—हे राजन्! आप धन्य हैं; क्योंकि तीनों लोकोंकी जननी देवी भगवतीमें आपकी ऐसी भक्ति हो गयी है। देव, दानव तथा मानवकी आराध्या परा भगवती जगदम्बामें यदि आपकी भक्ति उत्पन्न हुई है तो आपकी कार्य-सिद्धि अवश्य होगी॥ ७७-७८॥

अतएव हे राजन्! मैं आपको श्रीमद्देवीभागवत सुनाऊँगा, जिसके सुननेमात्रसे कुछ भी दुष्प्राप्य नहीं रह जाता॥ ७९॥

हे ब्रह्मन्! ऐसा कहकर मुनिने किसी शुभ दिनमें कथाका आरम्भ किया। अपनी पत्नीके साथ राजाने पाँच बार श्रीमद्देवीभागवतपुराणका विधिवत् श्रवण किया॥ ८०॥

कथा-समाप्तिके दिन धर्मनिष्ठ राजा दुर्दमने अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक श्रीमद्देवीभागवतपुराण तथा लोमशमुनिकी पूजा की॥ ८१॥

राजाने नवार्णमन्त्रसे हवन करके कुमारी कन्याओंको भोजन कराया और सपत्नीक ब्राह्मणोंको प्रभूत दक्षिणादानद्वारा संतुष्ट किया॥ ८२॥

कुछ समय बीत जानेपर भगवतीकी कृपासे उस रानी रेवतीने लोककल्याणकारी गर्भ धारण किया॥ ८३॥

इसके बाद जब समस्त ग्रह-नक्षत्र अपने-अपने अनुकूल स्थानोंपर थे और सभी मांगलिक कृत्य सम्पन्न हो गये थे—ऐसे शुभ समयमें रेवतीने पुत्रको जन्म दिया॥ ८४॥

पुत्रके जन्मका समाचार सुनकर राजा दुर्दम अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने स्नान करके स्वर्ण-कलशके जलसे पुत्रका जातकर्म आदि संस्कार सम्पन्न किया॥ ८५॥

तदनन्तर राजाने विधिपूर्वक दान देकर ब्राह्मणोंको

संतुष्ट किया। समयपर पुत्रका उपनयन-संस्कार करके राजाने अपने पुत्रको अंगोंसहित वेदोंका अध्ययन कराया॥ ८६॥

इस प्रकार राजाका वह रैवत नामक तेजस्वी पुत्र समग्र विद्याओंका निधान, धर्मपरायण, अस्त्रविशारदोंमें श्रेष्ठ, धर्मका वक्ता तथा धर्मका पालनकर्ता हो गया॥ ८७॥

इसके बाद ब्रह्माजीने रैवतको मनुके पदपर नियुक्त किया और वे श्रीमान् मन्वन्तराधिपके रूपमें धर्मपूर्वक पृथ्वीपर शासन करने लगे॥ ८८॥

इस प्रकार मैंने देवी भगवतीके इस प्रभावका संक्षिप्तरूपसे वर्णन कर दिया। इस श्रीमद्देवीभागवतपुराणके माहात्म्यका विस्तारपूर्वक वर्णन करनेमें कौन समर्थ है?॥ ८९॥

सूतजी बोले—[हे ब्राह्मणो!] इस प्रकार श्रीमद्देवी-भागवतका माहात्म्य तथा उसकी विधि सुनकर और कुमार कार्तिकेयकी पूजाकर अगस्त्यजी अपने आश्रम चले आये॥ ९०॥

हे विप्रो! मैंने आपलोगोंके समक्ष श्रीमद्देवीभागवतका यह माहात्म्य कह दिया। जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक इसका श्रवण तथा पाठ करता है, वह इस लोकमें सम्पूर्ण भोगोंका सुख प्राप्त करके अन्तमें मोक्ष प्राप्त करता है॥ ९१॥

॥ इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणके अन्तर्गत मानसखण्डमें श्रीमद्देवीभागवतमाहात्म्यका 'रैवतनामकमनुपुत्रोत्पत्तिवर्णन' नामक चौथा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४॥

पाँचवाँ अध्याय

श्रीमद्देवीभागवतपुराणकी श्रवण-विधि, श्रवणकर्ताके लिये पालनीय नियम, श्रवणके फल तथा माहात्म्यका वर्णन

ऋषियोंने कहा—हे महाभाग सूतजी! हमलोगोंने श्रीमद्देवीभागवतमाहात्म्य सुन लिया और अब इस पुराणके श्रवणकी विधि सुनना चाहते हैं॥ १॥

सूतजी बोले—हे मुनियो! अब आपलोग इस पुराणके श्रवणका विधान सुनें, जिसे सुननेवाले मनुष्योंकी समस्त कामनाएँ सिद्ध हो जाती हैं॥ २॥

पुराणश्रवणके इच्छुक विद्वान् मनुष्यको चाहिये कि वह सर्वप्रथम ज्योतिषीको बुलाकर शुभ मुहूर्त निर्धारित कर ले। इसके लिये ज्येष्ठमाससे लेकर छः महीने शुभकारक होते हैं॥ ३॥

हस्त, अश्विनी, मूल, पुष्य, रोहिणी, अनुराधा, मृगशिरा तथा श्रवण नक्षत्र, पुण्य तिथि तथा शुभ दिनमें श्रीमद्देवीभागवतपुराणका श्रवण कल्याणकारी होता है॥ ४॥

जिस नक्षत्रमें बृहस्पति हों, उससे चन्द्रमातक गिननेपर क्रमशः इस प्रकार फल होते हैं—चार नक्षत्रतक धर्म-प्राप्ति, पुनः चारतक लक्ष्मीकी प्राप्ति, इसके बाद एक नक्षत्र कथामें सिद्धि प्रदान करनेवाला, फिर पाँच नक्षत्र परम सुखकी प्राप्ति करानेवाले, बादमें छः नक्षत्र पीड़ा करनेवाले, इसके बाद चार नक्षत्र राज-भय उत्पन्न करनेवाले और तत्पश्चात् तीन नक्षत्र ज्ञान-प्राप्तिमें सहायक होते हैं। पुराण-श्रवणके आरम्भमें शिवोक्त चक्रका शोधन कर लेना चाहिये॥ ५-६॥

देवीकी प्रसन्नताके लिये इसे चारों नवरात्रोंमें* सुनना चाहिये अथवा तिथि, वार और नक्षत्रपर सम्यक् विचार करके यह पुराण अन्य मासोंमें भी सुना जा सकता है॥ ७॥

विवाह आदिमें जिस प्रकार [उत्साहपूर्वक] तैयारी की जाती है, उसी प्रकार नवाह-यज्ञके अवसरपर भी बुद्धिमान् मनुष्योंको प्रयत्नपूर्वक सामग्री आदिकी तैयारी करनी चाहिये॥ ८॥

पाखण्ड तथा लोभसे रहित, चतुर, उदार एवं देवीभक्त सज्जनोंको भी सहायकके रूपमें लेना चाहिये॥ ९॥

देश-देशमें भी यत्नपूर्वक यह सन्देश भेजना चाहिये—[हे कथानुरागी सज्जनो!] यहाँ श्रीमद्देवीभागवतकी कथा होने जा रही है, आप अवश्य पधारें॥ १०॥

चाहे सूर्यकी उपासना करनेवाले हों, चाहे गणेशभक्त

* सामान्यतः नवरात्र चार हैं—१-चैत्र शुक्ल प्रतिपदासे दशमीतक, २-आषाढ़ शुक्ल प्रतिपदासे दशमीतक (इसी नवरात्रके बाद हरिशयनी एकादशी), ३-आश्विन शुक्ल प्रतिपदासे विजयादशमीतक (इसके बाद कार्तिक शुक्ल एकादशी देवोत्थानी—प्रबोधिनी एकादशी) तथा ४-माघ शुक्ल प्रतिपदासे दशमीतक सारस्वत-नवरात्र।

हों, चाहे शैव हों, चाहे वैष्णव अथवा शक्तिके उपासक हों, सभी इस कथाके श्रवणके अधिकारी हैं; क्योंकि सभी देवता शक्तिके साथ ही रहते हैं॥ ११॥

इसलिये श्रीमद्देवीभागवतकी कथारूपी सुधाके रसिक प्रेमीजनोंको कथाश्रवणके लिये विशेषरूपसे आना चाहिये॥ १२॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र—चारों वर्णके स्त्री, पुरुष एवं ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ, संन्यास—इन चारों आश्रमोंमें निरत मनुष्योंको चाहे सकामभावसे अथवा निष्कामभावसे—अवश्य ही इस कथा-सुधाका पान करना चाहिये॥ १३॥

जिन लोगोंको पूरे नौ दिनतक कथा सुननेका अवकाश न मिल सके, वे जब भी समय मिले तभी आ जायँ; क्योंकि यज्ञमें क्षणभर भी पहुँच जाना विशेष पुण्यदायक होता है॥ १४॥

बड़ी नम्रताके साथ मनुष्योंको निमन्त्रण देना चाहिये और आये हुए श्रोताओंके बैठनेका भी समुचित प्रबन्ध करना चाहिये॥ १५॥

विस्तृत भूमिमें कथा-प्रवचनका सुन्दर स्थान बनाना चाहिये। उस स्थानकी सफाई कराकर गोबरसे लिपवा देना चाहिये। केलेके स्तम्भोंसे सुशोभित और ध्वज-पताकाओंसे अलंकृत एक सुरम्य मण्डपका निर्माण करना चाहिये और उसके ऊपर सुन्दर चाँदनी लगा देनी चाहिये॥ १६-१७॥

कथावाचकका आसन दिव्य तथा सुखकर आस्तरणसे युक्त होना चाहिये। उसे प्रयत्नपूर्वक पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख रखना चाहिये॥ १८॥

कथाश्रवणके लिये आनेवाले पुरुष तथा स्त्री श्रोताओंके लिये भी यथायोग्य पृथक्-पृथक् आसनोंकी व्यवस्था करनी चाहिये॥ १९॥

वक्तृत्वसम्पन्न, संयमी, शास्त्रज्ञ, देवीकी आराधनामें तत्पर, दयालु, लोभहीन, दक्ष तथा धैर्यशाली कथावाचक उत्तम माना गया है॥ २०॥

इसी प्रकार श्रोता भी ऐसा होना चाहिये जो ब्राह्मणसेवी, देवभक्त, कथा-रसका पान करनेवाला, उदार, लोभरहित, विनम्र और हिंसा आदिसे रहित हो॥ २१॥

पाखण्डी, लोभी, स्त्रीस्वभाव, कामी, धर्मका दिखावामात्र करनेवाला, निष्ठुर तथा क्रोधी वक्ता देवीभागवतके नवाहयज्ञमें श्रेष्ठ नहीं माना जाता है॥ २२॥

श्रोताओंकी शंकाओंके निवारणहेतु कथावाचकके साथ एक ऐसा सहायक भी लगा देना चाहिये, जो पण्डित, गुणवान्, शान्त तथा श्रोताओंको समझानेमें कुशल हो॥ २३॥

कथा प्रारम्भ होनेके एक दिन पूर्व ही वक्ता एवं श्रोतागणोंको क्षौरकर्म करा लेना चाहिये। तत्पश्चात् अन्यान्य नियमोंका पालन करना चाहिये॥ २४॥

उस दिन शौचादिसे निवृत्त हो अरुणोदयवेलामें ही स्नान कर लेना चाहिये। सन्ध्या तथा तर्पण आदि नित्यकर्म संक्षेपमें ही करना चाहिये॥ २५॥

तत्पश्चात् कथाश्रवणका अधिकारी बननेके लिये गोदान करे और सब विघ्नोंको दूर करनेवाले श्रीगणेशजीका सर्वप्रथम पूजन करे। कलश-स्थापन करके वहाँ दस दिक्पालों, बटुक, क्षेत्रपाल, सभी योगिनियों और मातृकाओंका भी पूजन करे। तुलसी, नवग्रह, विष्णु तथा शिवजीका पूजन करके नवाक्षरमन्त्रसे जगदम्बाका पूजन करना चाहिये॥ २६—२८॥

तत्पश्चात् सुन्दर अक्षरोंमें लिखी हुई भगवतीकी वाङ्मयी मूर्तिस्वरूप श्रीमद्देवीभागवतपुस्तककी सभी उपचारोंसे विधिवत् पूजा करके कथाकी निर्विघ्न समाप्तिके लिये पाँच विद्वान् ब्राह्मणोंका वरण करना चाहिये। उनसे निरन्तर नवार्णमन्त्रका जप एवं दुर्गासप्तशतीका पाठ कराना चाहिये॥ २९-३०॥

अन्तमें प्रदक्षिणा तथा नमस्कारके बाद इस प्रकार स्तुति करे—'हे कात्यायनि! हे महामाये! हे भुवनेश्वरि! हे कृपामये! हे भवानि! मैं संसार-सागरमें डूब रहा हूँ; मेरा उद्धार कीजिये तथा हे ब्रह्मा, विष्णु, महेशसे पूजनीया माता जगदम्बिके! मेरे ऊपर प्रसन्न होइये। हे देवि! आप मुझे मनोवांछित वर प्रदान कीजिये; आपको बार-बार प्रणाम है। इस प्रकार प्रार्थना करके स्वस्थचित्त होकर कथा सुने॥ ३१—३३॥

उस समय संयतचित्त होकर वक्ताको साक्षात् व्यास समझकर विधिवत् उनकी पूजा करे और वस्त्राभूषण तथा माला आदि पहनाकर उनसे प्रार्थना करे—'समस्त शास्त्र तथा पुराणेतिहासके ज्ञाता हे व्यासजी! आपको नमस्कार है। आप कथारूपी चन्द्रमाकी ज्योतिसे हमारे अन्तःकरणके अन्धकारसमूहको नष्ट कीजिये'॥ ३४-३५॥

इसके बाद नवाहके नियमोंका व्रत ले और ब्राह्मणोंका यथाशक्ति पूजन करके उन्हें पहले यथास्थान बैठा दे,

तत्पश्चात् स्वयं भी अपने आसनपर बैठ जाय॥ ३६॥

तब सावधान मनसे चारों पुरुषार्थ (धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष)-फलको प्राप्त करनेके लिये पुत्र-कलत्र, धन-धान्य तथा गृहकी चिन्ता छोड़कर कथा सुने॥ ३७॥

विद्वान् वक्ताको चाहिये कि वह सूर्योदयसे आरम्भ करके पुनः दोपहरमें दो घड़ी विश्राम करके सूर्यास्तके कुछ समय पहलेतक कथा-वाचन करे॥ ३८॥

मल-मूत्रके वेगको रोकनेके लिये स्वल्पाहार उत्तम होता है। कथार्थीको दिन-रातमें केवल एक बार हविष्यान्नका भोजन करना ही ठीक है; अथवा फलाहार करे या केवल दूध-घीके आहारपर ही रहे। बुद्धिमान्‌को चाहिये कि ऐसा आहार ग्रहण करे, जिससे कथामें किसी प्रकारकी बाधा न हो॥ ३९-४०॥

हे द्विजगण! अब मैं कथाश्रवणमें निष्ठा रखनेवालोंके नियम बताता हूँ। जो लोग ब्रह्मा, विष्णु और शिवमें भेददृष्टि रखते हैं, देवीकी भक्तिसे रहित हैं, जो पाखण्डी, हिंसक तथा दुष्ट हैं और जो ब्राह्मणोंसे द्वेष रखनेवाले तथा नास्तिक हैं, वे कथाश्रवणके योग्य नहीं हैं॥ ४१-४२॥

जो परस्त्री, पराया धन, ब्राह्मणधन तथा देवसम्पत्तिके हरणमें लुब्ध रहते हैं, उनका कथाश्रवणमें अधिकार नहीं है॥ ४३॥

श्रोताको चाहिये कि वह ब्रह्मचर्यका पालन करे, पृथ्वीपर सोये, सत्य बोले, जितेन्द्रिय रहे तथा कथाकी समाप्तिपर संयमपूर्वक पत्तलपर भोजन करे॥ ४४॥

व्रतीको बैगन, बहेड़ा (कलिन्द), तेल, दाल, मधु और जला हुआ, बासी तथा भावदूषित अन्नका त्याग कर देना चाहिये॥ ४५॥

कथा सुननेवाला व्रती मांस, मसूर, रजस्वला स्त्रीका देखा हुआ खाद्यान्न, लहसुन, मूली, हींग, प्याज, गाजर, कोहड़ा और करमीका साग न खाये। काम, क्रोध, मद, लोभ, पाखण्ड और अहंकारको छोड़ दे॥ ४६-४७॥

विप्रद्रोही, पतित, संस्कारहीन, चाण्डाल, यवन, अन्त्यज, रजस्वला स्त्री और वेदविहीन मनुष्योंसे कथाव्रतीको वार्तालाप नहीं करना चाहिये॥ ४८॥

श्रोताको चाहिये कि वह वेद, गौ, गुरु, ब्राह्मण, स्त्री, राजा, महापुरुष, देवताओं और देवभक्तोंकी निन्दा कभी न सुने॥ ४९॥

जो कथाव्रती हो उसे सर्वदा विनयशील, सरलचित्त, पवित्र, दयालु, कम बोलनेवाला तथा उदार मनवाला होना चाहिये॥ ५०॥

श्वेतकुष्ठी, कुष्ठी, क्षयरोगी, अभागा, पापी, दरिद्र तथा सन्तानहीन मनुष्य इस कथाको भक्तिपूर्वक सुने॥ ५१॥

जो स्त्री वन्ध्या, काकवन्ध्या (जिस स्त्रीको एक बार सन्तान होकर बन्द हो जाय), अभागिन तथा मृतवत्सा हो और जिसका गर्भ गिर जाता हो, ऐसी सभी स्त्रियोंको इस देवीभागवतकथाका श्रवण करना चाहिये॥ ५२॥

जो मनुष्य बिना परिश्रमके ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्त करना चाहता है, वह यत्नपूर्वक इस देवीभागवतकी कथा अवश्य सुने॥ ५३॥

इस नवाहकथाके नौ दिन नौ यज्ञोंके समान हैं। उनमें किया गया दान, हवन तथा जप अनन्त फल देनेवाला होता है॥ ५४॥

इस प्रकार नवाहव्रत करके उसका उद्यापन करना चाहिये। फलकी कामना करनेवाले पुरुषोंको महाष्टमीव्रतके उद्यापनकी भाँति नवाहव्रतका भी उद्यापन करना चाहिये॥ ५५॥

निष्काम व्यक्ति कथाके श्रवणमात्रसे पवित्र होकर मुक्ति पा जाते हैं; क्योंकि परा भगवती मनुष्योंको भोग और मोक्ष सब कुछ देनेवाली हैं॥ ५६॥

पुस्तक और कथावाचक—दोनोंकी प्रतिदिन पूजा करनी चाहिये और वक्ताद्वारा दिया हुआ प्रसाद भक्तिपूर्वक ग्रहण करना चाहिये॥ ५७॥

नवाह-यज्ञमें जो श्रोता नित्य कुमारी कन्याओं, सुहागिन स्त्रियों तथा ब्राह्मणोंको भोजन कराता तथा उनसे प्रार्थना करता है, उसकी कार्यसिद्धि अवश्य हो जाती है, इसमें सन्देह नहीं है॥ ५८॥

सभी त्रुटियोंकी शान्तिके निमित्त कथासमाप्तिके दिन गायत्रीसहस्रनाम अथवा विष्णुसहस्रनामका पाठ करना चाहिये॥ ५९॥

जिनके स्मरण तथा नामकीर्तनसे तप, यज्ञ, क्रिया आदिमें न्यूनता समाप्त हो जाती है, उन विष्णुभगवान्‌का नाम-कीर्तन करना चाहिये॥ ६०॥

कथासमाप्तिके दिन दुर्गासप्तशतीके मन्त्रोंसे अथवा देवीमाहात्म्यके मूलपाठसे या नवार्ण* मन्त्रसे होम करना

* ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे।

चाहिये अथवा घृतसहित पायसद्वारा गायत्री मन्त्रका उच्चारण करके हवन करे; क्योंकि यह श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण गायत्रीमय कहा गया है॥ ६१-६२॥

कथावाचकको वस्त्र, भूषण, धन आदिके द्वारा सन्तुष्ट करे; क्योंकि कथावाचकके प्रसन्न होनेपर सभी देवता उसपर प्रसन्न हो जाते हैं॥ ६३॥

श्रद्धापूर्वक ब्राह्मणोंको भोजन कराये और नानाविध दक्षिणाओंसे उन्हें सन्तुष्ट करे; क्योंकि वे विप्र पृथ्वीपर देवताके स्वरूप हैं। उनके सन्तुष्ट होनेपर वांछित फल प्राप्त होता है॥ ६४॥

सुहागिन स्त्रियों तथा कुमारी कन्याओंको साक्षात् देवी समझकर उन्हें भोजन कराये और उन्हें दक्षिणा देकर अपने मनोरथकी सिद्धिके लिये प्रार्थना करे॥ ६५॥

सुवर्ण, दूध देनेवाली गौ, हाथी, घोड़े और भूमिका दान करना चाहिये; क्योंकि उसका अक्षय फल होता है॥ ६६॥

सुन्दर अक्षरोंमें लिखी देवीभागवतकी पुस्तकको रेशमी-वस्त्रमें लपेटकर उसे सुवर्णनिर्मित सिंहासनपर रखकर अष्टमी या नवमी तिथिको विधिपूर्वक कथावाचकको दान करना चाहिये। ऐसा करनेसे वह इस संसारमें सभी सुखोंको भोगकर अन्तमें दुर्लभ मोक्ष प्राप्त करता है॥ ६७-६८॥

पुराणको जाननेवाला वक्ता चाहे दरिद्र हो, दुर्बल हो, बालक हो, युवक हो अथवा वृद्ध हो, वह सर्वदा वन्दनीय पूज्य एवं मान्य होता है॥ ६९॥

यद्यपि संसारमें जन्म अथवा गुणके कारण अनेक गुरु हैं, परंतु पुराणका ज्ञाता उन सबमें श्रेष्ठ गुरु है॥ ७०॥

व्यासके आसनपर बैठा हुआ पौराणिक ब्राह्मण जबतक कथा समाप्त न हो जाय, तबतक किसीको भी प्रणाम न करे॥ ७१॥

जो लोग इस दिव्य पौराणिक कथाको श्रद्धारहित होकर सुनते हैं, उन दुःख तथा दारिद्र्य-युक्त मनुष्योंको कथाश्रवणका पुण्य-फल प्राप्त नहीं होता॥ ७२॥

जो लोग ताम्बूल, पुष्प आदि उपचारोंसे पुराणका पूजन किये बिना ही देवीकी कथा सुनते हैं, वे दरिद्र होते हैं और जो लोग कथाके बीचमें ही उसे छोड़कर अन्यत्र चले जाते हैं, कुछ ही समय बाद उनकी सम्पदाएँ एवं स्त्री आदि नष्ट हो जाती हैं॥ ७३-७४॥

जो अभिमानवश व्याससे ऊँचे स्थानपर बैठकर कथा सुनते हैं, वे नरक-यातना भोगकर इस लोकमें कौएकी योनि पाते हैं॥ ७५॥

जो बहुमूल्य आसनपर अथवा वीरासनसे बैठकर दिव्य कथाका श्रवण करते हैं, वे 'अर्जुन' वृक्ष होते हैं॥ ७६॥

कथा होते समय जो लोग व्यर्थ तर्क-वितर्क करते हैं, वे इस लोकमें पहले गर्दभयोनिमें तत्पश्चात् गिरगिटकी योनिमें जाते हैं॥ ७७॥

जो लोग पुराण जाननेवालोंकी अथवा पापनाशिनी कथाकी निन्दा करते हैं, वे सैकड़ों जन्मतक दुष्ट कुत्ते होते हैं; इसमें सन्देह नहीं है॥ ७८॥

जो लोग कथावाचकके बराबर आसनपर बैठकर कथा सुनते हैं, उन्हें गुरुके आसनपर बैठनेका पाप लगता है और वे नरकमें वास करते हैं। जो लोग वक्ताको प्रणाम किये बिना ही कथा सुनने लगते हैं, वे जन्मान्तरमें विषैले वृक्ष होते हैं। इसी प्रकार जो लोग लेटे-लेटे कथा सुनते हैं; वे अजगर, साँपकी योनि पाते हैं॥ ७९-८०॥

जो मनुष्य कभी भी पुराणकी कथा नहीं सुनते, वे घोर नरक भोगकर बनैले सूअरकी योनिमें जाते हैं। जो शठ मनुष्य कथाका अनुमोदन नहीं करते अपितु उसमें विघ्न डाला करते हैं, वे करोड़ों वर्षोंतक नरक-यातना भोगकर अन्तमें ग्रामसूकर होते हैं॥ ८१-८२॥

जो लोग पुराणवेत्ताको आसन, पात्र, द्रव्य, फल, वस्त्र तथा कम्बल प्रदान करते हैं, वे भगवान्के परम पदको प्राप्त करते हैं॥ ८३॥

जो मनुष्य पुराणपुस्तकके लिये नवीन रेशमी वस्त्र तथा सुन्दर सूत्रका दान करते हैं, वे सुखी रहते हैं॥ ८४॥

सभी पुराणोंके सुननेसे जो फल प्राप्त होता है, उससे सौगुना पुण्य श्रीमद्देवीभागवतपुराणके श्रवणसे होता है॥ ८५॥

जिस प्रकार नदियोंमें गंगा श्रेष्ठ हैं; देवताओंमें शिव, काव्योंमें वाल्मीकीय रामायण तथा तेजस्वियोंमें भगवान् सूर्य श्रेष्ठ हैं; और जैसे आनन्द देनेवालोंमें चन्द्रमा, सब धनोंमें सुयश, क्षमाशीलोंमें पृथ्वी, गम्भीरतामें समुद्र, मन्त्रोंमें

गायत्री तथा पापनाशके उपायोंमें भगवत्स्मरण श्रेष्ठ है, उसी प्रकार अठारहों पुराणोंमें यह श्रीमद्देवीभागवतपुराण सर्वश्रेष्ठ है॥ ८६—८८॥

जिस किसी भी उपायसे यदि कोई मनुष्य इस महापुराणकी नौ आवृत्तियाँ सुन ले तो उसके फलका वर्णन नहीं किया जा सकता, वह तो जीवन्मुक्त ही हो जाता है॥ ८९॥

किसी शत्रु राजासे भय होनेपर, महामारीके समय, अकाल पड़नेपर तथा राष्ट्र-भंगके अवसरपर उसकी शान्तिके लिये यह पुराण सुनना चाहिये॥ ९०॥

हे विप्रो! भूत-प्रेतादिके शमनके लिये, शत्रुसे राज्य प्राप्त करनेके लिये और पुत्र-प्राप्तिके लिये श्रीमद्देवीभागवतका श्रवण करना चाहिये॥ ९१॥

जो देवीभागवतके आधे श्लोक या चौथाई श्लोकको भी प्रतिदिन सुनता या पढ़ता है, वह परमगतिको प्राप्त होता है॥ ९२॥

स्वयं भगवती जगदम्बाने इस पुराणको सर्वप्रथम केवल आधे श्लोकमें ही प्रकाशित किया, वही बादमें शिष्य-प्रशिष्योंके द्वारा देवीभागवतके रूपमें विस्तृत कर दिया गया॥ ९३॥

गायत्रीसे बढ़कर न कोई धर्म है, न तप है, न कोई देवता है और न कोई मन्त्र ही है॥ ९४॥

भगवती अपना गुणगान करनेवालेकी रक्षा करती हैं, इसी कारणसे उन्हें गायत्री कहा जाता है। वे भगवती गायत्री इस पुराणमें अपने रहस्योंसहित विराजती हैं। अतः भगवतीको प्रसन्न करनेवाले इस देवीभागवतकी सोलहवीं कलाके समान भी अन्य महापुराण नहीं हो सकते॥ ९५-९६॥

श्रीमद्देवीभागवतपुराण अत्यन्त निर्मल है। जो ब्राह्मणोंका अमूल्य धन है और जिसमें स्वयं धर्मपुत्र नारायणने पवित्र धर्मका वर्णन किया है। इसमें श्रीगायत्रीदेवीका रहस्य एवं मणिद्वीपका सम्यक् वर्णन किया गया है। साथ ही इसमें हिमालयके प्रति स्वयं भगवतीद्वारा कही गयी देवीगीता विद्यमान है॥ ९७॥

इस कारण हे विप्रो! इस महापुराणके सदृश दूसरा कोई उत्तम पुराण लोकमें नहीं है, अतः आपलोग सदा इस श्रीमद्देवीभागवतका भलीभाँति सेवन करें॥ ९८॥

जिनके सम्पूर्ण प्रभावको ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा भगवान् शेष भी भलीभाँति नहीं जान सकते जबकि वे उन्हींके अंशज भी हैं, तब दूसरे देवता उन्हें कैसे जान सकेंगे? उन भगवती जगदम्बिकाको मेरा निरन्तर प्रणाम है॥ ९९॥

जिनके चरण-कमलोंकी धूलि पाकर ब्रह्मा समस्त संसारकी रचना करते हैं, भगवान् विष्णु निरन्तर पालन करते हैं और रुद्र संहार करते हैं; दूसरे किसी उपायसे वे अपना-अपना कार्य करनेमें समर्थ नहीं हो सकते—ऐसी उन भगवती जगदम्बिकाको मेरा सतत प्रणाम है॥ १००॥

अमृत-सागरके तटपर कल्पवृक्षकी वाटिकासे सुशोभित मणिद्वीपमें स्थित बहुवर्णचित्रित चिन्तामणिमय भवनमें तथा परम शिवके हृदयमें विराजमान रहनेवाली और मन्द-मन्द मुसकानयुक्त मुखमण्डलवाली जगदम्बाका ध्यान करके मनुष्य सांसारिक सुखोंका उपभोग करता है और अन्तमें निश्चय ही मोक्ष प्राप्त करता है॥ १०१॥

इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र—आदि देवताओं एवं समस्त महर्षियोंद्वारा पूजित मणिद्वीपनिवासिनी वे भगवती संसारका कल्याण करती रहें॥ १०२॥

॥ इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणके अन्तर्गत मानसखण्डमें श्रीमद्देवीभागवत-माहात्म्यका 'देवीभागवतश्रवणविधिवर्णन' नामक पाँचवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५॥

॥ श्रीमद्देवीभागवतमाहात्म्य समाप्त॥

॥ श्रीजगदम्बिकायै नमः ॥

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण

प्रथम स्कन्ध

पहला अध्याय

महर्षि शौनकका सूतजीसे श्रीमद्देवीभागवतपुराण सुनानेकी प्रार्थना करना

जो सर्वचेतनास्वरूपा, आदिशक्ति तथा ब्रह्मविद्या-स्वरूपिणी भगवती जगदम्बा हैं, उनका हम ध्यान करते हैं। वे हमारी बुद्धिको प्रेरणा प्रदान करें॥ १॥

शौनक बोले—हे पुरुषोंमें श्रेष्ठ तथा भाग्यवान् सूतजी! आप धन्य हैं; क्योंकि संसारमें अत्यन्त दुर्लभ पुराण-संहिताओं का आपने भलीभाँति अध्ययन किया है। हे पुण्यात्मन्! हे मानद! आपने कृष्णद्वैपायन व्यासरचित अठारह महापुराणोंका सम्यक् अध्ययन किया है, जो पंच लक्षणोंसे युक्त तथा गूढ रहस्योंसे समन्वित हैं और जिनका आपने सत्यवतीपुत्र व्यासजीसे ज्ञान प्राप्त किया है॥ २—४॥

हमारे पुण्यसे ही आप इस उत्तम, मुनियोंके निवास-योग्य, दिव्य, पुण्यप्रद तथा कलिके दोषोंसे रहित क्षेत्रमें पधारे हुए हैं। हे सूतजी! मुनियोंका यह समुदाय परम पुण्यदायिनी पुराण-संहिताका श्रवण करना चाहता है। अतः आप समाहितचित्त होकर हमलोगोंसे उसका वर्णन कीजिये॥ ५-६॥

हे सर्वज्ञ! आप तीनों तापों (दैहिक, दैविक, भौतिक)-से रहित होकर दीर्घजीवी हों। हे महाभाग! ब्रह्मप्रतिपादक देवीभागवतमहापुराणका वर्णन करें॥ ७॥

हे सूतजी! जो मनुष्य श्रवणेन्द्रिययुक्त होते हुए भी केवल जिह्वाके स्वादमें ही लगे रहते हैं और पुराणोंकी कथाएँ नहीं सुनते, वे निश्चित ही अभागे हैं। जैसे षड्रसके स्वादसे जिह्वाको आह्लाद होता है, वैसे विद्वज्जनोंके वचनोंसे कर्णेन्द्रियको आनन्द प्राप्त होता है॥ ८-९॥

जब कर्णहीन सर्प भी मधुर ध्वनि सुनकर मोहित हो जाते हैं, तब भला कर्णयुक्त मानव यदि कथा नहीं सुनते तो उन्हें बधिर क्यों न कहा जाय?॥ १०॥

अतः हे सौम्य! समाहितचित्त होकर कथा सुननेकी इच्छासे सभी द्विजगण कलिकालके भयसे पीड़ित हो इस नैमिषारण्यमें उपस्थित हैं॥ ११॥

जिस किसी प्रकारसे समय तो बीतता ही रहता है, किंतु मूर्खोंका समय व्यर्थ दुर्व्यसनोंमें बीतता है और विद्वानोंका समय शास्त्र-चिन्तनमें जाता है॥ १२॥

शास्त्र भी विचित्र प्रकारके तर्क-वितर्कसे युक्त हैं। (पुराण तीन प्रकारके तथा शास्त्र विविध प्रकारके हैं, जो नानाविध वाद-विवाद तथा छल-प्रपंचसे युक्त हैं और अहंकार तथा अमर्ष उत्पन्न करनेवाले हैं) वे अनेक अर्थवाद तथा हेतुवादसे युक्त और बहुत विस्तारवाले हैं॥ १३॥

उन शास्त्रोंमें वेदान्तशास्त्र सात्त्विक, मीमांसा राजस तथा न्यायशास्त्र तामस कहा गया है; क्योंकि वह हेतुवादसे परिपूर्ण है॥ १४॥

इसी प्रकार हे सौम्य! आपके द्वारा कहे गये पुराण कथा-भेदसे तीन गुणोंवाले तथा पाँच लक्षणोंसे समन्वित हैं॥ १५॥

आपने यह भी बताया है कि उन पुराणोंमें यह श्रीमद्देवीभागवत पाँचवाँ पुराण है, पवित्र है, वेदके समान है और सभी लक्षणोंसे युक्त है॥ १६॥

उस समय आपने प्रसंगवश अत्यन्त अद्भुत, मुमुक्षुजनोंके लिये मुक्तिप्रद, मनोरथ पूर्ण करनेवाले, धर्ममें रुचि उत्पन्न

करनेवाले जिस पुराणको संक्षेपमें कहा था, उस उत्तम पुराणको विस्तारपूर्वक कहिये। उस दिव्य तथा कल्याणमय श्रीमद्देवीभागवतपुराणको हम सभी द्विजगण आदरपूर्वक सुननेकी इच्छा रखते हैं॥ १७-१८॥

हे धर्मज्ञ! गुरुभक्त एवं सत्त्वगुणसे सम्पन्न होनेके कारण आप कृष्णद्वैपायनके द्वारा कही गयी इस प्राचीन संहिताका ज्ञान प्राप्त कर चुके हैं॥ १९॥

जिस प्रकार देवतालोग अमृतपान करते हुए तृप्त नहीं होते, उसी प्रकार हमलोगोंने भी यहाँ आपके मुखारविन्दसे निकली अन्यान्य कथाएँ सुनीं, किंतु अभी भी हम तृप्त नहीं हुए हैं॥ २०॥

हे सूतजी! उस अमृतको धिक्कार है, जिसके पीनेसे कभी मुक्ति नहीं होती, परंतु इस भागवतरूपी कथा-सुधाके पानसे तो मनुष्य शीघ्र ही भवसंकटसे मुक्त हो जाता है॥ २१॥

हे सूतजी! अमृतपानके लिये जो हजारों प्रकारके यज्ञ किये गये हैं, उनसे भी सर्वदाके लिये हमें शान्ति नहीं मिली। यज्ञोंका फल तो केवल स्वर्ग है, [पुण्य क्षीण होनेपर] पुनः स्वर्गसे मृत्युलोकमें लौटना ही पड़ता है। इस प्रकार निरन्तर आवागमनके चक्रमें आना-जाना लगा रहता है॥ २२-२३॥

हे सर्वज्ञ! त्रिगुणात्मक कालचक्रमें भ्रमण करते हुए मनुष्योंकी ज्ञानके बिना मुक्ति कदापि सम्भव नहीं है। इसलिये सब प्रकारके रसोंसे परिपूर्ण तथा पुण्यप्रद श्रीमद्देवीभागवतपुराण कहिये; जो पवित्र, मुक्तिदायक, गोपनीय तथा मुमुक्षुजनोंको सर्वदा प्रिय है॥ २४-२५॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत प्रथम स्कन्धका 'शौनकप्रश्न' नामक पहला अध्याय पूर्ण हुआ॥ १॥

दूसरा अध्याय

सूतजीद्वारा श्रीमद्देवीभागवतके स्कन्ध, अध्याय तथा श्लोकसंख्याका निरूपण और उसमें प्रतिपादित विषयोंका वर्णन

सूतजी बोले—[हे मुनिजनो!] मैं धन्य और महान् भाग्यशाली हूँ, जो कि आप महात्माओंने वेदविश्रुत तथा अत्यन्त पुण्यप्रद श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणके सम्बन्धमें प्रश्न करके मुझे पवित्र बना दिया॥ १॥

इसलिये मैं सभी वेदोंके तात्पर्यसे युक्त, सभी शास्त्रों और आगमोंके रहस्यरूप सर्वोत्तम श्रीमद्देवीभागवतपुराणको आपलोगोंसे कहता हूँ॥ २॥

हे द्विजगण! ब्रह्मा-विष्णु-महेशसे सेवित, स्तुतिपरायण मुनिजनोंके सतत ध्यान करनेयोग्य तथा योगियोंको मुक्ति देनेवाले भगवतीके सुन्दर एवं कोमल चरणकमलोंमें प्रणाम करके मैं अब उस उत्तम पुराणका भक्तिपूर्वक विस्तारसे वर्णन करूँगा; जो सभी रसोंसे युक्त, शोभासम्पन्न, सभी रसोंका निधान एवं श्रीमद्देवीभागवतके नामसे प्रसिद्ध है॥ ३॥

वैदिक मार्गानुसार जिसे 'विद्या' कहते हैं, जो सर्वदा 'आदिशक्ति' कही जाती हैं, जिन्हें योगीलोग 'पराशक्ति' भी कहते हैं; जो सर्वज्ञ, भवबन्धन काटनेमें निपुण हैं तथा जो सबके हृदयदेशमें विराजती रहती हैं और दुरात्मा प्राणी जिन्हें नहीं जान सकते, मुनियोंके ध्यान करनेपर जो शीघ्र प्रत्यक्ष दर्शन देती हैं, वे भगवती सर्वदा सिद्धिदायिनी बनी रहें॥ ४॥

जो सत्-असत्‌रूप उस जगत्‌की सृष्टि करके अपनी त्रिगुणात्मिका (सत्त्व, रज, तम) शक्तिद्वारा उसका पालन करती तथा प्रलयान्तमें उसका संहार करके अकेली स्वयं लीलारमण करती हैं, उन समस्त विश्वकी जननी भगवतीका मैं मन-ही-मन स्मरण करता हूँ॥ ५॥

यह संसारमें प्रसिद्ध है कि ब्रह्मा ही इस सम्पूर्ण जगत्‌के स्रष्टा हैं, साथ ही सभी वेदज्ञ तथा पुराणवेत्ता भी यही कहते हैं। उनका यह भी कथन है कि भगवान् विष्णुके नाभिकमलसे ही उन ब्रह्माकी उत्पत्ति हुई है, जो

स्वतन्त्र नहीं हैं, अपितु विष्णुकी प्रेरणासे ही वे संसारकी सृष्टि करते हैं॥ ६॥

जब कल्पान्तमें सर्वत्र जलमय हो जाता है, तब केवल शेषशय्यापर भगवान् विष्णु शयन करते हैं और उन्हींके नाभिकमलसे ब्रह्माका आविर्भाव होता है। इस प्रकार जब सहस्र फणवाले शेष ही विष्णुके आधार हैं, तो फिर उन मुरारिको भी सर्वाधार भगवान् कैसे कहा जाय?॥ ७॥

प्रलयकालीन समुद्रका जल भी तो रसरूप ही है और बिना पात्र रस कहीं ठहर नहीं सकता। अतएव जो सब प्राणियोंमें शक्तिरूपसे विराजती रहती हैं, मैं उन सम्पूर्ण संसारकी जननी आदिशक्ति भगवतीकी शरण ग्रहण करता हूँ॥ ८॥

योगनिद्रामें लीन भगवान् विष्णुको देखकर उनके नाभिकमलपर विराजमान ब्रह्माने जिन देवीकी स्तुति की थी, मैं उन्हीं पराशक्ति भगवतीके शरणागत हूँ॥ ९॥

हे मुनिजनो! उन्हीं निर्गुण तथा सगुण रूपवाली तथा मुक्तिदायिनी योगमायाका ध्यान करके मैं यहाँ सम्पूर्ण देवीभागवतपुराण कह रहा हूँ; आपलोग सुनिये॥ १०॥

यह श्रीमद्देवीभागवत नामक पुराण अत्यन्त पवित्र एवं उत्तम है। इसमें अठारह हजार सुन्दर श्लोक हैं। कृष्णद्वैपायनद्वारा विरचित इस श्रीमद्देवीभागवतपुराणमें कल्याणकारी बारह स्कन्ध तथा कुल तीन सौ अठारह अध्याय बताये गये हैं। उनमें प्रथम स्कन्धमें बीस अध्याय, द्वितीयमें बारह, तृतीयमें तीस और चतुर्थमें पच्चीस अध्याय हैं। पंचम स्कन्धमें पैंतीस अध्याय, षष्ठमें एकतीस, सप्तममें चालीस, अष्टममें तत्त्व-संख्या*के बराबर अर्थात् चौबीस, नवममें पचास और दशम स्कन्धमें तेरह अध्याय मुनि व्यासजीने कहे हैं। इसी प्रकार हे मुनिगण! एकादश स्कन्धमें चौबीस और द्वादश स्कन्धमें चौदह अध्याय बताये गये हैं॥ ११—१६॥

इस प्रकार महात्मा व्यासजीने इस महापुराणमें अध्यायोंकी संख्या बतायी है। इसमें श्लोकोंकी संख्या अठारह हजार कही गयी है॥ १७॥

सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश-वर्णन, मन्वन्तर तथा वंशानुचरित—इस प्रकार पुराणोंके ये पाँच लक्षण हैं॥ १८॥

जो कल्याणमयी भगवती नित्या, निर्गुणा, व्यापकरूपसे सृष्टिमें स्थित रहनेवाली, विकाररहित, योगगम्या, सबकी आधाररूपा तथा तुरीयावस्थामें प्रतिष्ठित हैं; उन्हींकी सात्त्विकी, राजसी और तामसी शक्तियाँ महासरस्वती, महालक्ष्मी तथा महाकाली नामक देवियोंके रूपमें प्रकट होती हैं॥ १९-२०॥

उन्हीं तीनों शक्तियोंका सृष्टिके लिये शरीर धारण करना ही शास्त्रके विद्वानोंके द्वारा 'सर्ग' कहा गया है॥ २१॥

तदनन्तर जगत्के सृजन, पालन तथा संहारके लिये ब्रह्मा, विष्णु और महेशकी उत्पत्ति कही गयी है; और उसे ही प्रतिसर्ग बताया गया है॥ २२॥

चन्द्रवंशी, सूर्यवंशी राजाओंके वंशवर्णन तथा हिरण्यकशिपु आदि दैत्योंके वंशकथनको 'वंश' कहा गया है; इसी प्रकार स्वायम्भुव आदि चौदह मनुओंका वर्णन एवं उनके समय-विभाग मन्वन्तर कहलाते हैं। उन मनुओंके वंशका क्रमशः वर्णन करना ही 'वंशानुचरित' कहा गया है। हे मुनिवरो! इस प्रकार सभी पुराण उपर्युक्त पाँचों लक्षणोंसे युक्त होते हैं॥ २३—२५॥

सवा लाख श्लोकोंका महाभारत नामक ग्रन्थ भी व्यासजीने ही रचा है; यह 'इतिहास' कहलाता है—जो वेदसम्मत होनेके कारण पाँचवाँ वेद कहा गया है॥ २६॥

शौनकजी बोले—हे सूतजी! वे पुराण कौन-कौनसे हैं और कितने हैं? हमलोगोंको सुननेकी उत्कट इच्छा है और आप सर्वज्ञ हैं, अतः विस्तारसे बताइये॥ २७॥

कलिकालसे भयभीत हम ब्राह्मण नैमिषारण्यमें ही रहते हैं। ब्रह्माजीने मनोमय चक्र हमें देकर यह आदेश दिया था कि इसी चक्रके पीछे-पीछे आपलोग जायँ। जहाँ इस चक्रकी नेमि शीर्ण हो जाय, वह देश परम पवित्र कहा गया है। वहाँ कभी कलियुगका प्रवेश नहीं होगा। आपलोग वहाँ तबतक रहें, जबतक पुनः 'सत्ययुग' न आ जाय॥ २८—३०॥

उनका वह वचन सुनकर तथा उनकी बातोंको हृदयमें रखकर हमलोग सब देशोंके दर्शनार्थ उस मनोमय चक्रके पीछे-पीछे तत्काल चल दिये॥ ३१॥

* सांख्यशास्त्रमें प्रकृति, महत्, अहंकार आदि चौबीस तत्त्व माने जाते हैं।

चलते-चलते इसी स्थानपर पहुँचकर उस चक्रकी नेमि हमलोगोंके देखते-देखते शीर्ण हो गयी। तभीसे यह स्थान परम पवित्र 'नैमिषक्षेत्र' के नामसे प्रसिद्ध हुआ॥ ३२॥

यहाँ कभी कलिका प्रवेश नहीं होता। इसीलिये मैंने अनेक ऋषि-मुनियों, सिद्धगणों एवं कलिसे भयभीत महात्माओंके साथ यहाँ अपना निवास बना लिया है॥ ३३॥

हमलोगोंने यहाँपर चरु-पुरोडाश आदिद्वारा अनेक पशुवध-विहीन यज्ञ किये हैं। जबतक सत्ययुग न आ जाय तबतक हमलोगोंका यहीं रहनेका दृढ़ निश्चय है॥ ३४॥

हे सूतजी! आप निश्चितरूपसे हमलोगोंके सौभाग्यसे ही यहाँ आ पहुँचे हैं। इसलिये आप इस ब्रह्मसम्मित पावन पुराणकी कथा कहिये॥ ३५॥

हे सूतजी! हमलोगोंको सुननेकी उत्कट इच्छा है और आप-जैसे बुद्धिमान् वक्ता भी प्राप्त हैं। हमलोग भी अपना सभी कार्य त्यागकर चित्त एकाग्र करके यहाँ स्थित हैं॥ ३६॥

अतः हे सूतजी! आप चिरंजीवी हों तथा तीनों प्रकारके तापों (दैहिक, दैविक, भौतिक)-से मुक्त रहकर अब हमलोगोंको परम पवित्र तथा कल्याणकारी श्रीमद्देवी-भागवतपुराण सुनाइये; जिसमें धर्म, अर्थ और कामका विधिवत् वर्णन किया गया है। महर्षि व्यासने भी बताया है कि इसके द्वारा ज्ञान प्राप्त करके पुनः उससे मुक्ति मिलती है॥ ३७-३८॥

हे सूतजी! महर्षि वेदव्यासने जिस पवित्र पुराणको कहा है, उसके मनोहर कथा-चरित्रोंको सुननेसे हमारी कभी तृप्ति नहीं होती है॥ ३९॥

सभी गुणोंका एकमात्र स्थान, परम पवित्र, समस्त संसारकी जननी भगवतीके लीलानाट्यके समान विचित्र, सभी पापसमूहोंका नाश करनेवाले तथा सब प्रकारकी अभिलाषाओंको पूर्ण करनेवाले तथा भगवतीके नामसे समन्वित श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणको प्रकट कीजिये॥ ४०॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत प्रथम स्कन्धका 'ग्रन्थसंख्याविषयवर्णन' नामक दूसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ २॥

तीसरा अध्याय

सूतजीद्वारा पुराणोंके नाम तथा उनकी श्लोकसंख्याका कथन, उपपुराणों तथा प्रत्येक द्वापरयुगके व्यासोंका नाम

सूतजी बोले—हे मुनीश्वरवृन्द! सत्यवतीसुत वेद-व्यासजीसे मैंने जिस प्रकार तत्त्वपूर्वक पुराणोंको सुना है, उसे मैं आपलोगोंसे कहता हूँ, सुनिये॥ १॥

उनमें दो 'म' वाले (मत्स्यपुराण, मार्कण्डेयपुराण), दो 'भ' वाले (भविष्यपुराण तथा भागवत), तीन 'ब्र' वाले (ब्रह्म, ब्रह्माण्ड और ब्रह्मवैवर्तपुराण), चार 'व' वाले (वामन, विष्णु, वायु और वाराहपुराण), 'अ' वाला (अग्निपुराण), 'ना' वाला (नारदपुराण), 'प' वाला (पद्मपुराण), 'लिं' वाला (लिंगपुराण), 'ग' वाला (गरुडपुराण), 'कू' वाला (कूर्मपुराण), 'स्क' वाला (स्कन्दपुराण)—ये पृथक्-पृथक् (अठारह) पुराण हैं॥ २॥

उनमें आदिके मत्स्यपुराणमें चौदह हजार, अत्यन्त अद्भुत मार्कण्डेयपुराणमें नौ हजार तथा भविष्यपुराणमें चौदह हजार पाँच सौ श्लोक-संख्या तत्त्वदर्शी मुनियोंने बतायी है॥ ३-४॥

पवित्र भागवतपुराणमें अठारह हजार और ब्रह्म-पुराणमें दस हजार श्लोक हैं। ब्रह्माण्डपुराणमें बारह हजार एक सौ तथा ब्रह्मवैवर्तपुराणमें अठारह हजार श्लोक हैं॥ ५-६॥

हे शौनक! वामनपुराणमें दस हजार तथा वायुपुराणमें चौबीस हजार छः सौ श्लोक हैं। उस परम विचित्र विष्णुपुराणमें तेईस हजार, वाराहपुराणमें चौबीस हजार, अग्निपुराणमें सोलह हजार तथा नारदपुराणमें पचीस हजार श्लोक कहे गये हैं॥ ७—९॥

विशाल पद्मपुराणमें पचपन हजार और लिंगपुराणमें ग्यारह हजार श्लोक हैं। इसी प्रकार साक्षात् भगवान्‌के द्वारा कहे हुए गरुडपुराणमें उन्नीस हजार तथा कूर्मपुराणमें सत्रह हजार श्लोक हैं॥ १०-११॥

परम विचित्र स्कन्दपुराणमें इक्यासी हजार श्लोक कहे गये हैं। हे पापरहित मुनियो! इस प्रकार मैंने पुराणों तथा उनके श्लोकोंकी संख्या विस्तारपूर्वक बता दी॥ १२॥

हे मुनिवरो! अब उपपुराणोंकी भी संख्या सुनिये। उनमें सर्वप्रथम उपपुराण सनत्कुमार है, तत्पश्चात् नरसिंह, नारदीय, शिव, दुर्वासा, कपिल, मनु, उशना, वरुण, कालिका, साम्ब, नन्दी, सौर, पराशर, आदित्य, माहेश्वर, भागवत तथा अठारहवाँ वासिष्ठ—ये सब उपपुराण महात्माओंद्वारा बताये गये हैं॥ १३—१६॥

सत्यवतीतनय वेदव्यासजीने अठारह पुराणोंकी रचना करनेके बाद उन्हीं विषयोंसे विस्तारपूर्वक उस अतुलनीय 'महाभारत' का प्रणयन किया॥ १७॥

प्रत्येक द्वापरयुगमें भगवान् वेदव्यासजी ही धर्मरक्षार्थ पुराणोंकी यथाविधि रचना करते रहते हैं। जब-जब द्वापरयुग आता है, तब-तब साक्षात् भगवान् विष्णु ही व्यासजीके रूपमें अवतीर्ण होकर सर्वलोकहितार्थ वेदके अनेक भेदोपभेद करते हैं॥ १८-१९॥

विशेषकर कलियुगमें ब्राह्मणोंको अल्पायु एवं अल्पबुद्धि जानकर वे युग-युगमें पवित्र पुराण-संहिताओंका निर्माण करते हैं॥ २०॥

स्त्रियों, शूद्रों तथा भ्रष्ट द्विजातियोंको वेद-श्रवणका अधिकार नहीं है, इसलिये उनके कल्याणके लिये व्यासजीने पुराणोंकी रचना की है॥ २१॥

हे श्रेष्ठ मुनिगण! इस वैवस्वत नामक शुभ सातवें मन्वन्तरके अट्ठाइसवें द्वापरयुगमें परम धर्मनिष्ठ सत्यवतीपुत्र मेरे गुरु श्रीव्यासजी हुए और उनतीसवें द्वापरमें द्रौणि नामके व्यास होंगे। इनके पूर्व भी सत्ताईस व्यास हो चुके हैं, जिन्होंने प्रत्येक युगमें अनेक पुराण-संहिताएँ रची हैं॥ २२—२४॥

ऋषियोंने कहा—हे महाभाग सूतजी! अब आप पूर्वकालमें प्रत्येक द्वापरयुगमें अवतीर्ण हुए पुराणवक्ता व्यासोंकी कथा कहिये॥ २५॥

सूतजी बोले—सृष्टिके बाद सर्वप्रथम द्वापरयुगमें स्वयं ब्रह्माजीने ही 'व्यास' के रूपमें प्रकट होकर वेदोंका विभाजन किया। दूसरे द्वापरमें 'प्रजापति' व्यास बने, तीसरे द्वापरमें 'शुक्राचार्य', चौथे द्वापरमें 'बृहस्पति', पाँचवेंमें 'सूर्य' तथा छठेमें 'यमराज' ही साक्षात् व्यास बने थे॥ २६—२७॥

सातवें द्वापरमें 'इन्द्र', आठवेंमें 'वसिष्ठमुनि', नवेंमें 'सारस्वत' और दसवें द्वापरमें 'त्रिधामाजी' व्यास हुए॥ २८॥

ग्यारहवेंमें 'त्रिवृष', बारहवेंमें 'भरद्वाजमुनि', तेरहवेंमें 'अन्तरिक्ष' और चौदहवें द्वापरमें 'धर्मराज' स्वयं व्यास बने॥ २९॥

पन्द्रहवें द्वापरमें 'त्रय्यारुणि', सोलहवेंमें 'धनंजय', सत्रहवेंमें 'मेधातिथि' तथा अठारहवें द्वापरमें 'व्रतीमुनि' व्यास हुए॥ ३०॥

उन्नीसवेंमें 'अत्रि', बीसवेंमें 'गौतम' और इक्कीसवें द्वापरमें हर्यात्मा 'उत्तम' नामक व्यास कहे गये हैं॥ ३१॥

बाईसवेंमें 'वाजश्रवा वेन', तेईसवेंमें 'आमुष्यायण सोम', चौबीसवेंमें 'तृणविन्दु' तथा पचीसवें द्वापरमें 'भार्गव' व्यास हुए॥ ३२॥

छब्बीसवेंमें 'शक्ति', सत्ताईसवेंमें 'जातुकर्ण्य' और अट्ठाईसवें द्वापरमें 'कृष्णद्वैपायनजी' व्यास हुए। इस प्रकार अट्ठाईस व्यासोंके नाम जैसा मैंने सुना था, वैसा बता दिया॥ ३३॥

इन्हीं कृष्णद्वैपायन व्यासजीके द्वारा कहे गये श्रीमद्देवीभागवतपुराणको मैंने सुना था; जो पुण्यप्रद, सब प्रकारके दुःखोंका नाश करनेवाला, सब प्रकारके मनोरथ पूर्ण करनेवाला, मोक्षदाता, वैदिक भावोंसे ओत-प्रोत तथा सभी आगमोंके रसोंसे परिपूर्ण, अत्यन्त मनोहर एवं मुमुक्षुजनोंको सदा प्रिय लगनेवाला है॥ ३४-३५॥

जिस अत्यन्त पवित्र पुराणको रचकर व्यासजीने अरणीके गर्भसे उत्पन्न, विद्वान्, महात्मा एवं विरक्त अपने पुत्र शुकदेवजीको पढ़ाया था; हे मुनिवृन्द! उसी रहस्यमय महापुराण (श्रीमद्देवीभागवत)-को मैंने भी करुणासागर अपने गुरु व्यासजीके मुखसे सम्पूर्णरूपसे यथार्थतः सुना

तथा उनकी कृपासे उसे हृदयंगम कर लिया है॥ ३६-३७॥

जिस समय अयोनिज एवं अपूर्व बुद्धिमान् अपने पुत्र शुकदेवजीके प्रश्न करनेपर व्यासजीने रहस्ययुक्त इस पुराणको सुनाया, उस समय मैंने भी एक साधारण श्रोताके रूपमें इस महान् प्रभाववाले श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणको सुन लिया॥ ३८॥

हे सर्वश्रेष्ठ मुनिजन! श्रीमद्भागवतरूपी इस कल्पवृक्षके फलके स्वादके प्रति आदरबुद्धि रखनेवाले तथा अपार संसार-सागरसे पार पानेके लिये श्रीशुकदेवजीने अनेक प्रकारकी सुन्दर एवं रसमयी कथाओंसे युक्त जिस अद्भुत महापुराणको विधिवत् अपने कर्णपुटसे प्रेमपूर्वक सुना है, उसे श्रवण करके भी जो कलिकालके भयसे मुक्त न हुआ, भला ऐसा प्राणी इस भूतलपर कौन होगा?॥ ३९॥

वैदिक धर्मसे रहित तथा निकृष्ट विचार रखनेवाला बड़े-से-बड़ा पापी मनुष्य भी यदि किसी बहाने इस उत्तम श्रीमद्देवीभागवतपुराणका श्रवण कर लेता है तो वह भी निश्चय ही समस्त सांसारिक सुखोंको भोगकर अन्तमें योगिजनोंके द्वारा प्राप्त करनेयोग्य, भगवतीके नामसे चिह्नित, मनोरम तथा अचल पदको प्राप्त कर लेता है॥ ४०॥

जो प्राणी इस श्रीमद्देवीभागवतपुराणको प्रतिदिन प्रेमसे सुनता है, उसके हृदयरूपी गुहामें विष्णु, शिव आदि देवताओंके लिये भी दुर्लभ, सर्वश्रेष्ठ विद्यारूपिणी, सज्जनोंकी एकमात्र प्रिया, गुणातीता एवं समाधिद्वारा जाननेयोग्य वे भगवती निवास करने लगती हैं॥ ४१॥

अतः सर्वांगसुन्दर इस मानव-तनको पाकर संसार-सागरके अगाध सलिलसे पार होनेके लिये जलयानके समान परम सुखदायी श्रीमद्देवीभागवतपुराण एवं उसके वक्ताको प्राप्त करके भी जो मूर्ख इसका श्रवण नहीं करता, वह विधाताके द्वारा वंचित ही कहा जायगा॥ ४२॥

इस दुर्लभ मनुष्य देहमें दोनों कानोंको प्राप्त करके भी जो सांसारिक मनुष्य केवल दूसरोंके दुर्गुणोंको ही सुना करता है, वह अधम मन्दबुद्धि चारों उत्तम पदार्थोंको देनेवाले तथा सब रसोंसे परिपूर्ण इस निर्मल पुराणको भूतलपर क्यों नहीं सुनता?॥ ४३॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत प्रथम स्कन्धका 'पुराणवर्णन तथा तद्युगीय व्यासवर्णन' नामक तीसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३॥

चौथा अध्याय

नारदजीद्वारा व्यासजीको देवीकी महिमा बताना

ऋषिगण बोले—हे सौम्य! महर्षि व्यासकी किस पत्नीसे शुकदेवजी उत्पन्न हुए? उनका जन्म किस प्रकार हुआ और किस प्रकारसे उन्होंने इस संहिताका सम्यक् अध्ययन कर लिया?॥ १॥

आपके द्वारा ही वे अयोनिज कहे गये हैं तो फिर अरणीसे उनकी उत्पत्ति कैसे हुई? हे महामते! इसमें हमें महान् संशय हो रहा है, आप उसका समाधान करें॥ २॥

हमलोगोंने पहले ही सुना है कि महातपस्वी शुकदेवजी गर्भयोगी थे। ऐसी स्थितिमें उन्होंने इतने विस्तृत पुराण (श्रीमद्देवीभागवत)-का अध्ययन कैसे कर लिया?॥ ३॥

सूतजी बोले—प्राचीन कालमें एक समय सत्यवतीके पुत्र व्यासजी सरस्वतीनदीके किनारे अपने आश्रममें गौरैया पक्षीका जोड़ा देखकर आश्चर्यचकित हो गये॥ ४॥

अण्डेसे तत्काल पैदा हुए लाल मुखवाले, सुन्दर अंगोंवाले एवं पंखरहित शिशुको घोंसलेमें ही छोड़कर वे दोनों उड़ गये और अत्यन्त परिश्रमसे चारा लाकर उस शिशुके चोंचमें डालते हुए दोनों पक्षी अत्यन्त आह्लादयुक्त होकर उस शिशुके अंगोंको अपने अंगोंसे रगड़ते हुए प्रेमपूर्वक उसके सुन्दर मुखको चूम रहे थे॥ ५—७॥

व्यासजी उस शिशुमें उन दोनों पक्षियोंका ऐसा अद्भुत प्रेम देखकर चिन्तामें पड़ गये और मन-ही-मन सोचने लगे। यदि अपने पुत्रके प्रति पक्षियोंमें ऐसा प्रेम दिखायी दे रहा है तो अपनी सेवाका फल

चाहनेवाले मनुष्योंमें ऐसा प्रेम-व्यवहार होनेमें आश्चर्य ही क्या! क्या ये दोनों पक्षी इसका सुख-साधनस्वरूप विवाह करके स्वयं सुखी रहते हुए इसकी वधूका सुन्दर मुख देख पायेंगे? क्या इनकी वृद्धावस्थामें यह धर्मनिष्ठ पुत्र पुण्य-प्राप्तिके लिये इन दोनोंकी सेवा करेगा? धन आदि अर्जित करके क्या यह अपने माता-पिताको सन्तुष्ट रखेगा और इनकी मृत्युके उपरान्त क्या इनका विधि-पूर्वक प्रेतकर्म करेगा? अथवा क्या गयातीर्थ जाकर यह बालक उनके श्राद्ध आदि कर्म करके उनका उद्धार करेगा तथा उनके परलोकसाधनहेतु क्या यह विधिपूर्वक नीलोत्सर्ग (नील वृषभ छोड़नेका कर्म) करेगा?॥ ८—१३॥

पुत्रके शरीरका आलिंगन और विशेषरूपसे उसका लालन-पालन इस संसारमें सभी सुखोंमें उत्तम सुख कहा गया है॥ १४॥

पुत्ररहित मनुष्यकी न तो सद्गति होती है और न तो उसे स्वर्गकी ही प्राप्ति होती है। अत: परलोकसाधनके लिये पुत्रसे बढ़कर अन्य कोई उपाय नहीं है॥ १५॥

मनु आदि ऋषियोंने भी धर्मशास्त्रोंमें कहा है कि पुत्रवान् मनुष्य स्वर्ग प्राप्त करता है और पुत्रहीन व्यक्तिको स्वर्ग-प्राप्ति कभी भी नहीं होती है॥ १६॥

इस बातमें अनुमानकी कोई आवश्यकता ही नहीं है अपितु यह प्रत्यक्षरूपमें भी देखा जाता है; साथ ही यह वेद, स्मृति आदिका भी सनातन वचन है कि पुत्रवान् मनुष्य पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ १७॥

रोगावस्थामें तथा मरणकालमें भूमि-शय्यापर पड़ा हुआ सन्तानहीन प्राणी दु:खित होकर अपने मनमें विचार करता है कि मेरे घरमें पर्याप्त धन है, अनेक प्रकारके पात्र हैं तथा मेरा यह भवन भी अत्यन्त सुन्दर है; किंतु अब इन सबका स्वामी कौन होगा?॥ १८-१९॥

चूँकि मृत्युकालमें उस प्राणीका मन अति दु:खी होकर भ्रमित होता रहता है, इसलिये उस भ्रान्त मनवाले प्राणीकी दुर्गति अवश्य ही होती है॥ २०॥

इस प्रकार अनेकानेक चिन्तन करके और बार-बार लम्बी तथा गर्म साँसें लेकर सत्यवतीपुत्र व्यासजीका मन अत्यन्त खिन्न हो गया॥ २१॥

इसके बाद मनमें बहुत सोच-विचार करके अन्तत: दृढ निश्चय करके वे तपश्चर्याके लिये मेरुपर्वतपर चले गये॥ २२॥

उन्होंने मनमें विचार किया कि मैं विष्णु, रुद्र, इन्द्र, ब्रह्मा, सूर्य, गणेश, कार्तिकेय, अग्नि एवं वरुण—इन देवताओंमें किस देवताकी आराधना करूँ, जो वर प्रदान करनेमें उदार तथा अभीष्ट फलोंको देनेवाला हो॥ २३-२४॥

इस प्रकार व्यासजी विचार कर ही रहे थे कि उसी समय संयोगवश मुनिश्रेष्ठ नारदजी हाथोंमें वीणा धारण किये हुए वहाँ आ गये॥ २५॥

उन्हें देखकर सत्यवतीपुत्र व्यासजी अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने अर्घ्य तथा आसन प्रदान करके उन मुनिसे कुशल-क्षेम पूछा॥ २६॥

कुशल-प्रश्न सुन लेनेके पश्चात् मुनिवर नारदजीने पूछा—हे द्वैपायन! आप किस कारणसे चिन्ताग्रस्त हैं? मुझे बतायें॥ २७॥

व्यासजी बोले—सन्तानहीन व्यक्तिकी सद्गति नहीं होती और कभी भी उसके मनमें सुखानुभूति नहीं होती है। इसी बातको लेकर मैं अत्यन्त दु:खित हूँ और बार-बार यही सोचता रहता हूँ॥ २८॥

मैं अभिलषित फल देनेवाले किस देवताको अपनी तप:साधनासे प्रसन्न करूँ, इसी चिन्तामें पड़ा हुआ मैं [अब इसके समाधानहेतु] आपकी शरणमें हूँ॥ २९॥

हे महर्षे! आप सब कुछ जाननेवाले हैं। हे कृपासिन्धु! आप मुझे शीघ्र ही बतायें कि मैं किस देवताकी शरणमें जाऊँ, जो प्रसन्न होकर मुझे पुत्र प्रदान कर दे॥ ३०॥

सूतजी बोले—व्यासजीके द्वारा इस प्रकार पूछे जानेपर वेदवेत्ता तथा महामना महर्षि नारद अत्यन्त प्रेमपूर्वक कृष्णद्वैपायनसे कहने लगे॥ ३१॥

नारदजी बोले—हे पराशरतनय! हे महाभाग! आपके द्वारा जो प्रश्न यहाँ मुझसे पूछा गया है, वैसा ही प्रश्न पूर्वकालमें मेरे पिता ब्रह्माजीने मधुसूदन भगवान् विष्णुसे किया था॥ ३२॥

मेरे पिता ब्रह्माजी कौस्तुभमणिकी प्रभासे दीप्तिमान्, शंख-चक्र-गदा और पद्म धारण करनेवाले, पीत वस्त्र धारण करनेवाले, चार भुजाओंवाले, श्रीवत्सचिह्नसे विभूषित वक्षःस्थलवाले, सभी लोकोंके कारणस्वरूप, देवाधिदेव, जगद्गुरु, जगदीश्वर, वासुदेव, देवेश, जगत्पति, श्रीनाथ विष्णुको ध्यानमें अवस्थित होकर कठोर तप करते हुए देखकर अत्यन्त विस्मयमें पड़ गये और उन्होंने पूछा॥ ३३—३५॥

ब्रह्माजी बोले—हे देवाधिदेव! हे जगन्नाथ! हे भूत-भविष्य-वर्तमानके स्वामी! आप किसलिये यह कठोर तपस्या कर रहे हैं? हे जनार्दन! आप किसके ध्यानमें लीन हैं?॥ ३६॥

हे देवेश! [यह देखकर] मैं परम विस्मयमें पड़ गया हूँ कि समस्त विश्वका स्वामी होते हुए भी आप ऐसा ध्यान कर रहे हैं; भला इससे बढ़कर अन्य कौन-सी विचित्र बात होगी!॥ ३७॥

आपके नाभिकमलसे प्रादुर्भूत होकर मैं सम्पूर्ण लोकोंके कर्ताके रूपमें अधिष्ठित हूँ। हे लक्ष्मीपते! आपसे भी श्रेष्ठतर कौन देवता है? उस देवताको मुझे बताइये॥ ३८॥

हे जगन्नाथ! मैं तो यही जानता हूँ कि आप ही आदिस्वरूप, सबके कारण, निर्माता, पालनकर्ता, संहारक तथा सभी कार्योंको सम्पादित करनेवाले हैं॥ ३९॥

हे महाराज! आपकी इच्छासे ही मैं इस जगत्के रचना-कार्यमें प्रवृत्त होता हूँ और सदा आपके ही आदेशसे शंकरजी प्रलयावस्थामें जगत्का संहार करते हैं॥ ४०॥

हे ईश! आपकी आज्ञासे ही सूर्य आकाशमें [नियमित रूपसे] भ्रमण करता है, शुभ तथा अशुभ हवा चलती है, अग्नि ताप धारण करती है और मेघ वृष्टि करता है॥ ४१॥

आप किस देवताका ध्यान कर रहे हैं? यह मेरी महती शंका है। मैं तो तीनों लोकोंमें आपसे बढ़कर अन्य किसी देवताको नहीं जानता हूँ॥ ४२॥

हे सुव्रत! मैं आपका भक्त हूँ, अतः कृपा करके [अपनी तपस्याका रहस्य] बताइये; क्योंकि यह सर्वविदित है कि महान् लोग अपने भक्तोंसे कुछ भी गोपनीय नहीं रखते हैं॥ ४३॥

ब्रह्माजीका वचन सुनकर भगवान् विष्णु उनसे बोले—हे ब्रह्मन्! आपको अपने मनकी बात बताता हूँ, आप उसे एकाग्रचित्त होकर सुनें॥ ४४॥

यद्यपि सभी देव, दानव और मानव यही जानते हैं कि आप जगत्की रचना, मैं जगत्के पालन और शिवजी जगत्के संहारके परम कारण हैं तथापि वेद-तत्त्वज्ञ विद्वान् यह तर्कना करते हैं कि किसी शक्तिके द्वारा ही आप सृष्टिके कर्ता हैं, मैं भर्ता हूँ और शंकरजी हर्ता हैं॥ ४५-४६॥

जगत्की रचनाके लिये आपमें राजसी शक्ति विद्यमान है, मुझमें सात्त्विकी शक्ति स्थित है तथा शिवजीमें तामसी शक्ति बतायी गयी है॥ ४७॥

उस शक्तिके न रहनेपर आप न तो सृष्टि-रचना कर सकते हैं, न मैं पालन-कार्य करनेमें समर्थ हो सकता हूँ और न तो शंकर संहार कर सकते हैं॥ ४८॥

हे विभो! हम सभी निरन्तर उसी शक्तिके अधीन रहते हैं। हे सुव्रत! अब प्रत्यक्ष तथा परोक्षसे सम्बन्धित दृष्टान्त भी आप सुनिये॥ ४९॥

इसमें कोई संशय नहीं कि मैं परतन्त्र होकर शेष-शय्यापर शयन करता हूँ और उसी शक्तिके अधीन होकर समयपर कालका वशवर्ती होकर मैं शयनसे उठता हूँ॥ ५०॥

उसी शक्तिका अवलम्बन प्राप्तकर मैं सदा तपश्चरण करता रहता हूँ। मैं कभी लक्ष्मीके साथ सुखपूर्वक विहार करता हूँ और कभी दानवोंके साथ अत्यन्त भीषण, शरीरको चूर्ण कर देनेवाला तथा लोगोंको भयभीत कर देनेवाला युद्ध भी करता हूँ॥ ५१-५२॥

हे धर्मज्ञ! आप यह तो प्रत्यक्ष जानते हैं कि पूर्व समयमें मेरे द्वारा उस महासिन्धुमें पाँच हजार वर्षोंतक भीषण बाहुयुद्ध किया गया था॥ ५३॥

हे देव! कानकी मैलसे उत्पन्न अत्यन्त दुष्ट, मदोन्मत्त तथा अहंकारी मधु-कैटभ नामक दोनों दानवोंका मैंने देवीकी कृपासे ही संहार किया था। हे महाभाग! क्या आप उस समय परात्पर कारणस्वरूपा महाशक्तिको नहीं जान पाये थे? अत: बार-बार क्यों पूछ रहे हैं?॥ ५४-५५॥

उसी शक्तिकी इच्छासे मैं परमपुरुषके रूपमें महासागरमें विचरण करता हूँ और विभिन्न युगोंमें कच्छप, वराह, नृसिंह तथा वामनके रूपमें अवतरित होता रहता हूँ॥ ५६॥

तिर्यग्योनिमें उत्पन्न होना किसीके लिये भी प्रिय नहीं होता। मैं अपनी इच्छासे वामन, वराह आदि योनियोंमें उत्पन्न नहीं होता हूँ। [अपितु इसमें उसी शक्तिकी प्रेरणा ही परम कारण है]॥ ५७॥

भला ऐसा कौन होगा, जो लक्ष्मीके साथ सुखदायक विहारका त्याग करके मत्स्यादि नीच योनियोंमें जन्म लेगा? यदि मैं स्वतन्त्र होता तो [सुखदायिनी] शय्याको छोड़कर गरुडरूपी आसनपर बैठकर महाभयंकर युद्ध क्यों करता!॥ ५८॥

हे अज! प्राचीन कालमें एक बार आपके समक्ष ही धनुषकी प्रत्यंचा टूट जानेके कारण मेरा सिर छिन्न हो गया था। तब शिल्पकारोंमें श्रेष्ठ आपने फिरसे मेरे धड़पर घोड़ेका सिर जोड़ दिया था॥ ५९॥

हे लोकनिर्माता! उसी समयसे मैं 'हयग्रीव' नामसे लोकप्रसिद्ध हुआ, यह सब आपके सामने घटित हुआ था। यदि मैं स्वाधीन होता तो संसारमें यह विडम्बना कैसे होती?॥ ६०॥

अतएव मैं स्वतन्त्र नहीं हूँ, अपितु सर्वथा उसी शक्तिके अधीन हूँ। मैं निरन्तर उसी शक्तिका ध्यान करता रहता हूँ। हे कमलोद्भव! मैं इसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं जानता॥ ६१ १/२॥

नारदजी बोले—हे व्यासजी! भगवान् विष्णुने ब्रह्माजीसे इस प्रकार कहा था। हे मुनिश्रेष्ठ! मेरे पिता ब्रह्माजीने वे सब बातें मुझसे कही थीं। अत: आप भी कल्याणकारी पुत्र-प्राप्तिके उद्देश्यसे सर्वथा संशयरहित होकर अपने हृदयकमलमें देवी भगवतीके चरणारविन्दका ध्यान कीजिये। वे देवी आपके समस्त अभिलषित फलोंको अवश्य प्रदान करेंगी॥ ६२-६४॥

सूतजी बोले—नारदजीके ऐसा कहनेपर सत्यवतीपुत्र व्यासजी देवीके चरणारविन्दमें अपना ध्यान केन्द्रित करते हुए तपश्चर्याहेतु पर्वतपर चले गये॥ ६५॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत प्रथम स्कन्धका 'देवी सर्वोत्तम हैं'—ऐसे वर्णनवाला चौथा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४॥

पाँचवाँ अध्याय

भगवती लक्ष्मीके शापसे विष्णुका मस्तक कट जाना, वेदोंद्वारा स्तुति करनेपर देवीका प्रसन्न होना, भगवान् विष्णुके हयग्रीवावतारकी कथा

ऋषिगण बोले—हे सूतजी! हमारा चित्त सन्देहरूपी सागरमें पूर्णत: डूबता जा रहा है; क्योंकि आपने महान् आश्चर्यजनक तथा संसारको विस्मित कर देनेवाली यह बात कह दी कि विष्णुके शरीरसे उनका सिर अलग हो गया था और वे सर्वपालक जनार्दन पुन: हयग्रीव हो गये थे॥ १-२॥

वेद भी जिन भगवान् विष्णुका स्तवन करते हैं, समस्त देवता जिनका आश्रय ग्रहण करते हैं, जो आदिदेव हैं, जगत्‌के स्वामी हैं और सभी कारणोंके भी कारण हैं; दैवयोगसे उनका भी मस्तक कैसे कट गया? हे महामते! वह सब आप हमसे विस्तारपूर्वक शीघ्र कहिये॥ ३-४॥

सूतजी बोले—हे मुनियो! आप सभी लोग एकाग्रचित्त होकर परम तेजस्वी देवाधिदेव भगवान् विष्णुका चरित्र सुनिये॥ ५॥

किसी समय वे सनातन देव विष्णु दस हजार वर्षोंतक भीषण युद्ध करके अत्यन्त थक गये थे॥ ६॥

तदनन्तर एक समतल तथा शुभ स्थानपर पद्मासन लगाकर पृथ्वीपर स्थित प्रत्यंचा चढ़े हुए धनुषपर कण्ठप्रदेश (गर्दन) टिकाये हुए उस धनुषकी नोंकपर भार देकर लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु सो गये और थकावटके कारण दैवयोगसे उन्हें गहरी नींद आ गयी॥ ७-८॥

कुछ समय बीतनेके बाद ब्रह्मा, शिव तथा इन्द्रसहित सभी देवता यज्ञ करनेको उद्यत हुए। वे सब देवकार्यकी सिद्धिहेतु यज्ञोंके अधिपति जनार्दन भगवान् विष्णुके दर्शनार्थ वैकुण्ठलोक गये॥ ९-१०॥

उस समय उन्हें वहाँ न देखकर वे देवतागण ज्ञान-दृष्टिसे देख करके वहाँ पहुँचे, जहाँ भगवान् विष्णु विराजमान थे॥ ११॥

वहाँ उन्होंने सर्वव्यापी भगवान् विष्णुको योग-निद्राके वशीभूत होकर अचेत पड़ा हुआ देखा। तब वे देवगण वहीं रुक गये॥ १२॥

सभी देवताओंके वहाँ रुक जानेके बाद जगत्पति विष्णुको निद्रामग्न देखकर ब्रह्मा-रुद्र आदि प्रमुख देवता अत्यन्त चिन्तित हुए॥ १३॥

तदनन्तर इन्द्रने देवताओंसे कहा—हे श्रेष्ठ देवगण! अब क्या किया जाय? हे श्रेष्ठ देवताओ! अब आप सभी यह विचार करें कि इनकी निद्रा किस प्रकार भंग की जाय?॥ १४॥

तब शिवजीने इन्द्रसे कहा कि इनकी निद्राका भंग करनेसे महान् दोष लगेगा, किंतु हे श्रेष्ठ देवगण! यज्ञकार्य भी अवश्यकरणीय है॥ १५॥

इसके बाद परमेष्ठी ब्रह्माजीने पृथ्वीपर स्थित धनुषके अग्रभागको खा जानेके लिये दीमकका सृजन किया॥ १६॥

[उन्होंने यह सोचा कि] दीमकके द्वारा धनुषका अग्रभाग खा लिये जानेपर धनुष नीचा हो जायगा। तब वे देवाधिदेव विष्णु निद्रामुक्त हो जायँगे। ऐसा होनेपर निस्सन्देह देवताओंका सम्पूर्ण कार्य सिद्ध हो जायगा। अतः सनातन ब्रह्माजीने दीमकको इस कार्यके लिये आदेश दिया॥ १७-१८॥

तब दीमकने ब्रह्माजीसे कहा कि देवाधिदेव जगद्गुरु लक्ष्मीपति भगवान् विष्णुका निद्रा-भंग मैं कैसे करूँ? क्योंकि नींदमें बाधा डालना, कथामें विघ्न पैदा करना, पति-पत्नीके बीच भेद उत्पन्न करना एवं माँ-पुत्रके बीच वैरभाव पैदा करनेके लिये षड्यन्त्र करना ब्रह्महत्याके समान कहा गया है। अतः मैं देवाधिदेव भगवान् विष्णुका सुख क्यों नष्ट करूँ? हे देव! उस धनुषका अग्रभाग खानेसे मेरा क्या लाभ है, जिसके लिये मैं ऐसा पाप करूँ?॥ १९—२१॥

स्वार्थके वशीभूत होकर ही समस्त लोक पापकार्यमें प्रवृत्त होता है। इसलिये मैं भी इसमें कोई स्वार्थसिद्धि होनेपर ही इसका भक्षण करूँगा॥ २२॥

ब्रह्माजी बोले—सुनो, हमलोग यज्ञमें तुम्हारे भागकी व्यवस्था कर देंगे। इसलिये तुम अविलम्ब भगवान् विष्णुको जगाकर हमलोगोंका कार्य सम्पन्न कर दो॥ २३॥

होमकार्यमें आहुति प्रदान करते समय जो हव्य आस-पास गिरेगा, उसीको अपना भाग समझना; और अब तुम शीघ्रतापूर्वक हमारा कार्य करो॥ २४॥

सूतजी बोले—हे ऋषियो! ब्रह्माजीके इस प्रकार कहनेके अनन्तर दीमकने धरातलपर स्थित धनुषाग्रको शीघ्र ही खा लिया, जिससे धनुषकी डोरी मुक्त हो गयी॥ २५॥

प्रत्यंचाके खुल जानेपर धनुषका वह ऊपरी कोना मुक्त हो गया। इस प्रकार एक भीषण ध्वनि पैदा हुई जिससे वहाँ सभी देवगण भयभीत हो गये, ब्रह्माण्ड क्षुब्ध हो उठा, पृथ्वीमें कम्पन होने लगा, सभी समुद्र उद्विग्न हो गये, जलचर जन्तु व्याकुल हो उठे। प्रचण्ड हवाएँ प्रवाहित होने लगीं, पर्वत प्रकम्पित हो उठे, किसी दारुण आपदाके सूचक उल्कापात आदि महान् उपद्रव होने लगे, सूर्य तिरोहित हो गये तथा सभी दिशाएँ अत्यन्त भयावह हो गयीं। यह सब देखकर देवतालोग चिन्तित होकर सोचने लगे कि इस दुर्दिनमें अब क्या होगा?॥ २६—२९॥

हे तपस्वियो! वे देवतागण ऐसा सोच ही रहे थे कि किरीट-कुण्डलसहित देवाधिदेव भगवान् विष्णुका सिर [कटकर] कहीं चला गया॥ ३०॥

कुछ समय पश्चात् उस घोर अन्धकारके शान्त हो

जानेपर ब्रह्मा और शंकरने भगवान् विष्णुका मस्तकविहीन विलक्षण शरीर देखा॥ ३१॥

भगवान् विष्णुका सिरविहीन धड़ देखकर वे श्रेष्ठ देवता अत्यन्त विस्मित हुए और चिन्तासागरमें निमग्न होकर शोकाकुल हो [इस प्रकार] विलाप करने लगे— ॥ ३२॥

हे नाथ! हे प्रभो! यह कैसी विचित्र अलौकिक घटना हो गयी? हे देवाधिदेव! हे सनातन! हम सभी देवताओंके लिये तो यह बात विनाशकारी है॥ ३३॥

यह किस देवताकी माया है, जिसके द्वारा आपके सिरका हरण कर लिया गया। आप तो सर्वदा अच्छेद्य, अभेद्य और अदाह्य हैं॥ ३४॥

हे विभो! इस प्रकार आपके चले जानेपर हम देवता तो मृत्युको प्राप्त हो जायँगे। हमलोगोंके प्रति आपका कैसा स्नेह था। हमलोग स्वार्थके कारण ही रुदन कर रहे हैं॥ ३५॥

संकटकी यह स्थिति न तो दैत्योंने, न यक्षोंने और न राक्षसोंने ही पैदा की है, अपितु हम देवताओंने ही यह विघ्न उत्पन्न किया है; तथापि हे रमापते! इसमें किसका दोष समझा जाय?॥ ३६॥

हम सभी देवता पराश्रित हैं। हम इस समय क्या करें और कहाँ जायँ? हे देवेश! हम मूढ़ बुद्धिवाले देवताओंके लिये अब कहीं भी कोई शरण नहीं है॥ ३७॥

यह कोई सात्त्विकी, राजसी अथवा तामसी माया भी नहीं है, जिसके द्वारा आप मायापति जगद्गुरुका सिर काटा गया है॥ ३८॥

तब शिवसहित समस्त देवताओंको करुण क्रन्दन करते हुए देखकर वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ देवगुरु बृहस्पतिने उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा—हे महाभागो! अब इस प्रकार क्रन्दनसे क्या लाभ है? इस समय तो विवेकका आश्रय लेकर कोई उपाय करना चाहिये। हे देवेन्द्र! भाग्य एवं पुरुषार्थ—दोनों ही समान श्रेणीके हैं फिर भी उपाय करना ही चाहिये और वह दैवयोगसे ही सफल होता है॥ ३९—४१॥

इन्द्र बोले—अनर्थकारी पुरुषार्थको धिक्कार है, मैं तो दैवको श्रेष्ठतर मानता हूँ; क्योंकि हम देवताओंके देखते-देखते विष्णुका सिर कट गया॥ ४२॥

ब्रह्माजी बोले—कालद्वारा जो भी शुभाशुभ कर्मोंका फल निर्धारित है, उसे अवश्य ही भोगना पड़ता है; भाग्यका अतिक्रमण कौन कर सकता है?॥ ४३॥

प्रत्येक प्राणी काल-क्रमके अनुसार सुख-दुःख भोगता ही है; इसमें कोई सन्देह नहीं है। जिस प्रकार पूर्वकालमें कालकी प्रेरणासे शंकरजीने मेरा मस्तक काट दिया था, उसी प्रकार शापके कारण शिवजीका लिंग कटकर गिर गया था और उसी प्रकार आज विष्णुका सिर [कटकर] लवणसागरमें जा गिरा है॥ ४४-४५॥

[दैवयोगसे ही] इन्द्रको भी सहस्र भगोंकी प्राप्ति हुई। उन्हें दुःख भोगना पड़ा। वे स्वर्गसे च्युत हो गये और मानसरोवरके कमलमें रहने लगे॥ ४६॥

इस संसारमें जब इन महाभाग देवताओंको भी दुःखका भोग करनेके लिये विवश होना पड़ा तो फिर दुःख भोगनेसे भला कौन वंचित रह सकता है? अतएव आपलोग शोकका परित्याग कर दें और उन महामाया, विद्यारूपा, सनातनी, ब्रह्मविद्या तथा जगत्को धारण करनेवाली देवीका ध्यान कीजिये, जिनके द्वारा यह चराचर सम्पूर्ण त्रिलोक व्याप्त है। वे निर्गुणा परा प्रकृति हमलोगोंका समस्त कार्य सिद्ध कर देंगी॥ ४७—४९॥

सूतजी बोले—हे मुनियो! देवताओंसे इस प्रकार कहकर ब्रह्माजीने कार्यकी सिद्धिकी कामनासे अपने सम्मुख सशरीर विद्यमान वेदोंको आदेश दिया॥ ५०॥

ब्रह्माजी बोले—आपलोग समस्त कार्योंको सिद्ध करनेवाली, पराम्बा, ब्रह्मविद्या, सनातनी तथा निगूढ़ अंगोंवाली महामायाका स्तवन कीजिये॥ ५१॥

उनका यह वचन सुनकर समस्त सुन्दर अंगोंवाले वेद जगत्की आधारस्वरूपा तथा ज्ञानगम्या उन महामायाकी स्तुति करने लगे॥ ५२॥

वेदोंने कहा—हे देवि! हे महामाये! हे विश्वोत्पत्ति-कारिणि! हे शिवे! हे निर्गुणे! हे सर्वभूतेशि! हे शिवकामार्थ-प्रदायिनि माता! आपको नमस्कार है॥ ५३॥

आप सभी प्राणियोंको आश्रय देनेके लिये पृथ्वीस्वरूपा हैं तथा प्राणधारियोंकी प्राण भी हैं। बुद्धि, श्री, कान्ति,

क्षमा, शान्ति, श्रद्धा, मेधा, धृति एवं स्मृति सब कुछ आप ही हैं॥ ५४॥

ॐकारमें अर्धमात्राके रूपमें आप ही विराजमान हैं। आप गायत्री, भूः, भुवः, स्वः आदि व्याहृति, जया, विजया, धात्री, लज्जा, कीर्ति, स्पृहा एवं दया सभी कुछ हैं॥ ५५॥

हे अम्ब! आप तीनों लोकोंके रचना-तन्त्रमें दक्ष, करुणरससे युक्त, सभी प्राणियोंकी माँ, विद्या, कल्याणी, सभी प्राणियोंकी हितसाधिका, सर्वश्रेष्ठ, वाग्बीजमन्त्रमें वास करनेमें निपुण तथा संसारका क्लेश दूर करनेवाली हैं; आपकी हम स्तुति करते हैं॥ ५६॥

ब्रह्मा, शंकर, विष्णु, इन्द्र, सरस्वती, अग्नि, सूर्य तथा सभी भुवनोंके स्वामी आपके द्वारा ही निर्मित किये गये हैं। अतः उनकी अपनी कोई विशेषता नहीं है; आप ही सभी चराचर जगत्की माता हैं॥ ५७॥

हे जननि! जब आप जगत्की रचनाकी कामना करती हैं, तब आप सर्वप्रथम ब्रह्मा, विष्णु, महेश— इन प्रमुख देवोंका सृजन करती हैं। उन्हींके माध्यमसे एकमात्र आप ही जगत्का सृजन, पालन एवं संहारकार्य पूर्ण कराती हैं। हे देवि! आपमें संसारका लेशमात्र भी नहीं रहता॥ ५८॥

हे देवि! सम्पूर्ण संसारमें ऐसा कोई भी निपुण प्राणी नहीं है, जो आपके रूपको जान सके और न तो ऐसा कोई योग्य मनुष्य है, जो आपके नामोंकी संख्याकी गणना करनेमें समर्थ हो। जो थोड़ेसे जलका सन्तरण करनेमें असमर्थ हो, वह बुद्धिसम्पन्न मनुष्य भला महासागरको पार करनेमें कुशल कैसे होगा?॥ ५९॥

हे भगवति! आपके अन्तहीन वैभवको जान सकनेमें देवताओंमें कोई भी समर्थ नहीं है। एकमात्र आप समस्त विश्वकी माता हैं। आप अकेले ही इस सम्पूर्ण मिथ्या जगत्की रचना कैसे करती हैं? हे देवि! एकमात्र वेदवाक्य ही आपके इस सृष्टि-कार्यकी प्रामाणिकता सिद्ध करते हैं॥ ६०॥

हे भगवति! समग्र जगत्की परम कारणस्वरूपा होती हुई भी आप इच्छारहित हैं। अहो! आपका अद्भुत चरित्र हमारे मनको विस्मित कर देता है। समस्त वेदोंसे भी अज्ञेय आपके गुणों एवं प्रभावोंका वर्णन हमलोग भला किस प्रकार कर सकते हैं; क्योंकि स्वयं आप भी अपने परमतत्त्वको नहीं जानतीं॥ ६१॥

हे जननि! क्या आप भगवान् विष्णुके शिरोच्छेदनकी घटना नहीं जानती हैं? हे शिवे! अथवा क्या यह जानकर भी आप मधुजित् विष्णुकी शक्तिकी परीक्षा करना चाहती हैं? हे माता! अथवा क्या यह विष्णुके महान् पापसमूहका फल है? किंतु आपके चरणकमलोंका भजन करनेमें निपुण प्राणीसे तो पाप हो ही नहीं सकता॥ ६२॥

हे माता! आप इस देवसमूहकी भारी उपेक्षा क्यों कर रही हैं? भगवान् विष्णुके मस्तक कटनेकी घटना हमारे लिये अत्यन्त आश्चर्यजनक तथा महान् कष्टदायक बात है। हे माता! आप जननरूपी दुःखका नाश करनेमें कुशल हैं, अब हम यह नहीं जान पा रहे हैं कि विष्णुके सिर-संयोजनमें विलम्ब क्यों हो रहा है?॥ ६३॥

हे देवि! सभी देवताओंके देवत्वाभिमानरूपी दोषको अपने मनमें समझकर आपने ही ऐसा किया है, अथवा देवजन्य दुष्कृतको विष्णुमें स्थापित किया है, अथवा विष्णुको संग्राम-विजय करनेका अहंकार हो गया था, जिसे अतिशीघ्र दूर करनेके लिये आपने यह लीला रची है। हे माता! हम आपके मनोभावोंको समझनेमें पूर्णतया असमर्थ हैं॥ ६४॥

हे भगवति! अथवा युद्धमें पराभूत किये गये दैत्योंने किसी मनोहर तीर्थमें घोर तपस्या करके आपसे वरदान प्राप्त कर लिया है, जो विष्णुके सिर कटनेका कारण बना। हे भवानि! अथवा विष्णुको सिरविहीनरूपमें देखनेके लिये आप इस समय कोई विनोद कर रही हैं॥ ६५॥

हे आद्ये! आप सिंधुसुता लक्ष्मीपर किसी कारणसे आक्रोशित तो नहीं हैं। आप उन्हें स्वामीविहीन किसलिये देखना चाह रही हैं? आप अपने ही अंशसे प्रादुर्भूत लक्ष्मीका अपराध क्षमा करें और भगवान् विष्णुको जीवनदान देकर रमाको प्रसन्न कर दें॥ ६६॥

जगत्के समस्त कार्योंको सम्पादित करनेमें प्रमुख भूमिकावाले अतिशय प्रभावशाली ये देवता आपको निरन्तर नमस्कार करते हैं। हे देवि! सर्वलोकाधिपति विष्णुको

जीवित करके आप देवताओंको शोकसागरसे पार कीजिये॥ ६७॥

हे अम्ब! भगवान् विष्णुका सिर छिन्न होकर कहाँ चला गया—यह हम नहीं जानते हैं और इस समय इन्हें जीवित करनेके लिये अन्य कोई युक्ति भी नहीं सूझ रही है। हे देवि! मृत प्राणीको जीवित करनेमें जिस प्रकार अमृत समर्थ है, उसी प्रकार समग्र संसारकी आप जीवनदात्री हैं॥ ६८॥

सूतजी बोले—हे मुनियो! इस प्रकार सामगाननिपुण सांगवेदोंद्वारा स्तुति किये जानेसे गुणातीता, महेश्वरी, परात्परा महामाया भगवती प्रसन्न हो गयीं॥ ६९॥

उसी समय देवताओंको सुख प्रदान करनेवाले शब्दोंसे युक्त और भक्तजनोंको आनन्दित करनेवाली आकाशस्थित अशरीरिणी शुभ वाणीने उनसे कहा॥ ७०॥

हे देवताओ! आप लोग किसी प्रकारकी चिन्ता न करें और स्वस्थचित्त रहें। हे अमरगण! इन वेदोंके भावपूर्ण स्तवनसे मैं परम प्रसन्न हो गयी हूँ, इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं है॥ ७१॥

मनुष्यलोकमें जो प्राणी इस स्तुतिसे मेरी आराधना करेगा अथवा भक्तिपूर्वक इसका पाठ करेगा, उसकी समस्त कामनाएँ पूर्ण हो जायँगी॥ ७२॥

जो मनुष्य त्रिकाल (प्रातः, मध्याह्न, सायं) मेरी स्तुतिको नित्य भक्तिपूर्वक सुनेगा, वह सभी दुःखोंसे विमुक्त होकर परम सुखी हो जायगा। वेदोंद्वारा उच्चारित किये जानेके कारण यह स्तुति वेदोंके समान ही है॥ ७३॥

हे देवो! अब आप विष्णुके शिरोच्छेदका कारण सुनिये; क्योंकि इस लोकमें बिना कारण कोई कार्य कैसे हो सकता है?॥ ७४॥

एक बार अपने समीप बैठी हुई अपनी प्रियतमा सागरपुत्री लक्ष्मीका चित्ताकर्षक मुख देखकर भगवान् विष्णु हँस पड़े॥ ७५॥

उन्होंने सोचा कि भगवान् विष्णु मुझे देखकर क्यों हँस पड़े? मेरे मुखमें विष्णुजीद्वारा दोष देखे जानेका आखिर क्या कारण हो सकता है? और फिर बिना किसी कारणके उनका हँसना सम्भव नहीं हो सकता। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने किसी अन्य सुन्दर स्त्रीको मेरी सौत बना लिया है॥ ७६-७७॥

इसी विचार-मन्थनके परिणामस्वरूप लक्ष्मीजी कोपाविष्ट हो गयीं और तब उनके शरीरमें तमोगुणसम्पन्न तामसी शक्ति व्याप्त हो गयी॥ ७८॥

तदनन्तर किसी दैवयोगके प्रभावसे देवताओंके कार्य-साधनके उद्देश्यसे ही उनके शरीरमें अत्यन्त उग्र तामसी शक्ति प्रविष्ट हुई॥ ७९॥

तब लक्ष्मीजीके शरीरमें तामसी शक्तिका समावेश हो जानेके कारण वे अत्यन्त क्रोधित हो उठीं और उन्होंने मन्द स्वरमें यह कहा—'तुम्हारा यह सिर कटकर गिर जाय'॥ ८०॥

स्त्रीस्वभावके कारण, भावीवश तथा संयोगसे बिना सोचे-समझे ही लक्ष्मीजीने अपने ही सुखको विनष्ट करनेवाला शाप दे दिया। सौतके व्यवहारादिसे उत्पन्न होनेवाला दुःख वैधव्यसे भी बढ़कर होता है। मनमें ऐसा सोचकर तथा शरीरपर तामसी शक्तिका प्रभाव रहनेके कारण उन्होंने ऐसा कह दिया था॥ ८१-८२॥

मिथ्याचरण, साहस, माया, मूर्खता, अतिलोभ, अपवित्रता तथा दयाहीनता—ये स्त्रियोंके स्वाभाविक दोष हैं॥ ८३॥

अब मैं उन वासुदेवको पूर्वकी भाँति सिरयुक्त कर देती हूँ। इनका सिर पूर्वशापके कारण लवणसागरमें डूब गया है॥ ८४॥

हे श्रेष्ठ देवताओ! इस घटनाके होनेमें एक अन्य भी कारण है। आपलोगोंका महान् कार्य अवश्य सिद्ध होगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है॥ ८५॥

प्राचीन कालमें महाबाहु एवं अति प्रसिद्ध हयग्रीव नामवाला एक दानव था, जो सरस्वतीनदीके तटपर बहुत कठोर तपस्या करने लगा॥ ८६॥

वह दैत्य आहारका त्यागकर समस्त इन्द्रियोंको वशमें करके तथा सभी प्रकारके भोगैश्वर्यसे दूर रहते हुए मेरे मायाबीजात्मक एकाक्षर मन्त्र (ह्रीं)-का जप करता रहा॥ ८७॥

इस प्रकार समस्त आभूषणोंसे विभूषित मेरी तामसी

शक्तिका सतत ध्यान करता हुआ वह एक हजार वर्षोंतक कठोर तप करता रहा॥ ८८॥

उस समय उस दैत्यने जिस रूपमें मेरा ध्यान किया था, उसी तामसरूपमें उसे दर्शन देनेहेतु उसके समक्ष मैं प्रकट हुई॥ ८९॥

उस समय सिंहपर आरूढ़ हुई मैंने दयापूर्वक उससे कहा—हे महाभाग! तुम वरदान माँगो; हे सुव्रत! मैं तुम्हें यथेच्छ वरदान दूँगी॥ ९०॥

वह दानव देवीका यह वचन सुनकर प्रेमविह्वल हो उठा और उसने तत्काल प्रणाम और प्रदक्षिणा की। मेरा रूप देखते ही प्रेमभावनाके कारण प्रफुल्लित नेत्रोंवाला तथा हर्षातिरेकके कारण अश्रुपूरित नयनोंवाला वह दानव मेरी स्तुति करने लगा॥ ९१-९२॥

हयग्रीव बोला—हे महामाये! हे जगत्का सृजन-पालन-संहार करनेवाली! हे भक्तोंपर कृपा करनेमें निपुण! हे सकल कामनाप्रदायिनि! हे मोक्षदायिनि! हे शिवे! आप देवीको नमस्कार है॥ ९३॥

पृथ्वी, जल, तेज, वायु एवं आकाश—इन पाँच महाभूतोंका कारण आप ही हैं तथा गन्ध, रस, रूप, स्पर्श एवं शब्द—इन तत्त्वोंका कारण भी आप ही हैं॥ ९४॥

हे महेश्वरि! नासिका, जिह्वा, नेत्र, त्वचा, कान—ये ज्ञानेन्द्रियाँ तथा हाथ, पैर, वाक्, लिंग, गुदा—ये कर्मेन्द्रियाँ आपसे ही उत्पन्न हैं॥ ९५॥

देवी बोलीं—तुम्हारा क्या अभीष्ट है? जो कुछ भी तुम्हारा अभिलषित वर हो, माँग लो। मैं उसे अवश्य पूर्ण करूँगी; क्योंकि मैं तुम्हारी अनन्य भक्ति तथा अद्भुत तपस्यासे अतिशय प्रसन्न हूँ॥ ९६॥

हयग्रीव बोला—हे माता! आप मुझे वैसा वरदान दें, जिससे मेरी मृत्यु कभी न हो और देव-दानवोंद्वारा अपराजेय रहता हुआ मैं सदाके लिये अमर योगी हो जाऊँ॥ ९७॥

देवी बोलीं—जन्म लेनेवालेकी मृत्यु निश्चित है और मरनेवालेका जन्म भी निश्चित है। लोकमें स्थापित इस प्रकारकी मर्यादाका उल्लंघन कैसे सम्भव है?॥ ९८॥

अतएव हे दानवश्रेष्ठ! मृत्युको अवश्यम्भावी जानकर अपने मनमें सम्यक् विचार करके तुम अन्य यथेच्छ वर माँग लो॥ ९९॥

हयग्रीव बोला—हे जगदम्बे! मेरी मृत्यु हयग्रीवसे ही हो, किसी अन्यसे नहीं। मेरी इसी मनोवांछित कामनाको आप पूर्ण करें॥ १००॥

देवी बोलीं—हे महाभाग! अपने घर जाकर अब तुम सुखपूर्वक राज्य करो। हयग्रीवके अतिरिक्त अन्य किसीसे भी तुम्हारी कदापि मृत्यु नहीं होगी॥ १०१॥

उस दैत्यको यह वरदान देकर मैं अन्तर्धान हो गयी और वह भी परम प्रसन्न होकर अपने घर लौट गया॥ १०२॥

वह दुष्टात्मा इस समय मुनिजनों तथा वेदोंको हर प्रकारसे पीड़ित कर रहा है और तीनों लोकोंमें कोई भी ऐसा नहीं है, जो उसका संहार कर सके॥ १०३॥

अत: त्वष्टा इस अश्वका मनोहर सिर अलग करके उसे इन सिरविहीन विष्णुके धड़पर संयोजित कर देंगे॥ १०४॥

तत्पश्चात् देवताओंके कल्याणार्थ भगवान् हयग्रीव उस पापात्मा, अत्यन्त क्रूर तथा दानवी स्वभाववाले महा असुर हयग्रीवका संहार करेंगे॥ १०५॥

सूतजी बोले—देवताओंसे इस प्रकार कहकर भगवती शान्त हो गयीं और इसके बाद देवगण परम सन्तुष्ट होकर देवशिल्पी विश्वकर्मासे बोले॥ १०६॥

देवताओंने कहा—आप विष्णुके धड़पर घोड़ेका सिर जोड़कर देवताओंका कार्य कीजिये। वे भगवान् हयग्रीव ही दानवश्रेष्ठ दैत्यका वध करेंगे॥ १०७॥

सूतजी बोले—देवताओंका यह वचन सुनकर विश्वकर्माने अतिशीघ्रतापूर्वक अपने खड्गसे देवताओंके सामने ही घोड़ेका सिर काटा। तत्पश्चात् उन्होंने घोड़ेका वह सिर अविलम्ब विष्णुभगवान्के शरीरमें संयोजित कर दिया और इस प्रकार महामाया भगवतीकी कृपासे वे भगवान् विष्णु हयग्रीव हो गये॥ १०८-१०९॥

कुछ समय बाद उन भगवान् हयग्रीवने अहंकारके मदमें चूर उस देवशत्रु दानवका युद्धभूमिमें अपने तेजसे

वध कर दिया॥ ११०॥

इस संसारमें जो प्राणी इस पवित्र कथाका श्रवण करते हैं, वे समस्त पापोंसे मुक्त हो जाते हैं; इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं है॥ १११॥

महामाया भगवतीका चरित्र अति पावन है तथा पापोंका नाश कर देता है। इस चरित्रका पाठ तथा श्रवण करनेवाले प्राणियोंको सभी प्रकारकी सम्पदाएँ अनायास ही प्राप्त हो जाती हैं॥ ११२॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत प्रथम स्कन्धका 'हयग्रीवावतारकथन' नामक पाँचवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५॥

छठा अध्याय

शेषशायी भगवान् विष्णुके कर्णमलसे मधु-कैटभकी उत्पत्ति तथा उन दोनोंका ब्रह्माजीसे युद्धके लिये तत्पर होना

ऋषिगण बोले—हे सौम्य! आपने मधु और कैटभके साथ भगवान् विष्णुद्वारा महासिन्धुमें पाँच हजार वर्षोंतक युद्ध किये जानेकी पहले चर्चा की थी॥ १॥

महावीर्यसम्पन्न, किसीसे भी पराभूत न होनेवाले तथा देवताओंसे भी अपराजेय वे दोनों दानव उस एकार्णवके जलमें किससे प्रादुर्भूत हुए?॥ २॥

वे असुर क्यों उत्पन्न हुए तथा भगवान्‌के द्वारा उनका वध क्यों किया गया? हे महामते! आप यह परम अद्भुत आख्यान हमको सुनाइये॥ ३॥

हमलोग यह कथा सुननेको इच्छुक हैं और आप अति प्रसिद्ध वक्ता हैं। हमारा और आपका यह सम्पर्क दैवयोगसे ही हुआ है॥ ४॥

मूर्खके साथ स्थापित किया गया सम्पर्क विषसे भी अधिक अनिष्टकर होता है और इसके विपरीत विद्वानोंका सम्पर्क पीयूषरसके तुल्य माना गया है॥ ५॥

पशु भी जीवनयापन करते हैं, वे भी आहार ग्रहण करते हैं, मल-मूत्रादिका विसर्जन करते हैं और विषयासक्त होकर इन्द्रियजन्य सुखकी अनुभूति करते हैं; किंतु उनमें अच्छे-बुरेका लेशमात्र भी ज्ञान नहीं होता तथा वे मोक्षकी प्राप्ति करानेवाले विवेकसे भी रहित होते हैं। अतएव उत्तम बातोंको सुननेमें जो लोग श्रद्धा-भाव नहीं रखते, उन्हें पशु-तुल्य ही समझना चाहिये॥ ६-७॥

मृग आदि बहुत-से पशु श्रवण-सुखका अनुभव करते हैं और कानविहीन सर्प भी ध्वनि सुनकर मुग्ध हो जाते हैं॥ ८॥

पाँचों ज्ञानेन्द्रियोंमें श्रवणेन्द्रिय तथा दर्शनेन्द्रिय—दोनों ही शुभ होती हैं; क्योंकि सुननेसे वस्तुओंका ज्ञान प्राप्त होता है और देखनेसे मनोरंजन होता है॥ ९॥

हे महाभाग! विद्वानोंने निर्धारित करके कहा है कि सात्त्विक, राजस तथा तामस भेदानुसार श्रवण तीन प्रकारका होता है॥ १०॥

वेद-शास्त्रादिका श्रवण सात्त्विक, साहित्यका श्रवण राजस तथा युद्धसम्बन्धी बातों एवं दूसरोंकी निन्दाका श्रवण तामस कहा गया है॥ ११॥

प्रज्ञावान् पण्डितोंद्वारा सात्त्विक श्रवणके भी उत्तम, मध्यम तथा अधम—ये तीन प्रकार बताये गये हैं॥ १२॥

उत्तम श्रवण मोक्षकी प्राप्ति करानेवाला, मध्यम श्रवण स्वर्ग देनेवाला तथा अधम श्रवण भोगोंकी उपलब्धि करानेवाला कहा गया है। विद्वानोंने अच्छी तरह सोच-समझकर ऐसा निर्धारण किया है॥ १३॥

साहित्य भी तीन प्रकारका होता है। जिस साहित्यमें स्वकीया नायिकाका वर्णन हो वह उत्तम, जिस साहित्यमें वेश्याओंका वर्णन हो वह मध्यम तथा जिस साहित्यमें परस्त्रीवर्णन हो, वह अधम साहित्य कहा गया है॥ १४॥

शास्त्रोंके परम निष्णात विद्वानोंने तामस श्रवणके तीन भेद बतलाये हैं। किसी पापाचारीके संहारसे सम्बन्धित युद्धवर्णनका श्रवण उत्तम, कौरव-पाण्डवोंकी तरह द्वेषके कारण शत्रुतामें युद्धवर्णनका श्रवण मध्यम तथा अकारण

विवाद एवं कलहसे हुए युद्धके वर्णनका श्रवण अधम कहा गया है॥ १५-१६॥

हे महामते! इनमें पुराणोंके श्रवणकी ही प्रधानता मानी गयी है; क्योंकि इनके श्रवणसे बुद्धिका विकास होता है, पुण्य प्राप्त होता है और समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं॥ १७॥

अतएव हे महामते! पूर्वकालमें द्वैपायन महर्षि व्याससे सुनी हुई समस्त कामनाओंको सिद्ध करनेवाली परम पवित्र पौराणिक कथा कहिये॥ १८॥

सूतजी बोले—हे महाभाग! इस पृथ्वीलोकमें आपलोग धन्य हैं और मैं भी धन्य हूँ; क्योंकि आपलोगोंमें कथा-श्रवणके प्रति और मुझमें कथा-वाचनके प्रति विवेक जाग्रत् हुआ है॥ १९॥

पूर्वकालमें प्रलयावस्थामें जब तीनों लोक महाजलराशिमें विलीन हो गये और देवाधिदेव भगवान् विष्णु शेषशय्यापर सो गये तब विष्णुके कानोंकी मैलसे मधु-कैटभ नामक दो दानव उत्पन्न हुए और वे महाबली दैत्य उस महासागरमें बढ़ने लगे॥ २०-२१॥

वे दोनों दैत्य क्रीडा करते हुए उसी सागरमें इधर-उधर भ्रमण करते रहे। एक बार क्रीडापरायण विशाल शरीरवाले उन दोनों भाइयोंने विचार किया कि बिना किसी कारणके कोई भी कार्य नहीं होता; यह एक सार्वत्रिक परम्परा है॥ २२-२३॥

बिना किसी आधारके आधेयकी सत्ता कदापि सम्भव नहीं है; अत: आधार-आधेयका भाव हमारे मनमें बार-बार आता रहता है॥ २४॥

अति विस्तारवाला तथा सुखद यह जल किस आधारपर स्थित है? किसने इसका सृजन किया? यह किस प्रकार उत्पन्न हुआ और इस जलमें निमग्न हमलोग कैसे स्थित हैं?॥ २५॥

हम दोनों कैसे पैदा हुए और किसने हम दोनोंको उत्पन्न किया? हमारे माता-पिता कौन हैं?—इस बातका भी कोई ज्ञान हम दोनोंको नहीं है॥ २६॥

सूतजी बोले—इस प्रकार चिन्तन करते हुए वे किसी निश्चयपर नहीं पहुँचे, तब कैटभने जलके भीतर अपने पास स्थित मधुसे कहा॥ २७॥

कैटभ बोला—हे भाई मधु! हम दोनोंके इस जलमें स्थित रहनेका कारण कोई अचल महाबली शक्ति है, ऐसा ही मैं मानता हूँ॥ २८॥

उसीसे समुद्रका सम्पूर्ण जल व्याप्त है और उसी शक्तिके आधारपर यह जल टिका हुआ है तथा वे ही परात्परा देवी हम दोनोंकी भी स्थितिका कारण हैं॥ २९॥

इस प्रकार विविध चिन्तन करते हुए वे दोनों दानव जब सचेत हुए तब उन्हें आकाशमें अत्यन्त मनोहारी वाग्बीजस्वरूप (ऐं) वाणी सुनायी पड़ी॥ ३०॥

उसे सुनकर उन दोनोंने सम्यक् रूपसे हृदयंगम कर लिया और वे उसका दृढ़ अभ्यास करने लगे। तदनन्तर

उन्हें आकाशमें कौंधती हुई सुन्दर विद्युत् दिखलायी पड़ी॥ ३१॥

तब उन्होंने सोचा कि नि:सन्देह यह मन्त्र ही है और यह सगुण ध्यान ही आकाशमें प्रत्यक्ष दृष्टिगत हुआ है॥ ३२॥

तदनन्तर वे दोनों दैत्य आहारका परित्यागकर इन्द्रियोंको आत्मनियन्त्रित करके उसी विद्युज्ज्योतिमें मन केन्द्रित किये हुए समाधिस्थ भावसे जप-ध्यान करनेमें लीन हो गये॥ ३३॥

इस प्रकार उन दोनोंने एक हजार वर्षोंतक कठोर तपस्या की, जिससे वे परात्परा शक्ति उन दोनोंपर अतिशय प्रसन्न हो गयीं॥ ३४॥

घोर तपस्याके लिये अपने निश्चयपर दृढ़ रहनेवाले

उन दोनों दानवोंको अत्यन्त परिश्रान्त देखकर उनपर कृपाके निमित्त यह आकाशवाणी हुई॥ ३५॥

हे दैत्यो! तुम दोनोंकी कठोर तपश्चर्यासे मैं परम प्रसन्न हूँ। अतएव तुम दोनों अपना मनोवांछित वरदान माँगो; मैं अवश्य दूँगी॥ ३६॥

सूतजी बोले—तदनन्तर उस आकाशवाणीको सुनकर उन दानवोंने कहा—हे देवि! हमारी मृत्यु हमारे इच्छानुसार हो; हे सुव्रते! हमें आप यही वरदान दीजिये॥ ३७॥

वाणीने कहा—हे दैत्यो! मेरी कृपासे अब तुम दोनों अपनी इच्छासे ही मृत्युको प्राप्त होओगे। दानव और देवता कोई भी तुम दोनों भाइयोंको पराजित नहीं कर सकेंगे; इसमें सन्देह नहीं है॥ ३८॥

सूतजी बोले—भगवतीसे ऐसा वरदान प्राप्तकर वे दोनों दैत्य मदोन्मत्त होकर उस महासागरमें जलचर जीवोंके साथ क्रीड़ातत्पर हो गये॥ ३९॥

हे विप्रो! कुछ समय व्यतीत होनेपर उन दानवोंने संयोगवश जगत्स्रष्टा ब्रह्माजीको कमलके आसनपर बैठे हुए देखा॥ ४०॥

उन्हें देखकर युद्धकी लालसासे वे दोनों महाबली दैत्य प्रसन्न हो उठे और ब्रह्माजीसे बोले—हे सुव्रत! आप हमलोगोंके साथ युद्ध कीजिये; अन्यथा यह पद्मासन छोड़कर आप अविलम्ब जहाँ जाना चाहें, वहाँ चले जाइये। यदि आप दुर्बल हैं तो इस शुभ आसनपर बैठनेका आपका अधिकार कहाँ! कोई वीर ही इस आसनका उपभोग कर सकता है। आप कायर हैं, अतः अतिशीघ्र इस आसनको छोड़ दीजिये। उन दोनों दैत्योंकी यह बात सुनकर प्रजापति ब्रह्मा चिन्तामें पड़ गये। तब उन दोनों बलशाली वीरोंको देखकर ब्रह्माजी चिन्ताकुल हो उठे और मन-ही-मन सोचने लगे कि मुझ-जैसा तपस्वी इनका क्या कर सकता है?॥ ४१—४४॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत प्रथम स्कन्धका 'मधुकैटभके युद्धके उद्योगका वर्णन' नामक छठा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ६॥

सातवाँ अध्याय

ब्रह्माजीका भगवान् विष्णु तथा भगवती योगनिद्राकी स्तुति करना

सूतजी बोले—तदनन्तर उन दोनों वीरोंको देखकर सर्वशास्त्रवेत्ता ब्रह्माजी साम, दान, भेद आदि नीतियोंके माध्यमसे युद्धकी समाप्तिके उपायोंको सोचने लगे॥ १॥

इनके वास्तविक बलका मुझे कोई ज्ञान नहीं है। नीतिके अनुसार जिसके बलकी जानकारी न हो, उसके साथ युद्ध करना कदापि उचित नहीं होता॥ २॥

यदि मैं इस समय इन मदोन्मत्त दुष्ट दानवोंकी स्तुति करता हूँ तो इससे स्वयं मेरे द्वारा अपनी निर्बलता प्रकाशित होगी। निर्बलता प्रदर्शित करनेपर इनमेंसे कोई एक ही मेरा वध कर देगा। इनके साथ इस समय मैं न तो दाननीति और न तो भेदनीतिको ही उपयुक्त समझ रहा हूँ। अतः इस समय उचित यही है कि मैं शेषनागपर सोये हुए चतुर्भुज एवं पराक्रमी भगवान् विष्णुको जगाऊँ। वे मेरी विपत्ति अवश्य ही दूर करेंगे॥ ३—५॥

मनमें ऐसा सोचकर कमलनालका आश्रय लेकर पद्मयोनि ब्रह्माजी मन-ही-मन दुःखनाशक विष्णुके शरणागत हो गये॥ ६॥

वे शुभ सम्बोधनोंके द्वारा योगनिद्राके कारण स्पन्दनरहित उन नारायण जगत्पति भगवान् विष्णुको जगानेके लिये उनकी स्तुति करने लगे॥ ७॥

ब्रह्माजी बोले—हे दीनानाथ! हे हरे! हे विष्णो! हे वामन! हे माधव! भक्तोंकी पीड़ा हरनेवाले हे हृषीकेश! हे सर्वव्यापिन्! हे जगत्पते! हे अनन्तस्वरूप! हे वासुदेव! हे अन्तर्यामिन्! हे जगत्के स्वामी! हे दुष्टों तथा शत्रुओंका संहार करनेमें एकाग्र चित्तवाले! हे चक्रधर! हे गदाधर! हे सर्वज्ञ! हे सर्वलोकेश! हे सर्वशक्तिसम्पन्न! हे देवेश! हे दुःखनाशन! अब आप उठिये, उठिये और मेरी रक्षा कीजिये॥ ८—१०॥

हे विश्वम्भर! हे विशालाक्ष! हे पुण्यश्रवण-कीर्तन! हे जगत्स्रष्टा! हे निराकार! हे सृष्टि-पालन-संहारके कारक! हे महाराज! ये दोनों मदोन्मत्त दानव मेरा वध करना चाहते हैं। हे सर्वाधार! मैं इस समय संकटग्रस्त हूँ; क्या आप यह नहीं जानते?॥ ११-१२॥

हे महाविष्णो! मैं इस समय दुःखसे अत्यधिक पीड़ित हूँ और आपके शरणागत हूँ। ऐसी स्थितिमें यदि आप मेरी उपेक्षा करेंगे तो आपका जगत्पालनका नियम निरर्थक हो जायगा॥ १३॥

इस प्रकार स्तुति करनेपर भी जब योगनिद्रामें लीन भगवान् विष्णु नहीं जगे, तब ब्रह्माजीने विचार किया कि भगवान् विष्णु अवश्य ही शक्तिके अधीन होकर योगनिद्राके वशमें हो गये हैं, जिससे ये धर्मात्मा नहीं जग रहे हैं। अब दुःखसे पीड़ित मैं इस समय क्या करूँ? अहंकारके मदमें चूर वे दोनों दानव मुझे मारनेके उद्देश्यसे यहाँ आ गये हैं। अब मैं क्या करूँ और कहाँ जाऊँ? अब तो मुझे शरण देनेवाला कोई भी नहीं है॥ १४—१६॥

इस प्रकार मन-ही-मन सोचते हुए वे एक निष्कर्षपर पहुँचकर एकाग्रचित्त हो उन भगवती योगनिद्राकी स्तुति करने लगे॥ १७॥

उन्होंने अपने मनमें यह दृढ विचार रख लिया कि वे ही महाशक्ति मेरी रक्षा करनेमें समर्थ हैं; जिन्होंने भगवान् विष्णुको भी चेतनाहीन तथा निःस्पन्द कर दिया है॥ १८॥

इस लोकमें जैसे मृत प्राणीको शब्द आदि गुणोंका आभास नहीं हो पाता, उसी प्रकार निद्राके कारण अपने नेत्र मूँदे हुए भगवान् विष्णु कुछ भी जान सकनेमें असमर्थ हैं॥ १९॥

मेरे द्वारा नानाविध स्तुति किये जानेपर भी भगवान् विष्णु निद्राका त्याग नहीं कर रहे हैं। अतएव मैं मानता हूँ कि निद्रा इनके अधीन नहीं है, अपितु निद्राके द्वारा ही ये वशीभूत कर लिये गये हैं॥ २०॥

जो प्राणी जिस किसीके वशमें हो जाता है, वह निश्चय ही उसीका दास बन जाता है। अतः ये योगनिद्रा ही लक्ष्मीपति विष्णुकी स्वामिनी हो गयी हैं॥ २१॥

जिस शक्तिके द्वारा सिन्धुपुत्री लक्ष्मीके वशमें रहनेवाले भगवान् विष्णु भी वशीभूत कर लिये गये हैं, उन्हीं भगवतीने निश्चितरूपसे इस जगत्को अपने अधीन कर रखा है॥ २२॥

मैं (ब्रह्मा), विष्णु, शंकर, सावित्री, लक्ष्मी एवं पार्वती—हम सभी उन्हींके अधीन हैं; इसमें कुछ भी संशय नहीं है॥ २३॥

भगवान् विष्णु भी जिस शक्तिके वशीभूत होकर विवश हुए-से उसी प्रकार सो रहे हैं जिस प्रकार एक सामान्य प्राणी सोता है, तब अन्य महापुरुषोंके विषयमें क्या कहा जाय?॥ २४॥

अतः अब मैं योगनिद्राका ही स्तवन करूँगा जिनकी कृपासे निद्रामुक्त होकर जनार्दन, सनातन भगवान् वासुदेव युद्धके लिये उद्योग करेंगे॥ २५॥

तदनन्तर ऐसा निश्चयकर कमलनालपर विराजमान ब्रह्माजी भगवान् विष्णुके अंगोंमें व्याप्त उन योगनिद्राकी स्तुति करने लगे॥ २६॥

ब्रह्माजी बोले—हे देवि! इस जगत्का कारण आप ही हैं; वेदवाक्योंसे मुझे ऐसा ज्ञात हुआ है। हे अम्ब! आपकी ही शक्तिसे सम्पूर्ण विश्वको ज्ञान देनेवाले पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु भी इस समय योगनिद्राके वशमें हो गये हैं॥ २७॥

हे माता! समग्र लोकको मोहित कर देनेवाली आपकी लीलाको कौन जान सकता है? आपकी इस लीलासे मैं तो मूढ़ हो गया हूँ और ये विष्णु परवश होकर सो रहे हैं। हे समस्त प्राणियोंके मनमें निवास करनेवाली

भगवति! करोड़ों देवताओंमें भी ऐसा कौन विज्ञ है, जो ऐसी आप निर्गुणाका रहस्य जान सके?॥ २८॥

सांख्यशास्त्रके विद्वान् पुरुष और प्रकृतिसे जगत्की उत्पत्ति मानते हैं। इनमें वे अचेतन प्रकृतिको ही जगत्को उत्पन्न करनेवाली बताते हैं। तो फिर क्या आप वैसी ही अचेतन हैं? किंतु यदि आप जड होतीं तो इन जगदाधार विष्णुको इस समय चेतनारहित कैसे कर देतीं?॥ २९॥

हे महामाये! आप सगुण रूप धारणकर नानाविध लीलाएँ करती रहती हैं, अत: आपके रहस्यमय कार्योंका सम्यक् ज्ञान करनेमें भला कौन समर्थ है? हे भवानि! मुनिगण 'सन्ध्या' नामसे आपके गुणोंको परिकल्पित करके तीनों समय (प्रात:, मध्याह्न, सायं) निश्चितरूपसे आपका ही ध्यान करते हैं॥ ३०॥

हे देवि! आप बुद्धिस्वरूपा होकर समस्त लोकको ज्ञान देती हैं और लक्ष्मीरूपसे सदैव देवताओंको सुख प्रदान करती हैं। हे माता! सम्पूर्ण प्राणियोंमें कीर्ति, मति, धृति, कान्ति, श्रद्धा एवं रतिरूपमें आप ही विद्यमान हैं॥ ३१॥

हे देवि! प्रगाढ निद्राके वशीभूत विष्णुको देखकर विषम दु:खकी स्थितिको प्राप्त हुए मुझको यह प्रमाण मिल गया कि आप ही निस्सन्देह सम्पूर्ण जगत्की जननी हैं। इस विषयमें अब सैकड़ों तर्क-वितर्ककी कोई आवश्यकता नहीं है॥ ३२॥

हे देवि! आप वेदशास्त्रोंके पारदर्शी विद्वानोंकी समझसे भी परे हैं और वेद भी आपको पूर्णरूपसे नहीं जानते; क्योंकि उन वेदोंकी उत्पत्तिका भी कारण आप ही हैं। आपका यह सम्पूर्ण रहस्यमय क्रिया-कलाप सबको प्रत्यक्ष दिखायी देता है॥ ३३॥

इस संसारमें कौन ऐसा बुद्धिमान् प्राणी है, जो आपके सम्पूर्ण चरित्रको जाननेमें समर्थ है? स्वयं मैं (ब्रह्मा), विष्णु, शंकर, देवगण, अन्य मुनिवृन्द तथा मेरे तत्त्वज्ञ पुत्र-लोग भी उसे नहीं जान सके हैं। सम्पूर्ण लोकमें आपकी महिमाका वर्णन कोई नहीं कर सकता है॥ ३४॥

हे देवि! यदि यज्ञोंमें वैदिक विद्वान् हवनकार्यके समय आपके 'स्वाहा' नामका उच्चारण न करें तो देवगण अपना यज्ञभाग नहीं प्राप्त कर सकते। अतएव आप ही देवताओंका भी भरण-पोषण करती हैं॥ ३५॥

हे भगवति! आपने पहले भी समय-समयपर दैत्योंद्वारा उत्पन्न किये गये भयोंसे हमारी रक्षा की है, उसी प्रकार इस समय भी हमारी रक्षा करें, मैं आपकी शरणमें हूँ। हे देवि! हे वरदे! मधुके साथ भयानक इस कैटभको देखकर मैं अत्यन्त भयाक्रान्त हूँ॥ ३६॥

आपकी योगमायाने भगवान् विष्णुके शरीरके सभी अवयवोंको अपने वशमें कर रखा है, अत: वे मेरी इस विषम विपत्तिको नहीं जान रहे हैं। हे महानुभावे! या तो इस समय आप आदिदेवको मुक्त कर दें अथवा इन दोनों महादैत्योंका वध कर दें; इनमेंसे आपको जो उचित जान पड़े, वह कीजिये॥ ३७॥

हे देवि! जो मन्दबुद्धि प्राणी आपकी विशिष्ट महिमाको नहीं जानते, वे ही विष्णु तथा शंकर आदिकी आराधना करते हैं। हे जननि! आज प्रत्यक्ष प्रमाणके रूपमें मैं आपकी महिमा देख रहा हूँ कि भगवान् विष्णु भी प्रगाढ़ निद्राके वशीभूत होकर सो रहे हैं॥ ३८॥

आपकी शक्तिके वशमें पड़े अपने पति भगवान् विष्णुको इस समय सिन्धुसुता लक्ष्मी भी नहीं जगा सकतीं; क्योंकि हे भगवति! मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि आपने ही बलपूर्वक लक्ष्मीको भी शयन करनेके लिये विवश कर दिया है, जिससे वे भी नहीं जग रही हैं॥ ३९॥

हे देवि! इस संसारमें वे ही प्राणी धन्य हैं जो आपके चरणोंमें भक्तिभाव रखते हैं, अन्य देवताओंकी उपासना त्यागकर आपके ध्यानमें लीन रहते हैं और आपको ही सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण करनेवाली कामधेनु तथा समस्त लोककी जननी मानकर आपका भजन करते हैं॥ ४०॥

बुद्धि, कान्ति, यश, शुभ वृत्ति आदि गुण इस समय भगवान् विष्णुका परित्यागकर कहाँ चले गये? हे भगवति! अतिशय मानवाली आपकी ही शक्तिसे ये भगवान् विष्णु इस समय निद्राके वशवर्ती हो गये हैं॥ ४१॥

अखिल प्रभाववाली आप ही जगत्की एकमात्र शक्ति

हैं और आपके द्वारा रचा गया सब कुछ आपकी लीला ही है। जैसे कोई नट अपने ही द्वारा निर्मित नाट्यमें अभिनय करता है, उसी प्रकार आप भी अपने ही द्वारा निर्मित मोहजालमें नानाविध लीलाएँ करती रहती हैं॥ ४२॥

युगके आरम्भमें आपने सर्वप्रथम विष्णुका सृजन किया, सबके पालनके लिये उन्हें निर्मल शक्ति प्रदान की और इस प्रकार समस्त जगत्की रक्षा की। उन्हीं भगवान् विष्णुको निद्राभिभूतकर आपने इस समय सुला दिया है। हे अम्ब! आपको जो उचित जान पड़ता है, आप निश्चितरूपसे वही किया करती हैं॥ ४३॥

हे भगवति! यदि आप मेरी सृष्टि करके मुझे नष्ट कर देनेकी इच्छा नहीं रखतीं तो अपना यह मौन त्यागकर मेरे ऊपर दया कीजिये। हे भवानि! आपने कालरूप इन दोनों दानवोंको किसलिये उत्पन्न किया है? कहीं आपने मेरे उपहासके लिये तो ऐसा नहीं किया है?॥ ४४॥

हे भवानि! अब मुझे आपके अद्भुत चरित्रका ज्ञान हो गया। समस्त जगत्की रचना करके आप उसीमें स्वेच्छासे विहार करती हैं और पुनः उसे अपनेमें जैसे समाहित कर लेती हैं, उसी प्रकार मुझे नष्ट कर देना चाहती हैं तो इसमें कोई विचित्र बात नहीं है॥ ४५॥

हे माता! यदि आप यही चाहती हैं तो मेरा वध कर दीजिये। हे जगदम्बे! मुझे मरणजनित दुःखकी लेशमात्र भी चिन्ता नहीं है। हाँ, आपको यह महान् कलंक अवश्य लगेगा कि आपने जिसे सर्वप्रथम सृष्टिकर्ता बनाया, उसे दैत्यने मार डाला॥ ४६॥

हे देवि! अब आप उठिये और अपना अद्भुत रूप धारण कीजिये। हे बाललीलाकारिणि! आप अपने इच्छानुरूप चाहे मुझे मार दें अथवा इन दोनों दैत्योंको मार दें या तो भगवान् विष्णुको जगा दें, जिससे वे इन दोनोंका वध कर दें। यह सारा काम करनेमें आप ही समर्थ हैं॥ ४७॥

सूतजी बोले—ब्रह्माजीद्वारा इस प्रकार स्तुति किये जानेपर विष्णुके शरीरसे निकलकर तामसीदेवी उनके समीप खड़ी हो गयीं॥ ४८॥

तदनन्तर अतुलित तेजवाले विष्णुके समस्त अंगोंको छोड़कर योगनिद्रा उन दोनोंका संहार करनेके लिये बाहर निकल आयीं॥ ४९॥

[योगमायाके प्रभावसे मुक्त हुए] वे जनार्दन जब चेतनायुक्त शरीरवाले हुए तब उन विष्णुको देखकर ब्रह्माजीको परम प्रसन्नता हुई॥ ५०॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत प्रथम स्कन्धका 'विष्णुप्रबोध' नामक सातवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ७॥

आठवाँ अध्याय

भगवान् विष्णु योगमायाके अधीन क्यों हो गये—ऋषियोंके इस प्रश्नके उत्तरमें सूतजीद्वारा उन्हें आद्याशक्ति भगवतीकी महिमा सुनाना

ऋषिगण बोले—हे महाभाग! हमें इस कथानकमें महान् अद्भुत संशय है। हे महामते! वेदों, शास्त्रों, पुराणों तथा बुद्धिमान् लोगोंकी सदासे यह अवधारणा रही है कि ब्रह्मा, विष्णु तथा शम्भु—ये तीनों देवता सनातन हैं और

इस ब्रह्माण्डमें इनसे बढ़कर अन्य कोई नहीं है॥ १-२॥

ब्रह्मा जगत्का सृजन करते हैं, विष्णु पालन करते हैं और शंकर प्रलयकालमें संहार करते हैं। ये तीनों ही इसमें कारण हैं॥ ३॥

ब्रह्मा, विष्णु और महेश—ये तीनों देवता एक ही मूर्तिके तीन स्वरूप हैं। ये लोग क्रमशः रज, सत्त्व और तम-गुणोंसे युक्त होकर अपना-अपना कार्य करते हैं॥ ४॥

उन तीनोंमें माधव, पुरुषोत्तम, आदिदेव जगन्नाथ श्रीहरि श्रेष्ठ हैं और वे सभी कार्य सम्पादित करनेमें समर्थ हैं। अनुपम तेजवाले विष्णुसे बढ़कर सर्वसमर्थ अन्य कोई भी नहीं है। उन जगत्पति विष्णुको योगमायाने विवश करके भला कैसे सुला दिया?॥ ५-६॥

उस समय उन विष्णुकी चेतना कहाँ चली गयी और उनके जीवनकी चेष्टा कहाँ लुप्त हो गयी? हे महाभाग! यह महान् सन्देह उपस्थित है; आप इस विषयमें यथोचित बतानेकी कृपा करें॥ ७॥

जिस शक्तिके विषयमें आप पहले बता चुके हैं कि उसने भगवान् विष्णुको भी पराभूत कर दिया था, वह कौन-सी शक्ति है? वह शक्ति कहाँसे उद्भूत हुई, शक्तिसम्पन्न कैसे हुई तथा उसका स्वरूप क्या है? हे सुव्रत! यह सब हमें स्पष्टरूपसे बतलाइये॥ ८॥

जो विष्णु हैं वे तो सबके ईश्वर, वासुदेव, जगत्के गुरु, परमात्मा, परम आनन्दस्वरूप तथा सच्चिदानन्दकी साक्षात् मूर्ति हैं; सब कुछ करनेमें समर्थ, सबका पालन करनेवाले, सभी चराचरका सृजन करनेवाले, रजोगुणसे रहित, सर्वव्यापी और पवित्र हैं। वे परात्पर विष्णु निद्राकी परतन्त्रतामें कैसे आबद्ध हो गये?॥ ९-१०॥

हे परन्तप! हमें इस प्रकारका आश्चर्यजनक सन्देह है। हे सूत! हे व्यासशिष्य! हे महामते! आप अपने ज्ञानरूपी खड्गसे हमारे इस सन्देहको नष्ट कर दीजिये॥ ११॥

सूतजी बोले—हे मुनिजन! इस चराचर जगत्में कौन ऐसा है, जो इस शंकाका समाधान कर सके, जबकि ब्रह्माके पुत्र सनकादि मुनि तथा नारद, कपिल आदि भी इस विषयमें मोहित हो जाते हैं? हे मुनिश्रेष्ठ! हे महाभाग! तब इस जटिल समस्याके समाधानमें मैं क्या कहूँ?॥ १२-१३॥

देवताओंमें भगवान् विष्णु ही सर्वव्यापी एवं सभी भूतोंके रक्षक कहे गये हैं। उन्हींसे इस चराचर समस्त विराट् संसारकी सृष्टि हुई है॥ १४॥

वे सभी देवता परात्पर परमात्माको नमस्कार करके नारायण, हृषीकेश, वासुदेव, जनार्दनरूपमें उनकी उपासना करते हैं॥ १५॥

कुछ लोग महादेव, शंकर, शशिशेखर, त्रिनेत्र, पंचवक्त्र, शूलपाणि और वृषभध्वजके रूपमें उन्हींकी उपासना करते हैं॥ १६॥

सभी वेदोंमें भी त्रियम्बक (त्र्यम्बक), कपर्दी, पंचवक्त्र, गौरीदेहार्धधारी, कैलासवासी, सर्वशक्तिसमन्वित, भूतगणोंसे सेवित एवं दक्षयज्ञविध्वंसक आदि नामोंसे उनका गुणगान किया गया है॥ १७-१८॥

हे महाभागो! वैदिक विद्वान् लोग सूर्य आदि नामोंसे भी नित्य प्रातः, सायं तथा मध्याह्नकालमें सन्ध्या करते समय विविध प्रकारकी स्तुतियोंसे उन्हींकी प्रार्थना करते हैं॥ १९॥

सभी वेदोंमें सूर्योपासना श्रेष्ठ कही गयी है तथा उन महात्माका नाम 'परमात्मा' कहा गया है। वेदोंमें सर्वत्र वेदज्ञोंद्वारा अग्निदेवकी भी स्तुति की गयी है। वहाँ त्रिलोकेश इन्द्र, वरुण तथा अन्यान्य देवताओंकी भी स्तुति की गयी है॥ २०-२१॥

जिस प्रकार गंगा अनेक धाराओंमें विद्यमान रहकर प्रवाहित होती हैं, उसी प्रकार महर्षियोंद्वारा भगवान् विष्णु सभी देवताओंमें विद्यमान बताये गये हैं॥ २२॥

मनीषी विद्वानोंने तीन प्रकारके मुख्य प्रमाण बताये हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान और तीसरा शब्दप्रमाण। अन्य (न्याय)-के पण्डित चार प्रमाण मानते हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान एवं शब्दप्रमाण। परंतु अन्य (मीमांसाके) विद्वान् लोग अर्थापत्तिको लेकर पाँच प्रमाण मानते हैं॥ २३-२४॥

पौराणिक विद्वान् सात प्रमाण बताते हैं—इन प्रमाणोंसे भी जो दुर्ज्ञेय है, वह है—परब्रह्म॥ २५॥

इसलिये इस विषयमें बुद्धि, शास्त्र एवं निश्चयात्मिका

युक्तिसे बार-बार विचार करके अनुमान करना चाहिये। साथ ही सन्मार्गका अनुसरण करनेवाले दृष्टान्तद्वारा इस प्रत्यक्ष विज्ञानका चिन्तन बुद्धिमान् मनुष्यको सर्वदा करते रहना चाहिये॥ २६-२७॥

प्रायः सभी पुराण तथा विद्वान् ऐसा कहते हैं कि ब्रह्मामें सृष्टि करनेकी शक्ति, विष्णुमें पालन करनेकी शक्ति, शिवमें संहार करनेकी शक्ति, सूर्यमें प्रकाश करनेकी शक्ति तथा शेष और कच्छपमें पृथ्वीको धारण करनेकी शक्ति स्वभावतः विद्यमान रहती है॥ २८-२९॥

इस प्रकार एकमात्र वे आद्याशक्ति ही स्वरूपभेदसे सभीमें व्याप्त रहती हैं। वे ही अग्निमें दाहकत्व शक्ति तथा वायुमें संचारशक्ति हैं॥ ३०॥

कुण्डलिनी शक्तिके बिना शिव भी 'शव' बन जाते हैं। विद्वान् लोग शक्तिहीन जीवको निर्जीव एवं असमर्थ कहते हैं॥ ३१॥

अतएव हे मुनिजनो! ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त सभी पदार्थ इस संसारमें शक्तिके बिना सर्वथा हेय हैं; क्योंकि स्थावर-जंगम सभी जीवोंमें वह शक्ति ही काम करती है। यहाँतक कि शक्तिहीन पुरुष शत्रुपर विजयी होने, चलने-फिरने तथा भोजन करनेमें भी सर्वथा असमर्थ रहता है॥ ३२-३३॥

वह सर्वत्र व्याप्त रहनेवाली आदिशक्ति ही 'ब्रह्म' कहलाती है। बुद्धिमान् मनुष्यको चाहिये कि वह अनेक प्रकारके यत्नोंद्वारा सम्यक् रूपसे उसकी उपासना करे तथा उसका चिन्तन करे॥ ३४॥

भगवान् विष्णुमें सात्त्विकी शक्ति रहती है, जिसके बिना वे अकर्मण्य हो जाते हैं। ब्रह्मामें राजसी शक्ति है, वे भी शक्तिहीन होकर सृष्टिकार्य नहीं कर सकते और शिवमें तामसी शक्ति रहती है, जिसके बलपर वे संहार-कृत्य सम्पादित करते हैं। इस विषयपर मनसे बार-बार विचार करके तर्क-वितर्क करते रहना चाहिये॥ ३५-३६॥

शक्ति ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्डकी रचना करती है, सबका पालन करती है और इच्छानुसार इस चराचर जगत्का संहार करती है॥ ३७॥

उसके बिना विष्णु, शिव, इन्द्र, ब्रह्मा, अग्नि, सूर्य और वरुण कोई भी अपने-अपने कार्यमें किसी प्रकार भी समर्थ नहीं हो सकते॥ ३८॥

वे देवगण शक्तियुक्त होनेपर ही अपने-अपने कार्योंको सम्पादित करते रहते हैं। प्रत्येक कार्य-कारणमें वही शक्ति प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होती है॥ ३९॥

मनीषी पुरुषोंने शक्तिको सगुणा और निर्गुणा भेदसे दो प्रकारका बताया है। सगुणा शक्तिकी उपासना आसक्तजनों और निर्गुणा शक्तिकी उपासना अनासक्तजनोंको करनी चाहिये॥ ४०॥

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पदार्थोंकी स्वामिनी वे ही निर्विकार शक्ति हैं। विधिवत् पूजा करनेसे वे सब प्रकारके मनोरथ पूर्ण करती हैं॥ ४१॥

सदा मायासे घिरे हुए अज्ञानी लोग उस महाशक्तिको जान नहीं पाते। यहाँतक कि कुछ विद्वान् पुरुष उन्हें जानते हुए भी दूसरोंको भ्रममें डालते हैं। कुछ मन्दबुद्धि पण्डित अपने उदरकी पूर्तिके लिये कलिसे प्रेरित होकर अनेक प्रकारके पाखण्ड करते हैं॥ ४२-४३॥

हे महाभागो! इस कलिमें बहुत प्रकारके अवैदिक तथा भेदमूलक धर्म उत्पन्न होते हैं; दूसरे युगोंमें नहीं होते॥ ४४॥

स्वयं भगवान् विष्णु भी अनेक वर्षोंतक कठोर तप करते हैं और ब्रह्मा तथा शिवजी भी ऐसा ही करते हैं। ये तीनों देवता निश्चित ही किसीका ध्यान करते हुए कठिन तपस्या करते रहते हैं॥ ४५॥

इसी प्रकार अपनी इच्छाओंकी पूर्तिके लिये ब्रह्मा, विष्णु, महेश—ये तीनों ही देवता अनेक प्रकारके यज्ञ सदा करते हैं। वे उन पराशक्ति, ब्रह्म नामवाली परमात्मिका देवीको नित्य एवं सनातन मानकर सर्वदा मनसे उन्हींका ध्यान करते हैं॥ ४६-४७॥

हे मुनिश्रेष्ठ! सब शास्त्रोंका यही निश्चय जानना चाहिये कि दृढनिश्चयी विद्वानोंके द्वारा वे आदिशक्ति ही सदा सेवनीय हैं॥ ४८॥

यह गुप्त रहस्य मैंने कृष्णद्वैपायनसे सुना है जिसे उन्होंने नारदजीसे, नारदजीने अपने पिता ब्रह्माजीसे और

ब्रह्माजीने भी भगवान् विष्णुके मुखसे सुना था॥ ४९॥

इसलिये विद्वान् पुरुषोंको चाहिये कि वे न तो किसी अन्यकी बात सुनें और न मानें तथा दृढप्रतिज्ञ होकर सर्वदा शक्तिकी ही उपासना करें॥ ५०॥

शक्तिहीन असमर्थ पुरुषका व्यवहार तो प्रत्यक्ष ही देखा जाता है [कि वह कुछ कर नहीं पाता]। इसलिये सर्वव्यापिनी आदिशक्ति जगज्जननी भगवतीको ही जाननेका प्रयत्न करना चाहिये॥ ५१॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत प्रथम स्कन्धका 'आराध्यनिर्णयवर्णन' नामक आठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ८॥

नौवाँ अध्याय

भगवान् विष्णुका मधु-कैटभसे पाँच हजार वर्षोंतक युद्ध करना, विष्णुद्वारा देवीकी स्तुति तथा देवीद्वारा मोहित मधु-कैटभका विष्णुद्वारा वध

सूतजी बोले—[हे मुनिजनो!] जब जगद्गुरु भगवान् विष्णुके शरीरसे निद्रादेवी निकलीं; उस समय उनके नेत्र, मुख, नासिका, भुजा, हृदय तथा वक्षःस्थलसे निकलकर वे श्रेष्ठ तामसी शक्ति आकाशमें स्थित हो गयीं, तब भगवान् विष्णु भी बार-बार जम्हाई लेते हुए उठ खड़े हुए॥ १-२॥

तब वहाँ भगवान् विष्णुने भयसे काँपते हुए ब्रह्माको देखा और उन महातेजस्वी विष्णुने मेघके समान गम्भीर वाणीमें कहा॥ ३॥

विष्णु बोले—हे कमलोद्भव ब्रह्माजी! आप तपस्या छोड़कर यहाँ कैसे आ गये हैं? आप इतने चिन्तित एवं भयभीत क्यों हो रहे हैं?॥ ४॥

ब्रह्माजी बोले—हे देव! आपके कानोंके मैलसे दो महादानव पैदा हो गये हैं, जो महाभयंकर एवं महाबली हैं, जिनका नाम मधु और कैटभ है। उन्हीं दोनोंके भयसे मैं आपके पास आया हूँ। हे जगत्पते! हे वासुदेव! आप मुझ भयभीत तथा किंकर्तव्यविमूढ़की रक्षा कीजिये॥ ५-६॥

विष्णु बोले—ब्रह्मन्! अब आप निर्भय हो जाइये। उनकी मृत्यु निकट है, इसीलिये वे यहाँ युद्ध करनेके लिये आयेंगे और मैं उन दोनों दैत्योंका वध करूँगा॥ ७॥

सूतजी बोले—इस प्रकार भगवान् विष्णु ब्रह्मासे कह ही रहे थे कि वे दोनों मतवाले महाबली दैत्य ब्रह्माजीको ढूँढ़ते हुए वहाँ आ पहुँचे॥ ८॥

हे श्रेष्ठ मुनियो! वे दैत्य उस महासागरके जलमें बिना किसी अवलम्बके निश्चिन्त होकर खड़े थे। उन अहंकारी राक्षसोंने ब्रह्माजीसे कहा—'तुम भागकर इनके पास क्यों आये? अब तुम युद्ध करो। इनके देखते-देखते ही हमलोग तुम्हें मार डालेंगे'॥ ९-१०॥

तत्पश्चात् शेषशय्यापर सोनेवाले इस पुरुषको भी मार डालेंगे। इसलिये तुम हम दोनों भाइयोंसे या तो युद्ध करो अथवा यह कहो कि 'मैं तुम्हारा सेवक हूँ'॥ ११॥

सूतजी बोले—उन दैत्योंका वचन सुनकर भगवान् विष्णुने कहा—अरे दानवेन्द्रो! तुम दोनों मेरे साथ यथेच्छ युद्ध करो। मैं तुम दोनों दैत्योंका घमण्ड चूर-चूर कर डालूँगा। हे महाभागो! तुम दोनोंकी लड़नेकी इच्छा है और अपनेको महायोद्धा समझ रहे हो तो आ जाओ॥ १२-१३॥

सूतजी बोले—भगवान्का यह वचन सुनते ही उन दैत्योंके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये और जलमें खड़े निराधार वे दोनों भयंकर दानव युद्ध करनेको तैयार हो गये॥ १४॥

इनमें मधुदैत्य कुपित होकर विष्णुसे युद्ध करनेके लिये शीघ्र ही चल पड़ा और कैटभ वहीं खड़ा रहा॥ १५॥

दो मतवाले वीरोंके समान मधु और विष्णुमें

बाहुयुद्ध होने लगा। जब मधु थक गया तब कैटभ उनसे लड़ने लगा॥ १६॥

इस प्रकार क्रमशः कुपित एवं मदान्ध दोनों दैत्य परम प्रतापी भगवान् विष्णुके साथ बारी-बारीसे बाहुयुद्ध करते रहे॥ १७॥

उस समय वहाँ उस युद्धके द्रष्टा ब्रह्मा और आकाशमें स्थित आदिशक्ति देवी थीं। बहुत दिनोंतक युद्ध करते-करते भी वे दैत्य नहीं थके तब भगवान् विष्णुको ग्लानि होने लगी। इस प्रकार जब युद्ध करते हुए पाँच हजार वर्ष बीत गये तब भगवान् विष्णु उन दैत्योंकी मृत्युका उपाय सोचने लगे॥ १८-१९॥

उनके विचारमें आया कि मैंने पाँच हजार वर्षतक इनके साथ युद्ध किया, किंतु ये भयानक दानव थके नहीं और मैं थक गया; यह बड़े आश्चर्यकी बात है॥ २०॥

मेरा वह पराक्रम और बल कहाँ चला गया? ये दोनों मुझसे लड़ते हुए भी स्वस्थ हैं। इसका कारण क्या है? अब मुझे अच्छी तरह विचार करना चाहिये॥ २१॥

इस प्रकार चिन्तामें पड़े हुए विष्णुको देखकर ये दोनों मतवाले दैत्य अत्यन्त हर्षित हुए और मेघके समान गम्भीर वाणीमें बोले—हे विष्णो! यदि तुझमें अब बल न हो अथवा युद्धसे थक गये हो तो सिरपर हाथ जोड़कर कह दो कि मैं तुम दोनोंका सेवक हूँ अथवा यदि सामर्थ्य हो तो हे महामते! आओ, हमारे साथ युद्ध करो। आज हमलोग तुम्हें मारकर इस चार मुखवाले पुरुष (ब्रह्मा)-को भी मार डालेंगे॥ २२—२४॥

सूतजी बोले—उस महासागरमें उपस्थित महामना विष्णुने उनके वचन सुनकर सामनीतिके अनुसार मधुर शब्दोंमें कहा—॥ २५॥

विष्णु बोले—यह सनातनधर्म है कि थके हुए, डरे हुए, शस्त्र त्यागे हुए, गिरे हुए एवं बालकपर वीर लोग प्रहार नहीं करते॥ २६॥

मैंने तो यहाँ पाँच हजार वर्षोंतक युद्ध किया। मैं अकेला हूँ और तुम दोनों भाई समान बलवाले वीर हो और दोनों बीच-बीचमें बारी-बारीसे विश्राम भी करते रहे हो। अब मुझे भी थोड़ा विश्राम कर लेने दो। तत्पश्चात् मैं पुनः लड़ूँगा, इसमें सन्देह नहीं है॥ २७-२८॥

बली एवं मदोन्मत्त तुम दोनों भी कुछ विश्राम कर लो, तब मैं विश्राम करके न्यायधर्मानुसार युद्ध करूँगा॥ २९॥

सूतजी बोले—भगवान् विष्णुकी बात सुनकर दोनों दानव भी युद्ध करनेकी इच्छासे कुछ दूर जाकर विश्राम करने लगे। उन्हें बहुत दूर बैठे देखकर चतुर्भुज भगवान् विष्णु उनके मरनेका उपाय सोचने लगे॥ ३०-३१॥

ध्यानकी अवस्थामें होकर विचार करनेपर उन्हें ज्ञात हो गया कि इन दोनोंको देवीके द्वारा इच्छामृत्युका वरदान प्राप्त है, इसी कारण ये थकते नहीं॥ ३२॥

वे सोचने लगे कि मैंने व्यर्थ ही युद्ध किया, मेरा सब परिश्रम व्यर्थ गया। इस (वरदानकी) बातको जानकर भी अब मैं कैसे युद्ध करूँ?॥ ३३॥

यदि युद्ध न भी करूँ तो भी ये दैत्य यहाँसे हटेंगे कैसे? यदि इनका विनाश न होगा तो वरप्राप्त दोनों दुर्धर्ष दैत्य सबको दुःख देते रहेंगे॥ ३४॥

देवीने जो वरदान इन्हें दिया है, वह भी अत्यन्त कठिन है। अत्यन्त दुःखी, रोगी और दीन-हीन प्राणी भी स्वेच्छया कभी नहीं मरना चाहता, तब भला वे दोनों मदोन्मत्त दैत्य क्यों मरना चाहेंगे?॥ ३५-३६॥

अतएव अब मैं सब चिन्ता छोड़कर उन आदिशक्ति भगवती विद्यादेवीकी शरणमें जाऊँ, जो सबकी मनोकामनाएँ सिद्ध करनेवाली हैं; क्योंकि बिना उनके प्रसन्न हुए कोई कामनाएँ पूर्ण नहीं होतीं॥ ३७॥

ऐसा मनमें विचार करते ही भगवान् विष्णुने आकाशमें स्थित परम सुन्दर स्वरूपवाली योगनिद्रा भगवती 'शिवा' को देखा। उन्हें देखते ही योगेश्वर अनन्त भगवान् विष्णु उन दोनों दैत्योंके विनाशके लिये हाथ जोड़कर वरप्रदायिनी भगवती 'भुवनेश्वरी' की स्तुति करने लगे॥ ३८-३९॥

विष्णु बोले—हे देवि! हे महामाये! हे सृष्टि-संहारकारिणि! हे आदि-अन्तरहित! हे चण्डि! हे भुक्तिमुक्ति-प्रदायिनी शिवे! आपको नमस्कार है॥ ४०॥

हे देवि! मैं आपके सगुण तथा निर्गुण रूपको नहीं जानता, फिर आपके जो असंख्य अद्भुत चरित्र हैं, उन्हें

कैसे जान पाऊँगा? मैंने आपके अत्यन्त दुर्घट प्रभावको आज जाना है जबकि मैं आपके द्वारा प्रेरित योगनिद्रामें विलीन होकर अचेत हो गया था॥ ४१-४२॥

ब्रह्माने मुझे बड़े यत्नसे बार-बार जगाया था, किंतु मैं अपनी छहों इन्द्रियोंके संकुचित होनेके कारण जाग न सका॥ ४३॥

हे अम्बिके! उस समय मैं आपके प्रभावसे अचेत हो गया था। जब आपने अपना वह प्रभाव हटा लिया तब मैं जगा और मैंने उन दानवोंके साथ अनेक प्रकारसे युद्ध किया। उस युद्धमें मैं तो थक गया, किंतु वे नहीं थके; क्योंकि उन्हें आपका वरदान प्राप्त था। जब वे मदोन्मत्त दानव ब्रह्माजीको मारने दौड़े, तब मैंने भी पुनः द्वन्द्व युद्धके लिये उनका आह्वान किया। हे मानप्रदायिनि! उस समय मैंने उनके साथ महासागरमें घोर युद्ध किया॥ ४४—४६॥

बादमें मुझे ज्ञात हुआ कि आपने उन्हें इच्छामरणका अद्भुत वरदान दिया है। यह जानकर आज मैं शरणदायिनी आपकी शरणमें आया हूँ॥ ४७॥

अतएव हे माता! अब मेरी सहायता आप ही करें; क्योंकि मैं युद्ध करते-करते बहुत ही खिन्न हो गया हूँ। हे देवताओंकी पीड़ा हरनेवाली! आपके वरदानसे दोनों दानव मदोन्मत्त हो गये हैं॥ ४८॥

वे दोनों पापी दैत्य मुझे मार डालना चाहते हैं। अब मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? प्रणाम करते हुए उन जगन्नाथ सनातन वासुदेव विष्णुके ऐसा कहनेपर मुसकराती हुई उन देवीने उनसे कहा—हे देवदेव! हे हरे! हे विष्णो! आप पुनः उनसे युद्ध कीजिये॥ ४९-५०॥

इन दोनों वीरोंको छलपूर्वक मोहित करके ही मारा जा सकता है। मैं अपनी वक्रदृष्टिसे उन्हें मोहित कर दूँगी। हे नारायण! अपनी मायासे जब मैं इन्हें मोहित कर दूँगी तब आप शीघ्र ही इन दोनोंका वध कर डालियेगा॥ ५१½॥

सूतजी बोले—देवीके प्रीतिरससे पूर्ण वचनोंको सुनकर भगवान् विष्णु उस सागरमें युद्धस्थलमें आकर खड़े हो गये। तब विष्णुको आते देख वे दोनों युद्धके अभिलाषी महाबली दैत्य भी वहाँ आ डटे॥ ५२-५३॥

भगवान् विष्णुको अपने सामने देखकर वे बड़े प्रसन्न हुए और कहने लगे—हे महाकाम! हे चतुर्भुज! ठहरो-ठहरो; हार और जीतको प्रारब्धके अधीन समझकर अब तुम हमारे साथ युद्ध करो। बलवान् व्यक्ति विजय प्राप्त करता है, किंतु कभी-कभी भाग्यवश दुर्बल व्यक्ति भी जीत जाता है॥ ५४-५५॥

आप जैसे महापुरुषको जय या पराजयमें हर्ष या शोक कभी नहीं करना चाहिये। आपने दानवशत्रु होकर पूर्वकालमें बहुत-से दैत्योंको अनेक बार हराया है, परंतु इस समय तो हम दोनोंके साथ लड़ते हुए आप पराजित हो गये हैं॥ ५६½॥

सूतजी बोले—ऐसा कहकर वे दोनों महाबाहु दैत्य युद्ध करनेको तत्पर हो गये। तब वहाँ अवसर देखकर ज्यों ही विचित्रकर्मा विष्णुने उन दोनोंपर मुष्टिसे प्रहार किया, त्यों ही उन दोनों बलोन्मत्त दैत्योंने भी विष्णुपर मुष्टिप्रहार किया॥ ५७-५८॥

इस प्रकार उनमें परस्पर महाभयंकर युद्ध होने लगा। उन दोनों महाबलशाली दानवोंको युद्धरत देखकर नारायण श्रीहरिने दीन दृष्टिसे भगवतीकी ओर देखा॥ ५९½॥

सूतजी बोले—विष्णुकी ऐसी करुणाजनक दीन दशा देखकर अरुण नेत्रोंवाली भगवती उन दोनों दैत्योंकी ओर देखकर हँसने लगीं और उन्होंने दूसरे कामबाणोंके समान, मन्द मुसकानयुक्त तथा प्रेमभावसे भरे अपने कटाक्षोंसे उनपर प्रहार किया। इस प्रकार देवीके कटाक्षको देखकर वे पापी मधु-कैटभ अत्यन्त मोहित हो गये। वे कामान्ध दानव अपने ऊपर भगवतीकी विशेष अनुकम्पा जानकर कामबाणसे अत्यन्त पीड़ित होने लगे और अपूर्व शोभाशालिनी भगवतीको देखते हुए वे वहीं खड़े हो गये॥ ६०—६३॥

भगवान् विष्णु भी देवीके उस प्रयत्नको समझ गये। दोनों कामी दानवोंको देवीकी मायासे विमोहित जानकर स्वकार्यसाधक भगवान् विष्णुने वहाँ मेघके समान गम्भीर एवं मधुर वचनोंके द्वारा उन दोनोंका

उपहास करते हुए कहा—हे वीरो! तुम्हारी जो इच्छा हो, वर माँगो॥ ६४-६५॥

तुम दोनोंके युद्धसे मैं अत्यन्त हर्षित हूँ, अतः मैं तुम्हें मनोभिलषित वर दूँगा। यद्यपि पूर्वकालमें भी मेरेद्वारा अनेक दानव युद्ध करते हुए देखे गये हैं, किंतु तुम दोनों भाइयोंके समान मैंने किसीको देखा-सुना नहीं। तुम दोनोंके अतुलनीय बलको देखकर मैं बहुत सन्तुष्ट हूँ। हे महाबली दानवो! मैं तुम दोनों भाइयोंकी वांछित कामनाएँ पूर्ण करूँगा॥ ६६-६७१/२॥

सूतजी बोले—विष्णुका यह वचन सुनकर कमलके समान नेत्रवाले कामपीड़ित वे दोनों दैत्य जगदानन्ददायिनी भगवती महामायाको देखते हुए विष्णुसे अभिमानपूर्वक बोले॥ ६८-६९॥

हे विष्णो! हमलोग याचक नहीं हैं, अतः आप हमलोगोंको देना क्यों चाहते हैं? हे देवेश! यदि आप लेना चाहें तो आप जो माँगिये हम दे सकते हैं; क्योंकि हमलोग भिक्षुक नहीं हैं, दाता हैं। हे हृषीकेश! आप अपना मनोभिलषित वरदान माँगिये। हे वासुदेव! आपके अद्भुत युद्धसे हमलोग आपपर अत्यन्त प्रसन्न हैं॥ ७०-७१॥

उन दोनोंका वचन सुनकर भगवान् विष्णुने उत्तर दिया—'यदि तुम दोनों मेरे ऊपर प्रसन्न हो तो यही वरदान दो कि तुम दोनों भाई अब मेरे ही हाथों मारे जाओ'॥ ७२॥

सूतजी बोले—विष्णुका वचन सुनकर दोनों भाई चकित हो गये और अपनेको उनके द्वारा ठगा हुआ समझकर शोकसे चिन्तित हो गये॥ ७३॥

कुछ देरके बाद मनमें विचारकर सम्पूर्ण भूमिको स्थलरहित तथा वहाँ सर्वत्र जल-ही-जल देखकर उन्होंने विष्णुसे कहा—हे जनार्दन विष्णो! आपने हम-लोगोंको पहले जो वरदान देनेको कहा था, यदि आप सत्यवादी हैं तो पहले उस वांछित वरको प्रदान कीजिये॥ ७४-७५॥

हे मधुसूदन! आप हमें किसी निर्जल प्रदेशकी सुविस्तृत भूमिपर मारिये तभी हम आपसे मारे जा सकेंगे, अन्यथा नहीं। अतः हे माधव अब आप सत्यवादी बनिये॥ ७६॥

तब भगवान् विष्णुने अपने सुदर्शन चक्रका स्मरण करके उन दानवोंसे हँसते हुए कहा—'हे महाभागो! [तुम्हारे कथनानुसार] निर्जल तथा सुविस्तृत भूमिपर ही मैं आज तुम दोनोंको मारूँगा'॥ ७७॥

ऐसा कहकर देवताओंके आराध्य भगवान् विष्णुने अपनी दोनों जाँघोंको सुविस्तृत करके जलके ऊपर ही स्थल दिखा दिया और उनसे कहा—'दैत्यो! [देखो,] यहाँ जल नहीं है, पृथ्वी है। अतः यहींपर तुम दोनों अपना सिर रखो। ऐसा करनेसे ही आज हम और तुम दोनों सत्यवादी सिद्ध होंगे'॥ ७८-७९॥

उस समय विष्णुका तथ्यपूर्ण वचन सुनकर तथा अपने मनमें विचार करके उन दोनों दैत्योंने अपना शरीर बढ़ाकर हजारों योजन लम्बा-चौड़ा कर लिया॥ ८०॥

तब भगवान् विष्णुने भी अपनी दोनों जाँघोंको बढ़ाकर उससे भी द्विगुणित कर दिया। यह देखकर वे दोनों दैत्य बड़े विस्मयमें पड़ गये, [परंतु अपनी बात सत्य प्रमाणित करनेके लिये] उन्होंने अपने-अपने मस्तक उस अत्यन्त अद्भुत जंघेपर रख दिये। उसी समय प्रतापी भगवान् विष्णुने अपने सुदर्शन चक्रसे जंघेपर स्थित उनके विशाल सिरोंको वेगपूर्वक धड़से अलग कर दिया॥ ८१-८२॥

जब दोनों दैत्य मधु और कैटभ मर गये, तब उन्हींकी मेद (चर्बी)-से सम्पूर्ण सागर पट गया। हे मुनीश्वरो!

तभीसे पृथ्वीका नाम 'मेदिनी' पड़ गया और इसीलिये मृत्तिका भी अभक्ष्य मानी जाने लगी॥ ८३-८४॥

आपलोगोंने जो प्रश्न किया था, उसका ठीक-ठीक उत्तर मैंने दे दिया। बुद्धिमान् मनुष्योंको चाहिये कि वे महामाया महाविद्याकी सर्वदा उपासना करते रहें; क्योंकि वे पराशक्ति ही समस्त देव-दानवोंद्वारा आराध्य हैं। उनसे बढ़कर कोई दूसरा देवता तीनों लोकोंमें नहीं है॥ ८५-८६॥

यह बात सर्वदा सत्य है एवं वेदों तथा शास्त्रोंका निष्कर्ष है कि सगुण अथवा निर्गुणरूपमें सर्वदा उस पराशक्तिका ही पूजन करते रहना चाहिये॥ ८७॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत प्रथम स्कन्धका 'हरिकृत मधुकैटभवधवर्णन' नामक नौवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ९॥

दसवाँ अध्याय

व्यासजीकी तपस्या और वर-प्राप्ति

ऋषिगण बोले—हे सूतजी! आपने हमें पहले ही बतला दिया है कि असीम तेजवाले व्यासजीने कल्याणकारी समस्त पुराणोंकी रचना करके उन्हें शुकदेवजीको पढ़ाया॥ १॥

व्यासजीने घोर तप करके शुकदेवजीको किस प्रकार पुत्ररूपमें प्राप्त किया? व्यासजीके मुखसे आपने जो कुछ सुना है, वह सब हमसे विस्तारपूर्वक कहिये॥ २॥

सूतजी बोले—सत्यवतीपुत्र व्यासजीसे जिस प्रकार योगिजनोंमें श्रेष्ठ साक्षात् मुनिस्वरूप शुकदेवजी उत्पन्न हुए, उत्पत्तिके उस इतिहासको मैं आपलोगोंको बता रहा हूँ॥ ३॥

सत्यवतीके पुत्र महर्षि व्यास पुत्र-प्राप्तिके लिये दृढ संकल्पकर अत्यन्त मनोहर सुमेरुपर्वतके शिखरपर कठोर तपस्या करने लगे॥ ४॥

नारदजीसे सुने गये एकाक्षर वाग्बीज मन्त्रका जप करते हुए तपोनिधि व्यासजी पुत्र-प्राप्तिकी कामनासे परात्परा महामायामें अपना ध्यान केन्द्रित किये हुए मन-ही-मन सोच रहे थे कि अग्नि, भूमि, वायु एवं आकाश—इनकी शक्तिसे सम्पन्न पुत्रकी मुझे प्राप्ति हो॥ ५-६॥

इस प्रकार प्रभुतासम्पन्न वे व्यासजी निराहार रहते हुए सौ वर्षोंतक शंकर एवं सदाशिवा भगवतीकी आराधनामें लीन रहे॥ ७॥

अनेकशः विचार करते हुए महर्षि व्यास इस निष्कर्षपर पहुँचे कि शक्ति ही सर्वत्र पूजनीया है। निर्बल प्राणी लोकमें निन्दाका पात्र होता है और शक्तिशालीकी पूजा की जाती है॥ ८॥

जहाँ पर्वत-शिखरपर कर्णिकार पुष्पके अद्भुत वनमें देवता एवं महातपस्वी मुनिवृन्द विहार करते हैं; जहाँ सूर्य, वसु, रुद्र, पवन, अश्विनीकुमारद्वय एवं ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ अन्य मुनिजन निवास करते हैं; मधुर संगीतकी ध्वनिसे मुखरित उसी सुमेरुपर्वतकी चोटीपर सत्यवतीनन्दन धर्मात्मा व्यासजीने तपस्या की॥ ९—११॥

उनके इस तपश्चरणके प्रभावसे समग्र चराचर जगत् व्याप्त हो गया और महामेधासम्पन्न पराशरपुत्र व्यासजीकी जटा अग्निवर्ण हो गयी॥ १२॥

तदनन्तर व्यासजीका यह तेज देखकर इन्द्र भयभीत हो गये। तब इन्द्रको भयाक्रान्त तथा व्याकुल देखकर भगवान् शंकरजी उनसे कहने लगे—॥ १३१/२॥

शंकरजी बोले—हे सुरेश्वर! आपको क्या दुःख है? हे इन्द्र! आज आप इस तरह भयग्रस्त क्यों हैं? तपस्वियोंसे कभी भी ईर्ष्या नहीं करनी चाहिये; क्योंकि मुनिगण मुझे शक्तिसम्पन्न जानकर ही तपस्या करते हैं। ये तपस्वी मुनिलोग कभी भी किसीका अपकार नहीं चाहते हैं। शंकरजीके ऐसा कहनेपर इन्द्र उनसे बोले—व्यासजी ऐसा तप किसलिये कर रहे हैं, उनकी क्या मनोकामना है?॥ १४—१६१/२॥

शिवजी बोले—व्यासजी पुत्र-प्राप्तिकी कामनासे यह कठोर तप कर रहे हैं। इन्हें तपस्या करते हुए पूरे एक सौ वर्ष हो चुके हैं, अतः मैं इन्हें कल्याणकारी पुत्र प्रदान

करूँगा ॥ १७१/२ ॥

सूतजी बोले—दयाभावसे युक्त प्रसन्न मुखवाले जगद्गुरु भगवान् शंकर इन्द्रसे ऐसा कहकर मुनि व्यासजीके पास जाकर बोले—हे वासवीपुत्र! उठो, तुम्हें कल्याणकारी पुत्र अवश्य प्राप्त होगा। हे निष्पाप! तुम्हारा वह पुत्र सभी प्रकारके तेजोंसे सम्पन्न, ज्ञानवान्, यशस्वी और सभी लोगोंका सदा अतिशय प्रिय, समस्त सात्त्विक गुणोंसे सम्पन्न तथा सत्यरूपी पराक्रमसे युक्त होगा ॥ १८—२०१/२ ॥

सूतजी बोले—तब शूलपाणि शंकरजीका मधुर वचन सुनकर उन्हें प्रणामकर द्वैपायन व्यासजीने अपने आश्रमके लिये प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचकर कई वर्षोंतक घोर तप करनेके कारण अतिशय श्रान्त महर्षि व्यास अरणीमें समाहित अग्निको प्रकट करनेकी कामनासे अरणि-मन्थन करने लगे। मन्थन कर रहे व्यासजीके मनमें उस समय महान् चिन्ता हो रही थी ॥ २१—२३ ॥

मन्थन तथा अरणिके पारस्परिक संयोगसे प्रकटित अग्निको देखकर व्यासजीके मनमें अचानक पुत्रोत्पत्तिका विचार आया कि अरणि-मन्थन-जनित अग्निकी भाँति मुझे पुत्र कैसे उत्पन्न हो? क्योंकि पुत्र प्रदान करनेवाली अरणी-रूपी वह रूपवती, उत्तम कुलमें उत्पन्न तथा पतिव्रता युवती स्त्री मेरे पास है नहीं, साथ ही पैरोंकी शृंखलाके समान स्त्रीको मैं कैसे अंगीकार करूँ? पुत्र उत्पन्न करनेमें कुशल और पातिव्रत्य धर्ममें सदा तत्पर रहनेवाली पत्नी मुझे कैसे मिले? पतिपरायणा, निपुण, रूपवती—कैसी भी स्त्री हो; वह सदा बन्धनकी कारण ही बनी रहती है। स्त्री सदा अपनी इच्छाके अनुसार सुख प्राप्त करना चाहती है। शंकरजी भी नित्य स्त्रीके मोहपाशमें फँसे हुए रहते हैं। अतः अब मैं अत्यन्त विषम गृहस्थाश्रम-धर्मको किस प्रकार अंगीकार करूँ? ॥ २४—२८१/२ ॥

व्यासजी ऐसा विचार कर ही रहे थे कि आकाशमें समीपमें ही स्थित घृताची नामक अप्सरा उन्हें दृष्टिगोचर हुई। चंचल कटाक्षोंवाली उस श्रेष्ठ अप्सराको पासमें ही स्थित देखकर कठोर नियम-संयम धारण करनेवाले व्यासजी शीघ्र ही कामबाणसे आहत अंगोंवाले हो गये और सोचने लगे कि अब इस विषम संकटके समय मैं क्या करूँ? ॥ २९—३१ ॥

धर्मके समक्ष इस दुर्जय कामवासनाके वशीभूत होकर यदि मैं छलनेके लिये यहाँ उपस्थित हुई इस अप्सराको स्वीकार करता हूँ, तब ऐसी स्थितिमें महात्मा तथा तपस्वीगण मुझ कामासक्तिसे विह्वलका यह उपहास करेंगे कि सौ वर्षोंतक कठिन तपस्या करनेके पश्चात् भी एक अप्सराको देखकर महातपस्वी व्यास इतने विवश कैसे हो गये? और फिर यदि इसमें अतुलनीय सुख हो तो ऐसी निन्दा भी होती रहे। अर्थात् उसकी उपेक्षा भी की जा सकती है ॥ ३२—३४ ॥

गृहस्थाश्रम पुत्र-प्राप्तिकी कामना पूर्ण करनेवाला, स्वर्गकी प्राप्ति करानेवाला तथा ज्ञानियोंको मोक्ष देनेवाला कहा गया है। किंतु वैसा सुख इस देवकन्यासे नहीं प्राप्त होगा। पूर्वकालमें मैंने नारदजीसे एक कथा सुनी थी जिसमें राजा पुरूरवा उर्वशीके वशीभूत होकर अत्यन्त संकटमें पड़ गये थे ॥ ३५-३६ ॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत प्रथम स्कन्धका 'शिववरदानवर्णन' नामक दसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ १० ॥

ग्यारहवाँ अध्याय

बुधके जन्मकी कथा

ऋषिगण बोले—हे सूतजी! वे राजा पुरूरवा कौन थे तथा वह देवकन्या उर्वशी कौन थी? उस मनस्वी राजाने किस प्रकार संकट प्राप्त किया?॥ १॥

हे लोमहर्षणतनय! आप इस समय पूरा कथानक विस्तारपूर्वक कहें। हम सभी लोग आपके मुखारविन्दसे निःसृत रसमयी वाणीको सुननेके इच्छुक हैं॥ २॥

हे सूतजी! आपकी वाणी अमृतसे भी बढ़कर मधुर एवं रसमयी है। जिस प्रकार देवगण अमृत-पानसे कभी तृप्त नहीं होते, उसी प्रकार आपके कथा-श्रवणसे हम तृप्त नहीं होते॥ ३॥

सूतजी बोले—हे मुनियो! अब आपलोग उस दिव्य तथा मनोहर कथाको सुनिये, जिसे मैंने परम श्रेष्ठ व्यासजीके मुखसे सुना है। मैं उसे अपनी बुद्धिके अनुसार वैसा ही कहूँगा॥ ४॥

सुरगुरु बृहस्पतिकी पत्नीका नाम 'तारा' था। वह रूप-यौवनसे सम्पन्न तथा सुन्दर अंगोंवाली थी॥ ५॥

एक बार वह सुन्दरी अपने यजमान चन्द्रमाके घर गयी। उस रूप तथा यौवनसे सम्पन्न चन्द्रमुखी कामिनीको देखते ही चन्द्रमा उसपर आसक्त हो गये। तारा भी चन्द्रमाको देखकर आसक्त हो गयी। इस प्रकार वे दोनों तारा तथा चन्द्रमा एक-दूसरेको देखकर प्रेमविभोर हो गये॥ ६—८॥

वे दोनों प्रेमोन्मत्त एक-दूसरेको चाहनेकी इच्छासे युक्त हो विहार करने लगे। इस प्रकार उनके कुछ दिन व्यतीत हुए। तब बृहस्पतिने ताराको घर लानेके लिये अपना एक शिष्य भेजा; परंतु वह न आ सकी॥ ९-१०॥

जब चन्द्रमाने बृहस्पतिके शिष्यको कई बार लौटाया, तो वे क्रोधित होकर चन्द्रमाके पास स्वयं गये॥ ११॥

चन्द्रमाके घर जाकर उदारचित्त बृहस्पतिने अभिमानके साथ मुसकराते हुए उस चन्द्रमासे कहा—हे चन्द्रमा! तुमने यह धर्मविरुद्ध कार्य क्यों किया और मेरी इस परम सुन्दरी पत्नीको अपने घरमें क्यों रख लिया?॥ १२-१३॥

हे देव! मैं तुम्हारा गुरु हूँ और तुम मेरे यजमान हो। तब हे मूर्ख! तुमने गुरुपत्नीको अपने घरमें क्यों रख लिया?॥ १४॥

ब्रह्महत्या करनेवाला, सुवर्ण चुरानेवाला, मदिरापान करनेवाला, गुरुपत्नीगामी तथा पाँचवाँ इन पापियोंके साथ संसर्ग रखनेवाला—ये 'महापातकी' हैं। तुम महापापी, दुराचारी एवं अत्यन्त निन्दनीय हो। यदि तुमने मेरी पत्नीके साथ अनाचार किया है तो तुम देवलोकमें रहनेयोग्य नहीं हो॥ १५-१६॥

हे दुष्टात्मन्! असितापांगी मेरी इस पत्नीको छोड़ दो जिससे मैं इसे अपने घर ले जाऊँ, अन्यथा गुरुपत्नीका अपहरण करनेवाले तुझको मैं शाप दे दूँगा॥ १७॥

इस प्रकार बोलते हुए स्त्रीविरहसे कातर तथा क्रोधाकुल देवगुरु बृहस्पतिसे रोहिणीपति चन्द्रमाने कहा॥ १८॥

चन्द्रमा बोले—क्रोधके कारण ब्राह्मण अपूजनीय होते हैं। क्रोधरहित तथा धर्मशास्त्रज्ञ विप्र पूजाके योग्य हैं और इन गुणोंसे हीन ब्राह्मण त्याज्य होते हैं॥ १९॥

हे अनघ! वह सुन्दर स्त्री अपनी इच्छासे आपके घर चली जायगी और यदि कुछ दिन यहाँ ठहर भी गयी तो इससे आपकी क्या हानि है? अपनी इच्छासे ही वह यहाँ रहती है। सुखकी इच्छा रखनेवाली वह कुछ दिन यहाँ रहकर अपनी इच्छासे चली जायगी॥ २०-२१॥

आपने ही तो पूर्वमें धर्मशास्त्रके इस मतका उल्लेख किया है कि संसर्गसे स्त्री और वेदकर्मसे ब्राह्मण कभी दूषित नहीं होते॥ २२॥

चन्द्रमाके ऐसा कहनेपर बृहस्पति अत्यन्त दुखी हुए एवं चिन्तामग्न होकर शीघ्र ही अपने घर चले गये॥ २३॥

कुछ दिन अपने घर रहकर चिन्तासे व्याकुल गुरु बृहस्पति पुनः उन औषधिपति चन्द्रमाके यहाँ शीघ्र जा पहुँचे। वहाँ द्वारपालने उन्हें भीतर जानेसे रोका, तब वे क्रुद्ध

होकर द्वारपर ही रुक गये। [कुछ देरतक प्रतीक्षा करनेपर] जब चन्द्रमा वहाँ नहीं आये, तब बृहस्पति अत्यन्त क्रुद्ध हो उठे॥ २४-२५॥

[वे विचार करने लगे] मेरा शिष्य होते हुए भी इसने माताके समान आदरणीया गुरुपत्नीको बलपूर्वक हर लिया है। इसलिये अब मुझे इस अधर्मीको दण्डित करना चाहिये॥ २६॥

तब बाहर द्वारपर खड़े बृहस्पतिने क्रोधके साथ चन्द्रमासे कहा—अरे नीच! पापी! देवाधम! तुम अपने घरमें निश्चिन्त होकर क्यों पड़े हो? मेरी स्त्री शीघ्र मुझे लौटा दो, अन्यथा मैं तुम्हें शाप दे दूँगा। यदि तुम मेरी पत्नी नहीं दोगे तो मैं तुझे अभी अवश्य भस्म कर दूँगा॥ २७-२८॥

सूतजी बोले—बृहस्पतिके इस प्रकारके क्रोधभरे वचन सुनकर द्विजराज चन्द्रमा शीघ्र घरसे बाहर निकले और हँसते हुए उनसे बोले—आप इतना अधिक क्यों बोल रहे हैं? सर्वलक्षणसम्पन्न वह असितापांगी आपके योग्य नहीं है॥ २९-३०॥

हे विप्र! आप अपने समान किसी अन्य स्त्रीको ग्रहण कर लीजिये; ऐसी सुन्दरी भिक्षुकके घरमें रहनेयोग्य नहीं है। यह प्रायः कहा जाता है कि अपने समान गुणसम्पन्न पतिपर ही पत्नीका प्रेम स्थिर रहता है। अपने इच्छानुसार अब आप चाहे जहाँ चले जायँ। मैं इसे नहीं दूँगा। आपका शाप मेरे ऊपर नहीं लग सकता। हे गुरो! मैं यह रमणी आपको नहीं दूँगा, अब आप जैसा चाहें वैसा करें॥ ३१—३४॥

सूतजी बोले—चन्द्रमाके ऐसा कहनेपर देवगुरु बृहस्पति रुष्ट होकर चिन्तामें पड़ गये और वे कुपित हो शीघ्रतासे इन्द्रके भवन चले गये॥ ३५॥

वहाँ स्थित देवगुरु बृहस्पतिको दुःखसे व्याकुल देखकर इन्द्रने पाद्य, अर्घ्य तथा आचमनीय आदिसे उनकी विधिवत् पूजा करके बैठाया॥ ३६॥

जब बृहस्पति आसनपर बैठकर स्वस्थ हो गये, तब परम उदार इन्द्रने उनसे पूछा—'हे महाभाग! आपको कौन-सी चिन्ता है? हे मुनिवर! आप इतने शोकाकुल किसलिये हैं?॥ ३७॥

मेरे राज्यमें आपका अपमान किसने किया है? आप मेरे गुरु हैं, अतः हमारी सारी सेना एवं लोकपाल सभी आपके अधीन हैं। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र तथा अन्य देवता भी आपकी सहायता करेंगे। आपको कौन-सी चिन्ता है; इस समय उसे बताइये॥ ३८-३९॥

बृहस्पति बोले—चन्द्रमाने मेरी सुन्दर नेत्रोंवाली पत्नी ताराका हरण कर लिया और वह दुष्ट मेरे बार-बार प्रार्थना करनेपर भी उसे लौटाता नहीं है। हे देवराज! अब मैं क्या करूँ? अब तो केवल आप ही मेरी शरण हैं। हे शतक्रतो! मैं अत्यन्त दुःखी हूँ। हे देवेश! आप मेरी सहायता कीजिये॥ ४०-४१॥

इन्द्र बोले—हे धर्मात्मन्! आप शोक न करें, हे सुव्रत! मैं आपका सेवक हूँ, मैं आपकी पत्नीको अवश्य लाऊँगा। हे महामते! यदि दूत भेजनेपर भी वह मदोन्मत्त चन्द्रमा आपकी स्त्रीको नहीं देगा तो देवसेनाओंसहित मैं स्वयं युद्ध करूँगा॥ ४२-४३॥

इस प्रकार गुरु बृहस्पतिको आश्वासन देकर इन्द्रने अपनी बातको सही ढंगसे कहनेवाले, विलक्षण तथा वाक्पटु दूतको चन्द्रमाके पास भेजा॥ ४४॥

शीघ्र ही वह चतुर दूत चन्द्रलोक गया और रोहिणीपति चन्द्रमासे यह सन्देश-वचन कहने लगा—हे महाभाग! हे महामते! इन्द्रने आपसे कुछ कहनेके लिये मुझे भेजा है। अतः उनके द्वारा जो कुछ कहा गया है, वही ज्यों-का-त्यों मैं आपसे कह रहा हूँ॥ ४५-४६॥

हे महाभाग! हे सुव्रत! आप धर्मज्ञ हैं, नीति जानते हैं तथा धर्मात्मा अत्रिमुनि आपके पिता हैं, अतएव आपको कोई ऐसा कार्य नहीं करना चाहिये जिससे आप निन्दनीय हो जायँ। आलस्यरहित होकर यथाशक्ति अपनी स्त्रीकी रक्षा सभी प्राणी करते हैं। अतः इस (तारा)-के लिये बड़ा कलह होगा; इसमें सन्देह नहीं है॥ ४७-४८॥

हे सुधानिधे! जैसे आप अपनी भार्याकी रक्षा हेतु प्रयत्न करते हैं, वैसे वे गुरु बृहस्पति भी अपनी पत्नीकी

रक्षाके लिये प्रयत्नशील हैं। आप अपने ही सदृश सभी प्राणियोंके विषयमें विचार कीजिये॥ ४९॥

हे सुधानिधे! आपको दक्षप्रजापतिकी सुलक्षणोंसे युक्त अट्ठाईस कन्याएँ पत्नीके रूपमें प्राप्त हैं। आप अपने गुरुकी पत्नीको पानेकी इच्छा क्यों रखते हैं? स्वर्गलोकमें मेनका आदि अनेक मनोरम अप्सराएँ सर्वदा सुलभ हैं, तब उनके साथ स्वेच्छापूर्वक विहार कीजिये और गुरुपत्नी ताराको शीघ्र ही लौटा दीजिये॥ ५०-५१॥

आप-जैसे महान् लोग यदि अहंकारवश ऐसा निन्दित कर्म करें तो अनभिज्ञ साधारणजन तो उनका अनुकरण करेंगे ही और तब धर्मका नाश हो जायगा। अतः हे महाभाग! गुरुकी इस मनोरमा पत्नीको शीघ्र लौटा दीजिये, जिससे आपके कारण इस समय देवताओंके बीच कलह न उत्पन्न हो॥ ५२-५३॥

सूतजी बोले—दूतसे इन्द्रका सन्देश सुनकर चन्द्रमा कुछ क्रोधित हो गये और उन्होंने इन्द्रके दूतको इस प्रकार व्यंग्यपूर्वक उत्तर दिया॥ ५४॥

चन्द्रमा बोले—हे महाबाहो! आप धर्मज्ञ हैं और स्वयं देवताओंके राजा हैं। आपके पुरोहित बृहस्पति भी ठीक आपकी तरह हैं और आप दोनोंकी बुद्धि भी एक समान है॥ ५५॥

दूसरोंको उपदेश देनेमें अनेक लोग चतुर होते हैं, परंतु कार्य उपस्थित होनेपर [उपदेशानुसार] स्वयं आचरण करनेवाला दुर्लभ होता है॥ ५६॥

हे देवेश! बृहस्पतिके बनाये शास्त्रको सभी मनुष्य स्वीकार करते हैं। शक्तिशाली लोगोंके लिये सब कुछ अपना होता है, परंतु दुर्बल लोगोंके लिये कुछ भी अपना नहीं होता। तारा जितना प्रेम मुझसे करती है, उतना बृहस्पतिसे नहीं। अतः अनुरक्त स्त्री धर्म अथवा न्यायसे त्याज्य कैसे हो सकती है? गार्हस्थ्य जीवनका वास्तविक सुख तो प्रेम रखनेवाली स्त्रीके साथ ही होता है, उदासीन स्त्रीके साथ नहीं; इसलिये हे दूत! तुम जाओ और इन्द्रसे कह दो कि मैं इसे नहीं दूँगा। हे सहस्राक्ष! आप स्वयं समर्थ हैं; आप जो चाहते हों, वह कीजिये॥ ५७—६१॥

सूतजी बोले—चन्द्रमाके ऐसा कहनेपर दूत इन्द्रके पास लौट गया और चन्द्रमाने जो कहा था, वह सब उसने इन्द्रसे कह दिया॥ ६२॥

इसे सुनकर प्रतापी इन्द्र भी अत्यन्त क्रोधित हुए और गुरु बृहस्पतिकी सहायताके लिये सेनाकी तैयारी करने लगे॥ ६३॥

दैत्यगुरु शुक्राचार्य चन्द्रमा तथा देवगुरुके विरोधकी बात सुनकर बृहस्पतिसे द्वेषके कारण चन्द्रमाके पास गये और उससे बोले कि आप ताराको वापस मत कीजिये॥ ६४॥

हे महामते! हे मान्य! यदि इन्द्रके साथ आपका युद्ध छिड़ जायगा तो मैं भी अपनी मन्त्रशक्तिसे आपकी सहायता करूँगा॥ ६५॥

गुरुपत्नीसे अनाचारकी बात सुनकर और शुक्राचार्यको बृहस्पतिका शत्रु जानकर शिवजी भी बृहस्पतिकी सहायताके लिये तैयार हो गये॥ ६६॥

तब तारकासुरके साथ हुए युद्धकी भाँति देव-दानवोंमें संग्राम छिड़ गया। यह युद्ध बहुत वर्षोंतक चलता रहा॥ ६७॥

देव-दानवोंका यह संग्राम देखकर प्रजापति ब्रह्माजी हंसपर सवार होकर उस क्लेशकी शान्तिके लिये रणस्थलमें शीघ्र पहुँचे। तब ब्रह्माजीने चन्द्रमासे कहा कि तुम गुरु बृहस्पतिकी पत्नी लौटा दो, नहीं तो भगवान् विष्णुको बुलाकर मैं तुम्हें समूल नष्ट कर दूँगा। तत्पश्चात् लोकपितामह ब्रह्माजीने भृगुनन्दन शुक्रको भी युद्धसे रोका और उनसे कहा—हे महामते! दैत्योंके संगसे क्या आपकी भी बुद्धि अन्याययुक्त हो गयी है?॥ ६८—७०॥

तत्पश्चात् [ब्रह्माजीकी बात सुनकर शुक्राचार्य चन्द्रमाके पास गये] उन्होंने चन्द्रमाको युद्धसे रोका और कहा कि तुम्हारे पिताने मुझे भेजा है, तुम अपने गुरुकी पत्नीको तत्काल छोड़ दो॥ ७१॥

सूतजी बोले—शुक्राचार्यकी वह अद्भुत वाणी सुनकर चन्द्रमाने बृहस्पतिकी गर्भवती सुन्दरी प्रिय भार्याको लौटा दिया॥ ७२॥

पत्नीको पाकर देवगुरु बड़े प्रसन्न हुए और आनन्दपूर्वक अपने घर चले गये। तत्पश्चात् सभी देवता और दैत्य भी अपने-अपने घर चले गये॥ ७३॥

पितामह ब्रह्मा अपने लोकको तथा शिवजी भी कैलासपर्वतपर चले गये। इस प्रकार अपनी सुन्दरी स्त्रीको पाकर बृहस्पति सन्तुष्ट हो गये॥ ७४॥

तदनन्तर कुछ दिनोंके बाद ताराने शुभ दिन तथा शुभ नक्षत्रमें गुणोंमें चन्द्रमाके समान ही सुन्दर पुत्रको जन्म दिया। पुत्रको उत्पन्न देखकर देवगुरु बृहस्पतिने प्रसन्न मनसे उसके विधिवत् जातकर्म आदि सभी संस्कार किये॥ ७५-७६॥

हे श्रेष्ठ मुनियो! चन्द्रमाने जब सुना कि पुत्र उत्पन्न हुआ है, तब बुद्धिमान् चन्द्रमाने बृहस्पतिके पास अपना दूत भेजा [और कहलाया—हे गुरो!] यह पुत्र आपका नहीं है; क्योंकि यह मेरे तेजसे उत्पन्न है। तब आपने अपनी इच्छासे बालकका जातकर्मादि संस्कार क्यों कर लिया?॥ ७७-७८॥

उस दूतका वचन सुनकर बृहस्पतिने कहा कि यह मेरा पुत्र है; क्योंकि इसकी आकृति मेरे समान है, इसमें सन्देह नहीं॥ ७९॥

पुनः दोनोंमें विवाद खड़ा हो गया और देव-दानव मिलकर फिर युद्धके लिये आ गये और इस प्रकार उनका बहुत बड़ा समूह एकत्र हो गया॥ ८०॥

उस समय शान्तिके अभिलाषी स्वयं प्रजापति ब्रह्माजी पुनः वहाँ पहुँचे और रणभूमिमें डटे हुए युद्धोत्सुक देव-दानवोंको उन्होंने युद्धसे रोका॥ ८१॥

धर्मात्मा ब्रह्माजीने तारासे पूछा—'हे कल्याणि! यह पुत्र किसका है? हे सुन्दरि! तुम सही-सही बता दो, जिससे यह कलह शान्त हो जाय'॥ ८२॥

तब असितापांगी सुन्दरी ताराने लजाते हुए सिर नीचे करके मन्द स्वरमें कहा—'यह पुत्र चन्द्रमाका है' ऐसा कहकर वह घरके भीतर चली गयी॥ ८३॥

तब प्रसन्नचित्त होकर चन्द्रमाने उस पुत्रको ले लिया। उन्होंने उसका नाम 'बुध' रखा। पुनः वे अपने घर चले गये॥ ८४॥

तत्पश्चात् ब्रह्माजी अपने लोकको तथा इन्द्रसहित सभी देवता भी चले गये। इसी प्रकार प्रेक्षक भी जो जहाँसे आये थे, वे सभी अपने-अपने स्थानको चले गये॥ ८५॥

[हे मुनिजन!] इस प्रकार गुरुके क्षेत्रमें चन्द्रमासे बुधकी उत्पत्तिका यह वृत्तान्त जैसा मैंने पूर्वमें सत्यवती-पुत्र व्यासजीसे सुना था, वैसा आपलोगोंसे कह दिया है॥ ८६॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत प्रथम स्कन्धका 'बुधोत्पत्ति' नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ११॥

बारहवाँ अध्याय

राजा सुद्युम्नकी इला नामक स्त्रीके रूपमें परिणति, इलाका बुधसे विवाह और पुरूरवाकी उत्पत्ति, भगवतीकी स्तुति करनेसे इलारूपधारी राजा सुद्युम्नकी सायुज्यमुक्ति

सूतजी बोले—तदनन्तर इलाके गर्भसे पुरूरवाने जन्म लिया, यह प्रसंग मैं आपलोगोंसे कहता हूँ। वे बुधपुत्र पुरूरवा बड़े धर्मात्मा, यज्ञ करनेवाले एवं दानशील थे॥ १॥

सुद्युम्न नामक एक राजा थे। वे बड़े ही सत्यवादी और जितेन्द्रिय थे। एक बार वे सैन्धव घोड़ेपर आरूढ़ होकर आखेटके लिये वनमें गये। उनके साथ कुछ मन्त्री भी थे। वे राजा कानोंमें कमनीय कुण्डल पहने थे। आजगव नामक धनुष तथा बाणोंसे भरा अद्भुत तरकस धारण करके उस वनमें भ्रमण करते हुए रुरुमृग, हिरण,

खरगोश, सूअर, गैंड़ों, गवय, साँभर, भैंसों, वन-मुर्गोंको मारते हुए तथा यज्ञोपयोगी अनेक वनपशुओंका वध करते हुए राजा सुद्युम्न 'कुमार' नामक वनमें प्रविष्ट हुए॥ २—५॥

वह दिव्य वन सुमेरु पर्वतके निचले भागमें था, जो सुन्दर मन्दार-वृक्षोंसे सुशोभित था, वहाँ अशोक वृक्षकी लताएँ फैली हुई थीं तथा मौलसिरीकी सुगन्धि उसे सुरभित कर रही थी। वह वन साल, ताड़, तमाल, चम्पा, कटहल, आम, कदम्ब और महुएके पेड़ोंसे सुशोभित था तथा जहाँ-तहाँ माधवी लता मण्डपके समान छायी हुई थी॥ ६-७॥

उस वनमें दाडिम, नारियल तथा केलेके वृक्ष भी शोभित हो रहे थे और वह वन जूही, मालती तथा कुन्दकी पुष्पित लताओंसे चारों ओरसे घिरा हुआ था। वहाँ हंस और बतख विचरण कर रहे थे, बाँस [एक दूसरेसे रगड़ खानेके कारण हवामें मधुर] ध्वनि कर रहे थे तथा कहीं भ्रमरोंकी मधुर गुंजार वन-प्रान्तको गुंजित कर रही थी। इस प्रकार वह वन सब प्रकारसे सुखदायक था॥ ८-९॥

कोयलोंकी ध्वनिसे मण्डित तथा पुष्पोंसे युक्त वृक्षोंको देखकर अनुचरोंके साथ राजा सुद्युम्न अत्यन्त प्रसन्न हुए॥ १०॥

राजर्षि सुद्युम्नने वहाँ प्रवेश किया और उसी क्षण वे स्त्रीके रूपमें परिणत हो गये; उनका घोड़ा भी घोड़ीके रूपमें हो गया। इससे वे राजा चिन्तामें पड़ गये। [वे मनमें सोचने लगे] यह क्या हो गया? चिन्तासे व्याकुल वे राजा सुद्युम्न बार-बार सोचते हुए बहुत दु:खी तथा लज्जित हुए। [उन्होंने सोचा] अब मैं क्या करूँ और स्त्रीत्व भावसे युक्त मैं घर कैसे जाऊँ? मैं अब कैसे राज्य-संचालन करूँगा? मैं इस प्रकार किससे ठगा गया?॥ ११—१३॥

ऋषिगण बोले—हे लोमहर्षण सूतजी! आपने यह बड़ी आश्चर्यजनक बात कही है। देवताके समान तेजस्वी राजा सुद्युम्न स्त्रीत्वको प्राप्त हो गये—इसका क्या कारण है? उसे बताइये। उस रमणीय वनमें राजाने कौन-सा कार्य किया था? हे सुव्रत! आप विस्तारपूर्वक हमें बताइये॥ १४-१५॥

सूतजी बोले—एक समयकी बात है—सनकादिक ऋषिगण अपने तेजसे दसों दिशाओंको प्रकाशित करते हुए शंकरजीके दर्शनके लिये वहाँ गये थे॥ १६॥

उस समय महादेव शिव पार्वतीके साथ विहार कर रहे थे, इसी बीच उन सनकादिक ऋषियोंको वहाँ देखकर पार्वती अत्यन्त लज्जित हो गयीं। वे अतिमानिनी पार्वती काँपती हुई लज्जित होकर अलग खड़ी हो गयीं॥ १७—१९॥

सनकादिक मुनि भी शिव एवं पार्वतीको विहार करते देखकर वहाँसे तत्काल लौटकर नर-नारायणके आश्रममें चले गये॥ २०॥

भगवान् शिव अपनी प्रिय पत्नीको लज्जित देखकर कहने लगे—तुम इस प्रकार लज्जित क्यों हो रही हो? तुम्हारे सुख का उपाय मैं अभी करता हूँ। हे वरानने! आजसे जो कोई भी पुरुष इस वनमें भूलसे भी आयेगा, वह स्त्री हो जायगा॥ २१-२२॥

उन शिवजीने वनको ऐसा शाप दे दिया है—इसे जो लोग जानते हैं, वे उस दोषपूर्ण वनका पूर्णतः परित्याग कर देते हैं॥ २३॥

वे सुद्युम्न भी अज्ञानवश सचिवोंके साथ उस वनमें चले गये, जिससे वे अपने सचिव आदि सहित स्त्री हो गये; इसमें शंकाका कोई कारण नहीं है॥ २४॥

चिन्ताकुल होनेके कारण राजा सुद्युम्न लज्जावश घर

नहीं गये और उस वनप्रदेशसे बाहर इधर-उधर घूमने लगे॥ २५॥

स्त्रीत्व प्राप्त होनेपर उन महात्माका नाम इला पड़ गया। इस प्रकार स्त्रीरूपमें घूमते हुए एक दिन चन्द्रमाके युवा पुत्र बुधसे उनकी भेंट हो गयी॥ २६॥

अनेक स्त्रियोंके साथ भ्रमण करती हुई उस हाव-भावमयी युवती रमणीको देखकर चन्द्रमाके पुत्र भगवान् बुध उसपर मोहित हो गये। वह रमणी भी उन चन्द्रपुत्र बुधको अपना पति बनानेके लिये आकुल हो उठी। इस प्रकार परस्पर अनुरागके कारण कुछ दिनोंमें उन दोनोंका संयोग हो गया॥ २७-२८॥

उस चन्द्रमापुत्र बुधने इलाके गर्भसे पुरूरवा नामक श्रेष्ठ चक्रवर्ती पुत्रको उत्पन्न किया। पुत्रको जन्म देकर वह इला वनमें ही रहने लगी तथा चिन्तातुर हो उसने अपने कुलाचार्य मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठजीका स्मरण किया॥ २९-३०॥

[इलाके स्मरण करते ही वसिष्ठजी वहाँ आये।] सुद्युम्नकी यह दशा देखकर उन्हें बड़ी दया आयी। तब उन्होंने समस्त लोकका कल्याण करनेवाले महादेव शिवको प्रसन्न किया॥ ३१॥

वसिष्ठजीपर प्रसन्न होकर भगवान् शंकरने उन्हें मनोभिलषित वर प्रदान किया। वसिष्ठजीने प्रिय राजा सुद्युम्नके पुनः पुरुष होनेके लिये प्रार्थना की॥ ३२॥

शिवजीने अपना वचन सत्य करते हुए कहा—'हे ऋषे! आजसे राजा सुद्युम्न एक मास पुरुष और एक मास स्त्री बने रहेंगे'॥ ३३॥

इस प्रकार वरदान पाकर राजा सुद्युम्न पुनः अपने घर आ गये और वे धर्मात्मा वहाँ वसिष्ठजीकी कृपासे राज्य करने लगे॥ ३४॥

वे जब स्त्रीके रूपमें रहते थे, तब अन्तःपुरमें रहते थे और जब पुरुषरूपमें रहते थे, तब राज्य करते थे। परंतु इस कारण उनकी प्रजा उनसे उद्विग्न होकर राजाके रूपमें उनका अभिनन्दन नहीं करती थी॥ ३५॥

कुछ समयके बाद जब राजकुमार पुरूरवा युवक हो गया तब महाराज सुद्युम्न उसे प्रतिष्ठानपुरका राज्य सौंपकर वनमें चले गये॥ ३६॥

अनेक प्रकारके वृक्षोंसे सुन्दर लगनेवाले उस वनमें रहते हुए राजा सुद्युम्नने देवर्षि नारदजीसे सर्वोत्तम नवाक्षर (नवार्ण) मन्त्रकी दीक्षा ली और अत्यन्त श्रद्धा-भक्तिके साथ मन लगाकर वे उस मन्त्रका जप करने लगे। तदनन्तर भक्तोंका उद्धार करनेवाली जगज्जननी भगवती शिवाने सगुणरूप धारण करके उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिया। उस समय मनोरम तथा दिव्य स्वरूपवाली भगवती सिंहपर सवार होकर उनके समक्ष खड़ी हो गयीं। उनके नेत्र मदसे परिपूर्ण थे॥ ३७—३९॥

ऐसी दिव्य रूपधारिणी श्रीदुर्गादेवीको अपने सामने देखकर स्नेहभरे नेत्रोंवाले (इलारूपी) राजा सुद्युम्न प्रेमपूर्वक सिर नवाकर उनकी स्तुति करने लगे॥ ४०॥

इलाने कहा—हे भगवति! आपका जगत्-प्रसिद्ध वह दिव्य रूप, जो संसारके लिये कल्याणकारी है—मैंने देखा। हे जननि! सुरसमूहसे सेवित आपके भुक्ति-मुक्तिप्रदायक चरणकमलकी मैं वन्दना कर रही हूँ॥ ४१॥

हे अम्ब! इस संसारमें कौन मनुष्य आपको सम्पूर्ण रूपसे जान सकता है? जबकि मुनि एवं देवगण भी उसे देखकर विमोहित रहते हैं। हे देवि! आपके सम्पूर्ण ऐश्वर्य तथा मुझ-जैसी अकिंचनपर दया—यह सब देखकर मुझे आश्चर्य हो रहा है॥ ४२॥

हे माता! जब शिव, विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र, सूर्य, कुबेर, अग्नि, वरुण, वायु, चन्द्रमा और अष्टवसु भी आपके प्रभावको नहीं जानते हैं, तब भला गुणरहित मनुष्य आपके

गुणोंको कैसे जान सकता है?॥ ४३॥

हे अम्ब! यद्यपि परम तेजस्वी भगवान् विष्णु आपको समुद्रसे उत्पन्न, सब प्रकारके मनोरथोंको सिद्ध करनेवाली साक्षात् सात्त्विकी शक्तिस्वरूपा लक्ष्मीके रूपमें समझते हैं, ब्रह्मा भी आपको राजसी शक्तिस्वरूपा सरस्वती तथा शिवजी आपको तामसी शक्तिस्वरूपा महाकालीके रूपमें जानते हैं, तथापि हे अम्बिके! वे भी आपकी निर्गुणात्मिका दिव्य शक्तिको भलीभाँति नहीं जानते॥ ४४॥

हे भवानि! कहाँ तो अत्यन्त मन्दबुद्धि मैं और कहाँ मुझपर अमित महिमाशाली तथा अमोघ प्रभाववाला आपका अनुग्रह! मैं आपके कारुणिक चरित्रको जानती हूँ जो कि आप भक्तिभावयुक्त सेवकोंपर सर्वदा दया करती हैं॥ ४५॥

यद्यपि कमलवनमें वास करनेवाली कमला होकर आपने भगवान् विष्णुको पतिके रूपमें वरण किया है, तथापि वे मधुसूदन आनन्ददायक व्यवहार नहीं करते। वे आदिपुरुष विष्णु आदिशक्तिस्वरूपा आपके पवित्र हाथोंसे अपना पादसंवाहन कराकर अपने चरणोंको शुभ तथा पवित्र करते हैं॥ ४६॥

वे पुराणपुरुष भगवान् विष्णु भी प्रसन्न होकर आपके चरणोंका आघात वैसे ही चाहते हैं, जैसे अशोकवृक्ष अपनी वृद्धिके लिये चाहता है॥ ४७॥

हे सुन्दर चरित्रवाली देवि! आप विष्णुके विशाल, शान्त एवं भूषणोंसे विभूषित वक्षःस्थलरूपी शय्यापर सर्वदा निवास करती हैं। उस समय ऐसा जान पड़ता है, मानो सुन्दर श्याम मेघमें बिजली चमक रही हो, तब वे जगदीश्वर होते हुए भी क्या आपके वाहन नहीं बन जाते?॥ ४८॥

हे अम्ब! यदि क्रोधित होकर आप उनको त्याग दें तो वे भगवान् विष्णु अपूजित और शक्तिहीन होकर कुछ नहीं कर पायेंगे; क्योंकि लोकमें भी देखा जाता है कि श्रीहीन, गुणरहित एवं उदासीन पुरुषको उनके कुटुम्बीजन भी त्याग देते हैं॥ ४९॥

क्या ब्रह्मादि देवगण भी किसी समय युवतीरूपमें नहीं थे, जो दिन-रात आपके चरणकमलोंका ही आश्रय रखते हैं। मैं तो मानती हूँ कि आपने ही उन्हें पुंस्त्व प्रदान किया था। अतः हे अनन्त पराक्रमशालिनि! मैं आपकी शक्तिका क्या वर्णन कर सकती हूँ?॥ ५०॥

'आप न तो स्त्री हैं, न पुरुष; न निर्गुण हैं न सगुण'—ऐसी मेरी धारणा है। अतः आप जैसी भी हों—उन आपको मैं भक्तिपूर्वक बार-बार प्रणाम करती हूँ। आप मातासे मैं यही प्रार्थना करती हूँ कि आपमें मेरी अचल भक्ति बनी रहे॥ ५१॥

सूतजी बोले—इस प्रकार स्तुति करके राजा सुद्युम्न उनके शरणागत हुए और भगवतीने भी अत्यन्त सन्तुष्ट होकर उन्हें अपनी सायुज्य मुक्ति प्रदान की। तब उन देवीकी कृपासे सुद्युम्नने मुनियोंके लिये भी अति दुर्लभ शाश्वत परमपद प्राप्त किया॥ ५२-५३॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत प्रथम स्कन्धका 'सुद्युम्नस्तुति' नामक बारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १२॥

तेरहवाँ अध्याय

राजा पुरूरवा और उर्वशीकी कथा

सूतजी बोले—सुद्युम्नके दिवंगत हो जानेपर प्रजानुरंजनमें तत्पर, गुणी एवं सुन्दर महाराज पुरूरवा राज्य करने लगे। उस रमणीय प्रतिष्ठानपुरमें सर्वधर्मज्ञ तथा प्रजाकी रक्षामें तत्पर राजा पुरूरवाने सभीके द्वारा आदरणीय राज्य किया॥ १-२॥

उनकी राज्य-मन्त्रणा अच्छी तरहसे गुप्त रहती थी और उन्हें दूसरे राज्योंकी मन्त्रणाओंका भलीभाँति ज्ञान रहता था। उनमें सर्वदा उत्साहशक्ति एवं उत्तम प्रभुशक्ति विद्यमान थी। साम, दान, दण्ड और भेद—ये चारों नीतियाँ उन राजाके वशीभूत थीं। वे चारों वर्णों तथा आश्रमोंके

लोगोंसे अपने-अपने धर्मोंका आचरण कराते हुए राज्यका शासन-कार्य करते थे। वे राजा पुरूरवा विपुल दक्षिणावाले विविध यज्ञ करते थे और पवित्र दान किया करते थे॥ ३—५॥

राजा पुरूरवाके रूप, गुण, उदारता, शील, ऐश्वर्य एवं वीरताकी प्रशंसा सुनकर उर्वशी उनके वशीभूत हो गयी; उन दिनों वह भी ब्रह्माके शापसे पृथ्वीपर मनुष्य-योनिमें आयी थी। अतः उस मानिनीने उन राजाको गुणी जानकर उन्हें पतिके रूपमें स्वीकार कर लिया॥ ६-७॥

वह वरांगना इस प्रकारकी शर्त रखकर वहीं रहने लगी। [उसने कहा]—हे राजन्! ये दोनों भेड़के बच्चे मैं आपके पास धरोहरके रूपमें रखती हूँ। हे मानद! आप इनकी रक्षा करें। हे नृप! [दूसरी शर्त है कि] मैं केवल घी ही खाऊँगी और कुछ नहीं और हे महाराज! [तीसरी शर्त है कि] सहवासके अतिरिक्त किसी दूसरे समयमें मैं आपको कभी वस्त्रविहीन अवस्थामें न देखूँ। हे राजन्! यदि आप इन कही गयी शर्तोंको भंग करेंगे तो मैं उसी समय आपको छोड़कर चली जाऊँगी, यह मैं सत्य कह रही हूँ॥ ८—१०॥

इस प्रकार उस कामिनी उर्वशीने जो कहा था, उसे राजाने स्वीकार कर लिया और उर्वशी शापसे उद्धार पानेकी इच्छासे राजा पुरूरवाको प्रतिज्ञाबद्ध करके वहीं रहने लगी॥ ११॥

उर्वशीके द्वारा मुग्ध किये गये राजा सब धर्म-कर्म त्यागकर अनेक वर्षोंतक भोग-विलासमें पड़े रहे। उसपर आसक्त मनवाले वे सदा उसीका चिन्तन करते रहते थे और उसपर अत्यधिक मोहित होनेके कारण एक क्षण भी उस उर्वशीके बिना नहीं रह सकते थे॥ १२-१३॥

इस प्रकार जब बहुत वर्ष बीत गये, तब देवलोकमें इन्द्रने अपनी सभामें उर्वशीको अनुपस्थित देखकर गन्धर्वोंसे पूछकर कहा—हे गन्धर्वगण! तुम सब लोग वहाँ जाओ और प्रतिज्ञाबद्ध राजाके घरसे भेड़ोंको चुराकर उर्वशीको ले आओ; क्योंकि उर्वशीके बिना मुझे यह स्थान अच्छा नहीं लगता। अतः जिस किसी भी उपायसे उस कामिनीको तुमलोग लाओ॥ १४—१६॥

तब इन्द्रके ऐसा कहनेपर विश्वावसु आदि प्रधान गन्धर्वोंने वहाँसे जाकर रात्रिके घोर अन्धकारमें राजा पुरूरवाको विहार करते देख उन दोनों भेड़ोंको चुरा लिया। तब आकाशमार्गमें जाते हुए चुराये गये वे दोनों भेड़ जोरसे चिल्लाने लगे॥ १७-१८॥

अपने पुत्रके समान पाले हुए भेड़ोंका क्रन्दन सुनते ही उर्वशीने क्रोधित होकर राजा पुरूरवासे कहा—हे राजन्! मैंने आपके सम्मुख जो पहली शर्त रखी थी, वह टूट गयी। आपके विश्वासपर मैं धोखेमें पड़ी; क्योंकि पुत्रके समान मेरे प्रिय भेड़ोंको चोरोंने चुरा लिया फिर भी आप घरमें स्त्रीकी तरह शयन कर रहे हैं॥ १९-२०॥

अपनेको वीर समझनेवाले नपुंसक इस अधम स्वामीके द्वारा मैं नष्ट कर दी गयी। सर्वदा प्राणोंके समान मेरे दोनों भेड़ अब चले गये। उर्वशीको इस प्रकार विलाप करती देख प्रेममें आसक्त राजा पुरूरवा चोरोंके पीछे नग्नावस्थामें ही तुरंत दौड़ पड़े॥ २१-२२॥

उसी समय गन्धर्वोंद्वारा वहाँ राजाके भवनमें बिजली चमका दी गयी, जिसके कारण वहाँसे जानेकी इच्छावाली उर्वशीने राजाको नग्न देख लिया॥ २३॥

गन्धर्व उन दोनों भेड़ोंको वहीं मार्गमें छोड़कर भाग गये। थके एवं नग्न राजा भेड़ोंको लेकर अपने घर चले आये। तब वे उर्वशीको वहाँसे गयी हुई देखकर अत्यन्त दुःखित होकर विलाप करने लगे एवं लज्जित हुए। पतिको नग्न देखकर वह सुन्दरी उर्वशी चली गयी थी॥ २४-२५॥

व्याकुल, लाचार, कामसे मोहित तथा एकमात्र उर्वशीमें आसक्त चित्तवाले राजा शोक तथा क्रन्दन करते हुए देश-देशमें भ्रमण करने लगे॥ २६॥

इस प्रकार समस्त भूमण्डलपर भ्रमण करते हुए उन्होंने उर्वशीको कुरुक्षेत्रमें देखा। उसे देखते ही प्रसन्न मुखवाले नृपश्रेष्ठ राजा पुरूरवाने मधुर वाणीमें कहा—हे प्रिये! ठहरो-ठहरो। हे कठोरहृदये! मैं अब भी तुमपर

आसक्त हूँ, मैं तुम्हारे वशमें हूँ; अत: मुझ निरपराधी पतिको तुम मत छोड़ो॥ २७-२८॥

हे देवि! जिस शरीरसे तुमने इतना प्रेम किया था, जिसे तुमने यहाँतक खींच लिया, वह शरीर आज यहीं गिर जायगा। हे सुन्दरि! तुम्हारे द्वारा त्यक्त इस देहको भेड़िये और कौए खा जायेंगे॥ २९॥

इस प्रकार विलाप करते हुए दु:खित, दीन, थके, कामातुर और अत्यन्त लाचार राजा पुरूरवासे उर्वशी कहने लगी॥ ३०॥

उर्वशी बोली—हे राजेन्द्र! आप मूर्ख हैं। आपका ज्ञान कहाँ चला गया? हे पृथ्वीपते! भेड़ियोंके समान स्त्रियोंकी किसीसे मित्रता नहीं होती। अत: राजाओंको चाहिये कि वे स्त्रियों और चोरोंपर कभी भी विश्वास न करें। अब आप अपने घर जाइये, सुख भोगिये और मनमें किसी प्रकारकी चिन्ता मत कीजिये॥ ३१-३२॥

इस प्रकार अत्यन्त विषयासक्त होनेके कारण उर्वशीके समझानेपर भी राजाको ज्ञान नहीं हुआ। उस स्वेच्छाचारिणी अप्सराके स्नेहमें जकड़े रहनेके कारण उन्हें अपार दु:ख प्राप्त हुआ॥ ३३॥

सूतजी बोले—[हे मुनिजन!] इस प्रकार मैंने उर्वशीके महान् चरित्रका वर्णन आपलोगोंसे संक्षेपमें कर दिया, जो वेदमें विस्तारपूर्वक वर्णित है॥ ३४॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत प्रथम स्कन्धका 'पुरूरवा-उर्वशीचरित्रवर्णन' नामक तेरहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १३॥

चौदहवाँ अध्याय

व्यासपुत्र शुकदेवके अरणिसे उत्पन्न होनेकी कथा तथा व्यासजीद्वारा उनसे गृहस्थधर्मका वर्णन

सूतजी बोले—उस सुन्दरी असितापांगी घृताचीको देखकर व्यासजी बड़े असमंजसमें पड़े और सोचने लगे कि यह देवकन्या अप्सरा मेरे योग्य नहीं है, अत: अब मैं क्या करूँ? वह अप्सरा भी व्यासजीको चिन्तित होता देखकर भयभीत हो गयी कि कहीं ये मुझे शाप न दे दें॥ १-२॥

तत्पश्चात् भयसे व्याकुल वह अप्सरा एक शुकीका रूप धारण करके उड़ गयी। व्यासजी उसे पक्षीके रूपमें देखकर आश्चर्यमें पड़ गये॥ ३॥

उसे देखनेमात्रसे व्यासजीके शरीरमें कामका संचार हो आया और प्रत्यंगमें कामका प्रवेश हो जानेके कारण उनका मन अत्यन्त विस्मयमें पड़ गया॥ ४॥

बड़ी धीरताके साथ मनको रोकनेकी चेष्टा करते हुए भी उस चंचल मनको वे व्यासमुनि वशमें करनेमें समर्थ नहीं हुए॥ ५॥

इस प्रकार घृताचीद्वारा मोहित तेजस्वी व्यासजीका मन अनेक यत्न करनेपर भी भावी संयोगके कारण उनके वशमें न हो सका॥ ६॥

इसी बीच अग्नि निकालनेके लिये मन्थन करते समय एकाएक उनका तेज उस अरणीपर गिर गया, किंतु उसके गिरनेपर ध्यान न देकर वे अरणिमन्थन करते रहे। उस अरणीसे उन्हींके सदृश मनोहर स्वरूपवाले 'शुक' उत्पन्न हो गये॥ ७-८॥

अरणीसे उत्पन्न वह बालक विस्मय पैदा करते हुए उसी प्रकार सुशोभित हो रहा था, जिस प्रकार हवन करते समय घृताहुति पड़नेसे प्रकट अग्नि दीप्तिमान् हो उठती है॥ ९॥

उस पुत्रको देखकर 'यह क्या!'—ऐसा सोचकर व्यासजी अत्यन्त विस्मयमें पड़ गये [और विचार करने लगे कि यह] शिवके वरदानसे ही तो उत्पन्न नहीं हुआ है!॥ १०॥

इस प्रकार अरणीगर्भसे उत्पन्न वह तेजस्वी पुत्र शुक अपने तेजसे दूसरे अग्निके तुल्य देदीप्यमान प्रतीत हो रहा था॥ ११॥

व्यासजीने दिव्य देहधारी द्वितीय गार्हपत्य अग्निके समान

तेजस्वी पुत्रको बड़ी प्रसन्नतासे देखा और पर्वतसे नीचे उतरकर गंगाजलसे उसको नहलाया। हे तपस्वियो! उस समय आकाशसे उस शिशुके ऊपर पुष्पोंकी वर्षा होने लगी॥ १२-१३॥

व्यासजीने उस महात्मा शिशुका जातकर्म आदि संस्कार किया। उस समय देवताओंने दुंदुभियाँ बजायीं तथा अप्सराओंने नृत्य किया॥ १४॥

उस बालकके दर्शनकी लालसावाले विश्वावसु, नारद, तुम्बुरु आदि सभी गन्धर्वराज प्रसन्न होकर शुकके जन्मपर गान करने लगे। सभी देवता तथा विद्याधर भी अरणीके गर्भसे उत्पन्न उस दिव्य व्यासपुत्रको देखकर प्रसन्नतापूर्वक स्तुति करने लगे॥ १५-१६॥

हे द्विजोत्तम! उसी समय शुकदेवजीके लिये आकाशसे दिव्य दण्ड, कमण्डलु और शुभ कृष्ण मृगचर्म पृथ्वीपर आ गिरे॥ १७॥

उत्पन्न होते ही वह अति तेजस्वी शिशु शीघ्रतापूर्वक बड़ा हो गया, तब वैदिक विधानके मर्मज्ञ व्यासजीने उसका उपनयनसंस्कार भी कर दिया॥ १८॥

उत्पन्न होते ही रहस्यों तथा संग्रहोंसहित सभी वेद उन महात्माके समक्ष वैसे ही उपस्थित हो गये, जैसे उसके पिता व्यासजीमें वे विद्यमान थे॥ १९॥

अरणि-मन्थनके समय मुनिश्रेष्ठ व्यासजीने घृताची अप्सराको शुकीके रूपमें देखा था, इसलिये उन्होंने इस बालकका नाम शुक रख दिया॥ २०॥

व्याससुत शुकदेवने बृहस्पतिको अपना आचार्य मानकर विधिवत् ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया। गुरुकुलमें निवासकर रहस्यों तथा संग्रहोंसहित सभी वेदों तथा धर्मशास्त्रोंका अध्ययन करके, तदनन्तर गुरुको दक्षिणा देकर वे शुकदेवमुनि अपने पिता व्यासजीके पास आ गये॥ २१—२३॥

शुकदेवको आया देखकर व्यासजीने शीघ्रताके साथ प्रसन्नतापूर्वक उठकर बारंबार उनका आलिंगन किया और उनका सिर सूँघा। परम पवित्र व्यासजीने शुकदेवजीके कुशलक्षेम तथा अध्ययनके विषयमें पूछा तथा उन्हें आश्वस्त करके अपने पावन आश्रममें रख लिया॥ २४-२५॥

तत्पश्चात् व्यासजी शुकदेवजीके विवाहके विषयमें सोचने लगे। एक दिन परम तेजस्वी व्यासजीने शुकदेवजीसे किसी सुन्दर मुनिकन्याकी चर्चा की॥ २६॥

उन्होंने अपने पुत्र शुकदेवसे कहा—हे पवित्रात्मन्!

तुमने वेद तथा सभी धर्मशास्त्रोंका अध्ययन कर लिया है। अतः हे महामते! अब तुम विवाह कर लो और गृहस्थ-आश्रममें रहकर देवताओं और पितरोंका यजन करो और हे पुत्र! तुम सुन्दर स्त्रीको स्वीकारकर मुझे भी ऋणसे मुक्त कर दो॥ २७-२८॥

अपुत्रकी गति नहीं होती और उसे स्वर्ग कदापि नहीं मिलता। इसलिये हे महाभाग पुत्र! अब तुम गृहस्थ-आश्रममें प्रवेश करो और हे शुक! हे पुत्र! गृहस्थी बसाकर मुझे भी आनन्दित करो। ऐसा करके हे महामते! हे पुत्र! तुम मेरी महान् आशा परिपूर्ण करो॥ २९-३०॥

हे शुक! कठिन तपस्या करके मैंने तुम्हारे-जैसा अयोनिज पुत्र पाया है। हे महाप्राज्ञ! तुम देवतारूप हो, अतः मुझ पिताकी रक्षा करो॥ ३१॥

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] ऐसा कहनेवाले व्यासजीके पास उपस्थित विरक्त शुकदेवजीने गृहस्थ-आश्रममें अनुरक्त अपने पितासे कहा॥ ३२॥

शुकदेवजी बोले—हे महामते! हे धर्मज्ञ! हे वेदव्यास! आप क्या कह रहे हैं, मुझ शिष्यको आप तत्त्वज्ञानका उपदेश दें; मैं आपकी आज्ञाका पालन करूँगा॥ ३३॥

व्यासजी बोले—हे पुत्र! तुम्हारे लिये मैंने सैकड़ों वर्ष कष्ट सहकर जो तपस्या की और शिवजीकी आराधना की, उसके फलस्वरूप मैंने तुम्हें पाया है। किसी राजासे माँगकर मैं तुम्हें प्रचुर धन दूँगा, हे महाप्राज्ञ! तुम श्रेष्ठ यौवन प्राप्त करके सुखका उपभोग करो॥ ३४-३५ ॥

शुकदेवजी बोले—हे तात! आप बतायें कि इस मनुष्यलोकमें भला विपत्तिरहित कौन-सा सुख है? बुद्धिमान् लोग दुःखसे युक्त सुखको सुख नहीं कहते हैं॥ ३६ ॥

हे महाभाग! स्त्री पाकर मैं उसीके वशमें हो जाऊँगा। तब भला आप ही बताइये, परतन्त्र होकर और विशेषतः स्त्रीके वशमें रहकर मैं कौन-सा सुख पा सकूँगा?॥ ३७ ॥

लौह या काष्ठके फन्देमें जकड़ा हुआ पुरुष कदाचित् छूट भी सकता है, किंतु पुत्र-कलत्रके बन्धनमें फँसा हुआ प्राणी कभी भी बन्धनमुक्त नहीं हो पाता॥ ३८ ॥

यह शरीर विष्ठा एवं मूत्रसे परिपूर्ण रहता है; वैसे ही स्त्रियोंका शरीर भी होता है। हे विप्रेन्द्र! तब कौन बुद्धिमान् पुरुष उससे प्रीति करना चाहेगा!॥ ३९ ॥

हे विप्रशिरोमणे! मैं अयोनिज हूँ, तब योनिजन्य सुखमें मेरी बुद्धि कैसे होगी? मैं भविष्यमें भी अपनी उत्पत्ति किसी योनिमें नहीं चाहता॥ ४० ॥

अतः अद्भुत अध्यात्म सुखको छोड़कर मैं विट्-मूत्रजन्य सुखको क्यों चाहूँ? अपने-आपमें रमण करनेवाला कभी विषय-सुखका लोभी नहीं होता॥ ४१ ॥

मैंने सांगोपांग वेदोंका अध्ययन किया और जाना कि वे हिंसामय हैं तथा कर्ममार्गके प्रवर्तक हैं। मुझे गुरुरूपमें बृहस्पति प्राप्त हुए, वे भी गृहस्थीके सागरमें डूबे हुए हैं। अविद्याग्रस्त हृदयवाले वे मेरा उद्धार कैसे कर सकते हैं?॥ ४२-४३ ॥

जैसे कोई रोगग्रस्त वैद्य दूसरेके रोगकी चिकित्सा करता हो, उसी प्रकार मुझ मोक्षार्थीके गुरु गृहस्थ हैं, यह विडम्बना ही है। इसलिये ऐसे गुरुको नमस्कार करके मैं आपके पास आया हूँ। अब आप तत्त्वज्ञानका उपदेश देकर मेरी रक्षा करें; क्योंकि मैं इस संसाररूपी सर्पसे अत्यन्त भयभीत हूँ॥ ४४-४५ ॥

इस महाभयंकर संसार-चक्रमें प्राणिमात्रको सर्वदा नक्षत्रोंकी भाँति चक्कर काटना पड़ता है और सूर्यकी भाँति दिन-रात उन्हें भी कभी विश्राम करनेका अवसर नहीं मिलता॥ ४६ ॥

हे तात! इस संसारमें आत्मज्ञानको छोड़कर कौन-सा सुख है? मूढ जनोंको सुखकी वैसी ही प्रतीति होती है, जैसी विष्ठाके कीड़ोंको विष्ठामें होती है॥ ४७ ॥

वेदशास्त्रोंको पढ़कर भी जो सांसारिक सुखमें फँसे रहते हैं, भला उनसे बढ़कर मूर्ख और कौन होगा? उन्हें तो कुत्ते, घोड़े एवं सूअर आदि पशुओंके समान धर्मवाला समझना चाहिये॥ ४८ ॥

दुर्लभ मानवतनको पाकर तथा वेदशास्त्रोंका अध्ययन करके भी यदि मनुष्य इस संसारमें बँधता है, तो दूसरा भला कौन बन्धनमुक्त हो सकता है? इससे बढ़कर संसारमें कोई दूसरी अद्भुत बात नहीं है कि पुत्र-कलत्र और घरके बन्धनमें पड़ा हुआ भी पण्डित कहलाता है!॥ ४९-५० ॥

जो मनुष्य इस संसारमें मायाके सत्त्व, रज, तम-रूपी तीनों गुणोंसे बाँधा नहीं जाता है; वही विद्वान्, बुद्धिमान् एवं शास्त्रमें पारंगत है॥ ५१ ॥

दृढ़ बन्धनमें डालनेवाले व्यर्थ विद्याध्ययनसे क्या लाभ? उसीका अध्ययन करना चाहिये, जो शीघ्र ही भवबन्धनसे मुक्त कर दे॥ ५२ ॥

पुरुषको बन्धनमें जकड़ लेनेके कारण ही उसे गृह कहा गया है। अतः ऐसे बन्धनरूप घरमें सुख कहाँ? हे पिताजी! इसीलिये मैं भयभीत हूँ॥ ५३ ॥

जो अज्ञानी, मन्दबुद्धि तथा अभागे मनुष्य हैं; वे इस मानव-जन्मको पाकर भी पुनः बन्धनमें पड़ जाते हैं॥ ५४॥

व्यासजी बोले—गृह बन्धनागार नहीं है और न बन्धनका कारण ही है। जो मनसे बन्धनमुक्त है, वह

गृहस्थ-आश्रममें रहते हुए भी मुक्त हो जाता है ॥ ५५ ॥

जो न्यायमार्गसे धनोपार्जन करता है, शास्त्रोक्त कर्मोंका विधिवत् सम्पादन करता है, पितृश्राद्ध आदि यज्ञ करता है, सर्वदा सत्य बोलता है तथा पवित्र रहता है, वह गृहमें रहते हुए भी मुक्त हो जाता है ॥ ५६ ॥

ब्रह्मचारी, संन्यासी, वानप्रस्थी तथा व्रतोपवास करनेवाला—ये सब मनुष्य मध्याह्नोत्तरकालमें गृहस्थके पास ही जाते हैं। वे धार्मिक गृहस्थ श्रद्धाके साथ मधुर वचनोंद्वारा सबका सत्कार करते एवं अन्नदानसे उन्हें उपकृत करते हैं ॥ ५७-५८ ॥

गृहस्थ-आश्रमसे बढ़कर कोई दूसरा आश्रम देखा या सुना नहीं गया। वसिष्ठ आदि आचार्यों और तत्त्वज्ञानियोंने इसका आश्रय ग्रहण किया है ॥ ५९ ॥

हे महाभाग! वेदोक्त कर्म करनेवाले गृहस्थके लिये क्या असाध्य रह जाता है? वह स्वर्ग, मोक्ष अथवा उत्तम कुलमें जन्म—जो कुछ भी चाहता है, वह हो जाता है। 'एक आश्रमसे दूसरे आश्रममें जाना चाहिये'—ऐसा धर्मज्ञोंने बताया है। अतः आलस्यरहित होकर गृहस्थसम्बन्धी कर्मोंको सम्पादित करो ॥ ६०-६१ ॥

हे धर्मज्ञ पुत्र! देवताओं, पितरों एवं आश्रित-जनोंको विधिवत् सन्तुष्ट करके, पुत्र उत्पन्न करके और उसे भी गृहस्थ-आश्रममें लगाकर पुनः गृह त्यागकर वनमें जाकर श्रेष्ठ व्रतका आश्रय ग्रहण करो। वहाँ वानप्रस्थ-आश्रम पूर्ण करके उसके बाद संन्यास धारण करो ॥ ६२-६३ ॥

हे महाभाग! इन्द्रियाँ मनुष्यको निश्चितरूपसे प्रमत्त बना देती हैं। जो मनुष्य स्त्रीरहित होता है, उसे मन पाँचों इन्द्रियोंसहित विकल कर देता है ॥ ६४ ॥

हे महामते! इसलिये उन बलवान् इन्द्रियोंपर विजय पानेके लिये स्त्रीपरिणय करके गृहस्थ बनना चाहिये, तत्पश्चात् वृद्धावस्थामें तप करना चाहिये—यह शास्त्रवचन है ॥ ६५ ॥

हे महाभाग! वनमें स्थित महातेजस्वी महर्षि विश्वामित्र किसी समय तीन सहस्र वर्षोंतक निराहार और जितेन्द्रिय रहकर अत्यन्त कठोर तप करके भी मेनकाको देखकर मोहित हो गये और उन्हींके तेजसे पुत्रीरूपमें सुन्दर शकुन्तला पैदा हुई ॥ ६६-६७ ॥

मेरे पिता पराशरजी भी धीवरकी कृष्णवर्णा कन्याको देखकर काम-बाणसे आहत हो गये और उन्होंने नावपर ही उसे स्वीकार कर लिया था ॥ ६८ ॥

ब्रह्माजी भी अपनी कन्या को देखकर कामसे पीड़ित हो गये और बेसुध होकर उसके पीछे दौड़ते रहे; तब शिवजीने उन्हें रोका ॥ ६९ ॥

अतः हे कल्याणकारी पुत्र! तुम मेरा हितकर वचन मान लो और किसी कुलीन कन्यासे विवाह करके सनातन वेदमार्गका पालन करो ॥ ७० ॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत प्रथम स्कन्धका 'व्यासकृत गृहस्थधर्मवर्णन' नामक चौदहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ १४ ॥

पन्द्रहवाँ अध्याय

शुकदेवजीका विवाहके लिये अस्वीकार करना तथा व्यासजीका उनसे श्रीमद्देवीभागवत पढ़नेके लिये कहना

श्रीशुकदेवजी बोले—हे पिताजी! सर्वदा दुःख देनेवाले गृहस्थाश्रमको मैं कभी स्वीकार नहीं करूँगा; क्योंकि [पशु-पक्षियोंको फँसानेवाले] जालके समान यह आश्रम सभी मानवोंके लिये सदा बन्धनस्वरूप है ॥ १ ॥

हे तात! धन-धान्यकी चिन्तामें व्याकुल लोगोंके लिये सुख कहाँ दिखायी पड़ता है? निर्धन और लोभके वशीभूत मनुष्य अपने ही परिवारजनोंद्वारा सर्वदा कष्ट पाते रहते हैं ॥ २ ॥

इन्द्र भी वैसे सुखी नहीं रहते, जैसा एक सुखी निःस्पृह भिक्षुक रहता है। तब भला इस संसारमें

तीनों लोकोंका वैभव पाकर भी दूसरा कौन सुखी रह सकता है?॥ ३॥

किसी तपस्वीको तप करते हुए देखकर स्वर्गलोकके स्वामी इन्द्र भी चिन्तित हो उठते हैं और उसके तपमें अनेक प्रकारके विघ्न करने लगते हैं॥ ४॥

ब्रह्मा भी सुखी नहीं हैं और मनोरम लक्ष्मीको पाकर विष्णु भी सुखी नहीं हैं; उन्हें भी दैत्योंके साथ युद्धके द्वारा निरन्तर कष्ट सहन करने पड़ते हैं। उन ऐश्वर्यशाली रमापति विष्णुको भी [सुखप्राप्तिके लिये] अनेक प्रयत्न करने पड़ते हैं और कठोर तपस्या करनी पड़ती है। [इस संसारमें] किसको बहुत सुख है?॥ ५-६॥

भगवान् शंकर भी सदैव दुःखी रहते हैं—ऐसा मैं जानता हूँ; क्योंकि वे सदैव तपस्या करते हुए भी दैत्योंसे युद्ध करते रहते हैं॥ ७॥

हे तात! जब धनवान् होते हुए भी लोभी मनुष्य कभी भी सुखपूर्वक सो नहीं पाता, तब भला निर्धन मनुष्य कैसे सुख पा सकता है? इसलिये हे महाभाग! यह जानते हुए भी आप अपने तेजसे उत्पन्न पुत्रको दुःखदायक तथा महाभयानक संसारमें क्यों लगा रहे हैं?॥ ८-९॥

हे पिताजी! जहाँ जन्ममें दुःख, बुढ़ापेमें दुःख, मरणमें दुःख तथा पुनः विष्ठा और मूत्रसे भरे हुए गर्भमें दुःख सहन करना पड़ता है; उससे भी अधिक दुःख तृष्णा और लोभसे उत्पन्न होता है। हे मानद! मरनेसे भी अधिक दुःख माँगनेमें होता है॥ १०-११॥

ब्राह्मण प्रतिग्रहद्वारा धन प्राप्त करते हैं और वे बुद्धि-बलका उपयोग नहीं करते। दूसरेके भरोसेपर रहना परम दुःखकर है तथा वह अहर्निश मृत्युके समान होता है॥ १२॥

सभी वेद-शास्त्रोंका भलीभाँति अध्ययन करके भी विद्वानोंको धनिकोंके पास जाकर सब प्रकारसे उनकी प्रशंसा करनी पड़ती है। केवल पेटके लिये कोई चिन्ताकी बात नहीं; उसे तो केवल पत्र, फल एवं कन्द-मूल आदिसे किसी भी प्रकार सन्तुष्टिपूर्वक भरा जा सकता है॥ १३-१४॥

हे पिताजी! भार्या, पुत्र, पौत्र आदि बड़े कुटुम्बके पालनमें तो अनेक कष्ट सहने पड़ते हैं। ऐसी दशामें गृहस्थको सुख कहाँ है?॥ १५॥

इसलिये हे तात! मुझे सुखदायी ज्ञानशास्त्र और योगशास्त्रका उपदेश कीजिये। सम्पूर्ण कर्मकाण्डमें मेरा मन कभी नहीं लगता॥ १६॥

अतः कर्मक्षयका कोई उपाय बताइये; जिससे संचित, प्रारब्ध एवं क्रियमाण—तीनों प्रकारके कर्मफल नष्ट हो जायँ॥ १७॥

स्त्री जोंकके समान सदा [पुरुषका] रक्त चूसती रहती है, जिसे बुद्धिहीन मनुष्य उसकी भावपूर्ण चेष्टाओंसे मोहित होनेके कारण नहीं जान पाता॥ १८॥

स्त्री अपने संसर्गसे उसके तेजरूपी धन तथा अपनी वचनचातुरीद्वारा उसका मन—इस प्रकार सर्वस्वका पूर्णरूपसे हरण कर लेती है। उससे बढ़कर दूसरा चोर कौन है?॥ १९॥

इसलिये मेरे विचारमें तो मूर्ख मनुष्य ही केवल निद्रासुखका नाश करनेके लिये स्त्रीपरिणय करता है। विधाताद्वारा वह दुःखके लिये ही ठगा जाता है, सुखके लिये नहीं॥ २०॥

सूतजी बोले—इस प्रकार शुकदेवकी युक्तियुक्त ये बातें सुनकर व्यासजी बड़ी चिन्तामें पड़ गये। वे मन-ही-मन सोचने लगे—'अब मैं क्या करूँ?' तत्पश्चात् उनकी आँखोंसे दुःखके आँसू बहने लगे, शरीर काँपने लगा और मनमें ग्लानि होने लगी॥ २१-२२॥

इस प्रकार शोक करते हुए अपने दीन तथा शोकाकुल पिताको देखकर आश्चर्यसे विस्मित नेत्रवाले शुकदेवजीने अपने पिता व्यासजीसे कहा—अहो! माया कितनी प्रबल है, जो कि यह वेदान्तदर्शनके प्रणेता तथा वेदका सांगोपांग ज्ञान रखनेवाले सर्वज्ञ पण्डित मेरे पिताजीको भी मोहित कर रही है!॥ २३-२४॥

न जाने वह कौन-सी तथा कैसी अति दुष्कर माया

है, जो सत्यवतीसुत विद्वान् व्यासजीको भी मोहित कर रही है!॥ २५॥

जो पुराणोंके वक्ता, महाभारतके रचयिता, वेदोंके विभागकर्ता हैं, वे भी [मायाजनित] मोहको प्राप्त हो गये हैं॥ २६॥

इसलिये मैं उन्हीं देवी महामायाकी शरणमें जाऊँ, जो समस्त जगत् तथा ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदिको भी मोहित कर देती हैं, तब दूसरोंकी बात ही क्या है?॥ २७॥

इन तीनों लोकोंमें कौन ऐसा है जो मायासे मोहित न होता हो? उस मायाने तो ब्रह्मा आदि देवताओंको भी पूर्वकालमें मोहित कर दिया था॥ २८॥

अहो! उन भगवती जगदम्बाके द्वारा रचित मायाका बल तथा पराक्रम महान् आश्चर्यजनक है; उन्होंने अपनी मायाके प्रभावसे ही सर्वज्ञ और सर्वान्तर्यामी ईश्वरको भी अपने वशमें कर रखा है॥ २९॥

पौराणिकोंद्वारा कहा गया है कि व्यासजी भगवान् विष्णुके अंशसे उत्पन्न हुए हैं; तथापि वे आज शोक-सागरमें इस प्रकार डूब रहे हैं जैसे समुद्रमें भग्न जलयानवाला वणिक्॥ ३०॥

आज वे भी मायाके वशीभूत होकर एक साधारण व्यक्तिके समान आँसू बहा रहे हैं। अहो! माया बड़ी प्रबल है, जिसे बड़े-बड़े विद्वान् भी नहीं त्याग पाते॥ ३१॥

व्यास कौन हैं? मैं कौन हूँ? यह संसार क्या वस्तु है? और यह कैसा भ्रम है? इस पांचभौतिक शरीरमें पिता-पुत्रकी भावना कहाँसे आयी? यह माया अतीव प्रबल है, जो मायावियोंको भी मोहित कर देती है, जिसके वशीभूत होकर यहाँ द्विज कृष्णद्वैपायन भी रुदन कर रहे हैं॥ ३२-३३॥

सूतजी बोले—सब कारणोंकी एकमात्र कारण, सब देवताओंकी जननी तथा ब्रह्मा आदि देवताओंकी भी स्वामिनी आदिशक्ति भगवतीको मनसे स्मरण करके शोकसागरमें डूबे हुए अपने दुःखी पिता श्रीव्यासजीसे अरणीपुत्र शुकदेवजीने इस प्रकार नीतियुक्त वचन कहा—॥ ३४-३५॥

हे पराशरनन्दन! हे महाभाग! आप तो स्वयं सब लोगोंको ज्ञान देनेवाले हैं तब हे स्वामिन्! आप ऐसा शोक क्यों करते हैं, जैसा कोई अज्ञ साधारण व्यक्ति करता है?॥ ३६॥

हे महाभाग! इस समय मैं आपका पुत्र हूँ, परंतु यह कौन जानता है कि पूर्वजन्ममें मैं कौन था और आप कौन थे? यह संसार तो महात्माओंके लिये एक भ्रममात्र है॥ ३७॥

अतएव आप धैर्य रखें, विवेक धारण करें तथा मनमें खेद न करें। हे महामते! इसे मोहजाल समझकर आप शोकका परित्याग करें॥ ३८॥

भूख भोजनसे मिटती है, पुत्रके देखनेसे नहीं। प्यास भी जल पीनेसे मिटती है, केवल पुत्र-दर्शनसे नहीं। इसी प्रकार सुगन्धित पदार्थसे नाकको तथा अच्छी बातोंसे कानोंको एवं स्त्रीसे विषय-सुखका आनन्द मिलता है। मैं आपका पुत्र हूँ, बताइये मैं आपके लिये क्या करूँ?॥ ३९-४०॥

किसी समय अजीगर्त नामक ब्राह्मणने धन लेकर अपने पुत्र शुन:शेपको यज्ञपशुके रूपमें राजा हरिश्चन्द्रके हाथ बेच दिया था। सुखका साधन केवल धन ही है, धन ही सुखकी राशि है। अत: यदि आपको लोभ हो, तो धनका संचय कीजिये। मैं आपका पुत्र हूँ, अत: [आपके सुखके लिये] मैं क्या करूँ?॥ ४१-४२॥

हे महामते! आप दैवज्ञ हैं। अत: हे मुने! आप मुझे अपनी बुद्धिसे ऐसा ज्ञान दीजिये, जिससे मैं गर्भवासजनित महान् भयसे मुक्त हो जाऊँ॥ ४३॥

हे पवित्रात्मन्! इस कर्मभूमिमें मनुष्य-जन्म अति दुर्लभ है, उसमें भी उत्तम कुलमें ब्राह्मणका जन्म और भी दुर्लभ है॥ ४४॥

'मैं आबद्ध हूँ'—यह बुद्धि मेरे चित्तसे नहीं हटती। संसारके वासनाजालमें यह उत्तरोत्तर फँसती ही जाती है॥ ४५॥

सूतजी बोले—असीम बुद्धिवाले अपने पुत्र शुकदेवके ऐसा कहनेपर व्यासजीने शान्त एवं संन्यास-आश्रमके लिये उत्सुक मनवाले शुकदेवजीसे कहा— ॥ ४६ ॥

व्यासजी बोले—हे महाभाग पुत्र! मेरेद्वारा रचित श्रीमद्देवीभागवतपुराणको तुम पढ़ो; वेदतुल्य यह पवित्र पुराण अधिक विस्तृत भी नहीं है ॥ ४७ ॥

इसमें बारह स्कन्ध हैं, यह पुराणोंके पाँचों लक्षणोंसे युक्त है। मेरे विचारमें यह पुराण सभी पुराणोंका आभूषण है ॥ ४८ ॥

हे महामते! जिस भागवतके सुननेमात्रसे सत् और असत् वस्तुओंका यथार्थ ज्ञान हो जाता है, उसे तुम पढ़ो ॥ ४९ ॥

[एक बार महाप्रलयकालमें] वटपत्रपर शयन करते हुए बालरूपधारी भगवान् विष्णु वहाँ सोच रहे थे कि किस चिदात्माने, किस प्रयोजनसे तथा किस द्रव्यसे मुझे बालरूपमें उत्पन्न किया है? इन सब विषयोंका ज्ञान मुझे कैसे हो? इस प्रकार चिन्तन कर रहे महात्मा बालमुकुन्दसे उन आदिशक्ति भगवतीने सम्पूर्ण अर्थको प्रदान करनेवाले ज्ञानको आधे श्लोकमें ही इस प्रकार कहा—**'सर्वं खल्विदमेवाहं नान्यदस्ति सनातनम्'** अर्थात् यह सब कुछ मैं ही हूँ और दूसरा कोई भी सनातन नहीं है ॥ ५०—५२ ॥

यह बात पहले भी भगवान् विष्णुके हृदयमें उत्पन्न हुई थी। इसलिये अब वे सोचने लगे कि इस सत्य वचनका उच्चारण किसने किया? इस कहनेवालेको मैं कैसे जानूँ? वह स्त्री है या पुरुष अथवा नपुंसक है? ऐसी चिन्तावाले भगवान् विष्णुने भागवतको हृदयमें धारण किया और उसी श्लोकार्धमें मन लगाये हुए वे बार-बार उसका उच्चारण करने लगे। इस प्रकार वटपत्रपर सोये हुए वे भगवान् विष्णु चिन्तातुर हो गये ॥ ५३—५५ ॥

उसी समय शंख, चक्र, गदा, पद्म—इन श्रेष्ठ आयुधोंको धारण किये हुए, चतुर्भुजा, शान्तिस्वरूपा, शान्ता शिवा दिव्य वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित होकर अपने ही समान विभूतियोंवाली सखियोंसहित प्रादुर्भूत हुईं।

वे सुन्दर मुखवाली भगवती महालक्ष्मी परम तेजस्वी भगवान् विष्णुके समक्ष मन्द-मन्द मुसकराती हुई प्रकट हुईं ॥ ५६—५८ ॥

सूतजी बोले—उस अपार प्रलय-सागरमें बिना अवलम्बके स्थित मनोरम रूपवाली उन दिव्य देवीको देखकर कमलनयन भगवान् विष्णु बड़े ही विस्मयमें पड़े ॥ ५९ ॥

वहाँ रति, भूति, बुद्धि, मति, कीर्ति, स्मृति, धृति, श्रद्धा, मेधा, स्वधा, स्वाहा, क्षुधा, निद्रा, दया, गति, तुष्टि, पुष्टि, क्षमा, लज्जा, जृम्भा, तन्द्रा—ये शक्तियाँ अलग-अलग रूपमें उन महादेवीके समीप सभी ओर खड़ी थीं ॥ ६०-६१ ॥

वे सभी श्रेष्ठ आयुध धारण किये हुए थीं, नाना प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित थीं तथा उनके हृदयपर मन्दारकी मालाएँ और मोतियोंके हार सुशोभित हो रहे थे ॥ ६२ ॥

उन भगवती महालक्ष्मी तथा उनकी सभी अन्यान्य सखियोंको उस प्रलयसागरके जलमें उपस्थित देखकर भगवान् विष्णुके मनमें बड़ा विस्मय हुआ ॥ ६३ ॥

इस प्रकार भगवतीकी माया देखकर अति चकित सर्वात्मा भगवान् विष्णु सोचने लगे—ये देवियाँ कहाँसे आ गयीं, मैं वटवृक्षके पत्तेपर कैसे आ गया, इस एकार्णव महासागरमें वटवृक्ष कहाँसे उत्पन्न हो गया और

किसके द्वारा मैं सुन्दर स्वरूपवाला बालक बनाकर उसपर स्थापित किया गया हूँ?॥ ६४-६५॥

ये मेरी माता तो नहीं हैं! अथवा यह कोई दुर्घट माया है? किसने और किस कारणसे मुझे इस समय दर्शन दिये हैं?॥ ६६॥

अब मैं इस विषयमें क्या कहूँ? मैं यहाँसे कहीं चला जाऊँ अथवा मौन धारण करके बालभावसे सावधान होकर यहीं स्थित रहूँ॥ ६७॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत प्रथम स्कन्धका 'शुकवैराग्यवर्णन' नामक पन्द्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १५॥

सोलहवाँ अध्याय

बालरूपधारी भगवान् विष्णुसे महालक्ष्मीका संवाद, व्यासजीका शुकदेवजीसे देवीभागवतप्राप्तिकी परम्परा बताना तथा शुकदेवजीका मिथिला जानेका निश्चय करना

व्यासजी बोले—इस प्रकार वटपत्रपर सोये हुए उन भगवान् विष्णुको आश्चर्यचकित देखकर मन्द मुसकान करती हुई देवीने यह वचन कहा—'विष्णो! आप विस्मयमें क्यों पड़े हैं?'॥ १॥

आप उस महाशक्तिकी मायासे पूर्वकालमें भी सृष्टिकी उत्पत्ति तथा प्रलय होनेपर इसी प्रकार बार-बार जन्म लेकर मुझे भूलते रहे हैं॥ २॥

वे पराशक्ति निर्गुणा हैं, मैं और आप तो सगुण हैं। जो सात्त्विकी शक्ति है, उसे आप मेरी ही शक्ति समझिये॥ ३॥

आपके नाभिकमलसे प्रजापति ब्रह्मा उत्पन्न होंगे। वे ही रजोगुणसे युक्त होकर समस्त ब्रह्माण्डकी सृष्टि करेंगे॥ ४॥

वे ब्रह्मा ही तपोबलका आश्रय लेकर श्रेष्ठ शक्ति प्राप्त करके रजोगुणके द्वारा त्रिभुवनको लाल वर्णका कर देंगे। गुणोंसहित पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायु—इन पाँचों महाभूतोंकी एवं मनके साथ इन्द्रियों तथा उनके अधिष्ठातृदेवताओंकी रचना करके वे बुद्धिमान् ब्रह्माजी जगत्‌की सृष्टि करेंगे; इसी कारण वे कर्ता कहे जायँगे और आप इस विश्वके पालक होंगे॥ ५—७॥

उनके क्रोध करनेपर उनकी भौंहोंके मध्यभागसे रुद्र उत्पन्न होंगे। हे महामते! वे ही रुद्र घोर तप करके तामसी शक्ति प्राप्तकर कल्पान्तके समय सृष्टिके संहारकर्ता होंगे। इसी कारण मैं आपके पास आयी हूँ; आप मुझे वही सात्त्विकी शक्ति समझिये। हे मधुसूदन! मैं यहीं रहूँगी। मैं तो सर्वदा आपके ही पास रहती हूँ। आपके हृदयमें मैं निरन्तर निवास करती हूँ॥ ८—१०॥

विष्णु बोले—हे देवि! हे वरारोहे! कुछ समय पूर्व मैंने स्पष्ट अक्षरोंवाला जो आधा श्लोक सुना, वह परम कल्याणप्रद तथा रहस्यमय वाक्य किसने कहा था? हे वरारोहे! यह मुझे शीघ्र बताइये; हे सुमुखि! इस विषयमें मुझे महती शंका है। जिस प्रकार निर्धन पुरुष धनकी चिन्ता करता रहता है, उसी प्रकार मैं उसका बार-बार स्मरण किया करता हूँ॥ ११-१२॥

व्यासजी बोले—विष्णुका वह वचन सुनकर मुसकानयुक्त मुखमण्डलवाली महालक्ष्मी मधुर हास्यके साथ अत्यन्त प्रेमसे बोलीं—॥ १३॥

महालक्ष्मी बोलीं—हे शौरे! मेरी बात सुनिये। मैं सगुणरूपा चतुर्भुजा भगवती हूँ। आप मुझे जानते हों या न जानते हों, किंतु मैं सब गुणोंका आलय होती हुई निर्गुणा भी हूँ॥ १४॥

हे महाभाग! आप यह जान लें कि वह अर्धश्लोक उसी पराशक्तिने कहा था। आप उसे सब वेदोंका तत्त्वस्वरूप, कल्याणकारी और पुण्यप्रद श्रीमद्देवीभागवत

समझिये। हे शत्रुमर्दन! हे सुव्रत! मैं भगवतीकी परम कृपा मानती हूँ, जिसने ऐसा गुप्त एवं परम रहस्यमय मन्त्र आपके कल्याणके लिये कहा है॥ १५-१६॥

आप इसे सर्वदा चित्तमें रखिये और कभी भी इसे विस्मृत न कीजिये; यह सब शास्त्रोंका सार है तथा महाविद्याके द्वारा प्रकाशित किया गया है॥ १७॥

इससे बढ़कर त्रिभुवनमें कुछ भी ज्ञातव्य नहीं है। आप निश्चय ही देवीके परम प्रिय हैं, इसीलिये उन्होंने यह मन्त्र आपको बताया है॥ १८॥

व्यासजी बोले—महादेवी लक्ष्मीके इस वचनको सुनकर चतुर्भुज भगवान् विष्णुने इसे सर्वश्रेष्ठ मन्त्र समझकर सदाके लिये हृदयमें धारण कर लिया॥ १९॥

कुछ दिनोंके बाद उनके नाभिकमलसे उत्पन्न ब्रह्माजी दैत्योंके भयसे डरकर भगवान् विष्णुकी शरणमें गये। तब वे भगवान् विष्णु भयंकर युद्ध करके मधु-कैटभका वधकर उस विशद अक्षरोंवाले श्लोकार्धरूप मन्त्रका जप करने लगे॥ २०-२१॥

भगवान् वासुदेवको जप करते हुए देखकर प्रजापति ब्रह्माजीने प्रेमपूर्वक कमलापतिसे पूछा—हे देवेश! हे पुण्डरीकाक्ष! हे जगदीश्वर! आप किसका जप कर रहे हैं? आपसे भी बढ़कर दूसरा कौन है, जिसका ध्यान करके आप इतने प्रसन्न हो रहे हैं?॥ २२-२३॥

विष्णु बोले—हे महाभाग! विचार कीजिये कि आपमें और मुझमें जो कार्यकारणस्वरूपा शक्ति विद्यमान है, वे ही भगवती शिवा हैं। जिनके आधारपर एकार्णव महासागरमें यह समस्त जगत् ठहरा हुआ है। जो महाशक्ति साकार, असीम तथा सनातनी भगवती हैं और यह समस्त जड-चेतन संसार जिनके द्वारा रचा गया है, वे ही जब प्रसन्न होती हैं तब मनुष्योंके उद्धारके लिये वरदायिनी होती हैं॥ २४—२६॥

वे ही सनातनी परमा विद्या हैं, संसारके बन्धन एवं मुक्तिकी कारणस्वरूपा हैं और वे ही सभी ईश्वरोंकी भी स्वामिनी हैं॥ २७॥

मैं, आप तथा समस्त संसार उन्हींकी चैतन्य शक्तिसे उत्पन्न हुए हैं। हे ब्रह्मन्! हे निष्पाप! ऐसा आप सत्य जानिये, इसमें सन्देह नहीं है॥ २८॥

उन भगवतीने आधे श्लोकमें ही जो कहा है, वही वास्तविक श्रीमद्देवीभागवत है। द्वापरयुगके आदिमें पुनः उसका विस्तार होगा॥ २९॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार भगवान् विष्णुके नाभिकमलपर विराजमान ब्रह्माजीने उस भागवतका संग्रह किया। तत्पश्चात् उन्होंने अपने परम बुद्धिमान् पुत्र नारदजीसे इसे कहा। पूर्वकालमें वही भागवत देवर्षि नारदजीने मुझे दिया और फिर मैंने उसे बारह स्कन्धोंमें विस्तृत करके पूर्ण किया॥ ३०-३१॥

हे महाभाग! वेदतुल्य, पाँच लक्षणोंसे युक्त तथा भगवतीके उत्तम चरितोंसे ओत-प्रोत इस 'श्रीमद्देवीभागवत' पुराणको पढ़ो॥ ३२॥

तत्त्वज्ञानके रससे परिपूर्ण, वेदार्थके द्वारा उपबृंहित और धर्मशास्त्रके समान पुण्यप्रद यह भागवत सभी पुराणोंमें श्रेष्ठतम है। यह वृत्रासुरवधके कथानकसे युक्त, विविध आख्यानोपाख्यानोंसे समन्वित, ब्रह्मविद्याका निधान एवं भवसागरसे पार करनेवाला है॥ ३३-३४॥

अतः हे महाभाग! तुम उस भागवतको अवश्य पढ़ो; तुम अत्यन्त बुद्धिमान् और योग्य हो। हे नरश्रेष्ठ! यह श्रीमद्देवीभागवत नामक पुराण पुण्यप्रद है॥ ३५॥

तुम इसके अठारह हजार श्लोकोंको हृदयंगम कर लो; यह पुराण पाठ तथा श्रवण करनेवालेके लिये अज्ञानका नाश करनेवाला, दिव्य ज्ञानरूपी सूर्यका बोध करानेवाला, सुखप्रद, शान्तिदायक, धन्य, दीर्घ आयु प्रदान करनेवाला, कल्याणकारी तथा पुत्र-पौत्रकी वृद्धि करनेवाला है॥ ३६-३७॥

लोमहर्षणसे उत्पन्न मेरे शिष्य ये धर्मात्मा सूतजी भी तुम्हारे साथ इस शुभ पुराण-संहिताका अध्ययन करेंगे॥ ३८॥

सूतजी बोले—हे मुनियो! व्यासजीने मुझसे और अपने पुत्रसे इस प्रकार कहा था, तब मैंने उस सम्पूर्ण विस्तृत पुराण-संहिताको विधिवत् पढ़ा था॥ ३९॥

उस समय भागवतपुराणका अध्ययन करके शुकदेवजी व्यासजीके पवित्र आश्रममें ही रहने लगे, परंतु दूसरे ब्रह्मपुत्र नारदकी भाँति उन धर्मात्माको वहाँ शान्ति न मिल सकी॥ ४०॥

एकान्तमें रहनेवाले तथा व्याकुलचित्त वे उदासीनकी भाँति दिखायी पड़ते थे। न वे अधिक भोजन करते थे और न उपवासपूर्वक ही रहते थे॥ ४१॥

इस प्रकार अपने पुत्र शुकदेवको चिन्तित देखकर व्यासजी बोले—हे पुत्र! तुम क्या चिन्ता करते रहते हो? हे मानद! तुम किसलिये व्याकुल रहते हो? ऋणग्रस्त निर्धन व्यक्तिकी भाँति तुम सदा चिन्ता करते रहते हो। हे पुत्र! मुझ पिताके रहते तुम्हें किस बातकी चिन्ता हो रही है?॥ ४२-४३॥

तुम मनकी ग्लानि छोड़ो; यथेष्टरूपसे सुखोपभोग करो, शास्त्रोक्त ज्ञानका चिन्तन करो और आत्मचिन्तनमें मन लगाओ॥ ४४॥

हे सुव्रत! यदि मेरे उपदेशसे तुम्हें शान्ति नहीं मिलती, तो राजा जनकके द्वारा पालित मिथिलापुरी चले जाओ। हे महाभाग! वे विदेह राजा जनक तुम्हारे मोहका नाश कर देंगे; क्योंकि वे सत्यसिन्धु तथा धर्मात्मा हैं॥ ४५-४६॥

हे पुत्र! उन राजाके पास जाकर तुम अपना सन्देह दूर करो और वर्णाश्रम-धर्मके रहस्यको उनसे यथार्थरूपमें पूछो॥ ४७॥

वे राजर्षि जीवन्मुक्त, ब्रह्मज्ञानका चिन्तन करनेवाले, पवित्र, यथार्थ वक्ता, शान्तचित्त तथा सदा योगप्रिय भी हैं॥ ४८॥

सूतजी बोले—परम तेजस्वी उन व्यासजीका वचन सुनकर अरणिसे उत्पन्न महातेजस्वी शुकदेवजीने उत्तर दिया। हे धर्मात्मन्! आपके द्वारा यह जो कहा जा रहा है, उससे मेरे चित्तमें शंका उठती है कि कहीं यह दम्भ तो नहीं। जीवन्मुक्त तथा विदेह होते हुए भी राजा जनक हर्षके साथ कैसे राज्य करते हैं? हे पिताजी! यह बात तो वैसे ही असम्भव है जैसे किसी वन्ध्याको पुत्र हो! अतः वे राजा जनक राज्य करते हुए भी विदेह कैसे हैं? यह मुझे अद्भुत सन्देह हो रहा है!॥ ४९—५१॥

अब मैं नृपश्रेष्ठ विदेह जनकको देखना चाहता हूँ कि वे जलमें कमलपत्रकी भाँति संसारमें कैसे रहते हैं? हे तात! उनके विदेह होनेके विषयमें मुझे बड़ा सन्देह हो रहा है! हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ! सौगतोंकी भाँति वे भी मोक्षकी एक दूसरी परिभाषा तो नहीं हैं!॥ ५२-५३॥

हे महामते! भला भोगा हुआ भोग अभोग और किया हुआ कर्म अकर्म कैसे हो सकता है? इन्द्रियोंका सहज व्यवहार कैसे छोड़ा जा सकता है?॥ ५४॥

एक पुत्रका अपनी माता, पत्नी, बहन तथा किसी असती स्त्रीके साथ भेद-अभेदका सम्बन्ध क्यों नहीं होगा? और ऐसा होनेपर जीवन्मुक्तता कैसी?॥ ५५॥

यदि जिह्वा कटु, क्षार, तीक्ष्ण, कषाय, मधुर आदि स्वादोंको जानती है तो वे अच्छे-अच्छे पदार्थोंका रसास्वादन करते ही होंगे। यदि शीत, उष्ण, सुख-दुःखका परिज्ञान उन्हें होता होगा तो भला यह मुक्तता कैसी? हे तात! मुझे यह अद्भुत सन्देह हो रहा है!॥ ५६-५७॥

शत्रु और मित्रको पहचानकर उनके साथ वैर अथवा प्रीतिका व्यवहार किया जाता है, तो राज्यसिंहासनपर बैठे हुए राजा जनक शत्रुता या मित्रताका व्यवहार क्या नहीं रखते होंगे? उनके राज्यमें साधु और चोर समान कैसे समझे जाते हैं? यदि उनके प्रति समान बुद्धि नहीं है, तब भला वह जीवन्मुक्तता कैसी?॥ ५८-५९॥

ऐसा जीवन्मुक्त कोई राजा मेरे द्वारा पहले देखा नहीं गया। हे तात! यह बहुत बड़ी शंका है कि वे राजा जनक घरमें रहकर भी मुक्त कैसे हैं? उन राजाके विषयमें सुनकर उन्हें देखनेकी बड़ी लालसा उत्पन्न हो गयी है। अतः सन्देह-निवृत्तिके लिये मैं मिथिलापुरी जा रहा हूँ॥ ६०-६१॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत प्रथम स्कन्धका 'शुकके प्रति व्यासोपदेशवर्णन' नामक सोलहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १६॥

सत्रहवाँ अध्याय

शुकदेवजीका राजा जनकसे मिलनेके लिये मिथिलापुरीको प्रस्थान तथा राजभवनमें प्रवेश

सूतजी बोले—[हे मुनियो!] यह कहकर महात्मा पुत्र शुकदेवजी अपने पिताके चरणोंपर गिर पड़े तथा हाथ जोड़कर चलनेकी इच्छासे बोले—हे महाभाग! अब आपसे आज्ञा चाहता हूँ। मुझे आपका वचन स्वीकार्य है। अतः मैं महाराज जनकद्वारा पालित मिथिलापुरी देखना चाहता हूँ॥ १-२॥

राजा जनक दण्ड दिये बिना ही कैसे राज्य चलाते हैं? क्योंकि यदि दण्डका भय प्रजाओंको न हो तो लोग धर्मका पालन नहीं करेंगे॥ ३॥

मनु आदिके द्वारा धर्माचरणका मूल कारण सदा दण्ड-विधान ही कहा गया है। इस राजधर्मका निर्वाह बिना दण्डके कैसे हो सकेगा? हे पिताजी! इस विषयमें मुझे महान् सन्देह है। हे महाभाग! यह बात वैसी ही अनर्गल प्रतीत होती है, जैसे कोई कहे कि मेरी यह माता वन्ध्या है। हे परन्तप! अब मैं आपसे अनुमति लेता हूँ और यहाँसे जा रहा हूँ॥ ४-५॥

सूतजी बोले—इस प्रकार शुकदेवजीको जनकपुर जानेका इच्छुक देखकर व्यासजीने अपने ज्ञानी एवं निःस्पृह पुत्रका दृढ़ आलिंगन करके कहा—॥ ६॥

व्यासजी बोले—हे महामते! हे पुत्र! तुम्हारा कल्याण हो, हे शुक! तुम दीर्घायु होओ। हे तात! तुम मुझे यह सत्य वचन देकर सुखपूर्वक जाओ कि यहाँसे जाकर मेरे इस उत्तम आश्रममें पुनः आओगे। हे पुत्र! तुम वहाँसे कहीं और कभी भी मत चले जाना॥ ७-८॥

हे पुत्र! मैं तुम्हारा मुखकमल देखकर ही सुखपूर्वक जीता हूँ और तुम्हें न देखनेपर दुःखी रहता हूँ। हे सुत! तुम्हीं मेरे प्राण हो॥ ९॥

हे पुत्र! वहाँ राजर्षि जनकसे मिलकर और अपना सन्देह दूर करके फिर उसके बाद यहाँ आकर वेदाध्ययनमें रत रहते हुए सुखपूर्वक रहो॥ १०॥

सूतजी बोले—व्यासजीके ऐसा कहनेपर शुकदेवजी अपने पिताको प्रणाम तथा उनकी प्रदक्षिणा करके शीघ्र ही इस प्रकार चल पड़े जैसे धनुषसे छूटा हुआ बाण॥ ११॥

मार्गमें चलते हुए अनेक समृद्धिशाली देशों, नागरिकों, वनों, वृक्षों, फले-फूले खेतों, तप करते हुए तपस्वीजनों, दीक्षा लिये हुए याजकजनों, योगाभ्यासमें तत्पर योगीजनों, वनमें रहनेवाले वानप्रस्थों, वैष्णव, पाशुपत, शैव, शाक्त एवं सूर्योपासक और अनेक धर्मावलम्बियोंको देखकर वे शुकदेवमुनि अति विस्मयमें पड़ गये॥ १२—१४॥

इस प्रकार वे महामति शुकदेवजी लगभग दो वर्षोंमें मेरुपर्वत और एक वर्षमें हिमालयको पार करके मिथिलादेशमें पहुँचे॥ १५॥

जब वे मिथिलामें प्रविष्ट हुए, तब उन्होंने वहाँकी श्रेष्ठ ऐश्वर्यसम्पदाको देखा तथा वहाँकी सारी प्रजाको सुखी एवं सदाचारसम्पन्न देखा॥ १६॥

वहाँ द्वारपालने उन्हें रोका और पूछा—तुम कौन हो और कहाँसे आये हो, तुम्हारा क्या कार्य है; बताओ। ऐसा पूछनेपर भी शुकदेवजी मौन रहे, कुछ बोले नहीं। वे नगरद्वारसे बाहर जाकर स्थाणुकी तरह खड़े हो गये और थोड़ी देरमें आश्चर्यचकित होकर हँसते हुए वहीं स्थित हो गये, पर किसीसे कुछ बोले नहीं॥ १७-१८॥

द्वारपालने पूछा—हे ब्रह्मन्! बोलिये, आप गूँगे तो नहीं हैं। आपका किस हेतु यहाँ आना हुआ है? मेरे विचारमें तो कोई कहीं भी निष्प्रयोजन नहीं जाता॥ १९॥

हे विप्र! इस नगरमें राजाकी आज्ञा पाकर ही कोई प्रवेश कर सकता है। अज्ञात कुल तथा शीलवाले व्यक्तिका प्रवेश यहाँ कदापि नहीं होता है॥ २०॥

हे मानद! आप निश्चय ही तेजस्वी एवं वेदवेत्ता ब्राह्मण प्रतीत हो रहे हैं। इसलिये आप अपने कुल तथा प्रयोजनके विषयमें मुझे बता दें और फिर अपने इच्छानुसार

चले जायँ॥ २१॥

शुकदेवजी बोले—मैं जिस कार्यके लिये यहाँ

आया था, वह तुम्हारे कथनमात्रसे ही पूरा हो गया। मैं विदेहनगर देखने आया था, परंतु यहाँ तो प्रवेश ही दुर्लभ है॥ २२॥

मुझ अज्ञानीकी यह भूल थी, जो दो पर्वतोंको लाँघकर महाराजसे मिलनेकी इच्छासे घूमते हुए यहाँ चला आया॥ २३॥

मैं तो स्वयं अपने पिताद्वारा ही ठगा गया हूँ। इसमें किसी अन्यको ही क्या दोष दिया जाय? अथवा हे महाभाग! यह मेरे दुर्भाग्यका ही दोष है, जिसके कारण इस भूमिपर मुझे इतना चक्कर काटना पड़ा॥ २४॥

इस संसारमें लोगोंका भ्रमण करनेका उद्देश्य धनोपार्जन ही है, किंतु मुझे उसकी कोई इच्छा नहीं है। मैं तो केवल भ्रमवश ही यहाँ आ गया हूँ॥ २५॥

आशारहित पुरुषको ही सर्वदा सुख प्राप्त होता है, यदि वह मोहमें न पड़े। किंतु हे महाभाग! मैं तो निराश होकर भी, न जानें क्यों इस मोहसागरमें निमग्न हो रहा हूँ!॥ २६॥

कहाँ सुमेरुपर्वत और कहाँ यह मिथिलापुरी! पैदल ही चलकर मैं यहाँ आया हूँ। इस परिश्रमका फल मुझे क्या मिला? प्रारब्धने ही मुझे ठगा है। प्रारब्धका भोग अवश्य ही भोगना पड़ता है, चाहे वह शुभ हो या अशुभ। उद्योग भी तो सदा उसी दैवके अधीन ही रहता है; वह जैसा चाहे वैसा कराता है॥ २७-२८॥

यहाँ न कोई तीर्थ है न ज्ञानप्राप्ति होनी है, जिसके लिये यह मेरा परिश्रम हुआ। मैं तो महाराज जनकका 'विदेह' नाम सुनकर उत्सुकतासे यहाँ आया था, किंतु उनके नगरमें तो प्रवेश करना भी निषिद्ध है॥ २९॥

इतना कहकर शुकदेवजी चुप हो गये और मौन होकर खड़े रहे। द्वारपालको लगा कि ये कोई ज्ञानी श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं। तब उसने वहाँ खड़े मुनिसे शान्तिपूर्वक निवेदन किया—हे द्विजश्रेष्ठ! आपका जहाँ कार्य हो, वहाँ यथेष्ट चले जाइये॥ ३०-३१॥

हे ब्रह्मन्! मैंने जो आपको रोका था, वह मेरा अपराध हुआ। उसके लिये आप क्षमा करें; क्योंकि हे महाभाग! मुक्तजनोंका तो क्षमा ही बल है॥ ३२॥

शुकदेवजी बोले—हे द्वारपाल! इसमें तुम्हारा क्या दोष है; तुम तो सर्वदा पराधीन हो। सेवकको तो स्वामीकी आज्ञाका यथोचित पालन करना ही चाहिये। तुमने मुझे जो रोका इसमें राजाका भी कोई दोष नहीं है; क्योंकि बुद्धिमानोंको चोर और शत्रुओंका सम्यक् ज्ञान रखना चाहिये॥ ३३-३४॥

यह सर्वथा मेरा ही दोष है, जो मैं यहाँ आ गया। [बिना बुलाये] दूसरेके घर जाना लघुताका कारण होता है॥ ३५॥

द्वारपालने कहा—हे विप्र! सुख क्या है, दुःख क्या है, कल्याण चाहनेवाले पुरुषका क्या कर्तव्य है? शत्रु कौन है और मित्र कौन है? आप मुझे यह सब बताइये॥ ३६॥

शुकदेवजी बोले—सभी लोकोंमें सर्वत्र द्वैविध्य रहता है। इसलिये मनुष्य भी दो प्रकारके हैं—एक रागी और दूसरा विरागी। उन दोनोंके मन भी दो प्रकारके होते हैं। उनमें भी विरागी तीन प्रकारके होते हैं—ज्ञात, अज्ञात एवं मध्यम। रागी भी दो प्रकारके कहे गये हैं—मूर्ख तथा चतुर। चातुर्य भी दो प्रकारका कहा गया

है—शास्त्रजनित तथा बुद्धिजनित। इसी प्रकार लोकमें बुद्धि भी युक्त और अयुक्त-भेदसे दो प्रकारकी होती है॥ ३७—३९॥

द्वारपालने कहा— हे विद्वन्! हे विप्रवर! आपने जो कुछ कहा है, उसे मैं भलीभाँति नहीं समझ पाया। अतएव हे श्रेष्ठ! आप फिरसे विस्तारपूर्वक इस विषयको यथार्थरूपसे समझाइये॥ ४०॥

शुकदेवजी बोले— इस संसारमें जिसको राग है, वह निश्चय ही रागी कहलाता है। उस रागीको अनेक प्रकारके सुख एवं दुःख आते ही रहते हैं॥ ४१॥

धन, पुत्र, कलत्र, मान-प्रतिष्ठा और विजय प्राप्त करके ही सुख प्राप्त होता है। इनके न मिलनेपर प्रतिक्षण महान् दुःख होता ही है॥ ४२॥

अतः जैसे सुख प्राप्त हो सके, वैसा उपाय करना चाहिये और सुखके साधनका संग्रह करना चाहिये। जो उस सुखमें विघ्न डाले, उसे शत्रु समझना चाहिये। जो रागी पुरुषके सुखको सर्वदा बढ़ाये, वही मित्र है। चतुर मनुष्य मोहमें फँसता नहीं है; किंतु मूर्ख सर्वत्र आसक्त रहता है॥ ४३-४४॥

विरागी तथा आत्माराम पुरुषको एकान्तवास, आत्म-चिन्तन तथा वेदान्तशास्त्रका अनुशीलन करनेसे ही सुख होता है। सांसारिक विषयोंकी चर्चा आदि—यह सब उनके लिये दुःखरूप है। कल्याण चाहनेवाले विद्वान् पुरुषके लिये बहुत शत्रु हैं; काम, क्रोध, प्रमाद आदि अनेक प्रकारके शत्रु बताये गये हैं; किंतु व्यक्तिका सच्चा बन्धु तो एकमात्र सन्तोष ही है; तीनों लोकोंमें दूसरा कोई भी नहीं है॥ ४५—४७॥

सूतजी बोले— शुकदेवजीकी बात सुनकर उन्हें ज्ञानी द्विज समझकर उसने शुकदेवजीको एक अत्यन्त रमणीय कक्षसे प्रवेश कराया॥ ४८॥

तीन प्रकारके नागरिकजनोंसे भरे हुए; अनेक प्रकारके क्रय-विक्रयकी वस्तुओंसे सजी दूकानोंवाले; राग-द्वेष, काम, लोभ, मोहसे युक्त एवं परस्पर वाद-विवादमें संलग्न श्रेष्ठीजनोंसे सुशोभित और धन-धान्यसे परिपूर्ण विशाल नगरको देखते हुए शुकदेवजी चले। इस तरह तीन प्रकारके लोगोंको देखते हुए शुकदेवजी राजभवनकी ओर बढ़े। इस प्रकार द्वितीय सूर्यके समान परम तेजस्वी शुकदेवजी द्वारपर पहुँचे; द्वारपालने उन्हें अन्दर जानेसे रोका। तब वे काष्ठके समान वहीं द्वारपर खड़े हो गये और मोक्षसम्बन्धी विषयपर विचार करने लगे॥ ४९—५२॥

धूप तथा छायाको समान-समझनेवाले महातपस्वी शुकदेवजी वहाँ एकान्तमें ध्यान करके इस प्रकार खड़े रहे मानो कोई अचल स्तम्भ हो॥ ५३॥

थोड़ी देर बाद राजमन्त्रीने हाथ जोड़े हुए स्वयं आकर उन्हें राजभवनके दूसरे कक्षमें प्रवेश कराया॥ ५४॥

वहाँ एक दिव्य रमणीय उपवन था, जिसमें विविध प्रकारके पुष्पोंसे लदे दिव्य वृक्ष सुशोभित हो रहे थे। उस वनको दिखाकर मन्त्रीने उनका यथोचित आतिथ्य सत्कार किया। वहाँ राजाकी सेवा करनेवाली अनेक वारांगनाएँ थीं, वे नृत्य-गानमें कुशल तथा कामशास्त्रमें निपुण थीं। शुकदेवजीकी सेवाके लिये उन्हें आदेश देकर राजमन्त्री उस भवनसे निकल गये और शुकदेवजी वहीं स्थित रहे। उन वारांगनाओंने परम भक्तिके साथ उनकी पूजा की और देशकालानुसार उपलब्ध अनेक प्रकारके भोजनसे उन्हें सन्तुष्ट किया॥ ५५—५८॥

तत्पश्चात् अन्तःपुरनिवासिनी कामिनी स्त्रियोंने उन्हें अन्तःपुरका वन दिखाया, जो अत्यन्त रमणीय था। वे युवा, रूपवान्, कान्तिमान्, मृदुभाषी एवं मनोरम थे। दूसरे कामदेवके समान उन शुकदेवजीको देखकर वे सभी मुग्ध हो गयीं॥ ५९-६०॥

मुनिको जितेन्द्रिय जानकर वे सब उनकी परिचर्या करने लगीं। अरणिनन्दन शुद्धात्मा शुकदेवजीने उन्हें माताके समान समझा॥ ६१॥

वे आत्माराम तथा क्रोधको जीतनेवाले शुकदेवजी न हर्षित होते थे और न दुःखी। उनकी चेष्टाओंको देखकर भी वे शान्तचित्त होकर स्थित रहे॥ ६२॥

तब उन स्त्रियोंने उनके लिये सुरम्य, कोमल तथा

बहुमूल्य आस्तरण और नानाविध उपकरणोंसे सुसज्जित शय्या बिछायी। शुकदेवजी हाथ-पाँव धोकर हाथमें कुश लेकर सावधान हो सायंकालीन सन्ध्योपासन सम्पन्न करके भगवान्‌के ध्यानमें लग गये॥ ६३-६४॥

इस प्रकार एक प्रहरतक ध्यानावस्थित होकर वे शयन करने लगे। दो प्रहर शयन करके पुनः वे शुकदेवजी उठ गये। रात्रिके चौथे प्रहरमें वे पुनः ध्यानमें स्थित रहे; तदनन्तर स्नान करके प्रातःकालीन क्रियाएँ सम्पन्न करके पुनः समाधिस्थ हो गये॥ ६५-६६॥
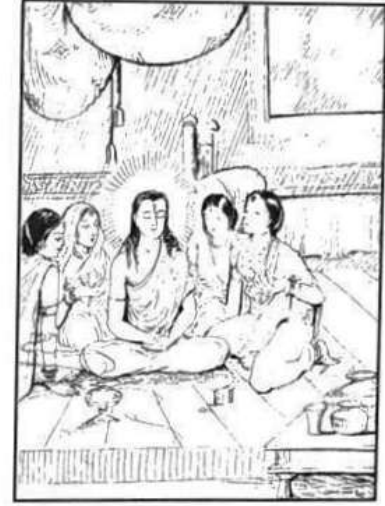
॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत प्रथम स्कन्धका 'शुकका राजमन्दिरप्रवेशवर्णन' नामक सत्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १७॥

अठारहवाँ अध्याय

शुकदेवजीके प्रति राजा जनकका उपदेश

सूतजी बोले—शुकदेवजीको आया हुआ सुनकर पवित्रात्मा राजा जनक अपने पुरोहितको आगे करके मन्त्रियोंसहित उन गुरुपुत्रके पास गये॥ १॥

महाराज जनकने उन्हें बड़े आदरसे उत्तम आसन देकर विधिवत् सत्कार करनेके पश्चात् एक दूध देनेवाली गौ प्रदान करके उनसे कुशल पूछा॥ २॥

शुकदेवजीने भी राजाकी पूजाको यथाविधि स्वीकार किया और अपना कुशल बताकर राजासे भी कुशल-मंगल पूछा॥ ३॥

इस प्रकार कुशल-प्रश्न करके सुखदायी आसनपर बैठे हुए शान्तचित्तवाले व्यासपुत्र शुकदेवजीसे महाराज जनकने पूछा—हे महाभाग! मेरे यहाँ आप निःस्पृहका आगमन किस कारण हुआ? हे मुनिश्रेष्ठ! उस प्रयोजन को बताइये?॥ ४-५॥

शुकदेवजी बोले—महाराज! मेरे पिता व्यासजीने मुझसे कहा कि विवाह कर लो; क्योंकि सब आश्रमोंमें गृहस्थ-आश्रम ही श्रेष्ठ है। गुरुरूप पिताकी आज्ञाको बन्धनकारक मानकर मैंने उसे स्वीकार नहीं किया। उन्होंने समझाया कि गृहस्थाश्रम बन्धन नहीं है, फिर भी मैंने उसे स्वीकार नहीं किया॥ ६-७॥

इस प्रकार मुझे संशययुक्त चित्तवाला समझकर मुनिश्रेष्ठ व्यासने तथ्ययुक्त वचन कहा—तुम मिथिला चले जाओ, खेद न करो। वहाँ राजर्षि जनक रहते हैं, वे याज्ञिक एवं जीवन्मुक्त राजा हैं। संसारमें विदेह नामसे विख्यात वे वहाँ निष्कण्टक राज्य कर रहे हैं॥ ८-९॥

हे पुत्र! महाराज जनक राज्य करते हुए भी मायाके जालमें नहीं बँधते, तब हे परन्तप! तुम वनवासी होते हुए भी क्यों भयभीत हो रहे हो?॥ १०॥

उन नृपश्रेष्ठ विदेहको देखो और अपने मनमें उठते

हुए मोहका त्याग करो। हे महाभाग! विवाह करो, अन्यथा जाकर उन राजासे ही पूछो। वे राजा तुम्हारे मनमें उत्पन्न सन्देहका समाधान कर देंगे। तत्पश्चात् हे पुत्र! उनकी बात सुनकर तुम शीघ्र ही मेरे पास चले आना॥ ११-१२॥

हे महाराज! मैं उन्हींके आदेशसे आपकी पुरीमें आया हूँ। हे राजेन्द्र! हे अनघ! मैं मोक्षका अभिलाषी हूँ, अत: जो कार्य मेरे लिये उचित हो, वह बताइये॥ १३॥

हे राजेन्द्र! तप, तीर्थ, व्रत, यज्ञ, स्वाध्याय, तीर्थसेवन और ज्ञान—इनमेंसे जो मोक्षका साक्षात् साधन हो, वह मुझे बताइये॥ १४॥

जनकजी बोले—मोक्षमार्गावलम्बी विप्रको जो करना चाहिये, उसे सुनिये। उपनयनसंस्कारके बाद सर्वप्रथम वेदशास्त्रका अध्ययन करनेहेतु गुरुके सांनिध्यमें रहना चाहिये। वहाँ वेद-वेदान्तोंका अध्ययन करके दीक्षान्त गुरुदक्षिणा देकर वापस लौटे मुनिको विवाह करके पत्नीके साथ गृहस्थीमें रहना चाहिये। [गृहस्थाश्रममें रहते हुए] न्यायोपार्जित धनसे सर्वदा सन्तुष्ट रहे और किसीसे कोई आशा न रखे। पापोंसे मुक्त होकर अग्निहोत्र आदि कर्म करते हुए सत्यवचन बोले और [मन, वचन, कर्मसे सदा] पवित्र रहे। पुत्र-पौत्र हो जानेपर [समयानुसार] वानप्रस्थ-आश्रममें रहे। वहाँ तपश्चर्याद्वारा [काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह और मात्सर्य—इन] छहों शत्रुओंपर विजय प्राप्त करके अपनी स्त्रीरक्षाका भार पुत्रको सौंप देनेके पश्चात् वह धर्मात्मा सब अग्नियोंका अपनेमें न्यायपूर्वक आधान कर ले और सांसारिक विषयोंके भोगसे शान्ति मिल जानेके बाद हृदयमें विशुद्ध वैराग्य उत्पन्न होनेपर चौथे आश्रमका आश्रय ले ले। विरक्तको ही संन्यास लेनेका अधिकार है, अन्य किसीको नहीं—यह वेदवाक्य सर्वथा सत्य है, असत्य नहीं—ऐसा मेरा मानना है॥ १५—२०॥

हे शुकदेवजी! वेदोंमें कुल अड़तालीस संस्कार कहे गये हैं। उनमें गृहस्थके लिये चालीस संस्कार महात्माओंने बताये हैं। मुमुक्षुके लिये शम, दम आदि आठ संस्कार कहे गये हैं। एक आश्रमसे ही [क्रमशः] दूसरे आश्रममें जाना चाहिये, ऐसा शिष्टजनोंका आदेश है॥ २१-२२॥

शुकदेवजी बोले—चित्तमें वैराग्य और ज्ञान-विज्ञान उत्पन्न हो जानेपर अवश्य ही गृहस्थादि आश्रमोंमें रहना चाहिये अथवा वनोंमें॥ २३॥

जनकजी बोले—हे मानद! इन्द्रियाँ बड़ी बलवान् होती हैं, वे वशमें नहीं रहतीं। वे अपरिपक्व बुद्धिवाले मनुष्यके मनमें नाना प्रकारके विकार उत्पन्न कर देती हैं॥ २४॥

यदि मनुष्यके मनमें भोजनकी, शयनकी, सुखकी और पुत्रकी इच्छा बनी रहे तो वह संन्यासी होकर भी इन विकारोंके उपस्थित होनेपर क्या कर पायेगा?॥ २५॥

वासनाओंका जाल बड़ा ही कठिन होता है, वह शीघ्र नहीं मिटता। इसलिये उसकी शान्तिके लिये मनुष्यको क्रमसे उसका त्याग करना चाहिये॥ २६॥

ऊँचे स्थानपर सोनेवाला मनुष्य ही नीचे गिरता है, नीचे सोनेवाला कभी नहीं गिरता। यदि संन्यास-ग्रहण कर लेनेपर भ्रष्ट हो जाय तो पुनः वह कोई दूसरा मार्ग नहीं प्राप्त कर सकता॥ २७॥

जिस प्रकार चींटी वृक्षकी जड़से चढ़कर शाखापर चढ़ जाती है और वहाँसे फिर धीरे-धीरे सुखपूर्वक पैरोंसे चलकर फलतक पहुँच जाती है। विघ्न-शंकाके भयसे कोई पक्षी बड़ी तीव्र गतिसे आसमानमें उड़ता है और [परिणामतः] थक जाता है, किंतु चींटी सुखपूर्वक विश्राम ले-लेकर [अपने अभीष्ट स्थानपर] पहुँच जाती है॥ २८-२९॥

मन अत्यन्त प्रबल है; यह अजितेन्द्रिय पुरुषोंके द्वारा सर्वथा अजेय है। इसलिये आश्रमोंके अनुक्रमसे ही इसे क्रमशः जीतनेका प्रयत्न करना चाहिये॥ ३०॥

गृहस्थ-आश्रममें रहते हुए भी जो शान्त, बुद्धिमान् एवं आत्मज्ञानी होता है, वह न तो प्रसन्न होता है और न खेद करता है। वह हानि-लाभमें समान भाव रखता है॥ ३१॥

जो पुरुष शास्त्रप्रतिपादित कर्म करता हुआ, सभी

प्रकारकी चिन्ताओंसे मुक्त रहता हुआ आत्मचिन्तनसे सन्तुष्ट रहता है; वह नि:सन्देह मुक्त हो जाता है॥ ३२॥

हे अनघ! देखिये, मैं राजकार्य करता हुआ भी जीवन्मुक्त हूँ; मैं अपने इच्छानुसार सब काम करता हूँ, किंतु मुझे शोक या हर्ष कुछ भी नहीं होता॥ ३३॥

जिस प्रकार मैं अनेक भोगोंको भोगता हुआ तथा अनेक कार्योंको करता हुआ भी अनासक्त हूँ, उसी प्रकार हे अनघ! आप भी मुक्त हो जाइये॥ ३४॥

ऐसा कहा भी जाता है कि जो यह दृश्य जगत् दिखायी देता है, उसके द्वारा अदृश्य आत्मा कैसे बन्धनमें आ सकता है? पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश—ये पंचमहाभूत और गन्ध, रस, रूप, स्पर्श एवं शब्द—ये उनके गुण दृश्य कहलाते हैं॥ ३५॥

आत्मा अनुमानगम्य है और कभी भी प्रत्यक्ष नहीं होता। ऐसी स्थितिमें हे ब्रह्मन्! वह निरंजन एवं निर्विकार आत्मा भला बन्धनमें कैसे पड़ सकता है? हे द्विज! मन ही महान् सुख-दु:खका कारण है, इसीके निर्मल होनेपर सब कुछ निर्मल हो जाता है॥ ३६-३७॥

सभी तीर्थोंमें घूमते हुए वहाँ बार-बार स्नान करके भी यदि मन निर्मल नहीं हुआ तो वह सब व्यर्थ हो जाता है। हे परन्तप! बन्धन तथा मोक्षका कारण न यह देह है, न जीवात्मा है और न ये इन्द्रियाँ ही हैं, अपितु मन ही मनुष्योंके बन्धन एवं मुक्तिका कारण है॥ ३८-३९॥

आत्मा तो सदा ही शुद्ध तथा मुक्त है, वह कभी बँधता नहीं है। अत: बन्धन और मोक्ष तो मनके भीतर हैं, मनकी शान्तिसे ही शान्ति है॥ ४०॥

शत्रुता, मित्रता या उदासीनताके सभी भेदभाव भी मनमें ही रहते हैं। इसलिये एकात्मभाव होनेपर यह भेदभाव नहीं रहता; यह तो द्वैतभावसे ही उत्पन्न होता है॥ ४१॥

'मैं जीव सदा ही ब्रह्म हूँ'—इस विषयमें और विचार करनेकी आवश्यकता ही नहीं है। भेदबुद्धि तो संसारमें आसक्त रहनेपर ही होती है॥ ४२॥

हे महाभाग! बन्धनका मुख्य कारण अविद्या ही है। इस अविद्याको दूर करनेवाली विद्या है। इसलिये ज्ञानी पुरुषोंको चाहिये कि वे सदा विद्या तथा अविद्याका अनुसन्धानपूर्वक अनुशीलन किया करें॥ ४३॥

जिस प्रकार धूपके बिना छायाके सुखका अनुभव नहीं होता, उसी प्रकार अविद्याके बिना विद्याका अनुभव नहीं किया जा सकता॥ ४४॥

गुणोंमें गुण, पंचभूतोंमें पंचभूत तथा इन्द्रियोंके विषयोंमें इन्द्रियाँ स्वयं रमण करती हैं; इसमें आत्माका क्या दोष है?॥ ४५॥

हे पवित्रात्मन्! सबकी सुरक्षाके लिये वेदोंमें सब प्रकारसे मर्यादाकी व्यवस्था की गयी है। यदि ऐसा न होता तो नास्तिकोंकी भाँति सब धर्मोंका नाश हो जाता। धर्मके नष्ट हो जानेपर सब कुछ नष्ट हो जायगा और सब वर्णोंकी आचार-परम्पराका उल्लंघन हो जायगा। इसलिये वेदोपदिष्ट मार्गपर चलनेवालोंका कल्याण होता है॥ ४६-४७॥

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! आपने जो बात कही उसे सुनकर भी मेरा सन्देह बना हुआ है; वह किसी प्रकार भी दूर नहीं होता॥ ४८॥

हे भूपते! वेदधर्मोंमें हिंसाका बाहुल्य है, उस हिंसामें अनेक प्रकारके अधर्म होते हैं। [ऐसी दशामें] वेदोक्त धर्म मुक्तिप्रद कैसे हो सकता है? हे राजन्! सोमरस-पान, पशुहिंसा और मांस-भक्षण तो स्पष्ट ही अनाचार है। सौत्रामणियज्ञमें तो प्रत्यक्षरूपसे सुराग्रहणका वर्णन किया गया है। इसी प्रकार द्यूतक्रीड़ा एवं अन्य अनेक प्रकारके व्रत बताये गये हैं॥ ४९—५१॥

सुना जाता है कि प्राचीन कालमें शशबिन्दु नामके एक श्रेष्ठ राजा थे। वे बड़े धर्मात्मा, यज्ञपरायण, उदार एवं सत्यवादी थे। वे धर्मरूपी सेतुके रक्षक तथा कुमार्गगामी जनोंके नियन्ता थे। उन्होंने पुष्कल दक्षिणावाले अनेक यज्ञ सम्पादित किये थे॥ ५२-५३॥

[उन यज्ञोंमें] पशुओंके चर्मसे विन्ध्यपर्वतके समान ऊँचा पर्वत-सा बन गया। मेघोंके जल बरसानेसे चर्मण्वती नामकी शुभ नदी बह चली॥ ५४॥

वे राजा भी दिवंगत हो गये, किंतु उनकी कीर्ति भूमण्डलपर अचल हो गयी। जब इस प्रकारके धर्मोंका वर्णन वेदमें है, तब हे राजन्! मेरी श्रद्धाबुद्धि उनमें नहीं है॥ ५५॥

स्त्रीके साथ भोगमें पुरुष सुख प्राप्त करता है और उसके न मिलनेपर वह बहुत दु:खी होता है तो ऐसी दशामें भला वह जीवन्मुक्त कैसे हो सकेगा?॥ ५६॥

जनकजी बोले—यज्ञोंमें जो हिंसा दिखायी देती है, वह वास्तवमें अहिंसा ही कही गयी है; क्योंकि जो हिंसा उपाधियोगसे होती है वही हिंसा कहलाती है, अन्यथा नहीं—ऐसा शास्त्रोंका निर्णय है॥ ५७॥

जिस प्रकार [गीली] लकड़ीके संयोगसे अग्निसे धुआँ निकलता है, उसके अभावमें उस अग्निमें धुँआ नहीं दिखायी देता, उसी प्रकार हे मुनिवर! वेदोक्त हिंसाको भी आप अहिंसा ही समझिये। रागीजनोंद्वारा की गयी हिंसा ही हिंसा है, किंतु अनासक्त जनोंके लिये वह हिंसा नहीं कही गयी है॥ ५८-५९॥

जो कर्म रागरहित तथा अहंकाररहित होकर किया जाता हो, उस कर्मको वैदिक विद्वान् मनीषीजन न किये हुएके समान ही कहते हैं॥ ६०॥

हे द्विजश्रेष्ठ! रागी गृहस्थोंके द्वारा यज्ञमें जो हिंसा होती है, वही हिंसा है। हे महाभाग! जो कर्म रागरहित तथा अहंकारशून्य होकर किया जाता है, वह जितात्मा मुमुक्षुजनोंके लिये अहिंसा ही है॥ ६१-६२॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत प्रथम स्कन्धका 'शुकके प्रति जनकोपदेशवर्णन' नामक अठारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १८॥

उन्नीसवाँ अध्याय

शुकदेवजीका व्यासजीके आश्रममें वापस आना, विवाह करके सन्तानोत्पत्ति करना तथा परम सिद्धिकी प्राप्ति करना

शुकदेवजी बोले—हे महाराज! मेरे हृदयमें यह शंका हो रही है कि मायामें लिप्त रहते हुए कोई मनुष्य नि:स्पृह कैसे हो सकता है? शास्त्रका ज्ञान प्राप्त करके नित्यानित्यका विचार करनेपर भी चित्तसे मोह नहीं दूर होता। तब भला वह मनुष्य मुक्त कैसे हो सकेगा?॥ १-२॥

मनुष्यके मनमें स्थित मोहको दूर करनेके लिये केवल शास्त्रबोध ही समर्थ नहीं हो सकता, जैसे केवल दीप जलानेकी बात करनेसे अन्धकार दूर नहीं होता। अत: बुद्धिमान् मनुष्योंको चाहिये कि वे कभी किसीसे द्वेष-भाव न रखें, परंतु हे नृपश्रेष्ठ! गृहस्थसे वह कैसे सम्भव है?॥ ३-४॥

अभी भी आपकी धनप्राप्तिकी कामना, राज्यसुख तथा युद्धमें विजय प्राप्त करनेकी अभिलाषा शान्त नहीं हुई है, तब आप जीवन्मुक्त कैसे हो सकते हैं?॥ ५॥

अभी भी चोरोंके प्रति चौरबुद्धि तथा तपस्वीके प्रति साधुबुद्धि आपकी है ही। अपने-परायेका भेदभाव भी अभी आपमें है, तो फिर हे राजन्! आप विदेह कैसे?॥ ६॥

अभी आप कटु, तिक्त, कसैले एवं खट्टे रसोंका तथा भले-बुरेका ज्ञान रखते ही हैं। हे राजन्! आपका चित्त शुभ कर्मोंमें रमता है, अशुभ कर्मोंमें नहीं। जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति—ये अवस्थाएँ अभी आपको समयानुसार होती ही हैं; तब भला आपको तुरीयावस्था कैसे प्राप्त होती होगी?॥ ७-८॥

हे राजन्! घोड़े, रथ, हाथी तथा पैदल सैनिक—ये सब मेरे अधीन हैं और मैं इन सबका स्वामी हूँ—ऐसा आप अपनेको मानते हैं या नहीं? आप मधुर भोजनको प्रसन्नतापूर्वक अथवा बेमनसे खाते ही होंगे। हे नृपश्रेष्ठ! आप माला और सर्पमें क्या समान दृष्टिवाले हैं?॥ ९-१०॥

हे राजन्! विमुक्त पुरुष तो वह कहलाता है, जो मिट्टीके ढेले और स्वर्णको समान समझता हो, सब जीवोंमें एकात्मबुद्धि रखता हो तथा जीवमात्रका उपकार करता हो॥ ११॥

मेरा मन घर-स्त्री आदिमें कभी नहीं लगता। इसलिये अकेले ही नि:स्पृह भावसे मैं सदा विचरण करता रहूँ—यही मेरा विचार है॥ १२॥

नि:संग, ममतारहित और शान्त होकर केवल पत्र, मूल, फल इत्यादि ग्रहण करता हुआ मैं निर्द्वन्द्व एवं अपरिग्रही होकर मृगकी भाँति स्वच्छन्द विचरण करूँगा॥ १३॥

हे पार्थिव! गृह, धन तथा रूपवती स्त्रीसे मुझ विरक्तचित्त और गुणातीतका क्या प्रयोजन है?॥ १४॥

आप अनेक प्रकारकी राग-द्वेषयुक्त बातें सोचते हैं, फिर भी 'मैं विमुक्त हूँ'—ऐसा आप कहते हैं। यह सब मुझे तो केवल आपका दम्भ ही जान पड़ता है। आपको कभी शत्रुकी, कभी धनकी तथा कभी सेनाकी चिन्ता रहती ही है, तब हे राजन्! आप निश्चिन्त कहाँ?॥ १५-१६॥

स्वल्पाहारी, अटल व्रतवाले जो वैखानस मुनि हैं, वे इस संसारकी अनित्यताको जानते हुए भी इसमें आसक्त हो जाते हैं॥ १७॥

हे राजन्! आपके वंशमें उत्पन्न सभी राजा अपनेको विदेह कहते आये हैं तो इसमें भी मुझे धोखा ही जान पड़ता है, दूसरा कुछ नहीं॥ १८॥

जिस प्रकार किसी मूर्खका नाम विद्याधर, जन्मान्धका नाम दिवाकर तथा सतत दरिद्री मनुष्यका नाम लक्ष्मीधर रखना निरर्थक है, उसी प्रकार पूर्वकालमें आपके वंशमें उत्पन्न जिन-जिन राजाओंको मैंने सुना है, वे नामसे ही विदेह प्रसिद्ध हुए हैं कर्मसे नहीं॥ १९-२०॥

हे नृप! आपके कुलमें पहले निमि नामके राजा हो चुके हैं। उन राजर्षिने एक बार अपने गुरु वसिष्ठमुनिको यज्ञके लिये निमन्त्रित किया। उस समय वसिष्ठजीने उनसे कहा कि आपसे पहले इन्द्रने मुझे यज्ञके लिये आमन्त्रित कर रखा है। इन्द्रका यज्ञ सम्पन्न कराकर मैं आपका भी यज्ञ पूर्ण करूँगा। अत: हे राजेन्द्र! तब तक आप धीरे-धीरे यज्ञ-सामग्री एकत्र कराइये॥ २१—२३॥

ऐसा कहकर वसिष्ठमुनि इन्द्रका यज्ञ करानेके लिये चले गये और महाराज निमिने किसी दूसरेको आचार्य बनाकर अपना उत्तम यज्ञ सम्पन्न कर लिया॥ २४॥

यह सुनकर वसिष्ठजी राजापर अत्यन्त क्रोधित हुए और उन्हें शाप देते हुए बोले—'हे गुरुका परित्याग करनेवाले! तुम्हारा शरीर नष्ट हो जाय'॥ २५॥

यह सुनकर महाराज निमिने भी शाप दिया कि आपका भी शरीर नष्ट हो जाय। इस प्रकार वे दोनों एक-दूसरेके शापसे नष्ट हो गये—ऐसा मैंने सुना है॥ २६॥

हे राजेन्द्र! विदेह होकर भी राजाने अपने गुरुको स्वयं शाप क्यों दे डाला! हे नृपश्रेष्ठ! यह तो मेरे मनमें परिहास-जैसा प्रतीत हो रहा है॥ २७॥

जनकजी बोले—हे विप्रवर! आपने ठीक ही कहा है; इसमें मिथ्या कुछ भी नहीं है—ऐसा मैं मानता हूँ। फिर भी आप मेरी बात सुनें। हे विप्रेन्द्र! गुरु व्यासजी मेरे परम पूज्य हैं। उन अपने पिताका साथ त्याग करके आप वनमें जाना चाहते हैं। वहाँ भी तो मृग आदि पशुओंके साथ आपका स्नेह-सम्बन्ध रहेगा ही; इसमें सन्देह नहीं है॥ २८-२९॥

पृथ्वी, जल आदि महाभूत तो सर्वत्र ही विद्यमान हैं। तब आप नि:संग कैसे हो पायेंगे? और फिर हे मुने! भोजन आदिकी भी चिन्ता रहेगी ही, तो आप निश्चिन्त कैसे रहेंगे?॥ ३०॥

जिस प्रकार आपको वनमें दण्ड और मृगचर्मकी चिन्ता बनी रहेगी, उसी प्रकार मुझ विचारशील राजाको भी राज्यसम्बन्धी चिन्ता तो होगी ही॥ ३१॥

आप ही भ्रममें पड़कर यहाँतक दूर देशमें आये हैं। मुझे किसी प्रकारका विकल्परूपी सन्देह नहीं है; क्योंकि मैं तो सर्वथा निर्विकल्प हूँ॥ ३२॥

हे विप्र! मैं सुखसे भोजन करता हूँ और सुखपूर्वक शयन करता हूँ। हे मुने! 'मैं बद्ध नहीं हूँ' इस भावनासे मैं सर्वदा सुखी रहता हूँ। [इसके विपरीत] 'मैं बद्ध हूँ'—इस शंकासे आप सर्वदा दु:खी ही रहते हैं, अत: आप इस शंकाको छोड़कर सदा सुखी एवं स्वस्थ हो जाइये॥ ३३-३४॥

यह शरीर मेरा है—यही बन्धनका कारण है; यह मेरा नहीं है—ऐसा निश्चय ही मुक्ति है। यह गृह, सम्पत्ति, राज्य मेरा नहीं है—ऐसा मेरा दृढ़ निश्चय है॥ ३५॥

सूतजी बोले—महाराज जनककी बात सुनकर शुकदेवजी हर्षित हुए और उनसे आज्ञा लेकर व्यासजीके उत्तम आश्रमके लिये चल पड़े॥ ३६॥

व्यासजीने अपने ज्ञानी पुत्रको आते देखकर सुख प्राप्त किया। उन्होंने शुकदेवजीको हृदयसे लगाकर तथा उनका सिर सूँघकर उनकी कुशलता पूछी॥ ३७॥

सब शास्त्रोंमें कुशल एवं वेदाध्ययनमें तत्पर श्रीशुकदेवजी अपने पिताके साथ उस रमणीय आश्रममें सावधान होकर रहने लगे। राज्य करते हुए महात्मा जनककी वह विदेहावस्था देखकर शुकदेवजी परम शान्तिको प्राप्तकर अपने पिताके आश्रममें ही स्थित हो गये॥ ३८-३९॥

योगमार्गमें स्थित रहते हुए भी शुकदेवजीने पितरोंकी पीवरी नामकी सौभाग्यवती सुन्दर कन्याको पत्नीरूपमें स्वीकार कर लिया। उन्होंने उससे कृष्ण, गौरप्रभ, भूरि और देवश्रुत नामक चार पुत्र उत्पन्न किये। साथ ही उन प्रतापी व्याससुत शुकदेवजीने कीर्ति नामकी एक कन्या उत्पन्न करके उस कन्याका विवाह विभ्राजके पुत्र महात्मा अणुहके साथ कर दिया॥ ४०—४२॥

शुकदेवजीकी कन्यासे उत्पन्न अणुहके पुत्र श्रीमान् ब्रह्मदत्त हुए जो बड़े प्रतापी, ब्रह्मज्ञानी एवं पृथ्वीके रक्षक थे। वे कुछ समयके बाद देवर्षि नारदके उपदेशसे और परमश्रेष्ठ ब्रह्मतत्त्वका ज्ञान पाकर योगमार्गका आश्रय लेकर राज्यका भार अपने पुत्रको सौंपकर बदरिकाश्रम चले गये। वहाँ नारदजीके कृपाप्रसादसे प्राप्त मायाबीजके उपदेशसे उन्हें निर्बाध तथा तत्क्षण मुक्तिदायक ज्ञान उत्पन्न हुआ॥ ४३—४५½॥

उधर शुकदेवजी भी अपने पिताका साथ त्यागकर कैलासके सुरम्य शिखरपर चले गये और निःसंग भावसे अविचल ध्यान लगाकर स्थित हो गये। कुछ ही दिनोंमें उन्हें परम सिद्धि प्राप्त हो गयी और वे पर्वतके शिखरसे उड़ गये तथा महातेजस्वी वे शुकदेवजी आकाशमें जाकर सूर्यके समान सुशोभित होने लगे। तब शुकदेवजीके उड़ते ही पर्वत-शिखर दो भागोंमें विभाजित हो गया। शुकदेवजीके आकाशमें जाते ही अनेक प्रकारके उत्पात होने लगे। ऋषियोंके द्वारा स्तुति किये जाते हुए वे शुकदेवजी अन्तरिक्षमें वायुकी भाँति स्थित हो गये। वे अपने तेजसे दूसरे सूर्यकी भाँति देदीप्यमान हो रहे थे॥ ४६—४९½॥

इसी बीच पुत्रके वियोगसे व्यग्र होकर व्यासजी बार-बार 'हा पुत्र! हा पुत्र!' कहते हुए उस पर्वतकी चोटीपर पहुँचे, जहाँ शुकदेवजी रहते थे। थके हुए व्यासजीको दीन भावसे करुण क्रन्दन करते हुए देखकर सभी जीवोंमें साक्षीरूपसे विद्यमान परमात्माने प्रतिध्वनिके रूपमें उत्तर दिया। आज भी उस पर्वतके शृंगपर वैसी ही प्रतिध्वनि स्पष्ट सुनायी देती है॥ ५०—५२॥

अपने प्रिय पुत्र शुकदेवके विरहमें 'हा पुत्र! हा पुत्र!' कहकर विलाप करते हुए व्यासजीको शोक-सन्तप्त देखकर साक्षात् शंकरजी वहाँ आकर उन्हें सान्त्वना देने लगे—'हे व्यासजी! आप शोक मत कीजिये; आपके पुत्र श्रेष्ठ योगवेत्ता हैं। उन्होंने अकृतात्माओंके लिये भी दुर्लभ परमगति प्राप्त कर ली है। अतः ब्रह्मज्ञान रखनेवाले आपको उन [ब्रह्मज्ञानी] शुकदेवके लिये चिन्ता नहीं करनी चाहिये; हे पवित्रात्मन्! शुकदेवके समान पुत्रके द्वारा आपकी महान् कीर्ति हुई है'॥ ५३—५५½॥

व्यासजी बोले—'हे देवेश! हे जगत्पते! मैं क्या करूँ, शोक दूर नहीं हो रहा है; पुत्र-दर्शनकी लालसावाले मेरे नेत्र अतृप्त हैं'॥ ५६½॥

महादेवजी बोले—'अब आप अपने पुत्रकी रमणीय छाया अपने पास सर्वदा विद्यमान देखेंगे। हे मुनिवर! हे परन्तप! उस छायाको देखकर आप अपना शोक दूर कीजिये'॥ ५७½॥

सूतजी बोले—तदनन्तर व्यासजीने अपने पुत्र शुकदेवकी ओजस्विनी छाया देखी। उन्हें वरदान देकर शंकरजी वहीं अन्तर्धान हो गये। महादेवजीके अन्तर्हित हो जानेपर व्यासजी भी अपने आश्रमको लौट आये। शुकदेवजीके वियोगसे सन्तप्त होकर वे अत्यन्त दुःखी रहने लगे॥ ५८—६०॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत प्रथम स्कन्धका 'शुकके विवाहादिकार्यका वर्णन' नामक उन्नीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १९॥

बीसवाँ अध्याय

सत्यवतीका राजा शन्तनुसे विवाह तथा दो पुत्रोंका जन्म, राजा शन्तनुकी मृत्यु, चित्रांगदका राजा बनना तथा उसकी मृत्यु, विचित्रवीर्यका काशिराजकी कन्याओंसे विवाह और क्षयरोगसे मृत्यु, व्यासजीद्वारा धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुरकी उत्पत्ति

ऋषियोंने कहा—[हे सूतजी!] शुकदेवजीको जब परम सिद्धि प्राप्त हो गयी तब देवश्रेष्ठ व्यासजीने क्या किया? यह सब विस्तारपूर्वक हमसे कहिये॥ १॥

सूतजी बोले—उस समय व्यासजीके जितने वेदपाठी शिष्य थे, वे सब व्यासजीकी आज्ञा पाकर पहले ही भूमण्डलमें इधर-उधर चले गये थे॥ २॥

असित, देवल, वैशम्पायन, जैमिनि और सुमन्तु आदि सभी तपोधन मुनि चले गये थे। उन ऋषियोंको अन्यत्र तथा अपने पुत्र शुकदेवको अन्तरिक्षमें गया हुआ देखकर शोकाकुल व्यासजीने वहाँसे चले जानेका विचार किया॥ ३-४॥

उसी समय व्यासजीने मन-ही-मन निषादकन्या अपनी कल्याणकारिणी माताका स्मरण किया, जिन्हें उन्होंने शोकावस्थामें गंगाजीके तटपर ही छोड़ दिया था॥ ५॥

अपनी माता सत्यवतीका स्मरण करके उस श्रेष्ठ पर्वतको त्यागकर महातेजस्वी व्यासजी अपने जन्मस्थानपर चले आये॥ ६॥

इस प्रकार उन्होंने उस द्वीपपर जाकर लोगोंसे पूछा कि 'वे सुन्दर मुखवाली [मेरी माता] कहाँ चली गयीं?' तब निषादोंने बताया कि उस कन्याका तो निषादराजने राजा [शन्तनु]-से विवाह कर दिया। तत्पश्चात् निषादराजने व्यासजीका प्रेमपूर्वक पूजन एवं सत्कार करके हाथ जोड़कर कहा—॥ ७-८॥

दाशराज बोला—हे मुने! मेरा जन्म सफल हो गया और हमारा कुल पवित्र हो गया जो कि आज देवताओंके लिये दुर्लभ आपका दर्शन प्राप्त हुआ॥ ९॥

हे विप्रवर! आप जिस कामसे आये हैं, वह बताइये। हे विभो! धन, पुत्र, कलत्र आदि—यह सब आपके अधीन है॥ १०॥

[निषादराजके प्रार्थना करनेपर] व्यासजीने सरस्वती नदीके सुन्दर तटपर अपना आश्रम बनाया और सावधान-चित्त हो वे पुनः तप करते हुए वहाँ रहने लगे॥ ११॥

अपूर्व तेजस्वी महाराज शन्तनुको सत्यवतीके गर्भसे दो पुत्र उत्पन्न हुए। इन दोनोंको अपना भाई मानकर वनवासी व्यासजी अत्यन्त प्रसन्न हुए॥ १२॥

उनमें राजाका पहला पुत्र चित्रांगद रूपवान्, शत्रुओंको कष्ट देनेवाला तथा सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न था। शन्तनुके दूसरे पुत्रका नाम विचित्रवीर्य था। वह भी सर्वगुणसम्पन्न एवं शन्तनुके लिये सुखवर्द्धक हुआ॥ १३-१४॥

इसके पूर्व उन राजा शन्तनुको गंगासे भीष्म नामक बलशाली एवं पराक्रमी पुत्र पैदा हुआ था। उसी प्रकार सत्यवतीसे दो पराक्रमी पुत्र उत्पन्न हुए॥ १५॥

उन सर्वलक्षणसम्पन्न तीनों पुत्रोंको देखकर महामना शन्तनु अपने आपको देवताओंसे अजेय समझने लगे थे॥ १६॥

कुछ समय बीतनेपर यथासमय धर्मात्मा शन्तनुने उसी प्रकार अपना शरीर त्याग दिया, जिस प्रकार कोई मनुष्य अपना पुराना वस्त्र छोड़ देता है। शन्तनुके कालके वशीभूत हो जानेपर भीष्मने विधिवत् उनके समस्त प्रेतकार्य किये और विविध प्रकारके दान दिये॥ १७-१८॥

तदनन्तर पराक्रमी भीष्मने चित्रांगदको राज्यसिंहासनपर बैठाया। उन्होंने स्वयं राज्य नहीं किया, इसी कारण उनका नाम देवव्रत हुआ॥ १९॥

सत्यवतीपुत्र चित्रांगद बलगर्वित, शत्रुसन्तापकर्ता, बलशाली, वीर तथा पवित्र थे॥ २०॥

महाबाहु चित्रांगद एक बार महान् सेनासे युक्त होकर आखेटके लिये वनमें गये। वहाँ वध्य रुरुमृगोंको खोजते हुए वे विविध वन-प्रदेशोंमें घूम रहे थे। मार्गमें उन राजाको जाता हुआ देखकर चित्रांगद नामक एक गन्धर्व अपने सुन्दर विमानसे भूमिपर उनके समीप उतर पड़ा॥ २१-२२॥

सूतजी बोले—हे तपस्वियो! उस समय कुरुक्षेत्रके उस विशाल मैदान में तीन वर्षतक समान बलवाले उन दोनोंमें घमासान युद्ध होता रहा॥ २३॥

अन्तमें उस गन्धर्वके द्वारा राजा चित्रांगद युद्धमें मारे गये और उन्हें शीघ्र ही इन्द्रलोक प्राप्त हुआ। यह सुनकर भीष्मने उसी समय चित्रांगदका और्ध्वदैहिक संस्कार किया॥ २४॥

तत्पश्चात् मन्त्रियोंने भीष्मको समझा-बुझाकर शोकरहित किया। उन्होंने छोटे भाई विचित्रवीर्यको राजा बना दिया॥ २५॥

मन्त्रियों, गुरुजनों एवं महात्माओंके समझानेके बाद शुभलक्षणा राजमाता सत्यवती अपने [ज्येष्ठ] पुत्रकी मृत्युसे शोकाकुल होती हुई भी अपने छोटे पुत्र विचित्रवीर्यको राजसिंहासनपर बैठा देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुईं। व्यासजी भी अपने भ्राताके राजा होनेका समाचार पाकर प्रसन्न हुए॥ २६-२७॥

जब सत्यवतीके सुन्दर पुत्र विचित्रवीर्य पूर्ण युवा हुए तब भीष्म अपने कनिष्ठ भ्राताके विवाहकी चिन्ता करने लगे॥ २८॥

उन दिनों काशिराजकी तीन कन्याएँ थीं—जो सभी शुभलक्षणोंसे युक्त थीं; उन राजाने विवाहके लिये उनका स्वयंवर रचाया॥ २९॥

हजारों पूज्यमान राजा तथा राजकुमार आमन्त्रित होकर उस इच्छास्वयंवरमें उपस्थित हुए थे तथा पराक्रमी भीष्मने अकेले ही रथपर बैठकर सभी राजाओंको रौंदकर बलपूर्वक उन कन्याओंका हरण कर लिया। वे महारथी तथा तेजस्वी भीष्म अपने बाहुबलसे उन सभी राजाओंको जीतकर उन कन्याओंको लेकर हस्तिनापुर चले आये॥ ३०—३२॥

सुन्दर नेत्रोंवाली उन तीनों राजकुमारियोंमें माता, भगिनी एवं पुत्रीकी भावना रखते हुए भीष्म उन्हें ले आये और उन्हें सत्यवतीको सौंपकर शीघ्रतापूर्वक ज्योतिर्विदों तथा वेदके विद्वान् ब्राह्मणोंको बुलाकर उनसे विवाहका शुभ मुहूर्त पूछा॥ ३३—३४॥

विवाहकी तैयारी करके अपने छोटे भाई धर्मात्मा विचित्रवीर्यके साथ उन तीनों कन्याओंका विवाह करनेको जब भीष्म उद्यत हुए तब उन कन्याओंमें सबसे बड़ी एवं सुन्दर नेत्रोंवाली कन्याने गंगापुत्र भीष्मसे लज्जित होते हुए इस प्रकार प्रार्थना की। हे गंगापुत्र! हे कुरुश्रेष्ठ! हे धर्मज्ञ! हे कुलदीपक! मैंने स्वयंवरमें मन-ही-मन राजा शाल्वका पतिरूपमें वरण कर लिया था। उन राजाने भी प्रेमपूर्वक हृदयसे मुझे अपनी पत्नी मान लिया था। हे परन्तप! अब आप इस कुलकी परम्पराके अनुसार जैसा उचित हो, वैसा कीजिये। उन्होंने पहलेसे ही मुझे वरण कर लिया है। हे गांगेय! आप धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ तथा बलवान् हैं; आपकी जैसी इच्छा हो, वैसा कीजिये॥ ३५—३९॥

सूतजी बोले—इस प्रकार उस कन्याके कहनेपर कुरुनन्दन भीष्मजीने कुलवृद्धों, ब्राह्मणों, माता सत्यवती तथा मन्त्रियोंसे इस विषयमें परामर्श किया। सबकी अनुमति प्राप्त करके धर्मज्ञ गंगापुत्रने उस कन्यासे कहा—हे वरानने! तुम स्वेच्छापूर्वक जा सकती हो॥ ४०-४१॥

भीष्मसे विदा होकर वह सुन्दरी कन्या राजा शाल्वके घर गयी और अपने मनकी अभीष्ट बात उनसे कहने लगी—हे महाराज! आपके प्रति आसक्तचित्त जानकर भीष्मने मुझे धर्मपूर्वक मुक्त कर दिया है। अब मैं आ गयी हूँ; आप मेरा पाणिग्रहण कीजिये। मैं आपकी पूर्णरूपसे धर्मपत्नी होऊँगी; मैंने पूर्वमें आपको चाहा है और आपने मुझे; इसमें सन्देह नहीं है॥ ४२—४४॥

शाल्वने कहा—हे सुन्दरि! मेरे देखते-देखते भीष्मने तुम्हें पकड़ा और अपने रथपर बैठा लिया था, अतः अब मैं तुम्हारा पाणिग्रहण नहीं कर सकता। कौन बुद्धिमान्

मनुष्य दूसरेके द्वारा उच्छिष्ट कन्याको स्वीकार करेगा? अतः भीष्मके द्वारा मातृभावनासे भी त्यागी गयी तुम्हें मैं स्वीकार नहीं करूँगा॥ ४५-४६॥

महात्मा शाल्वने रोती तथा विलाप करती उस कन्याका त्याग कर दिया और वह पुनः भीष्मके यहाँ आकर रोती हुई इस प्रकार कहने लगी—हे वीर! आपके त्याग देनेके कारण शाल्व भी मुझे स्वीकार नहीं कर रहे हैं। हे महाभाग! आप धर्मज्ञ हैं, इसलिये आप मुझे स्वीकार कीजिये, अन्यथा मैं प्राण दे दूँगी॥ ४७-४८॥

भीष्म बोले—हे वरवर्णिनि! तुम दूसरेपर आसक्त चित्तवाली हो, अतः मैं तुम्हें कैसे स्वीकार करूँ? हे वरारोहे! अब तुम चिन्ता त्यागकर शीघ्र अपने पिताके पास चली जाओ॥ ४९॥

भीष्मके ऐसा कहनेपर वह [अपने पिताके घर न जाकर] वनमें चली गयी और वहाँ किसी निर्जन एवं परम पवित्र तीर्थमें तप करने लगी॥ ५०॥

काशिराजकी अन्य दो रूपवती तथा कल्याणमयी कन्याएँ अम्बिका एवं अम्बालिका विचित्रवीर्यकी रानियाँ बन गयीं॥ ५१॥

महाबली राजा विचित्रवीर्य भी उन दोनोंके साथ कभी राजभवनमें और कभी उपवनमें आनन्दपूर्वक विहार करने लगे॥ ५२॥

इस प्रकार पूरे नौ वर्षतक मनोहर क्रीड़ा करते हुए राजा विचित्रवीर्य राजयक्ष्मारोगसे ग्रसित हो गये और अन्तमें मृत्युको प्राप्त हुए॥ ५३॥

उस समय पुत्रके मर जानेपर माता सत्यवतीको बड़ा दुःख हुआ और उन्होंने मन्त्रियोंद्वारा पुत्रके सभी प्रेतकर्म सम्पन्न कराये॥ ५४॥

तत्पश्चात् एक दिन अत्यन्त दुःखी होकर सत्यवतीने भीष्मसे एकान्तमें कहा—हे महाभाग! हे पुत्र! अब तुम अपने पिता शन्तनुका राज्य सम्भालो और अपनी भ्रातृजायाको स्वीकार करो और अपने वंशकी रक्षा करो, जिससे महाराज ययातिका वंश नष्ट न हो जाय॥ ५५-५६॥

भीष्म बोले—हे माता! अपने पिताजीके लिये मैंने जो प्रतिज्ञा की थी, उसे तो आप सुन चुकी हैं। अतः मैं न तो राज्य ग्रहण करूँगा और न तो विवाह ही करूँगा॥ ५७॥

सूतजी बोले—तब सत्यवती चिन्तित हो गयीं कि अब वंश कैसे चलेगा? अपने कर्तव्यके प्रति यदि मैं उदासीन रहूँ तो अराजकताके व्याप्त होनेपर उदासीन मुझे सुख कैसे प्राप्त होगा?॥ ५८॥

[इस प्रकार माताको चिन्तित देखकर] भीष्मने उनसे कहा—हे भामिनि! आप चिन्ता न करें। विचित्रवीर्यकी पत्नीके गर्भसे क्षेत्रज पुत्र उत्पन्न कराइये। किसी कुलीन विद्वान् ब्राह्मणको बुलाकर वधूके साथ नियोग कराइये। इसमें कोई दोष नहीं है; क्योंकि वंशरक्षाका विधान वेदमें भी है। हे प्रसन्नवदने! इस प्रकार पौत्र उत्पन्न कराकर आप उसीको राज्य सौंप दीजिये, मैं उसके राज्यशासनका सम्यक् संरक्षण करता रहूँगा॥ ५९—६१॥

भीष्मकी वह बात सुनकर सत्यवतीने अपनी कुमारी अवस्थामें उत्पन्न अपने निर्दोष पुत्र द्वैपायन व्यासमुनिका स्मरण किया॥ ६२॥

स्मरण करते ही तपस्वी व्यासजी वहाँ आ पहुँचे और माताको प्रणाम करके वे तेजस्वी मुनि सामने खड़े हो गये॥ ६३॥

भीष्मने उनकी भलीभाँति पूजा की और माता सत्यवतीने भी आदर किया। उस समय महातेजस्वी व्यासजी वहाँ इस प्रकार सुशोभित हुए मानो धूमरहित साक्षात् दूसरे अग्निदेव ही हों॥ ६४॥

माता सत्यवतीने व्यासमुनिसे कहा—इस समय तुम विचित्रवीर्यके क्षेत्रमें अपने तेजसे सुन्दर पुत्र उत्पन्न करो॥ ६५॥

माताका वचन सुनकर व्यासजीने उसे आप्तवाक्य माना और 'ठीक है'—कहकर वे वहींपर ठहर गये और ऋतुकालकी प्रतीक्षा करने लगे॥ ६६॥

जब अम्बिका ऋतुमती होकर स्नान कर चुकी तब उसने मुनि व्यासजीके तेजसे एक पुत्र उत्पन्न किया, जो महाबली और जन्मान्ध था। उस बालकको जन्मान्ध

देखकर सत्यवतीको बड़ा दुःख हुआ। तब उन्होंने दूसरी वधू अम्बालिका से कहा कि तुम भी शीघ्र एक पुत्र उत्पन्न करो॥ ६७-६८॥

ऋतुकाल प्राप्त होनेपर उस अम्बालिकाने व्यासजीसे गर्भ धारण किया। उससे उत्पन्न पुत्र भी पाण्डुरोगसे ग्रसित होनेके कारण राजा होनेके योग्य नहीं था। इसलिये माताने वधू अम्बालिकाको एक वर्षके बाद पुनः एक पुत्रके लिये प्रेरित किया। माता सत्यवतीने मुनिश्रेष्ठ व्यासजीका आह्वानकर उनसे इसके लिये प्रार्थना की, परंतु उसने स्वयं न जाकर अपनी दासीको भेज दिया। उस दासीके गर्भसे धर्मके अंशसे युक्त शुभ विदुर उत्पन्न हुए॥ ६९—७२॥

इस प्रकार वंशकी रक्षाके लिये व्यासजीने धृतराष्ट्र आदि तीन महापराक्रमी पुत्र उत्पन्न किये। भ्रातृ-धर्मको जाननेवाले व्यासजीने ऐसा करके वंशकी रक्षा की। हे पुण्यात्मा मुनिजनो! इस प्रकार उनकी वंशोत्पत्तिसे सम्बन्धित समस्त कथानक मैंने आपलोगोंसे कह दिया॥ ७३-७४॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत प्रथम स्कन्धका 'धृतराष्ट्रादिकी उत्पत्तिका वर्णन' नामक बीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २०॥

॥ प्रथम स्कन्ध समाप्त॥

जय जय जगजननि देवि सुर-नर-मुनि-असुर-सेवि, भुक्ति-मुक्ति-दायिनी, भय-हरणि कालिका।
मंगल-मुद-सिद्धि-सदनि, पर्वशर्वरीश-वदनि, ताप-तिमिर-तरुण-तरणि-किरणमालिका॥ १॥
वर्म, चर्म कर कृपाण, शूल-शेल-धनुषबाण, धरणि, दलनि दानव-दल, रण-करालिका।
पूतना-पिशाच-प्रेत-डाकिनि-शाकिनि-समेत, भूत-ग्रह-बेताल-खग-मृगालि-जालिका॥ २॥
जय महेश-भामिनी, अनेक-रूप-नामिनी, समस्त-लोक-स्वामिनी, हिमशैल-बालिका।
रघुपति-पद परम प्रेम, तुलसी यह अचल नेम, देहु ह्वै प्रसन्न पाहि प्रणत-पालिका॥ ३॥

हे जगत्की माता! हे देवि!! तुम्हारी जय हो, जय हो। देवता, मनुष्य, मुनि और असुर सभी तुम्हारी सेवा करते हैं। तुम भोग और मोक्ष दोनोंको ही देनेवाली हो। भक्तोंका भय दूर करनेके लिये तुम कालिका हो। कल्याण, सुख और सिद्धियोंकी स्थान हो। तुम्हारा सुन्दर मुख पूर्णिमाके चन्द्रके सदृश है। तुम आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक तापरूपी अन्धकारका नाश करनेके लिये मध्याह्नके तरुण सूर्यकी किरणमाला हो॥ १॥

तुम्हारे शरीरपर कवच है। तुम हाथोंमें ढाल-तलवार, त्रिशूल, साँगी और धनुष-बाण लिये हो। दानवोंके दलका संहार करनेवाली हो, रणमें विकरालरूप धारण कर लेती हो। तुम पूतना, पिशाच, प्रेत और डाकिनी-शाकिनियोंके सहित भूत, ग्रह और बेतालरूपी पक्षी और मृगोंके समूहको पकड़नेके लिये जालरूप हो॥ २॥

हे शिवे! तुम्हारी जय हो। तुम्हारे अनेक रूप और नाम हैं। तुम समस्त संसारकी स्वामिनी और हिमाचलकी कन्या हो। हे शरणागतकी रक्षा करनेवाली! मैं तुलसीदास श्रीरघुनाथजीके चरणोंमें परम प्रेम और अचल नेम चाहता हूँ, सो प्रसन्न होकर मुझे दो और मेरी रक्षा करो॥ ३॥ **[विनय-पत्रिका]**

॥ श्रीजगदम्बिकायै नमः ॥

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण

द्वितीय स्कन्ध

पहला अध्याय

ब्राह्मणके शापसे अद्रिका अप्सराका मछली होना और उससे राजा मत्स्य तथा मत्स्यगन्धाकी उत्पत्ति

ऋषिगण बोले—[हे सूतजी!] आपकी यह बात आश्चर्यजनक एवं रहस्यपूर्ण है। इस सम्बन्धमें हम सब तपस्वियोंको महान् सन्देह उत्पन्न हो गया है॥ १॥

हे मेधाविन्! व्यासजीकी माता सत्यवतीका जैसे पूर्वमें विवाह हुआ—इसे राजा शन्तनुने जिस प्रकार जाना, उन सतीके अपने घरमें रहते हुए भी उनसे पुत्ररूपमें व्यास कैसे उत्पन्न हुए, ऐसी सत्यवतीका शन्तनुने पुनः वरण कैसे किया और उनसे दो पुत्रोंकी उत्पत्ति कैसे हुई? अतः हे सुव्रत! हे महाभाग! आप इस परम पावन कथाको विस्तारपूर्वक कहिये। आप व्यासजी तथा सत्यवतीकी उत्पत्तिका वर्णन कीजिये; हम सभी व्रतधारी ऋषि इस विषयमें सुननेके लिये उत्सुक हैं॥ २—५॥

सूतजी बोले—मैं चतुर्वर्ग [धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष] प्रदान करनेवाली परमा आदिशक्तिको प्रणाम करके यह शुभ पौराणिक कथा कहूँगा॥ ६॥

जिनके विशिष्ट वाग्भव बीजमन्त्र (ऐं)-का किसी भी बहानेसे उच्चारण करते ही शाश्वती सिद्धि प्राप्त हो जाती है, उन इच्छित फल देनेवाली भगवतीका सभी लोगोंको अपनी समस्त कामनाएँ पूर्ण करनेके लिये समर्पण भावसे सम्यक् स्मरण करना चाहिये॥ ७-८॥

उपरिचर नामके एक सत्यवादी, धर्मात्मा, ब्राह्मणपूजक तथा श्रीमान् राजा हुए, जो चेदि देशके शासक थे। उनकी तपस्यासे सन्तुष्ट होकर देवराज इन्द्रने उन्हें प्रसन्न करनेके लिये स्फटिक मणिका बना हुआ एक सुन्दर तथा दिव्य विमान दिया॥ ९-१०॥

उस दिव्य विमानपर चढ़कर चेदिराज सर्वत्र विचरण करते थे। वे कभी भूमिपर न उतरने तथा पृथ्वीसे ऊपर-ही-ऊपर चलनेके कारण सभी लोकोंमें 'उपरिचर' वसुके नामसे प्रसिद्ध हुए। वे राजा अत्यन्त धर्मपरायण थे। उनकी धर्मपत्नीका नाम गिरिका था, जो रूपवती तथा सुन्दरी थी॥ ११-१२॥

महाराज उपरिचरके पाँच पुत्र हुए जो बड़े महान् वीर एवं परम प्रतापी थे। [यथासमय] उन्होंने अपने राजकुमारोंको अलग-अलग देशोंका राजा बना दिया॥ १३॥

एक बार राजा वसुकी पत्नी गिरिकाने ऋतुकालके स्नानसे पवित्र होकर राजासे पुत्रप्राप्तिकी कामना की। जिस समय वह प्रार्थना करने लगी, उसी समय उनके पितरोंने उन राजासे कहा—हे राजन्! मृगोंको मार लाओ—इस आदेशको सुनकर राजाको अपनी ऋतुमती पत्नीका भी स्मरण हो आया, किंतु पितरोंकी आज्ञा श्रेष्ठ मानकर तथा अपने कर्तव्यका निश्चयकर राजा मन-ही-मन गिरिकाका स्मरण करते हुए आखेटके लिये चल पड़े॥ १४—१६॥

वनमें रहते हुए राजा वसु साक्षात् दूसरी लक्ष्मीके समान रूपवती अपनी पत्नीका स्मरण करने लगे। इस प्रकार उस कामिनीके ध्यानसे एकाएक उनका वीर्य

स्खलित हो गया और राजाने शीघ्र ही उसे बरगदके पत्तेपर रख लिया॥ १७-१८॥

यह स्खलित तेज व्यर्थ न हो—[यह सोचकर] तथा स्त्रीका ऋतुकाल जानकर उन्होंने ऐसा निश्चय कर लिया कि मेरा तेज सर्वथा अमोघ है, इसमें सन्देह नहीं है अत: अवश्य ही इसे मैं रानीके पास भेज दूँ॥ १९-२०॥

राजा जब उस वीर्यको बरगदके दोनेमें रखकर अपनी रानीके पास भेजने लगे तब उन्होंने रानीका ऋतुकाल जानकर उस वीर्यको अभिमन्त्रित किया। राजाने पास ही बैठे हुए बाज पक्षीको बुलाकर उससे कहा—'हे महाभाग! तुम इसे ग्रहण करो और शीघ्र ही मेरे घर चले जाओ। हे सौम्य! मेरा हित करनेके लिये इसे लेकर तुम मेरे घर जाओ और इसे शीघ्र ही गिरिकाको दे देना; क्योंकि आज ही उसका ऋतुकाल है'॥ २१—२३॥

सूतजी बोले—ऐसा कहकर नृपश्रेष्ठने बाजको वह दोना दे दिया और वह द्रुतगामी बाज भी उसे लेकर शीघ्र ही आकाशमें उड़ने लगा॥ २४॥

चोंचमें पत्तेका दोना लेकर आकाशमें उड़ते हुए उस बाजको एक दूसरे बाजपक्षीने अपनी ओर आते हुए देखा॥ २५॥

बाजकी चोंचमें मांसका टुकड़ा समझकर तत्काल उसने उस बाजपर आक्रमण कर दिया। दोनों बाजोंके बीच आकाशमें चोंचोंसे घोर युद्ध होने लगा। उन दोनोंके युद्ध करते समय वीर्यवाला वह दोना यमुनाजीके जलमें जा गिरा। दोनेके गिर जानेपर दोनों पक्षी वहाँसे यथेच्छ दिशामें चले गये॥ २६-२७॥

उसी समय अद्रिका नामकी एक अप्सरा जलमें निमग्न होकर जलक्रीडा कर रही थी। उस सुन्दरी स्त्रीने वहाँपर उपस्थित सन्ध्यावन्दन करनेमें तत्पर एक ब्राह्मणका पैर पकड़ लिया॥ २८-२९॥

प्राणायाम करते हुए ब्राह्मणने उस स्वेच्छाचारिणीको देखकर उसे यह शाप दे दिया कि 'तुमने मेरे ध्यानमें विघ्न डाला है, अतएव तुम मछली हो जाओ।' इस प्रकार ब्राह्मणश्रेष्ठसे शाप पाकर वह अद्रिका नामकी रूपवती श्रेष्ठ अप्सरा मछली बनकर यमुनाके जलमें विचरने लगी॥ ३०-३१॥

बाजके पादाघातसे गिरे हुए उस वीर्यके पास जाकर मत्स्यरूपधारिणी अद्रिका अप्सराने उसे शीघ्रतापूर्वक निगल लिया॥ ३२॥

कुछ समय बाद दस महीने बीतनेपर एक मछुआरेने उस सुन्दर मछलीको अपने जालमें फँसा लिया॥ ३३॥

उस मछुआरेने शीघ्र ही उस मछलीका पेट चीर दिया। उसके उदरसे मनुष्यके आकारवाली जुड़वाँ सन्तति निकली॥ ३४॥
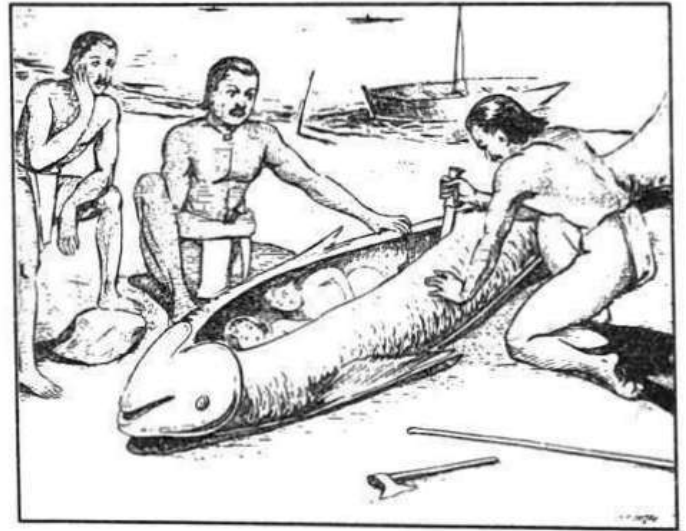
उन दोनोंमें एक रूपवान् बालक तथा एक सुन्दर मुखवाली बालिका थी। इस अद्भुत घटनाको देखकर वह भी अत्यन्त विस्मित हुआ॥ ३५॥

उसने मछलीके पेटसे निकले उन दोनों बच्चोंको राजा उपरिचरको सौंप दिया। राजा भी आश्चर्यचकित हुआ और उसने उस सुन्दर पुत्रको ले लिया॥ ३६॥

वह वसुपुत्र मत्स्य नामक राजा हुआ, जो अपने पिताके समान ही धर्मात्मा, सत्यप्रतिज्ञ, महातेजस्वी तथा पराक्रमी था॥ ३७॥

राजा उपरिचर वसुने वह कन्या उस मछुआरेको ही दे दी, जो आगे चलकर काली तथा मत्स्योदरी नामसे प्रसिद्ध हुई। अपने गुणविशेषके कारण वह मत्स्यगन्धा नामसे कही जाने लगी। उस मछुआरे दाशके घर वह सुन्दरी वासवी धीरे-धीरे बढ़ने लगी॥ ३८-३९॥

ऋषिगण बोले—हे सूतजी! मुनिके द्वारा शापित

वह अद्रिका नामकी श्रेष्ठ अप्सरा जब मछली हो गयी और मछुआरेने उसे चीर डाला, तब वह मर गयी अथवा उसने उसे खा लिया। उस अप्सराका फिर क्या हुआ? उसके शापकी समाप्ति कैसे हुई और उसे पुनः स्वर्ग कैसे मिला? यह बताइये॥ ४०-४१॥

सूतजी बोले—जब मुनिने उसे शाप दिया, तब वह विस्मित हो गयी और दीनतापूर्वक रोती हुई उस ब्राह्मणकी स्तुति करने लगी॥ ४२॥

दयालु ब्राह्मणने उस रोती हुई स्त्रीसे कहा—हे कल्याणि! तुम शोक न करो, मैं तुम्हारे शापके अन्तका उपाय बताता हूँ। हे शुभे! मैंने क्रुद्ध होकर जो शाप दिया है, उससे तुम मत्स्ययोनिको प्राप्त होओगी; किंतु तुम अपने उदरसे एक युग्म मानव-सन्तान उत्पन्नकर इस शापसे मुक्त हो जाओगी॥ ४३-४४॥

उनके ऐसा कहनेपर वह यमुनाजलमें मछलीका शरीर पाकर तथा दो सन्तानोंको उत्पन्न करके मर गयी और शापसे मुक्त हो गयी॥ ४५॥

इस प्रकार शापोद्धार होनेपर वह सुन्दरी मछलीका शरीर त्यागकर दिव्य रूप धारण करके स्वर्गको चली गयी॥ ४६॥

इस प्रकार सुन्दर मुखवाली उस कन्या मत्स्यगन्धाका जन्म हुआ। दाशके घरमें पुत्रीकी भाँति पालन-पोषणकी जाती हुई वह कन्या बढ़ने लगी॥ ४७॥

जब वह मत्स्यगन्धा किशोरावस्थाको प्राप्त हुई, तब उसका सौन्दर्य और भी बढ़ गया। वह परम सुन्दरी वसुकन्या निषादराजके कार्योंको करती हुई रहने लगी॥ ४८॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत द्वितीय स्कन्धका 'मत्स्यगन्धोत्पत्ति' नामक पहला अध्याय पूर्ण हुआ॥ १॥

दूसरा अध्याय

व्यासजीकी उत्पत्ति और उनका तपस्याके लिये जाना

सूतजी बोले—एक बार तीर्थयात्रा करते हुए महान् तेजस्वी पराशरमुनि यमुनानदीके उत्तम तटपर आये और उन धर्मात्माने भोजन करते हुए निषादसे कहा—मुझको नावसे यमुनाके पार पहुँचा दो॥ १-२॥

मुनिका वचन सुनकर यमुनाके तटपर भोजन करते हुए उस निषादने अपनी सुन्दर युवा पुत्री मत्स्यगन्धासे कहा—'हे सुन्दर मुसकानवाली पुत्रि! तुम इन मुनिको नावमें बैठाकर पार उतार दो; क्योंकि ये धर्मात्मा तपस्वी उस पार जानेके इच्छुक हैं'॥ ३-४॥

पिताके ऐसा कहनेपर वह सुन्दर वासवी मत्स्यगन्धा मुनिको नावमें बैठाकर खेने लगी। यमुनानदीके जलपर नावसे चलते समय दैवयोगसे प्रारब्धानुसार मुनि पराशर उस सुन्दर नेत्रोंवाली कन्याको देखकर आसक्त हो गये॥ ५-६॥

प्रस्फुटित यौवनवाली उस कन्याको देखकर उसे प्राप्त करनेकी इच्छावाले मुनिराजने अपनी दाहिनी भुजासे उसकी दाहिनी भुजाका स्पर्श किया॥ ७॥

इसपर उस असितापांगीने मुसकराकर कहा—क्या आपका यह कृत्य आपके कुल, तपस्या तथा वेदज्ञानके अनुरूप है? हे धर्मज्ञ! आप वसिष्ठजीके वंशज हैं और कुल तथा शीलसे युक्त हैं फिर भी कामदेवसे पीड़ित होकर आप क्या करना चाहते हैं?॥ ८-९॥

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! इस पृथ्वीपर मनुष्यजन्म दुर्लभ है। उसमें भी ब्राह्मणकुलमें जन्म लेना तो मैं विशेषरूपसे दुर्लभ मानती हूँ॥ १०॥

हे विप्रेन्द्र! आप कुलसे, शीलसे तथा वेदाध्ययनसे एक धर्मपरायण श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं? मुझ मत्स्यगन्धाको देखकर आप अनाचारयुक्त विचारवाले कैसे हो गये? हे अमोघ बुद्धिवाले ब्राह्मण! मेरे शरीरमें स्थित किस विशेषताको देखकर आप मेरा हाथ पकड़नेके लिये कामासक्त होकर मेरी ओर चले आ रहे हैं? क्या आपको अपने धर्मका ज्ञान नहीं है?॥ ११-१२॥

अहो, ये मन्दबुद्धि ब्राह्मण इस जलमें मुझे पकड़नेको आतुर हो रहे हैं। मेरा स्पर्श करके कामबाणसे आहत इनका

मन व्याकुल हो उठा है। इस समय कोई भी इन्हें रोकनेमें समर्थ नहीं है॥ १३॥

ऐसा सोचकर उस निषादकन्याने महामुनि पराशरसे कहा—हे महाभाग! आप धैर्य धारण करें; मैं अभी आपको उस पार ले चलती हूँ॥ १४॥

सूतजी बोले—मुनि पराशर उसका हितकारी वचन सुनकर उसका हाथ छोड़ करके वहीं स्थित हो गये और उस पार पहुँच गये॥ १५॥

तदनन्तर पराशरमुनिने मत्स्यगन्धाको पकड़ लिया। तब भयसे काँपती हुई वह कन्या सम्मुखस्थित मुनिसे कहने लगी—हे मुनिवर! मैं दुर्गन्धवाली हूँ, मुझसे क्या आपको घृणा नहीं हो रही है? समान रूपवालोंके बीच ही परस्पर सम्बन्ध आनन्ददायक होता है॥ १६-१७॥

मत्स्यगन्धाके ऐसा कहते ही पराशरमुनिने क्षणमात्रमें अपने तपोबलसे उस भामिनी कन्याको सुमुखी, रूपवती तथा योजनगन्धा बना दिया॥ १८॥

उसे कस्तूरीकी सुगन्धिवाली मनोहर स्त्री बनाकर कामातुर मुनिराजने अपने दाहिने हाथसे उसे पकड़ लिया। तब सत्यवती नामवाली उस सुन्दरीने संयोगकी कामनावाले मुनिसे कहा—हे मुने! तटपर स्थित मेरे पिता तथा सभी लोग यहाँ हमें देख रहे हैं॥ १९-२०॥

हे मुनिश्रेष्ठ! यह भीषण पशुवत् व्यवहार मुझे अच्छा नहीं लगता। जबतक रात नहीं हो जाती, तबतक प्रतीक्षा कीजिये॥ २१॥

मनुष्यके लिये कामसंसर्ग रातमें ही विहित है, दिनमें नहीं। दिनमें संसर्ग करनेसे महान् दोष होता है और बहुत-से लोग उसे देख भी लेते हैं॥ २२॥

हे महाबुद्धे! अब आपकी जैसी इच्छा हो वैसा करें, लोकनिन्दा अत्यन्त कष्टकर होती है। सत्यवतीका कहा गया युक्तिसंगत वचन सुनकर उदार बुद्धिवाले पराशरमुनिने अपने पुण्यबलसे तत्क्षण कुहरा उत्पन्न कर दिया। उस कुहरेके उत्पन्न हो जानेपर अत्यन्त अन्धकारमय नदीतटपर उस कामिनीने पराशरमुनिसे मधुर वाणीमें यह वचन कहा—हे द्विजश्रेष्ठ! मैं अभी कन्या हूँ और आप मेरे साथ संसर्ग करके चले जायँगे। हे ब्रह्मन्! आप अमोघ वीर्यवाले हैं, ऐसी स्थितिमें मेरी क्या गति होगी? यदि मैं गर्भधारण कर लूँगी तो पिताको क्या उत्तर दूँगी? हे ब्रह्मन्! मेरे साथ संसर्ग करके आप चले जायँगे तब मैं क्या करूँगी, उसे बताइये?॥ २३—२६$^{1}/_{2}$॥

पराशर बोले—हे प्रिये! आज मुझे प्रसन्न करके भी तुम कन्या ही बनी रहोगी। हे भामिनि! हे भीरु! तुम जो वर चाहती हो, उसे माँग लो॥ २७$^{1}/_{2}$॥

सत्यवती बोली—हे मानद! आप ऐसा वरदान दीजिये, जिससे मेरे माता-पिता लोकमें इसे न जान सकें। साथ ही हे विप्रवर! आप ऐसा करें, जिससे मेरा कन्याव्रत नष्ट न हो और जो पुत्र उत्पन्न हो, वह आपहीके समान अपूर्व ओजस्वी हो, मेरी यह सुगन्ध सदा बनी रहे और मेरा यौवन नित नूतन बना रहे॥ २८-२९$^{1}/_{2}$॥

पराशर बोले—हे सुन्दरि! सुनो, तुम्हारा पुत्र पवित्र तथा भगवान् विष्णुके अंशसे अवतीर्ण होगा। हे सुन्दरि! वह तीनों लोकोंमें विख्यात होगा। मैं तुम्हारे ऊपर किसी कारणविशेषसे ही कामासक्त हुआ हूँ। हे सुमुखि! मुझे ऐसा मोह पूर्वमें कभी नहीं हुआ। अप्सराओंके रूपको देखकर भी मैं सदा धैर्य धारण किये रहा। दैवयोगसे ही तुम्हें देखकर मैं इस प्रकार कामके वशीभूत हुआ हूँ। इस विषयमें तुम कोई विशेष कारण ही समझो, दैवका अतिक्रमण अत्यन्त कठिन है, अन्यथा अत्यन्त दुर्गन्धयुक्त तुम्हें देखकर मैं इस प्रकार क्यों मोहित होता! हे वरानने! तुम्हारा पुत्र पुराणोंका रचयिता, वेदोंका विभाग करनेवाला तथा तीनों लोंकोंमें विख्यात होगा॥ ३०—३४$^{1}/_{2}$॥

सूतजी बोले—ऐसा कहकर अपने वशमें आयी हुई उस कन्याके साथ संसर्ग करके मुनिश्रेष्ठ पराशर तत्काल यमुनानदीमें स्नानकर वहाँसे शीघ्र चले गये। वह साध्वी सत्यवती भी तत्काल गर्भवती हो गयी॥ ३५-३६॥

[यथासमय] सत्यवतीने यमुनाजीके द्वीपमें दूसरे कामदेवके तुल्य एक सुन्दर पुत्रको जन्म दिया। उत्पन्न होते ही उस तेजवान् पुत्रने अपनी मातासे कहा—हे माता! मनमें तपस्याका निश्चय करके ही अत्यन्त तेजस्वी मैं गर्भमें प्रविष्ट हुआ था। हे महाभागे! अब आप

अपनी इच्छानुसार कहीं भी चली जायँ और मैं भी यहाँसे तप करनेके लिये जा रहा हूँ। हे माता! आपके स्मरण करनेपर मैं अवश्य ही दर्शन दूँगा। हे माता! जब कोई उत्तम कार्य आ पड़े तब आप मेरा स्मरण कीजियेगा, मैं शीघ्र ही उपस्थित हो जाऊँगा। हे भामिनि! आपका कल्याण हो, अब मैं चलूँगा। आप चिन्ता छोड़कर सुखपूर्वक रहिये॥ ३७—४०॥

ऐसा कहकर व्यासजी चले गये और वह सत्यवती भी अपने पिताके पास चली गयी। सत्यवतीने बालकको यमुनाद्वीपमें जन्म दिया था। अतः वह बालक 'द्वैपायन' नामसे विख्यात हुआ॥ ४१॥

विष्णुभगवान्‌के अंशावतार होनेके कारण वह बालक उत्पन्न होते ही शीघ्र बड़ा हो गया तथा अनेक तीर्थोंमें स्नान करता हुआ उत्तम तप करने लगा॥ ४२॥

इस प्रकार पराशरमुनिके द्वारा सत्यवतीके गर्भसे द्वैपायन उत्पन्न हुए और उन्होंने ही कलियुगको आया जानकर वेदोंको अनेक शाखाओंमें विभक्त किया, वेदोंका विस्तार करनेके कारण ही उन मुनिका नाम 'व्यास' पड़ गया। उन्होंने ही विभिन्न पुराणसंहिताओं तथा श्रेष्ठ महाभारतकी रचना की। उन्होंने ही वेदोंके अनेक विभाग करके उसे अपने शिष्यों—सुमन्तु, जैमिनि, पैल, वैशम्पायन, असित, देवल और अपने पुत्र शुकदेवजीको पढ़ाया॥ ४३—४५ $^{1}/_{2}$॥

सूतजी बोले—हे श्रेष्ठ मुनियो! मैंने यह सब उत्पत्तिका कारण आपलोगोंसे बता दिया, साथ ही सत्यवतीके पुत्र व्यासजीकी पवित्र उत्पत्तिका वर्णन कर दिया है। हे श्रेष्ठ मुनिगण! व्यासजीकी इस उत्पत्तिके विषयमें आपलोगोंको सन्देह नहीं करना चाहिये। महापुरुषोंके चरितसे केवल गुण ही ग्रहण करना चाहिये। किसी विशेष कारणसे ही मुनि व्यासका तथा मछलीके उदरसे सत्यवतीका जन्म, पराशरमुनिके साथ उनका संयोग और फिर राजा शन्तनुके साथ उनका विवाह हुआ। अन्यथा मुनि पराशरका चित्त कामासक्त ही क्यों होता? और धर्मके ज्ञाता वे महामुनि पराशर अनार्य लोगोंद्वारा आचरित किया जानेवाला ऐसा कृत्य क्यों करते! किसी विशेष कारणसे युक्त तथा आश्चर्यकारिणी यह उत्पत्ति मैंने बता दी, जिसे सुनकर मनुष्य निश्चितरूपसे पापसे मुक्त हो जाता है। जो श्रुतिपरायण मनुष्य इस शुभ आख्यानको सुनता है; वह दुर्गतिको प्राप्त नहीं होता है तथा सर्वदा सुखी रहता है॥ ४६—५२॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत द्वितीय स्कन्धका 'व्यासजन्मवर्णन' नामक दूसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ २॥

तीसरा अध्याय

राजा शन्तनु, गंगा और भीष्मके पूर्वजन्मकी कथा

ऋषिगण बोले—हे सूतजी! हे अनघ! यद्यपि आपने परम तेजस्वी व्यास तथा सत्यवतीके जन्मकी कथा विस्तारपूर्वक कही तथापि हमलोगोंके चित्तमें एक बड़ी भारी शंका बनी हुई है। हे धर्मज्ञ! हे अनघ! वह शंका आपके कहनेपर भी दूर नहीं हो रही है॥ १-२॥

व्यासजीकी कल्याणमयी माता जो सत्यवती नामसे जानी जाती थीं, वे धर्मात्मा राजा शन्तनुको कैसे प्राप्त हुईं? कुल तथा आचरणसे हीन उस निषादकन्याका पुरुकुलमें उत्पन्न उन धर्मात्मा राजाने स्वयं कैसे वरण कर लिया?॥ ३-४॥

आप कृपा करके हमलोगोंको यह भी बतलाइये कि राजा शन्तनुकी पहली पत्नी कौन थी? वसुके अंशसे उत्पन्न मेधावी भीष्म उनके पुत्र कैसे हुए?॥ ५॥

हे सूतजी! आप यह पहले ही कह चुके हैं कि सत्यवतीके वीर पुत्र चित्रांगदको अमित तेजवाले भीष्मने राजा बनाया था और वीर चित्रांगदके मारे जानेपर उसके अनुज तथा सत्यवतीके पुत्र विचित्रवीर्यको उन्होंने राजा बनाया॥ ६-७॥

रूपसम्पन्न तथा ज्येष्ठ पुत्र धर्मात्मा भीष्मके रहते हुए उन्हींके द्वारा स्थापित किये गये विचित्रवीर्यने राज्य कैसे

किया?॥ ८॥

विचित्रवीर्यके मरनेपर अत्यन्त दुःखित माता सत्यवतीने अपनी दोनों पुत्रवधुओंसे दो गोलक पुत्र कैसे उत्पन्न कराये?॥ ९॥

उन सुन्दरी सत्यवतीने उस समय ज्येष्ठ पुत्र भीष्मको राजा क्यों नहीं बनाया और उन पराक्रमी भीष्मने अपना विवाह क्यों नहीं किया?॥ १०॥

अमित तेजस्वी बड़े भाई व्यासजीने ऐसा अधर्म क्यों किया जो कि उन्होंने नियोगद्वारा दो पुत्र उत्पन्न किये?॥ ११॥

पुराणोंके रचयिता व्यासमुनिने धर्मज्ञ होते हुए भी ऐसा कार्य क्यों किया, हे सूतजी! क्या यही वेदोंसे अनुमोदित शिष्टाचार है?॥ १२-१३॥

हे मेधाविन्! आप व्यासजीके शिष्य हैं, इसलिये आप हमारी इन सभी शंकाओंका समाधान करनेमें समर्थ हैं। हम सभी इस धर्मक्षेत्रमें इन प्रश्नोंके उत्तर सुननेको उत्सुक हो रहे हैं॥ १४॥

सूतजी बोले—[हे मुनियो!] इक्ष्वाकुकुलमें महाभिष नामके एक सत्यवादी, धर्मात्मा और चक्रवर्ती राजा उत्पन्न हुए—ऐसा कहा जाता है॥ १५॥

उन बुद्धिमान् राजाने हजारों अश्वमेध तथा सैकड़ों वाजपेय यज्ञ करके इन्द्रको सन्तुष्ट किया और स्वर्ग प्राप्त किया था॥ १६॥

एक बार राजा महाभिष ब्रह्मलोक गये। वहाँ प्रजापतिकी सेवाके लिये सभी देवता आये हुए थे। उस समय देवनदी गंगाजी भी ब्रह्माजीकी सेवामें उपस्थित थीं। उस समय तीव्रगामी पवनने उनका वस्त्र उड़ा दिया। सभी देवता अपना सिर नीचा किये उन्हें बिना देखे खड़े रहे, किंतु राजा महाभिष निःशंक भावसे उनकी ओर देखते रह गये॥ १७—१९॥

उन गंगानदीने भी राजाको अपनेपर प्रेमासक्त जाना। उन दोनोंको इस प्रकार मुग्ध देखकर ब्रह्माजी क्रोधित हो गये और कोपाविष्ट होकर शीघ्र ही उन दोनोंको शाप दे दिया—हे राजन्! मनुष्यलोकमें तुम्हारा जन्म होगा। वहाँ जब तुम अधिक पुण्य एकत्र कर लोगे, तब पुनः स्वर्गलोकमें आओगे। गंगाको महाभिषराजापर प्रेमासक्त जानकर ब्रह्माजीने उन्हें [गंगाको] भी उसी प्रकार शाप दे दिया॥ २०—२२॥

इस प्रकार वे दोनों दुःखी मनसे ब्रह्माजीके पाससे शीघ्र ही चले गये। राजा अपने मनमें सोचने लगे कि इस मृत्युलोकमें कौन ऐसे राजा हैं, जो धर्मपरायण हैं। ऐसा विचारकर उन्होंने पुरुवंशीय महाराज 'प्रतीप' को ही पिता बनानेका निश्चय कर लिया। इसी बीच आठों वसु अपनी-अपनी स्त्रीके साथ विहार करते हुए स्वेच्छया महर्षि वसिष्ठके आश्रमपर आ पहुँचे। उन पृथु आदि वसुओंमें 'द्यौ' नामक एक श्रेष्ठ वसु थे। उनकी पत्नीने 'नन्दिनी' गौको देखकर अपने पतिसे पूछा कि यह सुन्दर गाय किसकी है?॥ २३—२६॥

द्यौने उससे कहा—हे सुन्दरि! सुनो, यह महर्षि वसिष्ठजीकी गाय है। इस गायका दूध स्त्री या पुरुष जो कोई भी पीता है, उसकी आयु दस हजार वर्षकी हो जाती है और उसका यौवन सर्वदा बना रहता है। यह सुनकर उस सुन्दरी स्त्रीने कहा—मृत्युलोकमें मेरी एक सखी है। मेरी वह सखी राजर्षि उशीनरकी परम सुन्दरी कन्या है। हे महाभाग! उसके लिये अत्यन्त सुन्दर तथा सब प्रकारकी कामनाओंको देनेवाली इस गायको बछड़े-सहित अपने आश्रममें ले चलिये। जब मेरी सखी इसका दूध पीयेगी तब वह निर्जरा एवं रोगरहित होकर मनुष्योंमें एकमात्र अद्वितीय बन जायगी। उसका वचन सुनकर द्यौ नामके वसुने 'पृथु' आदि अष्टवसुओंके साथ जितेन्द्रिय मुनिका अपमान करके नन्दिनीका अपहरण कर लिया॥ २७—३१½॥

नन्दिनीका हरण हो जानेपर महातपस्वी वसिष्ठ फल लेकर शीघ्र ही अपने आश्रम आ गये। जब मुनिने अपने आश्रममें बछड़ेसहित नन्दिनीगायको नहीं देखा तब वे तेजस्वी वनों एवं गुफाओंमें उसे ढूँढ़ने लगे, जब वह गाय नहीं मिली तब वरुणपुत्र मुनि वसिष्ठजी ध्यानयोगसे उसे वसुओंके द्वारा हरी गयी जानकर अत्यन्त कुपित हुए। वसुओंने मेरी अवमानना करके मेरी गौ चुरा ली है। वे सभी मानवयोनिमें जन्म ग्रहण करेंगे, इसमें सन्देह नहीं है।

इस प्रकार धर्मात्मा वसिष्ठजीने उन वसुओंको शाप दिया॥ ३२—३६॥

हमें शाप दे दिया गया है—यह सुनकर वे सभी वसु चिन्तित और दुःखित हो गये एवं ज्ञानी महर्षि वसिष्ठके पास पहुँचे और उन्हें प्रसन्न करते हुए वे सभी वसु उनके शरणागत हो गये। तब धर्मात्मा मुनि वसिष्ठजीने उन सामने खड़े वसुओंको देखकर कहा—तुमलोगोंमेंसे [सात वसु] एक-एक वर्षके अन्तरालसे ही शापसे मुक्त हो जायँगे; परंतु जिसने मेरी प्रिय सवत्सा नन्दिनीका अपहरण किया है, वह 'द्यौ' नामक वसु मनुष्य-शरीरमें ही बहुत दिनोंतक रहेगा॥ ३७—३९ $^{१}/_{२}$॥

उन अभिशप्त वसुओंने मार्गमें जाती हुई नदियोंमें उत्तम गंगाजीको देखकर उन अभिशप्त तथा चिन्तातुर गंगाजीसे प्रणामपूर्वक कहा—हे देवि! अमृत पीनेवाले हम देवता मानवकुक्षिसे कैसे उत्पन्न होंगे, यह हमें महान् चिन्ता है, अतः हे नदियोंमें श्रेष्ठ! आप ही मानुषी बनकर हमलोगोंको जन्म दें। पृथ्वीपर शन्तनु नामक एक राजर्षि हैं, हे अनघे! आप उन्हींकी भार्या बन जायँ और हे सुरापगे! हमें क्रमशः जन्म लेनेपर आप जलमें छोड़ती जायँ। आपके ऐसा करनेसे हमलोग भी शापसे मुक्त हो जायँगे, इसमें सन्देह नहीं है। गंगाजीने जब उनसे 'तथास्तु' कह दिया तब वे सब वसु अपने-अपने लोकको चले गये और गंगाजी भी बार-बार विचार करती हुई वहाँसे चली गयीं॥ ४०—४४ $^{१}/_{२}$॥

उस समय राजा महाभिषने राजा प्रतीपके पुत्रके रूपमें जन्म लिया। उन्हींका नाम शन्तनु पड़ा, जो सत्यप्रतिज्ञ एवं धर्मात्मा राजर्षि हुए। महाराज प्रतीपने परम तेजस्वी भगवान् सूर्यकी आराधना की। उस समय जलमेंसे एक परम सुन्दर स्त्री निकल पड़ी और वह सुमुखी आकर तुरंत ही महाराजके शाल वृक्षके समान विशाल दाहिने जंघेपर विराजमान हो गयी। अंकमें बैठी हुई उस स्त्रीसे राजाने पूछा—'हे वरानने! तुम मुझसे बिना पूछे ही मेरे शुभ दाहिने जंघेपर क्यों बैठ गयी?'॥ ४५—४८॥

उस सुन्दरीने उनसे कहा—'हे नृपश्रेष्ठ! हे कुरुश्रेष्ठ! मैं जिस कामनासे आपके अंकमें बैठी हूँ, उस कामनावाली मुझे आप स्वीकार करें'॥ ४९॥

उस रूपयौवनसम्पन्ना सुन्दरीसे राजाने कहा—'मैं किसी सुन्दरी परस्त्रीको कामकी इच्छासे नहीं स्वीकार करता'॥ ५०॥

हे भामिनि! हे शुचिस्मिते! तुम मेरे दाहिने जंघेपर प्रेमपूर्वक आकर बैठ गयी हो, उसे तुम पुत्रों तथा पुत्रवधुओंका स्थान समझो। अतः हे कल्याणि! मेरे मनोवांछित पुत्रके उत्पन्न होनेपर तुम मेरी पुत्रवधू हो जाओ। तुम्हारे पुण्यसे मुझे पुत्र हो जायगा, इसमें संशय नहीं है॥ ५१-५२॥

वह दिव्य दर्शनवाली कामिनी 'तथास्तु' कहकर चली गयी और उस स्त्रीके विषयमें सोचते हुए राजा प्रतीप भी अपने घर चले गये॥ ५३॥

समय बीतनेपर पुत्रके युवा होनेपर वन जानेकी इच्छावाले राजाने अपने पुत्रको वह समस्त पूर्व वृत्तान्त कह सुनाया॥ ५४॥

सारी बात बताकर राजाने अपने पुत्रसे कहा—'यदि वह सुन्दरी बाला तुम्हें कभी वनमें मिले और अपनी अभिलाषा प्रकट करे तो उस मनोरमाको स्वीकार कर लेना तथा उससे मत पूछना कि तुम कौन हो? यह मेरी आज्ञा है, उसे अपनी धर्मपत्नी बनाकर तुम सुखी रहोगे'॥ ५५-५६ $^{१}/_{२}$॥

सूतजी बोले—इस प्रकार अपने पुत्रको आदेश देकर महाराज प्रतीप प्रसन्नताके साथ उन्हें सारा राज्य-वैभव सौंपकर वनको चले गये। वहाँ जाकर वे तप करके तथा आदिशक्ति भगवती जगदम्बिकाकी आराधना करके अपने तेजसे शरीर छोड़कर स्वर्ग चले गये। महातेजस्वी राजा शन्तनुने सार्वभौम राज्य प्राप्त किया और वे धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करने लगे॥ ५७—६०॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत द्वितीय स्कन्धका 'प्रतीपसे शन्तनुजन्मवर्णन' नामक तीसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३॥

चौथा अध्याय

गंगाजीद्वारा राजा शन्तनुका पतिरूपमें वरण, सात पुत्रोंका जन्म तथा गंगाका उन्हें अपने जलमें प्रवाहित करना, आठवें पुत्रके रूपमें भीष्मका जन्म तथा उनकी शिक्षा-दीक्षा

सूतजी बोले—प्रतीपके स्वर्ग चले जानेपर सत्यपराक्रमी राजा शन्तनु व्याघ्र तथा मृगोंको मारते हुए मृगयामें तत्पर हो गये॥ १॥

किसी समय गंगाके किनारे घने वनमें विचरण करते हुए राजाने मृगके बच्चे-जैसी आँखोंवाली तथा सुन्दर आभूषणोंसे युक्त एक सुन्दर स्त्रीको देखा॥ २॥

उसे देखकर राजा शन्तनु हर्षित हो गये और सोचने लगे कि साक्षात् दूसरी लक्ष्मीके समान रूपयौवनसे सम्पन्न यह स्त्री वही है, जिसके विषयमें पिताजीने मुझे बताया था॥ ३॥

उसके मुखकमलका पान करते हुए राजा तृप्त नहीं हुए। हर्षातिरेकसे उन निष्पाप राजाको रोमांच हो गया और उनका चित्त उस स्त्रीमें रम गया॥ ४॥

वह स्त्री भी उन्हें राजा महाभिष जानकर प्रेमासक्त हो गयी। वह मन्द-मन्द मुसकराती हुई राजाके सामने खड़ी हो गयी। उस सुन्दरीको देखकर राजा अत्यन्त प्रेमविवश हो गये तथा कोमल वाणीसे उसे सान्त्वना देते हुए मधुर वचन कहने लगे॥ ५-६॥

हे वामोरु! हे सुमुखि! तुम कोई देवी, मानुषी, गन्धर्वी, यक्षी, नागकन्या अथवा अप्सरा तो नहीं हो। हे वरारोहे! तुम जो कोई भी हो, मेरी भार्या बन जाओ। हे सुन्दरि! तुम प्रेमपूर्वक मुसकरा रही हो; अब मेरी धर्मपत्नी बन जाओ॥ ७-८॥

सूतजी बोले—राजा शन्तनु तो निश्चितरूपसे नहीं जान सके कि ये वे ही गंगा हैं, किंतु गंगाने उन्हें पहचान लिया कि ये शन्तनुके रूपमें उत्पन्न वही राजा महाभिष हैं। पूर्वकालीन प्रेमवश राजा शन्तनुके उस वचनको सुनकर उस स्त्रीने मन्द मुसकान करके यह वचन कहा॥ ९-१०॥

स्त्री बोली—हे नृपश्रेष्ठ! मैं यह जानती हूँ कि आप महाराज प्रतीपके योग्य पुत्र हैं। अतः भला कौन ऐसी स्त्री होगी, जो संयोगवश अपने अनुरूप पुरुषको पाकर भी उसे पतिरूपमें स्वीकार न करेगी॥ ११॥

हे नृपश्रेष्ठ! वचनबद्ध करके ही मैं आपको अपना पति स्वीकार करूँगी। हे राजन्! हे नृपोत्तम! अब आप मेरी शर्त सुनिये, जिससे मैं आपका वरण कर सकूँ॥ १२॥

हे राजन्! मैं भला-बुरा जो भी कार्य करूँ, आप मुझे मना नहीं करेंगे तथा न कोई अप्रिय बात ही कहेंगे। जिस समय आप मेरा यह वचन नहीं मानेंगे, उसी समय हे मान्य नृपश्रेष्ठ! मैं आपको त्यागकर जहाँ चाहूँगी, उस जगह चली जाऊँगी॥ १३-१४॥

उस समय प्रार्थनापूर्वक वसुओंके जन्म ग्रहण करनेका स्मरण करके तथा महाभिषके पूर्वकालीन प्रेमको अपने मनमें सोच करके गंगाजीने राजा शन्तनुके 'तथास्तु' कहनेपर उन्हें अपना पति बनाना स्वीकार कर लिया। इस प्रकार मानवीरूप धारण करनेवाली रूपवती तथा सुन्दर वर्णवाली गंगा महाराज शन्तनुकी पत्नी बनकर राजभवनमें पहुँच गयीं। राजा शन्तनु उन्हें पाकर सुन्दर उपवनमें विहार करने लगे॥ १५—१७॥

भावोंको जाननेवाली वे सुन्दरी गंगा भी राजा शन्तनुके साथ विहार करने लगीं। उनके साथ महाराज शन्तनुको क्रीडा करते अनेक वर्ष बीत गये, पर उन्हें समय बीतनेका बोध ही न हुआ। वे उन मृगलोचनाके साथ उसी प्रकार विहार करते थे जिस प्रकार इन्द्राणीके साथ इन्द्र। सर्वगुणसम्पन्ना गंगा तथा चतुर शन्तनु भी दिव्य भवनमें लक्ष्मी तथा नारायणकी भाँति विहार करने लगे॥ १८-१९ $^{1}/_{2}$ ॥

इस प्रकार कुछ समय बीतनेपर गंगाजीने महाराज शन्तनुसे गर्भ धारण किया और यथासमय उन सुनयनीने एक वसुको पुत्ररूपमें जन्म दिया। उन्होंने उस बालकको उत्पन्न होते ही तत्काल जलमें फेंक दिया। इस प्रकार दूसरे, तीसरे, चौथे, पाँचवें, छठें तथा सातवें पुत्रके मारे

जानेपर राजा शन्तनुको बड़ी चिन्ता हुई॥ २०—२२॥

[उन्होंने सोचा—] अब मैं क्या करूँ? मेरा वंश इस पृथ्वीपर सुस्थिर कैसे होगा? इस पापिनीने मेरे सात पुत्र मार डाले। यदि इसे रोकता हूँ तो यह मुझे त्यागकर चली जायगी। मेरा अभिलषित आठवाँ गर्भ भी इसे प्राप्त हो गया है। यदि अब भी मैं इसे रोकता नहीं हूँ तो यह इसे भी जलमें फेंक देगी। यह भी मुझे महान् सन्देह है कि भविष्यमें कोई और सन्तति होगी अथवा नहीं। यदि उत्पन्न हो भी तो पता नहीं कि यह दुष्टा उसकी रक्षा करेगी अथवा नहीं? इस संशयकी स्थितिमें मैं अब क्या करूँ?॥ २३—२६॥

वंशकी रक्षाके लिये मुझे कोई दूसरा यत्न करना ही होगा। तदनन्तर यथासमय जब वह आठवाँ 'द्यौ' नामक वसु पुत्ररूपमें उत्पन्न हुआ, जिसने अपनी स्त्रीके वशीभूत होकर वसिष्ठकी नन्दिनी गौका हरण कर लिया था, तब उस पुत्रको देखकर राजा शन्तनु गंगाजीके पैरोंपर गिरते हुए कहने लगे॥ २७-२८॥

हे तन्वंगि! मैं तुम्हारा दास हूँ। हे शुचिस्मिते! मैं प्रार्थना करता हूँ। मैं इस पुत्रको पालना चाहता हूँ, अतः इसे जीवित ही मुझे दे दो॥ २९॥

हे करभोरु! तुमने मेरे सात सुन्दर पुत्रोंको मार डाला, किंतु इस आठवें पुत्रकी रक्षा करो। हे सुश्रोणि! मैं तुम्हारे पैरोंपर पड़ता हूँ॥ ३०॥

हे परम रूपवती! इसके बदले तुम मुझसे जो माँगोगी, मैं वह दुर्लभ वस्तु भी तुम्हें दूँगा। अब तुम मेरे वंशकी रक्षा करो॥ ३१॥

वेदविद् विद्वानोंने कहा है कि पुत्रहीन मनुष्यकी स्वर्गमें भी गति नहीं होती। इसी कारण हे सुन्दरि! अब मैं इस आठवें पुत्रके लिये याचना करता हूँ॥ ३२॥

राजा शन्तनुके ऐसा कहनेपर भी जब गंगा उस पुत्रको लेकर जानेको उद्यत हुईं, तब उन्होंने अत्यन्त कुपित एवं दुःखित होकर उनसे कहा—'हे पापिनि! अब मैं क्या करूँ? क्या तुम नरकसे भी नहीं डरती? तुम कौन हो? लगता है कि तुम पापियोंकी पुत्री हो, तभी तो तुम सदा पापकर्ममें लगी रहती हो, अब तुम जहाँ चाहो वहाँ जाओ या रहो, किंतु यह पुत्र यहीं रहेगा। हे पापिनि! अपने

वंशका अन्त करनेवाली ऐसी तुम्हें रखकर भी मैं क्या करूँगा?'॥ ३३—३५॥

राजाके ऐसा कहनेपर उस नवजात शिशुको लेकर जाती हुई गंगाने क्रोधपूर्वक उनसे कहा—पुत्रकी कामनावाली मैं भी इस पुत्रको वनमें ले जाकर पालूँगी। शर्तके अनुसार अब मैं चली जाऊँगी; क्योंकि आपने अपना वचन तोड़ा है। [हे राजन्!] मुझे आप गंगा जानिये; देवताओंका कार्य सम्पन्न करनेके लिये ही मैं यहाँ आयी थी। महात्मा वसिष्ठने प्राचीन कालमें आठों वसुओंको शाप दिया था कि तुम सब मनुष्ययोनिमें जाकर जन्म लो। तब चिन्तासे व्याकुल होकर आठों वसु मुझे वहाँ स्थित देखकर कहने लगे—हे अनघे! आप हमारी माता बनें। अतः हे नृपश्रेष्ठ! उन्हें वरदान देकर मैं आपकी पत्नी बन गयी। आप ऐसा समझ लीजिये कि देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये ही मेरा जन्म हुआ है॥ ३६—४०॥

वे सातों वसु तो आपके पुत्र बनकर ऋषिके शापसे विमुक्त हो गये। यह आठवाँ वसु कुछ समयतक आपके पुत्ररूपमें विद्यमान रहेगा। अतः हे महाराज शन्तनु! मुझ गंगाके द्वारा दिये हुए पुत्रको आप स्वीकार कीजिये। इसे आठवाँ वसु जानते हुए आप पुत्र-सुखका भोग करें; क्योंकि हे महाभाग! यह 'गांगेय' बड़ा ही बलवान् होगा। अब इसे मैं वहीं ले जा रहीं हूँ, जहाँ मैंने आपका पतिरूपसे वरण किया था॥ ४१—४३॥

हे राजन्! इसे पालकर इसके युवा होनेपर मैं पुनः

आपको दे दूँगी; क्योंकि मातृहीन बालक न जी पाता है और न सुखी रहता है॥ ४४॥

ऐसा कहकर उस बालकको लेकर गंगा वहीं अन्तर्धान हो गयीं। राजा भी अत्यन्त दु:खित होकर अपने राजभवनमें रहने लगे॥ ४५॥

महाराज शन्तनु स्त्री तथा पुत्रके वियोगजन्य महान् कष्टका सदा अनुभव करते हुए भी किसी प्रकार राज्यकार्य सँभालने लगे॥ ४६॥

कुछ समय बीतनेपर महाराज आखेटके लिये वनमें गये। वहाँ अनेक प्रकारके मृगगणों, भैंसों तथा सूकरोंको अपने बाणोंसे मारते हुए वे गंगाजीके तटपर जा पहुँचे। उस नदीमें बहुत थोड़ा जल देखकर वे राजा शन्तनु बड़े आश्चर्यमें पड़ गये॥ ४७-४८॥

उन्होंने वहाँ नदीके किनारे खेलते हुए एक बालकको महान् धनुषको खींचकर बहुतसे बाणोंको छोड़ते हुए देखा। उसे देखकर राजा शन्तनु बड़े विस्मित हुए और कुछ भी नहीं जान पाये। उन्हें यह भी स्मरण न हो पाया कि यह मेरा पुत्र है या नहीं॥ ४९-५०॥

उस बालकके अतिमानवीय कृत्य, बाण चलानेके हस्तलाघव, असाधारण विद्या और कामदेवके समान सुन्दर रूपको देखकर अत्यन्त विस्मित राजाने उससे पूछा—'हे निर्दोष बालक! तुम किसके पुत्र हो?' किंतु उस वीर बालकने कोई उत्तर नहीं दिया और वह बाण चलाता हुआ अन्तर्धान हो गया। तब राजा शन्तनु चिन्तित होकर यह सोचने लगे कि कहीं यह मेरा ही पुत्र तो नहीं है? अब मैं क्या करूँ और कहाँ जाऊँ? ॥५१—५३॥

जब उन्होंने वहीं खड़े होकर समाहितचित्तसे गंगाजीकी स्तुति की तब गंगाजीने प्रसन्न होकर पहलेके ही समान एक रूपवती स्त्रीके रूपमें उन्हें दर्शन दिया॥ ५४॥

सर्वांगसुन्दरी गंगाजीको देखकर राजा शन्तनु बोले—हे गंगे! यह बालक कौन था और कहाँ चला गया? आप उसे मुझको दिखा दीजिये॥ ५५॥

गंगाजी बोलीं—हे राजेन्द्र! यह आपका ही पुत्र आठवाँ वसु है, जिसे मैंने पाला है। इस महातपस्वी गांगेयको मैं आपको सौंपती हूँ॥ ५६॥

हे सुव्रत! यह बालक आपके इस कुलकी कीर्तिको

बढ़ानेवाला होगा। इसे सभी वेदशास्त्र एवं शाश्वत धनुर्वेदकी शिक्षा दी गयी है॥ ५७॥

आपका यह पुत्र वसिष्ठजीके दिव्य आश्रममें रहा है और सब विद्याओंमें पारंगत, कार्यकुशल एवं सदाचारी है॥ ५८॥

जिस विद्याको जमदग्निपुत्र परशुराम जानते हैं, उसे आपका यह पुत्र जानता है। हे राजेन्द्र! हे नराधिप! आप इसे ग्रहण कीजिये, जाइये और सुखपूर्वक रहिये॥ ५९॥

ऐसा कहकर तथा वह पुत्र राजाको देकर गंगाजी अन्तर्धान हो गयीं। उसे पाकर राजा शन्तनु बहुत आनन्दित और सुखी हुए॥ ६०॥

राजा शन्तनु पुत्रका आलिंगन करके तथा उसका मस्तक सूँघकर और उसे अपने रथपर बैठाकर अपने नगरकी ओर चल पड़े॥ ६१॥

राजाने हस्तिनापुर जाकर महान् उत्सव किया और दैवज्ञको बुलाकर शुभ मुहूर्त पूछा॥ ६२॥

राजा शन्तनुने सब प्रजाजनों तथा सभी श्रेष्ठ मन्त्रियोंको बुलाकर गंगापुत्रको युवराज पदपर बैठा दिया॥ ६३॥

उस सर्वगुणसम्पन्न पुत्रको युवराज बनाकर वे धर्मात्मा शन्तनु सुखपूर्वक रहने लगे। अब उन्हें गंगाजीकी भी सुधि नहीं रही॥ ६४॥

सूतजी बोले—इस प्रकार मैंने आप सबको वसुओंके शापका कारण, गंगाके प्राकट्य तथा भीष्मकी उत्पत्तिका वृत्तान्त कह दिया॥ ६५॥

जो मनुष्य गंगावतरण तथा वसुओंके उद्भवकी इस पवित्र कथाको सुनता है, वह सब प्रकारके पापोंसे मुक्त हो जाता है; इसमें सन्देह नहीं है॥ ६६॥

हे मुनिश्रेष्ठो! मैंने यह पवित्र, पुण्यदायक तथा वेद-सम्मत पौराणिक आख्यान जैसा व्यासजीके मुखारविन्दसे सुना था, वैसा आपलोगोंसे कह दिया॥ ६७॥

द्वैपायन व्यासजीके मुखसे निःसृत यह श्रीमद्देवी-भागवतमहापुराण बड़ा ही पवित्र, अनेकानेक कथाओंसे परिपूर्ण तथा सर्ग-प्रतिसर्ग आदि पाँच पुराण-लक्षणोंसे युक्त है॥ ६८॥

हे मुनिश्रेष्ठो! सुननेवालोंके समस्त पापोंका नाश करनेवाले, कल्याणकारी, सुखदायक तथा पुण्यप्रद इस इतिहासका मैंने आपलोगोंसे वर्णन कर दिया॥ ६९॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत द्वितीय स्कन्धका 'देवव्रतोत्पत्तिवर्णन' नामक चौथा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४॥

पाँचवाँ अध्याय

मत्स्यगन्धा (सत्यवती)-को देखकर राजा शन्तनुका मोहित होना, भीष्मद्वारा आजीवन ब्रह्मचर्य-व्रत धारण करनेकी प्रतिज्ञा करना और शन्तनुका सत्यवतीसे विवाह

ऋषिगण बोले—हे लोमहर्षणतनय सूतजी! आपने शापवश अष्टवसुओंके जन्म तथा गंगाजीकी उत्पत्तिका वर्णन किया। हे धर्मज्ञ! व्यासजीकी सत्यवती नामकी साध्वी माता जो पवित्र गन्धवाली थीं, वे राजा शन्तनुको पत्नीरूपसे कैसे प्राप्त हुईं? यह हमें विस्तारके साथ बताइये। महान् धर्मनिष्ठ राजा शन्तनुने निषादपुत्रीके साथ विवाह क्यों किया? हे सुव्रत! यह बताकर आप हमारे सन्देहका निवारण कीजिये॥ १—३॥

सूतजी बोले—राजर्षि शन्तनु सदा आखेट करनेमें तत्पर रहते थे। वे वनमें जाकर मृग, महिष तथा रुरुमृगोंका वध किया करते थे॥ ४॥

राजा शन्तनु केवल चार वर्षतक भीष्मके साथ उसी प्रकार सुखसे रहे, जिस प्रकार भगवान् शंकर कार्तिकेयके साथ आनन्दपूर्वक रहते थे॥ ५॥

एक बार वे महाराज शन्तनु वनमें बाण छोड़ते हुए बहुतसे गैंड़ों तथा सूकरोंका वध करते हुए किसी समय नदियोंमें श्रेष्ठ यमुनाके किनारे जा पहुँचे॥ ६॥

राजाने वहाँपर कहींसे आती हुई उत्तम गन्धको सूँघा। तब उस सुगन्धिके उद्गमका पता लगानेके लिये वे वनमें विचरने लगे॥ ७॥

वे बड़े असमंजसमें पड़ गये कि यह मनोहर सुगन्धि न मन्दारपुष्पकी है, न कस्तूरीकी है, न मालतीकी है, न चम्पाकी है और न तो केतकीकी ही है!॥ ८॥

मैंने ऐसी अनुपम सुगन्धिका पूर्वमें कभी नहीं अनुभव किया था। [इस दिव्य सुगन्धिको लेकर] सुन्दर वायु बह रही है। मेरी घ्राणेन्द्रियको मुग्ध कर देनेवाली यह वायु कहाँसे आ रही है?॥ ९॥

इस प्रकार सोचते-विचारते राजा शन्तनु गन्धके लोभसे मोहित सुगन्धित वायुका अनुसरण करते हुए वनप्रदेशमें विचरण करने लगे॥ १०॥

उन्होंने यमुनानदीके तटपर बैठी हुई एक दिव्यदर्शनवाली स्त्रीको देखा, जो मलिन वस्त्र धारण करने और शृंगार न करनेपर भी मनोहर दीख रही थी॥ ११॥

उस श्याम नयनोंवाली स्त्रीको देखकर राजा आश्चर्यमें पड़ गये और उन्हें इस बातका विश्वास हो गया कि यह सुगन्धि इसी स्त्रीके शरीरकी है॥ १२॥

उसका अद्भुत एवं अतिशय सुन्दर रूप, सब प्राणियोंका मन स्वाभाविक रूपसे अपनी ओर आकर्षित करनेवाली सुगन्धि, उसकी अवस्था तथा उसका वैसा शुभ नवयौवन देखकर राजा शन्तनुको महान् विस्मय हुआ॥ १३॥

यह कौन है और इस समय यह कहाँसे आयी है? यह कोई देवांगना है या मानवी स्त्री, यह कोई गन्धर्वकन्या अथवा नागकन्या है? मैं इस सुगन्धा कामिनीके विषयमें कैसे जानकारी प्राप्त करूँ?॥ १४॥

इस प्रकार विचार करके भी वे राजा जब कुछ निश्चय नहीं कर सके, तब तत्क्षण गंगाजीका स्मरण करते हुए वे कामके वशीभूत हो गये और तटपर बैठी हुई उस सुन्दरीसे उन्होंने पूछा—हे प्रिये! तुम कौन हो? किसकी पुत्री हो? हे वरोरु! तुम इस निर्जन वनमें क्यों बैठी हो? हे सुनयने! क्या तुम अकेली ही हो? तुम विवाहिता हो या कुमारी; यह बताओ॥ १५-१६॥

हे अरालनेत्रे! तुम जैसी मनोरमा स्त्रीको देखकर मैं कामातुर हो गया हूँ। हे प्रिये! विस्तारपूर्वक मुझे यह बतलाओ कि तुम कौन हो और क्या करना चाहती हो?॥ १७॥

महाराज शन्तनुके वचन सुनकर वह सुन्दर दाँतोंवाली तथा कमलके समान नयनोंवाली स्त्री मुसकराकर बोली—हे राजन्! आप मुझे निषादकन्या और अपने पिताकी आज्ञामें रहनेवाली कन्या समझें॥ १८॥

हे नृपेन्द्र! मैं अपने धर्मका अनुसरण करती हुई जलमें यह नौका चलाती हूँ। हे अर्थपते! पिताजी अभी ही घर गये हैं। आपके सम्मुख यह बातें मैंने सत्य कही हैं॥ १९॥

यह कहकर वह निषादकन्या मौन हो गयी। तब कामसे पीड़ित महाराज शन्तनुने उससे कहा—मुझ कुरुवंशी वीरको तुम अपना पति बना लो, जिससे तुम्हारा यौवन व्यर्थ न जाय॥ २०॥

मेरी कोई दूसरी पत्नी नहीं है। अतः हे मृगनयनी! तुम मेरी धर्मपत्नी बन जाओ। हे प्रिये! मैं सर्वदाके लिये तुम्हारा वशवर्ती दास बन जाऊँगा। मुझे कामदेव पीड़ित कर रहा है॥ २१॥

मेरी प्रियतमा मुझे छोड़कर चली गयी है, तबसे मैंने अपना दूसरा विवाह नहीं किया। हे कान्ते! मैं इस समय विधुर हूँ। तुम जैसी सर्वांगसुन्दरीको देखकर मेरा मन अपने वशमें नहीं रह गया है॥ २२॥

राजाकी अमृतरसके समान मधुर तथा मनोहारी बात सुनकर वह दाशकन्या सुगन्धा सात्त्विक भावसे युक्त होकर धैर्य धारण करके राजासे बोली—हे राजन्! आपने मुझसे जो कुछ कहा, वह यथार्थ है; किंतु आप अच्छी तरह जान लीजिये कि मैं स्वतन्त्र नहीं हूँ। मेरे पिताजी ही मुझे दे सकते हैं। अतएव आप उन्हींसे मेरे लिये याचना कीजिये॥ २३-२४॥

मैं एक निषादकी कन्या होती हुई भी स्वेच्छाचारिणी नहीं हूँ। मैं सदा पिताके वशमें रहती हुई सब काम करती हूँ। यदि मेरे पिताजी मुझे आपको देना स्वीकार कर लें तब आप मेरा पाणिग्रहण कर लीजिये और मैं सदाके लिये आपके अधीन हो जाऊँगी॥ २५॥

हे राजन्! परस्पर आसक्त होनेपर भी कुलकी मर्यादा तथा परम्पराके अनुसार धैर्य धारण करना चाहिये॥ २६॥

सूतजी बोले—उस सुगन्धाकी यह बात सुनकर कामातुर राजा उसे माँगनेके लिये निषादराजके घर गये॥ २७॥

इस प्रकार महाराज शन्तनुको अपने घर आया देखकर निषादराजको बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्हें प्रणाम करके हाथ जोड़कर वह बोला—॥ २८॥

निषादने कहा—हे राजन्! मैं आपका दास हूँ। आपके आगमनसे मैं कृतकृत्य हो गया। हे महाराज! आप जिस कार्यके लिये आये हों, मुझे आज्ञा दीजिये॥ २९॥

राजा बोले—हे अनघ! यदि आप अपनी यह कन्या मुझे प्रदान कर दें तो मैं इसे अपनी धर्मपत्नी बना लूँगा; यह मैं सत्य कह रहा हूँ॥ ३०॥

निषादने कहा—हे महाराज! यदि आप मेरे इस

कन्यारत्नके लिये प्रार्थना कर रहे हैं तो मैं अवश्य दूँगा; क्योंकि देनेयोग्य वस्तु तो कभी अदेय नहीं होती है; किंतु हे महाराज! आपके बाद इस कन्याका पुत्र ही राजाके रूपमें अभिषिक्त होना चाहिये, आपका दूसरा पुत्र नहीं॥ ३१-३२॥

सूतजी बोले—निषादकी बात सुनकर राजा शन्तनु चिन्तित हो उठे। उस समय मनमें भीष्मका स्मरण करके राजा कुछ भी उत्तर न दे सके॥ ३३॥

तब कामातुर तथा चिन्तित राजा राजमहलमें चले गये। उन्होंने घर जानेपर न स्नान किया, न भोजन किया और न शयन ही किया॥ ३४॥

तब उन्हें चिन्तित देखकर पुत्र देवव्रत राजाके पास जाकर उनकी इस चिन्ताका कारण पूछने लगे—हे नृपश्रेष्ठ! कौन-सा ऐसा शत्रु है जिसको आप जीत न सके; मैं उसे आपके अधीन कर दूँ। हे नृपोत्तम! आपकी क्या चिन्ता है, मुझे सही-सही बताइये॥ ३५-३६॥

हे राजन्! भला उस उत्पन्न हुए पुत्रसे क्या लाभ? जो पैदा होकर अपने पिताका दुःख न समझे तथा उसको दूर करनेका उपाय न कर सके। ऐसा कुपुत्र तो पूर्वजन्मके किसी ऋणको वापस लेनेके लिये यहाँ आता है; इसमें किसी प्रकारका सन्देह नहीं है॥ ३७॥

दशरथके पुत्र रामचन्द्रजी भी पिताकी आज्ञासे राज्य त्यागकर लक्ष्मण और सीताके साथ वनमें चले गये तथा चित्रकूटपर्वतपर निवास करने लगे॥ ३८॥

इसी प्रकार हे राजन्! राजा हरिश्चन्द्रका पुत्र जो रोहित नामसे प्रसिद्ध था, अपने पिताके इच्छानुसार बिकनेके लिये तत्पर हो गया और खरीदा हुआ वह बालक ब्राह्मणके घरमें सेवकका कार्य करने लगा॥ ३९॥

'अजीगर्त' ब्राह्मणका एक श्रेष्ठ पुत्र था, जो शुनःशेप नामसे प्रसिद्ध था। खरीद लिये जानेपर वह पिताके द्वारा यूपमें बाँध दिया गया, जिसे बादमें विश्वामित्रने छुड़ाया था॥ ४०॥

पूर्वकालमें पिताकी आज्ञासे ही परशुरामने अपनी माताका सिर काट दिया था, ऐसा लोकमें प्रसिद्ध है। इस अनुचित कर्मको करके भी उन्होंने पिताकी आज्ञाका महत्त्व बढ़ाया था॥ ४१॥

हे पृथ्वीपते! यह मेरा शरीर आपका ही है। यद्यपि मैं समर्थ नहीं हूँ; फिर भी आप कहिये मैं आपकी क्या सेवा करूँ? मेरे रहते आपको किसी प्रकारकी चिन्ता नहीं होनी चाहिये। मैं आपका असाध्य कार्य भी तत्काल पूरा करूँगा॥ ४२॥

हे राजन्! आप बताइये कि आपको किस बातकी चिन्ता है? मैं अभी धनुष लेकर उसका निवारण कर दूँगा। यदि मेरे इस शरीरसे भी आपका कार्य सिद्ध हो सके तो मैं आपकी अभिलाषा पूर्ण करनेको तत्पर हूँ। उस पुत्रको धिक्कार है, जो समर्थ होकर भी अपने पिताकी इच्छाको पूर्ण नहीं करता। जिस पुत्रके द्वारा पिताकी चिन्ता दूर न हुई, उस पुत्रका जन्म लेनेका क्या प्रयोजन?॥ ४३-४४॥

सूतजी बोले—अपने पुत्र गांगेयका वचन सुनकर महाराज शन्तनु मनमें लज्जित होते हुए उससे शीघ्र ही कहने लगे॥ ४५॥

राजा बोले—हे पुत्र! मुझे यही महान् चिन्ता है कि तुम मेरे इकलौते पुत्र हो। यद्यपि तुम बलवान्, स्वाभिमानी, रणस्थलमें पीठ न दिखानेवाले साहसी पुत्र हो तथापि केवल एक पुत्र होनेके कारण मुझ पिताका जीवन व्यर्थ है; क्योंकि यदि कहीं किसी समरमें तुम्हें अमरगति प्राप्त हो गयी तो मैं असहाय होकर क्या कर सकूँगा? यही मुझे सबसे बड़ी चिन्ता लगी है; इसी कारण मैं आजकल दुःखित रहता हूँ। हे पुत्र! इसके अतिरिक्त मुझे दूसरी कोई चिन्ता नहीं है, जिसे मैं तुम्हारे सामने कहूँ॥ ४६—४८॥

सूतजी बोले—यह सुनकर गांगेयने वृद्ध मन्त्रियोंसे पूछा कि लज्जासे परिपूर्ण महाराज मुझे कुछ बता नहीं रहे हैं॥ ४९॥

आपलोग राजाकी भावना जानकर सही एवं निश्चित कारण मुझे बताइये; मैं प्रसन्नतापूर्वक उसे सम्पन्न करूँगा॥ ५०॥

यह सुनकर मन्त्रिगण राजाके पास गये और सब कारण सही-सही जानकर उन्होंने युवराज गांगेयसे आकर

कह दिया। तब उनका अभिप्राय जानकर गांगेय विचार करने लगे। मन्त्रियोंके साथ गंगापुत्र देवव्रत उस निषादके घर शीघ्र गये और प्रेमके साथ विनम्र होकर यह कहने लगे॥ ५१-५२॥

गांगेय बोले—हे परन्तप! आप अपनी सुन्दरी कन्या मेरे पिताजीके लिये प्रदान कर दें—यही मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ। आपकी ये कन्या मेरी माता हों और मैं इनका सेवक रहूँगा॥ ५३॥

निषादने कहा—हे महाभाग! हे नृपनन्दन! आप स्वयं ही इसे अपनी भार्या बनाइये; क्योंकि आपके रहते इसका पुत्र राजा नहीं हो सकेगा॥ ५४॥

गांगेय बोले—आपकी यह कन्या मेरी माता है। मैं राज्य नहीं करूँगा। इसका पुत्र ही निश्चितरूपसे राज्य करेगा; इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है॥ ५५॥

निषादने कहा—मैंने आपकी बात सही मान ली; परंतु यदि आपका पुत्र बलवान् हुआ तो वह बलपूर्वक राज्यको निश्चय ही ले लेगा॥ ५६॥

गांगेय बोले—हे तात! मैं कभी विवाह नहीं करूँगा; मेरा यह वचन सर्वथा सत्य है—यह मैंने भीष्म-प्रतिज्ञा कर ली*॥ ५७॥
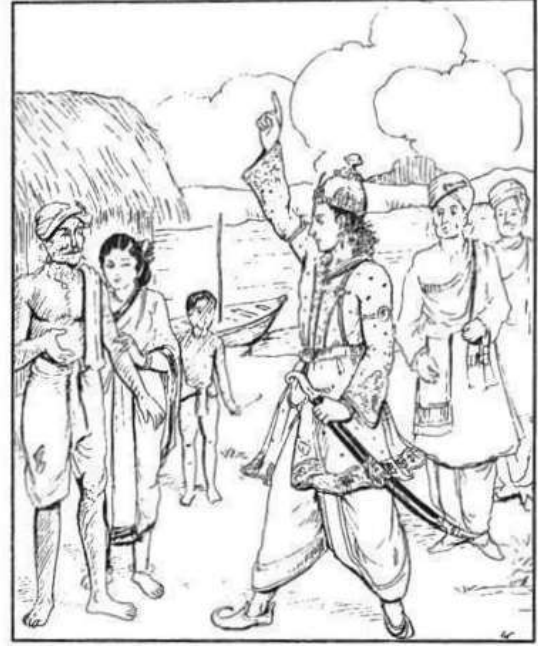
सूतजी बोले—गांगेयद्वारा की गयी ऐसी प्रतिज्ञा सुनकर निषादने उन राजा शन्तनुको अपनी सर्वांगसुन्दरी कन्या सत्यवती सौंप दी॥ ५८॥

इस प्रकार राजा शन्तनुने प्रिया सत्यवतीसे विवाह कर लिया। वे नृपश्रेष्ठ शन्तनु पूर्वमें सत्यवतीसे व्यासजीका जन्म नहीं जानते थे॥ ५९॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत द्वितीय स्कन्धका 'देवव्रतप्रतिज्ञावर्णन' नामक पाँचवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५॥

छठा अध्याय

दुर्वासाका कुन्तीको अमोघ कामद मन्त्र देना, मन्त्रके प्रभावसे कन्यावस्थामें ही कर्णका जन्म, कुन्तीका राजा पाण्डुसे विवाह, शापके कारण पाण्डुका सन्तानोत्पादनमें असमर्थ होना, मन्त्र-प्रयोगसे कुन्ती और माद्रीका पुत्रवती होना, पाण्डुकी मृत्यु और पाँचों पुत्रोंको लेकर कुन्तीका हस्तिनापुर आना

सूतजी बोले—इस प्रकार उन शन्तनुने सत्यवतीसे विवाह कर लिया। उसको [चित्रांगद और विचित्रवीर्य नामक] दो पुत्र उत्पन्न हुए और कालवश वे दोनों मृत्युको भी प्राप्त हो गये॥ १॥

पुनः व्यासजीके तेजसे धृतराष्ट्र उत्पन्न हुए, जो जन्मसे ही अन्धे थे; क्योंकि मुनिको देखकर उस स्त्रीने अपने नेत्र बन्द कर लिये थे॥ २॥

तत्पश्चात् छोटी रानी व्यासजीको देखकर पीली पड़ गयी, जिससे व्यासजीके कोपके कारण उससे पीतवर्ण पाण्डुका जन्म हुआ; इसमें सन्देह नहीं है॥ ३॥

निपुण दासीने व्यासजीको सन्तुष्ट किया, जिसके परिणामस्वरूप धर्मके अंश, सत्यवादी तथा पवित्र विचारवाले

* न दारसंग्रहं नूनं करिष्यामि हि सर्वथा। सत्यं मे वचनं तात मया भीष्मं व्रतं कृतम्॥ (श्रीमद्देवीभा० २।५।५७)

विदुर उत्पन्न हुए॥ ४॥

[बड़े होनेपर भी] अन्धे होनेके कारण धृतराष्ट्रको राज्य नहीं दिया गया और छोटे होते हुए भी पाण्डुको ही मन्त्रियोंने राजसिंहासनपर अभिषिक्त किया। भीष्मकी सम्मतिसे ही महाबली पाण्डुको राज्य प्राप्त हुआ तथा प्रतिभासम्पन्न विदुरजी मन्त्रणाकार्यमें नियुक्त किये गये॥ ५-६॥

धृतराष्ट्रकी दो स्त्रियाँ थीं। उनमें पहली सुबलपुत्री गान्धारी कही गयी है और दूसरी एक वैश्यपुत्री थी, जो गृहकार्योंमें प्रतिष्ठित की गयी थी॥ ७॥

वेदवादी विद्वानोंने पाण्डुकी भी दो पत्नियाँ बतायी हैं। एक शूरसेनकी पुत्री कुन्ती और दूसरी मद्रदेशकी राजकुमारी माद्री॥ ८॥

गान्धारीने परम सुन्दर सौ पुत्र उत्पन्न किये एवं वैश्या रानीने युयुत्सु नामका एक कान्तिमान् और प्रिय पुत्र उत्पन्न किया॥ ९॥

कुन्तीने कुमारी अवस्थामें ही अपने पिताके घर रहते हुए सूर्यसे कर्ण नामक एक सुन्दर पुत्र उत्पन्न किया था; तदनन्तर कुन्तीका विवाह पाण्डुसे हुआ॥ १०॥

ऋषिगण बोले—हे मुनिवर सूतजी! आप यह कैसी आश्चर्यजनक बात बता रहे हैं? पहले पुत्र उत्पन्न हुआ और बादमें पाण्डुके साथ कुन्तीका विवाह हुआ!॥ ११॥

सूर्यके द्वारा कन्या कुन्तीसे कर्णकी उत्पत्ति कैसे हुई? वह कुन्ती पुनः कन्या कैसे रह गयी, जो पाण्डुके साथ उसका विवाह हो गया। यह आप विस्तारपूर्वक बताइये॥ १२॥

सूतजी बोले—हे द्विजगण! शूरसेनकी वह पुत्री कुन्ती जब शिशु थी, तभी राजा कुन्तिभोजने उस सुन्दर कन्याको माँग लिया था। उन्होंने उस चारुहासिनी कन्याको अपनी पुत्री बनाकर रखा और उसे अग्निहोत्रके काममें नियुक्त कर दिया॥ १३-१४॥

एक बार महर्षि दुर्वासा वहाँ आ पहुँचे और चातुर्मास्यके लिये वहीं रहने लगे। कुन्तीने उनकी सेवा की, जिससे मुनिवर सन्तुष्ट हुए और उसको एक ऐसे मन्त्रका उपदेश दिया, जिसके प्रयोगसे आवाहित किये गये देवता स्वयं उपस्थित होंगे और उसकी अभिलाषा पूर्ण करेंगे॥ १५-१६॥

दुर्वासामुनिके वहाँसे चले जानेपर अपने गृहमें बैठी हुई कुन्ती उस मन्त्रकी परीक्षाके लिये मनमें सोचने लगी कि मैं किस देवताका ध्यान करूँ?॥ १७॥

उसने पूर्व दिशामें उदित होते हुए सूर्यको देखा और उस मन्त्रका उच्चारण करके उसने सूर्यका आवाहन किया। तब सूर्य अपने मण्डलसे अत्यन्त सुन्दर मनुष्यका रूप धारण करके आकाशसे कुन्तीके पास उस भवनमें उतर आये॥ १८-१९॥

सूर्यदेवको आते हुए देखकर कुन्ती आश्चर्यचकित हो गयी। वह सुन्दरी काँपती हुई तत्काल रजोधर्मको प्राप्त हो गयी॥ २०॥

उस समय सुन्दर नेत्रवाली कुन्ती हाथ जोड़कर खड़ी हो गयी और सूर्यसे बोली—मैं आपके दर्शनसे प्रसन्न हो गयी; अब आप अपने मण्डलको चले जाइये॥ २१॥

सूर्य बोले—हे कुन्ति! तुमने मन्त्रबलसे मुझे क्यों बुलाया है? तुम मुझे बुला करके भी अपने समक्ष उपस्थित मुझ सूर्यकी सेवा क्यों नहीं करती?॥ २२॥

हे चारुलोचने! मैं इस समय कामार्त हूँ, अतः प्रेमके साथ मेरा सेवन करो। मन्त्रके द्वारा अधीनताको प्राप्त मुझको तुम विहार करनेके लिये ले चलो॥ २३॥

कुन्ती बोली—हे धर्मज्ञ! मैं अभी कन्या हूँ। हे सर्वसाक्षिन्! मैं आपको प्रणाम करती हूँ। हे सुव्रत! आप मेरे प्रति अनुचित बातें न कहें; क्योंकि मैं कुलीन कन्या हूँ॥ २४॥

सूर्य बोले—यदि मैं इस समय व्यर्थ लौट जाता हूँ तो मेरे लिये बड़ी लज्जाकी बात होगी और मैं सभी देवताओंमें निन्दाका पात्र बनूँगा; इसमें संशय नहीं है॥ २५॥

हे कुन्ति! यदि तुम मेरे साथ रमण नहीं करोगी तो मैं तुम्हें तथा उस मुनिको शाप दे दूँगा, जिसने तुम्हें वह मन्त्र बताया है। हे सुन्दरि! तुम्हारा कन्याधर्म स्थिर रहेगा। इस रहस्यको लोग नहीं जान सकेंगे तथा हे वरानने! मेरे समान ही तेजस्वी पुत्र तुमको प्राप्त होगा॥ २६-२७॥

यह कहकर सूर्यदेव अपनी ओर आसक्त मनवाली एवं लज्जाशील उस कुन्तीसे संसर्ग करके तथा उसे मनोवांछित वरदान देकर चले गये॥ २८॥

इस प्रकार उस सुश्रोणी कुन्तीने गर्भ धारण किया और वह अत्यन्त गुप्त भवनमें रहने लगी। केवल उसकी एक प्रिय दासी ही इस रहस्यको जानती थी, कुन्तीके

माता-पिता भी इसे नहीं जानते थे॥ २९॥

यथासमय उसी गुप्त भवनमें कुन्तीको एक अत्यन्त सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ, जो सुन्दर कवच तथा दो कुण्डलोंसे युक्त था और दूसरे सूर्य तथा कुमार कार्तिकेयके समान प्रतीत हो रहा था। धात्रीने उसे अपने हाथमें उठाकर लज्जायुक्त कुन्तीसे कहा—हे सुन्दरि! मैं यहाँ हूँ, अतः तुम किस बातकी चिन्ता कर रही हो?॥ ३०-३११/२॥

तत्पश्चात् काष्ठमंजूषामें पुत्रको छोड़ती हुई कुन्ती कहने लगी—हे पुत्र! मैं क्या करूँ? मैं अत्यन्त दुःखित हूँ, जो कि तुझ प्राणप्रियको त्याग रही हूँ। मैं अभागिन तुझ सर्वलक्षणसम्पन्नका परित्याग कर दे रही हूँ॥ ३२-३३॥

सगुणा, निर्गुणा तथा सबकी स्वामिनी वे भगवती अम्बिका तुम्हारी रक्षा करें। वे जगज्जननी कामप्रदा कात्यायनी तुम्हें दुग्धपान करायें। हे पुत्र! तुम साक्षात् सूर्यनारायणके पुत्र हो और मेरे प्राणप्रिय हो—ऐसे तुमको इस निर्जन वनमें एक दुष्ट तथा कुलटा स्त्रीकी भाँति छोड़कर मैं कब तुम्हारा अति सुन्दर मुखकमल देख पाऊँगी॥ ३४॥

हे पुत्र! प्रतीत होता है कि मैंने पूर्वजन्ममें भी तीनों लोकोंकी जननी भगवतीकी आराधना नहीं की थी तथा भगवती शिवाके सुखदायक चरणकमलका भी मैंने कभी ध्यान नहीं किया था; इसी कारण मैं सदा अभागिनी हूँ। हे प्रिय! मैं तुम्हें इस वनमें त्यागकर जान-बूझकर स्वयं किये गये इस पापका स्मरण करती हुई सन्ताप सहूँगी॥ ३५॥

सूतजी बोले—इस प्रकार कहकर कुन्तीने मंजूषामें रखे हुए उस पुत्रको लोगोंकी दृष्टिसे बचाते हुए भयभीतभावसे धात्रीके हाथमें दे दिया॥ ३६॥

तत्पश्चात् स्नान करके भयभीत वह कुन्ती अपने पिताके घरमें रहने लगी। जलमें बहती हुई वह मंजूषा अधिरथ नामक सूतको प्राप्त हुई। उस सूतकी भार्या राधा थी। उसने बच्चेको माँग लिया। इस प्रकार सूतके घरमें पलकर वह कर्ण बलवान् तथा वीर हो गया॥ ३७-३८॥

इसके बाद स्वयंवरमें कुन्तीका विवाह पाण्डुके साथ हुआ। उनकी दूसरी पत्नी मद्रदेशके राजाकी सुलक्षणा कन्या माद्री थी॥ ३९॥

एक बार वनमें आखेट करनेमें तत्पर महाबली पाण्डुने मृग समझकर रमण करते हुए एक मुनिपर प्रहार

कर दिया। तब उस कुपित मुनिने पाण्डुको शाप दे दिया कि यदि तुम स्त्रीके साथ संसर्ग करोगे तो तुम्हारी मृत्यु निश्चित है॥ ४०-४१॥

मुनिके यह शाप दे देनेपर पाण्डु शोकाकुल हो गये। वे राज्य त्यागकर अत्यन्त दुःखित हो वनमें रहने लगे॥ ४२॥

हे मुनिवरो! उनकी दोनों पत्नियाँ माद्री और कुन्ती भी सतीधर्मका आश्रय लेकर उनकी सेवा करनेके लिये उनके साथ ही वनमें चली गयीं॥ ४३॥

राजा पाण्डु गंगाजीके तटपर मुनियोंके आश्रमोंमें रहने लगे और धर्मशास्त्रोंका श्रवण करते हुए कठिन तपस्या करने लगे॥ ४४॥

किसी समय कथाप्रसंगमें सम्यक् प्रकारसे पूछनेपर किसी मुनिके द्वारा कहा गया यह धार्मिक वचन राजाने सुना—हे परन्तप! अपुत्रकी गति नहीं होती; वह स्वर्ग जानेका अधिकारी नहीं होता अतएव जिस किसी भी उपायसे पुत्र उत्पन्न करना चाहिये॥ ४५-४६॥

अंशज, पुत्रिकापुत्र, क्षेत्रज , गोलक, कुण्ड, सहोढ, कानीन, क्रीत, वनमें प्राप्त, पालन करनेमें असमर्थ किसीका दिया हुआ—इतने प्रकारके पुत्र पिताकी सम्पत्तिके उत्तराधिकारी कहे गये हैं, इनमें उत्तरोत्तर एक दूसरेसे निकृष्ट पुत्र हैं; यह सुनिश्चित है॥ ४७-४८॥

यह सुनकर राजा पाण्डुने कमलके समान नेत्रवाली

कुन्तीसे कहा—तुम किसी तपोनिष्ठ मुनिके पास जाकर

शीघ्र पुत्र उत्पन्न करो। मेरी आज्ञा होनेके कारण तुम्हें दोष नहीं लगेगा। मैंने सुना है कि पूर्वकालमें महात्मा राजा सौदासने वसिष्ठसे पुत्र उत्पन्न कराया था॥ ४९-५०॥

कुन्ती उनसे यह वचन बोली—सभी कामनाएँ पूर्ण करनेवाला एक मन्त्र मेरे पास है। हे प्रभो! पूर्वकालमें महर्षि दुर्वासाने सिद्धि प्रदान करनेवाला वह मन्त्र मुझे प्रदान किया था॥ ५१॥

हे राजन्! मैं इस मन्त्रद्वारा जिस देवताका आवाहन करूँगी, वह निमन्त्रित होकर निश्चय ही मेरे पास आ जायगा॥ ५२॥

पतिकी आज्ञासे वहाँ कुन्तीने देवताओंमें श्रेष्ठ धर्मराजका स्मरण करके उनके संयोगसे सर्वप्रथम युधिष्ठिरको पुत्ररूपमें उत्पन्न किया॥ ५३॥

तत्पश्चात् उसने वायुके द्वारा भीमको और इन्द्रके द्वारा अर्जुनको उत्पन्न किया। इस प्रकार एक-एक वर्षके अन्तरालमें कुन्तीके तीन महाबली पुत्र उत्पन्न हुए॥ ५४॥

इसके बाद माद्रीने भी अपने पति पाण्डुसे कहा—हे श्रेष्ठ! मुझे भी पुत्र प्रदान कीजिये। हे महाराज! मैं क्या करूँ? हे प्रभो! मेरा दुःख दूर कीजिये॥ ५५॥

तब पति पाण्डुके प्रार्थना करनेपर दयालु कुन्तीने वह मन्त्र माद्रीको बता दिया। सुन्दरी माद्रीने भी एक पुत्रकी प्राप्तिके लिये पतिसे अनुमति पाकर अश्विनीकुमारोंका स्मरण करके नकुल और सहदेव नामक दो पुत्र उत्पन्न किये॥ ५६-५७॥

हे मुनिवरो! इस प्रकार वे पाँचों पाण्डव देवताओंके पुत्र थे। वे क्षेत्रज पुत्रके रूपमें उस वनमें क्रमशः एक-एक वर्षके अन्तरसे उत्पन्न हुए॥ ५८॥

एक बार राजा पाण्डुने माद्रीको निर्जन आश्रममें देखकर अपनी मृत्यु निकट आयी होनेके कारण अत्यन्त कामातुर हो पकड़ लिया। माद्रीके द्वारा 'नहीं-नहीं'—ऐसा कहकर बार-बार निषेध करनेपर भी उन्होंने बलपूर्वक अपनी उस प्रियाका आलिंगन कर लिया और वे दैववश [शापके कारण] पृथ्वीपर गिर पड़े॥ ५९-६०॥

जैसे वृक्षपर चढ़ी हुई लता वृक्षके कट जानेपर गिर पड़ती है, वैसे ही वह रानी माद्री भी बहुत रुदन करती हुई गिर पड़ी॥ ६१॥

उस समय कोलाहल सुनकर रोती हुई कुन्ती, सभी बालक और महाभाग मुनिगण भी वहाँ आ गये॥ ६२॥

इस प्रकार जब पाण्डु मर गये, तब सभी व्रतधारी मुनियोंने गंगाके तटपर चिता लगाकर उनका दाह-संस्कार कर दिया। तत्पश्चात् अपने दोनों पुत्र कुन्तीको सौंप करके सती-धर्मका पालन करते हुए वह माद्री सत्यकी कामनासे उनके साथ ही सती हो गयी॥ ६३-६४॥

वहाँके निवासी मुनिगण जलांजलि आदि देकर पाँचों पुत्रोंसहित कुन्तीको हस्तिनापुर ले आये॥ ६५॥

धृतराष्ट्रकी नगरी हस्तिनापुरमें कुन्तीके आनेका समाचार पाकर भीष्म, विदुर आदि सभी लोग वहाँ आ पहुँचे॥ ६६॥

सभी लोगोंने कुन्तीसे पूछा—हे सुमुखि! ये किसके पुत्र हैं? तब कुन्ती अत्यन्त दुःखित होकर पाण्डुकी शापजन्य मृत्युका उल्लेख करके बोली—कुरुवंशमें उत्पन्न हुए ये सब बालक देवताओंके पुत्र हैं। उन्हें विश्वास

दिलानेके लिये कुन्तीने उस समय सभी देवताओंका आह्वान भी किया, तब उन देवताओंने आकाशमें प्रकट होकर कहा—ये पाँचों निःसन्देह हमलोगोंके पुत्र हैं। भीष्मने देवताओंके वचनका अनुमोदन किया तथा कुन्तीके पाँचों पुत्रोंका स्वागत किया॥ ६७—६९॥

तत्पश्चात् उन पुत्रों तथा वधू कुन्तीको लेकर भीष्म आदि सभी लोग हस्तिनापुर चले गये और प्रसन्नचित्त होकर प्रयत्नपूर्वक उनका पालन-पोषण करने लगे। इस प्रकार पाण्डव उत्पन्न हुए और भीष्मने उनका परिपालन किया॥ ७०-७१॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत द्वितीय स्कन्धका 'युधिष्ठिर आदिकी उत्पत्तिवर्णन' नामक छठा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ६॥

सातवाँ अध्याय

धृतराष्ट्रका युधिष्ठिरसे दुर्योधनके पिण्डदानहेतु धन माँगना, भीमसेनका प्रतिरोध; धृतराष्ट्र, गान्धारी, कुन्ती, विदुर और संजयका वनके लिये प्रस्थान, वनवासी धृतराष्ट्र तथा माता कुन्तीसे मिलनेके लिये युधिष्ठिरका भाइयोंके साथ वनगमन, विदुरका महाप्रयाण, धृतराष्ट्रसहित पाण्डवोंका व्यासजीके आश्रमपर आना, देवीकी कृपासे व्यासजीद्वारा महाभारत-युद्धमें मरे कौरवों-पाण्डवोंके परिजनोंको बुला देना

सूतजी बोले—[हे मुनिगण!] माननीया द्रौपदी उन पाँचों पाण्डवोंकी पतिव्रता पत्नी थी। उन द्रौपदीको अत्यन्त सुन्दर पाँच पुत्र उन पतियोंसे उत्पन्न हुए॥ १॥

अर्जुनकी एक दूसरी सुन्दर पत्नी श्रीकृष्णकी बहन सुभद्रा थीं, जिन्हें अर्जुनने पूर्वकालमें भगवान् श्रीकृष्णकी अनुमतिसे हर लिया था॥ २॥

उन्हीं सुभद्राके गर्भसे महान् वीर अभिमन्युका जन्म हुआ। वह संग्राम-भूमिमें मारा गया था। उसी युद्धमें द्रौपदीके पाँचों पुत्र भी मारे गये थे॥ ३॥

वीर अभिमन्युकी श्रेष्ठ तथा अत्यन्त सुन्दर पत्नी महाराज विराटकी पुत्री उत्तरा थी। [महाभारतके युद्धमें] कुरुकुलका नाश हो जानेपर उसने एक पुत्र उत्पन्न किया था; वह द्रोणपुत्र अश्वत्थामाकी बाणाग्निसे [पहले गर्भमें ही] मर गया था, किंतु बादमें भगवान् श्रीकृष्णने अश्वत्थामाकी बाणाग्निसे निर्दग्ध अपने भांजेके पुत्रको अपने अद्भुत प्रतापसे पुनः जीवित कर दिया था॥ ४-५॥

कुरुवंशके समाप्त होनेपर वह श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न हुआ था; इसलिये वह बालक 'परीक्षित्' नामसे पृथ्वीतलपर प्रसिद्ध हुआ॥ ६॥

अपने सौ पुत्रोंके मारे जानेपर अत्यन्त दुःखित राजा धृतराष्ट्र भीमके वाग्बाणोंसे सन्तप्त रहते हुए अब पाण्डवोंके राज्यमें रहने लगे। वैसे ही गान्धारी भी अत्यन्त दुःखी होकर जीवन-यापन करने लगी। दुःखित युधिष्ठिर दिन-रात उन दोनोंकी सेवा करने लगे॥ ७-८॥

महान् धर्मात्मा विदुर युधिष्ठिरकी अनुमतिसे अपने भाई धृतराष्ट्रके पासमें ही रहते थे और वे उन प्रज्ञाचक्षुको समझाते-बुझाते रहते थे॥ ९॥

धर्मपुत्र धर्मात्मा युधिष्ठिर भी अपने पितातुल्य धृतराष्ट्रके पुत्रशोकजनित दुःखको विस्मारित कराते हुए उनकी सेवा करने लगे॥ १०॥

जिस किसी भी प्रकार यह वृद्ध धृतराष्ट्र सुन ले [यह ध्यानमें रखकर] भीम अत्यन्त क्रोधित होकर अपने वचनरूपी बाणोंसे उनपर सर्वदा प्रहार किया करते थे। वहाँ उपस्थित लोगोंको सुना-सुनाकर भीम कहा करते थे कि मैंने इस दुष्ट अन्धेके सभी पुत्रोंको रणभूमिमें मार डाला और दुःशासनके हृदयका रक्त जी-भरके पी लिया है। अब यह अन्धा निर्लज्ज होकर मेरे दिये हुए पिण्डको कौओं एवं

कुत्तोंकी भाँति खाता है। अब तो यह व्यर्थ ही जीवन बिता रहा है॥ ११—१३॥

भीम इस प्रकारकी कठोर बातें प्रतिदिन उन्हें सुनाते थे; परंतु धर्मात्मा युधिष्ठिर यह कहते हुए धृतराष्ट्रको धैर्य प्रदान करते थे कि यह भीम मूर्ख है॥ १४॥

इस प्रकार उस दुःखी धृतराष्ट्रने अठारह वर्षतक वहाँ रहकर धर्मपुत्र युधिष्ठिरसे वनमें जानेकी इच्छा प्रकट की। महाराज धृतराष्ट्रने धर्मपुत्र युधिष्ठिरसे यह भी प्रार्थना की कि अब मैं अपने पुत्रोंके लिये विधि-पूर्वक पिण्डदान करूँगा। यद्यपि भीमने सभीका और्ध्वदैहिककर्म कर दिया था, किंतु पूर्व वैरका स्मरण करते हुए उन्होंने मेरे पुत्रोंका नहीं किया। अतः यदि आप मुझे कुछ धन दें तो मैं अपने पुत्रोंका और्ध्वदैहिककर्म करके स्वर्गफल देनेवाला तप करनेके लिये वनमें चला जाऊँगा॥ १५—१८॥

विदुरने भी एकान्तमें पवित्रात्मा धर्मपुत्र युधिष्ठिरसे जब ऐसा कहा तब उन्होंने धनार्थी धृतराष्ट्रको धन देनेका निश्चय कर लिया। राजा युधिष्ठिरने परिवारके सभी जनोंको बुलाकर कहा—हे महाभाग! मैं कौरवोंका श्राद्ध करनेके इच्छुक ज्येष्ठ पिताको धन प्रदान करूँगा॥ १९-२०॥

महातेजस्वी ज्येष्ठ भ्राता युधिष्ठिरका वचन सुनकर वायुपुत्र महाबली भीमने अत्यन्त क्रोधित होकर कहा—हे महाभाग! दुर्योधनके कल्याणके लिये राजकोषका धन क्यों दिया जाय? इससे अन्धे धृतराष्ट्रको भी सुख मिलेगा; इससे बड़ी मूर्खता और क्या होगी?॥ २१-२२॥

आपकी दूषित मन्त्रणाके फलस्वरूप ही हमलोगोंने वनवासका कठोर कष्ट सहा। दुरात्मा दुःशासन महारानी द्रौपदीको अपमानपूर्वक सभामें खींच लाया॥ २३॥

हे सुव्रत! आपकी कृपासे ही हमलोगोंको विराट राजाके घर रहना पड़ा तथा हम अमित पराक्रमवालोंको मत्स्यदेशके राजाकी दासता करनी पड़ी थी॥ २४॥

हम सबमें ज्येष्ठ आप यदि जुआ न खेलते तो हम लोगोंकी दुर्गति क्यों होती? मगधनरेश जरासंधका वध करनेवाले मुझको राजा विराटके यहाँ रसोइया बनना पड़ा॥ २५॥

आपके ही कारण इन्द्रपुत्र महाबाहु अर्जुनको विराट राजाके यहाँ स्त्रीका रूप धारण करके उनके बच्चोंको नृत्यकी शिक्षा देनेके लिये बृहन्नला बनना पड़ा। गाण्डीव धनुषके स्थानपर अर्जुनको अपने हाथोंमें कंकण धारण करना पड़ा। मनुष्यका शरीर पाकर भला इससे बड़ा कष्ट और क्या हो सकता है? अर्जुनके सिरपर चोटी और आँखोंमें काजलकी बातका स्मरण करके तो मनमें यही आता है कि मैं अभी तलवार लेकर शीघ्र ही धृतराष्ट्रका सिर काट दूँ; इसके अतिरिक्त मुझे शान्ति नहीं मिल सकती॥ २६—२८॥

आप महाराजसे विना पूछे ही मैंने लाक्षागृहमें अग्नि लगा दी थी, जिससे हमलोगोंको जलानेकी इच्छावाला वह पापी पुरोचन स्वयं जल गया॥ २९॥

हे राजन्! मैंने आपसे परामर्श किये बिना ही जैसे सभी कीचकोंका वध कर डाला, वैसे ही स्त्रियोंसमेत धृतराष्ट्रके सभी पुत्रोंका भी वध मैं नहीं कर पाया॥ ३०॥

हे राजेन्द्र! यह आपकी नासमझी ही थी कि जब गन्धर्वोंने दुर्योधन आदि हमारे शत्रुओंको बन्दी बना लिया था, तब आपने ही उन्हें छुड़ा दिया॥ ३१॥

हे राजन्! आज पुनः उसी दुष्ट दुर्योधनके कल्याणके लिये आप धन देनेकी इच्छा कर रहे हैं। आपके कहनेपर भी मैं उन्हें धन नहीं देने दूँगा॥ ३२॥

ऐसा कहकर भीमके चले जानेपर धर्मपुत्र युधिष्ठिरने [अर्जुन, नकुल तथा सहदेव—इन] तीनोंकी सम्मति लेकर धृतराष्ट्रको बहुत-सा धन दे दिया॥ ३३॥

तब अम्बिकापुत्र धृतराष्ट्रने धन लेकर अपने पुत्रोंका विधिवत् श्राद्धकर्म कराया और ब्राह्मणोंको विविध दान दिये॥ ३४॥

इस प्रकार अपने पुत्रोंका श्राद्धकर्म करके गान्धारीसहित महाराज धृतराष्ट्र कुन्ती तथा विदुरके साथ शीघ्र ही वनमें चले गये॥ ३५॥

संजयद्वारा सबको यह समाचार मिला कि महामति धृतराष्ट्र वनमें जा रहे हैं, उस समय अपने पुत्रोंके मना करनेपर भी शूरसेनकी पुत्री कुन्ती उनके साथ चली गयी॥ ३६॥

यह देखकर भीम भी रोने लगे। वे तथा अन्यान्य सभी कौरव उन लोगोंको गंगातटतक पहुँचाकर पुन: हस्तिनापुरको लौट आये॥ ३७॥

तत्पश्चात् धृतराष्ट्र आदि गंगातटपर स्थित शुभ शतयूप-आश्रममें पहुँचे और वहाँ पर्णकुटी बनाकर एकचित्त हो तपस्या करने लगे॥ ३८॥

जब वे तपस्वी चले गये और इस प्रकार छ: वर्ष बीत गये, तब उनके विरहसे सन्तप्त युधिष्ठिर अपने भाइयोंसे कहने लगे—मैंने स्वप्न देखा है कि वनमें रहती हुई माता कुन्ती अत्यन्त दुर्बल हो गयी हैं, अत: माता तथा पितृजनोंको देखनेकी मनमें इच्छा हो रही है। साथ ही महात्मा विदुर तथा महाबुद्धिमान् संजयसे भी मिलनेकी मेरी इच्छा है। यदि आप लोगोंको भी यह उचित प्रतीत होता हो तो हमलोग वहाँ चलें—ऐसा मेरा विचार है॥ ३९—४१॥

तब वे सभी भाई, सुभद्रा, द्रौपदी, महाभागा उत्तरा तथा अन्यान्य नागरिकजन वहाँ एकत्र हुए। दर्शनके लिये उत्सुक उन पाण्डवोंने सभी लोगोंके साथ शतयूप-आश्रममें जाकर धृतराष्ट्र आदिको देखा॥ ४२-४३॥

वहाँ जब विदुरजी दिखायी नहीं दिये, तब धर्मराज युधिष्ठिरने धृतराष्ट्रसे पूछा—वे बुद्धिमान् विदुरजी कहाँ हैं? तब अम्बिकापुत्र धृतराष्ट्रने उनसे कहा—विदुर तो विरक्त एवं निष्काम होकर तथा सब कुछ त्यागकर कहीं एकान्तमें रहते हुए अन्त:करणमें परमात्माका ध्यान कर रहे होंगे॥ ४४-४५॥

दूसरे दिन गंगाजीकी ओर जाते हुए युधिष्ठिरने वनमें तपस्याके कारण क्षीण देहवाले व्रतधारी विदुरजीको देखा। उन्हें देखकर महाराज युधिष्ठिरने कहा—मैं आपको प्रणाम करता हूँ। यह सुनकर भी निष्पाप विदुरजी ठूँठवृक्षके समान अचल स्थित रहे॥ ४६-४७॥

उसी क्षण विदुरजीके मुखसे एक अद्भुत तेज निकला और वह तत्काल युधिष्ठिरके मुखमें समा गया; क्योंकि वे दोनों ही धर्मके अंश थे॥ ४८॥

इस प्रकार विदुरजीने प्राणत्याग कर दिया और युधिष्ठिर अत्यन्त शोकाकुल हो गये। वे राजा युधिष्ठिर उनके शरीरका दाह-संस्कार करनेका प्रबन्ध करने लगे॥ ४९॥

उसी समय राजाको सुनाते हुए आकाशवाणी हुई—हे राजन्! ये विदुरजी विरक्त हैं, अत: ये दाह-संस्कारके योग्य नहीं हैं। अब आप इच्छानुसार यहाँसे प्रस्थान करें॥ ५०॥

यह सुनकर उन सभी भाइयोंने गंगाके निर्मल जलमें स्नान किया और वहाँ जाकर धृतराष्ट्रसे [सभी वृत्तान्त] विस्तारपूर्वक बताया॥ ५१॥

तत्पश्चात् सब पाण्डव नागरिकोंके साथ उस आश्रममें बैठ गये। उसी समय सत्यवतीपुत्र व्यासजी तथा नारदजी भी वहाँ पहुँच गये। अन्य मुनिगण भी वहाँ धर्मपुत्र युधिष्ठिरके पास आ गये। उस समय कुन्तीने वहाँ विराजमान शुभदर्शन व्यासजीसे कहा—॥ ५२-५३॥

हे कृष्णद्वैपायन! मैंने अपने पुत्र कर्णको जन्मके समय ही देखा था। [उसे देखनेके लिये] मेरा मन बहुत तड़प रहा है, अत: हे तपोधन! मुझे उसको दिखा दीजिये। हे महाभाग! आप समर्थ हैं, अत: मेरी यह इच्छा पूर्ण कीजिये॥ ५४ $^1/_2$॥

गान्धारी बोली—हे मुने! दुर्योधन समरभूमिमें चला गया था और मैं उसे देख नहीं पायी। अत: हे मुनिश्रेष्ठ! छोटे भाइयोंसहित उस दुर्योधनको आप मुझे दिखा दीजिये॥ ५५ $^1/_2$॥

सुभद्रा बोली—हे सर्वज्ञ! मैं प्राणोंसे भी अधिक प्रिय अपने महान् वीर पुत्र अभिमन्युको देखना चाहती हूँ। अत: हे तपोधन! उसे अभी दिखा दीजिये।॥ ५६ $^1/_2$॥

सूतजी बोले—इस प्रकारके वचन सुनकर सत्यवतीपुत्र व्यासजीने प्राणायाम करके सनातनी देवी भगवतीका ध्यान किया। तब सायंकाल आनेपर मुनिश्रेष्ठ व्यासजी युधिष्ठिर आदि सभी जनोंको गंगाजीके तटपर बुलाकर पुण्यनदी गंगाके पवित्र जलमें स्नान करके प्रकृतिस्वरूपिणी, परम पुरुषको प्रसन्न करनेवाली, सगुण-निर्गुणरूपा, देवताओंकी भी देवी, ब्रह्मस्वरूपिणी उन मणिद्वीपनिवासिनी भगवतीकी स्तुति करने लगे॥ ५७—६०॥

हे देवि! जब ब्रह्मा, विष्णु, शंकर, इन्द्र, वरुण, कुबेर, यम तथा अग्नि—ये कोई भी नहीं थे, उस समय भी आपकी सत्ता थी; ऐसी उन आपको मैं नमस्कार करता हूँ॥ ६१॥

जिस समय जल, वायु, पृथ्वी, आकाश तथा उनके रस आदि गुण, समस्त इन्द्रियाँ, अहंकार, मन, बुद्धि, सूर्य तथा चन्द्रमा—ये कोई भी नहीं थे, तब भी आप विद्यमान थीं; ऐसी उन आपको मैं प्रणाम करता हूँ॥ ६२॥

इस जीवलोकको अपने चित्तमें समाहित करके सत्व-रज-तम आदि गुणोंसहित लिंगकोशको समाधिकी अवस्थामें पहुँचाकर जब आप कल्पपर्यन्त स्वतन्त्र होकर विहार करती हैं, तब विवेकप्राप्त पुरुष भी आपको जाननेमें समर्थ नहीं होता॥ ६३॥

हे माता! ये लोग मृत व्यक्तियोंके पुनः दर्शनके लिये मुझसे प्रार्थना कर रहे हैं, किंतु मैं ऐसा कर पानेमें समर्थ नहीं हूँ। अतएव आप इन्हें मृत व्यक्तियोंको शीघ्र ही दिखा दें॥ ६४॥

सूतजी बोले—व्यासजीके द्वारा इस प्रकार स्तुति किये जानेपर महामाया श्रीभुवनेश्वरी देवीने समस्त मृत राजाओंको स्वर्गसे बुलाकर दिखा दिया॥ ६५॥

कुन्ती, गान्धारी, सुभद्रा, विराटपुत्री उत्तरा एवं सभी पाण्डव वापस आये हुए स्वजनोंको देखकर प्रसन्न हो गये॥ ६६॥
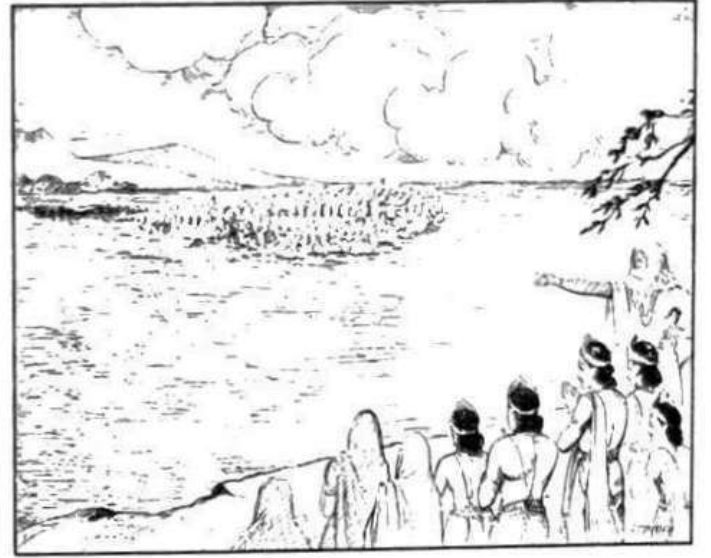
तदनन्तर अपरिमित तेजवाले व्यासजीने महामाया देवीका स्मरण करके इन्द्रजालकी भाँति प्रकट हुए उन सबको पुनः लौटा दिया॥ ६७॥

तत्पश्चात् [धृतराष्ट्र आदि तापसोंसे] आज्ञा लेकर सभी पाण्डव तथा मुनिजन वहाँसे चल दिये। राजा युधिष्ठिर भी मार्गमें व्यासजीकी चर्चा करते हुए हस्तिनापुर आ गये॥ ६८॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत द्वितीय स्कन्धका 'पाण्डवोंकी कथा तथा मृतजनोंके दर्शनका वर्णन' नामक सातवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ७॥

आठवाँ अध्याय

धृतराष्ट्र आदिका दावाग्निमें जल जाना, प्रभासक्षेत्रमें यादवोंका परस्पर युद्ध और संहार, कृष्ण और बलरामका परमधामगमन, परीक्षित्‌को राजा बनाकर पाण्डवोंका हिमालय-पर्वतपर जाना, परीक्षित्‌को शापकी प्राप्ति, प्रमद्वरा और रुरुका वृत्तान्त

सूतजी बोले—वहाँसे पाण्डवोंके प्रस्थित होनेके तीसरे दिन उस वनमें लगी दावाग्निमें कुन्ती एवं गान्धारीसहित राजा धृतराष्ट्र दग्ध हो गये॥ १॥

संजय पहले ही धृतराष्ट्रको छोड़कर तीर्थयात्राके लिये चले गये थे। नारदजीसे यह वृत्तान्त सुनकर राजा युधिष्ठिर अत्यन्त दुःखी हुए॥ २॥

कौरवोंके विनाशके छत्तीस वर्ष बीतनेपर विप्र-शापके प्रभावसे सभी यादव प्रभासक्षेत्रमें नष्ट हो गये। वे सभी यादव मदिरा पीकर मतवाले हो गये और आपसमें लड़कर बलराम तथा श्रीकृष्णके देखते-देखते मृत्युको प्राप्त हो गये॥ ३-४॥

तदनन्तर बलरामजीने योगक्रियाद्वारा शरीरका त्याग किया और कमलके समान नेत्रवाले भगवान् श्रीकृष्णने शापकी मर्यादा रखते हुए एक बहेलियेके बाणसे आहत होकर महाप्रयाण किया॥ ५॥

इसके पश्चात् जब वसुदेवजीने श्रीकृष्णके शरीर-

त्यागका समाचार सुना तो उन्होंने अपने चित्तमें श्रीभुवनेश्वरी देवीका ध्यान करके अपने पवित्र प्राणोंका परित्याग कर दिया॥ ६॥

तत्पश्चात् अत्यन्त शोक-संतप्त अर्जुनने प्रभासक्षेत्रमें पहुँचकर सभीका यथोचित अन्तिम संस्कार सम्पन्न किया॥ ७॥

भगवान् श्रीकृष्णका शरीर खोजकर और लकड़ी जुटाकर अर्जुनने आठ पटरानियोंके साथ उनका दाह-संस्कार किया॥ ८॥

तदनन्तर रेवतीके साथ बलरामजीके मृतशरीरका दाह-संस्कार करके अर्जुनने द्वारकापुरी पहुँचकर उस नगरीसे नागरिकोंको बाहर निकाला॥ ९॥

तत्पश्चात् कुछ ही क्षणोंमें भगवान् श्रीकृष्णकी वह द्वारकापुरी समुद्रमें डूब गयी, किंतु अर्जुन सभी लोगोंको साथ लेकर बाहर निकल गये थे॥ १०॥

मार्गमें चोरों और भीलोंने श्रीकृष्णकी पत्नियोंको लूट लिया और समस्त धन छीन लिया; उस समय अर्जुन तेजहीन हो गये॥ ११॥

तदनन्तर अपरिमित तेजसे सम्पन्न अर्जुनने इन्द्रप्रस्थ पहुँचकर अनिरुद्धके वज्र नामक पुत्रको राजा बनाया॥ १२॥

अर्जुनने अपने तेजहीन होनेका दुःख व्यासजीसे निवेदित किया, जिसपर व्यासजीने उस महारथी अर्जुनसे कहा—हे महामते! जब भगवान् श्रीकृष्ण और आपका पुनः अवतार होगा, तब उस युगमें आपका तेज पुनः अत्यन्त उग्र हो जायगा। उनका यह वचन सुनकर अर्जुन वहाँसे हस्तिनापुर चले गये। वहाँपर अत्यन्त दुःखी होकर अर्जुनने धर्मराज युधिष्ठिरसे समस्त वृत्तान्त कहा॥ १३-१४१/२॥

श्रीकृष्णके देहत्याग एवं यादवोंके विनाशका समाचार सुनकर राजा युधिष्ठिरने हिमालयकी ओर जानेका निश्चय कर लिया। इसके बाद छत्तीसवर्षीय उत्तरापुत्र परीक्षित्‌को राजसिंहासनपर प्रतिष्ठित करके वे राजा युधिष्ठिर द्रौपदी तथा भाइयोंके साथ वनकी ओर निकल गये। इस प्रकार छत्तीस वर्षकी अवधितक हस्तिनापुरमें राज्य करके द्रौपदी तथा कुन्तीपुत्रों—इन छहोंने हिमालयपर्वतपर जाकर प्राण त्याग दिये॥ १५—१७१/२॥

इधर धर्मनिष्ठ राजर्षि परीक्षित्‌ने भी आलस्यरहित भावसे साठ वर्षोंतक सम्पूर्ण प्रजाका पालन किया। वे एक बार आखेटहेतु एक विशाल जंगलमें गये॥ १८-१९॥

अपने बाणसे विद्ध एक मृगको खोजते-खोजते मध्याह्नकालमें उत्तरापुत्र राजा परीक्षित् भूख-प्यास तथा थकानसे व्याकुल हो गये॥ २०॥

धूपसे पीड़ित राजाने समीपमें ही एक ध्यानमग्न मुनिको विराजमान देखा और प्याससे व्याकुल उन्होंने मुनिसे जल माँगा॥ २१॥

मौन व्रतमें स्थित वे मुनि कुछ भी नहीं बोले, जिससे राजा कुपित हो गये और प्याससे आकुल तथा कलिसे प्रभावित चित्तवाले राजाने अपने धनुषकी नोकसे एक मृत

साँप उठाकर उनके गलेमें डाल दिया। गलेमें सर्प डाल दिये जानेके बाद भी वे मुनिश्रेष्ठ कुछ भी नहीं बोले॥ २२-२३॥

वे थोड़ा भी विचलित नहीं हुए और समाधिमें स्थित रहे। राजा भी अपने घर चले गये। उन मुनिका पुत्र गविजात अत्यन्त तेजस्वी तथा महातपस्वी था॥ २४॥

पराशक्तिके आराधक उस गविजातने पासके वनमें खेलते हुए अपने मित्रोंको ऐसा कहते हुए सुना कि हे मुनिश्रेष्ठ! तुम्हारे पिताके गलेमें किसीने मृत सर्प डाल दिया है। उनकी यह बात सुनकर वह अत्यन्त कुपित

हुआ और शीघ्र ही हाथमें जल लेकर उसने कुपित होकर राजाको शाप दे दिया—जिस व्यक्तिने मेरे पिताजीके कण्ठमें मृत सर्प डाला है, उस पापी पुरुषको एक सप्ताहमें तक्षक डस लेगा। मुनिके शिष्यने महलमें स्थित राजा परीक्षित्के समीप जाकर मुनिपुत्रके द्वारा दिये गये शापकी बात कही। ब्राह्मणके द्वारा दिये गये शापको सुनकर अभिमन्युपुत्र परीक्षित्ने उसे अनिवार्य समझकर वृद्ध मन्त्रियोंसे कहा—अपने अपराधके कारण मैं मुनिपुत्रसे शापित हुआ हूँ॥ २५—३०॥

हे मन्त्रियो! अब मुझे क्या करना चाहिये? आप लोग कोई उपाय सोचें। मृत्यु तो अनिवार्य है—ऐसा वेदवादी लोग कहते हैं, तथापि बुद्धिमान् पुरुषोंको शास्त्रोक्त रीतिसे सर्वथा प्रयत्न करना ही चाहिये। कुछ पुरुषार्थवादी विद्वान् ऐसा कहते हैं कि बुद्धिमानीके साथ उपाय करनेपर कार्य सिद्ध हो जाते हैं; न करनेपर नहीं। मणि, मन्त्र और औषधोंके प्रभाव अत्यन्त ही दुर्ज्ञेय होते हैं। मणि धारण करनेवाले सिद्धजनोंके द्वारा क्या नहीं सम्भव हो जाता? पूर्वकालमें किसी ऋषिपत्नीको सर्पने काट लिया था, जिससे वह मर गयी थी; उस समय उस मुनिने अपनी आयुका आधा भाग देकर उस श्रेष्ठ अप्सराको जीवित कर दिया था। अतः बुद्धिमान् लोगोंको चाहिये कि वे भवितव्यतापर विश्वास न करें, उपाय भी करें॥ ३१—३५॥

हे सचिवो! आपलोग यह दृष्टान्त प्रत्यक्ष देख लें। इस लोक या परलोकमें ऐसा कोई भी मनुष्य नहीं दिखायी देता, जो केवल भाग्यके भरोसे रहकर उद्यम न करता हो। गृहस्थीसे विरक्त मनुष्य संन्यासी होकर जगह-जगह भिक्षाटनके लिये बुलानेपर अथवा बिना बुलाये भी गृहस्थोंके घर जाता ही है। दैवात्प्राप्त उस भोजनको भी क्या कोई मुखमें डाल देता है? उद्यमके बिना वह भोजन मुखसे उदरमें कैसे प्रवेश कर सकता है? अतः प्रयत्नपूर्वक उद्यम तो करना ही चाहिये, यदि सफलता न मिले तो बुद्धिमान् मनुष्य मनमें विश्वास कर ले कि दैव यहाँ प्रबल है॥ ३६—३९½॥

मन्त्रियोंने कहा—हे महाराज! वे कौन मुनि थे, जिन्होंने अपनी आधी आयु देकर अपनी प्रिय पत्नीको जीवित किया था? वह कैसे मरी थी? यह कथा विस्तारसे हमसे कहिये॥ ४०½॥

राजा बोले—महर्षि भृगुकी एक सुन्दर स्त्री थी, जिसका नाम पुलोमा था। उससे परम विख्यात च्यवनमुनिका जन्म हुआ। च्यवनकी पत्नीका नाम सुकन्या था, वह महाराज शर्यातिकी रूपवती कन्या थी॥ ४१-४२॥

उस सुकन्यासे श्रीमान् प्रमतिने जन्म लिया, जो बड़े यशस्वी थे। उस प्रमतिकी प्रिय पत्नीका नाम प्रतापी था। उन्हीं राजा प्रमतिके पुत्र परम तपस्वी 'रुरु' हुए॥ ४३½॥

उन्हीं दिनों स्थूलकेश नामक एक ऋषि थे, जो बड़े ही तपस्वी, धर्मात्मा एवं सत्यनिष्ठ थे। इसी बीच त्रिलोकसुन्दरी मेनका नामकी श्रेष्ठ अप्सरा नदीके किनारे जलक्रीडा कर रही थी। वह अप्सरा विश्वावसुके द्वारा गर्भवती होकर घरसे निकल पड़ी थी॥ ४४—४६॥

उस श्रेष्ठ अप्सराने स्थूलकेशके आश्रममें जाकर नदीतटपर एक त्रैलोक्यसुन्दरी कन्याको जन्म दिया और वह उसे छोड़कर चली गयी। तब उस नवजात शिशु कन्याको अनाथ जानकर मुनिवर स्थूलकेश अपने आश्रममें ले गये और उसका पालन-पोषण करने लगे। उन्होंने उसका नाम प्रमद्वरा रखा॥ ४७-४८॥

वह सर्वलक्षणसम्पन्न कन्या यथासमय यौवनको प्राप्त हुई। उस सुन्दरीको देखकर रुरु काममोहित हो गये॥ ४९॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत द्वितीय स्कन्धका 'रुरुचरित्रवर्णन' नामक आठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ८॥

नौवाँ अध्याय

सर्पके काटनेसे प्रमद्वराकी मृत्यु, रुरुद्वारा अपनी आधी आयु देकर उसे जीवित कराना, मणि-मन्त्र-औषधिद्वारा सुरक्षित राजा परीक्षित्‌का सात तलवाले भवनमें निवास करना

परीक्षित् बोले—[हे सचिववृन्द!] इस प्रकार कामासक्त होकर रुरुमुनि अपने आश्रममें सो गये, तब उनके पिताने उन्हें दु:खी देखकर पूछा—हे रुरु! तुम इतने उदास क्यों हो?॥ १॥

कामातुर रुरुने अपने पितासे कहा—महर्षि स्थूलकेशके आश्रममें प्रमद्वरा नामकी एक कन्या है; मैं चाहता हूँ कि वह मेरी पत्नी बन जाय॥ २॥

उन प्रमतिने महामुनि स्थूलकेशके पास शीघ्र जाकर उन्हें प्रसन्न तथा अपने अनुकूल करके उस सुन्दर कन्याकी याचना की॥ ३॥

महामुनि स्थूलकेशने यह वचन दे दिया कि किसी अच्छे मुहूर्तमें कन्यादान दूँगा। अब उस वनमें वे दोनों विवाहकी सामग्रीका प्रबन्ध करने लगे। इस प्रकार उस तपोवनमें समीपमें ही रहकर प्रमति और स्थूलकेश दोनों महात्मा विवाहोत्सवकी तैयारी करने लगे॥ ४-५॥

उसी अवसरपर वह कन्या अपने घरके आँगनमें खेल रही थी, तभी एक सोये हुए सर्पसे उस सुनयनीका पैर छू गया। [स्पर्श होते ही] सर्पने उसे डँस लिया और वह सुन्दरी कन्या मर गयी। तब मृत्युको प्राप्त हुई प्रमद्वराको देखकर वहाँ कोलाहल मच गया॥ ६-७॥

सभी मुनि जुट गये और शोकसे ग्रस्त होकर रोने लगे। पृथ्वीपर प्राणहीन होकर पड़ी हुई अत्यन्त तेजसे देदीप्यमान उस कन्याको देखकर उसके पिता स्थूलकेश अत्यन्त दु:खित होकर रुदन करने लगे। उस समय करुण क्रन्दन सुनकर रुरु भी उसे देखनेके लिये आये। उन्होंने उस मृत पड़ी सुन्दरीको सजीव-जैसी देखा। स्थूलकेश तथा अन्य श्रेष्ठ मुनियोंको रुदन करते देखकर रुरुमुनि उस स्थानसे बाहर आ करके विरहाकुल होकर रोने लगे॥ ८—१०१/२॥

[वे कहने लगे—] अहो! प्रारब्धने ही मेरे सुखके विनाशके लिये ही यह अत्यन्त विचित्र सर्प भेजा था। यह निश्चित ही मेरे दु:खका कारण है। अब मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ? मेरी प्राणप्रिया तो मर गयी। अब मैं अपनी इस प्रियासे विलग होकर जीना नहीं चाहता। अभीतक मैंने उस सुन्दरीका आलिंगन आदि कोई सांसारिक सुख भी नहीं प्राप्त किया था। मैं ऐसा अभागा हूँ कि उसका पाणिग्रहण नहीं कर सका और न तो उसके साथ अग्निमें लाजाहोम ही कर पाया। मेरे इस मनुष्य-जीवनको धिक्कार है। अब तो मेरे प्राण निकल जायँ तो अच्छा है, जब दु:खित मनुष्यको चाहनेपर भी मृत्यु नहीं मिलती, तब इस संसारमें वांछित उत्तम सुख कैसे मिल सकता है? अब मैं या तो कहीं किसी भयानक तालाबमें डूब जाऊँ, अग्निमें कूद पड़ूँ, विष खा लूँ अथवा गलेमें फाँसी लगाकर प्राण त्याग दूँ॥ ११—१६१/२॥

इस प्रकार विलाप करके रुरु अपने मनमें विचारकर उस नदीके तटपर स्थित रहते हुए उपाय सोचने लगे। प्राण त्यागनेसे मुझे क्या लाभ होगा? आत्महत्याका फल तो अत्यन्त दुर्निवार्य होता है। [मेरी मृत्यु सुनकर] पिताजी दु:खी होंगे, माताजीको भी महान् कष्ट होगा। हाँ, हो सकता है कि मुझे मरा हुआ देखकर प्रारब्ध सन्तुष्ट हो जाय? मेरे मर जानेपर मेरे सभी शत्रु भी प्रसन्न होंगे, इसमें सन्देह नहीं है, किंतु इससे परलोकमें मेरी प्रियाका क्या उपकार होगा? इस प्रकार विरहसे सन्तप्त होकर आत्महत्या करके मेरे मर जानेपर भी परलोकमें मुझ आत्मघातीको मेरी वह प्रिया नहीं मिलेगी। इसलिये मेरे मरनेमें बहुत दोष हैं और न मरनेपर मुझे कोई दोष नहीं होगा॥ १७—२११/२॥

ऐसा सोचकर रुरु स्नान तथा आचमन करके पवित्र होकर वहींपर बैठ गये। इसके बाद उन मुनिने हाथमें

जल लेकर यह वचन कहा—यदि मेरे द्वारा देवाराधन आदि कुछ भी पुण्य कर्म सम्पादित किया गया हो, यदि मैंने श्रद्धापूर्वक गुरुओंकी पूजा की हो; हवन, जप एवं तप किया हो, समस्त वेदोंका अध्ययन किया हो, गायत्रीकी उपासना की हो और सूर्यकी आराधना की हो तो उस पुण्यके प्रभावसे मेरी प्रिया जीवित हो जाय। यदि मेरी प्रिया जीवित नहीं होगी तो मैं प्राण त्याग दूँगा। ऐसा कहकर देवताओंका ध्यान करके उन्होंने वह जल जमीनपर छोड़ दिया॥ २२—२५½॥

राजा बोले—तदनन्तर इस प्रकार अपनी भार्याके लिये विलाप कर रहे उन दुःखित रुरुके पास एक देवदूत आकर यह वाक्य बोला॥ २६½॥

देवदूत बोला—हे ब्रह्मन्! ऐसा साहस मत कीजिये। आपकी मरी हुई प्रियतमा भला कैसे जीवित हो सकेगी? गन्धर्व और अप्सराकी इस सुन्दर कन्याकी आयु समाप्त हो चुकी थी, जिससे यह अविवाहिता ही मर गयी; अतः अब आप किसी अन्य शुभ अंगोंवाली कन्याका वरण कर लीजिये। हे हतबुद्धि! आप क्यों रो रहे हैं? इसके साथ आपका कैसा प्रेम है?॥ २७-२८½॥

रुरु बोले—हे देवदूत! मैं किसी अन्य सुन्दरीका वरण नहीं करूँगा। यदि यह जीवित हो जाती है तो ठीक है, अन्यथा मैं इसी समय अपने प्राण त्याग दूँगा॥ २९½॥

राजा बोले—उन मुनिका यह हठ देखकर देवदूतने प्रसन्न होकर तथ्यपूर्ण, सत्य तथा मनोहर वचन कहा—हे विप्रेन्द्र! देवताओंके द्वारा इसका पूर्वविहित उपाय मुझसे सुनिये। आप अपनी आयुका आधा भाग देकर अपनी प्रमद्वराको शीघ्र ही जीवित कर लीजिये॥ ३०-३१½॥

रुरु बोले—मैं निःसन्देह अपनी आयुका आधा भाग इस कन्याको दे रहा हूँ। अब मेरी प्रियतमाके प्राण वापस आ जायँ और यह उठकर बैठ जाय। उसी समय विश्वावसु अपनी पुत्री प्रमद्वराकी मृत्यु जान करके स्वर्गलोकसे विमानद्वारा शीघ्र ही वहाँ आ गये। तत्पश्चात् गन्धर्वराज विश्वावसु तथा उस श्रेष्ठ देवदूतने धर्मराजके पास पहुँचकर यह वचन कहा—हे धर्मराज! रुरुकी पत्नी तथा विश्वावसुकी पुत्री इस प्रमद्वरा नामक कन्याकी सर्पदंशके कारण इस समय मृत्यु हो गयी है। हे सूर्यतनय! इसके वियोगमें मरणके लिये उद्यत मुनि रुरुकी आधी आयु तथा उनकी तपस्याके प्रभावसे यह कोमलांगी जीवित हो जाय॥ ३२—३६½॥

धर्मराजने कहा—हे देवदूत! यदि तुम ऐसा चाहते हो तो उसकी आधी आयुसे विश्वावसुकी यह कन्या जीवित होकर उठ जाय और तुम जाकर इसे रुरुको समर्पित कर दो॥ ३७½॥

राजा बोले—धर्मराजके ऐसा कहनेपर देवदूतने जाकर प्रमद्वराको जीवित करके शीघ्र ही रुरुको समर्पित

कर दिया और तत्पश्चात् रुरुने किसी शुभ दिन उसके साथ विधानपूर्वक विवाह कर लिया॥ ३८-३९॥

इस प्रकार उपायका आश्रय लेकर मृत प्रमद्वराको भी जीवित कर लिया गया था। अतः मणि, मन्त्र तथा औषधियोंके विधिवत् प्रयोगद्वारा प्राणरक्षाके लिये शास्त्र-सम्मत उपाय अवश्य किया जाना चाहिये॥ ४०½॥

मन्त्रियोंसे यह कहकर उत्तम रक्षकोंकी व्यवस्था करके एक सात तलवाला उत्तम राजभवन बनवाकर उसी क्षण उत्तरापुत्र परीक्षित् अपने मन्त्रियोंके साथ उसपर चढ़ गये॥ ४१-४२॥

उस भवनकी सम्यक् सुरक्षाके लिये मणि-मन्त्र-

धारी वीरोंको नियुक्त किया गया और इसके बाद राजाने गौरमुखमुनिको [गविजातके पास उन्हें] प्रसन्न करनेके उद्देश्यसे भेजा और कहलाया कि मुझ सेवकका अपराध वे बार-बार क्षमा करें। तत्पश्चात् राजाने मन्त्र-प्रयोगमें निपुण ब्राह्मणोंको रक्षा-कार्यके निमित्त चारों ओर नियुक्त कर दिया॥ ४३-४४॥

एक मन्त्रिपुत्र वहाँ नियुक्त किया गया, जिसने महलके चारों ओर हाथियोंका घेरा स्थापित कराया ताकि विशेषरूपसे रक्षित उस महलपर कोई चढ़ न सके॥ ४५॥

महलके भीतर वायुका भी संचरण नहीं हो पाता था; क्योंकि उसका प्रवेश सर्वथा वर्जित था। राजा वहीं स्थित रहकर भोजनादि करने लगे। वहींपर रहते हुए स्नान एवं सन्ध्यादि कार्योंसे निवृत्त होकर राजा मन्त्रियोंसे मन्त्रणा करते तथा शापके दिन गिनते हुए समस्त राजकार्योंको संचालित करते थे॥ ४६-४७½॥

इसी बीच किसी कश्यप नामक मन्त्र-विशेषज्ञ ब्राह्मणने सुना कि राजा परीक्षित्‌को [सर्पद्वारा काटे जानेका] शाप प्राप्त हुआ है। उस धनाभिलाषी ब्राह्मणश्रेष्ठ कश्यपने विचार किया कि मुनिके द्वारा शापित राजा इस समय जहाँ रह रहे हैं, मैं वहीं पर जाऊँगा। ऐसा निश्चय करके मन्त्रज्ञ, विद्वान् तथा धनाभिलाषी वह कश्यप नामक मुनिश्रेष्ठ विप्र अपने घरसे निकलकर रास्तेपर चल पड़ा॥ ४८—५१॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत द्वितीय स्कन्धका 'राजा परीक्षित्‌का गुप्तगृहमें वासवर्णन' नामक नौवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ९॥

दसवाँ अध्याय

महाराज परीक्षित्‌को डँसनेके लिये तक्षकका प्रस्थान, मार्गमें मन्त्रवेत्ता कश्यपसे भेंट, तक्षकका एक वटवृक्षको डँसकर भस्म कर देना और कश्यपका उसे पुनः हरा-भरा कर देना, तक्षकद्वारा धन देकर कश्यपको वापस कर देना, सर्पदंशसे राजा परीक्षित्‌की मृत्यु

सूतजी बोले—[हे मुनिवृन्द!] उसी दिन तक्षक नामक नाग नृपश्रेष्ठ परीक्षित्‌को शापित जानकर एक उत्तम मनुष्यका रूप धारण करके अपने घरसे शीघ्र निकल पड़ा। वृद्ध ब्राह्मणके वेषमें रास्तेपर चलते हुए उस तक्षकने महाराज परीक्षित्‌के यहाँ जाते हुए कश्यपको देखा॥ १-२॥

उस नागने उन मन्त्रवेत्ता ब्राह्मणसे पूछा—आप इतनी शीघ्र गतिसे कहाँ चले जा रहे हैं और कौन-सा कार्य करनेकी आपकी इच्छा है?॥ ३॥

कश्यपने कहा—महाराज परीक्षित्‌को तक्षकनाग डँसनेवाला है। अतः मैं उन्हें विषमुक्त करनेके लिये शीघ्रतापूर्वक वहीं जा रहा हूँ॥ ४॥

हे विप्रेन्द्र! मेरे पास प्रबल विषनाशक मन्त्र है, अतएव यदि उनकी आयु शेष होगी तो मैं उन्हें जीवित कर दूँगा॥ ५॥

तक्षकने कहा—हे ब्रह्मन्! मैं ही वह तक्षकनाग हूँ और मैं ही महाराज परीक्षित्‌को काटूँगा। मेरे काट लेनेपर आप चिकित्सा करनेमें समर्थ नहीं हो सकेंगे; अतएव आप लौट जाइये॥ ६॥

कश्यपने कहा—हे सर्प! ब्राह्मणके द्वारा शापित किये गये राजाको आपके काटनेके उपरान्त मैं उन्हें अपने मन्त्रबलसे निःसन्देह जीवित कर दूँगा॥ ७॥

तक्षकने कहा—हे विप्र! हे अनघ! यदि आप मेरे काटे हुए नृपश्रेष्ठ परीक्षित्‌को जीवित करनेके लिये जा रहे हैं तो आप अपनी मन्त्र-शक्तिका प्रभाव दिखाइये। मैं इसी समय इस वटवृक्षको अपने विषैले

दाँतोंसे डँसता हूँ॥ ८१/२ ॥

कश्यपने कहा—हे सर्पश्रेष्ठ! आप इसे काट लें अथवा इसे जलाकर भस्म कर दें तो भी मैं इसे पुनः जीवित कर दूँगा॥ ९॥

सूतजी बोले—नागराज तक्षकने उस वृक्षको डँस लिया और उसे जलाकर भस्म कर दिया। तब उसने

कश्यपसे कहा—'हे द्विजश्रेष्ठ! अब आप इसे पुनः जीवित कीजिये'॥ १०॥

तक्षकनागकी विषाग्निसे भस्म हुए वृक्षके सम्पूर्ण भस्मको एकत्र करके कश्यपने यह बात कही—हे महाविषधर नागराज! अब आप मेरे मन्त्रका प्रभाव देखिये। मैं आपके देखते-देखते इस वटवृक्षको जीवन प्रदान करता हूँ॥ ११-१२॥

ऐसा कहकर हाथमें जल लेकर मन्त्रविद् कश्यपने उस जलको अभिमन्त्रित किया और उसे भस्मराशिपर छिड़क दिया। जलके पड़ते ही वह वटवृक्ष पुनः पहलेकी भाँति सुन्दर हो गया। उस वृक्षको इस प्रकार जीवित देखकर तक्षकको बड़ा आश्चर्य हुआ॥ १३-१४॥

उस नागराजने कश्यपसे कहा—हे विप्र! आप इतना परिश्रम किसलिये करेंगे? आपकी वह कामना मैं ही पूर्ण कर दूँगा। कहिये, आप क्या चाहते हैं?॥ १५॥

कश्यपने कहा—हे पन्नग! मैं धनका अभिलाषी हूँ; नृपश्रेष्ठ परीक्षित्‌को शापित जानकर अपनी मन्त्रविद्यासे उनका उपकार करनेके लिये मैं अपने घरसे निकला हुआ हूँ॥ १६॥

तक्षकने कहा—हे विप्रवर! राजासे जितना धन आप चाहते हैं, उतना धन मुझसे अभी ले लें और अपने घर लौट जायँ, जिससे मैं अपने कृत्यमें सफल हो सकूँ॥ १७॥

सूतजी बोले—तक्षककी यह बात सुनकर परमार्थवेत्ता कश्यपजी मनमें बार-बार सोचने लगे कि अब मुझे क्या करना चाहिये? यदि मैं धन लेकर अपने घर जाता हूँ तो धनलोलुप होनेके कारण संसारमें मेरी कीर्ति नहीं होगी। यदि राजा जीवित हो जाते हैं तो मेरी अचल कीर्ति होगी तथा धन-प्राप्तिके साथ-साथ पुण्य भी प्राप्त होगा॥ १८—२०॥

यश ही रक्षणीय है और बिना यशके धनको धिक्कार है; क्योंकि प्राचीन कालमें महाराज रघुने कीर्तिके लिये अपना सब कुछ ब्राह्मणको दे दिया था। सत्यवादी हरिश्चन्द्र तथा दानी कर्णने भी केवल कीर्तिके लिये बहुत कुछ किया था। अतः विषकी अग्निसे जलते हुए राजा परीक्षित्‌की उपेक्षा मैं कैसे करूँ?॥ २१-२२॥

यदि मैं महाराजको जिला दूँ तो सब लोगोंको अत्यन्त सुख मिलेगा और यदि राजा मर गये तो अराजकताके कारण सारी प्रजा नष्ट हो जायगी, इसमें सन्देह नहीं है॥ २३॥

राजाके मृत हो जाने पर मुझे प्रजानाशका पाप लगेगा तथा संसारमें धन-लोभके कारण मेरी अपकीर्ति भी होगी॥ २४॥

मनमें ऐसा विचार करके परम बुद्धिमान् कश्यपने ध्यान करके जाना कि महाराज परीक्षित्‌की आयु अब समाप्त हो चुकी है॥ २५॥

इस प्रकार ध्यान-दृष्टिसे धर्मात्मा कश्यप राजाकी मृत्यु निकट जानकर तक्षकसे धन लेकर अपने घर लौट गये॥ २६॥

कश्यपको लौटाकर वह नाग सातवें दिन राजाको डँसनेकी इच्छासे शीघ्र हस्तिनापुर चला गया॥ २७॥

नगरमें पहुँचते ही उसने सुना कि मणि, मन्त्र तथा औषधियोंसे भलीभाँति सावधानीपूर्वक सुरक्षित होकर राजा परीक्षित् अपने महलमें रह रहे हैं॥ २८॥

[यह जानकर] ब्राह्मणके शापसे भयभीत सर्पराज तक्षकको बड़ी चिन्ता हुई। वह सोचने लगा कि अब मैं किस उपायसे इस राजभवनमें प्रवेश करूँ? और इस पापी, मूढ, विप्रको पीड़ित करनेवाले तथा मुनिके शापसे आहत इस दुष्ट राजाको मैं कैसे छलूँ?॥ २९-३०॥

पाण्डववंशमें ऐसा कोई नहीं हुआ, जिसने इस प्रकार किसी तपस्वी ब्राह्मणके गलेमें मृत सर्प डाल दिया हो॥ ३१॥

ऐसा निन्दित कर्म करके कालचक्रको जानते हुए भी यह राजा भवनमें रक्षकोंकी नियुक्ति करके राज-भवनमें छिपकर मृत्युकी वंचना कर रहा है और निश्चिन्त होकर पड़ा है। विप्रके शापानुसार मैं उस राजाको कैसे डसूँ?॥ ३२-३३॥

यह मन्दबुद्धि इतना भी नहीं जानता कि मृत्यु तो अनिवार्य है? इसी कारण यह रक्षकोंकी नियुक्ति करके स्वयं भवनपर चढ़कर आनन्द ले रहा है॥ ३४॥

यदि अमित तेजवाले दैवने मृत्यु निश्चित कर दी है तो करोड़ों प्रकारके प्रयत्नोंसे भी उसे कैसे टाला जा सकता है?॥ ३५॥

पाण्डववंशका उत्तराधिकारी यह राजा परीक्षित् अपनेको मृत्युके मुखमें गया हुआ जानते हुए भी जीवित रहनेकी अभिलाषा रखकर सुरक्षित स्थानमें निश्चिन्त होकर पड़ा हुआ है॥ ३६॥

यह यदि चाहता तो अनेक प्रकारके दान-पुण्य-द्वारा अपनी आयु बढ़ा सकता था; क्योंकि धर्माचरणसे व्याधि नष्ट होती है और उससे आयु स्थिर होती है॥ ३७॥

यदि ऐसा सम्भव नहीं था तो मृत्युके समय सम्पन्न की जानेवाली स्नान, दान आदि क्रियाएँ करके मृत्युके अनन्तर स्वर्गयात्रा कर सकता था, अन्यथा इसे नरक जाना होगा॥ ३८॥

मुनिको पीड़ा पहुँचानेका पाप इस राजाको था ही और ब्राह्मणका घोर शाप अलगसे है। अत: अब इसकी मृत्यु सन्निकट है॥ ३९॥

इस समय ऐसा कोई ब्राह्मण भी इसके पास नहीं है, जो इसे यह बता सके कि विधाताके द्वारा निर्धारित मृत्यु सर्वथा अनिवार्य है॥ ४०॥

ऐसा विचारकर तक्षकनागने अपने निकटवर्ती श्रेष्ठ नागोंको तपस्वी ब्राह्मणोंका वेष धारण कराकर राजाके पास भेजा। वे राजाको देनेके लिये फल-मूल आदि लेकर तैयार हो गये और तक्षकनाग भी एक छोटे-से कीटके रूपमें फलके बीचमें छिप गया॥ ४१-४२॥

तब वे नाग फल आदि लेकर शीघ्र ही निकल पड़े और राजभवनमें पहुँचकर महलके पास खड़े हो गये॥ ४३॥

इस प्रकार तपस्वियोंको खड़े देखकर रक्षकोंने उनसे पूछा कि आपलोगोंकी क्या इच्छा है? तब उन्होंने कहा—हमलोग महाराजको देखनेके लिये तपोवनसे आये हैं॥ ४४॥

पाण्डवकुलके सूर्य, शुभदर्शन तथा पराक्रमी अभिमन्यु-पुत्र परीक्षित्‌को अथर्ववेदोक्त मन्त्रोंसे आशीर्वाद देनेहेतु हमलोग यहाँ आये हैं॥ ४५॥

आप जाकर महाराजसे कहें कि कुछ मुनिजन उनसे मिलने आये हैं और वे महाराजका मन्त्राभिषेक करके उन्हें मधुर फल देकर लौट जायेंगे॥ ४६॥

भरतवंशी राजाओंके कुलमें कभी भी द्वाररक्षक नहीं देखे गये। ऐसा भी कहीं सुना नहीं गया कि तपस्वियोंको राजाका दर्शन न मिले। जहाँ महाराज परीक्षित् विराजमान हैं, वहाँ हमलोग जायँगे और उन्हें अपने आशीर्वादसे दीर्घायुष्य बनाकर आज्ञा लेकर लौट जायँगे॥ ४७-४८॥

सूतजी बोले—उन तपस्वियोंका वचन सुनकर रक्षकोंने उन्हें ब्राह्मण समझकर महाराजका आदेश सुनाते

हुए कहा—हे विप्रो! हमारे विचारमें आज आपलोगोंको राजाका दर्शन नहीं हो सकेगा। अतः आप समस्त तपस्वीजन राजभवनमें कल पधारें॥ ४९-५०॥

हे मुनिश्रेष्ठो! विप्रशापसे भयभीत होकर राजाने अपने महलमें ब्राह्मणोंका प्रवेश वर्जित कर रखा है; इसमें संशय नहीं है॥ ५१॥

तब ब्राह्मणोंने उनसे कहा—हमलोगोंकी ओरसे ये फल-मूल तथा जल आप रक्षकगण राजाको दे दें और हमलोगोंका आशीर्वाद पहुँचा दें॥ ५२॥

उन्होंने राजाके पास जाकर तपस्वियोंके आगमनकी बात बता दी। इसपर राजाने आज्ञा दी कि वे लोग फल-मूल आदि जो कुछ दे रहे हैं, उन्हें यहाँ लाओ और उन तपस्वियोंके आनेका कारण पूछ लो और उन्हें पुनः कल प्रातः आनेको कह दो। साथ ही मेरी ओरसे उन्हें प्रणाम कहकर यह भी कह देना कि आज मेरा मिलना सम्भव नहीं है॥ ५३-५४॥

उन द्वारपालोंने तपस्वियोंके पास जाकर उनके दिये हुए फल-मूल आदि लाकर आदरपूर्वक राजाको अर्पित कर दिये॥ ५५॥

उन विप्रवेषमें आये नागोंके चले जानेपर महाराजने फलोंको लेकर मन्त्रियोंसे कहा—हे सचिवो! आपलोग भी इन फलोंका सम्यक् सेवन कीजिये। मैं तो तपस्वियोंद्वारा अर्पित यही एक बड़ा फल खाऊँगा॥ ५६-५७॥

ऐसा कहकर उत्तरासुत राजा परीक्षित्ने सब फल अपने सुहृद् सचिवोंमें बाँट दिये और एक सुन्दर पका फल हाथमें लेकर उसे स्वयं विदीर्ण किया॥ ५८॥

जिस फलको राजाने चीरा, उसमें ताम्र वर्णवाला तथा काले नेत्रवाला एक छोटा-सा कीट राजाको दिखायी दिया। उसे देखकर राजाने अपने आश्चर्यचकित मन्त्रियोंसे कहा—सूर्य अस्त हो रहे हैं, अतः अब मुझे विषका भय नहीं है। मैं ब्राह्मणके उस शापको अंगीकार करता हूँ कि यह कीट मुझे काट ले। ऐसा कहकर महाराज परीक्षित्ने उसे अपने गलेपर रख लिया। सूर्यके अस्त होते ही गलेपर स्थित वह कीट साक्षात् कालस्वरूप भयानक तक्षकके रूपमें परिणत हो गया॥ ५९—६२॥

उस नागने तत्काल राजाको लपेट लिया तथा उन्हें डँस लिया। यह देखते ही सभी मन्त्री आश्चर्यमें पड़ गये और अत्यधिक दुःखित होकर विलाप करने लगे॥ ६३॥

भयंकर रूपवाले उस सर्पको देखकर सभी सचिवगण भयभीत होकर वहाँसे भागने लगे और सभी रक्षकगण चिल्लाने लगे। इस प्रकार वहाँ महान् हाहाकार मच गया॥ ६४॥

उस सर्पके शरीरसे बद्ध हो जानेके कारण राजाका महान् बल प्रभावहीन हो गया, जिससे वे उत्तरापुत्र परीक्षित् कुछ भी बोल पाने तथा हिल-डुल सकनेमें असमर्थ हो गये॥ ६५॥

तक्षकके मुखसे विषजनित भयंकर आगकी ज्वालाएँ उठने लगीं। उस भीषण ज्वालाने क्षणभरमें राजाको जला दिया और शीघ्र ही उन्हें निष्प्राण कर दिया॥ ६६॥

इस प्रकार क्षणमात्रमें ही राजाका प्राण हरकर वह तक्षकनाग आकाशमें चला गया। वहाँ लोगोंने संसारको भस्मसात् कर देनेकी सामर्थ्यवाले उस तक्षकको देखा॥ ६७॥

वे राजा परीक्षित् प्राणहीन होकर जले हुए वृक्षकी भाँति गिर पड़े और राजाको मृत देखकर सभी लोग विलाप करने लगे॥ ६८॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत द्वितीय स्कन्धका 'परीक्षित्-मरण' नामक दसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १०॥

ग्यारहवाँ अध्याय

जनमेजयका राजा बनना और उत्तंककी प्रेरणासे सर्प-सत्र करना, आस्तीकके कहनेसे राजाद्वारा सर्प-सत्र रोकना

सूतजी बोले—सभी मन्त्रियोंने राजा परीक्षित्को मृतक तथा उनके पुत्र जनमेजयको अबोध जानकर उनकी परलोक-सम्बन्धी क्रियाएँ सम्यक् प्रकारसे सम्पन्न कीं॥ १॥

शरीर दग्ध हो जानेसे भस्मीभूत हुए राजाको उन मन्त्रियोंने गंगाके किनारे अगरुसे बनायी गयी चितापर रखा॥ २॥

अकालमृत्युको प्राप्त राजा परीक्षित्की और्ध्वदैहिक क्रिया राजाके पुरोहितोंद्वारा वैदिक मन्त्रोंके साथ विधिवत् सम्पन्न की गयी॥ ३॥

मन्त्रियोंने ब्राह्मणोंको गायें, सुवर्ण, अनेक प्रकारके अन्न तथा नाना प्रकारके वस्त्र यथोचित रूपसे दानमें दिये॥ ४॥

तत्पश्चात् मन्त्रियोंने प्रजाओंके प्रति प्रीति-सम्वर्धन करनेवाले राजपुत्र जनमेजयको शुभ मुहूर्तमें सुन्दर राजसिंहासनपर आसीन किया॥ ५॥

पुरवासी तथा जनपदवासी प्रजाओंने राजलक्षणोंसे सम्पन्न जनमेजय नामक उस बालकको अपने राजाके रूपमें स्वीकार किया॥ ६॥

राजकुमारकी धात्रीने उन्हें सब प्रकारके राजोचित गुणोंकी शिक्षा दी। इस प्रकार दिन-प्रतिदिन वृद्धिको प्राप्त होते हुए वे महान् बुद्धिमान् हो गये॥ ७॥

उनकी ग्यारह वर्षकी अवस्था होनेपर कुल-पुरोहितने उन्हें यथोचित शिक्षा प्रदान की और उन्होंने उसे सम्यक् रूपसे ग्रहण किया॥ ८॥

जिस प्रकार द्रोणाचार्यने अर्जुनको तथा भार्गव परशुरामने कर्णको धनुर्विद्यामें प्रशिक्षित किया, उसी प्रकार कृपाचार्यने जनमेजयको भलीभाँति परिष्कृत धनुर्विद्या प्रदान की॥ ९॥

इस प्रकार सम्पूर्ण विद्या प्राप्त करके वे जनमेजय वेद तथा धनुर्वेदमें पूर्ण पारंगत, बलशाली, अपराजेय तथा परमार्थवेत्ता हो गये॥ १०॥

वे धर्मशास्त्रके अर्थोंका विवेचन करनेमें कुशल, सत्यनिष्ठ, इन्द्रियजित् और धर्मात्मा थे। उन्होंने पूर्वमें धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरकी भाँति राज्य-शासन किया॥ ११॥

इसके बाद सुवर्णवर्मा नामवाले काशिपति राजाने शुभ गुणोंवाली अपनी कन्या वपुष्टमाका पाणिग्रहण जनमेजयके साथ सम्पन्न कर दिया॥ १२॥

जिस प्रकार प्राचीन कालमें काशिराजकी पुत्रीको पाकर विचित्रवीर्य तथा सुभद्राको पाकर अर्जुन अत्यन्त आह्लादित हुए थे, उसी प्रकार उस श्याम नयनोंवालीको अपनी कान्ताके रूपमें पाकर जनमेजय अति प्रसन्न हुए। कमलपत्रके समान नेत्रोंवाली उस वपुष्टमाके साथ वनों और उपवनोंमें राजा जनमेजय उसी प्रकार विहार करने लगे जिस प्रकार इन्द्राणीके साथ इन्द्र। उनके द्वारा सुखपूर्वक रक्षित प्रजा अति सन्तुष्ट थी। जनमेजयके कार्यकुशल सभी मन्त्री समस्त कार्योंको सम्यक् प्रकारसे करते थे॥ १३—१५½॥

इसी समय तक्षकके द्वारा पीड़ित उत्तंक नामक मुनिका हस्तिनापुरमें आगमन हुआ। 'इस सर्पकी शत्रुताका बदला कौन ले सकता है'—ऐसा सोचते हुए वे परीक्षित्-पुत्र जनमेजयको यह कार्य कर सकनेवाला समझकर उनके पास आये और बोले—हे भूपवर! आपको यह ज्ञान नहीं है कि इस समय क्या करणीय है और क्या अकरणीय है? आप इस समय न करनेयोग्य कार्य कर रहे हैं और करनेयोग्य कार्य नहीं कर रहे हैं। आपसदृश रोषहीन, पुरुषार्थरहित, वैरभावके ज्ञानसे शून्य, प्रतीकार आदि उपायोंको न जाननेवाले तथा बालकोंके समान स्वभाववाले राजासे अब मैं क्या कहूँ?॥ १६—१९½॥

जनमेजय बोले—मैंने किस शत्रुताको नहीं जाना और उसका प्रतीकार नहीं किया? हे महाभाग! आप मुझे वह बतायें, जिससे मैं उसे सम्पन्न कर सकूँ॥ २०½॥

उत्तंक बोले—हे राजन्! आपके पिता परीक्षित्

दुष्टात्मा तक्षकनागद्वारा मार डाले गये थे। आप मन्त्रियोंको बुलाकर अपने पिताकी मृत्युके विषयमें पूछिये॥ २११/२॥

सूतजी बोले—उत्तंकका वचन सुनकर राजाने मन्त्रि-प्रवरोंसे पूछा। तब उन्होंने बताया कि ब्राह्मणद्वारा शापित होनेके कारण एक सर्पने उन्हें डँस लिया और वे मर गये॥ २२१/२॥

जनमेजय बोले—मेरे पिता राजा परीक्षित्‌की मृत्युका कारण तो मुनिद्वारा प्रदत्त शाप था। हे मुनिश्रेष्ठ! मुझे यह बताइये कि इसमें तक्षकका क्या दोष था?॥ २३१/२॥

उत्तंक बोले—तक्षकने कश्यप नामक ब्राह्मणको धन देकर आपके पितातक पहुँचनेसे रोक दिया था। हे राजन्! आपके पिताका हन्ता वह तक्षक क्या आपका शत्रु नहीं है? हे भूप! प्राचीन कालमें मुनि रुरुकी भार्याको सर्पने डँस लिया था और वह मर गयी थी। वह अविवाहिता थी। मुनि रुरुने अपनी उस प्रियाको पुनः जीवित कर दिया और उन्होंने वहींपर अत्यन्त भीषण प्रतिज्ञा की कि मैं जिस किसी भी सर्पको देखूँगा, उसे तत्काल आयुधसे मार डालूँगा। हे राजन्! इस प्रकार प्रतिज्ञा करके हाथमें शस्त्र लेकर मुनि रुरु सर्पोंका वध करते हुए इधर-उधर घूमते रहे। एक बार उन्हें वनमें एक बूढ़ा डुंडुभ साँप दिखायी दिया। वे लाठी उठाकर रोषपूर्वक उसे मारनेके लिये तत्पर हुए, तब डुंडुभने उन ब्राह्मणसे कहा—हे विप्र! मैं आपके प्रति कोई अपराध नहीं कर रहा हूँ तो फिर आप मुझे क्यों मार रहे हैं?॥ २४—२९१/२॥

रुरु बोले—मेरी प्राणप्रिया भार्याको सर्पने डँस लिया था और उसकी मृत्यु हो गयी थी। अतः हे सर्प! उसी समयसे दुःखित होकर मैंने ऐसी प्रतिज्ञा कर ली थी॥ ३०१/२॥

डुंडुभ बोला—मैं किसीको काटता नहीं। जो सर्प काटते हैं, वे दूसरे होते हैं। इसलिये सर्पसदृश शरीर होनेके कारण मुझे आप मत मारिये॥ ३११/२॥

उत्तंक बोले—मनुष्यके समान उसकी सुन्दर वाणी सुनकर रुरुने पूछा—तुम कौन हो? और डुंडुभयोनिको कैसे प्राप्त हो गये?॥ ३२१/२॥

सर्प बोला—हे विप्र! पहले मैं ब्राह्मण था और 'खगम' नामका मेरा एक ब्राह्मण मित्र था। वह धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ, सत्यवादी तथा जितेन्द्रिय था। एक बार अपनी मूर्खतावश मैंने तृणका सर्प बनाकर उसे धोखेमें डाल दिया॥ ३३-३४॥

उस समय वह अग्निहोत्रगृहमें विद्यमान था, सर्पको देखकर अत्यन्त डर गया। भयसे थर-थर काँपते हुए उस ब्राह्मणने विह्वल होकर मुझे शाप दे दिया—हे मन्दबुद्धि! तुमने सर्प दिखाकर मुझे डराया है, अतः तुम सर्प हो जाओ। सर्परूपमें मैंने उस ब्राह्मणकी बड़ी प्रार्थना की। तब उस ब्राह्मणने क्रोधसे थोड़ा शान्त होनेपर मुझसे कहा—हे सर्प! प्रमतिपुत्र रुरु तुम्हें इस शापसे मुक्त करेंगे। उन्होंने यह बात स्वयं मुझसे कही थी। मैं वही सर्प हूँ और आप रुरु हैं। आप मेरे वचनको ध्यानपूर्वक सुनिये—ब्राह्मणोंके लिये अहिंसा परम धर्म है, इसमें सन्देह नहीं। अतः विद्वान् ब्राह्मणको चाहिये कि वह सर्वत्र दया करे। हे विप्रवर! यज्ञसे अतिरिक्त कहीं भी की गयी हिंसा याज्ञिकी हिंसा नहीं कही गयी है॥ ३५—३९१/२॥

उत्तंक बोले—तब वह ब्राह्मण सर्पयोनिसे मुक्त हो गया। इस प्रकार उस ब्राह्मणके शापका अन्त करके रुरुने भी हिंसा छोड़ दी। उन्होंने मरी हुई उस सुन्दरीको पुनः जीवित कर दिया और उसके साथ विवाह कर लिया॥ ४०-४१॥

हे राजन्! उस मुनिने इस प्रकार शत्रुताका स्मरण करते हुए सभी सर्पोंका संहार किया था, परंतु हे भरतश्रेष्ठ! आप तो वैर भूलकर अपने पिताको मारनेवाले सर्पोंके प्रति क्रोधशून्य बने रहते हैं। आपके पिता स्नान-दान किये बिना अन्तरिक्षमें ही मर गये। इसलिये हे राजेन्द्र! सर्पोंका नाश करके आप उनका उद्धार कीजिये। जो पुत्र पिताके शत्रुओंसे बदला नहीं लेता, वह जीते हुए भी मृतकतुल्य है। हे नृपश्रेष्ठ! जबतक आप सर्पोंका विनाश नहीं करते, तबतक आपके पिताकी दुर्गति ही रहेगी। हे महाराज! आप देवीयज्ञके व्याजसे अपने पिताकी शत्रुताका स्मरण करते हुए सर्पसत्र नामक यज्ञ कीजिये॥ ४२—४५१/२॥

सूतजी बोले—उत्तंकमुनिका यह वचन सुनकर राजा

जनमेजय अत्यन्त दुःखी हुए और उनके नेत्रोंसे अश्रुपात होने लगा। [वे मनमें सोचने लगे] जिसके पिता सर्पसे दंशित होकर इस प्रकार दुर्गतिको प्राप्त हों, उस मुझ मिथ्याभिमानी तथा दुर्बुद्धिको धिक्कार है। मैं आज ही यज्ञ आरम्भ करके प्रज्वलित अग्निमें सर्पोंकी आहुति देकर अवश्य ही पिताकी मृत्युका बदला लूँगा॥ ४६—४८१/२॥

सभी मन्त्रियोंको बुलाकर राजाने यह वचन कहा— हे मन्त्रिप्रवरो! गंगाके किनारे श्रेष्ठ ब्राह्मणोंसे उत्तम भूमिकी माप कराकर आपलोग यथोचित यज्ञसामग्रीका प्रबन्ध करें। हे मेरे बुद्धिमान् मन्त्रियो! सौ खंभोंवाले एक सुरम्य मण्डपका निर्माण कराकर आपलोग उसमें आज ही यज्ञके लिये वेदीका भी निर्माण सम्पन्न करा लें। उस यज्ञके अंगरूपमें विस्तारसहित सर्पसत्र भी करना है। महामुनि उत्तंक उस यज्ञके होता होंगे और तक्षकनाग उसमें यज्ञपशु होगा। आपलोग शीघ्र ही सर्वज्ञाता एवं वेदपारगामी ब्राह्मणोंको आमन्त्रित करें॥ ४९—५२१/२॥

सूतजी बोले—बुद्धिमान् मन्त्रियोंने राजाके कथनानुसार यज्ञसम्बन्धी समस्त सामग्रीका प्रबन्ध कर लिया और विस्तृत यज्ञवेदी भी निर्मित करायी। सर्पोंका हवन आरम्भ होनेपर तक्षक इन्द्रके यहाँ गया और उनसे बोला—मैं भयाकुल हूँ, मेरी रक्षा कीजिये। तत्पश्चात् इन्द्रने उस भयभीत तक्षकको सान्त्वना देकर अपने आसनपर बैठाकर उसे अभय प्रदान किया और कहा—हे पन्नग! तुम निर्भय हो जाओ॥ ५३—५५१/२॥

तदनन्तर उत्तंकमुनि उस तक्षकको इन्द्रका शरणागत और उनसे अभयदान पाया हुआ जानकर उद्विग्न हो उठे और उन्होंने मन्त्रप्रभावसे इन्द्रसहित तक्षकका आवाहन किया। तब तक्षकने यायावरवंशमें उत्पन्न जरत्कारुपुत्र धर्मनिष्ठ आस्तीक-नामक मुनिका स्मरण किया। वे मुनिबालक आस्तीक वहाँ आकर जनमेजयकी प्रशंसा करने लगे॥ ५६—५८॥

राजा जनमेजयने उस बालकको महान् पण्डित देखकर उसकी पूजा की। पूजन-अर्चन करके राजाने अपनी मनोवांछित वस्तु माँगनेके लिये उससे निवेदन किया॥ ५९॥

तब आस्तीकने याचना की—हे महाभाग! इस यज्ञको समाप्त किया जाय। उसने सत्य वचनमें आबद्ध राजासे बार-बार ऐसी प्रार्थना की॥ ६०॥

तत्पश्चात् मुनिके वचनानुसार राजाने सर्पोंका हवन बन्द कर दिया और फिर वैशम्पायनऋषिने उन्हें विस्तारपूर्वक

महाभारतकी कथा सुनायी॥ ६१॥

उस कथाको सुनकर भी राजाको विशेष शान्ति नहीं प्राप्त हुई तब राजाने व्यासजीसे पूछा—मुझे किस प्रकार शान्ति मिलेगी? मेरा मन अशान्तिकी अग्निमें अत्यधिक दग्ध हो रहा है, मैं क्या करूँ? मुझको बतलाइये। मुझ मन्दभाग्यके पिता और अर्जुनपौत्र परीक्षित् अकाल-मृत्युको प्राप्त हुए हैं। हे महाभाग! युद्धमें होनेवाली मृत्यु ही क्षत्रियोंके लिये श्रेष्ठ होती है। हे व्यासजी! रणमें अथवा घरमें विधिपूर्वक होनेवाली मृत्यु ही अच्छी मानी जाती है, किंतु मेरे पिताका वैसा मरण नहीं हुआ। वे तो असहाय अवस्थामें अन्तरिक्षमें मृत्युको प्राप्त हुए। हे सत्यवतीपुत्र! आप उनकी शान्ति-प्राप्तिका कोई उपाय बतलाइये, जिससे दुर्गतिको प्राप्त मेरे पिताजी शीघ्र ही स्वर्ग चले जायँ॥ ६२—६६॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत द्वितीय स्कन्धका 'सर्पसत्रवर्णन' नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ११॥

बारहवाँ अध्याय

आस्तीकमुनिके जन्मकी कथा, कद्रू और विनताद्वारा सूर्यके घोड़के रंगके विषयमें शर्त लगाना और विनताको दासीभावकी प्राप्ति, कद्रूद्वारा अपने पुत्रोंको शाप

सूतजी बोले—राजा जनमेजयका वचन सुनकर सत्यवतीपुत्र व्यासने सभामें उन राजासे कहा—॥ १॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! सुनिये, मैं आपसे एक पुनीत, कल्याणकारक, रहस्यमय, अद्भुत तथा विविध कथानकोंसे युक्त देवीभागवत नामक पुराण कहूँगा॥ २॥

मैंने पूर्वकालमें उसे अपने पुत्र शुकदेवको पढ़ाया था। हे राजन्! मैं अपने परम रहस्यमय पुराणका श्रवण आपको कराऊँगा॥ ३॥

सभी वेदों एवं शास्त्रोंके सारस्वरूप तथा धर्म-अर्थ-काम-मोक्षके कारणभूत इस पुराणका श्रवण करनेसे यह मंगल तथा आनन्द प्रदान करनेवाला होता है॥ ४॥

जनमेजय बोले—हे प्रभो! यह आस्तीक किसका पुत्र था और यज्ञमें विघ्न डालनेके लिये क्यों आया? यज्ञमें सर्पोंकी रक्षा करनेके पीछे इसका क्या उद्देश्य था?॥ ५॥

हे महाभाग! उस आख्यानको विस्तारपूर्वक बताइये। हे सुव्रत! उस सम्पूर्ण पुराणको भी विस्तारके साथ कहिये॥ ६॥

व्यासजी बोले—जरत्कारु एक शान्त स्वभाववाले ऋषि थे, उन्होंने गार्हस्थ्य-जीवन अंगीकार नहीं किया था। उन्होंने एक बार वनमें एक गड्ढेके भीतर अपने पूर्वजोंको लटकते हुए देखा॥ ७॥

तदनन्तर पूर्वजोंने उनसे कहा—हे पुत्र! तुम विवाह कर लो, जिससे हमारी परम तृप्ति हो सके। तुझ सदाचारी पुत्रके ऐसा करनेपर हमलोग निश्चितरूपसे दुःखमुक्त होकर स्वर्गकी प्राप्ति कर लेंगे॥ ८॥

तब उन जरत्कारुने उनसे कहा—हे मेरे पूर्वजो! जब मुझे अपने समान नामवाली तथा अत्यन्त वशवर्तिनी कन्या बिना माँगे ही मिलेगी तभी मैं विवाह करके गृहस्थी बसाऊँगा, मैं यह सत्य कह रहा हूँ॥ ९॥

उनसे ऐसा कहकर ब्राह्मण जरत्कारु तीर्थाटनके लिये चल पड़े। उसी समय सर्पोंको उनकी माताने शाप दे दिया कि वे अग्निमें गिर जायँ॥ १०॥

कश्यपऋषिकी कद्रू और विनता नामक दो पत्नियाँ थीं। सूर्यके रथमें जुते हुए घोड़ेको देखकर वे आपसमें वार्तालाप करने लगीं॥ ११॥

उस घोड़ेको देखकर कद्रूने विनतासे यह कहा—हे कल्याणि! यह घोड़ा किस रंगका है? यह मुझे शीघ्र ही सही-सही बताओ॥ १२॥

विनता बोली—यह अश्वराज श्वेत रंगका है। हे शुभे! तुम इसे किस रंगका मानती हो? तुम भी इसका रंग

बता दो। तब हम दोनों आपसमें इसपर शर्त लगायें॥ १३॥

कद्रू बोली—हे शुभ मुसकानवाली! मैं तो इस घोड़ेको कृष्णवर्णका समझती हूँ। हे भामिनि! आओ, मेरे साथ शर्त लगाओ कि जो हारेगी, वह दूसरेकी दासी होना स्वीकार करेगी॥ १४॥

सूतजी बोले—कद्रूने अपने सभी आज्ञाकारी सर्पपुत्रोंसे कहा कि तुम सभी लिपटकर उस घोड़ेके शरीरमें जितने बाल हैं, उन्हें काला कर दो॥ १५॥

उनमेंसे कुछ सर्पोंने कहा कि हम ऐसा नहीं करेंगे।

उन सर्पोंको कद्रूने शाप दे दिया कि तुम लोग जनमेजयके यज्ञमें हवनकी अग्निमें गिर पड़ोगे॥ १६॥

अन्य सर्पोंने माताको प्रसन्न करनेकी कामनासे उस घोड़ेकी पूँछमें लिपटकर अपने विभिन्न रंगोंसे घोड़ेको चितकबरा कर दिया॥ १७॥

तदनन्तर दोनों बहनोंने साथ-साथ जाकर घोड़ेको देखा। उस घोड़ेको चितकबरा देखकर विनता बहुत दुःखी हुई॥ १८॥

उसी समय सर्पोंका आहार करनेवाले महाबली विनतापुत्र गरुडजी वहाँ आ गये। उन्होंने अपनी माताको दुःखित देखकर उनसे पूछा— ॥ १९॥

हे माता! आप बहुत उदास क्यों हैं? आप मुझे रोती हुई प्रतीत हो रही हैं। हे सुनयने! मेरे एवं सूर्यसारथि अरुणसदृश पुत्रोंके जीवित रहते यदि आप दुःखी हैं, तब हमारे जीवनको धिक्कार है! यदि माता ही परम दुःखी हों तो पुत्रके उत्पन्न होनेसे क्या लाभ? हे माता! आप मुझे अपने दुःखका कारण बताइये, मैं आपको दुःखसे मुक्त करूँगा॥ २०-२१½॥

विनता बोली—हे पुत्र! मैं अपनी सौतकी दासी हो गयी हूँ। अब व्यर्थमें मारी गयी मैं क्या कहूँ? वह मुझसे अब कह रही है कि मैं उसे अपने कन्धेपर ढोऊँ। हे पुत्र! मैं इसीसे दुःखी हूँ॥ २२½॥

गरुडजी बोले—वे जहाँ भी जानेकी कामना करेंगी, मैं उन्हें ढोकर वहाँ ले जाऊँगा। हे कल्याणि! आप शोक न करें, मैं आपको निश्चिन्त कर देता हूँ॥ २३½॥

व्यासजी बोले—गरुडद्वारा ऐसा कहे जानेपर विनता उसी समय कद्रूके पास चली गयी। महाबली गरुड भी अपनी माता विनताको दास्यभावसे मुक्ति दिलानेके उद्देश्यसे कद्रूको उसके पुत्रोंसहित अपनी पीठपर बैठाकर सागरके उस पार ले गये॥ २४-२५॥

वहाँ जाकर गरुडने कद्रूसे कहा—हे जननि! आपको बार-बार प्रणाम है। अब आप मुझे यह बतायें कि मेरी माता दासीभावसे निश्चित ही कैसे मुक्त होंगी?॥ २६॥

कद्रू बोली—हे पुत्र! तुम स्वर्गलोकसे बलपूर्वक अमृत लाकर मेरे पुत्रोंको दे दो और शीघ्र ही अपनी अबला माताको मुक्त करा लो॥ २७॥

व्यासजी बोले—कद्रूके ऐसा कहनेपर पक्षिश्रेष्ठ महाबली गरुड उसी समय इन्द्रलोक गये और देवताओंसे युद्ध करके उन्होंने सुधा-कलश छीन लिया। अमृत लाकर उन्होंने उसे अपनी विमाता कद्रूको अर्पण कर दिया और उन्होंने विनताको दासीभावसे निःसन्देह मुक्त करा लिया॥ २८-२९॥

जब सभी सर्प स्नान करनेके लिये चले गये, तब इन्द्रने अमृत चुरा लिया। इस प्रकार गरुडके प्रतापसे विनता

दासीभावसे छूट गयी॥ ३०॥

अमृतघटके पास कुश बिछे हुए थे, जिन्हें सर्प अपनी जिह्वासे चाटने लगे। तब कुशके अग्रभागके स्पर्शमात्रसे ही वे दो जीभवाले हो गये॥ ३१॥

जिन सर्पोंको उनकी माताने शाप दिया था, वे वासुकि आदि नाग चिन्तित होकर ब्रह्माजीके पास गये और उन्होंने अपने शाप-जनित भयकी बात बतायी। ब्रह्माजीने उनसे कहा—जरत्कारु नामके एक महामुनि हैं, तुमलोग उन्हींके नामवाली वासुकिनागकी बहन जरत्कारुको उन्हें अर्पित कर दो। उस कन्यासे जो पुत्र उत्पन्न होगा, वही तुमलोगोंका रक्षक होगा। वह 'आस्तीक'—इस नामवाला होगा; इसमें

सन्देह नहीं है॥ ३२—३४॥

ब्रह्माजीका वह कल्याणकारी वचन सुनकर वासुकिने वनमें जाकर अपनी बहन उन्हें विनयपूर्वक समर्पित कर दी॥ ३५॥

जरत्कारुमुनिने उसे अपने ही समान नामवाली जानकर उनसे कहा—जब भी यह मेरा अप्रिय करेगी, तब मैं इसका परित्याग कर दूँगा॥ ३६॥

वैसी प्रतिज्ञा करके जरत्कारुमुनिने उस जरत्कारुको पत्नीरूपसे ग्रहण कर लिया। वासुकिनाग भी अपनी बहन उन्हें प्रदानकर आनन्दपूर्वक अपने घर लौट गये॥ ३७॥

हे परन्तप! मुनि जरत्कारु उस महावनमें सुन्दर पर्णकुटी बनाकर उसके साथ रमण करते हुए सुख भोगने लगे॥ ३८॥

एक समय मुनिश्रेष्ठ जरत्कारु भोजन करके विश्राम कर रहे थे, वासुकिकी बहन सुन्दरी जरत्कारु भी वहीं बैठी हुई थी। [मुनिने उससे कहा] हे कान्ते! तुम मुझे किसी भी प्रकार जगाना मत—उस सुन्दर दाँतोंवालीसे ऐसा कहकर वे मुनि सो गये॥ ३९-४०॥

सूर्य अस्ताचलको प्राप्त हो गये थे। सन्ध्यावन्दनका समय उपस्थित हो जानेपर धर्मलोपके भयसे डरी हुई जरत्कारु सोचने लगी—मैं क्या करूँ? मुझे शान्ति नहीं मिल रही है। यदि मैं इन्हें जगाती हूँ तो ये मेरा परित्याग कर देंगे और यदि नहीं जगाती हूँ तो यह सन्ध्याकाल व्यर्थ ही चला जायगा॥ ४१-४२॥

धर्मनाशकी अपेक्षा त्याग श्रेष्ठ है; क्योंकि मृत्यु तो निश्चित है ही। धर्मके नष्ट होनेपर मनुष्योंको निश्चित ही नरकमें जाना पड़ता है—ऐसा निश्चय करके उस स्त्रीने उन मुनिको जगाया और कहा—हे सुव्रत! उठिये, उठिये, अब सन्ध्याकाल भी उपस्थित हो गया है॥ ४३-४४॥

जगनेपर मुनि जरत्कारुने क्रोधित होकर उससे कहा—अब मैं जा रहा हूँ और मेरी निद्रामें विघ्न डालनेवाली तुम अपने भाई वासुकिके घर चली जाओ॥ ४५॥

मुनिके ऐसा कहनेपर भयसे काँपती हुई उसने कहा—हे महातेजस्वी! मेरे भाईने जिस प्रयोजनसे मुझे

आपको सौंपा था, वह प्रयोजन अब कैसे सिद्ध होगा?॥ ४६॥

तदनन्तर मुनिने शान्तचित्त होकर जरत्कारुसे कहा—'वह तो है ही।' इसके बाद मुनिके द्वारा परित्यक्त वह कन्या वासुकिके घर चली गयी॥ ४७॥

भाई वासुकिके पूछनेपर उसने पतिद्वारा कही गयी बात उनसे यथावत् कह दी और [वह यह भी बोली कि] 'अस्ति'—ऐसा कहकर वे मुनिश्रेष्ठ मुझको छोड़कर चले गये॥ ४८॥

यह सुनकर वासुकिने सोचा कि मुनि सत्यवादी हैं; तत्पश्चात् पूर्ण विश्वास करके उन्होंने अपनी उस बहनको अपने यहाँ आश्रय प्रदान किया॥ ४९॥

हे कुरुश्रेष्ठ! कुछ समय बाद मुनिबालक उत्पन्न हुआ और वह आस्तीक नामसे विख्यात हुआ॥ ५०॥

हे नृपश्रेष्ठ! पवित्र आत्मावाले उन्हीं आस्तीकमुनिने अपने मातृ-पक्षकी रक्षाके लिये आपका सर्पयज्ञ रुकवाया है॥ ५१॥

हे महाराज! यायावर वंशमें उत्पन्न और वासुकिकी बहनके पुत्र आस्तीकका आपने सम्मान किया, यह तो बड़ा ही उत्तम कार्य किया है॥ ५२॥

हे महाबाहो! आपका कल्याण हो। आपने सम्पूर्ण महाभारत सुना, नानाविध दान दिये और मुनिजनोंकी पूजा की। हे भूपश्रेष्ठ! आपके द्वारा इतना महान् पुण्यकार्य किये जानेपर भी आपके पिता स्वर्गको प्राप्त नहीं हुए और न आपका सम्पूर्ण कुल ही पवित्र हो सका। अत: हे महाराज जनमेजय! आप भक्तिभावसे युक्त होकर देवी भगवतीके एक विशाल मन्दिरका निर्माण कराइये, जिसके द्वारा आप

समस्त सिद्धिको प्राप्त कर लेंगे॥ ५३—५५॥

सर्वस्व प्रदान करनेवाली भगवती दुर्गा परम श्रद्धापूर्वक पूजित होनेपर सदा वंश-वृद्धि करती हैं तथा राज्यको सदा स्थिरता प्रदान करती हैं॥ ५६॥

हे भूपश्रेष्ठ! विधि-विधानके साथ देवीयज्ञ करके आप श्रीमद्देवीभागवत नामक महापुराणका श्रवण कीजिये॥ ५७॥

अत्यन्त पुनीत, भवसागरसे पार उतारनेवाली, अलौकिक तथा विविध रसोंसे सम्पृक्त उस कथाको मैं आपको सुनाऊँगा॥ ५८॥

हे राजन्! सम्पूर्ण संसारमें इस पुराणसे बढ़कर अन्य कुछ भी श्रवणीय नहीं है और भगवतीके चरणारविन्दके अतिरिक्त अन्य कुछ भी आराधनीय नहीं है॥ ५९॥

हे नृपश्रेष्ठ! जिनके प्रेमपूरित हृदयमें सदा भगवती विराजमान रहती हैं; वे ही सौभाग्यशाली, ज्ञानवान् एवं धन्य हैं॥ ६०॥

हे भारत! इस भारतभूमिपर वे ही लोग सदा दुःखी दिखायी देते हैं, जिन्होंने कभी भी महामाया अम्बिकाकी आराधना नहीं की है॥ ६१॥

हे राजन्! ब्रह्मा आदि सभी देवता भी जिन भगवतीकी आराधनामें सर्वदा लीन रहते हैं, उनकी आराधना भला कौन मनुष्य नहीं करेगा?॥ ६२॥

जो मनुष्य इस पुराणका नित्य श्रवण करता है, उसकी सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। स्वयं भगवतीने भगवान् विष्णुके समक्ष इस अतिश्रेष्ठ पुराणका वर्णन किया था॥ ६३॥

हे राजन्! इस पुराणके श्रवणसे आपके चित्तको परम शान्ति प्राप्त होगी और आपके पितरोंको अक्षय स्वर्ग प्राप्त होगा॥ ६४॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत द्वितीय स्कन्धका 'श्रोतृप्रवक्तृप्रसंग' नामक बारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १२॥

॥ द्वितीय स्कन्ध समाप्त॥

यज्ञकर्मक्रियावेदः स्मृतिर्वेदो गृहाश्रमे॥
स्मृतिर्वेदः क्रियावेदः पुराणेषु प्रतिष्ठितः। पुराणपुरुषाज्जातं यथेदं जगदद्भुतम्॥
तथेदं वाङ्मयं जातं पुराणेभ्यो न संशयः। न वेदे ग्रहसंचारो न शुद्धिः कालबोधिनी।
तिथिवृद्धिक्षयो वापि पर्वग्रहविनिर्णयः॥
इतिहासपुराणैस्तु निश्चयोऽयं कृतः पुरा। यन्न दृष्टं हि वेदेषु तत्सर्वं लक्ष्यते स्मृतौ॥
उभयोर्यन्न दृष्टं हि तत्पुराणैः प्रगीयते।

यज्ञ एवं कर्मकाण्डके लिये वेद प्रमाण हैं। गृहस्थोंके लिये स्मृतियाँ ही प्रमाण हैं, किंतु वेद और स्मृतिशास्त्र (धर्मशास्त्र) दोनों ही सम्यक् रूपसे पुराणोंमें प्रतिष्ठित हैं। जैसे परम पुरुष परमात्मासे यह अद्भुत जगत् उत्पन्न हुआ है, वैसे ही सम्पूर्ण संसारका वाङ्मय—साहित्य पुराणोंसे ही उत्पन्न है, इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है। वेदोंमें तिथि, नक्षत्र आदि काल-निर्णायक और ग्रह-संचारकी कोई युक्ति नहीं बतायी गयी है। तिथियोंकी वृद्धि, क्षय, पर्व, ग्रहण आदिका निर्णय भी उनमें नहीं है। यह निर्णय सर्वप्रथम इतिहास-पुराणोंके द्वारा ही निश्चित किया गया है। जो बातें वेदोंमें नहीं हैं, वे सब स्मृतियोंमें हैं और जो बातें इन दोनोंमें नहीं मिलतीं, वे पुराणोंके द्वारा ज्ञात होती हैं। [नारद० पु०, उ०, अ० २४]

॥ श्रीजगदम्बिकायै नमः ॥

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण

तृतीय स्कन्ध

पहला अध्याय

राजा जनमेजयका ब्रह्माण्डोत्पत्तिविषयक प्रश्न तथा इसके उत्तरमें व्यासजीका पूर्वकालमें नारदजीके साथ हुआ संवाद सुनाना

जनमेजय बोले—हे भगवन्! आपने महान् अम्बा-यज्ञके विषयमें कहा है। वे अम्बा कौन हैं, वे कैसे, कहाँ और किसलिये उत्पन्न हुई हैं और वे कौन-कौनसे गुणोंवाली हैं?॥ १॥

उनका यह यज्ञ कैसा है और उसका क्या स्वरूप है? हे दयानिधान! आप सब कुछ जाननेवाले हैं; उस यज्ञका विधान सम्यक् रूपसे बताइये॥ २॥

हे ब्रह्मन्! आप विस्तारपूर्वक ब्रह्माण्डकी उत्पत्तिका भी वर्णन कीजिये। हे भूसुर! इस विषयमें अन्य ज्ञानियोंने जैसा कहा है, वह सब कुछ भी आप भलीभाँति जानते हैं॥ ३॥

मैंने ब्रह्मा, विष्णु और महेश—इन तीनों देवताओंके विषयमें सुना है कि ये सगुण रूपमें सम्पूर्ण जगत्का सृजन, पालन एवं संहार करते हैं॥ ४॥

हे पराशरसुत व्यासजी! वे तीनों देवश्रेष्ठ स्वाधीन हैं अथवा पराधीन; आप मुझे बताइये, मैं इस समय सुनना चाहता हूँ॥ ५॥

वे सच्चिदानन्दस्वरूप देवगण मरणधर्मा हैं अथवा नहीं; और वे आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक—इन तीन प्रकारके दुःखोंसे युक्त हैं अथवा नहीं?॥ ६॥

वे तीनों महाबली देवेश कालके वशवर्ती हैं अथवा नहीं; और वे कैसे तथा किससे आविर्भूत हुए, मेरी यह भी एक शंका है॥ ७॥

हे मुने! क्या वे हर्ष, शोक आदि द्वन्द्वोंसे युक्त हैं, क्या वे निद्रा एवं प्रमाद आदिसे प्रभावित हैं तथा क्या उनके शरीर सप्त धातुओं (अन्नरस, रुधिर, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, वीर्य)-से निर्मित हैं अथवा नहीं?॥ ८॥

वे किन द्रव्योंसे निर्मित हैं, वे किन-किन गुणोंको धारण करते हैं, उनमें कौन-कौन-सी इन्द्रियाँ अवस्थित हैं, उनका भोग कैसा होता है तथा उनकी आयुका परिमाण क्या है?॥ ९॥

इनके निवास-स्थान एवं विभूतियोंके भी विषयमें मुझको बतलाइये। हे ब्रह्मन्! इस कथाको विस्तारपूर्वक सुननेकी मेरी अभिलाषा है॥ १०॥

व्यासजी बोले—हे महामति राजन्! ब्रह्मादि देवोंकी उत्पत्ति किससे हुई, इस समय आपने यह बड़ा दुर्गम प्रश्न किया है॥ ११॥

हे राजन्! पूर्वमें मैंने यही प्रश्न देवर्षि नारदजीसे पूछा था। तब विस्मित होकर वे उठ खड़े हुए और उन्होंने जो उत्तर दिया था, उसे आप सुनें॥ १२॥

किसी समय मैंने शान्त, सर्ववेत्ता तथा वेद-विद्वानोंमें श्रेष्ठ नारदमुनिको गंगाके किनारे विद्यमान देखा॥ १३॥

मुनिको देखकर तथा प्रसन्न होकर मैं उनके चरणोंपर गिर पड़ा। तदनन्तर उनके द्वारा आज्ञा देनेपर मैं उनके पासमें ही एक सुन्दर आसनपर बैठ गया॥ १४॥

कुशल-क्षेमकी वार्ता सुन करके सूक्ष्म बालूवाले गंगा-तटके निर्जन स्थानपर बैठे हुए ब्रह्मपुत्र देवर्षि नारदसे मैंने पूछा—॥ १५॥

हे महामति मुनिदेव! इस अति विस्तीर्ण ब्रह्माण्डका प्रधान कर्ता कौन कहा गया है? उसे आप मुझे सम्यक् रूपसे बताइये॥ १६॥

हे मुनिश्रेष्ठ! इस ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति किससे हुई है? हे विप्रवर! आप मुझे यह भी बताइये कि यह ब्रह्माण्ड नित्य है अथवा अनित्य?॥ १७॥

यह ब्रह्माण्ड किसी एकके द्वारा विरचित है अथवा अनेक कर्ताओंद्वारा मिलकर इसका निर्माण किया गया है? किसी कर्ताके बिना कार्यकी सत्ता सम्भव नहीं है। इस विषयमें मुझे अत्यन्त सन्देह हो रहा है॥ १८॥

इस प्रकार इस विस्तृत ब्रह्माण्डके विषयमें विविध कल्पना करते हुए तथा सन्देहसागरमें डूबते हुए मुझ दुःखीका आप उद्धार कीजिये॥ १९॥

कुछ लोग सदाशिव, महादेव, प्रलय तथा उत्पत्तिसे रहित, आत्माराम, देवेश, त्रिगुणात्मक, निर्मल, हर, संसारसे उद्धार करनेवाले, नित्य तथा सृष्टि-पालन-संहार करनेवाले भगवान् शंकरको ही मूल कारण मानकर उन्हें ही इस ब्रह्माण्डका रचयिता कहते हैं॥ २०-२१॥

दूसरे लोग श्रीहरि विष्णुको सबका प्रभु, ईश्वर, परमात्मा, अव्यक्त, सर्वशक्तिसम्पन्न, भोग तथा मोक्षप्रदाता, शान्त, सबका आदि, सर्वतोमुख, व्यापक, समग्र संसारको शरण देनेवाला तथा आदि-अन्तसे रहित जानकर उन्हींका स्तवन करते हैं॥ २२-२३।

अन्य लोग ब्रह्माजीको सृष्टिका कारण, सर्वज्ञ, सभी प्राणियोंका प्रवर्तक, चार मुखोंवाला, सुरपति, विष्णुके नाभिकमलसे प्रादुर्भूत, सर्वव्यापी, सभी लोकोंकी रचना करनेवाला तथा सत्यलोकमें निवास करनेवाला बताते हैं॥ २४-२५॥

कुछ वेदवेत्ता विद्वान् सर्वेश्वर भगवान् सूर्यको ब्रह्माण्डकर्ता मानते हैं और सावधान होकर सायं-प्रातः उन्हींकी स्तुति करते हैं तथा उन्हींका यशोगान करते हैं॥ २६॥

यज्ञमें निष्ठाभाव रखनेवाले लोग धनप्रदाता, शतक्रतु, सहस्राक्ष, देवाधिदेव, सबके स्वामी, बलशाली, यज्ञाधीश, सुरपति, त्रिलोकेश, यज्ञोंका भोग करनेवाले, सोमपान करनेवाले तथा सोमपायी लोगोंके प्रिय शचीपति इन्द्रको [सर्वश्रेष्ठ मानकर] यज्ञोंमें उन्हींका यजन करते हैं॥ २७-२८॥

कुछ लोग वरुण, सोम, अग्नि, पवन, यमराज, धनपति कुबेरकी तथा कुछ लोग हेरम्ब, गजमुख, सर्वकार्यसाधक, स्मरणमात्रसे सिद्धि प्रदान करनेवाले, कामस्वरूप, कामनाओंको प्रदान करनेवाले, स्वेच्छ विचरण करनेवाले, परम देव गणाधीश गणेशकी स्तुति करते हैं॥ २९-३०॥

कुछ आचार्य भवानीको ही सब कुछ देनेवाली, आदिमाया, महाशक्ति तथा पुरुषानुगामिनी परा प्रकृति कहते हैं। वे उनको ब्रह्मस्वरूपा, सृजन-पालन-संहार करनेवाली, सभी प्राणियों एवं देवताओंकी जननी, आदि-अन्तरहित, पूर्णा, सभी जीवोंमें व्याप्त, सभी लोकोंकी स्वामिनी, निर्गुणा, सगुणा तथा कल्याणस्वरूपा मानते हैं॥ ३१—३३॥

फलकी आकांक्षा रखनेवाले उन भवानीका वैष्णवी, शांकरी, ब्राह्मी, वासवी, वारुणी, वाराही, नारसिंही, महालक्ष्मी, विचित्ररूपा, वेदमाता, एकेश्वरी, विद्यास्वरूपा, संसाररूपी वृक्षकी स्थिरताकी कारणरूपा, सभी कष्टोंका नाश करनेवाली और स्मरण करते ही सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाली, मुक्ति चाहनेवालोंके लिये मोक्षदायिनी, फलकी अभिलाषा रखनेवालोंके लिये कामप्रदायिनी, त्रिगुणातीतस्वरूपा, गुणोंका विस्तार करनेवाली, निर्गुणा-सगुणा-रूपमें ध्यान करते हैं॥ ३४—३६ $^{1}/_{2}$॥

कुछ मुनीश्वर निरंजन, निराकार, निर्लिप्त, गुणरहित, रूपरहित तथा सर्वव्यापक ब्रह्मको जगत्का कर्ता बतलाते हैं। वेदों तथा उपनिषदोंमें कहीं-कहीं उसे अनन्त सिर, नेत्र, हाथ, कान, मुख और चरणसे युक्त तेजोमय विराट् पुरुष कहा गया है॥ ३७—३९॥

कुछ मनीषीगण आकाशको विष्णुके परम पादके रूपमें मानते हैं और उन्हें विराट्, निरंजन तथा शान्तस्वरूप कहते हैं॥ ४०॥

कुछ तत्त्वज्ञानी पुराणवेत्ता पुरुषोत्तमको सृष्टिका निर्माता कहते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि इस अनन्त ब्रह्माण्डकी रचनामें केवल एक ईश्वर कदापि समर्थ नहीं हो सकता है॥ ४१॥

कुछ लोग कहते हैं कि यह जगत् अचिन्त्य है, अतः यह ईश्वररचित कदापि नहीं हो सकता; उनके मतमें सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ईश्वररहित है। 'यह जगत् सदासे ही ईश्वरीय सत्तासे रहित रहा है और यह स्वभावसे उत्पन्न होता है तथा सदासे ऐसा ही है। यह पुरुष तो कर्तृत्वभावसे रहित कहा गया है और वह प्रकृति ही सर्वसंचालिका है'—कपिल आदि सांख्यशास्त्रके आचार्य ऐसा ही कहते हैं॥ ४२-४३$^{१}/_{२}$॥

हे मुनिनाथ! मेरे मनमें ये तथा अन्य प्रकारके और भी सन्देहपुंज उत्पन्न होते रहते हैं। नाना प्रकारकी कल्पनाओंसे उद्विग्न मनवाला मैं क्या करूँ? धर्म तथा अधर्मके विषयमें मेरा मन स्थिर नहीं हो पाता है॥ ४४-४५॥

क्या धर्म है और क्या अधर्म है; इसका कोई स्पष्ट लक्षण प्राप्त नहीं होता है। लोग कहते हैं कि देवता सत्त्वगुणसे उत्पन्न हुए हैं और वे सत्यधर्ममें स्थित रहते हैं फिर भी वे देवगण पापाचारी दानवोंद्वारा प्रताड़ित किये जाते हैं, तो फिर धर्मकी व्यवस्था कहाँ रह गयी? धर्मनिष्ठ और सदाचारी मेरे वंशज पाण्डव भी नाना प्रकारके कष्ट सहनेको विवश हुए, ऐसी स्थितिमें धर्मकी क्या मर्यादा रह गयी? अतः हे तात! इस संशयमें पड़ा हुआ मेरा मन अतीव चंचल रहता है॥ ४६—४८॥

हे महामुने! आप सर्वसमर्थ हैं, अतः मेरे हृदयको संशयमुक्त कीजिये। हे मुने! संसार-सागरके मोहसे दूषित जलमें गिरे हुए तथा बार-बार डूबते-उतराते मुझ अज्ञानीकी अपने ज्ञानरूपी जहाजसे रक्षा कीजिये॥ ४९-५०॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत तृतीय स्कन्धका 'भुवनेश्वरीवर्णन' नामक पहला अध्याय पूर्ण हुआ॥ १॥

दूसरा अध्याय

भगवती आद्याशक्तिके प्रभावका वर्णन

व्यासजी बोले—हे महाबाहो! हे कुरुश्रेष्ठ! आपने मुझसे जो प्रश्न पूछे हैं, उन्हीं प्रश्नोंको मेरेद्वारा मुनिराज नारदजीसे पूछे जानेपर उन्होंने इस विषयमें ऐसा कहा था॥ १॥

नारदजी बोले—हे व्यासजी! मैं आपसे इस समय क्या कहूँ? प्राचीन कालमें यही शंका मेरे भी मनमें उत्पन्न हुई थी और सन्देहकी बहुलतासे मेरा मन उद्वेलित हो गया था॥ २॥

हे व्यासजी! तदनन्तर मैंने ब्रह्मलोकमें अपने अमित तेजस्वी पिता ब्रह्माजीके पास पहुँचकर यही प्रश्न पूछा था, जो उत्तम प्रश्न आपने आज मुझसे पूछा है॥ ३॥

[मैंने पूछा—] हे पिताजी! इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका आविर्भाव कैसे हुआ? हे विभो! इसका निर्माण आपने किया है अथवा विष्णुने अथवा शिवने इसकी रचना की है? हे विश्वात्मन्! मुझे सही-सही बताइये। हे जगत्पते! सर्वश्रेष्ठ ईश्वर कौन है और किसकी आराधना की जानी चाहिये?॥ ४-५॥

हे ब्रह्मन्! वह सब कुछ बताइए और मेरे सन्देहोंको दूर कीजिये। हे निष्पाप! मैं असत्य तथा दुःखरूप संसारमें डूबा हुआ हूँ॥ ६॥

सन्देहोंसे दोलायमान मेरा मन तीर्थोंमें, देवताओंमें तथा अन्य साधनोंमें—कहीं भी शान्त नहीं हो पा रहा है॥ ७॥

हे परन्तप! परमतत्त्वका ज्ञान प्राप्त किये बिना शान्ति मिल भी कैसे सकती है? अनेक प्रकारसे उलझा हुआ मेरा मन एक जगह स्थिर नहीं हो पा रहा है॥ ८॥

मैं किसका स्मरण करूँ, किसका यजन करूँ, कहाँ जाऊँ, किसकी अर्चना करूँ और किसकी स्तुति करूँ? हे देव! मैं तो उस सर्वेश्वर परमात्माको जानता भी नहीं हूँ॥ ९॥

हे सत्यवतीतनय व्यासजी! मेरे द्वारा किये गये दुरूह प्रश्नोंको सुनकर लोकपितामह ब्रह्माने तब मुझसे ऐसा कहा—॥ १०॥

ब्रह्माजी बोले—हे पुत्र! तुमने आज एक दुरूह तथा

उत्तम प्रश्न किया है, उसके विषयमें मैं क्या कहूँ? हे महाभाग! साक्षात् विष्णुद्वारा भी इन प्रश्नोंका निश्चित उत्तर दिया जाना सम्भव नहीं है॥ ११॥

हे महामते! इस संसारके क्रियाकलापोंमें आसक्त कोई भी ऐसा नहीं है, जो इस तत्त्वका ज्ञान रखता हो। कोई विरक्त, निःस्पृह तथा विद्वेषरहित ही इसे जान सकता है॥ १२॥

प्राचीन कालमें जल-प्रलयके होनेपर स्थावर-जंगमादिक प्राणियोंके नष्ट हो जाने तथा मात्र पंचमहाभूतोंकी उत्पत्ति होनेपर मैं कमलसे आविर्भूत हुआ॥ १३॥

उस समय मैंने सूर्य, चन्द्र, वृक्षों तथा पर्वतोंको नहीं देखा और कमलकर्णिकापर बैठा हुआ मैं विचार करने लगा— ॥ १४॥

इस महासागरके जलमें मेरा प्रादुर्भाव किससे हुआ? मेरा निर्माण करनेवाला, रक्षा करनेवाला तथा युगान्तके समय संहार करनेवाला प्रभु कौन है?॥ १५॥

कहीं भूमि भी स्पष्ट दिखायी नहीं दे रही है, जिसके आधारपर यह जल टिका है तो फिर यह कमल कैसे उत्पन्न हुआ, जिसकी उत्पत्ति जल और पृथ्वीके संयोगसे ही प्रसिद्ध है?॥ १६॥

आज मैं इस कमलका मूल आधार पंक अवश्य देखूँगा; और फिर उस पंककी आधारस्वरूपा भूमि भी अवश्य मिल जायगी, इसमें सन्देह नहीं है॥ १७॥

तदनन्तर मैं जलमें नीचे उतरकर हजार वर्षोंतक पृथ्वीको खोजता रहा, किंतु जब उसे नहीं पाया तब आकाशवाणी हुई कि 'तपस्या करो'। तत्पश्चात् मैं उसी कमलपर आसीन होकर हजार वर्षोंतक घोर तपस्या करता रहा॥ १८-१९॥

इसके बाद पुनः एक अन्य वाणी उत्पन्न हुई—'सृष्टि करो', इसे मैंने साफ-साफ सुना। उसे सुनकर व्याकुल चित्तवाला मैं सोचने लगा, किसका सृजन करूँ और किस प्रकार करूँ?॥ २०॥

उसी समय मधु-कैटभ नामवाले दो भयानक दैत्य मेरे सम्मुख आ गये। उस महासागरमें युद्धके लिये तत्पर उन दोनों दैत्योंसे मैं अत्यधिक भयभीत हो गया॥ २१॥

तत्पश्चात् मैं उसी कमलकी नालका आश्रय लेकर जलके भीतर उतरा और वहाँ एक अत्यन्त अद्भुत पुरुषको मैंने देखा॥ २२॥

उनका शरीर मेघके समान श्याम वर्णवाला था। वे पीत वस्त्र धारण किये हुए थे और उनकी चार भुजाएँ थीं। वे जगत्पति वनमालासे अलंकृत थे तथा शेषशय्यापर सो रहे थे॥ २३॥

वे शंख, चक्र, गदा, पद्म आदि आयुध धारण किये हुए थे। इस प्रकार मैंने शेषनागकी शय्यापर शयन करते हुए उन महाविष्णुको देखा॥ २४॥

हे नारदजी! योगनिद्राके वशीभूत होनेके कारण निष्पन्द पड़े उन भगवान् अच्युतको शेषनागके ऊपर सोया हुआ देखकर मुझे अद्भुत चिन्ता हुई और मैं सोचने लगा कि अब क्या करूँ? तब मैंने निद्रास्वरूपा भगवतीका स्मरण किया और मैं उनकी स्तुति करने लगा॥ २५-२६॥

[मेरी स्तुतिसे] वे कल्याणी भगवती विष्णुभगवान्के शरीरसे निकलकर आकाशमें विराजमान हुईं। उस समय दिव्य आभूषणोंसे अलंकृत वे भगवती कल्पनाओंसे परे विग्रहवाली प्रतीत हो रही थीं॥ २७॥

इस प्रकार विष्णुका शरीर तत्काल छोड़कर जब वे आकाशमें विराजित हो गयीं, तब उनके द्वारा मुक्त किये गये अनन्तात्मा वे जनार्दन उठ गये॥ २८॥

तत्पश्चात् उन्होंने पाँच हजार वर्षोंतक उन दैत्योंके साथ घोर युद्ध किया। पुनः उन महामाया भगवतीके दृष्टिपातसे मोहित किये गये उन दोनों दैत्योंको भगवान् विष्णुने मार दिया। अपनी जाँघोंको विस्तृत करके भगवान् विष्णुने उसीपर उन दोनोंका वध किया। उसी समय जहाँ हम दोनों थे, वहींपर शंकरजी भी आ गये॥ २९-३०॥

तब हम तीनोंने गगन-मण्डलमें विराजमान उन मनोहर देवीको देखा। हमलोगोंके द्वारा उन परम शक्तिकी स्तुति किये जानेपर अपनी पवित्र कृपादृष्टिसे हमलोगोंको प्रसन्न करके उन्होंने वहाँ स्थित हमलोगोंसे कहा— ॥ ३१ $^{1}/_{2}$ ॥

देवी बोलीं—हे ब्रह्मा, विष्णु, महेश! अब आपलोग सृष्टि, पालन एवं संहारके अपने-अपने कार्य प्रमादरहित होकर कीजिये। अब आपलोग अपना-अपना निवास

बनाकर निर्भीकतापूर्वक रहिये; क्योंकि उन दोनों महादैत्योंका संहार हो गया है। अतः आपलोग अपनी विभूतियोंसे अण्डज, पिण्डज, उद्भिज्ज और स्वेदज—चारों प्रकारकी सभी प्रजाओंका सृजन कीजिये॥ ३२-३३$^{1}/_{2}$ ॥

ब्रह्माजी बोले— उन भगवतीका वह मनोहर, सुखकर तथा मधुर वचन सुनकर हमलोगोंने उनसे कहा—हे माता! हमलोग शक्तिहीन हैं, अतः इन प्रजाओंका सृजन कैसे करें? अभी विस्तृत पृथ्वी ही नहीं है और सभी ओर जल-ही-जल फैला हुआ है। सृष्टिकार्यके लिये आवश्यक पंचतत्त्व, गुण, तन्मात्राएँ और इन्द्रियाँ—ये कुछ भी नहीं हैं। हमलोगोंके ये वचन सुनकर भगवतीका मुखमण्डल मुसकानसे भर उठा॥ ३४—३६॥

उसी समय वहाँ आकाशसे एक रमणीक विमान आ पहुँचा। तत्पश्चात् उन भगवतीने कहा—हे देवताओ! आप लोग निर्भीक होकर इस विमानमें इच्छानुसार बैठ जायँ॥ ३७॥

हे ब्रह्मा, विष्णु और शिव! मैं आपलोगोंको आज इस विमानमें एक अद्भुत दृश्य दिखाऊँगी। उनका यह वचन सुनकर हम तीनों उनकी बात स्वीकार करके रत्नजटित, मोतियोंकी झालरोंसे शोभायमान, घंटियोंकी ध्वनिसे गुंजित तथा देव-भवनके तुल्य उस रमणीक विमानपर संशयरहित भावसे चढ़कर बैठ गये। तब भगवतीने हम जितेन्द्रिय देवताओंको बैठा हुआ देखकर उस विमानको अपनी शक्तिसे आकाशमण्डलमें उड़ाया॥ ३८—४१॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत तृतीय स्कन्धका विमानके द्वारा ब्रह्मादिका गतिवर्णन' नामक दूसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ २॥

तीसरा अध्याय

ब्रह्मा, विष्णु और महेशका विभिन्न लोकोंमें जाना तथा अपने ही सदृश अन्य ब्रह्मा, विष्णु और महेशको देखकर आश्चर्यचकित होना, देवीलोकका दर्शन

ब्रह्माजी बोले— मनके समान वेगसे उड़नेवाला वह विमान जिस स्थानपर पहुँचा, वहाँ जब हमने जल नहीं देखा तब हमलोगोंको महान् आश्चर्य हुआ॥ १॥

उस स्थानके वृक्ष सभी प्रकारके फलोंसे लदे हुए और कोकिलोंकी मधुर ध्वनिसे गुंजायमान थे। वहाँकी भूमि, पर्वत, वन और उपवन—ये सभी सुरम्य दृष्टिगोचर हो रहे थे॥ २॥

उस स्थानपर स्त्रियाँ, पुरुष, पशु, बड़ी नदियाँ, बावलियाँ, कुएँ, तालाब, पोखरे तथा झरने इत्यादि विद्यमान थे॥ ३॥

वहाँ भव्य चहारदीवारीसे घिरा हुआ एक मनोहर नगर था, जो यज्ञशालाओं तथा अनेक प्रकारके दिव्य महलोंसे सुशोभित था॥ ४॥

उस नगरको देखकर हमलोगोंको ऐसी प्रतीति हुई, मानो यही स्वर्ग है और फिर हम लोगोंकी यह जिज्ञासा हुई कि इस अद्भुत नगरका निर्माण किसने किया है, उस समय हमलोगोंको बड़ा आश्चर्य हुआ!॥ ५॥

हमलोगोंने आखेटके उद्देश्यसे वनमें जाते हुए एक देवतुल्य राजाको देखा। उसी समय हमलोगोंको जगदम्बा भगवती भी विमानपर स्थित दिखायी पड़ीं॥ ६॥

थोड़ी ही देर बाद हमारा विमान वायुसे प्रेरित होकर आकाशमें पुनः उड़ने लगा और मुहूर्तभरमें वह पुनः एक अन्य सुरम्य देशमें पहुँच गया॥ ७॥

वहाँपर हमलोगोंको अत्यन्त रमणीक नन्दनवन दृष्टिगत हुआ, जिसमें पारिजातवृक्षकी छायाका आश्रय लिये हुए कामधेनु स्थित थी॥ ८॥

कामधेनुके समीप ही चार दाँतोंवाला ऐरावत हाथी विद्यमान था और वहाँ मेनका आदि अप्सराओंके समूह अपने नृत्यों तथा गानोंमें विविध भाव-भंगिमाओंका प्रदर्शन करते हुए अनेक प्रकारकी क्रीडाएँ कर रहे थे। वहाँ मन्दार-वृक्षकी वाटिकाओंमें सैकड़ों गन्धर्व, यक्ष और विद्याधर गा रहे थे और रमण कर रहे थे। वहाँपर इन्द्रभगवान् भी इन्द्राणीके साथ दृष्टिगोचर हुए॥ ९—११॥

स्वर्गमें निवास करनेवाले देवताओंको देखकर हमें परम विस्मय हुआ। वहाँपर वरुण, कुबेर, यम, सूर्य, अग्नि तथा अन्य देवताओंको स्थित देखकर हम आश्चर्यचकित हुए। उसी समय उस सुसज्जित नगरसे वह राजा निकला॥ १२-१३॥

देवताओंके राजा इन्द्रकी भाँति पराक्रमी वह राजा धरातलपर पालकीमें बैठा था। वह विमान हमलोगोंको लेकर द्रुत गतिसे आगे बढ़ा॥ १४॥

तदनन्तर हमलोग अलौकिक ब्रह्मलोकमें पहुँच गये। वहाँपर सभी देवताओंसे नमस्कृत ब्रह्माजीको विद्यमान देखकर भगवान् शंकर एवं विष्णु विस्मयमें पड़ गये॥ १५॥

वहाँ ब्रह्माजीकी सभामें सभी वेद अपने-अपने अंगोंसहित मूर्तरूपमें विराजमान थे। साथ ही समुद्र, नदियाँ, पर्वत, सर्प एवं नाग भी उपस्थित थे॥ १६॥

तत्पश्चात् भगवान् विष्णु और शंकरने मुझसे पूछा—हे चतुर्मुख! ये दूसरे सनातन ब्रह्मा कौन हैं? तब मैंने उनसे कहा कि मैं सबके स्वामी तथा सृष्टिकर्ता इन ब्रह्माको नहीं जानता॥ १७॥

हे ईश्वरो! मैं कौन हूँ, ये कौन हैं और हम दोनोंका क्या प्रयोजन है? इसमें मैं भ्रमित हूँ। थोड़ी ही देरमें वह विमान पुनः मनके सदृश वेगसे आगेकी ओर बढ़ा॥ १८॥

तत्पश्चात् वह विमान यक्षगणोंसे सुशोभित, मन्दार-वृक्षकी वाटिकाओंके कारण अति सुरम्य, शुक और कोयलोंकी मधुर ध्वनिसे गुंजित, वीणा और मृदंग आदि वाद्य-यन्त्रोंकी मधुर ध्वनिसे निनादित, सुखदायक तथा मंगलकारी कैलास-शिखरपर पहुँचा॥ १९¹/₂॥

उस शिखरपर जब वह विमान पहुँचा; उसी समय वृषभपर आरूढ, पंचमुख, दस भुजाओंवाले, मस्तकपर अर्धचन्द्र धारण किये हुए भगवान् शंकर अपने दिव्य भवनसे बाहर निकले॥ २०-२१॥

उस समय वे व्याघ्रचर्म पहने हुए तथा गजचर्म ओढ़े हुए थे। महाबली गजानन (श्रीगणेश) तथा षडानन (कार्तिकेय) उनके अंगरक्षकके रूपमें विद्यमान थे॥ २२॥

भगवान् शंकरके साथ चल रहे उनके दोनों पुत्र अतीव सुशोभित हो रहे थे। नन्दी आदि सभी प्रधान शिवगण जयघोष करते हुए भगवान् शिवके पीछे-पीछे चल रहे थे। हे नारद! वहाँ अन्य लोगों तथा शंकरको मातृकाओंसहित देखकर हमलोग विस्मयमें पड़ गये और हे मुने! मैं संशयग्रस्त हो गया। थोड़ी ही देरमें वह विमान उस कैलास-शिखरसे वायुगतिसे लक्ष्मीकान्त भगवान् विष्णुके वैकुण्ठलोकमें जा पहुँचा। हे पुत्र! मैंने वहाँ अद्भुत विभूतियाँ देखीं॥ २३—२६॥

उस अति रमणीक नगरको देखकर भगवान् विष्णु विस्मयमें पड़ गये। उसी समय कमललोचन भगवान् विष्णु अपने भवनसे बाहर निकले॥ २७॥

उनका वर्ण अलसीके पुष्पकी भाँति श्याम था, वे पीताम्बर धारण किये हुए थे, उनकी चार भुजाएँ थीं, वे पक्षिराज गरुडपर आरूढ़ थे और दिव्य अलंकारोंसे विभूषित थे। भगवती लक्ष्मी उन्हें शुभ चँवर डुला रही थीं। उन सनातन भगवान् विष्णुजीको देखकर हम सभीको महान् आश्चर्य हुआ॥ २८-२९॥

तदनन्तर परस्पर एक-दूसरेको देखते हुए हमलोग अपने-अपने श्रेष्ठ आसनोंपर बैठे रहे। इसके बाद वह विमान वायुसदृश द्रुत गतिसे पुनः चल पड़ा। कुछ ही क्षणोंमें वह विमान मधुर जलवाले, ऊँची-ऊँची लहरोंवाले, नानाविध जल-जन्तुओंसे युक्त तथा चंचल तरंगोंसे शोभायमान अमृत-सागरके तटपर पहुँच गया॥ ३०-३१॥

उस सागरके तटपर विभिन्न पंक्तियोंमें नाना प्रकारके विचित्र रंगोंवाले मन्दार एवं पारिजात आदि वृक्ष शोभायमान थे। वहाँ मोतियोंकी झालरें तथा अनेक प्रकारके पुष्पहार शोभामें वृद्धि कर रहे थे। समुद्रके सभी ओर अशोक, मौलसिरी, कुरबक आदि वृक्ष विद्यमान थे। उसके चारों ओर चित्ताकर्षक केतकी तथा चम्पक पुष्पोंकी वाटिकाएँ थीं, जो कोयलोंकी मधुर ध्वनियोंसे गुंजित तथा नाना प्रकारकी दिव्य सुगन्धिसे परिपूर्ण थीं॥ ३२—३४॥

उस स्थलपर भौंरे गुंजार कर रहे थे। इस प्रकार वहाँका दृश्य परम अद्भुत था। उस द्वीपमें हमलोगोंने दूरसे ही विमानपर बैठे-बैठे शिवजीके आकारवाला एक मनोहर तथा अत्यन्त अद्भुत पलंग देखा, जो रत्नमालाओंसे जड़ा हुआ था और नाना प्रकारके रत्नोंसे विभूषित था॥ ३५-३६॥

उस पलंगपर अनेक प्रकारके रंगोंवाली आकर्षक

चादरें बिछी थीं, जिससे वह पलंग इन्द्रधनुषके समान सुशोभित हो रहा था। उस भव्य पलंगपर एक दिव्यांगना बैठी हुई थी॥ ३७॥

उस देवीने रक्तपुष्पोंकी माला तथा रक्ताम्बर धारण किया था। उसने अपने शरीरमें लाल चन्दनका लेप कर रखा था। लालिमापूर्ण नेत्रोंवाली वह देवी असंख्य विद्युत्‌की कान्तिसे सुशोभित हो रही थी। सुन्दर मुखवाली, रक्तिम अधरसे सुशोभित, लक्ष्मीसे करोड़ोंगुना अधिक सौन्दर्यशालिनी वह स्त्री अपनी कान्तिसे सूर्यमण्डलकी दीप्तिको भी मानो तिरस्कृत कर रही थी॥ ३८-३९॥

वर, पाश, अंकुश और अभय मुद्राको धारण करनेवाली तथा मधुर मुसकानयुक्त वे भगवती भुवनेश्वरी हमें दृष्टिगोचर हुईं; जिन्हें पहले कभी नहीं देखा गया था॥ ४०॥

ह्रींकार बीजमन्त्रका जप करनेवाले पक्षियोंका समुदाय उनकी सेवामें निरन्तर रत था। नवयौवनसे सम्पन्न तथा अरुण आभावाली वे कुमारी साक्षात् करुणाकी मूर्ति थीं॥ ४१॥

वे सभी प्रकारके श्रृंगार एवं परिधानोंसे सुसज्जित थीं और उनके मुखारविन्दपर मन्द मुसकान विराजमान थी। उनके उन्नत वक्षःस्थल कमलकी कलियोंसे भी बढ़कर शोभायमान हो रहे थे। नानाविध मणियोंसे जटित आभूषणोंसे वे अलंकृत थीं। स्वर्णनिर्मित कंकण, केयूर और मुकुट आदिसे वे सुशोभित थीं। स्वर्णनिर्मित श्रीचक्राकार कर्णफूलसे सुशोभित उनका मुखारविन्द अतीव दीप्तिमान् था। उनकी सखियोंका समुदाय 'ह्ल्लेखा' तथा 'भुवनेशी' नामोंका सतत जप कर रहा था और अन्य सखियाँ उन भुवनेशी महेश्वरीकी अनवरत स्तुति कर रही थीं। 'ह्ल्लेखा' आदि देवकन्याओं तथा 'अनंगकुसुमा' आदि देवियोंसे वे घिरी हुई थीं। वे षट्कोणके मध्यमें यन्त्रराजके ऊपर विराजमान थीं॥ ४२—४६॥

उन भगवतीको देखकर वहाँ स्थित हम सभी आश्चर्यचकित हो गये और कुछ देरतक वहीं ठहरे रहे। हमलोग यह नहीं जान पाये कि वे सुन्दरी कौन हैं और उनका क्या नाम है?॥ ४७॥

दूरसे देखनेपर वे भगवती हजार नेत्र, हजार मुख और हजार हाथोंसे युक्त अति सुन्दर लग रही थीं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है॥ ४८॥

हे नारद! हम सोचने लगे कि ये न तो अप्सरा, न गन्धर्वी और न देवांगना ही दीखती हैं, तो फिर ये कौन हो सकती हैं? हम इसी संशयमें पड़कर वहाँ खड़े रहे॥ ४९॥

तब उन सुन्दर हासवाली देवीको देखकर भगवान् विष्णुने अपने अनुभवसे मनमें निश्चित करके हमसे कहा—ये साक्षात् भगवती जगदम्बा हम सबकी कारणस्वरूपा हैं। ये ही महाविद्या, महामाया, पूर्णा तथा शाश्वत प्रकृतिरूपा हैं॥ ५०-५१॥

अल्प बुद्धिवाले गम्भीर आशयवाली इन भगवतीको सम्यक् रूपसे नहीं जान सकते, केवल योगमार्गसे ही ये ज्ञेय हैं। ये देवी परमात्माकी इच्छास्वरूपा तथा नित्यानित्य-स्वरूपिणी हैं॥ ५२॥

ये विश्वेश्वरी कल्याणी भगवती अल्पभाग्यवाले प्राणियोंके लिये दुराराध्य हैं। ये वेदजननी विशालनयना जगदम्बा सबकी आदिस्वरूपा ईश्वरी हैं॥ ५३॥

ये भगवती प्रलयावस्थामें समग्र विश्वका संहार करके सभी प्राणियोंके लिंगरूप शरीरको अपने शरीरमें समाविष्ट करके विहार करती हैं॥ ५४॥

हे देवो! ये भगवती इस समय सर्वबीजमयी देवीके रूपमें विराजमान हैं। देखिये, इनके समीप करोड़ों विभूतियाँ क्रमसे स्थित हैं॥ ५५॥

हे ब्रह्मा एवं शंकरजी! देखिये, दिव्य आभूषणोंसे अलंकृत तथा दिव्य गन्धानुलेपसे युक्त ये सभी विभूतियाँ इन भगवतीकी सेवामें मनोयोगसे संलग्न हैं॥ ५६॥

हमलोग धन्य, सौभाग्यशाली तथा कृतकृत्य हैं, जो कि हमें इस समय यहाँ भगवतीका साक्षात् दर्शन प्राप्त हुआ॥ ५७॥

पूर्वकालमें हमलोगोंने बड़े प्रयत्नसे जो तपस्या की थी, उसीका यह उत्तम परिणाम है; अन्यथा भगवती हमलोगोंको स्नेहपूर्वक दर्शन कैसे देतीं?॥ ५८॥

जो उदार हृदयवाले पुण्यात्मा तथा तपस्वीलोग हैं, वे ही इनके दर्शन प्राप्त करते हैं, किंतु विषयासक्तलोग इन कल्याणमयी भगवतीके दर्शनसे सर्वथा वंचित रहते हैं॥ ५९॥

ये ही मूलप्रकृतिस्वरूपा भगवती परमपुरुषके सहयोगसे ब्रह्माण्डकी रचना करके परमात्माके समक्ष उसे उपस्थित

करती हैं॥ ६०॥

हे देवो! यह पुरुष द्रष्टामात्र है और समस्त ब्रह्माण्ड तथा देवतागण दृश्यस्वरूप हैं। महामाया, कल्याणमयी, सर्वव्यापिनी सर्वेश्वरी ये भगवती ही इन सबका मूल कारण हैं॥ ६१॥

कहाँ मैं, कहाँ सभी देवता और कहाँ रम्भा आदि देवांगनाएँ! हम सभी इन भगवतीकी तुलनामें उनके लक्षांशके बराबर भी नहीं हैं॥ ६२॥

ये वे ही महादेवी जगदम्बा हैं, जिन्हें हमलोगोंने प्रलयसागरमें देखा था और जो बाल्यावस्थामें मुझे प्रसन्नतापूर्वक पालनेमें झुला रही थीं॥ ६३॥

उस समय मैं एक सुस्थिर तथा दृढ़ वटपत्ररूपी पलंगपर सोया हुआ था और अपने पैरका अँगूठा अपने मुखारविन्दमें डालकर चूस रहा था। अत्यन्त कोमल अंगोंवाला मैं उस समय अनेक बालसुलभ चेष्टाएँ करता हुआ उसी वटपत्रके दोनेमें पड़े-पड़े खेल रहा था॥ ६४-६५॥

उस समय गाती हुई ये भगवती बालभावमें स्थित मुझे झूला झुलाती थीं। इन्हें देखकर मुझे यह सुनिश्चित ज्ञान हो गया है कि वे ही यहाँ विराजमान हैं॥ ६६॥

निश्चितरूपसे ये भगवती मेरी जननी हैं। आप सुनें, मुझे पूर्व अनुभवकी स्मृति जग गयी है, जो मैं आपसे कहता हूँ॥ ६७॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत तृतीय स्कन्धका 'विमानस्थ हर आदिके द्वारा देवीदर्शन' नामक तीसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३॥

चौथा अध्याय

भगवतीके चरणनखमें त्रिदेवोंको सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका दर्शन होना, भगवान् विष्णुद्वारा देवीकी स्तुति करना

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! ऐसा कहकर जनार्दन भगवान् विष्णुने पुनः कहा—हमलोग बार-बार प्रणाम करते हुए उनके पास चलें। वे वरदायिनी महामाया हमें अवश्य वरदान देंगी। अतः निर्भय होकर हमें उनके चरणोंके निकट चलकर उनकी स्तुति करनी चाहिये। यदि उनके द्वारपाल हमें वहाँ रोकेंगे तो हमलोग ध्यानपूर्वक वहीं बैठकर देवीकी स्तुति करने लगेंगे॥ १—३॥

ब्रह्माजी बोले—भगवान् विष्णुके ऐसा कहनेपर मैं तथा शिव—हम दोनों प्रसन्नतासे गद्गद होकर शीघ्र उनके निकट जानेको उत्सुक हो गये। विष्णुसे 'ठीक है'—ऐसा कहकर हम तीनों शीघ्रतापूर्वक विमानसे उतरकर मन-ही-मन अनेक तर्क-वितर्क करते हुए भगवतीके द्वारपर ज्यों ही पहुँचे, त्यों ही द्वारपर स्थित हम सभीको देखकर मन्द मुसकान करके उन भगवतीने हम तीनोंको स्त्रीरूपमें परिणत कर दिया॥ ४—६॥

हमलोग नाना प्रकारके भूषणोंसे अलंकृत रूपवती युवती बन गये और अत्यन्त आश्चर्यचकित होकर उन महामाया भगवतीके पास पुनः गये॥ ७॥

स्त्रीके वेषमें हमलोगोंको अपने चरणोंके निकट देखकर अत्यन्त मनोहर रूपवाली उन देवीने हमलोगोंके ऊपर कृपादृष्टि डाली॥ ८॥

उस समय महामाया भगवतीको प्रणाम करके स्त्री-वेषधारी तथा दिव्य वस्त्राभरण धारण किये हम तीनों परस्पर एक दूसरेको देखते हुए उनके सामने खड़े रहे॥ ९॥

विविध प्रकारके मणिजटित एवं करोड़ों सूर्यके समान देदीप्यमान देवीके पादपीठको देखते हुए हम तीनों वहीं स्थित रहे॥ १०॥

उन महादेवीकी हजारों सेविकाओंमेंसे कुछने रक्त वस्त्र, कुछने नीले वस्त्र और कुछने सुन्दर पीत वस्त्र धारण कर रखे थे॥ ११॥

वहाँ उपस्थित सभी देवियाँ सुन्दर स्वरूपकी थीं और विचित्र वस्त्र एवं आभूषणोंसे सुसज्जित थीं। वे सब जगदम्बाकी विभिन्न सेवाओंमें तत्पर थीं॥ १२॥

उनमेंसे कुछ गा रही थीं, कुछ नाच रही थीं और कुछ स्त्रियाँ हर्षके साथ वीणा तथा मुखवाद्य बजाती हुई अन्य सेवाओंमें संलग्न थीं॥ १३॥

हे नारदजी! वहाँ मैंने भगवतीके चरणकमलके नखरूपी दर्पणमें जो अद्भुत दृश्य देखा, उसे बताता हूँ, आप सुनें। वहाँ मुझे समस्त स्थावर-जंगमात्मक ब्रह्माण्ड, मैं (ब्रह्मा), विष्णु, शिव, वायु, अग्नि, यम, सूर्य, वरुण, चन्द्रमा, विश्वकर्मा, कुबेर, इन्द्र, पर्वत, समुद्र, नदियाँ, गन्धर्व, अप्सराएँ, विश्वावसु, चित्रकेतु, श्वेत, चित्रांगद, नारद, तुम्बुरु, हाहा-हूहू, दोनों अश्विनीकुमार, अष्टवसु, साध्य, सिद्धगण, पितर, शेष आदि नाग, सभी किन्नर, उरग और राक्षसगण दिखायी दे रहे थे॥ १४—१८॥

वैकुण्ठ, ब्रह्मलोक तथा पर्वतश्रेष्ठ कैलास—इन सबको हमने उनके पद-नखमें विराजमान देखा। उसीमें मेरा जन्मस्थान कमल भी था और मैं चतुरानन उस कमलकोशमें बैठा हुआ था। मधु-कैटभ नामके दोनों दानव तथा शेषशायी महाविष्णु भी उसीमें विराजमान थे॥ १९-२०॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार परमेश्वरीके चरणकमलके नखमें स्थित यह सारा दृश्य मुझे दिखायी दिया, जिसे देखकर मैं चकित रह गया और मन-ही-मन सोचने लगा—'यह क्या है?'॥ २१॥

मेरे ही समान विष्णु और शिव भी वहाँ आश्चर्यचकित होकर खड़े थे। उस समय हम तीनोंने समझ लिया कि समस्त जगत्की जननी ये ही महादेवी हैं॥ २२॥

इस प्रकार अमृतमय एवं कल्याणमय उस द्वीपमें अनेक प्रकारके अद्भुत दृश्य देखते हुए हमारे सौ वर्ष व्यतीत हो गये॥ २३॥

वहाँकी प्रसन्नवदना एवं विचित्र अलंकारोंसे अलंकृत देवियाँ हम तीनोंको अपनी सखियाँ समझती थीं और हमलोग भी उनके स्नेहपूर्ण सद्व्यवहारसे मुग्ध थे तथा उनके मनोरम भावोंको देखकर अतीव प्रसन्न थे॥ २४-२५॥

एक बार नारीरूपमें स्थित भगवान् विष्णु महादेवी भगवती श्रीभुवनेश्वरीकी स्तुति करने लगे—॥ २६॥

श्रीभगवान् बोले—प्रकृति एवं विधात्रीदेवीको मेरा निरन्तर नमस्कार है। कल्याणी, कामप्रदा, वृद्धि तथा सिद्धिदेवीको बार-बार नमस्कार है। सच्चिदानन्दरूपिणी तथा संसारकी योनिस्वरूपा देवीको नमस्कार है। आप पंचकृत्य*विधात्री तथा श्रीभुवनेश्वरीदेवीको बार-बार नमस्कार है॥ २७-२८॥

समस्त संसारकी एकमात्र अधिष्ठात्री तथा कूटस्थरूपा देवीको बार-बार नमस्कार है। अर्धमात्राकी अर्थभूता एवं हल्लेखादेवीको बार-बार नमस्कार है॥ २९॥

हे जननि! आज मैंने जान लिया कि यह समस्त विश्व आपमें समाहित है तथा सम्पूर्ण ब्रह्माण्डकी सृष्टि एवं संहार भी आप ही करती हैं। इस ब्रह्माण्डके निर्माणमें आपकी विस्तृत प्रभाववाली शक्ति ही मुख्य हेतु है, अतः मुझे यह ज्ञात हो गया कि आप ही सम्पूर्ण लोकमें व्याप्त हैं। इस सत् एवं असत् सम्पूर्ण जगत्का विस्तार करके उस चिद्ब्रह्म पुरुषको यथासमय आप इसे समग्ररूपसे प्रस्तुत करती हैं। अपनी प्रसन्नताके लिये सोलह तत्त्वों तथा महदादि अन्य सात तत्त्वोंके साथ आप हमें इन्द्रजालके समान प्रतीत होती हैं॥ ३०-३१॥

हे जननि! आपसे रहित यहाँ कोई भी वस्तु दिखायी नहीं देती, आप ही समस्त जगत्को व्याप्त करके स्थित रहती हैं। बुद्धिमान् पुरुषोंका कथन है कि आपकी शक्तिके बिना वह परमपुरुष कुछ भी करनेमें असमर्थ है॥ ३२॥

* सृष्टि, स्थिति, संहार, निग्रह, अनुग्रह।

आप अपने कृपाप्रभावसे संसारका कल्याण करती हैं। हे देवि! आप ही अपने तेजसे सृष्टिकालमें सम्पूर्ण जगत्‌को उत्पन्न करती हैं तथा प्रलयकालमें इसका शीघ्र ही संहार कर डालती हैं। हे देवि! आपके वैभवके लीला-चरित्रको भलीभाँति जाननेमें कौन समर्थ है?॥ ३३॥

हे जननि! मधु-कैटभ नामक दोनों दानवोंसे आपने हमारी रक्षा की है, आपने ही हमलोगोंको अपने अनेक विस्तृत लोक दिखाये तथा अपने-अपने भवनमें हमें परमानन्दका अनुभव कराया। हे भवानि! यह आपके दर्शनका ही महान् प्रभाव है॥ ३४॥

हे माता! जब मैं (विष्णु), शिव तथा ब्रह्मा भी आपके अपूर्व चरित्रको जाननेमें समर्थ नहीं हैं, तब अन्य कोई कैसे जान सकेगा? हे महिमामयी भवानि! आपके रचे हुए इस ब्रह्माण्ड-प्रपंचमें न जाने कितने ब्रह्माण्ड भरे पड़े हैं!॥ ३५॥

हमलोगोंने आपके इस लोकमें अद्भुत प्रभाववाले दूसरे विष्णु, शिव तथा ब्रह्माको देखा है। हे देवि! क्या वे देवता अन्यान्य लोकोंमें नहीं होंगे? हमलोग आपकी इस अद्भुत महिमाको कैसे जान सकते हैं?॥ ३६॥

हे जगदम्ब! हमलोग आपके चरणोंमें मस्तक झुकाकर यही याचना करते हैं कि आपका यह दिव्य स्वरूप हमारे हृदयमें सदा विराजमान रहे, हमारे मुखसे सदा आपका ही नाम निकले और हमारे नेत्र प्रतिदिन आपके चरणकमलोंके दर्शन पाते रहें॥ ३७॥

हे माता! आपकी यह भावना हमारे प्रति सर्वदा बनी रहे कि ये सब हमारे सेवक हैं और हम भी सर्वथा आपको मनसे अपनी स्वामिनी समझते रहें। हे आर्ये! इस प्रकार हमारा और आपका माता-पुत्रका अनन्य सम्बन्ध सर्वदा बना रहे॥ ३८॥

हे जगदम्बिके! आप समस्त ब्रह्माण्ड-प्रपंचको पूर्ण रूपसे जानती हैं; क्योंकि जहाँ सर्वज्ञताकी समाप्ति होती है, उसकी अन्तिम सीमा आप ही हैं। हे भवानि! मैं पामर कह ही क्या सकता हूँ? आपको जो उचित लगे, आप वह करें; क्योंकि सब कुछ तो आपहीके संकेतपर होता है॥ ३९॥

जगत्‌में ऐसी प्रसिद्धि है कि ब्रह्मा सृष्टि करते हैं, विष्णु पालन करते हैं और रुद्र संहार करते हैं, किंतु हे देवि! क्या यह बात सत्य है? हे अजे! सच्चाई तो यह है कि आपकी इच्छासे तथा आपसे शक्ति प्राप्तकर हम अपना-अपना कार्य करनेमें समर्थ हो पाते हैं॥ ४०॥

हे गिरिजे! यह पृथ्वी इस जगत्‌को धारण नहीं करती है अपितु आपकी आधारशक्ति ही इस समस्त जगत्‌को धारण करती है। हे वरदे! भगवान् सूर्य भी आपके ही आलोकसे युक्त होकर प्रकाशमान हैं। इस प्रकार आप विरजारूपसे इस सम्पूर्ण जगत्‌के रूपमें सुशोभित हो रही हैं॥ ४१॥

ब्रह्मा, मैं (विष्णु) तथा शंकर हम सब आपके ही प्रभावसे उत्पन्न होते हैं। जब हम नित्य नहीं हैं तो फिर इन्द्र आदि प्रमुख देवता कैसे नित्य हो सकते हैं? समस्त चराचर जगत्‌की जननी तथा सनातन प्रकृतिरूपा आप ही नित्य हैं॥ ४२॥

हे भवानि! आपकी सन्निधिमें आनेपर आज मुझे ज्ञात हो गया कि आप मुझ पुराणपुरुषपर सर्वदा दयाभाव बनाये रखती हैं; अन्यथा मैं अपनेको सर्वव्यापी, आदिरहित, निष्काम, ईश्वर तथा विश्वात्मा मान बैठता और अहंकारयुक्त होकर सदाके लिये तमोगुणी प्रकृतिवाला हो जाता॥ ४३॥

आप निश्चय ही सदासे बुद्धिमान् पुरुषोंकी विद्या तथा शक्तिशाली पुरुषोंकी शक्ति हैं। आप इस मनुष्य-लोकमें कीर्ति, कान्ति, कमला, निर्मला तथा तुष्टिस्वरूपा हैं तथा प्राणियोंको मोक्ष प्रदान करनेवाली विरक्तिस्वरूपा हैं*॥ ४४॥

आप वेदोंकी प्रथम कला गायत्री हैं। आप ही स्वाहा, स्वधा, सगुणा तथा अर्धमात्रा भगवती हैं। आपने ही देवताओं और पूर्वजोंके संरक्षणके लिये आगम तथा निगमकी रचना की है॥ ४५॥

जिस प्रकार पूर्ण महासमुद्रकी विस्तृत तरंगें उस समुद्रका ही अंश होती हैं, उसी प्रकार आदि-अन्तसे हीन निष्कलंक ब्रह्मके जीवरूपी अंशोंको मोक्ष प्राप्त करानेके उद्देश्यसे ही

* विद्या त्वमेव ननु बुद्धिमतां नराणां शक्तिस्त्वमेव किल शक्तिमतां सदैव।
त्वं कीर्तिकान्तिकमलामलतुष्टिरूपा मुक्तिप्रदा विरतिरेव मनुष्यलोके॥ (श्रीमद्देवीभा० ३।४।४४)

आपने सम्पूर्ण जगत्-प्रपंचका निर्माण किया है॥ ४६॥

जीवको जब यह विदित हो जाता है कि सम्पूर्ण विश्वप्रपंच आपहीका कृत्य है, तब अमित प्रभाववाली आप उसका उपसंहार कर देती हैं और अपने द्वारा किये गये मिथ्या, किंतु रहस्यपूर्ण कार्यपर उसी प्रकार प्रमुदित होती हैं जिस प्रकार मनोहारी नाटककी रचनापर सफल नट सन्तुष्ट होता है॥ ४७॥

हे अम्बिके! आप ही इस मोहमय भव-सागरसे मेरी रक्षा कर सकती हैं। राग-द्वेष आदि द्वन्द्वोंके कारण अत्यन्त कष्टदायक तथा दु:खप्रद मिथ्या अन्तकालमें मेरी रक्षा कीजियेगा, मैं आपके शरणागत हूँ॥ ४८॥

हे देवि! आपको नमस्कार है। हे महाविद्ये! मैं आपके चरणोंमें नमन करता हूँ। हे सर्वार्थदात्री शिवे! आप ज्ञानरूपी प्रकाशसे मेरे हृदयको आलोक प्रदान कीजिये॥ ४९॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत तृतीय स्कन्धका 'विष्णुकृतदेवीस्तोत्र' नामक चौथा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४॥

पाँचवाँ अध्याय

ब्रह्मा और शिवजीका भगवतीकी स्तुति करना

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] इस प्रकार देवदेव जनार्दन भगवान् विष्णुके स्तुति कर लेनेके उपरान्त भगवान् शिवशंकर विनीतभावसे देवीके सम्मुख स्थित होकर कहने लगे॥ १॥

शिवजी बोले—हे देवि! यदि भगवान् विष्णु आपके प्रभावसे प्रादुर्भूत हुए तथा उनके बाद ब्रह्माजी भी आपसे उत्पन्न हुए तो क्या मुझ तमोगुणीकी आपसे उत्पत्ति नहीं हुई है? हे शिवे! आप तो समग्र लोककी रचनामें चतुर हैं॥ २॥

पृथ्वी, जल, वायु, आकाश और अग्नि आप ही हैं। हे माता! आप ही इन्द्रियरूपिणी तथा आप ही बुद्धि, मन और अहंकारस्वरूपा हैं॥ ३॥

ब्रह्मा, विष्णु और शंकरने अखिल जगत्की रचना की है—ऐसा जो लोग अन्यथा बोलते हैं, वे कुछ भी नहीं जानते। आपने ही सदासे इन तीनोंकी सृष्टि की है, जो [आपकी ही प्रेरणासे] चराचर जगत्का सृजन-पालन-संहार करते हैं॥ ४॥

यदि पृथ्वी, वायु, आकाश, अग्नि, जल आदि महाभूतोंके गुणों तथा विषयोंसे ही जगत्का निर्माण सम्भव हो तो भी हे अम्ब! आपकी [चिन्मयी] कलाके बिना वह कैसे व्यक्त हो सकता है?॥ ५॥

हे अम्ब! आपने ब्रह्मा, विष्णु और महेशद्वारा निर्मित इस सम्पूर्ण चराचर जगत्को व्याप्त कर रखा है। आप अनेक प्रकारके वेष धारण करके कुतूहलपूर्ण क्रीड़ाएँ करती हुई यथेच्छ विहार करती हैं और पुनः शान्त भी हो जाती हैं॥ ६॥

हे अम्बिके! जब मैं (शिव), विष्णु और ब्रह्मा सृष्टिकालमें इस ब्रह्माण्डकी रचना करनेकी इच्छा करते हैं, तब निश्चित ही आपके चरणकमलोंका रजकण प्राप्त करके ही हमलोग अपने-अपने कार्य करनेमें समर्थ होते हैं॥ ७॥

हे अम्बिके! यदि आप सदा दयालु चित्तवाली न होतीं तो मैं तमोगुणयुक्त, ब्रह्मा रजोगुणसम्पन्न और विष्णु सत्त्वगुणयुक्त कैसे बनते?॥ ८॥

हे अम्बिके! यदि आपकी वैविध्यपूर्ण बुद्धि न होती तो यह संसार इतना विविधतापूर्ण कैसे होता, जिसमें मन्त्री, राजा, सेवक, धनी और निर्धन भरे पड़े हैं॥ ९॥

इस ब्रह्माण्डकी सृष्टि, स्थिति और संहार करनेमें आपके तीनों गुण (सत्-रज-तम) ही सर्वथा समर्थ हैं; फिर भी आपने हम ब्रह्मा, विष्णु और महेशको क्रमशः इन कार्योंको सम्पन्न करनेके लिये तीनों लोकोंके कारणरूपमें उत्पन्न किया है॥ १०॥

विमानमें बैठा हुआ मैं, ब्रह्मा तथा विष्णु—हमलोग इन भुवनोंसे पूर्णरूपेण परिचित हो गये हैं। हे भवानि! मार्गमें स्थित इन नवीन भुवनोंको किसने बनाया? इसे आप बतायें॥ ११॥

हे जगदम्बिके! आप अपनी कलासे जगत्की रचना तथा पालन करती हैं और जब चाहती हैं तब उसका संहार कर देती हैं। आप सदा अपने पति परमपुरुषको रमण कराती रहती हैं। हे शिवे! आपकी इस लीलाको हम नहीं जान सकते॥ १२॥

हे जननि! नारीभावको प्राप्त हमलोगोंको सदा अपने चरणकमलोंकी सेवा करनेका अवसर दें; क्योंकि कालान्तरमें पुनः पुंस्त्व प्राप्त होनेपर आपके चरणकमलोंसे पृथक् रहकर हमलोगोंको वह प्रत्यक्ष सुख कभी नहीं प्राप्त होगा॥ १३॥

हे अम्ब! हे शिवे! आपके चरणकमलोंको त्यागकर यह नरदेह प्राप्त करके तीनों लोकोंका स्वामित्व प्राप्त करके भी समस्त लोकोंमें कहीं भी रहनेकी मेरी रुचि नहीं है—चाहे मुझे त्रिभुवनका स्वामित्व ही क्यों न मिल जाय॥ १४॥

हे सुदति! आपके सांनिध्यमें स्त्रीभावको प्राप्त कर लेनेपर अब पुरुषभावमें मेरी थोड़ी भी रुचि नहीं है। जिसे पाकर आपके चरणारविन्दके दर्शनका सौभाग्य न मिले, वह पुरुषता कैसे सुख प्रदान कर सकती है?॥ १५॥

हे अम्बिके! स्त्रीका रूप पाकर मैं भवबन्धनसे मुक्त करनेवाले आपके चरणकमलोंसे परिचित हो गया हूँ। आपकी कृपासे तीनों लोकोंमें मेरा सुयश स्थिर रहे॥ १६॥

इस संसारमें ऐसा कौन प्राणी होगा, जो आपके सांनिध्यका सेवन छोड़कर निष्कण्टक राज्य करना चाहेगा? क्योंकि जिसे आपके चरणकमलका सांनिध्य प्राप्त नहीं होता, उसके लिये क्षणांश भी युगके समान प्रतीत होता है॥ १७॥

हे जननि! जो शुद्ध चित्तवाले मुनि आपके चरण-कमलकी सेवा त्यागकर केवल तपश्चर्यामें लगे रहते हैं, वे निश्चितरूपसे विधाताके द्वारा ठगे गये हैं और अपनी हानिको ही लाभ समझते हैं॥ १८॥

हे अजे! आपके पदारविन्दके परागकी सेवासे जैसी मुक्ति इस संसार-सागरसे प्राप्त होती है, वैसी मुक्ति तपस्या, इन्द्रियदमन, समाधि तथा विभिन्न वेदविहित यज्ञोंसे भी नहीं होती॥ १९॥

हे देवि! यदि आप मेरे प्रति दयालु हैं तो मुझपर दया कीजिये और अपना निर्मल, अद्भुत, सर्वश्रेष्ठ एवं विशद नवार्ण मन्त्र (ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे) मुझे प्रदान कीजिये, जिससे उसका निरन्तर जप करके मैं सर्वदाके लिये सुखी हो जाऊँ॥ २०॥

पूर्वजन्ममें मैंने नवार्ण मन्त्रकी दीक्षा पायी थी; परंतु वह मुझे अब स्मरण नहीं रह गया है। इसलिये हे तारके! हे जननि! आज पुनः वह मन्त्र मुझे प्रदान कीजिये और भवसागरसे मेरा उद्धार कीजिये, उद्धार कीजिये॥ २१॥

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] अद्भुत तेजस्वी शिवजीके ऐसा कहनेपर जगदम्बाने स्पष्ट शब्दोंमें नवाक्षर मन्त्रका उच्चारण किया। उस मन्त्रको ग्रहण करके शिवजी बहुत प्रसन्न हो गये और भगवतीके चरणोंमें प्रणाम करके वहींपर स्थित हो गये॥ २२-२३॥

उस समय सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेमें समर्थ, मुक्तिप्रदायक तथा शुभ उच्चारणसे सम्पन्न उस बीजयुक्त नवाक्षर मन्त्रका जप करते हुए शंकरजी वहाँ विराजमान रहे॥ २४॥

संसारका कल्याण करनेवाले शिवजीको इस प्रकार बैठा देखकर मैं उन महामायाके चरणोंके समीप बैठ गया और उनसे कहने लगा॥ २५॥

हे जननि! वेद सभी लोगोंको धारण करनेवाली तथा सनातनी आप भगवतीकी कल्पना करनेमें अकुशल हैं—ऐसी बात नहीं है; क्योंकि साधारण कार्योंमें उन्होंने आप भगवतीकी चर्चा नहीं की है। यदि वे आपको न जानते तो सभी यज्ञों तथा हवन-कार्योंमें आपको ही स्वाहादेवीके रूपमें प्रतिष्ठित कैसे करते? इसलिये आप तीनों लोकोंमें सर्वज्ञाके रूपमें विख्यात हुईं॥ २६॥

मैं स्रष्टा हूँ, मैं अत्यन्त अद्भुत सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका निर्माण करता हूँ, इस चराचर त्रिभुवनमें मुझसे बढ़कर समर्थ दूसरा पुरुष कौन है, मैं निस्सन्देह धन्य हूँ, मैं लोकोत्तर ब्रह्मा हूँ—इस मिथ्या अहंकारके कारण मैं सर्वदा इस विस्तृत संसारसागरमें निमग्न रहता हूँ; तथापि आज आपके चरण-कमलोंकी पराग-प्राप्तिके गर्वसे मैं वस्तुतः धन्य हो गया हूँ और आपकी कृपासे ही आज मैं यथातथ्यके ज्ञानमें निपुण हो गया हूँ। सांसारिक

भयका नाश करनेमें दक्ष, मुक्तिदायिनी आप परमेश्वरीसे मैं यही प्रार्थना करता हूँ कि मोहनिर्मित महादुःखदायी भवबन्धनसे मुक्त करके आप मुझे अपनी भक्तिसे समन्वित कीजिये॥ २७-२८॥

आपसे ही निर्मित अद्भुत कमलसे मैं आविर्भूत हुआ हूँ और मैं आपका आज्ञाकारी सेवक हूँ, अतः मैं कैसे मुक्त हो सकूँगा? हे शिवे! इस भवसागरमें पड़े हुए मुझ मोहमग्नकी रक्षा कीजिये॥ २९॥

इस संसारमें जो लोग आपके सनातन पवित्र चरित्रको नहीं जानते, वे लोग मुझे ही ईश्वर कहते हैं और जो यज्ञकर्ता स्वर्गकी इच्छासे [इन्द्र आदि देवताओंका] यजन करते हैं, वे भी सर्वथा आपके प्रभावको नहीं जानते॥ ३०॥

हे आदिमाये! सर्वप्रथम सृष्टिको चार भागों [अण्डज, स्वेदज, उद्भिज्ज और पिण्डज—जरायुज]-में विभक्त करनेके लिये ही आपने मुझे ब्रह्माके पदपर बैठाया, परंतु [मैंने यह समझ लिया कि] मैं ही सब कुछ जानता हूँ, दूसरा कौन जान सकता है—मेरे इस अहंकारजन्य अपराधको आप क्षमा कीजिये॥ ३१॥

जो लोग अष्टांगयोगका आश्रय लेते हैं और समाधि लगाकर व्यर्थ श्रम करते हैं, वे अज्ञानी हैं। हे माता! वे यह नहीं जानते कि किसी भी बहाने आपके नामोच्चारणमात्रसे ही उन्हें मुक्ति प्राप्त हो सकती है॥ ३२॥

कुछ लोग (सांख्यवादी) तो आपके नामका आश्रय छोड़कर विमोहित हो तत्त्वोंकी संख्याके फेरमें पड़ जाते हैं; क्या वे इस भवसागरमें मूर्ख नहीं हैं? हे भवानि! संसारसे मुक्ति प्रदान करनेवाली तो आप ही हैं॥ ३३॥

हे अजे! जिन विष्णु-शिव आदिने परम तत्त्वज्ञानका अनुभव कर लिया है, वे क्या आधे निमेषमात्रके लिये भी आपके पवित्र चरित्र तथा शिवा, अम्बिका, शक्ति, ईश्वरी आदि नामोंको विस्मृत करते हैं?॥ ३४॥

क्या आप विश्वकी रचना करनेमें समर्थ नहीं हैं? हे आदिसर्गे! आपके दृष्टिनिक्षेपमात्रसे ही यह सम्पूर्ण विश्व चार प्रकारके (अंडज, स्वेदज, उद्भिज्ज, पिण्डज—जरायुज) जीवोंके रूपमें शीघ्र ही विभक्त हुआ है। मुझ-जैसे ब्रह्माकी सृष्टि तो आप अपने मनोविनोदके लिये करके पुनः स्वतन्त्र भावसे जो चाहती हैं, वह करती हैं॥ ३५॥

[महाप्रलयकी स्थितिमें] यदि महासागरमें आप मधु-कैटभसे विष्णुकी रक्षा न करतीं तो वे सृष्टि-पालक कैसे बन पाते और यदि आप सबके संहारक शिवका संहार न करतीं तो वे मेरे भ्रूमध्यसे कैसे प्रकट होते?॥ ३६॥

आपका जन्म कहाँ हुआ—इसे न तो किसीने देखा और न सुना और कोई यह भी नहीं जान पाया कि आपकी उत्पत्ति कहाँ हुई? हे भवानि! एकमात्र आप ही आद्या शक्ति हैं, अतएव वेदोंने इसी रूपमें आपका वर्णन किया है॥ ३७॥

हे अम्ब! आपकी ही शक्तिसे प्रेरित होकर मैं सृष्टि करनेमें, विष्णु पालन करनेमें तथा शिव संहार करनेमें समर्थ होते हैं। आपकी शक्तिसे विलग रहकर अब हमलोग कुछ भी करनेमें सक्षम नहीं हैं॥ ३८॥

जिस प्रकार मैं (ब्रह्मा), विष्णु और शिव उत्पन्न हुए हैं, उसी प्रकार क्या अन्य प्राणी उत्पन्न नहीं हुए, अथवा विद्यमान नहीं हैं या उत्पन्न नहीं होंगे? किंतु अल्प बुद्धिवाले प्राणियोंके लिये विवादास्पद तथा अत्यन्त विचित्र आपके इस लीलाविनोदसे कौन भ्रमित नहीं हो जाते?॥ ३९॥

वे आदिदेव ईश्वर अकर्ता, गुणोंसे स्फुट होनेवाले, निष्काम, उपाधिरहित तथा निर्गुण हैं, फिर भी वे आपके विस्तृत लीला-विनोदको भलीभाँति देखते रहते हैं—ज्ञानीजन ऐसा ही कहते हैं॥ ४०॥

मूर्त और अमूर्त भेदोंसे युक्त इस संसारमें आपसे पूर्व वे ही परमपुरुष थे; ज्ञान-तत्त्वपर सम्यक् प्रकारसे विचार करनेपर यह सर्वथा सिद्ध होता है कि अन्य तीसरा कोई भी नहीं है॥ ४१॥

[यह सिद्धान्त है कि] वेद-वाक्यको कभी मिथ्या नहीं समझना चाहिये। वेद ब्रह्मको अद्वितीय और एक बताते हैं; तो फिर आप क्या हैं और वह ब्रह्म क्या है? यह विरोध मेरे हृदयमें महान् शंका उत्पन्न करता है। आप मेरे इस सन्देहका निवारण करें॥ ४२-४३॥

इस प्रकार द्वैत-अद्वैतके इस विचारमें डूबा हुआ मेरा क्षुद्र मन निश्चितरूपसे शंकारहित नहीं हो पा रहा है॥ ४४॥

अब आप ही स्वयं अपने मुखसे मेरी इस शंकाका निवारण करनेकी कृपा करें; क्योंकि [अनेक जन्मोंके] पुण्ययोगसे ही आपके चरणोंका यह सांनिध्य मुझे प्राप्त हुआ है॥ ४५॥

आप पुरुष हैं अथवा स्त्री—यह मुझे विस्तारपूर्वक बतायें, जिससे मैं आप परम शक्तिको जानकर भवसागरसे मुक्त हो जाऊँ॥ ४६॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत तृतीय स्कन्धका 'हरब्रह्मकृतस्तुतिवर्णन' नामक पाँचवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५॥

छठा अध्याय

भगवती जगदम्बिकाद्वारा अपने स्वरूपका वर्णन तथा 'महासरस्वती', 'महालक्ष्मी' और 'महाकाली' नामक अपनी शक्तियोंको क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और शिवको प्रदान करना

ब्रह्माजी बोले—अत्यन्त नम्र भावसे मेरे पूछनेपर वे आद्या भगवती मधुर वचन कहने लगीं॥ १॥

देवी बोलीं—मैं और परब्रह्म सदा एक ही हैं; कोई भेद नहीं है; क्योंकि जो वे हैं, वही मैं हूँ, और जो मैं हूँ, वही वे हैं। बुद्धिभ्रमसे ही हम दोनोंमें भेद दिखायी पड़ता है॥ २॥

इसलिये हम दोनोंमें विद्यमान सूक्ष्म अन्तरको जो बुद्धिमान् जानता है, वह संसारके बन्धनसे छूटकर सदाके लिये मुक्त हो जाता है; इसमें सन्देह नहीं है॥ ३॥

ब्रह्म अद्वितीय, एक, नित्य एवं सनातन है; केवल सृष्टि-रचनाके समय वह पुनः द्वैतभावको प्राप्त होता है॥ ४॥

जिस प्रकार एक ही दीपक उपाधिभेदसे दो प्रकारका दिखायी देता है अथवा दर्पणमें पड़ती हुई छाया दर्पणभेदसे भिन्न-भिन्न प्रतीत होती है, उसी प्रकार मैं और ब्रह्म एक होते हुए भी उपाधिभेदसे अनेक हो जाते हैं॥ ५॥

हे अज! जगत्का निर्माण करनेके लिये सृष्टिकालमें भेद दिखता ही है। तब दृश्यादृश्यकी प्रतीति होना अनिवार्य ही है; क्योंकि बिना दोके सृष्टि होना असम्भव है॥ ६॥

सृष्टिके प्रलयकालमें मैं न स्त्री हूँ, न पुरुष हूँ और न ही नपुंसक हूँ। परंतु जब पुनः सृष्टि होने लगती है, तब पूर्ववत् यह भेद बुद्धिके द्वारा उत्पन्न हो जाता है॥ ७॥

मैं ही बुद्धि, श्री, धृति, कीर्ति, स्मृति, श्रद्धा, मेधा, दया, लज्जा, क्षुधा, तृष्णा, क्षमा, कान्ति, शान्ति, पिपासा, निद्रा, तन्द्रा, जरा, अजरा, विद्या, अविद्या, स्पृहा, वाञ्छा, शक्ति, अशक्ति, वसा, मज्जा, त्वचा, दृष्टि, सत्यासत्य वाणी, परा, मध्या, पश्यन्ती आदि वाणीके भेद और जो विभिन्न प्रकारकी नाड़ियाँ हैं—वह सब मैं ही हूँ॥ ८—१०॥

हे पद्मयोने! आप यह देखिये कि इस संसारमें मैं क्या नहीं हूँ और मुझसे पृथक् कौन-सी वस्तु है? इसलिये आप यह निश्चितरूपसे जान लीजिये कि सब कुछ मैं ही हूँ॥ ११॥

हे विधे! मेरे इन निश्चित रूपोंके अतिरिक्त यदि कुछ हो तो मुझे बतायें, अतः इस सृष्टिमें सर्वत्र मैं ही व्याप्त हूँ॥ १२॥

निश्चित ही मैं समस्त देवताओंमें भिन्न-भिन्न नामोंसे विराजती हूँ तथा शक्तिरूपसे प्रकट होती हूँ और पराक्रम करती हूँ। मैं ही गौरी, ब्राह्मी, रौद्री, वाराही, वैष्णवी, शिवा, वारुणी, कौबेरी, नारसिंही और वासवी शक्तिके रूपमें विद्यमान हूँ। सब कार्योंके उपस्थित होनेपर मैं उन देवताओंमें प्रविष्ट हो जाती हूँ और देवविशेषको निमित्त बनाकर सब कार्य सम्पन्न कर देती हूँ॥ १३—१५॥

जलमें शीतलता, अग्निमें उष्णता, सूर्यमें प्रकाश और चन्द्रमामें ज्योत्स्नाके रूपमें मैं ही यथेच्छ प्रकट होती हूँ॥ १६॥

हे विधे! इस संसारका कोई भी जीव मुझसे रहित होकर स्पन्दन भी करनेमें समर्थ नहीं हो सकता। यह मेरा निश्चय है। इसे मैं आपको बता दे रही हूँ। इसी प्रकार

यदि मैं शिवको छोड़ दूँ तो वे शक्तिहीन होकर दैत्योंका संहार करनेमें समर्थ नहीं हो सकते। इसीलिये तो संसारमें भी अत्यन्त दुर्बल पुरुषको लोग शक्तिहीन कहते हैं॥ १७-१८॥

लोग अधम मनुष्यको विष्णुहीन या रुद्रहीन नहीं कहते बल्कि उसे शक्तिहीन ही कहते हैं। जो गिर गया हो, स्खलित हो गया हो, भयभीत हो, निश्चेष्ट हो गया हो अथवा शत्रुके वशीभूत हो गया हो—वह संसारमें अरुद्र नहीं कहा जाता, अपितु अशक्त ही कहा जाता है॥ १९-२०॥

[हे ब्रह्मन्!] आप ही जब सृष्टि करना चाहते हैं तब उसमें शक्ति ही कारण है, ऐसा जानिये। जब आप शक्तिसे युक्त होते हैं तभी सृष्टिकर्ता हो पाते हैं॥ २१॥

इसी प्रकार विष्णु, शिव, इन्द्र, अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, यम, विश्वकर्मा, वरुण और वायुदेवता भी शक्ति-सम्पन्न होकर ही अपना-अपना कार्य सम्पादित करते हैं॥ २२॥

पृथ्वी भी जब शक्तिसे युक्त होती है, तब स्थिर होकर सबको धारण करनेमें समर्थ होती है। यदि वह शक्तिहीन हो जाय तो एक परमाणुको भी धारण करनेमें समर्थ न हो सकेगी। शेषनाग, कच्छप एवं दसों दिग्गज मेरी शक्ति पाकर ही अपने-अपने कार्य सम्पन्न करनेमें समर्थ हो पाते हैं॥ २३-२४॥

यदि मैं चाहूँ तो सम्पूर्ण संसारका जल पी जाऊँ, अग्निको नष्ट कर दूँ और वायुकी गति रोक दूँ; मैं जैसा चाहती हूँ, वैसा करती हूँ॥ २५॥

हे कमलोद्भव! सभी तत्त्वोंके अभावका सन्देह अब आप कभी न कीजिये; क्योंकि कभी-कभी किसी वस्तुविशेषका प्रागभाव (जिसका आदि न हो, पर अन्त हो) तथा प्रध्वंसाभाव (जिसका आदि हो, किंतु अन्त न हो) उसी प्रकार हो जाता है, जिस प्रकार मिट्टीके पिण्डोंमें और कपालोंमें घटाभाव प्रतीत होता है॥ २६-२७॥

आज यहाँ पृथ्वी नहीं है, तब वह कहाँ चली गयी? इसपर विचार करनेपर वह पृथ्वी परमाणुरूपसे विद्यमान तो है ही—ऐसा जानना चाहिये॥ २८॥

शाश्वत, क्षणिक, शून्य, नित्य, अनित्य, सकर्तृक और अहंकार—इन सात भेदोंमें सृष्टिका वर्णन विवक्षित है। इसलिये हे अज! अब आप उस महत्तत्त्वको ग्रहण कीजिये, जिससे अहंकारकी उत्पत्ति होती है। तत्पश्चात् आप पूर्वकी भाँति समस्त प्राणियोंकी रचना कीजिये॥ २९-३०॥

अब आपलोग जाइये तथा अपने-अपने लोकोंकी रचना करके निवास कीजिये और दैवका चिन्तन करते हुए अपने-अपने कार्य कीजिये॥ ३१॥

हे विधे! सुन्दर रूपवाली, दिव्य हासवाली, रजोगुणसे युक्त, श्रेष्ठ श्वेत वस्त्र धारण करनेवाली, अलौकिक, दिव्याभूषणोंसे विभूषित, उत्तम आसनपर विराजमान इस महासरस्वती नामक शक्तिको क्रीडाविहारके लिये अपनी सहचरीके रूपमें स्वीकार कीजिये॥ ३२-३३॥

यह सुन्दरी सदा आपकी सहचरी बनकर रहेगी। इस पूज्यतम प्रेयसीको मेरी विभूति समझकर कभी भी इसका तिरस्कार न कीजियेगा। अब आप शीघ्र ही इसे साथ लेकर सत्यलोकमें प्रस्थान करें और तत्त्वबीजसे चार प्रकारकी समस्त सृष्टि करनेमें तत्पर हो जायँ॥ ३४-३५॥

समस्त जीवों और कर्मोंके साथ जो लिंगकोश हैं, उन्हें पूर्वकी भाँति आप प्रतिष्ठित कर दें। काल, कर्म और स्वभाव नामवाले—इन कारणोंसे समस्त चराचर सृष्टिको पूर्वकी भाँति अपने-अपने स्वभाव और गुणोंसे युक्त कर दीजिये॥ ३६-३७॥

विष्णु आपके सदा माननीय और पूजनीय हैं; क्योंकि सत्त्वगुणकी प्रधानताके कारण वे सर्वदा सब प्रकारसे श्रेष्ठ हैं॥ ३८॥

जब-जब आपलोगोंका कोई कठिन कार्य उपस्थित होगा, उस समय भगवान् श्रीहरि पृथ्वीपर अवतार ग्रहण करेंगे॥ ३९॥

कहीं तिर्यक्-योनिमें तथा कहीं मानवयोनिमें शरीर धारण करके ये भगवान् जनार्दन दानवोंका अवश्य विनाश करेंगे॥ ४०॥

ये महाबली शंकरजी भी आपकी सहायता करेंगे। अब आप समस्त देवताओंका सृजन करके स्वेच्छया सुखपूर्वक विहार कीजिये॥ ४१॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्यलोग दक्षिणायुक्त नानाविध यज्ञोंसे विधिपूर्वक पूर्ण मनोयोगके साथ आप सबकी पूजा करेंगे॥ ४२॥

हे देवो! सभी यज्ञोंमें मेरे नामका उच्चारण करते ही आप सभी लोग निश्चितरूपसे सदैव तृप्त एवं सन्तुष्ट हो जायँगे॥ ४३॥

आपलोग तमोगुणसम्पन्न शंकरजीका सब प्रकारसे सम्मान कीजियेगा और सभी यज्ञकार्योंमें प्रयत्नपूर्वक उनकी पूजा कीजियेगा॥ ४४॥

जब कभी भी देवताओंके समक्ष दैत्योंसे भय उत्पन्न होगा, उस समय सुन्दर रूपोंवाली वाराही, वैष्णवी, गौरी, नारसिंही, सदाशिवा तथा अन्य देवियोंके रूपमें मेरी शक्तियाँ प्रकट होकर उनका भय दूर कर देंगी। अत: हे कमलोद्भव! अब आप अपने कार्य करें॥ ४५-४६॥

हे कमलोद्भव! बीज तथा ध्यानसे युक्त मेरे इस नवाक्षर मन्त्रका जप करते हुए आप समस्त कार्य कीजिये॥ ४७॥

हे महामते! आप इस मन्त्रको सभी मन्त्रोंसे श्रेष्ठ जानिये। सभी मनोरथोंकी सिद्धिके लिये आपको इस मन्त्रको सदा अपने हृदयमें धारण करना चाहिये॥ ४८॥

मुझसे ऐसा कहकर पवित्र मुसकानवाली जगज्जननीने भगवान् विष्णुसे कहा—हे विष्णो! अब आप इन मनोहर महालक्ष्मीको स्वीकार कीजिये और यहाँसे प्रस्थान कीजिये॥ ४९॥

ये आपके वक्ष:स्थलमें सदा निवास करेंगी, इसमें सन्देह नहीं है। आपके लीलाविनोदके लिये मैंने आपको यह सभी मनोरथ प्रदान करनेवाली कल्याणमयी शक्ति अर्पित की है॥ ५०॥

आप इनका सर्वदा सम्मान करते रहियेगा और कभी भी तिरस्कार न कीजियेगा। लक्ष्मीनारायण नामक यह संयोग मेरेद्वारा ही रचा गया है॥ ५१॥

मैंने देवताओंकी जीविकाके लिये ही यज्ञोंकी रचना की है। आप तीनों विरोधभावनासे रहित होकर व्यवहार कीजिये॥ ५२॥

आप (विष्णु), ब्रह्मा, शिव तथा ये सभी देवता मेरे ही प्रभावसे प्रादुर्भूत हुए हैं। अतएव निस्सन्देह आपलोग सभी प्राणियोंके मान्य एवं पूज्य होंगे॥ ५३॥

जो अज्ञानी मनुष्य इनमें भेदभाव करेंगे, वे इस विभेदके कारण नरकमें पड़ेंगे। इसमें सन्देह नहीं है॥ ५४॥

जो विष्णु हैं, वे ही साक्षात् शिव हैं और जो शिव हैं, वे ही स्वयं विष्णु हैं। इन दोनोंमें भेद रखनेवाला मनुष्य नरकगामी होता है*॥ ५५॥

ब्रह्माजीके सम्बन्धमें भी ऐसा ही जानिये; इसमें कोई सन्देह नहीं है। हे विष्णो! गुणोंके कारण इनमें जो भेद हैं; उन्हें आपको बता रही हूँ, आप सुनें॥ ५६॥

परमात्म-चिन्तनकी दृष्टिसे आपका मुख्य गुण सत्त्वगुण है। दूसरे रजोगुण तथा तमोगुण आपके लिये गौण हैं। अतएव विभिन्न भेदयुक्त विकारोंमें रजोगुणसे सम्पन्न होकर आप इन लक्ष्मीके साथ विहार कीजिये॥ ५७-५८॥

हे लक्ष्मीकान्त! मेरे द्वारा आपको दिया गया वाग्बीज (ऐं), कामराज (क्लीं) तथा तृतीय मायाबीज (ह्रीं) इनसे युक्त यह मन्त्र परमार्थ प्रदान करनेवाला है। आप इसे ग्रहण करके निरन्तर इसका जप कीजिये तथा सुखपूर्वक विहार कीजिये। हे विष्णो! ऐसा करनेसे आपको न तो मृत्युभय होगा और न कालजनित भय ही होगा॥ ५९-६०॥

जबतक मैं विहार करती रहूँगी, तबतक यह सृष्टि निश्चितरूपसे रहेगी और जब मैं सम्पूर्ण चराचर जगत्का संहार कर दूँगी, उस समय आपलोग भी मुझमें समाहित हो जायँगे। आपलोग समस्त मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले तथा मोक्ष प्रदान करनेवाले इस मन्त्रका अनवरत स्मरण करते रहें॥ ६१-६२॥

अपना कल्याण चाहनेवाले व्यक्तिको इस मन्त्रके साथ 'ओंकार' जोड़कर चतुरक्षर मन्त्रका जप करना चाहिये। हे पुरुषोत्तम! अब आप वैकुण्ठका निर्माण कराकर उसीमें निवास कीजिये और मुझ सनातनीका सतत ध्यान करते हुए इच्छापूर्वक विहार कीजिये॥ ६३ $^{1}/_{2}$॥

* यो हरि: स शिव: साक्षाद्य: शिव: स स्वयं हरि:। एतयोर्भेदमातिष्ठन्नरकाय भवेन्नर:॥ (श्रीमद्देवीभा० ३।६।५५)

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] विष्णुसे ऐसा कहकर उस त्रिगुणात्मिका तथा निर्गुणा परा प्रकृतिने देवाधिदेव शंकरसे अमृतमय वचन कहा॥ ६४½॥

देवी बोलीं—हे हर! आप इन मनोहरा महाकाली गौरीको अंगीकार कीजिये और कैलासशिखरकी रचना कराकर वहाँ सुखपूर्वक विहार कीजिये। तमोगुण आपमें प्रधानगुणके रूपमें विद्यमान रहेगा और सत्त्वगुण तथा रजोगुण आपमें गौणरूपसे व्याप्त रहेंगे॥ ६५-६६॥

रजोगुण और तमोगुणके द्वारा दैत्योंके विनाशके लिये आप वहाँ विहार करें और हे शर्व! परमात्माका स्मरण-ध्यान करनेके लिये आप तप कर चुके हैं। आप शान्तिप्रधान सत्त्वगुणका अवलम्बन कीजिये। हे अनघ! त्रिगुणात्मक आप तीनों देवता सृष्टि, पालन एवं संहार करनेवाले हैं॥ ६७-६८॥

संसारमें कहीं भी कोई भी वस्तु इन तीनों गुणोंसे रहित नहीं है। जगत्‌की जितनी भी दृश्य वस्तुएँ हैं, वे सब त्रिगुणात्मिका हैं॥ ६९॥

इस संसारमें ऐसी कोई भी दृश्य वस्तु गुणरहित न तो हुई और न होगी। निर्गुण तो एकमात्र वह परमात्मा ही है और वह कभी दृष्टिगोचर नहीं होता॥ ७०॥

हे शंकर! समय आनेपर मैं श्रेष्ठरूपा ही वह सगुणा या निर्गुणा हो जाती हूँ। हे शम्भो! मैं सर्वदा कारण हूँ, कार्य कभी नहीं॥ ७१॥

किसी कारणविशेषसे मैं सगुणा होती हूँ तो उस परमपुरुषके सांनिध्यमें निर्गुणा रहती हूँ। महत्तत्त्व, अहंकार, तीनों गुण और शब्द आदि विषय कार्य-कारणभावसे निरन्तर गतिशील रहते हैं। सत्‌से अहंकार उत्पन्न होता है; इसीलिये मैं शिवा सबका कारण हूँ॥ ७२-७३॥

अहंकार मेरा कार्य है और वह त्रिगुणात्मक रूपमें प्रतिष्ठित है। उस अहंकारसे महत्तत्त्व उत्पन्न होता है; उसीको बुद्धि कहा गया है॥ ७४॥

वह महत्तत्त्व कार्य है तथा अहंकार उसका कारण है। इसी अहंकारसे तन्मात्राओंकी सदा उत्पत्ति होती है। वे तन्मात्राएँ [पृथ्वी, जल आदि] पंचमहाभूतोंका कारण हैं। सबके सृजनमें पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच महाभूत और सोलहवाँ मन—यह षोडशात्मक समूह कार्य और कारणरूप होता है॥ ७५—७७॥

वह आदिपुरुष परमात्मा न कार्य है और न कारण। हे शिव! सबकी प्रारम्भिक सृष्टिके उत्पत्तिका यही क्रम है॥ ७८॥

अभी मैंने आपलोगोंकी यह उत्पत्ति-परम्परा संक्षेपमें कही। इसलिये हे श्रेष्ठदेव! अब आपलोग मेरा कार्य सम्पन्न करनेके लिये इस विमानसे प्रस्थान करें॥ ७९॥

जब आपलोगोंपर कोई संकट आयेगा, तब मैं स्मरणमात्रसे तत्काल आपलोगोंको दर्शन दूँगी। अतः हे देवो! आपलोग सर्वदा मेरा तथा सनातन परमात्माका स्मरण करते रहें। हम दोनोंके स्मरणसे ही निःसन्देह आपलोगोंकी कार्यसिद्धि होगी॥ ८०½॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! ऐसा कहकर भगवतीने अपनी अद्भुत शक्तियाँ प्रदानकर हमें विदा किया। विष्णुको महालक्ष्मी, शिवको महाकाली और मुझे महासरस्वती प्रदान करके उस स्थानसे विदा कर दिया॥ ८१-८२॥

उनके स्वरूप तथा अत्यन्त अद्भुत प्रभावका स्मरण करते हुए अन्य स्थानपर पहुँचकर हमलोग पुनः पुरुषरूपमें हो गये॥ ८३॥

तब लौटकर हम तीनों पुनः उसी विमानमें बैठ गये। [हमने देखा कि] वहाँ न तो वह मणिद्वीप है, न वे महामाया हैं और न वह सुधासागर है। उस समय वहाँ उस विमानके अतिरिक्त और कुछ दृष्टिगोचर नहीं होता था॥ ८४॥

उस विशाल विमानमें बैठकर हम तीनों पुनः उसी महासागरमें विद्यमान उस कमलके निकट पहुँचे, जहाँ भगवान् विष्णुने मधु-कैटभ नामक दुर्धर्ष दैत्योंका वध किया था॥ ८५॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत तृतीय स्कन्धका 'ब्रह्माजीके प्रति देवीका उपदेशवर्णन' नामक छठा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ६॥

सातवाँ अध्याय

ब्रह्माजीके द्वारा परमात्माके स्थूल और सूक्ष्म स्वरूपका वर्णन; सात्त्विक, राजस और तामस शक्तिका वर्णन; पंचतन्मात्राओं, ज्ञानेन्द्रियों, कर्मेन्द्रियों तथा पंचीकरण-क्रियाद्वारा सृष्टिकी उत्पत्तिका वर्णन

ब्रह्माजी बोले—हे महाभाग! [नारद!] मैंने, विष्णु तथा शंकरने इस प्रकारके प्रभाववाली उन देवीको तथा अन्य सभी देवियोंको पृथक्-पृथक् देखा॥ १॥

व्यासजी बोले—पिताका यह वचन सुनकर मुनिवर नारदने परम प्रसन्न होकर प्रजापति ब्रह्माजीसे यह बात पूछी॥ २॥

नारदजी बोले—हे पितामह! आपने जिन आदि, अविनाशी, निर्गुण, अच्युत तथा अव्यय परमपुरुषका दर्शन तथा अनुभव किया, उनके विषयमें बताइये॥ ३॥

हे पिताजी! आपने त्रिगुणसम्पन्ना देवीका दर्शन तो कर लिया है; निर्गुणा शक्ति कैसी होती हैं? हे कमलोद्भव! अब आप मुझे उन शक्तिका तथा परमपुरुषका स्वरूप बताइये॥ ४॥

जिनके लिये मैंने श्वेतद्वीपमें महान् तपश्चर्या की और क्रोधशून्य सिद्धपुरुषों, महात्माओं तथा तपस्वियोंके दर्शन किये; वे परमात्मा मुझे दृष्टिगोचर नहीं हुए। हे प्रजापते! इसके बाद भी [उनके दर्शनार्थ] मैंने वहाँ बार-बार घोर तपस्या की॥ ५-६॥

हे तात! आपने मनोरमा सगुणा शक्तिका दर्शन किया है। आप मुझे बताइये कि निर्गुणा शक्ति और निर्गुण परमात्मा कैसे हैं?॥ ७॥

व्यासजी बोले—नारदजीने अपने पिता प्रजापति ब्रह्मासे ऐसा पूछा, तब उन पितामहने मुसकराते हुए रहस्यपूर्ण वचन कहा॥ ८॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! निर्गुणतत्त्वका रूप दृष्टिगोचर नहीं हो सकता; क्योंकि जो दिखायी पड़ता है, वह तो नाशवान् होता है। जो रूपरहित है, वह दृष्टिगोचर कैसे हो सकता है?॥ ९॥

निर्गुणा शक्तिको जान पाना अत्यन्त दुरूह है और उसी प्रकार निर्गुण परमपुरुषका साक्षात्कार भी अति दुष्कर है। ये दोनों केवल मुनिजनोंके द्वारा ज्ञानसे प्राप्त तथा अनुभूत किये जा सकते हैं॥ १०॥

आप प्रकृति तथा पुरुष दोनोंको आदि-अन्तसे सर्वदा रहित जानिये। ये दोनों विश्वाससे जाने जा सकते हैं; अविश्वाससे कभी नहीं॥ ११॥

हे नारद! सभी प्राणियोंमें जो चैतन्य विद्यमान है, उसे ही परमात्मस्वरूप जानो। तेज:स्वरूप वे परमात्मा सर्वत्र व्याप्त हैं तथा सदा विराजमान हैं॥ १२॥

हे महाभाग! उन परमपुरुष तथा प्रकृतिको सर्वव्यापी तथा सर्वगामी समझिये। इस संसारमें कोई भी पदार्थ उन दोनोंसे रहित नहीं है॥ १३॥

सर्वदा अव्यय, एकरूप, चिदात्मा, निर्गुण तथा निर्मल—उन दोनों (प्रकृति-पुरुष)-को एक ही शरीरमें सम्मिश्रित मानकर सदा इनका चिन्तन करना चाहिये॥ १४॥

हे नारद! जो शक्ति हैं, वे ही परमात्मा हैं और जो परमात्मा हैं, वे ही परमशक्ति मानी गयी हैं। इन दोनोंमें विद्यमान सूक्ष्म अन्तरको कोई भी नहीं जान सकता॥ १५॥

हे नारद! कोई भी व्यक्ति समस्त शास्त्रों तथा अंगोंसहित वेदोंका अध्ययन करके भी विरक्तिके बिना उन दोनोंके सूक्ष्म अन्तरको नहीं जान पाता है॥ १६॥

हे पुत्र! जड-चेतनरूप यह सारा जगत् अहंकारसे निर्मित है; ऐसी स्थितिमें सैकड़ों कल्पोंमें भी यह अहंकारसे रहित कैसे हो सकता है?॥ १७॥

हे पुत्र! सगुण मनुष्य निर्गुणको नेत्रसे कैसे देख सकता है? अत: हे महाबुद्धे! उन परमात्माके सगुण रूपका मनसे सम्यक् ध्यान करते रहो॥ १८॥

हे मुनिश्रेष्ठ! पित्तसे आच्छादित जिह्वा जिस प्रकार यथार्थ रसका अनुभव न करके केवल कटुरसका अनुभव करती है तथा पित्ताच्छादित नेत्र यथार्थ रूप न देखकर केवल पीले रंगको ही देखता है, उसी प्रकार गुणोंसे आच्छादित मन उस निर्गुण परमात्माको कैसे जान पायेगा? क्योंकि मन भी तो अहंकारसे उत्पन्न हुआ है, तब वह

मन अहंकारसे रहित कैसे हो सकता है? जबतक अन्तःकरण गुणोंसे रहित नहीं होता तबतक परमात्माका दर्शन कैसे सम्भव है? जब मनुष्य अहंकारविहीन हो जाता है, तब वह अपने हृदयमें उनका साक्षात्कार कर लेता है॥ १९—२१॥

नारदजी बोले—हे देवदेवेश! तीनों गुणोंका जो स्वरूप है, उसका विस्तारपूर्वक विवेचन कीजिये और त्रिगुणात्मक अहंकारके स्वरूपका भी वर्णन कीजिये। हे पुरुषोत्तम! सात्त्विक, राजस तथा तीसरे तामस अहंकारके स्वरूप-भेदको बताइये। इस प्रकार गुणोंके विस्तृत लक्षणोंको विभागपूर्वक मुझको बताइये। हे प्रभो! मुझे ऐसा ज्ञान दीजिये जिसे जानकर मैं पूर्णरूपेण मुक्त हो जाऊँ॥ २२—२४॥

ब्रह्माजी बोले—हे निष्पाप! इस त्रिविध अहंकारकी तीन शक्तियाँ हैं, मैं उन्हें बताता हूँ। वे हैं—ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति तथा तीसरी अर्थशक्ति॥ २५॥

उनमें सात्त्विक अहंकारकी ज्ञानशक्ति, राजसकी क्रियाशक्ति और तामसकी द्रव्यशक्ति—ये तीन शक्तियाँ आपको बता दीं॥ २६॥

हे नारद! अब मैं उनके कार्योंको सम्यक् रूपसे बताऊँगा, सुनिये। तामसी द्रव्यशक्ति (अर्थशक्ति)-से उत्पन्न शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध—ये तन्मात्राएँ कही गयी हैं। आकाशका एकमात्र गुण शब्द, वायुका गुण स्पर्श, अग्निका गुण रूप, जलका गुण रस तथा पृथ्वीका गुण गन्ध है—ऐसा जानना चाहिये। हे नारद! ये तन्मात्राएँ अत्यन्त सूक्ष्म हैं॥ २७—२९॥

द्रव्यशक्तिसे युक्त इन दसों (पाँच तन्मात्राओं तथा उनके पाँच गुणों)-से मिलकर तामस अहंकारकी अनुवृत्तिसे सृष्टिकी रचना होती है॥ ३०॥

अब राजसी क्रियाशक्तिसे उत्पन्न होनेवाली इन्द्रियोंके विषयमें मुझसे सुनिये। श्रोत्र, त्वचा, रसना, नेत्र और नासिका—ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा वाणी, हाथ, पैर, गुदा और गुह्यांग—ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ उससे उत्पन्न हैं। प्राण, अपान, व्यान, समान तथा उदान—ये पाँच वायु होती हैं। इन पन्द्रह (पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच वायु)-से मिलकर होनेवाली सृष्टि राजसी सृष्टि कही जाती है। ये सभी साधन क्रियाशक्तिसे सदा युक्त रहते हैं और इनके उपादानकारणको चित्-अनुवृत्ति कहा जाता है॥ ३१—३४॥

दिशाएँ, वायु, सूर्य, वरुण और दोनों अश्विनीकुमार ज्ञानशक्तिसे युक्त हैं और ये सात्त्विक अहंकारसे उत्पन्न हुए हैं। पाँचों ज्ञानेन्द्रियोंके ये ही पाँच अधिष्ठातृदेवता हैं। इसी प्रकार बुद्धि आदि अन्तःकरणचतुष्टयके चन्द्रमा, ब्रह्मा, रुद्र तथा क्षेत्रज्ञ—ये अधिदेव हैं। ये चारों अधिष्ठातृदेवता कहे गये हैं। मनसहित ये सब पन्द्रह होते हैं। यह सात्त्विक अहंकारकी सृष्टि है और 'सात्त्विकी सृष्टि' कही गयी है॥ ३५—३८॥

स्थूल और सूक्ष्मभेदसे परमात्माके दो रूप होते हैं, उनमें ज्ञानरूप निराकारस्वरूप सबका कारण कहा गया है॥ ३९॥

साधकके ध्यान आदि कार्योंके लिये परमात्माके स्थूल रूपकी उपासना कही गयी है। यह उस परमपुरुषका सूक्ष्म शरीर ही बताया गया है॥ ४०॥

मेरा यह शरीर सूत्रसंज्ञक है। अब मैं उस परब्रह्म परमात्माके स्थूल विराट् स्वरूपका वर्णन करूँगा। हे नारद! आप उसे सुनें, जिसे सावधानीसे सुनकर मनुष्य मुक्त हो जाता है। इसके पहले मैंने गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द—इन पंच तन्मात्राओं तथा पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश—इन सूक्ष्म पंच महाभूतोंका वर्णन विस्तारसे कर दिया है॥ ४१-४२॥

उन्हीं पाँचोंको मिलाकर पंचीकरणकी क्रियासे परमात्माने पंचभूतमय देहकी सृष्टि की है। अब मैं पंचीकरणका भेद बता रहा हूँ, ध्यान देकर सुनिये—॥ ४३॥

सबसे पहले रसरूप तन्मात्राका मनमें निश्चय करके जिस स्थूल रूपमें जल होता है, वैसी ही उसकी दो अंशोंमें भावना करे॥ ४४॥

उसी प्रकार अवशिष्ट चार भूतोंके भी दो-दो भाग करके, उसमेंसे आधे भागको पृथक् कर ले। शेष आधे अंशको चार प्रकारसे अलग करके आधे भागसे रहित उन अंशोंमें मिला दे। रस तन्मात्राको आधे भाग जलमें मिलाकर

अवशिष्टभूत तन्मात्राके आधेको चारों भागोंमें मिश्रितकर दे। ऐसा करनेसे जब रसमय स्थूल जल हो जाय तब अन्य चार भूतोंके पंचीकरणका विभाग करे। उन पंचीकृत पंचभूतोंमें अधिष्ठानताके कारण उनके प्रतिबिम्बरूपसे जब चैतन्य प्रविष्ट हो जाता है, तब उस पंचभूतात्मक शरीरमें 'अहम्' भावरूप संशय उत्पन्न हो जाता है। वह संशय स्पष्टरूपसे जब भासित होने लगता है, तब उस स्थूल शरीरमें देहाभिमानके साथ चैतन्य जाग्रत् होने लगता है, वही दिव्य चैतन्य आदिनारायण भगवान्, परमात्मा आदि नामोंसे पुकारा जाता है॥ ४५—४७॥

इस प्रकार पंचीकरणसे सभी भूतोंका विभाग स्पष्ट हो जाने पर आकाश आदि सभी पंचभूत पूर्वोक्त तन्मात्राओंके कारण अपने-अपने विशेष गुणोंसे वृद्धिको प्राप्त होते हैं और एक-एक गुणकी वृद्धिसे एक-एक भूत उत्पन्न हो जाता है॥ ४८॥

आकाशका केवल एकमात्र गुण शब्द है, दूसरा नहीं। वायुके शब्द और स्पर्श—ये दो गुण कहे गये हैं। शब्द, स्पर्श और रूप—ये तीन गुण अग्निके हैं। शब्द, स्पर्श, रूप और रस—ये चार गुण जलके हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ये पाँच गुण पृथ्वीके हैं। इस प्रकार इन पंचीकृत महाभूतोंके योगसे ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति कही जाती है। ब्रह्माण्डके अंशसे उत्पन्न सभी जीवोंको मिलाकर चौरासी लाख जीव-योनियाँ कही गयी हैं॥ ४९—५२॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत तृतीय स्कन्धका 'तत्त्वनिरूपणवर्णन' नामक सातवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ७॥

आठवाँ अध्याय

सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुणका वर्णन

ब्रह्माजी बोले—हे तात! आपने जो मुझसे पूछा था, वह सृष्टिका वर्णन मैंने कर दिया। अब गुणोंका स्वरूप कहता हूँ, उसे एकाग्रचित्त होकर सुनो॥ १॥

सत्त्वगुणको प्रीतिस्वरूप समझना चाहिये, वह प्रीति सुखसे उत्पन्न होती है। सरलता, सत्य, शौच, श्रद्धा, क्षमा, धैर्य, कृपा, लज्जा, शान्ति और सन्तोष—इन लक्षणोंसे सदैव निश्चल सत्त्वगुणकी प्रतीति होती है॥ २-३॥

सत्त्वगुणका वर्ण श्वेत है, यह सर्वदा धर्मके प्रति प्रीति उत्पन्न करता है, सत्-श्रद्धाका आविर्भाव करता है तथा असत्-श्रद्धाको समाप्त करता है॥ ४॥

तत्त्वदर्शी मुनियोंने तीन प्रकारकी श्रद्धा बतलायी है—सात्त्विकी, राजसी एवं तीसरी तामसी॥ ५॥

रजोगुण रक्तवर्णवाला कहा गया है। यह आश्चर्य एवं अप्रीतिको उत्पन्न करता है। दु:खसे योगके कारण ही निश्चितरूपसे अप्रीति उत्पन्न होती है॥ ६॥

जहाँ ईर्ष्या, द्रोह, मत्सर, स्तम्भन, उत्कण्ठा एवं निद्रा होती है, वहाँ राजसी श्रद्धा रहती है॥ ७॥

अभिमान, मद और गर्व—ये सब भी राजसी श्रद्धासे ही उत्पन्न होते हैं। अत: विद्वान् मनुष्योंको चाहिये कि वे इन लक्षणोंद्वारा राजसी श्रद्धा समझ लें॥ ८॥

तमोगुणका वर्ण कृष्ण होता है। यह मोह और विषाद उत्पन्न करता है। आलस्य, अज्ञान, निद्रा, दीनता, भय, विवाद, कायरता, कुटिलता, क्रोध, विषमता, अत्यन्त नास्तिकता और दूसरोंके दोषको देखनेका स्वभाव—ये तामसिक श्रद्धाके लक्षण हैं। पण्डितजन इन लक्षणोंसे तामसी श्रद्धा जान लें; तामसी श्रद्धासे युक्त ये सभी लक्षण परपीड़ादायक हैं॥ ९—११॥

आत्मकल्याणकी इच्छा रखनेवालेको अपनेमें निरन्तर सत्त्वगुणका विकास करना चाहिये, रजोगुणपर नियन्त्रण रखना चाहिये तथा तमोगुणका नाश कर डालना चाहिये॥ १२॥

ये तीनों गुण एक-दूसरेका उत्कर्ष होनेकी दशामें परस्पर विरोध करने लगते हैं। ये सब एक-दूसरेके आश्रित हैं, निराश्रय होकर नहीं रहते॥ १३॥

सत्त्वगुण, रजोगुण तथा तमोगुणमेंसे कोई एक अकेला कभी नहीं रह सकता; ये सभी सदैव मिलकर रहते

हैं, इसीलिये ये अन्योन्याश्रय सम्बन्धवाले कहे गये हैं॥ १४॥

हे नारद! ध्यानसे सुनिये, अब मैं इनके अन्योन्याश्रय-सम्बन्धसे होनेवाले विस्तारका वर्णन करता हूँ, जिसे जानकर मनुष्य भव-बन्धनसे छुटकारा प्राप्त कर लेता है। इसमें आपको किसी प्रकारका सन्देह नहीं करना चाहिये। सम्यक् प्रकारसे जानकर ही मैंने यह बात कही है। मैंने पहले इसे जाना, तत्पश्चात् इसका अनुभव किया और पुनः परिणाम देखकर इसका परिज्ञान प्राप्त किया है॥ १५-१६॥

हे महामते! मात्र देख लेने, सुन लेने अथवा संस्कारजनित अपने अनुभवसे ही किसी भी वस्तुका तत्काल परिज्ञान नहीं हो जाता॥ १७॥

जैसे किसी पवित्र तीर्थके विषयमें सुनकर किसी व्यक्तिके हृदयमें राजसी श्रद्धा उत्पन्न हो गयी और वह उस तीर्थमें चला गया। वहाँ पहुँचकर उसने वही देखा जैसा पहले सुना था। उस तीर्थमें उसने स्नान करके तीर्थकृत्य किया और राजसी दान भी किया। रजोगुणसे युक्त रहकर उस व्यक्तिने कुछ समयतक वहाँ तीर्थवास भी किया। किंतु ऐसा करके भी वह राग-द्वेषसे मुक्त नहीं हो पाया और काम-क्रोध आदि विकारोंसे आच्छादित ही रहा। पुनः अपने घर लौट आया और वह पूर्वकी भाँति वैसे ही रहने लगा॥ १८—२०॥

हे मुनीश्वर! उस व्यक्तिने तीर्थकी महिमा तो सुनी थी, किंतु उसका सम्यक् अनुभव नहीं किया। इसी कारण उसे तीर्थयात्राका कोई फल नहीं प्राप्त हुआ। अतः हे नारद! उसका सुनना न सुननेके बराबर समझें॥ २१॥

हे मुनिश्रेष्ठ! आप यह जान लें कि तीर्थयात्राका फल पापसे छुटकारा प्राप्त करना है; यह वैसे ही है जैसे संसारमें कृषिका फल उत्पादित अन्नका भोजन ही है॥ २२॥

जो काम, क्रोध, लोभ, मोह, तृष्णा, द्वेष, राग, मद, परदोषदर्शन, ईर्ष्या, सहनशीलताका अभाव और अशान्ति आदि हैं, वे पापमय शरीरके विकार हैं। हे नारद! जबतक ये पाप शरीरसे नहीं निकलते, तबतक मनुष्य पापी ही रहता है॥ २३-२४॥

तीर्थयात्रा करनेपर भी यदि ये पाप देहसे नहीं निकले तो तीर्थाटन करनेका वह परिश्रम उसी प्रकार व्यर्थ है, जैसे किसी किसानका। उस किसानने परिश्रमपूर्वक खेतको खोदा, अत्यन्त कठोर भूमिको जोता, उसमें महँगा बीज बोया और अन्य आवश्यक कार्य किये तथा फलप्राप्तिकी इच्छासे उसकी रक्षाके लिये दिन-रात अनेक कष्ट सहे, किंतु फल लगनेका समय हेमन्त-काल आनेपर वह सो गया, जिससे व्याघ्र आदि वन्य जन्तुओं तथा टिड्डियोंने उस फसलको खा लिया और अन्तमें वह किसान सर्वथा निराश हो गया। उसी प्रकार हे पुत्र! तीर्थमें किया गया वह श्रम भी कष्टदायक ही सिद्ध होता है, उसका कोई फल नहीं मिलता॥ २५—२८॥

हे नारद! शास्त्रके अवलोकनसे सत्त्वगुण समुन्नत होता है तथा बड़ी तेजीसे बढ़ता है। उसका फल यह होता है कि तामस पदार्थोंके प्रति वैराग्य हो जाता है॥ २९॥

वह सत्त्वगुण रज और तम—इन दोनोंको बलपूर्वक दबा देता है, लोभके कारण रजोगुण अत्यन्त तीव्र हो जाता है, वह बढ़ा हुआ रजोगुण सत्त्व तथा तम—इन दोनोंको दबा देता है। उसी प्रकार तमोगुण मोहके कारण तीव्रताको प्राप्त होकर सत्त्वगुण तथा रजोगुण—इन दोनोंको दबा देता है। ये गुण जिस प्रकार एक-दूसरेको दबाते हैं? उसे मैं यहाँपर विस्तारपूर्वक कह रहा हूँ॥ ३०—३२॥

जब सत्त्वगुण बढ़ता है, उस समय बुद्धि धर्ममें स्थित रहती है। उस समय वह रजोगुण या तमोगुणसे उत्पन्न बाह्य विषयोंका चिन्तन नहीं करती है॥ ३३॥

उस समय बुद्धि सत्त्वगुणसे उत्पन्न होनेवाले कार्यको अपनाती है; इसके अतिरिक्त वह अन्य कार्योंमें नहीं फँसती। बुद्धि बिना प्रयासके ही धर्म तथा यज्ञादि कर्ममें प्रवृत्त हो जाती है। मोक्षकी अभिलाषासे मनुष्य उस समय सात्त्विक पदार्थोंके भोगमें प्रवृत्त रहता है; वह राजसी भोगोंमें लिप्त नहीं होता, तब भला वह तमोगुणी कार्योंमें क्यों लगेगा?॥ ३४-३५॥

इस प्रकार पहले रजोगुणको जीत करके वह तमोगुणको पराजित करता है। हे तात! उस समय एकमात्र विशुद्ध सत्त्वगुण ही स्थित रहता है॥ ३६॥

जब मनुष्यके मनमें रजोगुणकी वृद्धि होती है, तब वह सनातन धर्मोंको त्यागकर राजसी श्रद्धाके वशीभूत हो विपरीत धर्माचरण करने लगता है॥ ३७॥

रजोगुण बढ़नेसे धनकी वृद्धि होती है और भोग भी राजसी हो जाता है। उस दशामें सत्त्वगुण दूर चला जाता है और उससे तमोगुण भी दब जाता है॥ ३८॥

जब तमोगुणकी वृद्धि होती है और वह उत्कट हो जाता है, तब वेद तथा धर्मशास्त्रमें विश्वास नहीं रह जाता। उस समय मनुष्य तामसी श्रद्धा प्राप्त करके धनका दुरुपयोग करता है, सबसे द्रोह करने लगता है तथा उसे शान्ति नहीं मिलती। वह क्रोधी, दुर्बुद्धि तथा दुष्ट मनुष्य सत्त्व तथा रजोगुणको दबाकर अनेकविध तामसिक विचारोंमें लीन रहता हुआ मनमाना आचरण करने लगता है॥ ३९—४१॥

किसी भी प्राणीमें सत्त्वगुण, रजोगुण तथा तमोगुण अकेले नहीं रहते; अपितु मिश्रित धर्मवाले वे तीनों गुण एक-दूसरेके आश्रयीभूत होकर रहते हैं॥ ४२॥

हे पुरुषश्रेष्ठ! रजोगुणके बिना सत्त्वगुण और सत्त्वगुणके बिना रजोगुण कदापि रह नहीं सकते। इसी प्रकार तमोगुणके बिना ये दोनों गुण नहीं रह सकते। इस प्रकार ये गुण परस्पर स्थित रहते हैं। सत्त्वगुण तथा रजोगुणके बिना तमोगुण नहीं रहता; क्योंकि इन मिश्रित धर्मवाले सभी गुणोंकी स्थिति कार्य-कारण-भावसे विभिन्न प्रकारकी होती है॥ ४३-४४॥

ये सभी गुण अन्योन्याश्रयभावसे विद्यमान रहते हैं, अलग-अलग भावसे नहीं। प्रसवधर्मी होनेके कारण ये एक-दूसरेके उत्पादक भी होते हैं॥ ४५॥

सत्त्वगुण कभी रजोगुणको और कभी तमोगुणको उत्पन्न करता है; इसी तरह रजोगुण कभी सत्त्वगुणको तथा कभी तमोगुणको उत्पन्न करता है। इसी प्रकार तमोगुण कभी सत्त्वगुणको एवं कभी रजोगुणको भी उत्पन्न करता है। ये तीनों गुण आपसमें एक-दूसरेको उसी प्रकार उत्पन्न कर देते हैं, जिस प्रकार मिट्टीका लोंदा घड़ेको उत्पन्न कर देता है॥ ४६-४७॥

मनुष्योंकी बुद्धिमें स्थित ये तीनों गुण परस्पर कामनाओंको उसी प्रकार जाग्रत् करते हैं; जैसे देवदत्त, विष्णुमित्र और यज्ञदत्त आदि मिलकर काम करते हैं॥ ४८॥

जिस प्रकार स्त्री और पुरुष आपसमें मिथुन-भावको प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार ये तीनों गुण परस्पर युग्म-भावको प्राप्त रहते हैं॥ ४९॥

रजोगुणका युग्म-भाव होनेपर सत्त्वगुण, सत्त्वगुणका युग्म-भाव होनेपर रजोगुण और तमोगुणके युग्म-भावसे सत्त्वगुण तथा रजोगुण—ये दोनों उत्पन्न होते हैं—ऐसा कहा गया है॥ ५०॥

नारदजी बोले—इस प्रकार पिताजीने तीनों गुणोंके अत्युत्तम स्वरूपका वर्णन किया। इसे सुननेके पश्चात् मैंने पुनः पितामह ब्रह्माजीसे पूछा॥ ५१॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत तृतीय स्कन्धका 'गुणोंका रूपसंस्थानादिवर्णन' नामक आठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ८॥

नौवाँ अध्याय

गुणोंके परस्पर मिश्रीभावका वर्णन, देवीके बीजमन्त्रकी महिमा

नारदजी बोले—हे तात! आपने गुणोंके लक्षणोंका वर्णन किया, किंतु आपके मुखसे निःसृत वाणीरूपी मधुर रसका पान करता हुआ मैं अभी भी तृप्त नहीं हुआ हूँ॥ १॥

अतएव अब आप इन गुणोंके सूक्ष्म ज्ञानका यथावत् वर्णन कीजिये, जिससे मैं अपने हृदयमें परम शान्तिका अनुभव कर सकूँ॥ २॥

व्यासजी बोले—अपने पुत्र महात्मा नारदके इस प्रकार पूछनेपर रजोगुणसे आविर्भूत सृष्टि-निर्माता ब्रह्माजीने कहा॥ ३॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! सुनिये, अब मैं गुणोंका विस्तृत वर्णन करूँगा; यद्यपि मैं इस विषयमें सम्यक् ज्ञान नहीं रखता फिर भी अपनी बुद्धिके अनुसार आपसे वर्णन कर रहा हूँ॥ ४॥

केवल सत्त्वगुण कहीं भी परिलक्षित नहीं होता है। गुणोंका परस्पर मिश्रीभाव होनेके कारण वह सत्त्वगुण भी मिश्रित दिखायी देता है॥ ५॥

जिस प्रकार सब भूषणोंसे विभूषित तथा हाव-भावसे युक्त कोई सुन्दरी स्त्री अपने पतिको विशेष प्रिय होती है तथा माता-पिता एवं बन्धु-बान्धवोंके लिये भी प्रीतिकर होती है, किंतु वही स्त्री अपनी सौतोंके मनमें दु:ख और मोह उत्पन्न करती है। इसी प्रकार सत्त्वगुणके स्त्रीभावापन्न होनेपर रजोगुण और तमोगुणसे मिलनेपर भिन्न वृत्ति उत्पन्न होती है। ऐसे ही रजोगुण तथा तमोगुणके स्त्रीभावापन्न होनेपर एक-दूसरेके परस्पर संयोगके कारण विपरीत भावना प्रतीत होती है॥ ६—९॥

हे नारद! यदि ये तीनों गुण परस्पर मिश्रित न होते तो उनके स्वभावमें एक-सी ही प्रवृत्ति रहती, किंतु तीनों गुणोंमें मिश्रण होनेके कारण ही विभिन्नताएँ दिखायी देती हैं॥ १०॥

जैसे कोई रूपवती स्त्री यौवन, लज्जा, माधुर्य तथा विनयसे युक्त हो, साथ ही वह धर्मशास्त्रके अनुकूल हो तथा कामशास्त्रको जाननेवाली हो, तो वह अपने पतिके लिये प्रीतिकर होती है; किंतु सौतोंके लिये कष्ट देनेवाली होती है॥ ११-१२॥

[सौतोंके लिये] मोह तथा दु:ख देनेवाली होनेपर भी कुछ लोगोंके द्वारा वह सत्त्वगुणी कही जाती है और सत्त्वगुणके अनेक शुभ कार्य करनेपर भी वह सौतोंको विपरीत भाववाली प्रतीत होती है॥ १३॥

जैसे राजाकी सेना चोरोंसे पीड़ित सज्जनोंके लिये सुख देनेवाली होती है, किंतु वही सेना चोरोंके लिये दु:खदायिनी, मूढ़ तथा गुणहीन होती है॥ १४॥

इससे प्रकट होता है कि स्वाभाविक गुण भी विपरीत लक्षणोंवाले दीख पड़ते हैं। जैसे किसी दिन जब चारों ओर काले-काले मेघ घिर आये हों, बिजली चमक रही हो, मेघ गरज रहे हों, अन्धकारसे आच्छादित हो और घनघोर वर्षाके कारण सूखी भूमि सिंच रही हो, तब भी लोग उसे तमोरूप गाढ़ान्धकारसे व्याप्त दुर्दिन नामसे ही पुकारते हैं। एक ओर वही दुर्दिन किसानोंको खेत जोतने तथा बीज बोनेकी सुविधा देनेके कारण सुखदायी प्रतीत होता है, किंतु दूसरी ओर वही दुर्दिन उन अभागे गृहस्थोंके लिये दु:खदायी हो जाता है, जिनके घर अभी छाये नहीं जा सके हैं और जो तृण, काष्ठ आदिके संग्रहमें व्यस्त हैं। साथ ही वही दुर्दिन उन स्त्रियोंके हृदयमें शोक उत्पन्न करता है, जिनके पति परदेश गये हों। उसी प्रकार ये सत्त्वादि गुण अपनी स्वाभाविक परिस्थितिमें रहते हुए भी अन्य गुणोंसे मिलनेपर विपरीत दृष्टिगोचर होते हैं॥ १५—१९॥

हे पुत्र! अब मैं उन गुणोंके लक्षण पुन: बता रहा हूँ; सुनो। सत्त्वगुण सूक्ष्म, प्रकाशक, स्वच्छ, निर्मल एवं व्यापक होता है। जब मानवके सम्पूर्ण अंग और नेत्र आदि इन्द्रियाँ हल्के हों, मन निर्मल हो तथा वह उन राजस एवं तामस विषयोंको न ग्रहण करता हो, तब यह समझ लेना चाहिये कि शरीरमें अब सत्त्वगुण प्रधानरूपसे विद्यमान है। जब जिस किसीकी देहमें रजोगुण प्रधानरूपसे विद्यमान रहता है तब यह बार-बार जम्हाई, स्तम्भन, तन्द्रा तथा चंचलता उत्पन्न करता है। इसी प्रकार जब अत्यन्त कलह करनेका मन चाहता हो, अन्यत्र जानेकी इच्छा हो, चित्त चंचल हो और वाद-विवादमें उलझनेकी प्रवृत्ति हो, मनमें काम-भावनाका गहरा परदा पड़ जाय, तब यह समझ ले कि शरीरमें तमोगुणकी प्रधानता है। उस समय शरीरके अंग भारी हो जाते हैं, इन्द्रियाँ तामसिक भावोंके वशीभूत रहती हैं, चित्त विमूढ़ रहता है और वह निद्राकी इच्छा नहीं करता। हे नारद! इस प्रकार सभी गुणोंके लक्षण समझना चाहिये॥ २०—२५ $^{१}/_{२}$॥

नारदजी बोले—हे पितामह! आपने तीनों गुणोंको

भिन्न-भिन्न लक्षणोंवाला बताया, तो फिर ये एक स्थानमें होकर निरन्तर कार्य कैसे करते हैं? विपरीत होते हुए भी शत्रुरूप ये गुण एकत्र होकर परस्पर मिल करके किस प्रकार कार्य करते हैं; यह मुझे बताइये॥ २६-२७½ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे पुत्र! सुनो, मैं बताता हूँ। उन तीनों गुणोंका स्वभाव दीपकके समान है। जैसे दीपकमें तेल, बत्ती और अग्निशिखा तीनों परस्पर विरोधी धर्मवाले हैं, परंतु तीनोंके सहयोगसे ही दीपक वस्तुओं आदिका दर्शन कराता है। यद्यपि आगके साथ मिला हुआ तेल आगका विरोधी है और तेल बत्ती तथा अग्निका विरोधी है तथापि वे एकत्र होकर वस्तुओंका दर्शन कराते हैं॥ २८—३०½ ॥

नारदजी बोले—हे सत्यवतीसुत व्यासजी! ये सत्त्वादि तीनों गुण भी प्रकृतिसे उत्पन्न कहे गये हैं और ये जगत्के कारण हैं, जैसा मैंने पहले भी सुना है॥ ३१½ ॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] इस प्रकार नारदजीने विस्तारपूर्वक गुणोंके लक्षण और उनके विभागोंके सहित कार्योंको भी मुझे बतलाया है। सर्वदा उन्हीं परमशक्तिकी आराधना करनी चाहिये, जिनसे यह समस्त संसार व्याप्त है। वे भगवती कार्यभेदसे सगुणा और निर्गुणा दोनों हैं। वह परमपुरुष तो अकर्ता, पूर्ण, नि:स्पृह तथा परम अविनाशी है; ये महामाया ही सत् और असद्रूप जगत्की रचना करती हैं। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य, चन्द्र, इन्द्र, दोनों अश्विनीकुमार, आठों वसु, विश्वकर्मा, कुबेर, वरुण, अग्नि, वायु, पूषा, कुमार कार्तिकेय और गणपति—ये सभी देवता उन्हीं महामायाकी शक्तिसे युक्त होकर अपने-अपने कार्य करनेमें समर्थ होते हैं। हे मुनीश्वरो! यदि ऐसा न हो तो वे हिलने-डुलनेमें भी समर्थ नहीं हो सकते॥ ३२—३७॥

हे राजन्! वे परमेश्वरी ही इस जगत्की परम कारण हैं, अत: हे नरपते! अब आप उन्हींकी आराधना करें, उन्हींका यज्ञ करें और परम भक्तिके साथ विधिवत् उन्हींका पूजन करें। वे ही महालक्ष्मी, महाकाली एवं महासरस्वती हैं। वे सब जीवोंकी अधीश्वरी, समस्त कारणोंकी एकमात्र कारण, सभी मनोरथोंको पूर्ण करनेवाली, शान्तस्वरूपिणी, सुखपूर्वक सेवनीय तथा दयासे परिपूर्ण हैं॥ ३८—४०॥

ये भगवती नामोच्चारणमात्रसे ही मनोवांछित फल देनेवाली हैं। पूर्वकालमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवताओं तथा मोक्षकी कामना करनेवाले अनेक जितेन्द्रिय तपस्वियोंने उनकी आराधना की थी। किसी प्रसंगवश अस्पष्टरूपसे ही उच्चारित किया गया उनका नाम सर्वथा दुर्लभ मनोरथोंको भी पूर्ण कर देता है॥ ४१—४२½ ॥

हे नृपश्रेष्ठ! इस सम्बन्धमें एक दृष्टान्त है—सत्यव्रत नामके एक मुनिने वनमें व्याघ्रादि हिंसक पशुओंको देखकर भयसे पीड़ित होकर 'ऐ-ऐ' शब्दका उच्चारण किया था। उस बिन्दुरहित बीजमन्त्र (ऐं)-का उच्चारण करनेके फलस्वरूप उसे भगवतीने मनोवांछित फल प्रदान कर दिया था। यह दृष्टान्त हम पुण्यात्मा मुनियोंके लिये प्रत्यक्ष ही है॥ ४३—४४॥

हे राजन्! ब्राह्मणोंकी सभामें विद्वानोंके द्वारा उदाहरणके रूपमें उस सत्यव्रतके कहे जाते हुए सम्पूर्ण आख्यानको मैंने विस्तारपूर्वक सुना था। सत्यव्रत नामवाले उस निरक्षर तथा महामूर्ख ब्राह्मणने वह 'ऐ-ऐ' शब्द एक कोलके मुखसे सुनकर स्वयं भी उसका उच्चारण किया। बिन्दुरहित 'ऐं' बीजका उच्चारण करनेसे भी वह श्रेष्ठ विद्वान् हो गया। ऐकारके उच्चारणमात्रसे भगवती प्रसन्न हो गयीं और दयार्द्र होकर उन परमेश्वरीने उसे कविराज बना दिया॥ ४५—४८॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत तृतीय स्कन्धका 'गुणपरिज्ञानवर्णन' नामक नौवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ९ ॥

दसवाँ अध्याय

देवीके बीजमन्त्रकी महिमाके प्रसंगमें सत्यव्रतका आख्यान

जनमेजय बोले—वह द्विजश्रेष्ठ सत्यव्रत नामक ब्राह्मण कौन था, वह किस देशमें पैदा हुआ था तथा कैसा था? यह मुझे बताइये॥ १॥

उस ब्राह्मणने 'ऐ' शब्द कैसे सुना और फिर स्वयं भी कैसे उसका उच्चारण किया? उच्चारण करते ही उसी क्षण उस ब्राह्मणको कैसी सिद्धि प्राप्त हुई? सर्वत्र विराजमान रहनेवाली तथा सब कुछ जाननेवाली वे भवानी उसपर किस प्रकार प्रसन्न हो गयीं? अब आप यह मनोरम कथा विस्तारपूर्वक मुझसे कहिये॥ २-३॥

सूतजी बोले—राजा जनमेजयके यह पूछनेपर सत्यवतीसुत व्यासजी सरस, पवित्र एवं परम उदार वचन कहने लगे॥ ४॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! सुनिये, मैं वह पवित्र पौराणिक कथा कह रहा हूँ। हे कुरुनन्दन! पूर्वकालमें मुनियोंके समाजमें मैंने यह कथा सुनी थी॥ ५॥

हे कुरुश्रेष्ठ! एक बार तीर्थाटन करता हुआ मैं मुनियोंद्वारा सेवित पवित्र क्षेत्र नैमिषारण्यमें जा पहुँचा। वहाँ सभी मुनियोंको प्रणाम करके मैं एक उत्तम आश्रममें ठहर गया, जहाँ ब्रह्माके पुत्र महाव्रती एवं जीवन्मुक्त मुनि निवास कर रहे थे॥ ६-७॥

उस ब्राह्मणसमाजमें कथाका ही प्रसंग चल रहा था। सभामें उपस्थित महर्षि जमदग्निने सब मुनियोंसे यह पूछा—॥ ८॥

जमदग्नि बोले—हे महाभाग तपस्वियो! मेरे मनमें एक शंका है। निश्चय ही इस मुनिसमाजमें मैं शंकारहित हो जाऊँगा। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र, वरुण, अग्नि, कुबेर, वायु, विश्वकर्मा, कार्तिकेय, गणेश, सूर्य, दोनों अश्विनीकुमार, भग, पूषा, चन्द्रमा और सभी ग्रह—इन सबमें सबसे अधिक आराधनीय तथा अभीष्ट फल प्रदान करनेवाला कौन है? उनमें कौन देवता सदा सेव्य और शीघ्र प्रसन्न होनेवाला है? हे मानद! हे सर्वज्ञ! हे व्रतधारी मुनिगण! आप हमें शीघ्र बतायें॥ ९—१२॥

इस प्रकार जमदग्निके प्रश्न करनेपर लोमशऋषिने कहा—हे जमदग्ने! आपने इस समय जो पूछा है, उसे सुनिये। अपने कल्याणकी इच्छा रखनेवाले सभी लोगोंके लिये वे एकमात्र महाशक्ति ही आराधनीय हैं। वे ही परा-प्रकृति आदिस्वरूपा, सर्वगामिनी, सर्वदायिनी और कल्याणकारिणी हैं। वे ही ब्रह्मा आदि श्रेष्ठ देवताओंकी जननी हैं और वे ही संसाररूपी वृक्षकी मूलरूपिणी आदिप्रकृति हैं॥ १३—१५॥

वे भगवती केवल नामका उच्चारण तथा स्मरण करते ही निश्चितरूपसे अभीष्ट फल प्रदान करती हैं। जो लोग उनकी उपासना करते हैं, उन्हें वरदान देनेके लिये वे सर्वदा दयालुचित्त रहती हैं॥ १६॥

हे मुनिगण! उनके नामाक्षरके उच्चारणमात्रसे ही एक ब्राह्मणने जिस प्रकार सिद्धि प्राप्त की थी, वह पवित्र वृत्तान्त मैं आपलोगोंसे कहता हूँ, सुनिये—॥ १७॥

कोसलदेशमें देवदत्त नामक एक विद्वान् ब्राह्मण रहता था। वह नि:सन्तान था, इसलिये उसने पुत्रप्राप्तिके लिये विधिपूर्वक यज्ञ किया॥ १८॥

तमसानदीके तटपर पहुँचकर उसने उत्तम यज्ञ-मण्डप बनवाया और वेदज्ञ तथा यज्ञकर्ममें निपुण ब्राह्मणोंको आमन्त्रित करके विधिपूर्वक यज्ञवेदी बनवाकर तथा अग्नि-स्थापन करके उस श्रेष्ठ ब्राह्मणने विधिवत् पुत्रेष्टि यज्ञ आरम्भ कर दिया॥ १९-२०॥

उसने उस यज्ञमें मुनिवर सुहोत्रको 'ब्रह्मा', याज्ञवल्क्यको 'अध्वर्यु' तथा बृहस्पतिको 'होता', पैलमुनिको 'प्रस्तोता' तथा गोभिलको 'उद्गाता' बनाया एवं अन्यान्य उपस्थित मुनियोंको यज्ञका सभासद् बनाकर उन्हें विधिवत् प्रचुर धन प्रदान किया॥ २१-२२॥

सामवेदका गान करनेवाले श्रेष्ठ उद्गाता गोभिलमुनि सातों स्वरोंसे युक्त तथा स्वरितसे समन्वित रथन्तर सामका गान करने लगे॥ २३॥

बार-बार श्वास लेनेके कारण गोभिलका स्वर भंग हो गया। तब देवदत्तको क्रोध आ गया और उसने तुरंत

गोभिलमुनिसे कहा—हे मुनिमुख्य! तुम मूर्ख हो, तुमने आज मेरेद्वारा पुत्रप्राप्तिके लिये किये जाते हुए इस काम्यकर्ममें स्वरभंग कर दिया॥ २४-२५॥

तब गोभिलमुनि अत्यन्त क्रोधित होकर देवदत्तसे कहने लगे—[इस यज्ञके फलस्वरूप उत्पन्न होनेवाला] तुम्हारा पुत्र मूर्ख, शठ और गूँगा होगा। हे महामते! सभी प्राणियोंके शरीरमें श्वास आता-जाता रहता है। इसे रोक

पाना बड़ा कठिन है। अत: ऐसी स्थितिमें स्वरभंग हो जानेमें मेरा कुछ भी दोष नहीं है॥ २६-२७॥

महात्मा गोभिलका यह वचन सुनकर शापसे भयभीत देवदत्तने अत्यन्त दु:खी होकर उनसे कहा—हे विप्रवर! आप मुझ निर्दोषपर व्यर्थ ही क्यों क्रुद्ध हैं? मुनिलोग तो सदा क्रोधरहित और सुखदायक होते हैं॥ २८-२९॥

हे विप्र! थोड़ेसे अपराधपर आपने मुझे शाप क्यों दे दिया? पुत्रहीन होनेके कारण मैं तो पहलेसे ही बहुत दु:खी था, उसपर भी शाप देकर आपने मुझे और भी दु:खी कर दिया। वेदके विद्वानोंने कहा है कि मूर्ख पुत्रकी अपेक्षा पुत्रहीन रहना अच्छा है। उसपर भी मूर्ख ब्राह्मण तो सबके लिये निन्दनीय होता है। वह पशु एवं शूद्रके समान सभी कार्योंमें अयोग्य माना जाता है। अत: हे विप्रवर! मूर्ख पुत्रको लेकर मैं क्या करूँगा?॥ ३०—३२॥

मूर्ख ब्राह्मण शूद्रतुल्य होता है; इसमें सन्देह नहीं है; क्योंकि वह न तो पूजाके योग्य होता है और न दान लेनेका पात्र ही होता है। वह सब कार्योंमें निन्द्य होता है॥ ३३॥

किसी देशमें रहता हुआ वेदशास्त्रविहीन ब्राह्मण कर देनेवाले शूद्रकी भाँति एक राजाके द्वारा समझा जाना चाहिये॥ ३४॥

फलकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको चाहिये कि देव तथा पितृकार्योंके अवसरपर उस मूर्ख ब्राह्मणको आसनपर न बैठाये॥ ३५॥

राजा भी वेदविहीन ब्राह्मणको शूद्रके समान समझे और उसे शुभ कार्योंमें नियुक्त न करे, बल्कि उसे कृषिके काममें लगा दे॥ ३६॥

ब्राह्मणके अभावमें कुशके चटसे स्वयं श्राद्धकार्य कर लेना ठीक है, किंतु मूर्ख ब्राह्मणसे कभी भी श्राद्धकार्य नहीं कराना चाहिये॥ ३७॥

मूर्ख ब्राह्मणको भोजनसे अधिक अन्न नहीं देना चाहिये; क्योंकि देनेवाला व्यक्ति नरकमें जाता है और लेनेवाला तो विशेषरूपसे नरकगामी होता है॥ ३८॥

उस राजाके राज्यको धिक्कार है, जिसके राज्यमें मूर्खलोग निवास करते हैं और मूर्ख ब्राह्मण भी दान, सम्मान आदिसे पूजित होते हैं, साथ ही जहाँ मूर्ख और पण्डितके बीच आसन, पूजन और दानमें रंचमात्र भी भेद नहीं माना जाता। अत: विज्ञ पुरुषको चाहिये कि वह मूर्ख और पण्डितकी जानकारी अवश्य कर ले॥ ३९-४०॥

जहाँ दान, मान तथा परिग्रहसे मूर्खलोग महान् गौरवशाली माने जाते हैं, उस देशमें पण्डितजनको किसी प्रकार भी नहीं रहना चाहिये। दुर्जन व्यक्तियोंकी सम्पत्तियाँ दुर्जनोंके उपकारके लिये ही होती हैं। जैसे अधिक फलोंसे लदे हुए नीमके वृक्षका उपभोग केवल कौए ही करते हैं॥ ४१-४२॥

वेदज्ञ ब्राह्मण जिसका अन्न खाकर वेदाभ्यास करता है, उसके पूर्वज परम प्रसन्न होकर स्वर्गमें विहार करते हैं॥ ४३॥

अतएव हे वेदज्ञोंमें श्रेष्ठ गोभिल मुने! आपने यह क्या कह दिया। इस संसारमें मूर्ख पुत्रका पिता होना तो मृत्युसे भी बढ़कर कष्टप्रद होता है॥ ४४॥

हे महाभाग! अब आप इस शापसे मेरा उद्धार करनेकी कृपा कीजिये। आप दीनोंका उद्धार करनेमें समर्थ हैं। मैं आपके पैरोंपर पड़ता हूँ॥ ४५॥

लोमश बोले—यह कहकर देवदत्त अत्यन्त दीनहृदय तथा असहाय होकर नेत्रोंमें आँसू भरकर स्तुति करता हुआ मुनिके पैरोंपर गिर पड़ा॥ ४६॥

तब उस दीनहृदय देवदत्तको देखकर गोभिल-मुनिको दया आ गयी। महात्मालोग क्षणभरके लिये ही कोप करते हैं, किंतु पापियोंका कोप कल्पपर्यन्त बना रहता है। जल स्वभावत: शीतल होता है। वही जल अग्नि तथा धूपके संयोगसे गर्म हो जाता है, किंतु पुन: उनका संयोग हटते ही वह शीघ्र शीतल हो जाता है। तब दयालु गोभिलमुनिने अत्यन्त दु:खित देवदत्तसे कहा—तुम्हारा पुत्र मूर्ख होकर भी बादमें विद्वान् हो जायगा॥ ४७—४९॥

इस प्रकार वर पा लेनेपर द्विजवर देवदत्त प्रसन्न हो गये। उन्होंने विधिवत् पुत्रेष्टि यज्ञ समाप्त करके ब्राह्मणोंको विदा किया॥ ५०॥

कुछ समय बीतनेपर देवदत्तकी पतिव्रता तथा रूपवती भार्या रोहिणी जो रोहिणीके समान शुभ लक्षणोंवाली थी, उसने यथासमय गर्भधारण किया॥ ५१॥

देवदत्तने विधि-विधानके साथ गर्भाधान आदि कर्म किये। तत्पश्चात् पुंसवन, शृंगारकरण तथा सीमन्तोन्नयन-संस्कार वेद-विधिके साथ सम्पन्न किये। उस समय अपने यज्ञको सफल जानकर प्रसन्न मनसे उन्होंने बहुत-से दान दिये॥ ५२-५३॥

रोहिणी नक्षत्रयुक्त शुभ दिनमें रोहिणीने पुत्रको जन्म दिया। देवदत्तने शुभ दिन और मुहूर्तमें नवजात शिशुका जातकर्म-संस्कार किया और पुत्रदर्शन करके यथासमय उसका नामकरण भी कर दिया। पूर्व बातोंको जाननेवाले देवदत्तने अपने पुत्रका नाम 'उतथ्य' रखा॥ ५४-५५॥

आठवें वर्षमें शुभ योग तथा शुभ दिनमें पिता देवदत्तने अपने उस पुत्रका विधिवत् उपनयन-संस्कार सम्पन्न किया॥ ५६॥

ब्रह्मचर्यव्रतमें स्थित उतथ्यको आचार्य वेद पढ़ाने लगे, किंतु वह एक शब्दका भी उच्चारण नहीं कर सका, मूढकी भाँति चुपचाप बैठा रहा॥ ५७॥

उसके पिताने उसे अनेक प्रकारसे पढ़ानेका प्रयत्न किया, किंतु उस मूर्खकी बुद्धि उस ओर प्रवृत्त नहीं होती थी। वह मूर्खके समान पड़ा रहता था। इससे उसके पिता देवदत्त उसके लिये बहुत चिन्तित हुए॥ ५८॥

इस प्रकार निरन्तर वेदाभ्यास करते हुए वह बालक बारह वर्षका हो गया, किंतु भलीभाँति सन्ध्यावन्दन करनेतककी विधि भी न जान पाया॥ ५९॥

सभी ब्राह्मणों, तपस्वियों तथा अन्यान्य लोगोंमें यह बात विस्तृतरूपसे फैल गयी कि देवदत्तका पुत्र महामूर्ख निकल गया॥ ६०॥

हे मुने! वह जहाँ कहीं जाता, लोग उसकी हँसी उड़ाते थे। यहाँतक कि उसके माता-पिता भी उस मूर्खको कोसते हुए उसकी निन्दा किया करते थे॥ ६१॥

इस प्रकार जब सभी लोग, माता-पिता तथा बन्धु-बान्धव उसकी निन्दा करने लगे, तब उस ब्राह्मणबालकके मनमें वैराग्य उत्पन्न हो गया और वह वनमें चला गया॥ ६२॥

अन्धा या पंगु पुत्र ठीक है, किंतु मूर्ख पुत्र ठीक नहीं है—माता-पिताके ऐसा कहनेपर वह वनमें चला गया॥ ६३॥

गंगाके किनारे एक उत्तम स्थानपर सुन्दर पर्णकुटी बनाकर वह वनवासीका जीवन व्यतीत करते हुए एकनिष्ठ होकर वहीं रहने लगा॥ ६४॥

'मैं असत्य नहीं बोलूँगा'—ऐसी दृढ़ प्रतिज्ञा करके ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करते हुए वह उसी सुन्दर आश्रममें रहने लगा॥ ६५॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत तृतीय स्कन्धका 'सत्यव्रताख्यानवर्णन' नामक दसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १०॥

ग्यारहवाँ अध्याय

सत्यव्रतद्वारा बिन्दुरहित सारस्वत बीजमन्त्र 'ऐ-ऐ' का उच्चारण तथा उससे प्रसन्न होकर भगवतीका सत्यव्रतको समस्त विद्याएँ प्रदान करना

लोमश बोले—[हे जमदग्ने!] वह उतथ्य वेदाध्ययन, जप, ध्यान तथा देवताओंकी आराधना आदि कुछ भी नहीं जानता था। वह ब्राह्मण आसन, प्राणायाम तथा प्रत्याहार भी नहीं जानता था। वह भूतशुद्धि तथा कारणके विषयमें भी कुछ नहीं जानता था। वह कीलक मन्त्र, जप, गायत्री नहीं जानता था। उसे सम्यक् रूपसे शौच, स्नान-विधि तथा आचमनतकका ज्ञान नहीं था। वह ब्राह्मण प्राणाग्निहोत्र, वैश्वदेव, अतिथि-सत्कार, सन्ध्या-वन्दन, समिधा तथा होम आदिके विषयमें भी नहीं जानता था॥ १—४॥

प्रात:काल उठकर वह किसी तरह सामान्य रूपसे दन्तधावन कर लेता था, तत्पश्चात् शूद्रकी भाँति बिना मन्त्र बोले ही गंगामें स्नान कर लिया करता था। दोपहरके समय वह अपनी इच्छासे वन्य फल लाकर उन्हें खा लिया करता था। उस मूर्खको भक्ष्य तथा अभक्ष्यका भी ज्ञान नहीं था॥ ५-६॥

वहाँ निवास करता हुआ वह ब्राह्मण सदैव सत्यभाषण करता था और झूठ कभी नहीं बोलता था। [उसकी इस सत्यनिष्ठासे प्रभावित होकर] लोगोंने इस ब्राह्मणका नाम 'सत्यतपा' रख दिया॥ ७॥

वह न तो कभी किसीका अहित करता था और न अविहित कार्य ही करता था। वह यही सोचता हुआ निडर होकर उस कुटीमें सोता था कि मेरी मृत्यु कब होगी? मैं इस वनमें दु:खपूर्वक जी रहा हूँ। मुझ मूर्खके जीवनको धिक्कार है, अत: अब मेरा शीघ्र मर जाना ही उत्तम है॥ ८-९॥

दैवने ही मुझे मूर्ख बनाया है, इसके अतिरिक्त कोई अन्य कारण मुझे जान नहीं पड़ता। उत्तम कुलमें जन्म-ग्रहण करके भी मैंने अपना जीवन व्यर्थ गँवा दिया॥ १०॥

जैसे रूपसम्पन्न वन्ध्या स्त्री, फलरहित वृक्ष तथा दूध न देनेवाली गाय—ये सब निरर्थक होते हैं, उसी प्रकार मैं भी निष्फल कर दिया गया हूँ॥ ११॥

मैं दैवको दोष क्यों दूँ? निश्चित रूपसे मेरा कर्म ही ऐसा था। मैंने पुस्तक लिखकर उसे किसी महात्मा ब्राह्मणको दान नहीं दिया। मैंने पूर्वजन्ममें उत्तम विद्याका भी दान नहीं किया, इसीलिये प्रारब्धवश इस जन्ममें मूर्ख और अधम ब्राह्मण हुआ हूँ। मैंने किसी तीर्थमें तप नहीं किया और न साधुओंकी सेवा ही की। धन-दानसे मैंने ब्राह्मणोंकी पूजा भी नहीं की। इसी कारण मैं ऐसा दुर्बुद्धि हुआ॥ १२—१४॥

[मेरे साथके] बहुत-से मुनिकुमार वेदशास्त्रमें पारंगत हो गये, किंतु मैं न जाने किस दुर्विपाकसे महामूर्ख रह गया॥ १५॥

मैं तप करना भी नहीं जानता, तब कौन-सी साधना करूँ? अब तो मेरा यह सब सोचना भी व्यर्थ है; क्योंकि मेरा भाग्य ही अच्छा नहीं है॥ १६॥

मैं भाग्यको ही सर्वोपरि मानता हूँ। निरर्थक पुरुषार्थको धिक्कार है; क्योंकि परिश्रमसे किया गया कार्य भी प्रारब्धवश सर्वथा विफल हो जाता है॥ १७॥

ब्रह्मा, विष्णु शिव तथा इन्द्र आदि सभी देवता भी कालके वशमें रहते हैं। इसलिये काल सर्वथा अजेय है॥ १८॥

दिन-रात इस प्रकारके अनेक तर्क-वितर्क करता हुआ वह द्विज गंगाके तटपर स्थित उस पावन आश्रममें रहता था॥ १९॥

अब वह ब्राह्मण सर्वथा विरक्त हो गया और उस निर्जन वनमें स्थित आश्रममें रहता हुआ शान्तचित्त होकर समय बिताने लगा॥ २०॥

इस प्रकार निर्मल जलवाले उस वनमें रहते हुए उस ब्राह्मणके चौदह वर्ष बीत गये; पर उसने न कोई जप किया, न आराधना की और न कोई मन्त्र ही वह जान सका, केवल उसने वनमें रहकर कालक्षेप ही किया॥ २१॥

वहाँके लोग केवल उसके इस प्रसिद्ध व्रतको जानते थे कि यह मुनि सदा सत्य बोलता है। अतः सब लोगोंमें उसका यह सुयश फैल गया कि यह सदा सत्यव्रती है और मिथ्याभाषी नहीं॥ २२॥

एक दिन आखेट करता हुआ एक महान् मूर्ख निषाद हाथोंमें धनुष-बाण लिये हुए उसी गहन वनमें आ पहुँचा। यमराजके समान शरीर तथा भीषण आकृतिवाला वह निषाद आखेट करते समय वधकार्यमें बड़ा ही कुशल जान पड़ता था॥ २३॥

उस धनुर्धारी किरातने एक सूअरको लक्ष्य करके बड़े जोरसे खींचकर बाण चलाया। तब बाणसे बिँधा हुआ वह सूअर भयभीत होकर भागता हुआ उस मुनिके समीप जा पहुँचा॥ २४॥

जब वह सूअर आश्रम-परिधिमें पहुँचा तो भयसे काँप रहा था और उसका शरीर रक्तसे लथपथ था। उस बेचारेको इस दशामें देखकर उस समय सत्यव्रतमुनि अत्यन्त दयार्द्रचित्त हो गये। रक्तसे सराबोर शरीरवाले उस आहत सूअरको अपने आगेसे जाते देखकर दयाके अतिरेकसे काँपते हुए मुनिने बिन्दुरहित सारस्वत बीजमन्त्र 'ऐ-ऐ' का उच्चारण किया॥ २५-२६॥

उन्हें इसके पूर्व न तो इस मन्त्रका ज्ञान था और न उन्होंने कभी इसे सुना ही था; दैवयोगसे ही उनके मुखसे यह मन्त्र निकल पड़ा। अब भी उन विमूढ़को नहीं मालूम था कि यह सारस्वत बीजमन्त्र है। वे महात्मा सत्यव्रतमुनि तो उस घायल सूअरके शोकमें डूबे हुए थे॥ २७॥

इसी बीच बाणकी पीड़ाके कारण अत्यन्त सन्तप्तचित्त तथा काँपते हुए शरीरवाला वह सूअर कोई दूसरा मार्ग न पाकर सत्यव्रतके आश्रममण्डलमें प्रविष्ट होकर कहीं झाड़ीमें छिप गया॥ २८॥

थोड़ी देर बाद कानतक खींचे धनुषको धारण किये हुए दूसरे कालके समान विकराल देहवाला वह निषादराज भी उस सूअरको खोजता हुआ मुनिके निकट आ पहुँचा॥ २९॥

वहाँ कुशासनपर बैठे हुए अद्वितीय सत्यव्रतमुनिको देखकर वह व्याध प्रणाम करके उनके सामने खड़ा हो गया और पूछने लगा—हे द्विजराज! वह सूअर कहाँ गया?॥ ३०॥

मैं आपके सत्यभाषणके प्रसिद्ध व्रतको जानता हूँ इसीलिये पूछता हूँ कि मेरे बाणसे घायल हुआ वह सूअर किधर गया? मेरा सारा परिवार भूखसे पीड़ित है। मैं उनकी क्षुधा-शान्तिकी इच्छासे ही यहाँ आया हूँ॥ ३१॥

हे विप्रेन्द्र! विधाताने मेरी यही जीविका निर्धारित की है। इसके अतिरिक्त मेरा दूसरा कोई साधन नहीं है, यह मैं सत्य कहता हूँ। अच्छे-बुरे किसी भी उपायसे अपने परिवारका पालन-पोषण तो निश्चितरूपसे करना ही चाहिये॥ ३२॥

आप सत्यव्रत हैं, अतः मुझे अब सच-सच बता दीजिये। मेरा सारा कुटुम्ब भूखसे व्याकुल है। अतः हे विप्र! मैं आपसे पुनः पूछ रहा हूँ कि मेरे बाणसे घायल वह सूअर किधर गया है? आप मुझे शीघ्र बता दें॥ ३३॥

उस व्याधके इस प्रकार बार-बार पूछनेपर महात्मा सत्यव्रतमुनि बड़े असमंजसमें पड़ गये और मनमें सोचने लगे कि अब मैं क्या करूँ? जिससे मेरा सत्यव्रत नष्ट न हो और मुझे यह भी न कहना पड़े कि 'मैंने उसे नहीं देखा है'॥ ३४॥

'तुम्हारे बाणसे घायल वह सूअर भाग गया।' यह मिथ्या मैं कैसे कहूँ? और यदि इसे सच बता देता हूँ तो यह क्षुधासे आतुर होकर बार-बार सूअरको पूछ रहा है,

अतः उसे खोजकर अवश्य ही मार डालेगा॥ ३५॥

वह सत्य वास्तविक सत्य नहीं है जिससे किसी जीवकी हिंसा होती हो तथा वह असत्य भी सत्य ही है, जो दयासे युक्त हो। जिसके द्वारा प्राणियोंका कल्याण हो, वही सत्य है और जो इसके विपरीत है, वह असत्य है॥ ३६॥

इन परस्पर विरोधी प्रसंगोंमें मेरा हित कैसे हो! मैं क्या उत्तर दूँ, जिससे मेरी बात झूठी न हो। [लोमशमुनिने कहा]—हे ब्राह्मण! ऐसा विचार करते हुए वे सत्यव्रतमुनि धर्मसंकटमें पड़ गये और व्याधको यथोचित उत्तर नहीं दे सके॥ ३७॥

बाणसे आहत सूअरको देखकर मुनि सत्यव्रतके द्वारा जो करुणायुक्त 'ऐ-ऐ' शब्द उच्चरित हो गया था; उस अपने बीजमन्त्रसे प्रसन्न होकर भगवती शिवाने उन्हें दुर्लभ विद्या दे दी॥ ३८॥

देवीके बीजमन्त्रका उच्चारण करते ही मुनि सत्यव्रतके हृदयमें समस्त विद्याएँ प्रस्फुटित हो गयीं और वे उसी प्रकार कवि हो गये, जिस प्रकार पूर्वकालमें महर्षि वाल्मीकि॥ ३९॥

तत्पश्चात् सत्यकाम, धर्मात्मा तथा दयालु ब्राह्मण सत्यव्रतने अपने सामने खड़े उस धनुर्धारी व्याधसे एक श्लोक* इस प्रकार कहा—जो (आँख) देखती है, वह बोलती नहीं है और जो (वाणी) बोलती है, वह देखती नहीं। अतः अपने ही प्रयोजनकी सिद्धिमें तत्पर हे व्याध! तुम बार-बार क्यों पूछ रहे हो?॥ ४०-४१॥

उस मुनिके ऐसा कहनेपर पशुओंका वध करनेवाला वह व्याध उस सूअरसे निराश होकर अपने घर लौट गया॥ ४२॥

इस प्रकार वे सत्यव्रत नामक ब्राह्मण दूसरे वाल्मीकिके समान कवि हो गये और समस्त लोकोंमें प्रख्यात हो गये॥ ४३॥

तत्पश्चात् उन सत्यव्रतब्राह्मणने सारस्वत बीजमन्त्रका विधिपूर्वक जप किया और वे पृथ्वीतलपर पण्डितके रूपमें अत्यधिक विख्यात हो गये॥ ४४॥

अब ब्राह्मणलोग प्रत्येक पर्वपर उनका यशोगान करने लगे और मुनिगण उनके विस्तृत आख्यानकी निरन्तर प्रशंसा करने लगे॥ ४५॥

उनका महान् यश सुनकर उनके परिवारके वे ही लोग, जिन्होंने उन्हें पहले त्याग दिया था, उनके आश्रममें आकर विशेष आदर-सम्मानके साथ उन्हें घर ले गये॥ ४६॥

अतः हे राजन्! उन आदिशक्ति तथा जगत्की कारणस्वरूपा परादेवीकी सदा भक्तिपूर्वक सेवा तथा पूजा करनी चाहिये॥ ४७॥

हे महाराज! आप मेरे द्वारा पहले ही बताये गये सर्वकामप्रदायक अम्बामखका अनुष्ठान वैदिक विधिके अनुसार नित्य नियमपूर्वक कीजिये॥ ४८॥

वे भगवती स्मरण करने, पूजा करने, श्रद्धापूर्वक ध्यान करने, नामोच्चारण करने तथा स्तुति करनेसे [परम प्रसन्न होकर] सभी इच्छित मनोरथोंको पूर्ण कर देती हैं। इसीलिये वे 'कामदा' कही जाती हैं॥ ४९॥

हे राजन्! रुग्ण, दीन, क्षुधापीड़ित, धनहीन, शठ, दुःखी, मूर्ख, शत्रुओंसे सदा प्रताड़ित, आज्ञाके अधीन रहनेवाले दास, क्षुद्र, विकल, अशान्त, भोजन तथा भोगसे अतृप्त, सदा कष्टमें रहनेवाले, अजितेन्द्रिय, अधिक तृष्णायुक्त, शक्तिहीन तथा सदैव मानसिक रोगोंसे पीड़ित रहनेवाले प्राणियोंको देखकर बुद्धिमानोंको यह अनुमान कर लेना चाहिये कि इन लोगोंने भगवतीकी सम्यक् उपासना नहीं की है। इसी प्रकार वैभवयुक्त, पुत्र-पौत्रादिसे सम्पन्न, हृष्ट-पुष्ट शरीरवाले, भोगयुक्त, वेदवादी, राजलक्ष्मीसे सम्पन्न, पराक्रमी, लोगोंको अपने वशमें रखनेवाले, स्वजनोंके साथ आनन्दपूर्वक रहनेवाले और समस्त उत्तम लक्षणोंसे युक्त लोगोंको देखकर यह अनुमान कर लेना चाहिये कि इन लोगोंने भगवतीकी उपासना की है। इस प्रकार पण्डितजनोंको व्यतिरेक-अन्वयके क्रमसे यह जान लेना चाहिये कि उपर्युक्त [दीन आदि] लोगोंने सभी मनोरथोंको पूर्ण करनेवाली शिवाकी पूजा नहीं की है तथा उपर्युक्त [विभवयुक्त] लोगोंने भगवती अम्बाकी सर्वदा विधिपूर्वक आराधना की है, जिससे ये सभी लोग इस संसारमें सुखी हैं। इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं है॥ ५०—५६॥

* या पश्यति न सा ब्रूते या ब्रूते सा न पश्यति। अहो व्याध स्वकार्यार्थिन् किं पृच्छसि पुनः पुनः॥ (श्रीमद्देवीभा० ३। ११। ४१)

व्यासजी बोले—हे राजन्! मैंने नैमिषारण्यतीर्थमें मुनियोंके समाजमें लोमशऋषिके मुखसे भगवतीका यह अत्युत्तम माहात्म्य सुना॥ ५७॥

हे राजेन्द्र! हे पुरुषश्रेष्ठ! इसपर सम्यक् विचार करके परम भक्तिके साथ प्रेमपूर्वक भगवतीकी सदा अर्चना करनी चाहिये॥ ५८॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत तृतीय स्कन्धका 'सत्यव्रताख्यानवर्णन' नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ११॥

बारहवाँ अध्याय

सात्त्विक, राजस और तामस यज्ञोंका वर्णन; मानसयज्ञकी महिमा और व्यासजीद्वारा राजा जनमेजयको देवी-यज्ञके लिये प्रेरित करना

राजा बोले—हे स्वामिन्! अब आप उन देवीके यज्ञकी विधिका पूर्णरूपसे सम्यक् वर्णन कीजिये। उसे सुनकर मैं यथाशक्ति प्रमादरहित होकर वह यज्ञ करूँगा॥ १॥

उस यज्ञकी पूजा-विधि, उसके मन्त्र, होमद्रव्य, उसमें कितने ब्राह्मण हों और दक्षिणा—इन सभीके बारेमें नि:संकोच बताइये॥ २॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! सुनिये, अब मैं आपसे देवीके यज्ञका विधानपूर्वक वर्णन करूँगा। अनुष्ठानमें विहित कर्मके अनुसार यह यज्ञ सात्त्विक, राजस तथा तामस भेदसे सदा तीन प्रकारका समझा जाना चाहिये। मुनियोंके लिये सात्त्विक यज्ञ, राजाओंके लिये राजस यज्ञ, राक्षसोंके लिये तामस यज्ञ, ज्ञानियोंके लिये निर्गुण यज्ञ और वैराग्ययुक्त लोगोंके लिये ज्ञानमय यज्ञ कहा गया है; मैं आपसे विस्तारपूर्वक वर्णन कर रहा हूँ॥ ३—५॥

जिस यज्ञमें देश, काल, द्रव्य, मन्त्र, ब्राह्मण तथा श्रद्धा—ये सब सात्त्विक हों; उसे सात्त्विक यज्ञ कहा गया है॥ ६॥

हे भूपाल! यदि द्रव्यशुद्धि, क्रियाशुद्धि और मन्त्रशुद्धिके साथ यज्ञ सम्पन्न होता है, तब पूर्ण फलकी प्राप्ति अवश्य होती है; अन्यथा नहीं होती॥ ७॥

अन्यायके द्वारा उपार्जित किये गये धनसे यदि पुण्य-कार्य किया जाता है तो इस लोकमें यशकी प्राप्ति नहीं होती और परलोकमें उसका कोई फल भी नहीं मिलता है, इसलिये न्यायपूर्वक उपार्जित धनसे ही सदा पुण्यकार्य करना चाहिये। ऐसा कार्य इस लोकमें कीर्ति तथा परलोकमें आनन्दके लिये होता है॥ ८-९॥

हे राजेन्द्र! आपके सामने इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। पाण्डवोंने यज्ञोंमें उत्तम राजसूय-यज्ञ किया था, जिसकी समाप्तिपर उन्होंने श्रेष्ठ दक्षिणा भी दी थी, जिसमें महामनस्वी यादवेन्द्र साक्षात् भगवान् कृष्ण विद्यमान थे और भारद्वाज आदि पूर्णत: विद्यानिष्ठ ब्राह्मणोंने जिस यज्ञका सम्पादन किया था, उस यज्ञको विधिवत् सम्पन्न करनेके पश्चात् एक मासके भीतर ही पाण्डवोंको महान् कष्ट प्राप्त हुआ तथा कठोर वनवास भोगना पड़ा॥ १०—१२॥

द्रौपदीका अपमान हुआ, युधिष्ठिरकी जुएमें पराजय हुई, पाण्डवोंको वनवास हुआ और उन्हें तरह-तरहका घोर कष्ट मिला, तब यज्ञसे होनेवाला फल कहाँ चला गया?॥ १३॥

महामनस्वी पाण्डवोंको राजा विराटकी दासता करनी पड़ी और नारियोंमें श्रेष्ठ द्रौपदीको कीचकने प्रताड़ित किया। उस संकटकालमें विशुद्ध हृदयवाले ब्राह्मणोंके आशीर्वाद कहाँ चले गये थे और कृष्णकी भक्ति कहाँ चली गयी थी?॥ १४-१५॥

जिस समय परम सुन्दरी पतिव्रता द्रौपदीको बाल पकड़कर घसीटा जा रहा था, उस समय उस बेचारीकी रक्षा किसीने भी नहीं की॥ १६॥

जिस यज्ञमें देवाधीश भगवान् श्रीकृष्ण रहे हों

और जिस यज्ञके कर्ता धर्मराज युधिष्ठिर हों, उस यज्ञका विपरीत फल मिलनेका कारण अवश्य ही धर्मानुष्ठानमें कोई कमी रही होगी—ऐसा समझना चाहिये॥ १७॥

यदि कहा जाय कि प्रारब्ध ही ऐसा था तो सभी शास्त्र निष्फल हो जायँगे और वेद-मन्त्र तथा अन्य धर्मग्रन्थ निरर्थक सिद्ध होंगे; इसमें संशय नहीं है। प्रारब्ध तो अवश्यम्भावी है, इस कथनको यदि स्वीकार कर लिया जाय तो सभी साधन निष्फल और सभी उपाय व्यर्थ हो जायँगे; सभी वेद-शास्त्र अर्थवादके रूपमें परिणत हो जायँगे, सभी क्रियाएँ निरर्थक हो जायँगी और स्वर्ग-प्राप्तिके लिये तप तथा वर्ण-धर्म सब व्यर्थ हो जायँगे। केवल प्रारब्धको ही हृदयमें धारण करनेसे सभी प्रमाण व्यर्थ हो जायँगे। अतएव भाग्य तथा उपाय दोनोंको मानना चाहिये॥ १८—२१॥

कर्म करनेपर भी यदि विपरीत परिणाम प्राप्त होता है तो पण्डितशिरोमणि विद्वानोंको सोचना चाहिये कि कार्य करनेमें कोई कमी अवश्य रह गयी थी॥ २२॥

कर्मशील विद्वानोंने कर्तृभेद, मन्त्रभेद तथा द्रव्यभेदसे उस कर्मको अनेक प्रकारवाला बताया है॥ २३॥

पूर्वकालमें इन्द्रने यज्ञमें आचार्यके रूपमें विश्वरूपका वरण किया था। उस विश्वरूपने अपने मातृपक्षके दानवोंके हितार्थ विपरीत कार्य किया। देवताओं तथा दानवों दोनोंका कल्याण हो—ऐसा बार-बार कहकर उसने मातृपक्षके जो असुर थे, उनकी भी रक्षा की। तदनन्तर दानवोंको अत्यन्त हृष्ट-पुष्ट देखकर इन्द्र कुपित हो उठे और उन्होंने वज्रसे तत्काल उस विश्वरूपके सिर काट दिये॥ २४—२६॥

इससे यह निस्सन्देह सिद्ध हो जाता है कि कर्ताके भेदसे विपरीत फल हो जाता है। यदि इसे न मानें तो ठीक नहीं; क्योंकि पञ्चालनरेश द्रुपदने रोषपूर्वक द्रोणाचार्यके नाशके निमित्त एक पुत्र उत्पन्न होनेके लिये यज्ञ किया था। [इसके परिणामस्वरूप] यज्ञवेदीके मध्यभागसे धृष्टद्युम्न तथा द्रौपदी—ये दोनों उत्पन्न हुए॥ २७-२८॥

पूर्वकालमें जब महाराज दशरथने पुत्रेष्टि-यज्ञ किया तो उन पुत्रहीन राजा दशरथके भी चार पुत्र उत्पन्न हुए॥ २९॥

अतः हे नृपश्रेष्ठ! युक्तिपूर्वक किया गया कोई भी कार्य हर प्रकारसे सिद्धि प्रदान करनेवाला होता है और युक्तिपूर्वक न किया गया कार्य सर्वथा विपरीत फल प्रदान करनेवाला होता है॥ ३०॥

जैसे पाण्डवोंके यज्ञमें किसी दोषके कारण ही उन्हें विपरीत फल मिला और जुएमें वे हार गये। हे राजन्! युधिष्ठिर सत्यवादी तथा धर्मपुत्र थे, द्रौपदी भी एक पतिव्रता स्त्री थी एवं युधिष्ठिरके अन्य छोटे भाई भी पुण्यात्मा थे, किंतु अन्यायोपार्जित द्रव्योंके प्रयोगके कारण उस यज्ञमें वैगुण्य उत्पन्न हुआ अथवा उन्होंने अभिमानपूर्वक यज्ञ किया था, जिससे दोष उत्पन्न हुआ॥ ३१—३३॥

हे महाराज! सात्त्विक यज्ञ तो अत्यन्त दुर्लभ माना गया है। वह महायज्ञ केवल वानप्रस्थ मुनियोंके लिये ही विहित है॥ ३४॥

हे राजन्! तपमें तत्पर जो लोग नित्य न्यायपूर्वक अर्जित किये गये द्रव्य-पदार्थ, वन्य फल-मूल तथा ऋषियोंका सुसंस्कृत सात्त्विक आहार ग्रहण करते हैं—ऐसे तपस्वियोंद्वारा नित्य अतिश्रद्धाके साथ पुरोडाशसे सम्पादित किये जानेवाले समन्त्रक तथा यूपविहीन यज्ञ परम सात्त्विक यज्ञ कहे गये हैं॥ ३५-३६॥

जिस यज्ञमें अधिक धन व्यय किया जाता है, जिसमें पशु-बलिके लिये सुन्दर यूप गाड़े जाते हैं तथा जो अभिमानके साथ किये जाते हैं—क्षत्रियों तथा वैश्योंद्वारा सम्पादित किये जानेवाले वे यज्ञ राजस यज्ञ कहे गये हैं॥ ३७॥

महात्माओंने दानवोंद्वारा किये जानेवाले यज्ञोंको तामस यज्ञ कहा है। ऐसे यज्ञ क्रोधभावनाके साथ किये जाते हैं, अहंकारको बढ़ानेवाले होते हैं, ईर्ष्यापूर्वक किये जाते हैं और बड़ी साज-सज्जा तथा क्रूरताके साथ सम्पन्न किये जाते हैं॥ ३८॥

मोक्षकी कामना करनेवाले विरक्त मुनि-महात्माओंके लिये सर्वसाधनसम्पन्न मानस-यज्ञ बताया गया है॥ ३९॥

अन्य सभी यज्ञोंमें कुछ कमी हो भी सकती है; क्योंकि वे द्रव्य, श्रद्धा, कर्म, ब्राह्मण, देश, काल तथा अन्य द्रव्यसाधनोंसे सम्पन्न किये जाते हैं। अतः अन्य यज्ञ वैसा पूर्ण नहीं होता, जैसा मानस-यज्ञ सदैव पूर्ण हो जाता है॥ ४०-४१॥

[इस यज्ञके लिये] सर्वप्रथम मनको परिशुद्ध तथा गुणसे रहित बनाना चाहिये। मनके शुद्ध हो जानेपर शरीरकी शुद्धि स्वतः हो जाती है, इसमें संशय नहीं है॥ ४२॥

जब मनुष्यका मन इन्द्रियोंके विषयोंका परित्याग करके पवित्र हो जाता है, तभी वह उस मानस-यज्ञको करनेका अधिकारी होता है ॥ ४३॥

तत्पश्चात् वह अपने मनमें पवित्र यज्ञीय वृक्षोंसे निर्मित, अनेक सुन्दर-सुन्दर स्तम्भोंसे अलंकृत तथा अनेक योजन विस्तारवाले यज्ञमण्डपकी रचना करके उसमें मन-ही-मन एक विशाल यज्ञवेदीकी कल्पना करे और उसपर मानसिक अग्निकी विधिपूर्वक स्थापना करे॥ ४४-४५॥

उसी प्रकार [मनमें] ब्राह्मणोंका वरण करके ब्रह्मा, अध्वर्यु, होता, प्रस्तोता, उद्गाता, प्रतिहर्ता तथा अन्य सभासदोंको नियुक्त करके यथोचित रूपसे प्रयत्नपूर्वक मनसे उनकी पूजा करनी चाहिये॥ ४६-४७॥

प्राण, अपान, व्यान, समान तथा उदान—इन पाँचों अग्नियोंको यज्ञवेदीपर विधानपूर्वक स्थापित करना चाहिये॥ ४८॥

उनमें प्राणको गार्हपत्य अग्नि, अपानको आहवनीय अग्नि, व्यानको दक्षिणाग्नि, समानको आवसथ्य अग्नि तथा उदानको सभ्य अग्नि कहा गया है। ये पाँचों परम तेजस्वी हैं। इस यज्ञमें मानसिक रूपसे ही दोषरहित तथा परम पवित्र सामग्रियोंकी भी कल्पना करनी चाहिये॥ ४९-५०॥

इस यज्ञमें होता तथा यजमान दोनोंके रूपमें मन ही होता है। निर्गुण तथा अविनाशी ब्रह्म इस यज्ञमें अधिदेवता होते हैं॥ ५१॥

निर्गुणा पराशक्ति सभी फलोंको प्रदान करनेवाली हैं। उन वैराग्यदायिनी, कल्याणकारिणी, ब्रह्मविद्या, समस्त जगत्की आधारस्वरूपा तथा जगत्को व्याप्त करके सर्वत्र विराजमान रहनेवाली आदिशक्तिस्वरूपा भगवतीको प्रसन्न करनेके उद्देश्यसे द्विजको मनःकल्पित हवन-सामग्रियोंकी आहुति अपने प्राणरूपी अग्निमें देनी चाहिये॥ ५२ $^{1}/_{2}$॥

हे प्रभो! मानस हवनके पश्चात् अपने मनको आलम्बनरहित करके कुण्डलिनीके मुखमार्गसे अर्थात् सुषुम्ना रन्ध्रद्वारा शाश्वत ब्रह्ममें अपने प्राणोंकी भी आहुति दे देनी चाहिये॥ ५३ $^{1}/_{2}$॥

अपनी अनुभूतिसे स्वयंका साक्षात्कार करके तथा महेश्वरीको अपनी आत्मस्वरूपा जानकर समाधियोगसे शान्तचित्त होकर ध्यान करना चाहिये॥ ५४ $^{1}/_{2}$॥

इस प्रकार जब वह साधक सभी प्राणियोंमें अपने-आपको तथा अपनेमें सभी प्राणियोंको देखने लगता है, तब वह भूतात्मा उन कल्याणस्वरूपा भगवतीका दर्शन प्राप्त कर लेता है और उन सच्चिदानन्दस्वरूपिणीका दर्शन करके ब्रह्मज्ञानी हो जाता है। हे भूपाल! तब उसका सब मायाजनित प्रपंच जलकर भस्म हो जाता है और केवल प्रारब्धकर्मका भोग करनेके लिये ही शरीर रहता है॥ ५५—५७॥

हे तात! तब वह जीवन्मुक्त हो जाता है और मृत्युके उपरान्त मोक्ष प्राप्त करता है। जो भगवतीको भजता है, वह सब प्रकारसे कृतकृत्य हो जाता है। इसलिये गुरुके वचनोंके अनुसार सम्पूर्ण प्रयत्नके साथ श्रीभुवनेश्वरी भगवतीका ध्यान, उनके चरित्रका श्रवण तथा मनन करना चाहिये॥ ५८-५९॥

हे राजन्! इस प्रकार किया हुआ यज्ञ मोक्षप्रद होता है; इसमें सन्देह नहीं। इसके अतिरिक्त अन्य सकाम यज्ञ विनाशोन्मुख होते हैं॥ ६०॥

मनीषी विद्वान् यह वेदानुशासन बताते हैं कि स्वर्गकी इच्छावालेको विधिपूर्वक अग्निष्टोम यज्ञ करना चाहिये। मेरी समझसे पुण्य क्षीण होनेपर पुनः उन्हें मृत्युलोकमें आना ही पड़ता है, अतः अक्षय फलवाला वह मानस-यज्ञ ही श्रेष्ठ है॥ ६१-६२॥

विजयकी इच्छा रखनेवाला राजा इस मानस-यज्ञको

सम्पन्न नहीं कर सकता। हे राजन्! अभी कुछ ही समय पूर्व आपने तामस सर्पयज्ञ किया था, जिसमें आपने दुरात्मा तक्षकसे वैरका बदला चुकाया था और उसमें आपने करोड़ों सर्पोंको अग्निमें जलाकर मार डाला था॥ ६३-६४॥

हे नृपश्रेष्ठ! अब आप विधिपूर्वक विस्तृत देवीयज्ञ कीजिये, जिसे पूर्वकालमें सृष्टिके आरम्भमें भगवान् विष्णुने किया था॥ ६५॥

हे राजेन्द्र! मैं आपको उसकी विधि बता रहा हूँ, आप वैसा कीजिये। हे राजेन्द्र! आपके यहाँ वेदोंके पूर्ण ज्ञाता, विधिको जाननेवाले, देवीके बीजमन्त्रके विधानके जानकार तथा मन्त्रमार्गके विद्वान् अनेक ब्राह्मण हैं, वे ही उस यज्ञमें आपके याजक होंगे और आप यजमान बनेंगे॥ ६६-६७॥

हे महाराज! इस प्रकार आप विधिवत् देवीयज्ञ करके उस यज्ञसे मिले हुए पुण्यको अर्पित करके अपने दुर्गतिप्राप्त पिताका उद्धार कीजिये॥ ६८॥

ब्राह्मणके अपमानसे होनेवाला पाप बड़ा भयंकर और नरकदायक होता है। हे अनघ! आपके पिता वैसे ही शापजनित दोषसे ग्रस्त हो चुके हैं; साथ ही साँपके काटनेसे महाराजकी अकालमृत्यु हुई है और भूमिपर बिछे कुशासनपर नहीं अपितु आकाशमें उनका मरण हुआ है, उनकी मृत्यु न रणस्थलमें हुई है और न गंगातटपर ही अपितु हे कुरुश्रेष्ठ! आपके पिता बिना स्नान-दान आदि किये ही महलमें मर गये॥ ६९—७१॥

हे नृपश्रेष्ठ! ये सब कुत्सित साधन नरकके हेतु हैं। राजाके लिये नरकसे बचनेका एक उपाय था; किंतु वह अत्यन्त दुर्लभ उपाय भी उनसे न बन सका॥ ७२॥

जहाँ कहीं भी प्राणी स्थित रहे, कालको समीप आया जानकर साधनोंके अभावमें भी अत्यन्त कष्टके कारण विवश हुआ वह जब हृदयमें वैराग्य-भाव आ जाय, तब निर्मल मनसे यह सोचने लगे कि यह शरीर तो पृथ्वी, जल, आकाश, अग्नि और वायु—इन पंचभूतोंसे निर्मित है, तब फिर यह मेरे लिये क्या दुःखदायी हो सकता है!॥ ७३-७४॥

यह देह अभी नष्ट हो जाय; मैं तो मुक्त, निर्गुण तथा अविनाशी हूँ। ये पंचतत्त्व तो विनाशशील हैं, तब इनके लिये मुझे चिन्ता ही क्या! मैं तो सदा मुक्त और सनातन ब्रह्म हूँ; संसारी जीव नहीं हूँ। इस देहसे मेरा सम्बन्ध केवल कर्मभोगके कारण ही है। शरीरद्वारा किये गये उन सभी शुभाशुभ कर्मोंका मेरा बन्धन तो छूट चुका है; क्योंकि मनुष्यशरीरसे मैंने दुःख तथा सुख भोग लिया है और इस अत्यन्त भयानक, घोर तथा भीषण सांसारिक कष्टसे मैं सर्वथा विमुक्त हूँ, इस प्रकारका चिन्तन करता हुआ पुरुष यदि स्नान-दानरहित भी मृत्यु प्राप्त करता है तो भी वह पुनः जन्म लेनेके दुःखसे छूट जाता है। यह सर्वोत्कृष्ट साधन कहा गया है, जो योगियोंके लिये भी दुर्लभ है॥ ७५—७९॥

हे नृपसत्तम! आपके पिताने ब्राह्मणके द्वारा दिये गये उस शापको सुनकर भी अपने शरीरके प्रति मोह रखा और वैराग्यका आश्रय नहीं लिया॥ ८०॥

उनकी यह प्रबल इच्छा थी कि मेरा यह शरीर सदा निरोग रहे, मैं निष्कंटक राज्य करता रहूँ और चिरकालतक कैसे जीता रहूँ, [—इस भावनासे उन्होंने सचिवोंको आज्ञा दी कि सर्पविष उतारनेका] मन्त्र जाननेवालोंको बुलाओ॥ ८१॥

राजाने औषध, मणि, मन्त्र तथा उत्तमोत्तम यन्त्रोंका संग्रह किया और वे एक ऊँचे महलपर आरूढ़ हो गये। उस समय उन्होंने न स्नान किया, न दान दिया और न भगवतीका स्मरण ही किया। दैवको प्रधान मानकर वे भूमिपर भी नहीं सोये॥ ८२-८३॥

कलिके प्रभावके कारण एक तपस्वीके प्रति अपमानजन्य पाप करके घोर मोहरूपी सागरमें डूबकर महलके ऊपर सर्पके डँसनेसे वे मर गये। ऐसे आचरणोंसे अवश्य ही नरक होता है। इसलिये हे नृपश्रेष्ठ! अपने उन पिताका पापसे उद्धार कीजिये॥ ८४-८५॥

सूतजी बोले—[हे ऋषिगण!] अमित तेजस्वी व्यासजीका यह वचन सुनकर महाराज जनमेजय बड़े

दुःखी हुए और अश्रुप्रवाहके कारण उनका कण्ठ रुँध गया। [मनमें पश्चात्ताप करते हुए वे कहने लगे—] आज मेरे इस जीवनको धिक्कार है जो कि मेरे पिता नरकमें पड़े हैं। इसलिये अब मैं ऐसा उपाय करता हूँ, जिससे उत्तरातनय राजा परीक्षित् स्वर्ग चले जायँ॥ ८६-८७॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत तृतीय स्कन्धका 'अम्बायज्ञविधिवर्णन' नामक बारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १२॥

तेरहवाँ अध्याय

देवीकी आधारशक्तिसे पृथ्वीका अचल होना तथा उसपर सुमेरु आदि पर्वतोंकी रचना, ब्रह्माजीद्वारा मरीचि आदिकी मानसी सृष्टि करना, काश्यपी सृष्टिका वर्णन, ब्रह्मलोक, वैकुण्ठ, कैलास और स्वर्ग आदिका निर्माण; भगवान् विष्णुद्वारा अम्बायज्ञ करना और प्रसन्न होकर भगवती आद्याशक्तिद्वारा आकाशवाणीके माध्यमसे उन्हें वरदान देना

राजा बोले—हे पितामह! जगत्के कारणस्वरूप तथा परम शक्तिशाली भगवान् विष्णुने पूर्वकालमें वह यज्ञ कैसे किया? हे महामते! उस यज्ञमें कौन-कौन ब्राह्मण सहायक थे और कौन-कौन वेदतत्त्वज्ञ विद्वान् ऋत्विज थे? हे परन्तप! यह सब आप मुझे बतायें। भगवान् विष्णुके द्वारा किये गये अम्बायज्ञको सुनकर बादमें मैं भी सावधान होकर उसी विहित कर्मके अनुसार यज्ञ करूँगा॥ १—३॥

व्यासजी बोले—हे महाभाग! हे राजन्! भगवान् विष्णुने जिस तरह विधिपूर्वक देवीयज्ञ किया था, उस परम अद्भुत प्रसंगको आप विस्तारसे सुनें॥ ४॥

उस समय जब आदिशक्तिने उन्हें विभिन्न शक्तियाँ प्रदान करके विदा कर दिया, तब श्रेष्ठ विमानपर स्थित वे तीनों ब्रह्मा, विष्णु और महेश पुनः पुरुषके रूपमें हो गये। [वहाँसे चलकर] वे तीनों श्रेष्ठ देवगण घोर महासागरमें पहुँच गये। वहाँ उन्होंने पृथ्वी उत्पन्न करके उसपर रहनेके लिये स्थान बनाया और वहीं रहने लगे॥ ५-६॥

उसी समय देवीने अचल आधारशक्तिको मुक्त किया, जिसके आश्रयसे वह मेदयुक्त पृथ्वी टिक गयी॥ ७॥

मधु-कैटभके मेदका संयोग होनेके कारण पृथ्वीको 'मेदिनी' कहा गया है। धारण करनेकी शक्ति होनेके कारण उसे 'धरा' तथा विस्तृत होनेके कारण उसे 'पृथ्वी' कहा गया है॥ ८॥

यह पृथ्वी महनीय होनेके कारण 'मही' कही जाती है। यह शेषनागके मस्तकपर स्थित है। इसको यथास्थान स्थित रखनेके लिये सभी विशाल पर्वत रचे गये। जिस प्रकार काठमें लौह कीलें जड़ दी जाती हैं, उसी प्रकार पृथ्वीको सुस्थिर रखनेके लिये विशाल पर्वत बनाये गये। इसी कारण विद्वान्लोग उन पर्वतोंको 'महीधर' कहते हैं॥ ९-१०॥

परम अद्भुत सुमेरुपर्वत सोनेका बना हुआ है, वह मणिमय चोटियोंसे सुशोभित है तथा अनेक योजन विस्तारवाला है॥ ११॥

[उस समय सृष्टिका विकास इस प्रकार हुआ—] सर्वप्रथम ब्रह्माके विख्यात मानसिक पुत्र मरीचि, नारद, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, दक्ष और वसिष्ठ आदि हुए। तत्पश्चात् मरीचिके पुत्र कश्यप हुए। दक्षप्रजापतिको तेरह कन्याएँ हुईं। उन्हीं कन्याओंसे अनेक देवता एवं दैत्य उत्पन्न हुए॥ १२-१३॥

उसके बाद काश्यपी सृष्टि संसारमें फैल गयी। उस सृष्टिमें मनुष्य, पशु और सर्प आदि योनिभेदोंसे अनेक जीव उत्पन्न हुए॥ १४॥

ब्रह्माके दाहिने आधे शरीरसे स्वायम्भुव मनु उत्पन्न हुए तथा बायें भागसे स्त्रीके रूपमें शतरूपा उत्पन्न हुईं॥ १५॥

उन्हीं शतरूपासे प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए तथा तीन अत्यन्त सुन्दर और उत्तम

गुणोंवाली पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं॥ १६॥

इस प्रकार सृष्टिरचना करके कमलसे उत्पन्न भगवान् ब्रह्माजीने सुमेरुपर्वतके शिखरपर एक सुन्दर ब्रह्मलोक बनाया॥ १७॥

भगवान् विष्णुने भी लक्ष्मीजीके विहार करनेयोग्य वैकुण्ठलोक बनाया। वह अत्यन्त रमणीय तथा उत्तम क्रीडास्थान सभी लोकोंके ऊपर विराजमान है॥ १८॥

शिवजीने भी कैलास नामक एक उत्तम स्थान बना लिया, जिसमें वे भूतगणोंको साथ लेकर इच्छानुसार विहार करने लगे॥ १९॥

सुमेरुपर्वतके एक शिखरपर देवलोक स्वर्गकी रचना हुई। वह इन्द्रलोक अनेक प्रकारके रत्नोंसे सुशोभित तथा इन्द्रका निवास था॥ २०॥

समुद्रमन्थनसे सर्वोत्तम वृक्ष पारिजात, चार दाँतोंवाला ऐरावत हाथी, कामना पूर्ण करनेवाली कामधेनु, उच्चैःश्रवा घोड़ा और रम्भा आदि अनेक अप्सराएँ निकलीं। इन्द्रने स्वर्गको सुशोभित करनेवाले इन सबको अपने पास रख लिया। धन्वन्तरिवैद्य तथा चन्द्रमा भी समुद्रसे निकले; वे दोनों देव अनेक गुणोंसे युक्त होकर स्वर्गमें रहते हुए शोभा पाने लगे॥ २१—२३॥

हे नृपश्रेष्ठ! इस तरह तीन प्रकारकी सृष्टि हुई। देवता, पशु-पक्षी और मानव आदि अनेक भेदोंसे यह सृष्टि कल्पित है। अण्डज, स्वेदज, उद्भिज्ज तथा जरायुज—इन चार भेदोंसे अनेक जीवोंकी सृष्टि हुई। उन सभी जीवोंके साथ कर्मका बन्धन लगा हुआ है। इस प्रकार सृष्टि करके ब्रह्मा, विष्णु और महेश—ये सब अपने-अपने लोकोंमें इच्छापूर्वक विहार करने लगे॥ २४—२६॥

इस प्रकार सृष्टिके विस्तृत हो जानेपर अच्युत भगवान् विष्णु अपने लोकमें लक्ष्मीके साथ विराजमान होकर आनन्द करने लगे॥ २७॥

एक समयकी बात है—भगवान् विष्णु वैकुण्ठमें विराजमान थे। उन्हें एकाएक अमृतसागरमें विद्यमान तथा मणियोंसे सुशोभित उस द्वीपका स्मरण हो आया, जहाँ महामायाका दर्शन करके उन्होंने शुभ मन्त्र प्राप्त किया था। तदनन्तर जिन भगवतीके द्वारा वे पुरुषसे स्त्री बना दिये गये थे, उन परमशक्तिका स्मरण करके लक्ष्मीकान्त भगवान् विष्णुने अम्बायज्ञ करनेका मनमें निश्चय कर लिया॥ २८-२९ $^{1}/_{2}$॥

इसके बाद अपने धामसे उतरकर उन्होंने शिव, ब्रह्मा, वरुण, इन्द्र, कुबेर, अग्नि, यम, वसिष्ठ, कश्यप, दक्ष, वामदेव तथा बृहस्पतिको आमन्त्रित करके अत्यन्त विस्तारके साथ यज्ञ सम्पन्न करनेके लिये अत्यधिक मूल्यवाली, सात्त्विक तथा मनोरम बहुत-सी सामग्रियाँ एकत्र कीं॥ ३०-३२॥

उन्होंने शिल्पियोंद्वारा विशाल यज्ञमण्डप बनवाया और सत्ताईस महान् व्रती ऋत्विजोंका वरण किया। तत्पश्चात् अग्निस्थापनके लिये बड़ी-बड़ी वेदियाँ बनायी गयीं। ब्राह्मणगण बीजसहित देवीमन्त्रोंका जप करने लगे॥ ३३-३४॥

विधिवत् प्रज्वलित की गयी अग्निमें वे ब्राह्मण यथेच्छ हव्य-पदार्थकी आहुति देने लगे। इस प्रकार विस्तृत होमकृत्य सम्पन्न होते ही भगवान् विष्णुको सम्बोधित करके मधुर अक्षरों तथा स्पष्ट स्वरोंसे युक्त आकाशवाणी हुई। हे हरे! हे विष्णो! आप सदा देवताओंमें श्रेष्ठतम होंगे। सभी देवगणोंमें आप मान्य, पूज्य तथा समर्थ होंगे। संसारमें इन्द्रसहित ब्रह्मा आदि सभी देवता आपकी अर्चना करेंगे॥ ३५—३७॥

हे विष्णो! पृथ्वीपर सभी मानव आपकी भक्तिसे युक्त होकर रहेंगे और आप सभी मनुष्योंको वर देनेवाले होंगे॥ ३८॥

आप सभी देवताओंको वांछित फल प्रदान करनेवाले महान् परमेश्वर होंगे। सभी यज्ञोंमें प्रधानरूपसे सभी याज्ञिकोंके द्वारा आप ही पूजे जायँगे॥ ३९॥

लोग आपकी पूजा करेंगे और आप उनके लिये वरदाता होंगे। राक्षसोंके द्वारा अत्यधिक प्रताड़ित किये जानेपर देवगण आपका आश्रय ग्रहण करेंगे। हे पुरुषोत्तम! आप सभीके शरणदाता होंगे। अत्यन्त विस्तारवाले वेदों तथा सभी पुराणोंमें आप ही पूज्यतम होंगे और आपकी महान् कीर्ति होगी॥ ४०-४१ $^{1}/_{2}$॥

इस पृथ्वीतलपर जब-जब धर्मका ह्रास होगा तब-

तब आप शीघ्र अपने अंशसे अवतार लेकर धर्मकी रक्षा करेंगे। आपके अंशसे उत्पन्न वे समस्त अवतार पृथ्वीपर अत्यन्त प्रसिद्ध होंगे और महात्मागण आपके उन अवतारोंका सम्मान करेंगे। हे माधव! नानाविध योनियोंमें आपके द्वारा लिये गये अवतारोंमें आप सभी लोकोंमें विख्यात होंगे। हे मधुसूदन! उन सभी अवतारोंमें मेरे अंशसे उत्पन्न शक्ति सदा आपकी सहचारिणी होगी और आपके समस्त कार्योंको सम्पन्न करेगी। वह शक्ति वाराही, नारसिंही आदि भेदोंसे अनेक प्रकारकी होगी॥ ४२—४६ ॥

वे शक्तियाँ सभी प्रकारके आभूषणोंसे अलंकृत, भव्य स्वरूपवाली एवं नानाविध शस्त्रास्त्रोंसे सज्जित होंगी। हे विष्णो! आप उन शक्तियोंसे सदैव युक्त रहेंगे। हे माधव! मेरे द्वारा प्रदत्त वरदानके प्रभावसे आप देवताओंके समस्त कार्य सिद्ध करेंगे। आप लेशमात्र भी अभिमान करके उन शक्तियोंका कभी अपमान न कीजियेगा, अपितु हर प्रकारसे प्रयत्नपूर्वक उन शक्तियोंका पूजन तथा सम्मान कीजियेगा॥ ४७-४८ $^{१}/_{२}$ ॥

समस्त कामनाओंको प्रदान करनेवाली वे शक्तियाँ भारतवर्षमें मनुष्योंद्वारा विविध प्रतिमाओंमें प्रतिष्ठित होकर पूजी जायँगी। हे देवेश! उन शक्तियोंकी तथा आपकी कीर्ति पृथ्वीमण्डल तथा समस्त सातों द्वीपोंमें प्रसिद्ध होगी॥ ४९-५० $^{१}/_{२}$ ॥

हे महाभाग! भूमण्डलपर सकाम मनुष्य अपने मनोरथोंको पूर्ण करनेके लिये आपकी तथा उन शक्तियोंकी निरन्तर उपासना करेंगे। हे हरे! वे लोग अर्चनाओंमें अनेक भावोंसे युक्त होकर नानाविध उपहारों, वैदिक मन्त्रों तथा नामजपसे आपकी आराधना करेंगे। हे मधुसूदन! हे देवदेवेश! मनुष्योंके द्वारा सुपूजित होनेके कारण आपकी महिमा पृथ्वीलोक तथा स्वर्गलोकमें वृद्धिको प्राप्त होगी ॥ ५१—५३ $^{१}/_{२}$ ॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार भगवान् विष्णुको वरदान देकर वह आकाशवाणी चुप हो गयी। उसे सुनते ही भगवान् विष्णु भी प्रसन्नचित्त हो गये। तत्पश्चात् यज्ञका विधिपूर्वक समापन करके तथा उन देवताओं, ब्रह्मपुत्रों और मुनियोंको विदा करके सर्वसमर्थ गरुडध्वज भगवान् विष्णु अपने अनुचरोंके साथ वैकुण्ठलोकको चले गये॥ ५४—५६ ॥

तदनन्तर विस्मयके साथ यज्ञविषयक वार्ता करते हुए वे समस्त देवता अपने-अपने लोकोंको तथा मुनिजन अपने-अपने पवित्र आश्रमोंको अति प्रसन्नतापूर्वक चले गये॥ ५७-५८ ॥

आकाशसे प्रादुर्भूत उस कर्णप्रिय तथा परम विशद वाणीको सुनकर सबके हृदयमें परा प्रकृतिके प्रति भक्तिभाव उत्पन्न हो गया। हे मुनीन्द्रो! अतएव वे सभी ब्राह्मण तथा मुनिजन भक्तिपरायण होकर उन भगवतीका पूजन करने लगे, जो वेदशास्त्रोंमें वर्णित है तथा सम्पूर्ण वांछित फलोंको प्रदान करनेवाला है॥ ५९ ॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत तृतीय स्कन्धका 'विष्णुके द्वारा अम्बिकायज्ञके अनुष्ठानका वर्णन' नामक तेरहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १३ ॥

चौदहवाँ अध्याय

देवीमाहात्म्यसे सम्बन्धित राजा ध्रुवसन्धिकी कथा, ध्रुवसन्धिकी मृत्युके बाद राजा युधाजित् और वीरसेनका अपने-अपने दौहित्रोंके पक्षमें विवाद

जनमेजय बोले—हे द्विज! मैंने विष्णुद्वारा किये गये देवीयज्ञके विषयमें विस्तारपूर्वक सुन लिया। अब आप मुझे विस्तृतरूपसे भगवतीकी महिमा बताइये॥ १ ॥

हे विप्रेन्द्र! देवीका चरित्र सुनकर मैं भी वह उत्कृष्ट देवीयज्ञ अवश्य करूँगा और इस प्रकार आपकी कृपासे पवित्र हो जाऊँगा॥ २ ॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! सुनिये, अब मैं भगवतीके उत्तम चरित्रका वर्णन करूँगा। मैं इसके साथ-साथ विस्तृत इतिहास तथा पुराण भी कहूँगा॥ ३ ॥

कोसलदेशमें सूर्यवंशमें एक महातेजस्वी श्रेष्ठ राजा

उत्पन्न हुए। वे महाराज पुष्यके पुत्र थे और ध्रुवसन्धिके नामसे विख्यात थे॥ ४॥

वे धर्मात्मा, सत्यनिष्ठ तथा वर्णाश्रमधर्मकी रक्षाके लिये सदा तत्पर रहते थे। पवित्र व्रतधारी वे ध्रुवसन्धि वैभवशालिनी अयोध्यानगरीमें राज्य करते थे॥ ५॥

उनके राज्यमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, द्विजगण तथा अन्य सभी अपनी-अपनी जीविकामें तत्पर रहकर धर्मपूर्वक आचरण करते थे। उनके राज्यमें कहीं भी चोर, निन्दक, धूर्त, पाखण्डी, कृतघ्न तथा मूर्ख मनुष्य निवास नहीं करते थे॥ ६-७॥

हे कुरुश्रेष्ठ! इस प्रकार धर्मपूर्वक राज्य करते हुए उन राजाकी रूपवती तथा आनन्दोपभोग प्रदान करनेवाली दो पत्नियाँ थीं। उनकी धर्मपत्नी मनोरमा थी, जो सुन्दर रूपवाली तथा परम विदुषी थी और दूसरी पत्नी लीलावती थी; वह भी रूप तथा गुणोंसे सम्पन्न थी॥ ८-९॥

महाराज ध्रुवसन्धि उन दोनों पत्नियोंके साथ राजभवनों, उपवनों, क्रीड़ापर्वत, बावलियों तथा विभिन्न महलोंमें विहार करते थे॥ १०॥

रानी मनोरमाने शुभ वेलामें राजलक्षणोंसे सम्पन्न एक सुन्दर पुत्र उत्पन्न किया। उसका नाम सुदर्शन पड़ा॥ ११॥

उनकी दूसरी सुन्दर पत्नी लीलावतीने भी एक माहके भीतर शुभ पक्ष तथा शुभ दिनमें एक सुन्दर पुत्रको जन्म दिया॥ १२॥

महाराज ध्रुवसन्धिने उन दोनों बालकोंका जातकर्म आदि संस्कार किया तथा पुत्र-जन्मसे प्रमुदित एवं उल्लसित होकर उन्होंने ब्राह्मणोंको नानाविध दान दिये॥ १३॥

हे राजन्! महाराज ध्रुवसन्धि उन दोनों पुत्रोंपर समान प्रीति रखते थे। वे उन दोनोंके प्रति अपने प्रेम-भावमें कभी भी अन्तर नहीं आने देते थे॥ १४॥

परम तपस्वी उन राजेन्द्रने अपने वैभवके अनुसार बड़े हर्षोल्लासके साथ विधिपूर्वक उन दोनोंका चूडाकर्म-संस्कार किया॥ १५॥

चूडाकर्म-संस्कार हो जानेपर उन दोनों बालकोंने राजाके मनको मोहित कर लिया; वे दोनों कान्तिमान् बालक खेलते समय सभी लोगोंको मुग्ध कर लेते थे॥ १६॥

उन दोनोंमें [मनोरमाका पुत्र] सुदर्शन ज्येष्ठ था। लीलावतीका शत्रुजित् नामक पुत्र अत्यन्त सुन्दर तथा मृदुभाषी था॥ १७॥

उसके मधुरभाषी तथा अत्यन्त सुन्दर होनेके कारण राजा उससे अधिक प्रेम करने लगे और उसी तरहसे वह प्रजाजनों तथा मन्त्रियोंका भी प्रियपात्र बन गया॥ १८॥

शत्रुजित्के गुणोंके कारण राजाका जैसा प्रेम उसपर हो गया, वैसा प्रेम सुदर्शनके प्रति नहीं था। वे सुदर्शनके प्रति मन्दभाग्य होनेके कारण कम अनुराग रखने लगे॥ १९॥

इस प्रकार कुछ समय बीतनेपर आखेटके प्रति सदा तत्पर रहनेवाले नृपश्रेष्ठ ध्रुवसन्धि आखेटके लिये वनमें गये॥ २०॥

वे राजा ध्रुवसन्धि वनमें रुरु मृगों, बनैले सूअरों, गवयों, खरगोशों, भैंसों, शरभों तथा गैंडोंको मारते हुए आखेट करने लगे॥ २१॥

जब महाराज उस गहन तथा महाभयंकर वनमें शिकार खेल रहे थे, उसी समय महान् रोषमें भरा हुआ एक सिंह झाड़ीसे निकला॥ २२॥

पहले तो राजाने उसे बाणसे आहत कर दिया; तब अत्यन्त कोपाविष्ट वह सिंह उन्हें अपने सामने देखकर मेघके समान गरजने लगा॥ २३॥

अपनी पूँछ खड़ी करके तथा गर्दनके लम्बे केशोंको छितराकर अत्यन्त कुपित वह सिंह राजाको मारनेके लिये छलाँग लगाकर उनपर झपटा॥ २४॥

तब उसे देखकर राजाने भी तत्काल अपने हाथमें तलवार धारण कर ली और बायें हाथमें ढाल लेकर दूसरे सिंहके समान खड़े हो गये॥ २५॥

यह देखकर उनके जो सेवकगण थे, वे सभी अत्यन्त कुपित हो उठे और रोषपूर्वक उस सिंहपर अलग-अलग बाणोंसे प्रहार करने लगे॥ २६॥

वहाँ महान् हाहाकार मच गया तथा भीषण प्रहार होने लगा। इसी बीच वह भयानक सिंह राजापर टूट पड़ा॥ २७॥

उसे अपने ऊपर झपटते देखकर राजाने खड्गसे

उसपर प्रहार किया। उस सिंहने भी राजाके समीप आकर अपने भयानक तथा तीक्ष्ण नखोंसे राजाको क्षत-विक्षत कर डाला॥ २८॥

नखोंके प्रहारसे आहत होकर राजा गिर पड़े और उनकी मृत्यु हो गयी। इससे सभी सैनिक और भी क्रोधित हो उठे; तब वे बाणोंसे सिंहपर भीषण प्रहार करने लगे। इस प्रकार राजा ध्रुवसन्धि तथा वह सिंह दोनों मर गये। तदनन्तर सैनिकोंने आकर मन्त्रिप्रवरोंको यह समाचार बताया॥ २९-३०॥

राजाके परलोकगमनका समाचार सुनकर उन श्रेष्ठ मन्त्रियोंने उस वनमें जाकर उनका दाह-संस्कार करवाया॥ ३१॥

वहींपर गुरु वसिष्ठने परलोकमें सुख प्रदान करनेवाले सभी श्राद्ध आदि पारलौकिक कृत्य विधिपूर्वक सम्पन्न करवाये॥ ३२॥

तदनन्तर प्रजाजनों, मन्त्रियों तथा महामुनि वसिष्ठने सुदर्शनको राजा बनानेके उद्देश्यसे आपसमें विचार-विमर्श किया॥ ३३॥

श्रेष्ठ मन्त्रियोंने कहा कि सुदर्शन महाराजकी धर्मपत्नी मनोरमाके पुत्र हैं, शान्त स्वभाववाले पुरुष हैं तथा सभी लक्षणोंसे सम्पन्न हैं, अत: ये राजसिंहासनके योग्य हैं॥ ३४॥

गुरु वसिष्ठने भी वही बात कही कि महाराजका यह पुत्र सुदर्शन राजपदके योग्य है; क्योंकि बालक होते हुए भी धर्मपरायण राजकुमार ही राजसिंहासनका अधिकारी होता है॥ ३५॥

वयोवृद्ध मन्त्रियोंके द्वारा इस प्रकार विचार करनेके उपरान्त यह समाचार सुनकर उज्जयिनीनरेश राजा युधाजित् शीघ्र ही वहाँ आ पहुँचे॥ ३६॥

लीलावतीके पिता युधाजित् अपने दामादकी मृत्युके विषयमें सुनकर अपने दौहित्रके हितकी कामनासे उस समय शीघ्रतापूर्वक वहाँ आये॥ ३७॥

उसी समय सुदर्शनके हित-साधनके उद्देश्यसे मनोरमाके पिता कलिंगाधिपति महाराज वीरसेन भी वहाँ आ गये॥ ३८॥

सेनाओंसे सम्पन्न तथा एक-दूसरेसे भयभीत वे दोनों राजा राज्यके अधिकारीका निर्णय करनेके लिये प्रधान अमात्योंके साथ मन्त्रणा करने लगे॥ ३९॥

युधाजित्ने पूछा कि इन दोनों राजकुमारोंमें ज्येष्ठ कौन है? ज्येष्ठ ही राज्य प्राप्त करता है, कनिष्ठ कदापि नहीं॥ ४०॥

उसी समय वीरसेनने भी कहा—हे राजन्! मैंने शास्त्रविदोंसे ऐसा सुना है कि धर्मपत्नीका पुत्र ही राज्यका अधिकारी माना जाता है॥ ४१॥

युधाजित्ने पुन: कहा कि यह शत्रुजित् गुणोंके कारण ज्येष्ठ है। यह सुदर्शन राजोचित चिह्नोंसे युक्त होते हुए भी वैसा नहीं है॥ ४२॥

अपने-अपने स्वार्थके वशीभूत उन दोनों राजाओंमें वहाँ विवाद होने लगा। अब उस महासंकटकी परिस्थितिमें उनके सन्देहका समाधान करनेमें कौन समर्थ हो सकता था?॥ ४३॥

युधाजित्ने मन्त्रियोंसे कहा कि आपलोग अवश्य ही स्वार्थपरायण हो गये हैं और सुदर्शनको राजा बनाकर धनका स्वयं उपभोग करना चाहते हैं॥ ४४॥

मैंने आप लोगोंका यह विचार तो आप सबकी भाव-भंगिमासे पहले ही जान लिया था। शत्रुजित् सुदर्शनसे अधिक बलवान् है, अत: आप लोगोंकी सम्मति तो यह होनी चाहिये कि शत्रुजित् ही राजसिंहासनपर आसीन होनेयोग्य है॥ ४५॥

ऐसा कौन व्यक्ति है, जो मेरे जीवित रहते गुणोंमें बड़े तथा सेनासे सुसज्जित राजकुमारको छोड़कर [गुणोंमें] छोटे पुत्रको राजा बना सके॥ ४६॥

इसके लिये मैं निश्चितरूपसे घोर संग्राम करूँगा। मेरे खड्गकी धारसे पृथ्वीके भी दो टुकड़े हो सकते हैं, फिर आप लोगोंकी बात ही क्या!॥ ४७॥

यह सुनकर वीरसेनने युधाजित्से कहा—हे विद्वन्! दोनों ही बालक समान बुद्धि रखते हैं; इनमें भेद ही क्या है?॥ ४८॥

तदनन्तर उन दोनोंको इस प्रकार परस्पर विवाद करते देखकर प्रजाजनों तथा ऋषियोंके मनमें व्यग्रता होने लगी॥ ४९॥

तब एक-दूसरेको क्लेश पहुँचानेके लिये

उद्यत तथा युद्धकी इच्छावाले दोनों पक्षोंके सामन्त सावधान होकर अपनी-अपनी सेनाओंके साथ वहाँ आ पहुँचे॥ ५०॥

उसी समय महाराज ध्रुवसन्धिकी मृत्युका समाचार सुनकर श्रृंगवेरपुरमें रहनेवाले निषादगण राजकोष लूटनेके लिये वहाँ आ गये। दोनों राजकुमार अभी बालक हैं तथा वे आपसमें कलह कर रहे हैं—यह सुनकर देश-देशान्तरके चोर-लुटेरे भी वहाँ आ गये॥ ५१-५२॥

इस प्रकार वहाँपर भारी कलह उपस्थित हो जानेपर युद्ध आरम्भ हो गया। युधाजित् तथा वीरसेन भी युद्धके लिये उद्यत हो गये॥ ५३॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत तृतीय स्कन्धका 'युधाजित्-वीरसेनका युद्धार्थ सुसज्जित होना' नामक चौदहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १४॥

पन्द्रहवाँ अध्याय

राजा युधाजित् और वीरसेनका युद्ध, वीरसेनकी मृत्यु, राजा ध्रुवसन्धिकी रानी मनोरमाका अपने पुत्र सुदर्शनको लेकर भारद्वाजमुनिके आश्रममें जाना तथा वहीं निवास करना

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] युद्ध आरम्भ हो जानेपर क्रोध एवं लोभके वशीभूत उन दोनों राजाओंने लड़नेके लिये शस्त्र उठा लिये और तब उनके बीच भयानक संग्राम आरम्भ हो गया॥ १॥

युद्धके लिये कृतसंकल्प वे विशालबाहु राजा युधाजित् धनुष धारण करके अपनी सेना तथा वाहन आदिके साथ रणभूमिमें डट गये॥ २॥

इधर इन्द्रके समान तेजस्वी राजा वीरसेन भी क्षत्रियोचित धर्मका अनुसरण करते हुए अपने दौहित्रके हित-साधनहेतु विशाल सेनाके साथ रणक्षेत्रमें उपस्थित हो गये॥ ३॥

सत्यपराक्रमी राजा वीरसेनने युधाजित्को समरांगणमें उपस्थित देखकर क्रोधयुक्त होकर इस प्रकार बाणोंकी वृष्टि आरम्भ कर दी, मानो पर्वतपर मेघ जल बरसा रहा हो॥ ४॥

राजा वीरसेनने पत्थरपर घिसकर तीक्ष्ण बनाये गये, द्रुतगामी तथा सीधे प्रवेश करनेवाले बाणोंसे युधाजित्को आच्छादित कर दिया और युधाजित्के द्वारा छोड़े गये अत्यन्त तीव्रगामी बाणोंको उन्होंने अपने बाणोंसे टुकड़े-टुकड़े कर दिया॥ ५॥

इस प्रकार हाथियों, रथों तथा घोड़ोंसे अतिभयंकर युद्ध होने लगा जिसे देवता, मनुष्य तथा मुनिगण देख रहे थे। मांसभक्षणकी लालसावाले कौए, गीध आदि पक्षियोंके विस्तृत समूहसे शीघ्र ही वहाँका आकाशमण्डल ढक गया॥ ६॥

उस युद्धभूमिमें हाथियों, घोड़ों तथा सैन्यसमूहोंके शरीरसे निकले रक्तसे अद्भुत तथा भयंकर नदी बह चली, जो लोगोंको उसी प्रकार दिखायी पड़ रही थी, जैसे यमलोकके मार्गमें प्रवाहित वैतरणी पापियोंको भयावह दीखती है॥ ७॥

[तीव्र धारके वेगसे] कटे हुए तटवाली उस नदीमें मनुष्योंके केशयुक्त इधर-उधर बिखरे मस्तक, खेलनेमें तत्पर बालकोंद्वारा यमुनामें फेंके गये तुम्बीफलोंके समान प्रतीत हो रहे थे॥ ८॥

रथसे गिरे हुए किसी मृत वीरको पृथ्वीपर पड़ा हुआ देखकर मांसकी इच्छासे गीध उसके ऊपर मँडराने लगता था, इससे ऐसा प्रतीत होता था मानो उस वीरका जीव अपने शरीरको अति सुन्दर देखकर अत्यन्त विवश हो उसमें पुनः प्रवेश करनेकी इच्छा कर रहा हो॥ ९॥

युद्धभूमिमें हत कोई वीर योद्धा सुन्दर विमानमें आरूढ़ होकर अपनी गोदमें बैठी हुई किसी देवांगनासे अपना मनोभाव इस प्रकार व्यक्त करता था—हे करभोरु! इस समय बाणोंसे आहत होकर धरतीपर पड़े हुए मेरे इस कान्तियुक्त शरीरको देखो॥ १०॥

शत्रुके द्वारा मारा गया एक वीर ज्यों ही अन्तरिक्षमें पहुँचा और अप्सराके पास जाकर विमानमें बैठा, त्यों

ही उसकी अपनी प्रिय स्त्री अपना शरीर अग्निको भलीभाँति समर्पित करके पुनः दिव्य शरीर पाकर अपने पतिके पास जा पहुँची॥ ११॥

उस युद्धमें दो वीर परस्पर एक-दूसरेके शस्त्र-प्रहारसे आहत होकर मर गये और साथ-साथ ही स्वर्गलोकमें पहुँचे। वहाँपर भी एक अप्सराको प्राप्त करनेके लिये वे दोनों वीर शस्त्रयुक्त होकर एक-दूसरेको मारनेहेतु युद्ध करने लगे॥ १२॥

कोई अनुरागमय युवा वीर अतिशय रूपवती तथा गुणवती अप्सराको प्राप्त करके अत्यन्त बढ़ा-चढ़ाकर अपने गुणोंका वर्णन करते हुए प्रयत्नपूर्वक उस प्रेमदायिनीके गुण आदिका अनुकरण करने लगा॥ १३॥

घोर युद्धके कारण रणभूमिसे उड़ी हुई अत्यधिक धूलने अन्तरिक्षस्थित सूर्यको ढक दिया और दिनमें ही रात हो गयी। पुनः वही धूल जब अथाह रक्त-सिन्धुमें विलीन हो जाती तब अत्यन्त प्रभावाले सूर्य अचानक प्रकट हो जाते॥ १४॥

कोई युवक वीर युद्धमें मरकर स्वर्ग पहुँचा तो उसे एक सुन्दर रूपवाली देवकन्या मिली, जो उसके ऊपर आसक्त हो गयी। किंतु ब्रह्मचर्यव्रतके नाश होनेसे भयभीत उस चतुर वीरने उसे स्वीकार नहीं किया; [उसने सोचा कि ऐसा करनेसे] मेरे अनुरूप यह ब्रह्मचारी शब्द व्यर्थ हो जायगा॥ १५॥

तदनन्तर घोर संग्राम छिड़ जानेपर राजा युधाजित्ने अपने तीक्ष्ण तथा अत्यन्त भीषण बाणोंसे वीरसेनको मार डाला॥ १६॥

इस प्रकार कटे मस्तकवाले महाराज वीरसेन पृथ्वीपर गिर पड़े। उनकी सम्पूर्ण सेना नष्ट हो गयी और चारों दिशाओंमें भाग गयी॥ १७॥

अपने पिता वीरसेनको समरांगणमें मारा गया सुनकर तथा अपने पिताके वैरका स्मरण करते हुए मनोरमा भयसे व्याकुल हो गई। वह इस चिन्तामें पड़ गई कि बुरे विचारोंवाला वह पापी युधाजित् राज्यके लोभसे मेरे पुत्रको अवश्य ही मार डालेगा॥ १८-१९॥

अब मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? मेरे पिताजी युद्धमें मारे गये तथा पतिदेव भी मर चुके हैं और मेरा यह पुत्र अभी बालक ही है॥ २०॥

लोभ बड़ा ही पापी होता है, इसने किसको अपने वशमें नहीं किया। लोभसे ग्रस्त हो जानेपर श्रेष्ठ राजा भी कौन-सा पाप नहीं कर सकता। लोभसे अभिभूत मनुष्य अपने माता-पिता, भाई, गुरु तथा बन्धु-बान्धवोंको भी मार डालता है; इसमें सन्देह नहीं है। लोभके कारण मनुष्य अभक्ष्यका भक्षण तथा अगम्या स्त्रीके साथ गमन भी कर लेता है; यहाँतक कि लोभसे व्याकुल होकर वह धर्मका त्याग भी कर देता है॥ २१—२३॥

अब इस नगरमें कोई बलवान् पुरुष मुझे सहायता देनेवाला भी नहीं रह गया, जिसके आश्रयमें रहकर मैं अपने सुन्दर पुत्रका पालन कर सकूँ॥ २४॥

यदि राजा युधाजित् मेरे पुत्रको मार डाले, तो मैं फिर क्या करूँगी? इस संसारमें मेरा कोई रक्षक नहीं है, जिसके सहारे मैं निश्चिन्त रह सकूँ?॥ २५॥

मेरी सौत लीलावती भी सदा मुझसे वैरभाव रखती है, अतः वह भी मेरे पुत्रपर दया नहीं करेगी॥ २६॥

युधाजित्के रणभूमिसे लौटकर आ जानेपर मेरा यहाँसे निकल भागना सम्भव नहीं हो सकेगा; वह मेरे पुत्रको बालक जानकर उसे कारागारमें डाल देगा॥ २७॥

सुना जाता है कि पूर्वकालमें इन्द्रने अपने वज्रको अत्यन्त छोटा बनाकर अपनी सौतेली माता दितिके गर्भमें प्रवेश करके गर्भस्थ शिशुको काटकर उसके सात टुकड़े कर दिये थे। इसके बाद उसने पुनः एक-एक टुकड़ेके सात-सात खण्ड कर दिये थे। वे ही आगे चलकर देवलोकमें उनचास मरुत्के रूपमें प्रतिष्ठित हुए॥ २८-२९॥

मैंने यह भी सुना है कि पूर्वकालमें एक राजाकी किसी रानीने अपनी सौतके गर्भको नष्ट करनेके उद्देश्यसे उसे विष दे दिया था। कुछ समय बीतनेपर वह बालक विषके साथ उत्पन्न हुआ, इसीसे वह भूमण्डलपर 'सगर' नामसे प्रसिद्ध हो गया॥ ३०-३१॥

महाराज दशरथकी भार्या कैकेयीने पतिके जीवनकालमें ही उनके ज्येष्ठ पुत्र रामचन्द्रको वनवास दे दिया था,

जिसके फलस्वरूप राजा दशरथकी मृत्यु भी हो गयी॥ ३२॥

जो मन्त्री मेरे पुत्र सुदर्शनको राजा बनाना चाहते थे, वे भी अब विवश होकर युधाजित्के अधीन हो गये हैं। मेरा भाई भी ऐसा योद्धा नहीं है, जो मुझे बन्धनसे छुड़ा सके। दैवयोगसे मैं महान् संकटमें पड़ गयी हूँ। फिर भी उद्योग तो सर्वथा करना ही चाहिये, सफलता तो दैवके आधीन है। अत: अब मैं अपने पुत्रकी रक्षाके लिये शीघ्र ही कोई उपाय करूँगी॥ ३३—३५॥

ऐसा सोचकर वह रानी अतिसम्मानित, सभी कार्योंमें दक्ष तथा विचार-कुशल श्रेष्ठ मन्त्रिप्रवर विदल्लको बुलवाकर उन्हें एकान्तमें ले गयी और बालकको हाथमें लेकर रोती हुई दीन मनवाली उस मनोरमाने अत्यन्त दु:खित होकर उनसे कहा—मेरे पिता युद्धमें मारे गये और मेरा यह पुत्र अभी अबोध बालक है। राजा युधाजित् बलवान् हैं। [ऐसी परिस्थितिमें] मुझे क्या करना चाहिये? मुझे बतायें॥ ३६—३८॥

तब विदल्लने उससे कहा—अब यहाँ नहीं रहना चाहिये, हमलोग यहाँसे वाराणसीके वनमें चलेंगे। वहाँ सुबाहु नामसे विख्यात मेरे मामा रहते हैं। वे समृद्धिशाली तथा महाबलशाली हैं; वे ही हमारे रक्षक होंगे॥ ३९-४०॥

मनमें युधाजित्के दर्शनकी लालसासे नगरसे बाहर निकल चलना चाहिये और रथपर सवार हो प्रस्थान कर देना चाहिये; इसमें शंकाकी आवश्यकता नहीं है॥ ४१॥

विदल्लके ऐसा कहनेपर रानी मनोरमा लीलावतीके पास गयी और बोली—हे सुनयने! मैं [तुम्हारे] पिताजीका दर्शन करने जा रही हूँ॥ ४२॥

ऐसा कहकर मनोरमा एक दासी और मन्त्री विदल्लको साथ लेकर रथपर सवार हो नगरसे बाहर निकल गयी। उस समय बहुत डरी हुई, दु:खित, अत्यन्त दीन तथा पिताके मृत्युजन्य शोकसे व्याकुल वह मनोरमा राजा युधाजित्से मिलकर तत्काल अपने मृत पिताका दाहसंस्कार कराकर भयसे व्याकुल हो काँपती हुई दो दिनोंमें गंगाजीके तटपर पहुँच गयी॥ ४३—४५॥

वहाँके निषादोंने उसे लूट लिया तथा उसका सारा धन और रथ छीन लिया। सब कुछ लेकर वे धूर्त दस्यु चले गये। तब वह रोती हुई अपने पुत्रको लेकर सैरंध्रीके हाथका सहारा लेकर किसी प्रकार गंगाके तटपर गयी और एक छोटी-सी नौकापर डरती हुई बैठकर पवित्र गंगाको पार करके वह भयाक्रान्त मनोरमा त्रिकूटपर्वतपर पहुँच गयी॥ ४६—४८॥

वह भयभीत मनोरमा भारद्वाजमुनिके आश्रममें शीघ्रतासे पहुँची। तब वहाँ तपस्वियोंको देखकर वह निर्भय हो गयी। तदनन्तर भारद्वाजमुनिने पूछा—हे शुचिस्मिते! तुम कौन हो, किसकी पत्नी हो? इतने कष्टसे तुम यहाँ कैसे आ गयी हो? मुझसे सत्य कहो। तुम कोई देवी हो अथवा मानवी हो। अपने इस बालक पुत्रके साथ वनमें क्यों विचरण कर रही हो? हे सुन्दरि! हे कमलनयने! तुम राज्यभ्रष्ट-जैसी प्रतीत हो रही हो॥ ४९—५१॥

मुनिके पूछनेपर उस रूपवती रानीने कुछ भी उत्तर नहीं दिया और दु:खसे सन्तप्त होकर रोती हुई उसने अपने मन्त्री विदल्लको सारी बातें बतानेके लिये संकेत किया॥ ५२॥

तब विदल्लने मुनिसे कहा—ध्रुवसन्धि एक श्रेष्ठ नरेश थे। ये उन्हींकी मनोरमा नामवाली धर्मपत्नी हैं॥ ५३॥

सूर्यवंशमें उत्पन्न उन महाबली महाराजको सिंहने मार डाला। सुदर्शन नामका यह बालक उन्हीं राजाका पुत्र है॥ ५४॥

इनके अत्यन्त धर्मात्मा पिता अपने इसी दौहित्रके लिये संग्राममें मारे गये। अतएव युधाजित्के भयसे संत्रस्त होकर ये इस निर्जन वनमें आयी हुई हैं॥ ५५॥

हे महाभाग! हे मुनिश्रेष्ठ! अबोध पुत्रवाली ये राजपुत्री अब आपकी शरणमें आयी हैं। अत: आप इनकी रक्षा कीजिये॥ ५६॥

किसी दु:खी प्राणीकी रक्षा करनेमें यज्ञ करनेसे भी अधिक पुण्य बताया गया है। भयभीत तथा दीनकी रक्षाको तो और भी अधिक फलदायक कहा गया है॥ ५७॥

ऋषि बोले—हे कल्याणि! तुम यहाँ भयरहित होकर निवास करो; हे सुव्रते! अपने पुत्रका पालन-

पोषण करो। हे विशालनयने! यहाँ तुम्हें शत्रुओंसे उत्पन्न होनेवाला किसी प्रकारका भी भय नहीं करना चाहिये। तुम अपने इस कान्तिमान् पुत्रका पालन करो, तुम्हारा यह पुत्र आगे चलकर राजा होगा। यहाँ तुम लोगोंको कभी भी कोई दुःख तथा शोक नहीं होगा॥ ५८-५९॥

व्यासजी बोले—मुनिके इस प्रकार कहनेपर महारानी मनोरमा निश्चिन्त हो गयीं और मुनिके द्वारा प्रदान की गयी एक कुटियामें वे शोकरहित होकर निवास करने लगीं॥ ६०॥

इस प्रकार सुदर्शनका पालन-पोषण करती हुई वे मनोरमा अपनी दासी तथा मन्त्री विदल्लके साथ वहाँ रहने लगीं॥ ६१॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत तृतीय स्कन्धका 'मनोरमाका भारद्वाजाश्रमगमन' नामक पंद्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १५॥

सोलहवाँ अध्याय

युधाजित्का भारद्वाजमुनिके आश्रमपर आना और उनसे मनोरमाको भेजनेका आग्रह करना, प्रत्युत्तरमें मुनिका 'शक्ति हो तो ले जाओ'—ऐसा कहना

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] तदनन्तर महाबली युधाजित्ने रणभूमिसे अयोध्या पहुँचकर सुदर्शनको भी मार डालनेकी इच्छासे मनोरमाके विषयमें लोगोंसे पूछा॥ १॥

'मनोरमा कहाँ चली गयी' ऐसा बार-बार कहते हुए उसने सेवकोंको इधर-उधर भेज दिया। तत्पश्चात् किसी शुभ दिनमें अपने दौहित्रको राजसिंहासनपर बैठा दिया॥ २॥

समस्त मन्त्रियोंके साथ गुरु वसिष्ठने अथर्ववेदके कल्याणकारी मन्त्रोंका उच्चारण करके जलपूरित समस्त कलशोंसे राजकुमार शत्रुजित्का अभिषेक किया॥ ३॥

हे कुरुनन्दन! उस समय शंख, भेरीके निनादों तथा तुरहियोंकी ध्वनियोंके साथ पूरे नगरमें उत्सव मनाया गया॥ ४॥

ब्राह्मणोंके वेदपाठों, बन्दीजनोंके स्तुतिगान तथा मंगलकारी जयघोषसे अयोध्यानगरी प्रफुल्लित-सी दिखायी दे रही थी॥ ५॥

हृष्ट-पुष्टजनोंसे भरी-पूरी और स्तुतियों तथा वाद्योंकी ध्वनिसे निनादित वह अयोध्या उस नये नरेशके अभिषिक्त होनेपर नवीन पुरीकी भाँति सुशोभित हो रही थी॥ ६॥

उस नगरीमें जो कोई भी सज्जनलोग थे, उन्होंने अपने घरमें ही रहकर शोक मनाया। वे सुदर्शनके विषयमें सोचते हुए कह रहे थे कि वह राजकुमार कहाँ चला गया? महान् पतिव्रता वह मनोरमा अपने पुत्रके साथ कहाँ चली गयी? राज्यलोभी शत्रु युधाजित्ने युद्धमें उसके पिताको मार डाला॥ ७-८॥

ऐसा विचार करते हुए सबमें समान बुद्धि रखनेवाले वे साधुजन शत्रुजित्के अधीन होकर दुःखी मनसे रहने लगे॥ ९॥

इस प्रकार युधाजित् भी विधानपूर्वक अपने दौहित्रको राजसिंहासनपर बैठाकर तथा राज्यभार मन्त्रियोंको सौंपकर अपनी नगरीको प्रस्थान कर गया॥ १०॥

सुदर्शन मुनियोंके आश्रममें रह रहा है—ऐसा सुनकर युधाजित् उसे मार डालनेकी इच्छासे तत्काल ही चित्रकूट-पर्वतकी ओर चल पड़ा॥ ११॥

वह दुर्दर्श नामक शृंगवेरपुरके राजाके यहाँ पहुँचा और उस विशाल सेनासम्पन्न तथा पराक्रमी निषादराजको अगुआ बनाकर उसने शीघ्र ही आगेकी ओर प्रस्थान किया॥ १२॥

युधाजित्को सेनासहित आते हुए सुनकर अबोध सन्तानवाली वह मनोरमा भयभीत तथा अत्यन्त दुःखित हो गयी॥ १३॥

अत्यन्त शोकसन्तप्त वह मनोरमा आँखोंमें आँसू भरकर मुनि भारद्वाजसे बोली कि युधाजित् यहाँ भी आ पहुँचा; अब मैं क्या करूँ तथा कहाँ जाऊँ?॥ १४॥

इसने मेरे पिताका वध कर दिया तथा अपने दौहित्रको राजा बना दिया। अब वह विशाल सेनाके

साथ मेरे पुत्रके वधकी कामनासे यहाँ आ रहा है॥ १५॥

हे स्वामिन्! मैंने सुना है कि पूर्वकालमें जब मुनियोंके पवित्र आश्रममें द्रौपदीके साथ पाण्डव निवास कर रहे थे, उसी समय एक दिन वे पाँचों भाई आखेटके लिये चले गये और द्रौपदी वहींपर मुनियोंके उस पावन आश्रममें रह गयी थी॥ १६-१७॥

धौम्य, अत्रि, गालव, पैल, जाबालि, गौतम, भृगु, च्यवन, अत्रिगोत्रज कण्व, जतु, क्रतु, वीतिहोत्र, सुमन्तु, यज्ञदत्त, वत्सल, राशासन, कहोड, यवक्री, यज्ञकृत् क्रतु—ये सब और भारद्वाज आदि अन्य पुण्यात्मा मुनिगण उस पावन आश्रममें विराजमान थे। वे सभी वेदपाठ कर रहे थे॥ १८—२०॥

हे मुने! मुनि-समुदायसे सम्पन्न उस आश्रममें सर्वांगसुन्दरी वह द्रौपदी अपनी दासियोंके साथ निर्भय होकर रहती थी॥ २१॥

शत्रुओंको सन्ताप पहुँचानेमें समर्थ तथा धनुष-बाण धारण किये वे पाँचों पाण्डव मृगका पीछा करते हुए एक वनसे दूसरे वनमें निकल गये॥ २२॥

इसी बीच समृद्धिशाली सिन्धुनरेश [जयद्रथ] वेद-ध्वनि सुनकर अपनी सेनाके साथ आश्रमके पास आ गया॥ २३॥

वेदपाठ सुनकर राजा जयद्रथ पुण्यात्मा मुनियोंके दर्शनकी इच्छासे शीघ्रतापूर्वक रथसे उतरा॥ २४॥

जब वह अपने दो भृत्योंके साथ आगे बढ़ा तो मुनियोंको वेदपाठमें संलग्न देखकर वहींपर बैठ गया। हे स्वामिन्! राजा जयद्रथ हाथ जोड़कर कुछ देरतक बैठा रहा। इसके बाद वह मुनियोंसे भरे हुए उस आश्रममें प्रविष्ट हुआ॥ २५-२६॥

तत्पश्चात् मुनियोंकी पत्नियाँ तथा अन्य स्त्रियाँ वहाँ बैठे हुए राजा जयद्रथको देखनेकी इच्छासे वहाँ आ गयीं और लोगोंसे पूछने लगीं—यह कौन है?॥ २७॥

उन्हीं स्त्रियोंके साथ परम सुन्दरी द्रौपदी भी आयी थी। जयद्रथकी दृष्टि दूसरी लक्ष्मीके समान प्रतीत हो रही उस द्रौपदीपर पड़ गयी॥ २८॥

दूसरी देवकन्याकी भाँति प्रतीत हो रही उस श्याम नेत्रोंवाली द्रौपदीको देखकर राजा जयद्रथने ऋषि धौम्यसे पूछा कि यह सुन्दर मुखवाली युवती कौन है?॥ २९॥

यह किसकी पत्नी है, किसकी पुत्री है और इस परम सुन्दरीका नाम क्या है? रूप तथा सौन्दर्यसे सम्पन्न यह स्त्री तो धरापर उतरकर आयी हुई साक्षात् इन्द्राणीकी भाँति प्रतीत हो रही है॥ ३०॥

यह स्त्री बबूलके वनमें स्थित लवंगलता तथा [कुरूपा] राक्षसियोंके समूहमें सचमुच रम्भाके समान प्रतीत हो रही है॥ ३१॥

हे महाभाग! आप सच-सच बताइये कि यह स्त्री किसकी पत्नी है? हे द्विज! यह तो किसी रानी-जैसी प्रतीत हो रही है; मुनिपत्नी तो यह कदापि नहीं हो सकती॥ ३२॥

धौम्य बोले—हे सिन्धुराजेन्द्र! समस्त शुभ लक्षणोंवाली यह पाण्डवोंकी प्रिय भार्या तथा पांचालनरेशकी पुत्री द्रौपदी है। यह इसी पवित्र आश्रममें निवास करती है॥ ३३॥

जयद्रथ बोला—विख्यात पराक्रमी पाँचों पाण्डव कहाँ गये हुए हैं? क्या वे महान् बलशाली वीर निश्चिन्त होकर इस समय इसी वनमें रह रहे हैं?॥ ३४॥

धौम्य बोले—पाँचों पाण्डव इस समय रथपर आरूढ़ होकर आखेटके लिये वनमें गये हुए हैं। वे राजागण मध्याह्नकालमें मृगोंको लेकर आ जायँगे॥ ३५॥

मुनिका यह वचन सुनकर वह राजा जयद्रथ अपने आसनसे उठा और द्रौपदीके पास जाकर उन्हें प्रणाम करके इस प्रकार बोला—हे परम सुन्दरि! आप सकुशल तो हैं न, आपके पतिगण कहाँ गये हुए हैं? आपको वनमें निवास करते हुए आज ग्यारह वर्ष बीत चुके हैं॥ ३६-३७॥

तत्पश्चात् द्रौपदीने कहा—हे राजकुमार! आपका कल्याण हो। अभी थोड़ी ही देरमें पाण्डव आ जायँगे, तबतक आप आश्रमके समीप ही विश्राम कीजिये॥ ३८॥

उसके ऐसा कहनेपर लोभसे आक्रान्त उस वीर जयद्रथने मुनिवरोंकी अवहेलना करके द्रौपदीका हरण कर लिया॥ ३९॥

[मनोरमाने कहा—हे स्वामिन्!] अतएव बुद्धिमान्

लोगोंको चाहिये कि वे किसीपर भी विश्वास न करें, ऐसा करनेवाला व्यक्ति दुःख प्राप्त करता है। इस विषयमें राजा बलि उदाहरण हैं। विरोचनपुत्र राजा बलि वैभवसम्पन्न, धर्मपरायण, सत्यप्रतिज्ञ, यज्ञकर्ता, दानी, शरणदाता तथा साधुजनोंके सम्मान्य थे॥ ४०-४१॥

प्रह्लादके पौत्र वे राजा बलि कभी अधर्मका आचरण नहीं करते थे। उन्होंने दक्षिणायुक्त निन्यानवे यज्ञ किये थे, फिर भी सत्त्वगुणकी साक्षात् मूर्ति, योगियोंद्वारा सदा आराधित तथा विकारोंसे रहित भगवान् विष्णु भी देवताओंका प्रयोजन सिद्ध करनेके लिये कश्यपसे उत्पन्न हुए और उन्होंने वामनका कपटवेष धारण करके छलपूर्वक उनका राज्य तथा सागरसमेत पृथ्वी ले ली॥ ४२—४४॥

विरोचनके पुत्र बलि एक सत्यवादी राजा थे। मैंने तो ऐसा सुना है कि भगवान् विष्णुने इन्द्रके लिये ही यह कपट किया था॥ ४५॥

जब साक्षात् सत्त्वकी मूर्ति भगवान् विष्णुने बलिका यज्ञ ध्वंस करनेकी कामनासे वामनरूप धारण करके ऐसा किया, तब अन्य लोग क्यों नहीं करेंगे?॥ ४६॥

अतएव हे स्वामिन्! किसीपर कभी भी विश्वास नहीं करना चाहिये; क्योंकि यदि चित्तमें लोभ रहता है तो पाप करनेमें किसी भी प्रकारका डर ही क्या?॥ ४७॥

हे मुने! लोभके वशीभूत प्राणी सभी प्रकारके पाप कर बैठते हैं। उस समय किसीको परलोकका किंचिन्मात्र भी भय नहीं रहता॥ ४८॥

लोभसे नष्ट हुए चित्तवाले प्राणी दूसरोंका धन हड़पनेके लिये मन, वचन तथा कर्मसे सम्यक् तत्पर रहते हैं॥ ४९॥

देवताओंकी निरन्तर आराधना करके मनुष्य उनसे धनकी कामना करते हैं। यह निश्चित है कि वे देवता अपने हाथोंसे धन उठाकर उन्हें देनेमें पूरी तरहसे समर्थ नहीं हैं॥ ५०॥

किंतु व्यवसाय, दान, चोरी अथवा बलपूर्वक लूट आदि किसी भी माध्यमसे मनुष्यका अभिलषित धन [उन देवताओंके द्वारा] दूसरेके पाससे ला करके उन्हें दे दिया जाता है॥ ५१॥

विक्रय करनेके लिये पर्याप्त धान्य तथा वस्त्र आदिका संग्रह करके वैश्य इस भावनासे देवताओंकी पूजा करता है कि 'मेरे पास विपुल धन हो जाय।' हे परन्तप! क्या इस व्यापारके द्वारा दूसरोंका धन ग्रहण करनेकी उन्हें इच्छा नहीं होती? वस्तुका संग्रह करनेके बादसे ही वह भाव महँगा होनेकी इच्छा करने लगता है॥ ५२-५३॥

हे ब्रह्मन्! इस प्रकार सभी प्राणी दूसरोंका धन ले लेनेके लिये निरन्तर तत्पर रहते हैं तो फिर विश्वास कैसा?॥ ५४॥

लोभ तथा मोहसे घिरे हुए लोगोंका तीर्थ, दान, अध्ययन—सब व्यर्थ हो जाता है; उनका किया हुआ वह सारा कर्म न करनेके समान हो जाता है॥ ५५॥

अतः हे महाभाग! इस युधाजित्को घर लौटा दीजिये। हे द्विजोत्तम! जानकीकी भाँति मैं अपने पुत्रके साथ यहीं निवास करूँगी॥ ५६॥

मनोरमाके ऐसा कहनेपर तेजस्वी भारद्वाजमुनि राजा युधाजित्के पास जाकर उनसे बोले—हे राजन्! हे नृपश्रेष्ठ! अपने इच्छानुसार आप अपने नगरको चले जायँ। छोटे बालकवाली यह मनोरमा बड़ी दुःखी है; वह नहीं आ रही है॥ ५७-५८॥

युधाजित् बोला—हे सौम्य मुने! आप हठ छोड़ दीजिये और मनोरमाको विदा कीजिये, इसे छोड़कर मैं नहीं जाऊँगा, [यदि आप नहीं मानेंगे तो] मैं इसे अभी बलपूर्वक ले जाऊँगा॥ ५९॥

ऋषि बोले—जैसे प्राचीन कालमें विश्वामित्र वसिष्ठमुनिकी गौ ले जानेके लिये उद्यत हुए थे, उसी प्रकार यदि आपमें शक्ति हो तो आज मेरे आश्रमसे इसे बलपूर्वक ले जाइये॥ ६०॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत तृतीय स्कन्धका 'युधाजित्-भारद्वाजका संवादवर्णन' नामक सोलहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १६॥

सत्रहवाँ अध्याय

युधाजित्का अपने प्रधान अमात्यसे परामर्श करना, प्रधान अमात्यका इस सन्दर्भमें वसिष्ठ-विश्वामित्र-प्रसंग सुनाना और परामर्श मानकर युधाजित्का वापस लौट जाना, बालक सुदर्शनको दैवयोगसे कामराज नामक बीजमन्त्रकी प्राप्ति, भगवतीकी आराधनासे सुदर्शनको उनका प्रत्यक्ष दर्शन होना तथा काशिराजकी कन्या शशिकलाको स्वप्नमें भगवतीद्वारा सुदर्शनका वरण करनेका आदेश देना

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] भारद्वाजमुनिका यह वचन सुनकर राजा युधाजित्ने अपने प्रधान अमात्यको बुलाकर बड़ी सावधानीसे उनसे पूछा—हे सुबुद्धे! आप बतायें कि अब मुझे क्या करना चाहिये? हे सुव्रत! क्या मधुर वचन बोलनेवाली मनोरमाको पुत्रसहित बलपूर्वक ले चलूँ? अपना कल्याण चाहनेवाले पुरुषको चाहिये कि वह तुच्छ शत्रुकी भी उपेक्षा न करे; क्योंकि वह राजयक्ष्मा रोगके समान बढ़कर मृत्युका कारण बन जाता है॥ १—३॥

यहाँ न कोई सेना है और न कोई योद्धा ही है जो मुझे रोक सके। अत: मैं अपने दौहित्रके शत्रु उस सुदर्शनको पकड़कर अभी मार डालूँगा। यदि मैं बलपूर्वक इस प्रयत्नमें सफल हो जाता हूँ तो उसका राज्य निष्कंटक हो जायगा। सुदर्शनके मर जानेपर निश्चय ही वह निर्भय हो जायगा॥ ४-५॥

प्रधान अमात्यने कहा—हे राजन्! ऐसा दु:साहस नहीं करना चाहिये। अभी आपने भारद्वाजमुनिका वचन सुना ही है। हे मान्य! उन्होंने [इस सम्बन्धमें] विश्वामित्रका दृष्टान्त दिया है॥ ६॥

प्राचीन समयमें गाधितनय विश्वामित्र एक समृद्धिशाली तथा प्रसिद्ध राजा थे। एक बार वे महाराज घूमते हुए महर्षि वसिष्ठके आश्रममें जा पहुँचे॥ ७॥

प्रतापी राजाओंमें श्रेष्ठ वे महाराज विश्वामित्र उन्हें प्रणाम करके मुनिद्वारा प्रदत्त आसनपर बैठ गये। उसके बाद महात्मा वसिष्ठजीने उन्हें भोजनके लिये निमन्त्रित किया, तब वे महायशस्वी गाधिपुत्र विश्वामित्र अपने सैनिकोंसहित उपस्थित हो गये॥ ८-९॥

उस समय भक्ष्य तथा भोज्य आदि जो भी आवश्यक हुआ, वह सब उनकी नन्दिनी गौने उपस्थित कर दिया। सेनासमेत राजा विश्वामित्र मनोवांछित भोजन करके इसे नन्दिनी गौका प्रभाव समझकर वे राजा उन मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठजीसे नन्दिनी गौ माँगने लगे॥ १०-११॥

विश्वामित्र बोले—हे मुने! मैं आपको पर्याप्त दूध देनेवाली हजारों गौएँ दूँगा; आप मुझे यह अपनी नन्दिनी गौ दे दीजिये। हे परन्तप! मैं यही प्रार्थना कर रहा हूँ॥ १२॥

वसिष्ठ बोले—हे राजन्! यह गौ होमके लिये हविष्य प्रदान करती है। अत: मैं इसे किसी प्रकार भी नहीं दे सकता। आपकी हजार गौएँ आपके ही पास रहें॥ १३॥

विश्वामित्र बोले—हे साधो! मैं आपकी इच्छाके अनुसार दस हजार अथवा एक लाख गौएँ दे रहा हूँ, आप नन्दिनी मुझे दे दीजिये, नहीं तो मैं इसे बलपूर्वक ग्रहण कर लूँगा॥ १४॥

वसिष्ठ बोले—हे नृपते! जैसी आपकी रुचि हो, आप इसे बलपूर्वक अभी ले लीजिये, किंतु हे राजन्! मैं तो इस नन्दिनीको स्वेच्छासे अपने आश्रमसे आपको नहीं दूँगा॥ १५॥

यह सुनकर राजा विश्वामित्रने अपने महाबली अनुचरोंको आदेश दिया कि तुमलोग इस नन्दिनी गौको ले चलो। तब बलके अभिमानमें चूर उन अनुचरोंने आक्रमण करके उस धेनुको बलपूर्वक बाँधकर पकड़ लिया॥ १६ $^{1}/_{2}$॥

तब आँखोंमें आँसू भरकर काँपती हुई उस नन्दिनीने मुनिसे कहा—हे मुने! आप मुझे क्यों त्याग रहे हैं? ये सब मुझे बाँधकर खींच रहे हैं॥ १७ $^{1}/_{2}$॥

वसिष्ठजीने उससे कहा—हे उत्तम दूध देनेवाली नन्दिनी! मैं तुम्हें त्याग नहीं रहा हूँ। ये राजा तुम्हें बलपूर्वक ले जा रहे हैं; जबकि मैंने अभी इनका स्वागत किया है।

हे शुभे! मैं क्या करूँ? मैं अपने मनसे तुम्हें छोड़ना नहीं चाहता॥ १८-१९॥

मुनिके ऐसा कहनेपर वह धेनु क्रोधित हो गयी और कर्कश शब्दोंवाला अत्यन्त भयंकर हम्भारव करने लगी॥ २०॥

उसी समय उसके शरीरसे महाभयंकर दैत्य 'ठहरो-ठहरो'—ऐसा कहते हुए निकल पड़े। वे शस्त्र धारण किये हुए थे और उनका शरीर कवचसे ढँका हुआ था॥ २१॥

उन्होंने सारी सेनाका संहार कर दिया और नन्दिनीको उनसे छुड़ा लिया। तब अत्यन्त व्यथित होकर राजा विश्वामित्र अकेले ही घर लौट गये। [वे अपने मनमें सोचने लगे—] हाय! मैं कितना पापी एवं दीनात्मा हूँ। क्षत्रियबलकी निन्दा करते हुए वे विश्वामित्र ब्राह्मणके बलको महान् तथा दुराराध्य समझकर तप करने लगे। महावनमें अनेक वर्षोंतक कठोर तपस्या करके विश्वामित्रने क्षात्रधर्मका त्याग करके अन्तमें ऋषित्व प्राप्त कर लिया॥ २२—२४॥

अतः हे राजेन्द्र! आप भी ऐसा अद्भुत वैर न करें; क्योंकि तपस्वियोंके साथ किया जानेवाला युद्ध निश्चित ही कुलका नाश करनेवाला होता है॥ २५॥

अतः आप तपोनिधि मुनिवर भारद्वाजके पास अभी जाइये और उन्हें आश्वासन दीजिये। हे राजेन्द्र! सुदर्शनको यहीं छोड़ दीजिये, जिससे वह आनन्दपूर्वक रह सके॥ २६॥

हे राजन्! यह दीन बालक आपका क्या अहित कर सकेगा? ऐसे दुर्बल एवं अनाथ बालकके प्रति आपका यह वैरभाव व्यर्थ है॥ २७॥

हे नृपश्रेष्ठ! सर्वत्र दया करनी चाहिये। यह संसार सदा दैवके अधीन रहता है। ईर्ष्या करनेसे क्या लाभ? जो होनी होगी, वह तो होकर ही रहेगी॥ २८॥

हे राजन्! दैवयोगसे कभी वज्र तृण बन जाता है और किसी समय तृण वज्र बन जाता है; इसमें सन्देह नहीं है। दैवयोगसे ही खरगोश सिंहको और मच्छर हाथीको मार देता है। अतः हे मेधाविन्! आप दुःसाहस छोड़िये तथा मेरा हितकर वचन मानिये॥ २९-३०॥

व्यासजी बोले—[हे जनमेजय!] मन्त्रीकी यह बात सुनकर नृपश्रेष्ठ राजा युधाजित् भारद्वाजमुनिको सिर झुकाकर प्रणाम करके अपने पुरको चले गये। तब रानी मनोरमा भी निश्चिन्त हो गयीं और उस आश्रममें रहती हुई अपने सत्यव्रती पुत्र सुदर्शनका पालन करने लगीं॥ ३१-३२॥

अब वह सुन्दर कुमार मुनिबालकोंके साथ सर्वत्र निर्भय होकर क्रीड़ा करता हुआ दिनोंदिन बढ़ने लगा। एक दिन सुदर्शनके पास आये हुए विदल्लको किसी मुनिकुमारने 'क्लीब' इस नामसे पुकारा॥ ३३-३४॥

उसे सुनकर सुदर्शनने उसके एकाक्षर 'क्ली' शब्दको स्पष्टरूपसे धारण कर लिया और उसे अनुस्वारयुक्त (क्लीं) करके बार-बार उसका उच्चारण करने लगा॥ ३५॥

बालकने इस कामराज नामक बीजमन्त्रको मनसे ग्रहण कर लिया और उसे हृदयंगम करके आदरपूर्वक जपना प्रारम्भ कर दिया। हे महाराज! दैवयोगसे ही उस बालक सुदर्शनको यह कामराज नामक अद्भुत बीजमन्त्र स्वयमेव प्राप्त हो गया॥ ३६-३७॥

उस समय केवल पाँच वर्षकी अवस्थामें ही वह ऋषि तथा छन्दसे विहीन और ध्यान तथा न्यासरहित मन्त्र प्राप्तकर मन-ही-मन उसे जपता हुआ खेलता तथा सोता था; उस मन्त्रको स्वयं सबका सार समझकर वह सुदर्शन उसे कभी नहीं भूलता था॥ ३८-३९॥

मुनिने ग्यारहवें वर्षमें उस राजकुमारका उपनयन संस्कार किया और उसे वेद पढ़ाया एवं सांगोपांग धनुर्वेद तथा नीतिशास्त्रकी विधिवत् शिक्षा दी। उस बालकने उसी मन्त्रके प्रभावसे समस्त विद्याओंका सम्यक् अभ्यास कर लिया॥ ४०-४१॥

एक बार उसने देवीके रूपका प्रत्यक्ष दर्शन भी किया। उस समय वे लाल वस्त्र धारण किये थीं, उनके विग्रहका रंग भी लाल था और उनके सभी अंगोंमें रक्तवर्णके ही आभूषण सुशोभित हो रहे थे। [इस प्रकारका दिव्य स्वरूप धारणकर] वाहन गरुडपर विराजमान उन अद्भुत वैष्णवी शक्तिको देखकर राजकुमार सुदर्शनके मुखमण्डलपर प्रसन्नता छा गयी॥ ४२-४३॥

इस प्रकार समस्त विद्याओंका रहस्य जाननेवाला वह

सुदर्शन उस वनमें रहकर जगदम्बाकी उपासना करता हुआ नदीतटपर विचरण करने लगा। उसी वनमें भगवती जगदम्बाने उसे धनुष, अनेक तीक्ष्ण बाण, तूणीर तथा कवच प्रदान किये॥ ४४-४५॥

इसी समय सभी शुभ लक्षणोंसे युक्त 'शशिकला' नामसे विख्यात काशिराजकी परम प्रिय पुत्रीने उस वनमें रहनेवाले समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न, पराक्रमी तथा दूसरे कामदेवके समान प्रतीत होनेवाले राजकुमार सुदर्शनके विषयमें सुना॥ ४६-४७॥

बन्दीजनोंके मुखसे अतिसम्मानित राजकुमारके विषयमें सुनकर शशिकलाने मन-ही-मन बुद्धिपूर्वक उसे पतिरूपमें वरण करनेका निश्चय कर लिया॥ ४८॥

[उसी दिन] आधी रातको जगदम्बा स्वप्नमें शशिकलाके पास आकर स्थित हो गयीं और उसे आश्वस्त करके यह

वचन बोलीं—'हे सुश्रोणि! सुदर्शन मेरा भक्त है, तुम उसीको अपना पति स्वीकार कर लो। हे भामिनि! मेरी आज्ञासे वह तुम्हारी सब कामनाएँ पूर्ण करेगा'॥ ४९-५०॥

इस प्रकार स्वप्नमें भगवतीका मनोहर स्वरूप देखकर तथा उनके इस वचनको स्मरण करके परम मानिनी शशिकला प्रसन्न हो गयी॥ ५१॥

वह प्रसन्नताके साथ उठ गयी। उसकी माताने उसे हर्षित देखकर बार-बार प्रसन्नताका कारण पूछा, किंतु उस सुन्दरीने अति लज्जाके कारण कुछ नहीं बताया॥ ५२॥

स्वप्नका बार-बार स्मरण करके प्रसन्नतासे युक्त होकर वह जोरसे हँस पड़ती थी। तब उसने अपनी एक अन्य सखीसे स्वप्नका सारा वृत्तान्त विस्तारपूर्वक कह दिया॥ ५३॥

किसी दिन वह विशालनयनी शशिकला अपनी सखीके साथ चम्पाके वृक्षोंसे सुशोभित एक सुन्दर उपवनमें विहारके लिये गयी। वहाँ पुष्प चुनती हुई वह कुमारी एक चम्पावृक्षके नीचे खड़ी हो गयी। तभी उसने मार्गमें शीघ्रतापूर्वक आते हुए किसी ब्राह्मणको देखा। उस ब्राह्मणको प्रणाम करके सुन्दरी शशिकलाने मधुर वाणीमें कहा—हे महाभाग! आप किस देशसे आये हैं?॥ ५४—५६॥

ब्राह्मणने कहा—हे बाले! एक कार्यवश भारद्वाजमुनिके आश्रमसे मेरा आगमन हुआ है। तुम क्या पूछ रही हो; मुझे बताओ॥ ५७॥

शशिकला बोली—हे महाभाग! उस आश्रममें अत्यन्त प्रशंसनीय, संसारमें सबसे बढ़कर तथा विशेषरूपसे दर्शनीय कौन-सी वस्तु है?॥ ५८॥

ब्राह्मणने कहा—हे सुश्रोणि! महाराज ध्रुवसन्धिके पुत्र श्रीमान् सुदर्शन वहाँ रहते हैं। पुरुषोंमें श्रेष्ठ वे सुदर्शन अपने नामके अनुरूप ही हैं॥ ५९॥

हे सुन्दरि! जिसने राजकुमार सुदर्शनको नहीं देखा, मैं तो उसके नेत्रोंको अत्यन्त निष्फल मानता हूँ॥ ६०॥

सृष्टिकी अभिलाषावाले ब्रह्माने कौतूहलवश उन एक सुदर्शनमें सभी गुणोंको भर दिया है। अतः गुणोंकी खान सुदर्शनको ही मैं देखनेयोग्य मानता हूँ॥ ६१॥

वे राजकुमार तुम्हारे अनुरूप हैं और तुम्हारे पति होनेयोग्य हैं। मणि और कांचनकी भाँति यह तुम दोनोंका संयोग पहलेसे ही निश्चित हो चुका है॥ ६२॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत तृतीय स्कन्धका 'विश्वामित्रकी कथाके अनन्तर राजपुत्रका कामबीजप्राप्तिवर्णन' नामक सत्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १७॥

अठारहवाँ अध्याय

राजकुमारी शशिकलाद्वारा मन-ही-मन सुदर्शनका वरण करना, काशिराजद्वारा स्वयंवरकी घोषणा, शशिकलाका सखीके माध्यमसे अपना निश्चय माताको बताना

व्यासजी बोले—उस ब्राह्मणका वचन सुनकर सुन्दरी शशिकला प्रेमविभोर हो गयी और वह ब्राह्मण इतना कहकर शान्तभावसे उस स्थानसे चला गया॥ १॥

उस श्रेष्ठ ब्राह्मणके चले जानेपर वह सुन्दरी पूर्व अनुरागसे तथा विप्रकी बातोंसे प्रेमातिरेकके कारण अत्यधिक अधीर हो उठी॥ २॥

तदनन्तर उस शशिकलाने अपनी इच्छाके अनुसार चलनेवाली एक सखीसे कहा कि रससे अनभिज्ञ तथा उत्तम कुलमें उत्पन्न उस राजकुमारके विषयमें सुनकर मेरे शरीरमें विकार उत्पन्न हो गया है। इस समय कामदेव मुझे अत्यधिक पीड़ा दे रहा है। अब मैं क्या करूँ और कहाँ जाऊँ?॥ ३-४॥

जबसे मैंने स्वप्नमें दूसरे कामदेवके सदृश उस राजकुमारको देखा है, तभीसे विरहसे आकुल हुआ मेरा कोमल मन अत्यधिक सन्तप्त हो रहा है॥ ५॥

हे भामिनि! इस समय मेरे शरीरमें लगा हुआ चन्दन विषके समान, यह माला सर्पके तुल्य तथा चन्द्रमाकी किरणें अग्निसदृश प्रतीत हो रही हैं॥ ६॥

इस समय महलमें, वनमें, बावलीमें तथा पर्वतपर—कहीं भी मेरे चित्तको शान्ति नहीं मिल पा रही है। नानाविध सुख-साधनोंसे दिनमें अथवा रातमें किसी भी समय सुखकी अनुभूति नहीं हो रही है॥ ७॥

शय्या, ताम्बूल, गायन तथा वादन—इनमें कोई भी चीजें मेरे मनको प्रसन्न नहीं कर पा रही हैं और न तो मेरे नेत्रोंको कोई भी वस्तु तृप्त ही कर पा रही है॥ ८॥

[जी करता है] उसी वनमें चली जाऊँ जहाँ वह निष्ठुर विद्यमान है, किंतु कुलकी लज्जाके कारण भयभीत हूँ, और फिर अपने पिताके अधीन भी हूँ॥ ९॥

क्या करूँ, मेरे पिता अभी मेरा स्वयंवर भी नहीं आयोजित कर रहे हैं। [यदि स्वयंवर हुआ तो] मैं इच्छापूर्वक अपनेको सुदर्शनको समर्पित कर दूँगी॥ १०॥

यद्यपि दूसरे सैकड़ों समृद्धिशाली नरेश हैं, परंतु वे मुझे रमणीय नहीं लगते। राज्यहीन होते हुए भी इस सुदर्शनको मैं अधिक रमणीय मानती हूँ॥ ११॥

व्यासजी बोले—अकेला, निर्धन, बलहीन, वनवासी तथा फलका आहार करनेवाला होते हुए भी सुदर्शन उस शशिकलाके हृदयमें पूर्णरूपसे बस गया था। भगवतीके वाग्बीजमन्त्रके जपसे सुदर्शनको यह सिद्धि प्राप्त हो गयी थी। वह पूर्णरूपसे ध्यानमग्न होकर उस सर्वोत्तम मन्त्रका निरन्तर जप करता रहता था॥ १२-१३॥

एक बार स्वप्नमें सुदर्शनने उन अव्यक्त, पूर्ण ब्रह्मस्वरूपा, जगज्जननी, विष्णुमाया तथा सभी सम्पदा प्रदान करानेवाली भगवती अम्बिकाका दर्शन किया॥ १४॥

उसी समय शृंगवेरपुरके अधिपति निषादने सुदर्शनके पास आकर उसे सब प्रकारकी सामग्रियोंसे परिपूर्ण उत्तम रथ प्रदान किया। उस रथमें चार घोड़े जुते हुए थे और वह सुन्दर पताकासे सुशोभित था। निषादराजने राजकुमार सुदर्शनको विजयशाली समझकर उसे भेंटस्वरूप वह रथ दिया था। सुदर्शनने भी प्रेमपूर्वक उसे स्वीकार कर लिया और मित्ररूपमें आये हुए उस निषादका वन्य फल-मूलोंसे भलीभाँति सत्कार किया॥ १५—१७॥

तब आतिथ्य स्वीकार करके उस निषादराजके चले जानेपर वहाँके तपस्वी मुनिगण अत्यन्त प्रसन्न होकर सुदर्शनसे कहने लगे—हे राजकुमार! आप धैर्यवान् हैं; भगवतीकी कृपासे थोड़े ही दिनोंमें निश्चय ही अपना राज्य प्राप्त करेंगे; इसमें सन्देह नहीं है। हे सुव्रत! विश्वमोहिनी और वरदायिनी भगवती अम्बिका आपके ऊपर प्रसन्न हैं। अब आपको उत्तम सहायक भी मिल गया है, आप चिन्ता न करें॥ १८—२०॥

तत्पश्चात् उन व्रतधारी मुनियोंने मनोरमासे कहा—हे शुचिस्मिते! अब आपका पुत्र सुदर्शन शीघ्र ही

भूमण्डलका राजा होगा॥ २१॥

तब उस कोमलांगी मनोरमाने उनसे कहा—आपलोगोंका वचन सफल हो। हे विप्रगण! यह सुदर्शन आपलोगोंका सेवक है। सच्ची उपासनासे सब कुछ सम्भव हो जाता है, इसमें आश्चर्य ही क्या? [किंतु] उसके पास न सेना है, न मन्त्री हैं, न कोश है और न कोई सहायक ही है। [ऐसी दशामें] किस उपायसे मेरा पुत्र राज्य पानेके योग्य बन सकता है? आपलोग मन्त्रके पूर्णवेत्ता हैं, अतः आपलोगोंके आशीर्वचनोंसे मेरा यह पुत्र निश्चय ही राजा होगा; इसमें सन्देह नहीं है॥ २२—२४॥

व्यासजी बोले—रथपर सवार होकर मेधावी सुदर्शन जहाँ भी जाता था, वहाँ वह अपने तेजसे एक अक्षौहिणी सेनासे आवृत प्रतीत होता था। हे भूप! यह उस बीजमन्त्रका ही प्रभाव था, दूसरा कोई कारण नहीं; क्योंकि वह सुदर्शन सर्वदा प्रसन्नतापूर्वक उसी मन्त्रका जप किया करता था॥ २५-२६॥

जो मनुष्य किसी सद्गुरुसे कामराज नामक अद्भुत बीजमन्त्र ग्रहण करके शान्त होकर पवित्रतापूर्वक उसका जप करता है, वह अपनी सभी कामनाएँ पूर्ण कर लेता है॥ २७॥

हे नृपश्रेष्ठ! भूतलपर अथवा स्वर्गमें भी कोई ऐसा अत्यन्त दुर्लभ पदार्थ नहीं है, जो कल्याणकारिणी भगवतीके प्रसन्न होनेपर न मिल सके॥ २८॥

वे महान् मूर्ख, भाग्यहीन तथा रोगोंसे व्यथित होते हैं, जिनके मनमें जगदम्बाके अर्चन आदिमें विश्वास नहीं होता॥ २९॥

हे कुरुनन्दन! जो भगवती युगके आदिमें सब देवताओंकी माता कही गयी थीं, इसी कारण आदिमाता—इस नामसे विख्यात हैं; वे ही बुद्धि, कीर्ति, धृति, लक्ष्मी, शक्ति, श्रद्धा, मति और स्मृति आदि रूपोंसे समस्त प्राणियोंमें प्रत्यक्ष दिखायी देती हैं॥ ३०-३१॥

जो लोग मायासे मोहित हैं, वे उन्हें नहीं जान पाते। कुतर्क करनेवाले मनुष्य उन भुवनेश्वरी भगवती शिवाका भजन नहीं करते॥ ३२॥

ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, वरुण, यम, वायु, अग्नि, कुबेर, त्वष्टा, पूषा, दोनों अश्विनीकुमार, भग, आदित्य, वसु, रुद्र, विश्वेदेव एवं मरुद्गण—ये सभी देवता सृष्टि, पालन तथा संहार करनेवाली उन भगवतीका ध्यान करते हैं॥ ३३-३४॥

कौन ऐसा विद्वान् है, जो उन परमात्मिका शक्तिकी आराधना न करता हो? सुदर्शनने सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाली उन्हीं कल्याणकारिणी भगवतीको जान लिया था॥ ३५॥

वे विद्या तथा अविद्यास्वरूपा भगवती ही ब्रह्म हैं और अत्यन्त दुष्प्राप्य हैं। वे पराशक्ति योगद्वारा ही अनुभवगम्य हैं और मोक्ष चाहनेवाले लोगोंको विशेष प्रिय हैं॥ ३६॥

उन भगवतीके बिना परमात्माका स्वरूप जाननेमें कौन समर्थ है? जो तीन प्रकारकी सृष्टि करके सर्वात्मा भगवान्‌को दिखलाती हैं, उन्हीं भगवतीका मनसे सम्यक् चिन्तन करता हुआ राजकुमार सुदर्शन राज्य-प्राप्तिसे भी अधिक सुखका अनुभव करके वनमें रहता था॥ ३७-३८॥

उधर, वह शशिकला भी कामसे निरन्तर अत्यधिक पीड़ित रहती हुई नानाविध उपचारोंसे किसी प्रकार अपना दुःखित शरीर धारण किये हुए थी॥ ३९॥

इसी बीच उसके पिता सुबाहुने कन्या शशिकलाको वरकी अभिलाषिणी जानकर बड़ी सावधानीके साथ स्वयंवर आयोजित कराया॥ ४०॥

विद्वानोंने स्वयंवरके तीन प्रकार बताये हैं। वह क्षत्रिय राजाओंके विवाहहेतु उचित कहा गया है, अन्यके लिये नहीं। उनमें प्रथम इच्छास्वयंवर है, जिसमें कन्या अपने इच्छानुसार पति स्वीकार करती है। दूसरा पणस्वयंवर है, जिसमें किसी प्रकारका पण (शर्त) रखा जाता है। जैसे भगवान् श्रीरामने [जानकीके स्वयंवरमें] शिवधनुष तोड़ा था। तीसरा स्वयंवर शौर्यशुल्क है, जो शूरवीरोंके लिये कहा गया है। नृपश्रेष्ठ सुबाहुने उनमें इच्छास्वयंवरका आयोजन किया॥ ४१—४३॥

शिल्पियोंद्वारा बहुत-से मंच बनवाये गये और उनपर सुन्दर आसन बिछाये गये। तत्पश्चात् राजाओंके बैठनेयोग्य

विविध आकार-प्रकारके सभामण्डप बनवाये गये॥ ४४॥

इस प्रकार विवाहके लिये सम्पूर्ण सामग्री जुट जानेपर सुन्दर नेत्रोंवाली शशिकलाने दुःखित होकर अपनी सखीसे कहा—एकान्तमें जाकर तुम मेरी मातासे मेरा यह वचन कह दो कि मैंने अपने मनमें ध्रुवसन्धिके सुन्दर पुत्रका पतिरूपमें वरण कर लिया है। उन सुदर्शनके अतिरिक्त मैं किसी दूसरेको पति नहीं बनाऊँगी; क्योंकि स्वयं भगवतीने राजकुमार सुदर्शनको मेरा पति निश्चित कर दिया है॥ ४५—४७॥

व्यासजी बोले—उसके ऐसा कहनेपर उस मृदुभाषिणी सखीने शशिकलाकी माता विदर्भसुताके पास शीघ्र जाकर एकान्तमें उनसे मधुर वाणीमें कहा—'हे साध्वि! आपकी पुत्रीने अत्यन्त दुःखित होकर मेरे मुखसे आपको जो कहलाया है, उसे आप सुन लें और हे कल्याणि! इस समय शीघ्र ही उसका हित-साधन करें'। [उसका कथन है कि] भारद्वाजमुनिके आश्रममें जो ध्रुवसन्धिके पुत्र सुदर्शन रहते हैं, उनका मैं अपने मनमें पतिरूपमें वरण कर चुकी हूँ। अतः मैं किसी दूसरे राजाका वरण नहीं करूँगी॥ ४८—५०॥

व्यासजी बोले—वह वचन सुनकर रानीने राजाके आनेपर पुत्रीकी सारी बातें ज्यों-की-त्यों उनको बतायीं॥ ५१॥

उसे सुनकर राजा सुबाहु आश्चर्यमें पड़ गये और बार-बार मुसकराते हुए वे अपनी भार्या विदर्भराजकुमारीसे यथार्थ बात कहने लगे—॥ ५२॥

हे सुभ्रु! तुम तो यह जानती ही हो कि वह बालक राज्यसे निकाल दिया गया है और निर्जन वनमें अकेले ही अपनी माताके साथ रहता है। उसीके लिये राजा वीरसेन युधाजित्‌के द्वारा मार डाले गये। हे सुनयने! वह निर्धन योग्य पति कैसे हो सकता है?॥ ५३-५४॥

तुम यह बात पुत्री शशिकलासे कह दो कि बड़े-से-बड़े प्रतिष्ठित राजा इस स्वयंवरमें आनेवाले हैं। अतः उनके प्रति ऐसी अप्रिय बात वह कभी भी न बोले॥ ५५॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत तृतीय स्कन्धका 'शशिकलाके द्वारा माताके प्रति सन्देश-प्रेषण' नामक अठारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १८॥

उन्नीसवाँ अध्याय

माताका शशिकलाको समझाना, शशिकलाका अपने निश्चयपर दृढ़ रहना, सुदर्शन तथा अन्य राजाओंका स्वयंवरमें आगमन, युधाजित्‌द्वारा सुदर्शनको मार डालनेकी बात कहनेपर केरलनरेशका उन्हें समझाना

व्यासजी बोले—पतिके ऐसा कहनेपर रानीने सुन्दर मुसकानवाली उस कन्याको अपनी गोदमें बैठाकर उसे आश्वासन दे करके यह मधुर वचन कहा—हे सुदति! तुम मुझसे ऐसी अप्रिय एवं निष्प्रयोजन बात क्यों कह रही हो? हे सुव्रते! इस कथनसे तुम्हारे पिता बहुत दुःखित हो रहे हैं॥ १-२॥

वह सुदर्शन बड़ा ही अभागा, राजच्युत, आश्रयहीन और सेना तथा कोशसे विहीन है; बन्धु-बान्धवोंने उसका परित्याग कर दिया है। वह अपनी माताके साथ वनमें रहकर फल-मूल खाता है और अत्यन्त दुर्बल है। इसलिये वह मन्दभाग्य एवं वनवासी बालक सर्वथा तुम्हारे योग्य वर नहीं है॥ ३-४॥

हे पुत्रि! तुम्हारे योग्य अनेक राजकुमार यहाँ उपस्थित हैं; जो बुद्धिमान्, रूपवान्, सम्माननीय और राजचिह्नोंसे अलंकृत हैं। इसी सुदर्शनका एक कान्तिमान्, रूपसम्पन्न तथा सभी शुभ लक्षणोंसे युक्त भाई भी है, जो इस समय कोसलदेशमें राज्य करता है॥ ५-६॥

हे सुभ्रु! इसके अतिरिक्त मैंने एक और जो बात सुनी है, तुम उसे सुनो—राजा युधाजित् उस सुदर्शनका वध करनेके लिये सतत प्रयत्नशील रहता है॥ ७॥

उसने घोर संग्राम करके [इसके नाना] राजा वीरसेनको मारकर पुनः मन्त्रियोंके साथ मन्त्रणा करके

अपने दौहित्र शत्रुजित्को राज्यपर अभिषिक्त कर दिया है। इसके बाद भारद्वाजमुनिके आश्रममें शरणलिये उस सुदर्शनको मारनेकी इच्छासे वह वहाँ भी पहुँचा, किंतु मुनिके मना करनेपर अपने घर लौट गया॥ ८-९॥

शशिकला बोली—हे माता! मुझे तो वह वनवासी राजकुमार ही अत्यन्त अभीष्ट है। [पूर्वकालमें] शर्यातिकी आज्ञासे ही उनकी पतिव्रता पुत्री सुकन्या च्यवनमुनिके पास जाकर उनकी सेवामें तत्पर हो गयी थी। उसी प्रकार मैं पतिसेवा करूँगी; पतिकी सेवा-शुश्रूषा स्त्रियोंके लिये स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाली होती है। अपने पतिके लिये कपटरहित व्यवहार स्त्रियोंके लिये निश्चित रूपसे सुखदायक होता है॥ १०-११$^{१}/_{२}$॥

स्वयं भगवती उस सर्वश्रेष्ठ वरका वरण करनेके लिये मुझे स्वप्नमें आज्ञा दे चुकी हैं। अत: उनको छोड़कर मैं किसी अन्य राजकुमारका वरण कैसे करूँ? स्वयं भगवतीने मेरे चित्तकी भित्तिपर सुदर्शनको ही अंकित कर दिया है। अत: उस प्रिय सुदर्शनको छोड़कर मैं किसी अन्य राजकुमारको पति नहीं बनाऊँगी॥ १२-१३$^{१}/_{२}$॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] उस समय उस शशिकलाने अनेक प्रमाणोंके द्वारा विदर्भराजकुमारी अपनी माताको समझा दिया। तत्पश्चात् पुत्रीके द्वारा कही गयी सभी बातोंको महारानीने अपने पतिसे बताया॥ १४$^{१}/_{२}$॥

उधर शशिकलाने विवाहके कुछ दिनों पूर्व ही एक विश्वस्त तथा वेदनिष्ठ ब्राह्मणको शीघ्र ही वहाँ भेज दिया। [जाते समय उसने ब्राह्मणसे कहा कि] आप सुदर्शनके पास इस प्रकार जायँ, जिसे मेरे पिता न जान पायें॥ १५-१६॥

हे विभो! आप बहुत शीघ्र ही भारद्वाजके आश्रम पहुँचकर सुदर्शनको मेरी ओरसे कहिये कि मेरे पिताने मेरे विवाहार्थ एक स्वयंवर आयोजित किया है; उसमें अनेक बलवान् राजा आयेंगे, किंतु मैं तो मनसे अत्यन्त प्रेमपूर्वक हर तरहसे आपका वरण कर चुकी हूँ। हे देवोपम राजकुमार! मुझे भगवतीने स्वप्नमें आपको वरण करनेका आदेश दिया है। मैं विष खा लूँगी अथवा जलती हुई अग्निमें कूद पड़ूँगी, किंतु माता-पिताके द्वारा बहुत प्रेरित किये जानेपर भी मैं आपके अतिरिक्त किसी अन्यका वरण नहीं करूँगी; क्योंकि मैं मन, वचन तथा कर्मसे आपको अपना पति मान चुकी हूँ। भगवतीकी कृपासे हम दोनोंका कल्याण होगा। प्रारब्धको प्रबल मानकर आप इस स्वयंवरमें अवश्य आयें। यह सम्पूर्ण चराचर जगत् जिनके अधीन है तथा शंकर आदि सभी देवगण जिनके वशमें रहते हैं, उन भगवतीने जो आदेश दिया है, वह कभी भी असत्य नहीं होगा। हे ब्रह्मन्! आप उस राजकुमारसे यह सब एकान्तमें बताइयेगा। हे निष्पाप! आप वही कीजियेगा, जिससे मेरा काम बन जाय॥ १७—२३$^{१}/_{२}$॥

ऐसा कहकर और दक्षिणा देकर शशिकलाने उस ब्राह्मणको भेज दिया। वह ब्राह्मण सुदर्शनसे सारी बातें कहकर शीघ्र ही वापस आ गया। उन बातोंको जानकर राजकुमार सुदर्शनने स्वयंवरमें जानेका निश्चय कर लिया; उन भारद्वाजमुनिने भी उसे आदरपूर्वक भेज दिया॥ २४-२५$^{१}/_{२}$॥

व्यासजी बोले—तब अत्यधिक दु:खसे व्याकुल, काँपती हुई तथा भयभीत मनोरमा गमनके लिये तत्पर अपने पुत्र सुदर्शनसे आँखोंमें आँसू भरकर बोली—पुत्र! तुम इस समय राजाओंके उस समाजमें कहाँ जा रहे हो? तुम अकेले हो और तुमसे शत्रुता रखनेवाला राजा युधाजित् तुम्हें मारनेकी इच्छासे उस स्वयंवरमें अवश्य आयेगा, फिर तुम क्या सोचकर वहाँ जा रहे हो? तुम्हारा कोई सहायक भी नहीं है। इसलिये हे पुत्र! वहाँ मत जाओ। तुम ही मेरे एकमात्र पुत्र हो और मैं अति दीन हूँ तथा मुझ आश्रयहीनके लिये तुम्हीं एकमात्र आधार हो। हे महाभाग! इस समय तुम मुझे निराश मत करो। जिसने मेरे पिताका वध कर दिया है, वह राजा युधाजित् भी वहाँ आयेगा और वहाँ तुझ अकेले गये हुएको मार डालेगा॥ २६—३०$^{१}/_{२}$॥

सुदर्शन बोला—होनी तो होकर रहती है, इस विषयमें सन्देह नहीं करना चाहिये। हे कल्याणि! जगज्जननीके आदेशसे मैं आज स्वयंवरमें जा रहा हूँ। हे वरानने! तुम क्षत्राणी हो, अत: इस विषयमें चिन्ता मत

करो। भगवतीकी सदा अपने ऊपर कृपा रहनेके कारण मैं किसीसे भी भयभीत नहीं होता॥ ३१—३२१/२॥

व्यासजी बोले—ऐसा कहकर रथपर आरूढ़ होकर स्वयंवरमें जानेके लिये उद्यत पुत्र सुदर्शनको देखकर मनोरमाने इन आशीर्वादोंसे उसका अनुमोदन किया—भगवती अम्बिका आगेसे, पार्वती पीछेसे, अपर्णा दोनों पार्श्वभागमें तथा शिवा सर्वत्र तुम्हारी रक्षा करें। विषम मार्गमें वाराही, किसी भी प्रकारके दुर्गम स्थानोंमें दुर्गा और भयानक संग्राममें परमेश्वरी कालिका तुम्हारी रक्षा करें। उस मण्डपमें देवी मातंगी, स्वयंवरमें भगवती सौम्या तथा भव-बन्धनसे मुक्त करनेवाली भवानी राजाओंके बीचमें तुम्हारी रक्षा करें। इसी प्रकार पर्वतीय दुर्गम स्थानोंमें गिरिजा, चौराहोंपर देवी चामुण्डा तथा वनोंमें सनातनी कामगादेवी तुम्हारी रक्षा करें। हे रघूद्वह! विवादमें भगवती वैष्णवी तुम्हारी रक्षा करें। हे सौम्य! शत्रुओंके साथ युद्धमें भैरवी तुम्हारी रक्षा करें। जगत्‌को धारण करनेवाली सच्चिदानन्दस्वरूपिणी महामाया भुवनेश्वरी सभी स्थानोंपर सर्वदा तुम्हारी रक्षा करें॥ ३३—३९॥

व्यासजी बोले—ऐसा कहकर भयसे व्याकुल तथा काँपती हुई उसकी माता मनोरमाने उससे कहा—मैं भी तुम्हारे साथ अवश्य चलूँगी। हे पुत्र! मैं तुम्हारे बिना आधे क्षण भी यहाँ नहीं रह सकती, अतएव तुम्हारी जहाँ जानेकी इच्छा है, वहीं मुझे भी अपने साथ ले चलो॥ ४०-४१॥

तब ऐसा कहकर अपनी दासीको साथ लेकर माता मनोरमा चल पड़ीं। ब्राह्मणोंसे आशीर्वाद प्राप्त करके वे सभी प्रसन्नतापूर्वक चल पड़े॥ ४२॥

इसके बाद वह रघुवंशी सुदर्शन एक रथपर आरूढ़ होकर वाराणसी पहुँचा। राजा सुबाहुको उसके आनेकी जानकारी होनेपर उन्होंने आदर-सम्मान आदिके द्वारा उसका सत्कार किया। उन लोगोंके निवासके लिये भवन तथा अन्न-जल आदिकी व्यवस्था कर दी तथा उनकी सेवा-शुश्रूषाहेतु सेवकको भी नियुक्त कर दिया॥ ४३-४४॥

इसके बाद वहाँ अनेक देशोंके राजा-महाराजा एकत्र हुए। वहाँ अपने नातीको साथ लेकर युधाजित् भी आया॥ ४५॥

करूषाधिपति, मद्रदेशके महाराज, वीर सिन्धुराज, युद्धकुशल माहिष्मतीनरेश, पंचालपति, पर्वतीय राजा, कामरूपदेशके अति पराक्रमी महाराज, कर्णाटकनरेश, चोलराज और महाबली विदर्भनरेश वहाँ आये थे॥ ४६-४७॥

उन राजाओंकी कुल मिलाकर तिरसठ अक्षौहिणी सेना थी। वहाँ सर्वत्र स्थित उन सैनिकोंसे वह वाराणसी नगरी पूरी तरहसे घिर गयी॥ ४८॥

इनके अतिरिक्त अन्य बहुत-से राजा भी स्वयंवर देखनेकी इच्छासे बड़े-बड़े हाथियोंपर आरूढ़ होकर उस स्वयंवरमें सम्मिलित हुए॥ ४९॥

उस समय सभी राजकुमार आपसमें मिलकर कहने लगे कि राजकुमार सुदर्शन भी निश्चिन्त होकर यहाँ आया है। वह महाबुद्धिमान् सूर्यवंशी सुदर्शन अपनी माताके साथ इस समय अकेला ही रथपर चढ़कर विवाहके लिये यहाँ आ पहुँचा है। सैन्यशक्तिसे सम्पन्न तथा शस्त्रास्त्रसे सुसज्जित इन राजकुमारोंको छोड़कर क्या वह राजकुमारी बड़ी भुजाओंवाले इस सुदर्शनका वरण करेगी?॥ ५०—५२॥

इसके बाद राजा युधाजित्‌ने उन नरेशोंसे कहा—राजकुमारीको प्राप्त करनेके लिये मैं इसे मार डालूँगा, इसमें कोई संशय नहीं है॥ ५३॥
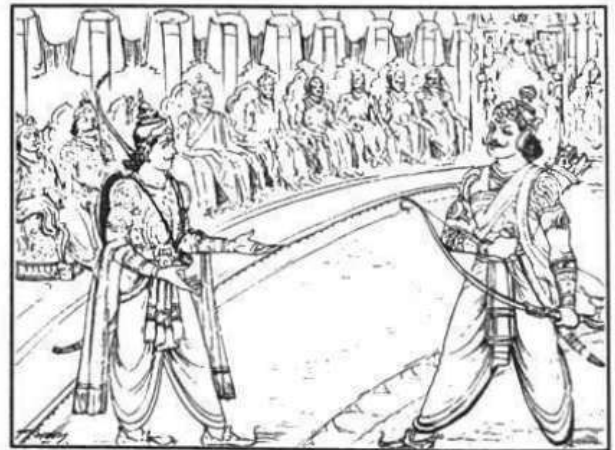
तब महान् नीतिज्ञ केरलनरेशने उस युधाजित्‌से कहा—हे राजन्! इच्छास्वयंवरमें युद्ध नहीं करना चाहिये। यह शुल्कस्वयंवर भी नहीं है, अतः कन्याका बलपूर्वक हरण भी नहीं किया जाना चाहिये। इसमें तो

कन्याकी इच्छासे पति चुनना निर्धारित है; तो फिर इसमें विवाद कैसा?॥ ५४-५५॥

हे नृपश्रेष्ठ! आपने पहले तो इस सुदर्शनको अन्यायपूर्वक राज्यसे निकाल दिया और अपने दौहित्रको बलपूर्वक उस राज्यका स्वामी बना दिया॥ ५६॥

हे महाभाग! यह सूर्यवंशी राजकुमार कोसल-नरेशका सुपुत्र है। इस निरपराध राजकुमारका वध आप क्यों करेंगे?॥ ५७॥

हे नृपोत्तम! आपको अन्यायका फल अवश्य ही मिलेगा। हे आयुष्मन्! इस संसारपर शासन करनेवाला कोई और ही जगत्पति परमेश्वर है॥ ५८॥

धर्मकी जय होती है, अधर्मकी नहीं। सत्यकी जय होती है, असत्यकी नहीं। अतएव हे राजेन्द्र! आप अन्याय न कीजिये और इस प्रकारके पापमय विचारका सर्वथा परित्याग कर दीजिये॥ ५९॥

आपका दौहित्र यहाँ आया ही है। वह भी अत्यन्त रूपवान् और राज्य तथा लक्ष्मीसे सम्पन्न है; तब भला कन्या उसका वरण क्यों नहीं करेगी?॥ ६०॥

अन्य एकसे बढ़कर एक बलवान् राजकुमार आये हैं। इस स्वयंवरमें कन्या शशिकला किसी भी राजकुमारको अपनी इच्छासे चुन लेगी॥ ६१॥

हे राजागण! अब आप ही लोग बतायें कि इस प्रकारके विवाहमें विवाद ही क्या? विवेकवान् पुरुषको इस विषयमें परस्पर विरोधभाव नहीं रखना चाहिये॥ ६२॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत तृतीय स्कन्धका 'राजसंवादवर्णन' नामक उन्नीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १९॥

बीसवाँ अध्याय

राजाओंका सुदर्शनसे स्वयंवरमें आनेका कारण पूछना और सुदर्शनका उन्हें स्वप्नमें भगवतीद्वारा दिया गया आदेश बताना, राजा सुबाहुका शशिकलाको समझाना, परंतु उसका अपने निश्चयपर दृढ़ रहना

व्यासजी बोले—हे महाभाग! तब महाराज केरल-नरेशके ऐसा कहनेपर राजा युधाजित्ने कहा—॥ १॥

हे पृथ्वीपते! आपने अभी-अभी जो कहा है, क्या यही नीति है? राजाओंके समाजमें आप तो सत्यवादी तथा जितेन्द्रिय माने जाते हैं॥ २॥

हे कुलोद्वह! हे राजन्! योग्य राजाओंके रहते हुए एक अयोग्य व्यक्ति कन्यारत्नको प्राप्त कर ले, क्या यही न्याय आपको अच्छा लगता है?॥ ३॥

एक सियार सिंहके भागको खानेका अधिकारी कैसे हो सकता है? उसी प्रकार क्या यह सुदर्शन इस कन्यारत्नको पानेकी योग्यता रखता है?॥ ४॥

ब्राह्मणोंका बल वेद है और राजाओंका बल धनुष। हे महाराज! क्या मैं इस समय अन्यायपूर्ण बात कह रहा हूँ?॥ ५॥

राजाओंके विवाहमें बलको ही शुल्क कहा गया है। यहाँ जो भी बलशाली हो, वह कन्यारत्नको प्राप्त कर ले; बलहीन इसे कदापि नहीं पा सकता॥ ६॥

अतएव कन्याके लिये कोई शर्त निर्धारित करके ही राजकुमारीका विवाह हो—यही नीति इस अवसरपर अपनायी जानी चाहिये; अन्यथा राजाओंमें परस्पर घोर कलहकी स्थिति उत्पन्न हो जायगी॥ ७॥

इस प्रकार वहाँ राजाओंमें परस्पर विवाद उत्पन्न हो जानेपर नृपश्रेष्ठ सुबाहु सभामें बुलाये गये॥ ८॥

उन्हें बुलवाकर तत्त्वदर्शी राजाओंने उनसे कहा—हे राजन्! इस विवाहमें आप राजोचित नीतिका अनुसरण करें। हे राजन्! आप क्या करना चाहते हैं, उसे सावधान होकर बतायें। हे नृप! आप अपने मनसे इस कन्याको किसे प्रदान करना पसन्द करते हैं?॥ ९-१०॥

सुबाहु बोले—मेरी पुत्रीने मन-ही-मन सुदर्शनका वरण कर लिया है। इसके लिये मैंने उसे बहुत रोका,

किंतु वह मेरी बात नहीं मानती। मैं क्या करूँ? मेरी पुत्रीका मन वशमें नहीं है और यह सुदर्शन भी निर्भीक होकर यहाँ अकेले आ गया है॥ ११-१२॥

व्यासजी बोले—तत्पश्चात् सभी वैभवशाली राजाओंने सुदर्शनको बुलवाया। उस शान्तस्वभाव सुदर्शनसे राजाओंने सावधान होकर पूछा—हे राजपुत्र! हे महाभाग! हे सुव्रत! तुम्हें यहाँ किसने बुलाया है, जो तुम इस राजसमाजमें अकेले ही चले आये हो?॥ १३-१४॥

तुम्हारे पास न सेना है, न मन्त्री हैं, न कोश है और न अधिक बल ही है। हे महामते! तुम यहाँ किसलिये आये हो? उसे बताओ॥ १५॥

युद्धकी अभिलाषा रखनेवाले बहुत-से राजागण इस कन्याको प्राप्त करनेकी इच्छासे अपनी-अपनी सेनासहित इस समाजमें विद्यमान हैं। यहाँ तुम क्या करना चाहते हो?॥ १६॥

तुम्हारा शूरवीर भाई शत्रुजित् भी एक महान् सेनाके साथ राजकुमारीको प्राप्त करनेकी इच्छासे यहाँ आया हुआ है और उसकी सहायता करनेके लिये महाबाहु युधाजित् भी आये हैं॥ १७॥

हे राजेन्द्र! तुम जाओ अथवा रहो। हमने तो सारी वास्तविकता तुम्हें बतला दी; क्योंकि तुम सेना-विहीन हो। हे सुव्रत! अब तुम्हारी जो इच्छा हो, वह करो॥ १८॥

सुदर्शन बोला—मेरे पास न सेना है, न कोई सहायक है, न खजाना है, न सुरक्षित किला है, न मित्र हैं, न सुहृद् हैं तथा न तो मेरी रक्षा करनेवाले कोई राजा ही हैं॥ १९॥

यहाँपर स्वयंवर होनेका समाचार सुनकर उसे देखनेके लिये मैं यहाँ आया हूँ। देवी भगवतीने स्वप्नमें मुझे यहाँ आनेकी प्रेरणा दी है; इसमें सन्देह नहीं है॥ २०॥

मेरी अन्य कोई अभिलाषा नहीं है। मुझे यहाँ आनेके लिये जगज्जननी भगवतीने आदेश दिया है। उन्होंने जो विधान रच दिया होगा, वह होकर ही रहेगा; इसमें कोई संशय नहीं है॥ २१॥

हे राजागण! इस संसारमें मेरा कोई शत्रु नहीं है। मैं सर्वत्र भवानी जगदम्बाको विराजमान देख रहा हूँ॥ २२॥

हे राजकुमारो! जो कोई भी प्राणी मुझसे शत्रुता करेगा, उसे महाविद्या जगदम्बा दण्डित करेंगी; मैं तो वैर-भाव जानता ही नहीं॥ २३॥

हे श्रेष्ठ राजाओ! जो होना है, वह अवश्य ही होगा; उसके विपरीत कुछ भी नहीं हो सकता। अत: इस विषयमें क्या चिन्ता की जाय? मैं तो सदा प्रारब्धपर भरोसा करता हूँ?॥ २४॥

हे श्रेष्ठ राजाओ! देवताओं, दानवों, मनुष्यों तथा सभी प्राणियोंमें एकमात्र जगदम्बाकी शक्ति ही विद्यमान है। उनके अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं है॥ २५॥

हे महाराजाओ! वे जिस मनुष्यको राजा बनाना चाहती हैं, उसे राजा बना देती हैं और जिसे निर्धन बनाना चाहती हैं, उसे निर्धन बना देती हैं; तब मुझे किस बातकी चिन्ता?॥ २६॥

हे राजाओ! ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवता भी उन महाशक्तिके बिना हिलने-डुलनेमें भी समर्थ नहीं हैं, तब मुझे क्या चिन्ता?॥ २७॥

मैं शक्तिसम्पन्न हूँ या शक्तिहीन, जैसा भी हूँ वैसा आपके समक्ष हूँ। हे राजाओ! मैं उन्हीं भगवतीकी आज्ञासे ही इस स्वयंवरमें आया हुआ हूँ॥ २८॥

वे भगवती जो चाहेंगीं, सो करेंगीं। मेरे सोचनेसे क्या होगा? मैं यह सत्य कह रहा हूँ, इस विषयमें शंका नहीं करनी चाहिये॥ २९॥

हे राजाओ! जय अथवा पराजयमें मुझे अणुमात्र भी लज्जा नहीं है। लज्जा तो उन भगवतीको होगी; क्योंकि मैं तो सर्वथा उन्हींके अधीन हूँ॥ ३०॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] उस सुदर्शनकी यह बात सुनकर सभी श्रेष्ठ राजागण उसके निश्चयको जान गये और एक-दूसरेको देखकर उन राजाओंने सुदर्शनसे कहा—हे साधो! आपने सत्य कहा है, आपका कथन

कभी मिथ्या नहीं हो सकता। तथापि उज्जयिनीपति महाराज युधाजित् आपको मार डालना चाहते हैं। हे महामते! हमें आपके ऊपर दया आ रही है, इसीलिये हमने आपको यह सब बता दिया। हे अनघ! अब आपको जो उचित जान पड़े, वैसा मनसे खूब सोच-समझकर कीजिये॥ ३१—३३॥

सुदर्शन बोला—आप सब बड़े कृपालु एवं सहृदय-जनोंने सत्य ही कहा है, किंतु हे श्रेष्ठ राजागण! अब मैं अपनी पूर्वकथित बात फिरसे क्या दोहराऊँ!॥ ३४॥

किसीकी भी मृत्यु किसीसे भी कभी भी नहीं हो सकती; क्योंकि यह सम्पूर्ण चराचर जगत् तो दैवके अधीन है॥ ३५॥

यह जीव भी स्वयं अपने वशमें नहीं है; यह सदा अपने कर्मके अधीन रहता है। तत्त्वदर्शी विद्वानोंने उस कर्मके तीन प्रकार बतलाये हैं—संचित, वर्तमान तथा प्रारब्ध। यह सम्पूर्ण जगत् काल, कर्म तथा स्वभावसे व्याप्त है॥ ३६-३७॥

बिना कालके आये देवता भी किसी मनुष्यको मारनेमें समर्थ नहीं हो सकते। किसीको भी मारनेवाला तो निमित्तमात्र होता है; वास्तविकता यह है कि सभीको अविनाशी काल ही मारता है॥ ३८॥

जैसे शत्रुओंका शमन करनेवाले मेरे पिताको सिंहने मार डाला। वैसे ही मेरे नानाको भी युद्धमें युधाजित्ने मार डाला॥ ३९॥

प्रारब्ध पूरा हो जानेपर करोड़ों प्रयत्न करनेपर भी अन्ततः मनुष्य मर ही जाता है और दैवके अनुकूल रहनेपर बिना किसी रक्षाके ही वह हजारों वर्षोंतक जीवित रहता है॥ ४०॥

हे धर्मनिष्ठ राजाओ! मैं युधाजित्से कभी नहीं डरता। मैं दैवको ही सर्वोपरि मानकर पूर्णरूपसे निश्चिन्त रहता हूँ॥ ४१॥

मैं नित्य-निरन्तर भगवतीका स्मरण करता रहता हूँ। विश्वकी जननी वे भगवती ही कल्याण करेंगी॥ ४२॥

पूर्वजन्ममें किये गये शुभ अथवा अशुभ कर्मोंका फल प्राणीको भोगना ही पड़ता है; तो फिर अपने द्वारा किये गये कर्मका फल भोगनेमें विवेकी पुरुषोंको शोक कैसा?॥ ४३॥

अपने द्वारा उपार्जित कर्मफल भोगनेमें दुःख प्राप्त होनेके कारण अज्ञानी तथा अल्पबुद्धिवाला प्राणी निमित्त कारणके प्रति शत्रुता करने लगता है॥ ४४॥

उनकी भाँति मैं वैर, शोक तथा भयको नहीं जानता। अतः मैं राजाओंके इस समाजमें भयरहित होकर आया हुआ हूँ॥ ४५॥

जो होना है, वह तो होकर ही रहेगा। मैं तो भगवतीके आदेशसे इस उत्कृष्ट स्वयंवरको देखनेकी अभिलाषासे यहाँ अकेला ही आया हूँ॥ ४६॥

मैं भगवतीके वचनको ही प्रमाण मानता हूँ और उनकी आज्ञाके अधीन रहता हुआ मैं अन्य किसीको नहीं जानता। उन्होंने सुख-दुःखका जो विधान कर दिया है, वही प्राप्त होगा, इसके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं॥ ४७॥

हे श्रेष्ठ राजाओ! युधाजित् सुखी रहें। मेरे मनमें उनके प्रति वैरभाव नहीं है। जो मुझसे शत्रुता करेगा, वह उसका फल पायेगा॥ ४८॥

व्यासजी बोले—उस सुदर्शनके इस प्रकार कहनेपर वहाँ उपस्थित सभी राजा अत्यन्त प्रसन्न हो गये। वह भी अपने निवासमें आकर शान्तभावसे बैठ गया॥ ४९॥

तदनन्तर दूसरे दिन शुभ मुहूर्तमें राजा सुबाहुने अपने भव्य मण्डपमें सभी राजाओंको बुलाया॥ ५०॥

उस मण्डपमें दिव्य आसनोंसे सुशोभित पूर्णरूपसे सजाये गये मंचोंपर मनोहारी आभूषणोंसे अलंकृत राजागण विराजमान हुए॥ ५१॥

स्वयंवर देखनेकी इच्छासे वहाँ मंचोंपर विराजमान वे दिव्य वेषधारी देदीप्यमान राजागण विमानपर बैठे हुए देवताओंकी भाँति प्रतीत हो रहे थे॥ ५२॥

सभी राजा इस बातके लिये बहुत चिन्तित थे कि वह राजकुमारी कब आयेगी और किस पुण्यवान् तथा भाग्यशाली श्रेष्ठ नरेशका वरण करेगी?॥ ५३॥

संयोगवश यदि राजकुमारीने सुदर्शनके गलेमें माला डाल दी तो राजाओंमें परस्पर कलह होने लगेगा; इसमें सन्देह नहीं है॥ ५४॥

मंचोंपर विराजमान राजालोग ऐसा सोच ही रहे थे तभी राजा सुबाहुके भवनमें वाद्योंकी ध्वनि होने लगी॥ ५५॥

तत्पश्चात् स्नान करके भलीभाँति अलंकृत, मधूक पुष्पकी माला धारण किये, रेशमी वस्त्रसे सुशोभित, विवाहके अवसरपर धारणीय सभी पदार्थोंसे युक्त, लक्ष्मीके सदृश दिव्य स्वरूपवाली, चिन्तामग्न तथा सुन्दर वस्त्रोंवाली शशिकलासे मुसकराकर महाराज सुबाहुने यह वचन कहा—॥ ५६-५७॥

हे सुन्दर नासिकावाली पुत्रि! उठो और हाथमें यह सुन्दर माला लेकर मण्डपमें चलो और वहाँपर विराजमान राजाओंके समुदायको देखो॥ ५८॥

हे सुमध्यमे! उन राजाओंमें जो गुणसम्पन्न, रूपवान् और उत्तम कुलमें उत्पन्न श्रेष्ठ राजा तुम्हारे मनमें बस जाय, उसका वरण कर लो॥ ५९॥

देश-देशान्तरके सभी राजागण सम्यक् रूपसे सजाये गये मंचोंपर विराजमान हैं। हे तन्वंगि! इन्हें देखो और अपनी इच्छाके अनुसार वरण कर लो॥ ६०॥

व्यासजी बोले—तब ऐसा कहते हुए अपने पितासे मितभाषिणी उस कन्या शशिकलाने लालित्यपूर्ण एवं धर्मसंगत बात कही॥ ६१॥

शशिकला बोली—हे पिताजी! मैं इन राजाओंके सम्मुख बिलकुल नहीं जाऊँगी। ऐसे कामासक्त राजाओंके सामने अन्य प्रकारकी स्त्रियाँ ही जाती हैं॥ ६२॥

हे तात! मैंने धर्मशास्त्रोंमें यह वचन सुना है कि नारीको एक ही वरपर दृष्टि डालनी चाहिये, किसी दूसरेपर नहीं॥ ६३॥

जो स्त्री अनेक पुरुषोंके समक्ष उपस्थित होती है, उसका सतीत्व विनष्ट हो जाता है; क्योंकि उसे देखकर वे सभी अपने मनमें यही संकल्प कर लेते हैं कि यह स्त्री किसी तरहसे मेरी हो जाय॥ ६४॥

कोई स्त्री अपने हाथमें जयमाल लेकर जब स्वयंवरमण्डपमें आती है तो वह एक साधारण स्त्री हो जाती है और उस समय वह एक व्यभिचारिणी स्त्रीकी भाँति प्रतीत होती है॥ ६५॥

जिस प्रकार एक वारांगना बाजारमें जाकर वहाँ स्थित पुरुषोंको देखकर अपने मनमें उनके गुण-दोषोंका आकलन करती है और जैसे अनेक प्रकारके चंचल भावोंसे युक्त वह वेश्या किसी कामी पुरुषको बिना किसी प्रयोजनके व्यर्थ ही देखती रहती है, उसी प्रकार स्वयंवर-मण्डपमें जाकर मुझे भी उसीके सदृश व्यवहार करना पड़ेगा॥ ६६-६७॥

इस समय मैं अपने कुलके वृद्धजनोंद्वारा स्थापित किये गये इस स्वयंवरनियमका पालन नहीं करूँगी। मैं अपने संकल्पपर अटल रहती हुई पत्नीव्रत-धर्मका पूर्णरूपसे आचरण करूँगी॥ ६८॥

सामान्य कन्या स्वयंवर-मण्डपमें पहुँचकर पहले अनेक संकल्प-विकल्प करनेके पश्चात् अन्ततः किसी एकका वरण कर लेती है; उसके समान मैं भी पतिका वरण क्यों करूँ?॥ ६९॥

हे पिताजी! मैंने पूरे मनसे सुदर्शनका पहले ही वरण कर लिया है। हे महाराज! उस सुदर्शनके अतिरिक्त मैं किसी अन्यको पतिके रूपमें स्वीकार नहीं कर सकती॥ ७०॥

हे राजन्! यदि आप मेरा हित चाहते हैं तो किसी शुभ दिनमें वैवाहिक विधि-विधानसे कन्यादान करके मुझे सुदर्शनको सौंप दीजिये॥ ७१॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत तृतीय स्कन्धका 'अपने पिताके प्रति शशिकलाका कथन' नामक बीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २०॥

इक्कीसवाँ अध्याय

राजा सुबाहुका राजाओंसे अपनी कन्याकी इच्छा बताना, युधाजित्का क्रोधित होकर सुबाहुको फटकारना तथा अपने दौहित्रसे शशिकलाका विवाह करनेको कहना, माताद्वारा शशिकलाको पुनः समझाना, किंतु शशिकलाका अपने निश्चयपर दृढ़ रहना

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] महाराज सुबाहु पुत्रीके द्वारा कही गयी युक्तिसंगत बातें सुनकर इस चिन्तामें पड़ गये कि अब आगे क्या किया जाय? अपने-अपने सैनिकों तथा सेवकोंके साथ यहाँ आये हुए और युद्धकी इच्छावाले अनेक महाबली नरेश मंचोंपर बैठे हुए हैं॥ १-२॥

इस समय यदि मैं उन सभीसे यह कहूँ कि कन्या नहीं आ रही है, तो दुष्ट बुद्धिवाले वे राजा क्रोधित होकर मुझे मार ही डालेंगे॥ ३॥

मेरे पास न तो वैसा सैन्यबल है और न तो सुरक्षार्थ अद्भुत किला ही है, जिससे मैं इस समय उन सभीको पराजित कर सकूँ॥ ४॥

यह बालक सुदर्शन भी निस्सहाय, निर्धन तथा अकेला है। मैं तो हर तरहसे दुःखसागरमें डूब चुका हूँ। अब मुझे इस समय क्या करना चाहिये?॥ ५॥

इस प्रकार चिन्ताकुल राजा सुबाहु राजाओंके पास गये और उन सबको प्रणाम करके अत्यन्त विनीतभावसे उन्होंने कहा—हे महाराजाओ! अब मैं क्या करूँ? मेरे तथा अपनी माताके द्वारा बहुत प्रेरित किये जानेपर भी मेरी पुत्री मण्डपमें नहीं आ रही है॥ ६-७॥

मैं आपलोगोंका दास हूँ और सभी राजाओंके चरणोंपर अपना सिर रखकर निवेदन करता हूँ कि आपलोग पूजा-सत्कार ग्रहण करके इस समय अपने-अपने घर लौट जायँ॥ ८॥

मैं आपलोगोंको बहुत-से रत्न, वस्त्र, हाथी तथा रथ देता हूँ। इन्हें स्वीकारकर कृपा करके आपलोग अपने-अपने भवन चले जायँ॥ ९॥

मेरी पुत्री मेरे वशमें नहीं है। यदि वह बेचारी खिन्न होकर मर गयी तो मुझे महान् दुःख होगा। इसीसे मैं अत्यन्त चिन्तित हूँ॥ १०॥

आपलोग बड़े दयालु, भाग्यवान् तथा महान् तेजस्वी हैं तो फिर मेरी इस मन्द बुद्धिवाली अविनीत कन्यासे आपलोगोंको क्या लाभ होगा?॥ ११॥

मैं आपलोगोंका हर तरहसे सेवक हूँ, अतएव आपलोग मुझपर कृपा करें। आप सभी लोग मेरी इस पुत्रीको अपनी ही पुत्री समझें॥ १२॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] सुबाहुका वचन सुनकर अन्य राजागण तो नहीं बोले, किंतु क्रोधसे आँखें लाल करके युधाजित्ने उनसे रोषपूर्वक कहा—हे राजन्! आप तो बड़े मूर्ख हैं। ऐसा निन्दनीय कृत्य करनेके बाद भी आप कैसे इस प्रकारकी बात बोल रहे हैं? यदि संशयकी स्थिति थी तो आपने अज्ञानतावश

स्वयंवरका आयोजन ही क्यों किया?॥ १३-१४॥

आपके बुलानेपर ही सभी राजा स्वयंवरमें पधारे हुए हैं तो फिर वे सुयोग्य राजागण यों ही अपने-अपने घर कैसे चले जायँ?॥ १५॥

क्या आप सभी राजाओंका अपमान करके सुदर्शनको अपनी कन्या देना चाहते हैं? इससे बढ़कर नीचताकी और क्या बात होगी? ॥ १६॥

अपना कल्याण चाहनेवाले मनुष्यको पहले ही सोच-समझकर कोई कार्य प्रारम्भ करना चाहिये। किंतु

हे राजन्! आपने तो बिना सोचे-समझे ही यह आयोजन कर डाला॥ १७॥

सेना तथा वाहनोंसे सम्पन्न इन राजाओंको छोड़कर इस समय आप सुदर्शनको अपना जामाता क्यों बनाना चाहते हैं?॥ १८॥

[उसने क्रोधपूर्वक आगे कहा—] मैं तुझ पापीको अभी मार डालूँगा और बादमें सुदर्शनका भी वध कर दूँगा। तत्पश्चात् तुम्हारी कन्याका विवाह अपने नाती शत्रुजित्से कर दूँगा; इसमें कोई सन्देह नहीं है॥ १९॥

ऐसा दूसरा कौन व्यक्ति है जो मेरे रहते कन्याके हरणकी इच्छातक कर ले और सुदर्शन तो अत्यन्त निर्धन, बलहीन तथा बच्चा है॥ २०॥

यह सुदर्शन पूर्वमें जब भारद्वाजमुनिके आश्रममें था तभी मैं उसे मार डालता, किंतु मुनिके कहनेसे मैंने उसे छोड़ दिया था। किंतु आज किसी भी तरह इस बालकके प्राण नहीं छोड़ूँगा॥ २१॥

अब तुम अपनी स्त्री और पुत्रीके साथ भलीभाँति विचार-विमर्श करके सुन्दर भौंहोंवाली अपनी कन्या मेरे दौहित्र शत्रुजित्को प्रदान कर दो। इस प्रकार अपनी इस सुन्दर पुत्रीको देकर तुम मेरे सम्बन्धी हो जाओ; क्योंकि अपना कल्याण चाहनेवाले पुरुषको सर्वदा बड़ोंसे ही सम्बन्ध स्थापित करना चाहिये॥ २२-२३॥

तुम अकेले और राज्यहीन सुदर्शनको अपनी प्राणप्रिय, सुन्दर कन्या देकर क्या सुख चाहते हो? (वरके कुल, धन, बल, रूप, राज्य, दुर्ग और सगे-सम्बन्धियोंको देखनेके बाद ही उसे अपनी कन्या देनी चाहिये, अन्यथा सुख नहीं मिलता है) तुम धर्म तथा शाश्वत राजनीतिपर सम्यक् विचार कर लो, तत्पश्चात् यथोचित कार्य करो; इसके विपरीत कोई दूसरा विचार मत करो॥ २४-२५॥

तुम मेरे परम मित्र हो, इसलिये तुम्हारे हितकी बात बता देता हूँ। अब तुम अपनी कन्याको उसकी सखियोंसहित स्वयंवर-मण्डपमें ले आओ॥ २६॥

यदि वह सुदर्शनको छोड़कर किसी दूसरेका वरण कर लेगी तो इसमें मुझे विरोध नहीं होगा। आप अपने इच्छानुसार उसके साथ विवाह कर दीजियेगा। हे राजेन्द्र! अन्य सभी नरेश कुलीन, शक्तिशाली एवं हर तरहसे समान हैं। अतः यदि इनमेंसे किसीको भी वह कन्या चुन लेती है तो विरोध ही क्या है? अन्यथा मैं बलपूर्वक आज ही इस सुन्दर कन्याका हरण कर लूँगा। हे नृपश्रेष्ठ! जाओ, इस कार्यको सुसम्पन्न करो और इस असाध्य कलहमें मत पड़ो॥ २७—२९॥

व्यासजी बोले—उस समय युधाजित्का यह आदेश पाकर सुबाहु शोकाकुल हो उठे और दीर्घ श्वास लेते हुए महलमें जाकर दुःखित हो अपनी पत्नीसे कहने लगे—हे सुधर्मज्ञे! हे सुनयने! अब पुत्रीसे कहो—'स्वयंवर-सभामें इस समय घोर कलह उपस्थित हो जानेपर मुझे क्या करना चाहिये? मैं स्वयं कुछ नहीं कर सकता; क्योंकि मैं तो तुम्हारे वशमें हूँ'॥ ३०-३१॥

व्यासजी बोले—पतिकी यह बात सुनकर रानी अपनी पुत्रीके पास जाकर बोली—पुत्रि! तुम्हारे पिता राजा सुबाहु इस समय अत्यन्त दुःखी हैं। तुम्हारे लिये आये हुए नरेशोंमें भयंकर कलह उत्पन्न हो गया है, इसलिये हे सुश्रोणि! तुम सुदर्शनको छोड़कर अन्य किसी राजकुमारका वरण कर लो॥ ३२-३३॥

हे वत्से! यदि तुम हठ करके सुदर्शनका ही वरण करोगी तो सैन्यबलयुक्त, प्रतापी तथा बलशाली वह युधाजित् तुमको, सुदर्शनको और हमलोगोंको मार डालेगा। तत्पश्चात् कलह हो जानेपर कोई दूसरा ही तुम्हारा पति होगा। अतः हे मृगलोचने! यदि तुम मेरा और अपना हित चाहती हो तो सुदर्शनको छोड़कर किसी अन्य श्रेष्ठ राजाका वरण कर लो॥ ३४-३५$^{१}/_{२}$॥

इस प्रकार माताके समझानेके बाद पिताने भी उसे समझाया। उन दोनोंकी बातें सुनकर कन्या शशिकला निर्भय होकर कहने लगी॥ ३६$^{१}/_{२}$॥

कन्या बोली—हे नृपश्रेष्ठ! आप ठीक कह रहे हैं किंतु आप मेरे प्रणको तो जानते ही हैं। हे राजन्! मैं सुदर्शनको छोड़कर और किसीका भी वरण नहीं कर सकती। हे राजेन्द्र! यदि आप राजाओंसे डरते हैं और

बहुत घबड़ाये हुए हैं तो मुझे सुदर्शनको सौंपकर नगरसे बाहर कर दीजिये। वे मुझे रथपर बैठाकर आपके नगरसे बाहर निकल जायँगे। हे नृपश्रेष्ठ! जो होना है वह तो बादमें अवश्य होगा; इसके विपरीत नहीं होगा। अब आप होनीके विषयमें चिन्ता न करें; क्योंकि जो होना है वह तो निश्चितरूपसे होता ही है; इसमें संशय नहीं है॥ ३७—४०१/२॥

राजा बोले—हे पुत्रि! बुद्धिमानोंको कभी ऐसा साहस नहीं करना चाहिये। वेदज्ञोंने कहा है कि बहुतोंसे विरोध नहीं करना चाहिये। पुत्रीको उस राजकुमारको सौंपकर कैसे विदा कर दूँ? मुझसे वैर साधे हुए ये राजागण न जाने कौन-सा अनिष्ट कर डालेंगे। इसलिये हे पुत्रि! यदि तुम पसन्द करो तो मैं कोई शर्त रख दूँ, जैसा कि पूर्वकालमें राजा जनकने सीतास्वयंवरमें किया था। हे तन्वंगि! जैसे उन्होंने शिव-धनुष तोड़नेकी शर्त रख दी थी, वैसे ही मैं भी कोई ऐसी कठोर शर्त रख दूँ जिससे ऐसा कर देनेपर राजाओंका विवाद ही समाप्त हो जाय। जो उस प्रतिज्ञाको पूरा करेगा, वही तुम्हारा पति होगा। सुदर्शन हो अथवा कोई दूसरा—जो भी अधिक बलशाली होगा, वह मेरी प्रतिज्ञा पूरी करके तुम्हारा वरण कर लेगा। ऐसा करनेसे राजाओंमें उत्पन्न कलह निश्चितरूपसे शान्त हो जायगा और उसके बाद मैं आनन्दपूर्वक तुम्हारा विवाह कर दूँगा॥ ४१—४७॥

कन्या बोली—मैं इस सन्दिग्ध कार्यमें नहीं पड़ूँगी; क्योंकि यह मूर्खोंका काम है। मैंने अपने मनमें सुदर्शनका पहलेसे ही वरण कर लिया है, अब दूसरेको स्वीकार नहीं कर सकती। हे महाराज! पुण्य तथा पापका कारण तो मन ही है। इसलिये हे पिताजी! मनसे वरण किये गये सुदर्शनको छोड़कर मैं दूसरेका वरण कैसे करूँ? हे महाराज! दूसरी बात यह भी है कि पणस्वयंवर करनेमें मुझे सबके अधीन रहना पड़ेगा। हे तात! यदि इनमेंसे एक, दो या अनेकने आपका प्रण पूरा कर दिया तब उस समय विवादकी स्थिति उत्पन्न हो जानेपर आप क्या करेंगे? अतः मैं किसी संशयात्मक कार्यमें पड़ना नहीं चाहती। हे राजेन्द्र! आप चिन्ता न करें और विधिपूर्वक मेरा विवाह करके मुझे सुदर्शनको सौंप दीजिये। जिनके नामका संकीर्तन करनेसे समस्त दुःखराशि विलीन हो जाती है, वे भगवती चण्डिका अवश्य कल्याण करेंगी। अब आप उन्हीं महाशक्तिका स्मरण करके पूरी तत्परताके साथ यह कार्य कीजिये॥ ४८—५३१/२॥

अभी जा करके दोनों हाथ जोड़कर आप उन राजाओंसे कहिये कि आप सभी राजागण इस स्वयंवरमें कल पधारें। ऐसा कहकर सम्पूर्ण राजसमुदायको शीघ्र ही विसर्जित करके वैदिक रीतिसे सुदर्शनके साथ रातमें मेरा विवाह कर दीजिये। हे राजन्! तत्पश्चात् उन्हें यथोचित उपहार देकर विदा कर दीजिये॥ ५४—५६॥

तदनन्तर महाराज ध्रुवसन्धिके पुत्र सुदर्शन मुझे साथ लेकर चले जायँगे। इससे कुपित हुए राजा यदि युद्ध करनेको उद्यत होंगे तो उस समय भगवती हमारी सहायता करेंगी, जिससे वे राजकुमार सुदर्शन भी उन लोगोंके साथ संग्राम करनेमें अवश्य समर्थ होंगे। दैवयोगसे यदि वे युद्धमें मारे गये तो मैं प्राण त्याग दूँगी। आपका कल्याण हो। आप मुझे सुदर्शनको सौंपकर अपनी सेनाके साथ महलमें सुखपूर्वक रहें। मैं भी विहार करनेकी कामनासे उनके साथ अकेली ही चली जाऊँगी॥ ५७—५९१/२॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] उस शशिकलाका वचन सुनकर दृढ़प्रतिज्ञ राजा सुबाहुने उसे पूर्णरूपसे विश्वस्त करके ठीक वैसा ही करनेका निश्चय कर लिया॥ ६०॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत तृतीय स्कन्धका 'कन्याका अपने पितासे सुदर्शनके साथ विवाहार्थकथन' नामक इक्कीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २१॥

बाईसवाँ अध्याय

शशिकलाका गुप्त स्थानमें सुदर्शनके साथ विवाह, विवाहकी बात जानकर राजाओंका सुबाहुके प्रति क्रोध प्रकट करना तथा सुदर्शनका मार्ग रोकनेका निश्चय करना

व्यासजी बोले—पवित्र अन्तःकरणवाले राजा सुबाहु कन्याकी बात सुनकर राजाओंके पास जाकर बोले—हे महाराजाओ! आपलोग इस समय अपने-अपने शिविरमें जायँ, मैं कन्याका विवाह कल करूँगा॥ १॥

आपलोग मुझपर कृपा करके मेरे द्वारा अर्पित की गयी भोज्य वस्तुएँ स्वीकार करें। अब यह विवाहकार्य कल पुनः इसी स्वयंवर-मण्डपमें होगा। हम सब मिलकर उसे सम्पन्न करेंगे॥ २॥

हे नृपतिगण! आज मेरी पुत्री मण्डपमें नहीं आ रही है। मैं क्या करूँ? कल प्रातः पुत्रीको समझा-बुझाकर अवश्य लाऊँगा। अब सभी राजागण अपने-अपने शिविरमें चलें। बुद्धिमानोंको अपने आश्रितजनोंके प्रति विरोधभाव नहीं रखना चाहिये और अपनी सन्तानपर तो निरन्तर विशेष कृपा करनी चाहिये। हे नृपगण! प्रातःकाल समझा-बुझाकर मैं अपनी पुत्रीको यहाँ ले आऊँगा; इस समय आपलोग जायँ॥ ३-४॥

मैं इच्छास्वयंवरकी बातको भलीभाँति सोचकर प्रातः कन्याका विवाह कर दूँगा। एक साथ सभी राजाओंके उपस्थित हो जानेपर सबकी सम्मतिसे स्वयंवरका कार्य सम्पन्न होगा॥ ५॥

सुबाहुकी वाणी सुनकर सभी राजागण उसे सच मानकर अपने-अपने शिविरमें चले गये और नगरके आस-पास रक्षाका सम्यक् प्रबन्ध करके वे मध्याह्नकालकी क्रियाओंमें संलग्न हो गये॥ ६॥

उधर राजा सुबाहु भी श्रेष्ठजनोंके साथ अपने अन्तःपुरके एक गुप्त स्थानमें अपनी पुत्रीको बुलाकर वरिष्ठ वैदिक पुरोहितोंद्वारा विवाह-कृत्य सम्पन्न करनेका प्रयत्न करने लगे॥ ७॥

वरको स्नानादि कर्म कराकर उसे विवाहके योग्य वस्त्राभूषण पहनाकर और उसे वेदीरचित गृहमें ले आकर राजा सुबाहुने उसका पूजन किया॥ ८॥

वरको विष्टर, आचमन, अर्घ्य, दो वस्त्र, गौ और दो कुण्डल विधिवत् प्रदान करके महामनस्वी राजा सुबाहुने कन्यादान कर दिया॥ ९॥

उदार हृदयवाले सुदर्शनने भी सभी वस्तुएँ स्वीकार कर लीं। अब मनोरमाकी चिन्ता दूर हो गयी। उस समय कुबेरपुत्रीके समान उस सुन्दर केशोंवाली शशिकलाको पाकर सुदर्शनने अपने आपको परम धन्य समझा॥ १०॥

उस समय आनन्दित एवं निर्भीक सभी मन्त्री राजाद्वारा आभूषण तथा वस्त्र देकर सम्यक् रूपसे पूजित श्रेष्ठ वर सुदर्शनको कौतुकमण्डपमें ले गये॥ ११॥

तदनन्तर विधिकी जानकार स्त्रियाँ राजकुमारीको वस्त्राभूषणोंसे विधिवत् सुसज्जित करके उसे सुन्दर पालकीमें बिठाकर चौकोर वेदीसे युक्त मण्डपमें वरके पास ले गयीं॥ १२॥

उस वेदीपर पुरोहितने अग्नि-स्थापन करके और विधिवत् घृताहुति देकर कौतुकागारमें कौतुक किये हुए प्रेमरससे अत्यन्त सिक्त वर-वधूको बुलाया। उन दोनोंने विधिवत् लाजाहोम करनेके बाद अग्निकी प्रदक्षिणा करके अपने-अपने कुल तथा गोत्रकी समस्त रीतियाँ सम्पन्न कीं॥ १३-१४॥

महाराज सुबाहुने घोड़ोंसे जुते तथा अत्यधिक बाणोंसे लदे हुए दो सौ सुसज्जित रथ सुदर्शनको विवाहमें उपहारस्वरूप दिये। उन्होंने मदमत्त, सुवर्णके भूषणोंसे विभूषित तथा पर्वतके शिखरके समान शरीरवाले सवा सौ हाथी राजकुमार सुदर्शनको प्रेमपूर्वक प्रदान किये॥ १५-१६॥

विवाहके समय राजाने स्वर्णाभूषणोंसे अलंकृत सौ दासियाँ और सुन्दर-सुन्दर सौ हथिनियाँ प्रसन्नतापूर्वक बार-बार वरको समर्पित कीं। उन्होंने सब प्रकारके आयुधों और आभूषणोंसे सुसज्जित एक हजार सेवक, बहुत-से रत्न, रंग-बिरंगे दिव्य सूती तथा ऊनी वस्त्र यथोचित

रूपसे दिये॥ १७-१८॥

निवासके लिये रंग-बिरंगे, सुन्दर और विशाल भवन, सिन्धुदेशके उत्तम दो हजार घोड़े, भार ढोनेमें कुशल सुन्दर तीन सौ ऊँट, अन्न एवं रससे परिपूर्ण दो सौ उत्तम बैलगाड़ियाँ भी प्रदान कीं॥ १९-२०॥

तत्पश्चात् राजा सुबाहुने हाथ जोड़कर राजमाता मनोरमाको प्रणाम करके कहा—हे राजकुमारी! मैं आपका सेवक हूँ, अत: आपका जो मनोवांछित हो उसे कहिये॥ २१॥

तब उस मनोरमाने भी सुबाहुसे मधुर वाणीमें कहा—हे राजन्! आपका कल्याण हो, आपके वंशकी वृद्धि हो। आपने मेरा बहुत सम्मान किया; क्योंकि आपने अपनी रत्नमयी कन्या मेरे पुत्रको प्रदान की है॥ २२॥

हे राजन्! मैं [यश गानेमें कुशल] बन्दीजन और मागधोंकी पुत्री नहीं हूँ, [जो भलीभाँति आपकी प्रशंसा कर सकूँ।] आप तो अपने ही हैं, अत: आप श्रेष्ठ स्वजनकी मैं क्या स्तुति करूँ? आप एक उत्तम नरेश हैं और मेरे सम्बन्धी हो गये हैं; आपने मेरे पुत्रको सुमेरुके समान बना दिया है। अहो! महान् आश्चर्य है! आप-जैसे राजाके पवित्र चरित्रका वर्णन कहाँतक करूँ, जो कि आपने इन सभी राजाओंको छोड़कर राज्यसे च्युत, वनमें निवास करनेवाले, धनहीन, पिताविहीन, सेनारहित, फलके आहारपर ही रहनेवाले तथा सम्पत्तिहीन मेरे पुत्रको अपनी प्रिय तथा कुलीन कन्या प्रदान कर दी॥ २३—२५॥

अपने समान धन, कुल और बलवालेको ही कोई अपनी पुत्री प्रदान करता है। हे राजन्! आपको छोड़कर कोई भी राजा मेरे धनहीन पुत्रको अपनी रूपगुणसम्पन्ना पुत्री नहीं दे सकता॥ २६॥

सभी महान् तथा बलशाली राजाओंसे शत्रुता लेकर आपने मेरे सुदर्शनको अपनी कन्या अर्पित की है—हे राजन्! मैं आपके इस धैर्यका वर्णन क्या करूँ?॥ २७॥

इस प्रकार मनोरमाके [कृतज्ञतापूर्ण] वचन सुनकर महाराज सुबाहुने प्रसन्नतापूर्वक हाथ जोड़कर पुन: यह वचन कहा—मेरा यह अति प्रसिद्ध राज्य आप ले लीजिये और आजसे मैं आपका सेनापति हो जा रहा हूँ; नहीं तो आप आधा राज्य ही ले लें और अपने पुत्रके साथ यहीं रहकर राजसी भोग भोगें; क्योंकि अब काशीमें निवास छोड़कर किसी वन या ग्राममें आपलोग रहें—ऐसा मेरा विचार नहीं है॥ २८-२९॥

सभी उपस्थित भूपगण मुझपर अत्यन्त रुष्ट हैं। मैं जाकर पहले उन्हें शान्त करूँगा। इसके बाद दान एवं भेदनीतिका विधान करूँगा। यदि इसपर भी वे अनुकूल न होंगे तो उनसे युद्ध करूँगा॥ ३०॥

यद्यपि हार और जीत तो दैवाधीन हैं तथापि जिस पक्षमें धर्म रहता है, उसकी विजय होती है; अधर्मके पक्षवालेकी कभी नहीं। अत: अधर्मसे युक्त उन राजाओंका अपना सोचा हुआ कैसे हो सकता है?॥ ३१॥

उन सुबाहुसे सम्मान पाकर पूर्णरूपसे आनन्दमग्न मनोरमा उनकी सारगर्भित वाणी सुनकर अत्यन्त प्रसन्न होकर उनसे हितकर वचन कहने लगी—हे राजन्! आपका कल्याण हो। आप निर्भय होकर अपने पुत्रोंके साथ राज्य कीजिये। मेरा पुत्र भी निश्चय ही अपना राज्य पाकर साकेतपुरी अयोध्यामें शासन करेगा॥ ३२-३३॥

हे राजन्! अब आप हमलोगोंको अपने घर जानेके लिये आज्ञा दीजिये। भगवती दुर्गा आपका कल्याण करेंगी। हे राजन्! मुझे अब कोई चिन्ता नहीं है; क्योंकि मैं पराम्बा भगवतीका भलीभाँति चिन्तन करती रहती हूँ॥ ३४॥

इस प्रकार उन दोनोंमें विविध वाक्योंद्वारा अमृतके समान मधुर वार्तालापमें रात बीत गयी। प्रात:काल होनेपर सभी राजा विवाह हो जानेकी बात जानकर कुपित हो उठे और नगरके बाहर निकलकर आपसमें कहने लगे—॥ ३५॥

हम आज ही उस कलंकी राजा सुबाहु तथा विवाहकी योग्यता न रखनेवाले उस कुमार सुदर्शनको मारकर राज्यलक्ष्मीसहित उस शशिकलाको छीन लेंगे,

अन्यथा लज्जित होकर हमलोग कैसे अपने घर जायँगे ?॥ ३६ ॥

आप सब लोग बजायी जा रही तुरहियों तथा शंखोंके निनाद, गीतध्वनि तथा अनेक प्रकारकी वेद-ध्वनि सुन लें। मृदंगोंके भी शब्द हो रहे हैं। हमलोग तो ऐसा मानते हैं कि राजा सुबाहुने विवाह सम्पन्न कर दिया॥ ३७ ॥

राजाने हमें बातोंसे ठगकर वैवाहिक विधिसे पाणिग्रहण-संस्कार अवश्य कर दिया। हे राजाओ! अब हमलोगोंको क्या करना चाहिये, इस विषयमें आपलोग सोचें और आपसमें विचार करके एक निर्णय लें॥ ३८ ॥

इस प्रकार राजाओंमें परस्पर बातचीत हो ही रही थी कि इतनेमें अप्रतिम प्रभाववाले काशीपति महाराज सुबाहु कन्याका पाणिग्रहण-संस्कार सम्पन्न करके प्रसिद्ध तेजवाले अपने मित्रोंको साथ लेकर उन राजाओंको निमन्त्रित करनेके लिये शीघ्र उनके पास गये॥ ३९ ॥

काशीराज सुबाहुको आते देखकर उपस्थित नरेशोंने क्रोधके कारण कुछ नहीं कहा। वे मौन साधकर बैठे रहे॥ ४० ॥

राजा सुबाहु उनके पास जाकर हाथ जोड़कर प्रणाम करके कहने लगे कि सभी राजागण भोजन करनेके लिये मेरे घर आयें। कन्याने तो उस राजकुमार सुदर्शनका पतिरूपमें वरण कर लिया है। मैं इस विषयमें अच्छा-बुरा क्या कर सकता हूँ? अब आपलोग शान्त हो जायँ; क्योंकि महान् लोग दयालु होते हैं॥ ४१-४२ ॥

राजा सुबाहुकी बात सुनकर सभी राजा क्रोधसे तमतमा उठे। उन्होंने कहा—राजन्! हमलोग भोजन कर चुके, अब आप अपने घर जाइये। आपको जो अच्छा लगा, उसे आपने कर लिया। जो कार्य शेष हों उन सबको भी जाकर कर लीजिये। अब हम सभी राजागण अपने-अपने घर चले जायँगे॥ ४३-४४ ॥

सुबाहु भी यह सुनकर घर चले गये और शंका करने लगे कि ये क्षुब्ध तथा कुपित राजागण अब न जाने क्या कर डालेंगे॥ ४५ ॥

राजा सुबाहुके चले जानेपर उन नरेशोंने यह निश्चय किया कि अब हमलोग मार्ग रोककर सुदर्शनको मारकर कन्याको छीन लेंगे॥ ४६ ॥

उनमेंसे कुछ राजाओंने कहा—अरे! उस राजकुमार सुदर्शनसे हमारा क्या वैर? हमने यहाँका सब कौतुक देख लिया। अब हम जैसे आये थे, वैसे ही घर लौट चलें॥ ४७ ॥

ऐसा कहकर वे सब [विरोधी] राजागण मार्ग रोककर खड़े हो गये और राजा सुबाहु अपने भवन पहुँचकर आगेके कृत्य सम्पादित करने लगे॥ ४८ ॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत तृतीय स्कन्धका 'सुदर्शन और शशिकलाके विवाहका वर्णन' नामक बाईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २२ ॥

तेईसवाँ अध्याय

सुदर्शनका शशिकलाके साथ भारद्वाज-आश्रमके लिये प्रस्थान, युधाजित् तथा अन्य राजाओंसे सुदर्शनका घोर संग्राम, भगवती सिंहवाहिनी दुर्गाका प्राकट्य, भगवतीद्वारा युधाजित् और शत्रुजित्का वध, सुबाहुद्वारा भगवतीकी स्तुति

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] उस समय राजा सुबाहुने छः दिनोंतक विविध प्रकारके भोजन बनवाकर सुदर्शनको प्रेमपूर्वक खिलाया॥ १ ॥

इस प्रकार विवाहके सभी कृत्य करके राजा सुबाहु सुदर्शनको उपहार प्रदान करके सचिवोंके साथ मन्त्रणा कर रहे थे, उसी समय अपने दूतोंका यह कथन सुनकर कि विरोधी राजाओंने मार्ग रोक रखा है, वे अमित तेजवाले राजा सुबाहु खिन्नमनस्क हो गये॥ २-३ ॥

तब व्रतपरायण सुदर्शनने अपने श्वसुरसे कहा— आप हमें शीघ्र विदा कर दीजिये, हम नि:शंक होकर चले जायँगे॥ ४॥

हे राजन्! भारद्वाजमुनिके पवित्र आश्रममें पहुँचनेपर वहीं सावधानीके साथ आगे रहनेके लिये विचार कर लिया जायगा॥ ५॥

अत: हे पुण्यात्मन्! उन राजाओंसे आप कुछ भी भय न करें; क्योंकि जगज्जननी भगवती मेरी सहायता अवश्य करेंगी॥ ६॥

व्यासजी बोले—अपने जामाता सुदर्शनका ऐसा विचार जानकर नृपश्रेष्ठ सुबाहुने उन्हें धन देकर विदा कर दिया और वे सुदर्शन भी तत्काल चल पड़े। नृपश्रेष्ठ सुबाहु भी एक विशाल सेना लेकर उनके पीछे-पीछे चले। इस प्रकार उन सैनिकोंसे आवृत सुदर्शन निर्भय होकर मार्गमें चले जा रहे थे॥ ७-८॥

रथोंसे घिरे हुए एक रथपर अपनी पत्नीके साथ बैठकर जाते हुए रघुनन्दन सुदर्शनने मार्गमें उन राजाओंके सैनिकोंको देखा॥ ९॥

राजा सुबाहु भी उन सैनिकोंको देखकर चिन्तित हुए। तब सुदर्शनने विधिपूर्वक अपने मनमें भगवती जगदम्बाका ध्यान किया और प्रसन्नतापूर्वक उनकी शरण ली। उस समय सुदर्शन एकाक्षर कामराज नामक सर्वोत्तम मन्त्रका जप कर रहे थे, उसके प्रभावसे वे अपनी नवविवाहिता पत्नीके साथ निर्भय तथा चिन्तामुक्त थे॥ १०-११॥

इसी बीच सभी राजा एक साथ कोलाहल करके कन्याका हरण करनेकी इच्छासे अपनी-अपनी सेनाके साथ उनकी ओर बढ़े॥ १२॥

उन्हें ऐसा करते देखकर काशीनरेश सुबाहुने उनको मारनेका विचार किया, किंतु विजयकी इच्छावाले रघुवंशी सुदर्शनने उन्हें मना कर दिया॥ १३॥

उस समय एक दूसरेको मार डालनेकी अभिलाषावाले महाराज सुबाहु तथा अन्य राजाओंकी सेनाओंमें भेरी, नगाड़े और दुंदुभियोंके साथ शंख बजने लगे॥ १४॥

सुदर्शनको मार डालनेकी इच्छासे शत्रुजित् सैन्य-बलसे युक्त होकर बड़ी तत्परतासे तैयार खड़ा था और राजा युधाजित् भी उसकी सहायताके लिये सन्नद्ध थे। उनमें कुछ राजागण अपनी सेनाके साथ दर्शकके रूपमें खड़े थे। तभी युधाजित् आगे बढ़कर सुदर्शनके समक्ष जा डटा। उसके साथ शत्रुजित् भी अपने भाईका वध करनेके लिये आ गया। तब क्रोधके वशीभूत होकर वे सब परस्पर एक-दूसरेपर बाणोंसे प्रहार करने लगे। इस प्रकार वहाँ बाणोंद्वारा बड़ा भारी संग्राम छिड़ गया। तब काशीनरेश सुबाहु एक विशाल सेना लेकर अपने सुप्रशंसित जामाताकी सहायताके लिये जा पहुँचे॥ १५—१८१/२॥

इस प्रकार भयानक लोमहर्षक संग्राम छिड़ जानेपर सहसा भगवती प्रकट हो गयीं। वे सिंहपर सवार थीं, विविध प्रकारके शस्त्रास्त्र धारण किये थीं, अत्यन्त मनोहर थीं तथा उत्तम आभूषणोंसे अलंकृत थीं, दिव्य वस्त्र पहने थीं और मन्दारकी मालासे सुशोभित थीं॥ १९-२०१/२॥

उन्हें देखकर वे राजागण अत्यन्त चकित हो गये। वे कहने लगे कि सिंहपर सवार यह स्त्री कौन है और कहाँसे प्रकट हो गयी है? उन्हें देखकर सुदर्शनने सुबाहुसे कहा—हे राजन्! यहाँ प्रादुर्भूत हुई इन दिव्य दर्शनवाली महादेवीको आप देखें। ये दयामयी भगवती निश्चय ही मुझपर अनुग्रह करनेके लिये प्रकट हुई हैं। हे महाराज! मैं निर्भय तो पहले ही था, किंतु अब और भी अधिक निर्भय हो गया॥ २१—२३१/२॥

सुदर्शन और सुबाहुने उन सुमुखी भगवतीको देखकर उन्हें प्रणाम किया। उनके दर्शनसे वे दोनों प्रसन्न हो गये। उसी समय भगवतीके सिंहने भीषण गर्जन किया, जिससे उस रणभूमिमें विद्यमान सभी हाथी भयसे काँपने लगे। उस समय महाभीषण आँधी चलने लगी और सभी दिशाएँ अत्यन्त भयानक हो गयीं॥ २४-२५१/२॥

तब सुदर्शनने अपने सेनापतिसे कहा कि जहाँ ये राजागण [मार्ग रोककर] खड़े हैं, उधर ही तुम वेगसे आगे बढ़ो। ये दुष्ट तथा कुपित राजालोग हमारा

क्या कर लेंगे? अब हमें शरण देनेके लिये स्वयं भगवती जगदम्बा आ गयी हैं। अतएव हमें निर्भय होकर राजाओंसे भरे इस मार्गपर आगे बढ़ना चाहिये। मेरे स्मरण करते ही मेरी रक्षाके लिये ये भगवती आ गयी हैं। सुदर्शनका वचन सुनकर सेनापति उसी मार्गसे आगे बढ़ा॥ २६—२९॥

अतिशय कुपित होकर युधाजित्‌ने उन राजाओंसे कहा—तुमलोग भयभीत होकर खड़े क्यों हो; कन्यासहित इस सुदर्शनको मार डालो॥ ३०॥

हम सभी बलवानोंका तिरस्कार करके यह बलहीन बालक कन्याको लेकर निर्भीकतापूर्वक बड़े वेगसे चला जा रहा है॥ ३१॥

सिंहपर विराजमान उस स्त्रीको देखकर तुमलोग क्यों डरते हो? हे महाभाग राजाओ! इस समय सुदर्शनकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये और अत्यन्त सावधान होकर इसका वध कर देना चाहिये॥ ३२॥

इसे मारकर हम सुन्दर आभूषण धारण करनेवाली कन्याको छीन लेंगे। हम सिंहसदृश वीरोंके भागको यह सियार नहीं ले जा सकता॥ ३३॥

ऐसा कहकर वह युधाजित् अत्यन्त कुपित हो [अपने दौहित्र] शत्रुजित् तथा विशाल सेनाको साथ लिये हुए युद्धकी इच्छासे आ डटा॥॥ ३४॥

अब वह कानतक धनुष खींचकर सानपर चढ़ाकर तीक्ष्ण किये हुए, शिलापर घिसकर तेज किये गये समान पुच्छयुक्त बाणोंको शीघ्रतापूर्वक छोड़ने लगा॥ ३५॥

इस प्रकार प्रहार करके वह दुर्बुद्धि युधाजित् सुदर्शनको मार डालना चाहता था, किंतु सुदर्शनने उसके बाणोंको छूटते ही अपने बाणोंसे क्षणभरमें काट डाला॥ ३६॥

वह भीषण युद्ध छिड़ जानेपर भगवती चण्डिका अत्यन्त क्रुद्ध हो उठीं और युधाजित्‌पर बाण बरसाने लगीं॥ ३७॥

उस समय कल्याणमयी जगदम्बिका विविध रूप धारण कर लेती थीं। वे नाना प्रकारके शस्त्रास्त्र लेकर घमासान युद्ध कर रही थीं॥ ३८॥
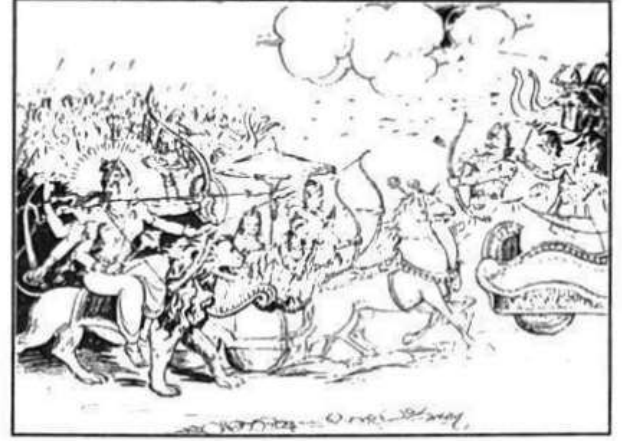
कुछ ही क्षणोंमें शत्रुजित् और राजा युधाजित्—दोनों मार डाले गये और अपने-अपने रथोंसे गिर पड़े। उस समय जयजयकारकी ध्वनि होने लगी॥ ३९॥

उस युद्धमें भगवतीको तथा मामा और भांजेकी (नाना-नातीकी) मृत्यु देखकर सभी राजा बहुत विस्मयमें पड़ गये॥ ४०॥

महाराज सुबाहु भी रणभूमिमें उन दोनोंका मरण देखकर बहुत प्रसन्न हुए और दुर्गतिनाशिनी भगवती दुर्गाकी स्तुति करने लगे॥ ४१॥

सुबाहु बोले—जगत्‌को धारण करनेवाली देवीको नमस्कार है। भगवती शिवाको निरन्तर नमस्कार है। मनोरथ पूर्ण करनेवाली आप भगवती दुर्गाको बार-बार नमस्कार है॥ ४२॥

आप शिवा और शान्तिदेवीको नमस्कार है। हे मोक्षदायिनि! आप विद्यास्वरूपिणीको नमस्कार है। हे जगन्माता! हे शिवे! आप विश्वव्यापिनी तथा जगज्जननीको नमस्कार है॥ ४३॥

हे देवि! मैं सगुण प्राणी अपनी बुद्धिसे बहुत प्रकारसे चिन्तन करके भी आप निर्गुणा भगवतीकी गतिको नहीं जान पाता। हे विश्वजननि! प्रत्यक्ष प्रभाववाली, भक्तोंकी पीड़ा दूर करनेमें तत्पर तथा परम शक्तिस्वरूपा आपकी स्तुति मैं कैसे करूँ?॥ ४४॥

आप ही देवी सरस्वती हैं, आप ही बुद्धिरूपसे सबके भीतर विराजमान हैं, आप ही सब प्राणियोंकी विद्या, मति और गति हैं और आप ही सबके मनका नियन्त्रण करती हैं, तब मैं आपकी स्तुति कैसे करूँ?

सर्वव्यापी आत्माके रूपकी भी स्तुति भला कभी की जा सकती है?॥ ४५॥

देवताओंमें श्रेष्ठ ब्रह्मा, विष्णु और शिव निरन्तर आपकी स्तुति करते हुए भी आपके गुणोंके पार नहीं जा सके। तब हे अम्ब! भेदबुद्धिवाला, सत्त्व आदि गुणोंसे आबद्ध तथा अप्रसिद्ध एक तुच्छ जीव मैं आपके चरित्रका वर्णन करनेमें कैसे समर्थ हो सकता हूँ?॥ ४६॥

अहो! सत्संग कौन-सा मनोरथ पूर्ण नहीं कर देता? आपके इस प्रासंगिक संगसे ही मेरा चित्त शुद्ध हो गया। [आपके भक्त] अपने इस जामाता सुदर्शनके संगके प्रभावसे मैंने अनायास आपका यह अद्भुत दर्शन पा लिया॥ ४७॥

हे जननि! ब्रह्मा, शिव, भगवान् विष्णु, इन्द्र-सहित सभी देवता तथा तत्त्वज्ञानी मुनिलोग भी आपके जिस दर्शनको चाहते हैं, वह आपका दुर्लभ दर्शन मुझे बिना शम, दम तथा समाधि आदिके ही प्राप्त हो गया॥ ४८॥

हे भवानि! कहाँ अतिशय मन्दमति मैं और कहाँ भवरूपी रोगके लिये औषधिस्वरूप आपका यह शीघ्र अद्वितीय दर्शन! हे देवि! मुझे ज्ञात हो गया कि आप सदा भावनायुक्त रहती हैं। देवसमूहद्वारा पूजी जानेवाली आप अपने भक्तोंपर अनुकम्पा करती हैं॥ ४९॥

हे देवि! आपने इस भीषण संकटके समय जिस प्रकार इस सुदर्शनकी रक्षा की है, आपके इस चरित्रका मैं किस तरह वर्णन करूँ? आपने आज इसके दो बलवान् शत्रुओंको तत्काल मार डाला। भक्तोंपर अनुकम्पा करनेवाला आपका यह चरित्र परम पवित्र है॥ ५०॥

हे देवि! विशेष विचार करनेपर ज्ञात होता है कि आपका ऐसा करना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है; क्योंकि आप अखिल स्थावर-जंगम जगत्की रक्षा करती हैं। आपने शत्रुको मारकर दयालुतावश ध्रुवसन्धिके पुत्र इस सुदर्शनकी इस समय रक्षा की॥ ५१॥

हे भवानि! अपने सेवापरायण भक्तके यशको अत्यन्त उज्ज्वल बनानेके लिये ही आपने इस चरित्रकी रचना की है, नहीं तो मेरी कन्याका पाणिग्रहण करके यह असमर्थ सुदर्शन युद्धमें सकुशल जीवित कैसे बच सकता था?॥ ५२॥

जब आप अपने भक्तोंके जन्म-मरण आदि भयोंको नष्ट करनेमें समर्थ हैं, तब उसकी लौकिक अभिलाषा पूर्ण कर देना कौन बड़ी बात है? हे जननि! आप पाप-पुण्यसे रहित, सगुणा तथा निर्गुणा हैं; इसी कारण भक्तजन सदा आपके गुण गाते रहते हैं॥ ५३॥

हे देवि! हे भुवनेश्वरि! आज आपके दर्शनसे मैं पवित्र, कृतार्थ और धन्य जन्मवाला हो गया। हे माता! मैं न आपका भजन जानता हूँ और न तो बीजमन्त्र जानता हूँ। मैं आपकी प्रत्यक्ष प्रभाववाली महिमाको आज जान गया॥ ५४॥

व्यासजी बोले—महाराज सुबाहुके इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवती शिवाका मुखमण्डल प्रसन्नतासे भर गया। तब भगवतीने उन राजासे कहा—हे सुव्रत! तुम वर माँगो॥ ५५॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत तृतीय स्कन्धका 'सुबाहुकृतदेवीस्तुतिवर्णन' नामक तेईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २३॥

चौबीसवाँ अध्याय

सुबाहुद्वारा भगवती दुर्गासे सदा काशीमें रहनेका वरदान माँगना तथा देवीका वरदान देना, सुदर्शनद्वारा देवीकी स्तुति तथा देवीका उसे अयोध्या जाकर राज्य करनेका आदेश देना, राजाओंका सुदर्शनसे अनुमति लेकर अपने-अपने राज्योंको प्रस्थान

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] उन भवानीका वचन सुनकर नृपश्रेष्ठ सुबाहुने भक्तिसे युक्त होकर यह बात कही— ॥ १ ॥

सुबाहु बोले—हे माता! एक ओर देवलोक तथा समस्त भूमण्डलका राज्य और दूसरी ओर आपका दर्शन; वे दोनों तुल्य कभी नहीं हो सकते ॥ २ ॥

आपके दर्शनसे बढ़कर समस्त त्रिलोकीमें कोई भी वस्तु नहीं है। हे देवि! मैं आपसे क्या वर माँगूँ? मैं तो इस जगतीतलमें आपके दर्शनसे ही कृतकृत्य हो गया ॥ ३ ॥

हे माता! मैं तो यही अभीष्ट वर माँगना चाहता हूँ कि आपकी स्थिर तथा अखण्ड भक्ति मेरे हृदयमें बनी रहे ॥ ४ ॥

हे माता! आप मेरी नगरी काशीमें सदा निवास करें। आप शक्तिस्वरूपा होकर दुर्गादेवीके नामसे यहाँ विराजमान रहें और सर्वदा नगरकी रक्षा करती रहें। हे अम्बिके! इस समय आपने जिस तरह शत्रुदलसे सुदर्शनकी रक्षा की है और उसे विकाररहित बना दिया है, उसी तरह आप सदा वाराणसीकी रक्षा करें। हे देवि! हे कृपानिधे! जबतक भूलोकमें काशीनगरी सुप्रतिष्ठित होकर विद्यमान रहे, तबतक आप यहाँ विराजमान रहें—आप मुझे यही वरदान दें, इसके अतिरिक्त मैं आपसे और दूसरा क्या माँगूँ? ॥ ५—८ ॥

आप मेरी विविध प्रकारकी समस्त कामनाएँ पूर्ण करें, मेरे शत्रुओंका नाश करें और जगत्‌के सभी अमंगलोंको सदाके लिये नष्ट कर डालें ॥ ९ ॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार राजा सुबाहुके सम्यक् प्रार्थना करनेपर दुर्गतिनाशिनी भगवती दुर्गा स्तुति करके अपने समक्ष खड़े राजा सुबाहुसे कहने लगीं— ॥ १० ॥

दुर्गाजी बोलीं—हे राजन्! जबतक यह पृथिवी रहेगी, तबतक सभी लोकोंकी रक्षाके लिये मैं निरन्तर इस मुक्तिपुरी काशीमें निवास करूँगी ॥ ११ ॥

इसके बाद सुदर्शन बड़ी प्रसन्नताके साथ वहाँ आकर उन्हें प्रणाम करके परम भक्तिके साथ उनकी स्तुति करने लगे— ॥ १२ ॥

अहो! मैं आपकी कृपाका वर्णन कहाँतक करूँ! आपने मुझ जैसे भक्तिहीनकी भी रक्षा कर ली। अपने भक्तोंपर तो सभी लोग अनुकम्पा करते हैं, किंतु भक्तिरहित प्राणीकी भी रक्षा करनेका व्रत आपने ही ले रखा है ॥ १३ ॥

मैंने सुना है कि आप ही समस्त विश्व-प्रपंचकी रचना करती हैं और अपनेद्वारा सृजित उस जगत्‌का पालन करती हैं तथा यथोचित समय उपस्थित होनेपर उसे अपनेमें समाहित कर लेती हैं; तब आपने जो मेरी रक्षा की, उसमें कोई आश्चर्य नहीं ॥ १४ ॥

हे देवि! अब यह बताइये कि मैं आपका कौन-सा कार्य करूँ; मैं कहाँ जाऊँ? मुझे शीघ्र आदेश दीजिये। मैं इस समय किंकर्तव्यविमूढ हो रहा हूँ। हे माता! मैं आपकी ही आज्ञासे जाऊँगा, ठहरूँगा या

विहार करूँगा॥ १५॥

व्यासजी बोले—ऐसा कहते हुए उस सुदर्शनसे भगवतीने दयापूर्वक कहा—हे महाभाग! अब तुम अयोध्या जाओ और अपने कुलकी मर्यादाके अनुसार राज्य करो॥ १६॥

हे नृपश्रेष्ठ! तुम प्रयत्नके साथ सदा मेरा स्मरण तथा पूजन करते रहना और मैं भी तुम्हारे राज्यका सर्वदा कल्याण करती रहूँगी॥ १७॥

अष्टमी, चतुर्दशी और विशेष करके नवमी तिथिको विधि-विधानसे मेरी पूजा अवश्य करते रहना। हे अनघ! तुम अपने नगरमें मेरी प्रतिमा स्थापित करना और प्रयत्नके साथ भक्तिपूर्वक तीनों समय मेरा पूजन करते रहना॥ १८-१९॥

शरत्कालमें सर्वदा नवरात्रविधानके अनुसार भक्तिभावसे युक्त होकर मेरी महापूजा करनी चाहिये। हे महाराज! चैत्र, आश्विन, आषाढ़ तथा माघमासमें नवरात्रके अवसरपर मेरा महोत्सव मनाना चाहिये और विशेषरूपसे मेरी महापूजा करनी चाहिये॥ २०-२१॥

हे नृपशार्दूल! विज्ञजनोंको चाहिये कि वे भक्तियुक्त होकर कृष्णपक्षकी चतुर्दशी तथा अष्टमीको सदा मेरी पूजा करें॥ २२॥

व्यासजी बोले—राजा सुदर्शनके स्तुति तथा प्रणाम करनेके अनन्तर ऐसा कहकर दुर्गतिनाशिनी भगवती दुर्गा अन्तर्धान हो गयीं॥ २३॥

उन भगवतीको अन्तर्हित देखकर वहाँ उपस्थित सभी राजाओंने आकर सुदर्शनको उसी प्रकार प्रणाम किया जैसे देवता इन्द्रको प्रणाम करते हैं॥ २४॥

महाराज सुबाहु भी उन्हें प्रणाम करके बड़े हर्षपूर्वक उनके समक्ष खड़े हो गये। तदनन्तर उन सभी राजाओंने अयोध्यापति सुदर्शनसे कहा—॥ २५॥

हे नृपश्रेष्ठ! आप हमारे स्वामी तथा शासक हैं और हम आपके सेवक हैं। अब आप अयोध्यामें राज्य करें और हमारा पालन करें॥ २६॥

हे महाराज! आपकी कृपासे हमने धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंको देनेवाली उन विश्वेश्वरी, शिवा और आदिशक्ति भवानीका दर्शन पा लिया॥ २७॥

आप इस धरतीपर धन्य, कृतकृत्य और बड़े पुण्यात्मा हैं; क्योंकि आपके लिये साक्षात् सनातनी देवी प्रकट हुईं॥ २८॥

हे नृपसत्तम! तमोगुणसे युक्त और सदा मायासे मोहित रहनेवाले हम सभी लोग भगवती चण्डिकाका प्रभाव नहीं जानते। हम सदा धन, स्त्री और पुत्रोंकी चिन्तामें व्यग्र रहकर काम-क्रोधरूपी मत्स्योंसे भरे घोर महासागरमें डूबे रहते हैं॥ २९-३०॥

हे महाभाग! हे महामते! आप सर्वज्ञ हैं, अतएव हम आपसे यह पूछ रहे हैं कि ये शक्ति कौन हैं, कहाँसे उत्पन्न हुई हैं और इनका कैसा प्रभाव है? वह सब बताइये॥ ३१॥

साधु पुरुष बड़े दयालु होते हैं। अतएव आप हमारे लिये इस संसार-सागरकी नौका बन जाइये। हे काकुत्स्थ! अब आप भगवतीके उत्तम माहात्म्यका वर्णन कीजिये॥ ३२॥

हे नृपश्रेष्ठ! उनका जो प्रभाव हो, जो स्वरूप हो तथा वे जैसे प्रकट हुई हों; यह सब हम आपसे सुनना चाहते हैं, आप बतायें॥ ३३॥

व्यासजी बोले—राजाओंके यह पूछनेपर ध्रुवसन्धिके पुत्र राजा सुदर्शन मन-ही-मन भगवतीका स्मरण करके हर्षपूर्वक उनसे कहने लगे—॥ ३४॥

सुदर्शन बोले—हे राजाओ! उन जगदम्बाके उत्तम चरित्रको मैं क्या कहूँ; क्योंकि ब्रह्मा आदि तथा इन्द्रसहित सभी देवता भी उन्हें नहीं जानते॥ ३५॥

हे राजाओ! वे भगवती सबकी आदिस्वरूपा हैं, महालक्ष्मीके रूपमें प्रतिष्ठित हैं, वे वरेण्य हैं और उत्तम सात्त्विकी शक्तिके रूपमें समस्त विश्वका पालन करनेमें तत्पर रहती हैं॥ ३६॥

वे अपने रजोगुणी स्वरूपसे सृष्टि करती, सत्वगुणी स्वरूपसे पालन करती और तमोगुणी स्वरूपसे इसका संहार करती हैं, इसी कारण वे त्रिगुणात्मिका कही गयी हैं। परम शक्तिस्वरूपा निर्गुणा भगवती समस्त कामनाएँ पूर्ण कर देती हैं। हे श्रेष्ठ राजाओ! वे ब्रह्मा आदि सभी देवताओंकी भी आदिकारण हैं॥ ३७-३८॥

हे राजाओ! योगीलोग भी निर्गुणा भगवतीको जाननेमें सर्वथा असमर्थ हैं। अतः बुद्धिमानोंको चाहिये कि सरलतापूर्वक सेवनीय सगुणा भगवतीकी निरन्तर आराधना करें॥ ३९॥

राजागण बोले—बाल्यावस्थामें ही आप वनवासी हो गये थे तथा भयसे व्याकुल थे। तब आपको उन उत्तम परमा शक्तिका ज्ञान कैसे प्राप्त हुआ?॥ ४०॥

हे नृप! आपने उनकी उपासना और पूजा कैसे की, जिससे शीघ्रतापूर्वक प्रसन्न होकर उन्होंने आपकी सहायता की॥ ४१॥

सुदर्शन बोले—हे राजाओ! बाल्यकालमें ही मुझे उनका अतिश्रेष्ठ बीजमन्त्र प्राप्त हो गया था। मैं उसी कामराज नामक बीजमन्त्रका सदा जप करता हुआ भगवतीका स्मरण करता रहता हूँ॥ ४२॥

ऋषियोंके द्वारा उन कल्याणमयी भगवतीके विषयमें बताये जानेपर मैंने उन्हें जाना और तभीसे मैं परम भक्तिके साथ दिन-रात उन परा शक्तिका स्मरण किया करता हूँ॥ ४३॥

व्यासजी बोले—सुदर्शनका वचन सुनकर वे राजा भी भक्तिपरायण हो गये और उन देवीको ही परम शक्ति मानकर अपने-अपने घर चले गये॥ ४४॥

सुदर्शनसे अनुमति लेकर महाराज सुबाहु काशी चले गये और धर्मात्मा सुदर्शन वहाँसे अयोध्याकी ओर चल पड़े॥ ४५॥

राजा शत्रुजित् युद्धमें मारा गया और सुदर्शन विजयी हुए—यह सुनकर मन्त्रीलोग प्रेमसे प्रफुल्लित हो उठे॥ ४६॥

राजा सुदर्शनके आगमनका समाचार सुनकर साकेतके निवासी विविध प्रकारके उपहार लेकर उनके सम्मुख उपस्थित हुए और सब राजकर्मचारीगण भी हाथोंमें नाना प्रकारकी भेंट-सामग्री लेकर आये। महाराज ध्रुवसन्धिके पुत्र सुदर्शनको राजाके रूपमें जानकर अयोध्याकी समस्त प्रजा आनन्दविभोर हो गयी॥ ४७-४८॥

अपनी स्त्रीके साथ अयोध्यामें पहुँचकर सब लोगोंका सम्मान करके राजा सुदर्शन राजभवनमें गये। उस समय बन्दीजन उनकी स्तुति कर रहे थे, मन्त्रीगण उनकी वन्दना कर रहे थे और कन्याएँ उनके ऊपर लाजा (धानका लावा) तथा पुष्प बिखेर रही थीं॥ ४९-५०॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत तृतीय स्कन्धका 'सुदर्शनद्वारा देवीकी महिमाका वर्णन' नामक चौबीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २४॥

पचीसवाँ अध्याय

सुदर्शनका शत्रुजित्‌की माताको सान्त्वना देना, सुदर्शनद्वारा अयोध्यामें तथा राजा सुबाहुद्वारा काशीमें देवी दुर्गाकी स्थापना

व्यासजी बोले—अयोध्या पहुँचकर नृपश्रेष्ठ सुदर्शन अपने मित्रोंके साथ राजभवनमें गये। वहाँपर शत्रुजित्‌की परम शोकाकुल माताको प्रणामकर उन्होंने कहा—हे माता! मैं आपके चरणोंकी शपथ खाकर कहता हूँ कि आपके पुत्र तथा आपके पिता युधाजित्‌को युद्धमें मैंने नहीं मारा है॥ १-२॥

स्वयं भगवती दुर्गाने रणभूमिमें उनका वध किया है; इसमें मेरा अपराध नहीं है। होनी तो अवश्य होकर रहती है, उसे टालनेका कोई उपाय नहीं है॥ ३॥

हे मानिनि! अपने मृत पुत्रके विषयमें आप शोक न करें; क्योंकि जीव अपने पूर्वकर्मोंके अधीन होकर सुख-दुःखरूपी भोगोंको भोगता है॥ ४॥

हे माता! मैं आपका दास हूँ। जैसे मनोरमा मेरी माता हैं, वैसे ही आप भी मेरी माता हैं। हे धर्मज्ञे! हे मानिनि! आपमें और उनमें मेरे लिये कुछ भी भेद नहीं है॥ ५॥

अपने किये हुए शुभ तथा अशुभ कर्मोंका फल अवश्य ही भोगना पड़ता है। अतएव सुख-दुःखके विषयमें आपको कभी भी शोक नहीं करना चाहिये*॥ ६॥

* अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्। तस्मान्न शोचितव्यं ते सुखे दुःखे कदाचन॥ (श्रीमद्देवीभा० ३। २५। ६)

मनुष्यको चाहिये कि दु:खकी स्थितिमें अधिक दु:खवालोंको तथा सुखकी स्थितिमें अधिक सुखवालोंको देखे; अपने आपको हर्ष-शोकरूपी शत्रुओंके अधीन न करे। यह सब दैवके अधीन है, अपने अधीन कभी नहीं। अतएव बुद्धिमान् मनुष्यको चाहिये कि शोकसे अपनी आत्माको न सुखाये॥ ७-८॥

जैसे कठपुतली नट आदिके संकेतपर नाचती है, उसी प्रकार जीवको भी अपने कर्मके अधीन होकर सर्वत्र रहना पड़ता है॥ ९॥

हे माता! अपने किये हुए कर्मका फल भोगना ही पड़ता है—यह सोचते हुए मैं वनमें गया था, इसलिये मेरे मनमें दु:ख नहीं हुआ। इस बातको मैं अभी भी जानता हूँ॥ १०॥

इसी अयोध्यामें मेरे नाना मारे गये, माता विधवा हो गयी। भयसे व्याकुल वह मुझे लेकर घोर वनमें चली गयी। रास्तेमें चोरोंने उसे लूट लिया, उसके वस्त्रतक उतार लिये और समस्त राह-सामग्री छीन ली। वह बालपुत्रा निराश्रय होकर मुझे लिये हुए भारद्वाजमुनिके आश्रमपर पहुँची। ये मन्त्री विदल्ल तथा अबला दासी हमारे साथ गये थे॥ ११—१३॥

आश्रमके मुनियों और मुनिपत्नियोंने दया करके नीवार तथा फलोंसे भलीभाँति हमारा पालन किया और हम तीनों वहीं रहने लगे॥ १४॥

उस समय निर्धन होनेके कारण न मुझे दु:ख था और न अब धन आ जानेपर सुख ही है। मेरे मनमें कभी भी वैर तथा ईर्ष्याकी भावना नहीं रहती॥ १५॥

हे परन्तपे! राजसी भोजनकी अपेक्षा नीवारभक्षण श्रेष्ठ है; क्योंकि राजस अन्न खानेवाला नरकमें जा सकता है, किंतु नीवारभोजी कभी नहीं॥ १६॥

इन्द्रियोंपर सम्यक् नियन्त्रण करके विज्ञ पुरुषको धर्मका आचरण करना चाहिये, जिससे उसे नरकमें न जाना पड़े॥ १७॥

हे माता! इस पवित्र भारतवर्षमें मानवजन्म दुर्लभ है। आहारादिका सुख तो निश्चय ही सभी योनियोंमें मिल सकता है। स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाले इस मनुष्यतनको पाकर धर्मसाधन करना चाहिये; क्योंकि अन्य योनियोंमें यह दुर्लभ है* ॥ १८-१९॥

व्यासजी बोले—उस सुदर्शनके यह कहनेपर लीलावती बहुत लज्जित हुई और पुत्रशोक त्यागकर आँखोंमें आँसू भरके बोली—॥ २०॥

हे पुत्र! मेरे पिता युधाजित्‌ने मुझे अपराधिनी बना दिया। उन्होंने ही तुम्हारे नानाका वध करके राज्यका हरण कर लिया था॥ २१॥

हे तात! उस समय मैं उन्हें तथा अपने पुत्रको रोकनेमें समर्थ नहीं थी। उन्होंने जो कुछ किया, उसमें मेरा अपराध नहीं था॥ २२॥

वे दोनों अपने ही कर्मसे मृत्युको प्राप्त हुए हैं। उनकी मृत्युमें तुम कारण नहीं हो। अतएव मैं अपने उस पुत्रके लिये शोक नहीं करती। मैं सदा उसके किये कर्मकी चिन्ता करती रहती हूँ॥ २३॥

हे कल्याण! अब तुम्हीं मेरे पुत्र हो और मनोरमा मेरी बहन है। हे पुत्र! तुम्हारे प्रति मेरे मनमें तनिक भी शोक या क्रोध नहीं है॥ २४॥

हे महाभाग! अब तुम राज्य करो और प्रजाका पालन करो। हे सुव्रत! भगवतीकी कृपासे ही तुम्हें यह अकंटक राज्य प्राप्त हुआ है॥ २५॥

माता लीलावतीका वचन सुनकर उन्हें प्रणाम करके राजकुमार सुदर्शन उस भव्य भवनमें गये, जहाँ पहले उनकी माता मनोरमा रहा करती थीं। वहाँ जाकर उन्होंने सब मन्त्रियों तथा ज्योतिषियोंको बुलाकर शुभ दिन और मुहूर्त पूछा और कहा कि सोनेका सुन्दर सिंहासन बनवाकर उसपर विराजमान देवीका मैं नित्य पूजन करूँगा। उस सिंहासनपर धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष प्रदान करनेवाली भगवतीकी स्थापना करनेके बाद ही मैं राज्यकार्य संचालित करूँगा, जैसा मेरे पूर्वज श्रीराम आदिने किया है। सभी नागरिक-जनोंको चाहिये कि वे सभी प्रकारके काम, अर्थ और सिद्धि प्रदान करनेवाली कल्याणमयी भगवती आदिशक्तिका पूजन तथा सम्मान करते रहें॥ २६—३०॥

राजा सुदर्शनके ऐसा कहनेपर मन्त्रीगण राजाज्ञाके पालनमें तत्पर हो गये। उन्होंने शिल्पियोंद्वारा एक बहुत

---

* मानुष्यं दुर्लभं मातः खण्डेऽस्मिन्भारते शुभे। आहारादिसुखं नूनं भवेत्सर्वासु योनिषु॥
प्राप्य तं मानुषं देहं कर्तव्यं धर्मसाधनम्। स्वर्गमोक्षप्रदं नृणां दुर्लभं चान्ययोनिषु॥ (श्रीमद्देवीभा० ३। २५। १८-१९)

सुन्दर मन्दिर तैयार कराया॥ ३१॥

तदनन्तर राजाने देवीकी प्रतिमा बनवाकर शुभ दिन और शुभ मुहूर्तमें वैदिक विद्वानोंको बुलाकर उसकी स्थापना की॥ ३२॥

तत्पश्चात् विधिवत् हवन तथा देवपूजन करके बुद्धिमान् राजाने उस मन्दिरमें देवीकी प्रतिमा स्थापित की॥ ३३॥

हे राजन्! उस समय ब्राह्मणोंके वेदघोष, विविध गानों तथा वाद्योंकी ध्वनिके साथ बहुत बड़ा उत्सव मनाया गया॥ ३४॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार वेदवादी विद्वानोंद्वारा कल्याणमयी देवीकी विधिवत् स्थापना कराकर राजा सुदर्शनने बड़े विधानके साथ नाना प्रकारकी पूजा सम्पन्न की॥ ३५॥

इस प्रकार राजा सुदर्शनने भगवतीकी पूजा करके अपना पैतृक राज्य प्राप्त किया। तभीसे समस्त कोसल देशमें अम्बिकादेवी विख्यात हो गयीं॥ ३६॥

सम्पूर्ण राज्य प्राप्त करनेके बाद सद्धर्मसे विजय प्राप्त करनेवाले राजा सुदर्शनने सभी धर्मात्मा सामन्त राजाओंको अपने अधीन कर लिया॥ ३७॥

जिस प्रकार अपने राज्यमें राम हुए और जिस प्रकार दिलीपके पुत्र राजा रघु हुए उसी प्रकार सुदर्शन भी हुए। जैसे उनके राज्यमें प्रजाओंको सुख था और मर्यादा थी, वैसा ही राजा सुदर्शनके राज्यमें भी था॥ ३८॥

उनके राज्यमें वर्णाश्रमधर्म चारों चरणोंसे समृद्ध हुआ। उस समय धरतीतलपर किसीका भी मन अधर्ममें लिप्त नहीं होता था॥ ३९॥

कोसलदेशके सभी राजाओंने प्रत्येक ग्राममें देवीके मन्दिर बनवाये। तबसे समस्त कोसलदेशमें प्रेमपूर्वक देवीकी पूजा होने लगी॥ ४०॥

महाराज सुबाहुने भी काशीमें मन्दिरका निर्माण कराकर भक्तिपूर्वक दुर्गादेवीकी दिव्य प्रतिमा स्थापित की॥ ४१॥

काशीके सभी लोग प्रेम और भक्तिमें तत्पर होकर विधिवत् दुर्गादेवीकी उसी प्रकार पूजा करने लगे, जैसे भगवान् विश्वनाथजीकी करते थे॥ ४२॥

हे महाराज! तबसे इस धरातलपर देश-देशमें भगवती दुर्गा विख्यात हो गयीं और लोगोंमें उनकी भक्ति बढ़ने लगी। उस समय भारतवर्षमें सब जगह सभी वर्णोंमें भवानी ही सबकी पूजनीया हो गयीं॥ ४३-४४॥*

हे नृप! सभी लोग भगवती शक्तिको मानने लगे, उनकी भक्तिमें निरत रहने लगे और वेदवर्णित स्तोत्रोंके द्वारा उनके जप तथा ध्यानमें तत्पर हो गये। इस प्रकार भक्तिपरायण लोग सभी नवरात्रोंमें विधानपूर्वक भगवतीका पूजन, हवन तथा यज्ञ करने लगे॥ ४५-४६॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत तृतीय स्कन्धका 'देवीस्थापनवर्णन' नामक पचीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २५॥

छब्बीसवाँ अध्याय

नवरात्रव्रत-विधान, कुमारीपूजामें प्रशस्त कन्याओंका वर्णन

जनमेजय बोले—हे द्विजश्रेष्ठ! नवरात्रके आनेपर और विशेष करके शारदीय नवरात्रमें क्या करना चाहिये? उसका विधान आप मुझे भलीभाँति बताइये॥ १॥

हे महामते! उस पूजनका क्या फल है और उसमें किस विधिका पालन करना चाहिये। हे द्विजवर! कृपया विस्तारके साथ मुझे यह सब बताइये॥ २॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! अब मैं पवित्र नवरात्रव्रतके विषयमें बता रहा हूँ, सुनिये। शरत्कालके नवरात्रमें विशेष करके यह व्रत करना चाहिये॥ ३॥

उसी प्रकार प्रेमपूर्वक वसन्त ऋतुके नवरात्रमें भी इस

* सुबाहुरपि काश्यां तु दुर्गायाः प्रतिमां शुभाम्। कारयित्वा च प्रासादं स्थापयामास भक्तितः॥
तत्र तस्या जनाः सर्वे प्रेमभक्तिपरायणाः। पूजां चक्रुर्विधानेन यथा विश्वेश्वरस्य ह॥
विख्याता सा बभूवाथ दुर्गा देवी धरातले। देशे देशे महाराज तस्या भक्तिर्व्यवर्धत॥
सर्वत्र भारते लोके सर्ववर्णेषु सर्वथा। भजनीया भवानी तु सर्वेषामभवत्तदा॥ (श्रीमद्देवीभा० ३। २५। ४१—४४)

व्रतको करे। ये दोनों ऋतुएँ सब प्राणियोंके लिये यमदंष्ट्रा कही गयी हैं॥ ४॥

शरत् तथा वसन्त नामक ये दोनों ऋतुएँ संसारमें प्राणियोंके लिये दुर्गम हैं। अतएव आत्मकल्याणके इच्छुक व्यक्तिको बड़े यत्नके साथ यह नवरात्रव्रत करना चाहिये॥ ५॥

ये वसन्त तथा शरद्—दोनों ही ऋतुएँ बड़ी भयानक हैं और मनुष्योंके लिये रोग उत्पन्न करनेवाली हैं। ये सबका विनाश कर देनेवाली हैं। अतएव हे राजन्! बुद्धिमान् लोगोंको शुभ चैत्र तथा आश्विनमासमें भक्तिपूर्वक चण्डिकादेवीका पूजन करना चाहिये॥ ६-७॥

अमावस्या आनेपर व्रतकी सभी शुभ सामग्री एकत्रित कर ले और उस दिन एकभुक्त व्रत करे और हविष्य ग्रहण करे॥ ८॥

किसी समतल तथा पवित्र स्थानमें सोलह हाथ लम्बे-चौड़े और स्तम्भ तथा ध्वजाओंसे सुसज्जित मण्डपका निर्माण करना चाहिये॥ ९॥

उसको सफेद मिट्टी और गोबरसे लिपवा दे। तत्पश्चात् उस मण्डपके बीचमें सुन्दर, चौरस और स्थिर वेदी बनाये॥ १०॥

वह वेदी चार हाथ लम्बी-चौड़ी और हाथभर ऊँची होनी चाहिये। पीठके लिये उत्तम स्थानका निर्माण करे तथा विविध रंगोंके तोरण लटकाये और ऊपर चाँदनी लगा दे॥ ११॥

रात्रिमें देवीका तत्त्व जाननेवाले, सदाचारी, संयमी और वेद-वेदांगके पारंगत विद्वान् ब्राह्मणोंको आमन्त्रित करके प्रतिपदाके दिन प्रातःकाल नदी, नद, तड़ाग, बावली, कुआँ अथवा घरपर ही विधिवत् स्नान करे॥ १२-१३॥

प्रातःकालके समय नित्यकर्म करके ब्राह्मणोंका वरण-कर उन्हें मधुपर्क तथा अर्घ्य-पाद्य आदि अर्पण करे॥ १४॥

अपनी शक्तिके अनुसार उन्हें वस्त्र, अलंकार आदि प्रदान करे। धन रहते हुए इस काममें कभी कृपणता न करे॥ १५॥

सन्तुष्ट ब्राह्मणोंके द्वारा किया हुआ कर्म सम्यक् प्रकारसे परिपूर्ण होता है। देवीका पाठ करनेके लिये नौ, पाँच, तीन अथवा एक ब्राह्मण बताये गये हैं॥ १६॥

देवीभागवतका पारायण करनेके कार्यमें किसी शान्त ब्राह्मणका वरण करे और वैदिक मन्त्रोंसे स्वस्तिवाचन कराये॥ १७॥

वेदीपर रेशमी वस्त्रसे आच्छादित सिंहासन स्थापित करे। उसके ऊपर चार भुजाओं तथा उनमें आयुधोंसे युक्त देवीकी प्रतिमा स्थापित करे। भगवतीकी प्रतिमा रत्नमय भूषणोंसे युक्त, मोतियोंके हारसे अलंकृत, दिव्य वस्त्रोंसे सुसज्जित, शुभलक्षणसम्पन्न और सौम्य आकृतिकी हो। वे कल्याणमयी भगवती शंख-चक्र-गदा-पद्म धारण किये हुए हों और सिंहपर सवार हों; अथवा अठारह भुजाओंसे सुशोभित सनातनी देवीको प्रतिष्ठित करे॥ १८—२०॥

भगवतीकी प्रतिमाके अभावमें नवार्णमन्त्रयुक्त यन्त्रको पीठपर स्थापित करे और पीठपूजाके लिये पासमें कलश भी स्थापित कर ले॥ २१॥

वह कलश पंचपल्लवयुक्त, वैदिक मन्त्रोंसे भलीभाँति संस्कृत, उत्तम तीर्थके जलसे पूर्ण और सुवर्ण तथा पंचरत्नमय होना चाहिये॥ २२॥

पासमें पूजाकी सब सामग्रियाँ रखकर उत्सवके निमित्त गीत तथा वाद्योंकी ध्वनि भी करानी चाहिये॥ २३॥

हस्तनक्षत्रयुक्त नन्दा (प्रतिपदा) तिथिमें पूजन श्रेष्ठ माना जाता है। हे राजन्! पहले दिन विधिवत् किया हुआ पूजन मनुष्योंका मनोरथ पूर्ण करनेवाला होता है॥ २४॥

सबसे पहले उपवासव्रत, एकभुक्तव्रत अथवा नक्तव्रत—इनमेंसे किसी एक व्रतके द्वारा नियम करनेके पश्चात् ही पूजा करनी चाहिये॥ २५॥

[पूजनके पहले प्रार्थना करते हुए कहे—] हे माता! मैं सर्वश्रेष्ठ नवरात्रव्रत करूँगा। हे देवि! हे जगदम्बे! [इस पवित्र कार्यमें] आप मेरी सम्पूर्ण सहायता करें॥ २६॥

इस व्रतके लिये यथाशक्ति नियम रखे। उसके बाद मन्त्रोच्चारणपूर्वक विधिवत् भगवतीका पूजन करे॥ २७॥

चन्दन, अगरु, कपूर तथा मन्दार, करंज, अशोक, चम्पा, कनैल, मालती, ब्राह्मी आदि सुगन्धित पुष्पों, सुन्दर बिल्वपत्रों और धूप-दीपसे विधिवत् भगवती जगदम्बाका पूजन करना चाहिये॥ २८-२९॥

उस अवसरपर अर्घ्य भी प्रदान करे। हे राजन्! नारियल, बिजौरा नीबू, दाडिम, केला, नारंगी, कटहल तथा बिल्वफल आदि अनेक प्रकारके सुन्दर फलोंके साथ भक्तिपूर्वक अन्नका नैवेद्य एवं पवित्र बलि अर्पित करे॥ ३०—३४॥

होमके लिये त्रिकोण कुण्ड बनाना चाहिये अथवा त्रिकोणके मानके अनुरूप उत्तम वेदी बनानी चाहिये॥ ३५॥

विविध प्रकारके सुन्दर द्रव्योंसे प्रतिदिन भगवतीका त्रिकाल

(प्रातः-सायं-मध्याह्न) पूजन करना चाहिये और गायन, वादन तथा नृत्यके द्वारा महान् उत्सव मनाना चाहिये॥ ३६॥

[व्रती] नित्य भूमिपर सोये और वस्त्र, आभूषण तथा अमृतके सदृश दिव्य भोजन आदिसे कुमारी कन्याओंका पूजन करे॥ ३७॥

नित्य एक ही कुमारीका पूजन करे अथवा प्रतिदिन एक-एक कुमारीकी संख्याके वृद्धिक्रमसे पूजन करे अथवा प्रतिदिन दुगुने-तिगुनेके वृद्धिक्रमसे और या तो प्रत्येक दिन नौ कुमारी कन्याओंका पूजन करे॥ ३८॥

अपने धन-सामर्थ्यके अनुसार भगवतीकी पूजा करे, किंतु हे राजन्! देवीके यज्ञमें धनकी कृपणता न करे॥ ३९॥

हे राजन्! पूजाविधिमें एक वर्षकी अवस्थावाली कन्या नहीं लेनी चाहिये; क्योंकि वह कन्या गन्ध और भोग आदि पदार्थोंके स्वादसे बिलकुल अनभिज्ञ रहती है। कुमारी कन्या वह कही गयी है, जो दो वर्षकी हो चुकी हो। तीन वर्षकी कन्या त्रिमूर्ति, चार वर्षकी कन्या कल्याणी, पाँच वर्षकी रोहिणी, छः वर्षकी कालिका, सात वर्षकी चण्डिका, आठ वर्षकी शाम्भवी, नौ वर्षकी दुर्गा और दस वर्षकी कन्या सुभद्रा कहलाती है। इससे ऊपरकी अवस्थावाली कन्याका पूजन नहीं करना चाहिये; क्योंकि वह सभी कार्योंमें निन्द्य मानी जाती है। इन नामोंसे कुमारीका विधिवत् पूजन सदा करना चाहिये। अब मैं इन नौ कन्याओंके पूजनसे प्राप्त होनेवाले फलोंको कहूँगा॥ ४०—४४॥

'कुमारी' नामकी कन्या पूजित होकर दुःख तथा दरिद्रताका नाश करती है; वह शत्रुओंका क्षय और धन, आयु तथा बलकी वृद्धि करती है॥ ४५॥

'त्रिमूर्ति' नामकी कन्याका पूजन करनेसे धर्म-अर्थ-कामकी पूर्ति होती है, धन-धान्यका आगम होता है और पुत्र-पौत्र आदिकी वृद्धि होती है॥ ४६॥

जो राजा विद्या, विजय, राज्य तथा सुखकी कामना करता हो, उसे सभी कामनाएँ प्रदान करनेवाली 'कल्याणी' नामक कन्याका नित्य पूजन करना चाहिये॥ ४७॥

शत्रुओंका नाश करनेके लिये भक्तिपूर्वक 'कालिका' कन्याका पूजन करना चाहिये। धन तथा ऐश्वर्यकी अभिलाषा रखनेवालेको 'चण्डिका' कन्याकी सम्यक् अर्चना करनी चाहिये॥ ४८॥

हे राजन्! सम्मोहन, दुःख-दारिद्र्यके नाश तथा संग्राममें विजयके लिये 'शाम्भवी' कन्याकी नित्य पूजा करनी चाहिये॥ ४९॥

क्रूर शत्रुके विनाश एवं उग्र कर्मकी साधनाके निमित्त और परलोकमें सुख पानेके लिये 'दुर्गा' नामक कन्याकी भक्तिपूर्वक आराधना करनी चाहिये॥ ५०॥

मनुष्य अपने मनोरथकी सिद्धिके लिये 'सुभद्रा' की सदा पूजा करे और रोगनाशके निमित्त 'रोहिणी' की विधिवत् आराधना करे॥ ५१॥

'श्रीरस्तु' इस मन्त्रसे अथवा किन्हीं भी श्रीयुक्त देवीमन्त्रसे अथवा बीजमन्त्रसे भक्तिपूर्वक भगवतीकी पूजा करनी चाहिये॥ ५२॥

जो भगवती कुमारके रहस्यमय तत्त्वों और ब्रह्मादि देवताओंकी भी लीलापूर्वक रचना करती हैं, उन 'कुमारी' का मैं पूजन करता हूँ॥ ५३॥

जो सत्त्व आदि तीनों गुणोंसे तीन रूप धारण करती हैं, जिनके अनेक रूप हैं तथा जो तीनों कालोंमें सर्वत्र व्याप्त रहती हैं, उन भगवती 'त्रिमूर्ति' की मैं पूजा करता हूँ॥ ५४॥

निरन्तर पूजित होनेपर जो भक्तोंका नित्य कल्याण करती हैं, सब प्रकारकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाली उन भगवती 'कल्याणी' का मैं भक्तिपूर्वक पूजन करता हूँ॥ ५५॥

जो देवी सम्पूर्ण जीवोंके पूर्वजन्मके संचित कर्मरूपी बीजोंका रोपण करती हैं, उन भगवती रोहिणीकी मैं उपासना करता हूँ॥ ५६॥

जो देवी काली कल्पान्तमें चराचरसहित सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको अपनेमें विलीन कर लेती हैं, उन भगवती 'कालिका' की मैं पूजा करता हूँ॥ ५७॥

अत्यन्त उग्र स्वभाववाली, उग्ररूप धारण करनेवाली, चण्ड-मुण्डका संहार करनेवाली तथा घोर पापोंका नाश करनेवाली उन भगवती 'चण्डिका' की मैं पूजा करता हूँ॥ ५८॥

वेद जिनके स्वरूप हैं, उन्हीं वेदोंके द्वारा जिनकी उत्पत्ति अकारण बतायी गयी है, उन सुखदायिनी भगवती 'शाम्भवी' का मैं पूजन करता हूँ॥ ५९॥

जो अपने भक्तको सर्वदा संकटसे बचाती हैं, बड़े-बड़े विघ्नों तथा दुःखोंका नाश करती हैं और सभी देवताओंके लिये दुर्ज्ञेय हैं, उन भगवती 'दुर्गा' की मैं पूजा

करता हूँ॥ ६०॥

जो पूजित होनेपर भक्तोंका सदा कल्याण करती हैं, उन अमंगलनाशिनी भगवती 'सुभद्रा' की मैं पूजा करता हूँ॥ ६१॥*

विद्वानोंको चाहिये कि वस्त्र, भूषण, माला, गन्ध आदि श्रेष्ठ उपचारोंसे इन मन्त्रोंके द्वारा सर्वदा कन्याओंका पूजन करें॥ ६२॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत तृतीय स्कन्धका 'कुमारीपूजावर्णन' नामक छब्बीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २६॥

सत्ताईसवाँ अध्याय

कुमारीपूजामें निषिद्ध कन्याओंका वर्णन, नवरात्रव्रतके माहात्म्यके प्रसंगमें सुशील नामक वणिक्की कथा

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] जो कन्या किसी अंगसे हीन हो, कोढ़ तथा घावयुक्त हो, जिसके शरीरके किसी अंगसे दुर्गन्ध आती हो और जो विशाल कुलमें उत्पन्न हुई हो—ऐसी कन्याका पूजामें परित्याग कर देना चाहिये॥ १॥

जन्मसे अन्धी, तिरछी नजरसे देखनेवाली, कानी, कुरूप, बहुत रोमवाली, रोगी तथा रजस्वला कन्याका पूजामें परित्याग कर देना चाहिये॥ २॥

अत्यन्त दुर्बल, समयसे पूर्व ही गर्भसे उत्पन्न, विधवा स्त्रीसे उत्पन्न तथा कन्यासे उत्पन्न—ये सभी कन्याएँ पूजा आदि सभी कार्योंमें सर्वथा त्याज्य हैं॥ ३॥

रोगसे रहित, रूपवान् अंगोंवाली, सौन्दर्यमयी, व्रणरहित तथा एक वंशमें (अपने माता-पितासे) उत्पन्न कन्याकी ही विधिवत् पूजा करनी चाहिये॥ ४॥

समस्त कार्योंकी सिद्धिके लिये ब्राह्मणकी कन्या, विजय-प्राप्तिके लिये राजवंशमें उत्पन्न कन्या तथा धन-लाभके लिये वैश्यवंश अथवा शूद्रवंशमें उत्पन्न कन्या पूजनके योग्य मानी गयी है॥ ५॥

ब्राह्मणको ब्राह्मणवर्णमें उत्पन्न कन्याकी; क्षत्रियोंको भी ब्राह्मणवर्णमें उत्पन्न कन्याकी; वैश्योंको ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य—तीनों वर्णोंमें उत्पन्न कन्याकी तथा शूद्रको चारों वर्णोंमें उत्पन्न कन्याकी पूजा करनी चाहिये। शिल्पकर्ममें लगे हुए मनुष्योंको यथायोग्य अपने-अपने वंशमें उत्पन्न कन्याओंकी पूजा करनी चाहिये। नवरात्र-विधिसे भक्तिपूर्वक निरन्तर पूजाकी जानी चाहिये। यदि कोई व्यक्ति नवरात्रपर्यन्त प्रतिदिन पूजा करनेमें असमर्थ है, तो उसे अष्टमी तिथिको विशेषरूपसे अवश्य पूजन करना चाहिये॥ ६—८॥

प्राचीन कालमें दक्षके यज्ञका विध्वंस करनेवाली महाभयानक भगवती भद्रकाली करोड़ों योगिनियोंसहित अष्टमी तिथिको ही प्रकट हुई थीं॥ ९॥

अतः अष्टमीको विशेष विधानसे सदा भगवतीकी पूजा करनी चाहिये। उस दिन विविध प्रकारके उपहारों, गन्ध, माला, चन्दनके अनुलेप, पायस आदिके हवन, ब्राह्मण-भोजन तथा फल-पुष्पादि उपहारोंसे भगवतीको प्रसन्न करना चाहिये॥ १०-११॥

हे राजन्! पूरे नवरात्रभर उपवास करनेमें असमर्थ

---

* कुमारस्य च तत्त्वानि या सृजत्यपि लीलया। कादीनपि च देवांस्तां कुमारीं पूजयाम्यहम्॥
सत्त्वादिभिस्त्रिमूर्तिर्या तैर्हि नानास्वरूपिणी। त्रिकालव्यापिनी शक्तिस्त्रिमूर्तिं पूजयाम्यहम्॥
कल्याणकारिणी नित्यं भक्तानां पूजितानिशम्। पूजयामि च तां भक्त्या कल्याणीं सर्वकामदाम्॥
रोहयन्ती च बीजानि प्राग्जन्मसञ्चितानि वै। या देवी सर्वभूतानां रोहिणीं पूजयाम्यहम्॥
काली कालयते सर्वं ब्रह्माण्डं सचराचरम्। कल्पान्तसमये या तां कालिकां पूजयाम्यहम्॥
चण्डिकां चण्डरूपाञ्च चण्डमुण्डविनाशिनीम्। तां चण्डपापहरिणीं चण्डिकां पूजयाम्यहम्॥
अकारणात्समुत्पत्तिर्यन्मयैः परिकीर्तिता। यस्यास्तां सुखदां देवीं शाम्भवीं पूजयाम्यहम्॥
दुर्गात्त्रायति भक्तं या सदा दुर्गार्तिनाशिनी। दुर्ज्ञेया सर्वदेवानां तां दुर्गां पूजयाम्यहम्॥
सुभद्राणि च भक्तानां कुरुते पूजिता सदा। अभद्रनाशिनीं देवीं सुभद्रां पूजयाम्यहम्॥ (श्रीमद्देवीभा० ३। २६। ५३—६१)

लोगोंके लिये तीन दिनका उपवास भी यथोक्त फल प्रदान करनेवाला बताया गया है॥ १२॥

भक्तिभावसे केवल सप्तमी, अष्टमी और नवमी—इन तीन रात्रियोंमें देवीकी पूजा करनेसे सभी फल सुलभ हो जाते हैं॥ १३॥

पूजन, हवन, कुमारी-पूजन तथा ब्राह्मण-भोजन—इनको सम्पन्न करनेसे वह नवरात्र-व्रत पूरा हो जाता है—ऐसा कहा गया है॥ १४॥

इस पृथ्वीलोकमें जितने भी प्रकारके व्रत एवं दान हैं, वे इस नवरात्रव्रतके तुल्य नहीं हैं; क्योंकि यह व्रत सदा धन-धान्य प्रदान करनेवाला, सुख तथा सन्तानकी वृद्धि करनेवाला, आयु तथा आरोग्य प्रदान करनेवाला और स्वर्ग तथा मोक्ष देनेवाला है॥ १५-१६॥

अतएव विद्या, धन अथवा पुत्र—इनमेंसे मनुष्य किसीकी भी कामना करता हो, उसे इस सौभाग्यदायक तथा कल्याणकारी व्रतका विधिपूर्वक अनुष्ठान करना चाहिये॥ १७॥

इस व्रतका अनुष्ठान करनेसे विद्या चाहनेवाला मनुष्य समस्त विद्या प्राप्त कर लेता है और अपने राज्यसे वंचित राजा फिरसे अपना राज्य प्राप्त कर लेता है॥ १८॥

पूर्वजन्ममें जिन लोगोंद्वारा यह उत्तम व्रत नहीं किया गया है, वे इस जन्ममें रोगग्रस्त, दरिद्र तथा सन्तानरहित होते हैं॥ १९॥

जो स्त्री वन्ध्या, विधवा अथवा धनहीन है; उसके विषयमें यह अनुमान कर लेना चाहिये कि उसने [अवश्य ही पूर्वजन्ममें] यह व्रत नहीं किया था॥ २०॥

इस पृथ्वीलोकमें जिस प्राणीने उक्त नवरात्रव्रतका अनुष्ठान नहीं किया, वह इस लोकमें वैभव प्राप्त करके स्वर्गमें आनन्द कैसे प्राप्त कर सकता है?॥ २१॥

जिसने लाल चन्दनमिश्रित कोमल बिल्वपत्रोंसे भवानी जगदम्बाकी पूजा की है, वह इस पृथ्वीपर राजा होता है॥ २२॥

जिस मनुष्यने दुःख तथा सन्तापका नाश करनेवाली, सिद्धियाँ देनेवाली, जगत्‌में सर्वश्रेष्ठ, शाश्वत तथा कल्याणस्वरूपिणी भगवतीकी उपासना नहीं की; वह इस पृथ्वीतलपर सदा ही अनेक प्रकारके कष्टोंसे ग्रस्त, दरिद्र तथा शत्रुओंसे पीड़ित रहता है॥ २३॥

विष्णु, इन्द्र, शिव, ब्रह्मा, अग्नि, कुबेर, वरुण तथा सूर्य समस्त कामनाओंसे परिपूर्ण होकर हर्षके साथ जिन भगवतीका ध्यान करते हैं, उन देवी चण्डिकाका ध्यान मनुष्य क्यों नहीं करते?॥ २४॥

देवगण इनके 'स्वाहा' नाममन्त्रके प्रभावसे तथा पितृगण 'स्वधा' नाममन्त्रके प्रभावसे तृप्त होते हैं। इसीलिये महान् मुनिजन प्रसन्नतापूर्वक सभी यज्ञों तथा श्राद्धकार्योंमें मन्त्रोंके साथ 'स्वाहा' एवं 'स्वधा' नामोंका उच्चारण करते हैं॥ २५॥

जिनकी इच्छासे ब्रह्मा इस विश्वका सृजन करते हैं, भगवान् विष्णु अनेकविध अवतार लेते हैं और शंकरजी जगत्‌को भस्मसात् करते हैं, उन कल्याणकारिणी भगवतीको मनुष्य क्यों नहीं भजता?॥ २६॥

सभी भुवनोंमें कोई भी ऐसा देवता, मनुष्य, पक्षी, सर्प, गन्धर्व, राक्षस, पिशाच एवं पर्वत नहीं है; जो उन भगवतीकी शक्तिके बिना अपनी इच्छासे शक्तिसम्पन्न होकर स्पन्दित होनेमें समर्थ हो॥ २७॥

सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाली उन कल्याणदायिनी चण्डिकाकी सेवा भला कौन नहीं करेगा? चारों प्रकारके पुरुषार्थों (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष)-को चाहनेवाला कौन प्राणी उन भगवतीके नवरात्रव्रतका अनुष्ठान नहीं करेगा?॥ २८॥

यदि कोई महापापी भी नवरात्रव्रत करे तो वह समस्त पापोंसे मुक्ति पा लेता है, इसमें लेशमात्र भी विचार नहीं करना चाहिये॥ २९॥

हे नृपश्रेष्ठ! पूर्वकालमें कोसलदेशमें दीन, धनहीन, अत्यन्त दुःखी एवं विशाल कुटुम्बवाला एक वैश्य रहता था॥ ३०॥

उसकी अनेक सन्तानें थीं, जो धनाभावके कारण क्षुधासे पीड़ित रहा करती थीं; सायंकालमें उसके लड़कोंको खानेके लिये कुछ मिल जाता था तथा वह भी कुछ खा लेता था। इस प्रकार वह वणिक् भूखा रहते हुए सर्वदा दूसरोंका काम करके धैर्यपूर्वक परिवारका पालन-पोषण कर रहा था॥ ३१-३२॥

वह सर्वदा धर्मपरायण, शान्त, सदाचारी, सत्यवादी,

क्रोध न करनेवाला, धैर्यवान्, अभिमानरहित तथा ईर्ष्याहीन था॥ ३३॥

प्रतिदिन देवताओं, पितरों तथा अतिथियोंकी पूजा करके वह अपने परिवारजनोंके भोजन कर लेनेके उपरान्त स्वयं भोजन करता था॥ ३४॥

इस प्रकार कुछ समय बीतनेपर गुणोंके कारण सुशील नामसे ख्यातिप्राप्त उस वणिक्ने दरिद्रता तथा क्षुधा-पीड़ासे अत्यन्त व्याकुल होकर एक शान्तस्वभाव ब्राह्मणसे पूछा॥ ३५॥

सुशील बोला—हे महाबुद्धिसम्पन्न ब्राह्मणदेवता! आज मुझपर कृपा करके यह बताइये कि मेरी दरिद्रताका नाश निश्चितरूपसे कैसे हो सकता है?॥ ३६॥

हे मानद! मुझे धनकी अभिलाषा तो नहीं है; किंतु हे द्विजश्रेष्ठ! मैं आपसे कोई ऐसा उपाय पूछ रहा हूँ, जिससे मैं कुटुम्बके भरण-पोषणमात्रके लिये धनसम्पन्न हो जाऊँ॥ ३७॥

मेरी पुत्री और पुत्र [क्षुधासे पीड़ित होकर] भोजनके लिये बहुत रोते हैं और मेरे घरमें इतना भी अन्न नहीं रहता कि मैं उन्हें एक मुट्ठीभर अन्न दे सकूँ॥ ३८॥

रोते हुए बालकको मैंने घरसे निकाल दिया और वह चला गया। इसलिये मेरा हृदय शोकाग्निमें जल रहा है। धनके अभावमें मैं क्या करूँ?॥ ३९॥

मेरी पुत्री विवाहके योग्य हो चुकी है, किंतु मेरे पास धन नहीं है। अब मैं क्या करूँ? वह दस वर्षसे अधिककी हो गयी है; इस प्रकार कन्यादानका समय बीता जा रहा है॥ ४०॥

हे विप्रेन्द्र! इसीलिये मैं अत्यधिक चिन्तित हूँ। हे दयानिधान! आप तो सर्वज्ञ हैं, अतएव मुझे कोई ऐसा तप, दान, व्रत, मन्त्र तथा जप बताइये, जिससे मैं अपने आश्रितजनोंका भरण-पोषण करनेमें समर्थ हो जाऊँ। हे द्विज! बस मुझे उतना ही धन मिल जाय और मैं उससे अधिक धनके लिये प्रार्थना नहीं करता॥ ४१-४२॥

हे महाभाग! आपकी कृपासे मेरा परिवार अवश्य सुखी हो सकता है। अतएव आप अपने ज्ञानबलसे भलीभाँति विचार करके वह उपाय बताइये॥ ४३॥

व्यासजी बोले—हे नृपश्रेष्ठ! उसके इस प्रकार पूछनेपर उत्तम व्रतका पालन करनेवाले उस ब्राह्मणने बड़ी प्रसन्नतापूर्वक उस वैश्यसे कहा—॥ ४४॥

हे वैश्यवर्य! अब तुम पवित्र नवरात्रव्रतका अनुष्ठान करो। इसमें तुम भगवतीकी पूजा, हवन, ब्राह्मणभोजन, वेदपाठ, उनके मन्त्रका जप और होम आदि यथाशक्ति सम्पन्न करो। इससे तुम्हारा कार्य अवश्य सिद्ध होगा॥ ४५-४६॥

हे वैश्य! नवरात्र नामक इस पवित्र तथा सुखदायक व्रतसे बढ़कर इस पृथ्वीतलपर अन्य कोई भी व्रत नहीं है॥ ४७॥

यह नवरात्रव्रत सर्वदा ज्ञान तथा मोक्षको देनेवाला, सुख तथा सन्तानकी वृद्धि करनेवाला एवं शत्रुओंका पूर्णरूपसे विनाश करनेवाला है॥ ४८॥

राज्यसे च्युत तथा सीताके वियोगसे अत्यन्त दु:खित श्रीरामने किष्किन्धापर्वतपर इस व्रतको किया था। सीताकी विरहाग्निसे अत्यधिक सन्तप्त श्रीरामने उस समय नवरात्रव्रतके विधानसे भगवती जगदम्बाकी भलीभाँति पूजा की थी॥ ४९-५०॥

इसी व्रतके प्रभावसे उन्होंने महासागरपर सेतुकी रचनाकर महाबली मन्दोदरीपति रावण, कुम्भकर्ण तथा रावणपुत्र मेघनादका संहार करके सीताको प्राप्त किया। विभीषणको लंकाका राजा बनाकर पुन: अयोध्या लौटकर उन्होंने निष्कण्टक राज्य प्राप्त किया था॥ ५१-५२॥

हे वैश्यवर! इस प्रकार अमित तेजवाले श्रीरामजीने इस नवरात्रव्रतके प्रभावसे पृथ्वीतलपर महान् सुख प्राप्त किया॥ ५३॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! ब्राह्मणका यह वचन सुनकर उस वैश्यने उन्हें अपना गुरु मान लिया और उनसे मायाबीज नामक उत्तम मन्त्रकी दीक्षा प्राप्त की॥ ५४॥

तत्पश्चात् आलस्यहीन होकर अत्यन्त भक्तिपूर्वक पूरे
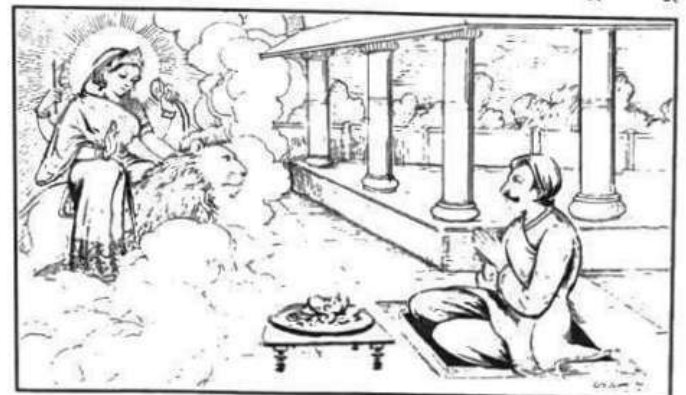
नवरात्रभर उसने उस मन्त्रका जप किया और अनेकविध उपहारोंसे आदरपूर्वक भगवतीका पूजन किया। इस प्रकार मायाबीजपरायण उस वैश्यने नौ वर्षोंतक यह अनुष्ठान किया। नौवें वर्षके अन्तमें महाष्टमी तिथिको अर्धरात्रि आनेपर महेश्वरीने उसे अपना प्रत्यक्ष दर्शन दिया और अनेक प्रकारके वरदानोंसे कृतकृत्य कर दिया॥ ५५—५७॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत तृतीय स्कन्धका 'देवीपूजामहत्त्ववर्णन' नामक सत्ताईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २७॥

अट्ठाईसवाँ अध्याय

श्रीरामचरित्रवर्णन

जनमेजय बोले—श्रीरामने भगवती जगदम्बाके इस सुखप्रदायक व्रतका अनुष्ठान किस प्रकार किया, वे राज्यच्युत कैसे हुए और फिर सीता-हरण किस प्रकार हुआ?॥ १॥

व्यासजी बोले—पूर्वकालमें श्रीमान् महाराज दशरथ अयोध्यापुरीमें राज्य करते थे। वे सूर्यवंशमें श्रेष्ठ राजाके रूपमें प्रतिष्ठित थे और वे देवताओं तथा ब्राह्मणोंका पूजन किया करते थे॥ २॥

उनके चार पुत्र उत्पन्न हुए; जो लोकमें राम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न नामसे विख्यात हुए। गुण तथा रूपमें पूर्ण समानता रखनेवाले वे सभी महाराज दशरथको अत्यन्त प्रिय थे। उनमें राम महारानी कौसल्याके तथा भरत महारानी कैकेयीके पुत्र कहे गये। रानी सुमित्राके लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न नामवाले जुड़वाँ पुत्र उत्पन्न हुए। वे चारों किशोरावस्थामें ही धनुष-बाणधारी हो गये॥ ३—५॥

महाराज दशरथने सुख बढ़ानेवाले अपने चारों पुत्रोंके संस्कार भी सम्पन्न कर दिये। तब एक समय महर्षि विश्वामित्र ने दशरथके यहाँ आकर उनसे रघुनन्दन रामको माँगा॥ ६॥

महाराज दशरथने यज्ञकी रक्षाके लिये लक्ष्मणसहित सोलहवर्षीय पुत्र रामको विश्वामित्रको समर्पित कर दिया॥ ७॥

प्रियदर्शन वे दोनों भाई मुनिके साथ मार्गमें चल दिये। रामचन्द्रजीने मुनियोंको सदा पीड़ित करनेवाली तथा अत्यन्त भयानक रूपवाली ताटकाको रास्तेमें ही मात्र एक बाणसे मार डाला। उन्होंने दुष्ट सुबाहुका वध किया तथा मारीचको अपने बाणसे दूर फेंककर उसे मृतप्राय कर दिया और यज्ञ-रक्षा की। इस प्रकार यज्ञ-रक्षाका महान् कृत्य सम्पन्न करके राम, लक्ष्मण तथा विश्वामित्रने मिथिलापुरीके लिये प्रस्थान किया। जाते समय मार्गमें रामने अबला अहल्याको शापसे मुक्ति प्रदान करके उसे पापरहित कर दिया॥ ८—११॥

इसके बाद वे दोनों भाई मुनि विश्वामित्रके साथ जनकपुर पहुँच गये और वहाँ श्रीरामने जनकजीद्वारा प्रतिज्ञाके रूपमें रखे शिव-धनुषको तोड़ दिया॥ १२॥

तदनन्तर राजाने साक्षात् लक्ष्मीके अंशसे उत्पन्न सीताका विवाह रामके साथ तथा दूसरी पुत्री उर्मिलाका विवाह लक्ष्मणके साथ कर दिया॥ १३॥

शीलसम्पन्न तथा शुभलक्षणोंसे युक्त दोनों भाई भरत तथा शत्रुघ्नने कुशध्वजकी दो पुत्रियों [माण्डवी तथा श्रुतकीर्ति]-को पत्नीरूपमें प्राप्त किया॥ १४॥

हे राजन्! इस प्रकार उन चारों भाइयोंका विवाह मिथिलापुरीमें ही विधि-विधानसे सम्पन्न हुआ॥ १५॥

तत्पश्चात् महाराज दशरथने अपने बड़े पुत्र रामको राज्य करनेयोग्य देखकर उन्हें राज्य-भार सौंपनेका मनमें निश्चय किया॥ १६॥

राजतिलक-सम्बन्धी सामग्रियोंका प्रबन्ध हुआ देखकर रानी कैकेयीने अपने वशीभूत महाराज दशरथसे पूर्वकल्पित दो वरदान माँगे॥ १७॥

उसने पहले वरदानके रूपमें अपने पुत्र भरतके लिये राज्य तथा दूसरे वरदानके रूपमें महात्मा रामको चौदह वर्षोंका वनवास माँगा॥ १८॥

कैकेयीका वचन मानकर श्रीरामचन्द्रजी सीता तथा

लक्ष्मणके साथ दण्डकवन चले गये, जहाँ राक्षस रहते थे॥ १९॥

तदनन्तर पुत्रके वियोगजनित शोकसे सन्तप्त पुण्यात्मा दशरथने पूर्वकालमें एक ऋषिद्वारा प्रदत्त शापका स्मरण करते हुए अपने प्राण त्याग दिये॥ २०॥

माता कैकेयीके कृत्यके कारण पिताजीकी मृत्यु देखकर भरतजीने भाई श्रीरामका हित करनेकी इच्छासे अयोध्याका समृद्ध राज्य स्वीकार नहीं किया॥ २१॥

उधर पंचवटीमें निवास करते हुए श्रीरामने रावणकी छोटी बहन अतिशय कामातुर शूर्पणखाको कुरूप बना दिया॥ २२॥

तब खर-दूषण आदि राक्षसोंने उसे कटी हुई नासिकावाली देखकर अमित तेजस्वी रामके साथ घोर संग्राम किया॥ २३॥

उस संग्राममें सत्यपराक्रमी श्रीरामने मुनियोंका कल्याण करनेकी इच्छासे अत्यन्त बलशाली खर आदि राक्षसोंका संहार कर दिया॥ २४॥

तत्पश्चात् लंका जाकर उस दुष्ट शूर्पणखाने रामके द्वारा खर-दूषणके संहारका समाचार रावणसे बताया॥ २५॥

वह दुष्ट रावण भी संहारके विषयमें सुनकर अत्यन्त क्रोधित हो उठा और तब रथपर सवार होकर वह मारीचके आश्रममें पहुँच गया॥ २६॥

[सीता-हरणके उद्देश्यसे] रावणने मायावी मारीचको असम्भव स्वर्ण-मृग बनाकर सीताको प्रलोभित करनेके लिये भेजा॥ २७॥

तत्पश्चात् वह मायावी मारीच अत्यन्त अद्भुत अंगोंवाला स्वर्ण-मृग बनकर चरते-चरते सीताजीके सन्निकट पहुँच गया और उन्होंने उसे देख लिया॥ २८॥

उसे देखकर दैवी प्रेरणासे सीताने श्रीरामसे कहा—हे कान्त! आप इस मृगका चर्म ले आइये॥ २९॥

राम भी बिना कुछ सोचे-समझे लक्ष्मणको सीताके रक्षार्थ वहीं छोड़कर धनुष तथा बाण लेकर उस मृगके पीछे-पीछे दौड़ पड़े॥ ३०॥

करोड़ों प्रकारकी माया रचनेका ज्ञान रखनेवाला मृगरूपधारी वह मारीच भी रामको अपने पीछे दौड़ता देखकर कभी दिखायी पड़ते हुए तथा कभी आँखोंसे ओझल होते हुए एक वनसे दूसरे वनमें बहुत दूर चला गया॥ ३१॥

रामने अब उसे हस्तगत समझकर क्रोधपूर्वक धनुष खींचकर अत्यन्त तीक्ष्ण बाणसे उस कृत्रिम मृगको मार डाला॥ ३२॥

रामके प्रबल प्रहारसे आहत होकर वह मरणोन्मुख मायावी तथा नीच मृग चीख-चीखकर चिल्लाने लगा—हा लक्ष्मण! अब मैं मारा गया॥ ३३॥

उसके गगन-भेदी चीत्कारकी ध्वनिको सीताने सुन लिया। 'यह तो रामकी पुकार है'—ऐसा मानकर उन्होंने दु:खी होकर देवर लक्ष्मणसे कहा—हे लक्ष्मण! ऐसा

प्रतीत होता है कि वे रघुनन्दन राम आहत हो गये हैं। अतः तुम शीघ्र जाओ। हे सुमित्रानन्दन! वे तुम्हें पुकार रहे हैं; वहाँ शीघ्र ही पहुँचकर उनकी सहायता करो॥ ३४-३५॥

तब लक्ष्मणजीने सीतासे कहा—हे माता! रामका वध ही क्यों न हो; मैं आपको इस आश्रममें इस समय असहाय छोड़कर वहाँ नहीं जा सकता। हे जनकनन्दिनि! मुझे रामकी आज्ञा है कि तुम इसी आश्रममें रहना। उनकी आज्ञाका उल्लंघन करनेमें मैं डरता हूँ। अतः आपका सामीप्य नहीं छोड़ सकता। हे शुचिस्मिते! वह

मायावी भगवान् श्रीरामको बहुत दूर दौड़ा ले गया है—यह जान करके मैं आपको छोड़कर यहाँसे एक पग भी नहीं जा सकता। आप धैर्य धारण कीजिये। मैं तो ऐसा मानता हूँ कि इस समय सम्पूर्ण पृथ्वीलोकमें श्रीरामको मारनेमें कोई समर्थ नहीं है। रामके आदेशका उल्लंघन करके तथा आपको यहाँ छोड़कर मैं नहीं जाऊँगा॥ ३६—३९॥

व्यासजी बोले—तत्पश्चात् सुन्दर दाँतोंवाली तथा सौम्य स्वभाववाली सीताने दैवसे प्रेरित होकर शुभ लक्षणसम्पन्न लक्ष्मणसे रोते हुए यह कठोर वचन कहा—॥ ४०॥

हे सुमित्रातनय! अब मैं जान गयी कि तुम मेरे प्रति अनुरागयुक्त हो और भरतकी प्रेरणासे मेरे प्रयोजनसे यहाँ आये हो॥ ४१॥

हे कुहकाधम! मैं उस तरहकी स्वच्छन्द स्त्री नहीं हूँ। मैं रामके मृत हो जानेपर भी सुखके लिये तुम्हें अपना पति कभी नहीं बना सकती॥ ४२॥

यदि राम नहीं लौटेंगे तो मैं अपना प्राण त्याग दूँगी; क्योंकि उनके बिना मैं विधवा होकर अत्यधिक दुःखी जीवन नहीं जी सकती॥ ४३॥

हे लक्ष्मण! तुम जाओ या रहो। मुझे तुम्हारी वास्तविक इच्छाका पता नहीं है। धर्मपरायण ज्येष्ठ भाईके प्रति आपका प्रेम अब कहाँ चला गया?॥ ४४॥

सीताका वह वचन सुनकर लक्ष्मणके मनमें अत्यधिक कष्ट हुआ। रुदनके कारण रुँधे कण्ठसे उन्होंने जनकनन्दिनी सीतासे कहा—॥ ४५॥

हे भूमिकन्ये! आप इस प्रकारके अति कठोर वचन मेरे लिये क्यों कह रही हैं? मेरा मन तो यह कह रहा है कि आपके समक्ष कोई अनिष्टकर परिस्थिति उत्पन्न होनेवाली है॥ ४६॥

[व्यासजीने कहा—] हे महाराज जनमेजय! ऐसा कहकर अत्यधिक विलाप करते हुए वीर लक्ष्मण सीताको वहीं छोड़कर चल दिये और अत्यधिक शोकाकुल होकर बड़े भाई रामको चारों ओर देखते हुए आगेकी ओर बढ़ते गये॥ ४७॥

इस प्रकार लक्ष्मणके वहाँसे चले जानेपर कपट स्वभाववाले रावणने साधु-वेष धारणकर उस आश्रममें प्रवेश किया॥ ४८॥

जानकी उस दुष्टात्मा रावणको संन्यासी समझकर आदरपूर्वक वन्य सामग्रियोंका अर्घ्य प्रदान करके भिक्षा देने लगीं॥ ४९॥

तब उस दुरात्माने अत्यन्त विनम्र भावसे मधुर वाणीमें सीताजीसे पूछा—हे पद्मपत्रके समान नेत्रोंवाली प्रिये! तुम कौन हो और इस वनमें अकेली क्यों रह रही हो?॥ ५०॥

हे वामोरु! तुम्हारे पिता कौन हैं और तुम्हारे भाई तथा पति कौन हैं? हे मुग्धे! हे सुन्दरि! तुम यहाँ अकेली क्यों रह रही हो?॥ ५१॥

हे प्रिये! इस निर्जन वनमें क्यों रह रही हो? तुम तो महलोंमें निवास करनेयोग्य हो। देवकन्याके समान कान्तिवाली तुम एक मुनिपत्नीकी भाँति इस कुटियामें क्यों रह रही हो?॥ ५२॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] उसका यह वचन सुनकर विदेहतनया सीताजीने मन्दोदरीके पति रावणको दैववश एक दिव्य संन्यासी समझकर उत्तर दिया॥ ५३॥

दशरथ नामक लक्ष्मीसम्पन्न एक राजा हैं, उनके चार पुत्र हैं। उनमें सबसे बड़े पुत्र जो 'राम' नामसे विख्यात हैं, वे ही मेरे पति हैं॥ ५४॥

कैकेयीने महाराज दशरथसे वरदान माँगकर रामको चौदह वर्षके लिये वनवास दिला दिया। वे अपने भाई

लक्ष्मणके साथ अब यहींपर रह रहे हैं॥ ५५॥

मैं राजा जनककी पुत्री हूँ तथा 'सीता' नामसे विख्यात हूँ। शिवजीका धनुष तोड़कर श्रीरामने मेरा पाणिग्रहण किया है॥ ५६॥

उन्हीं रामके बाहुबलका आश्रय लेकर मैं निर्भीक होकर इस वनमें रहती हूँ। एक स्वर्ण-मृग देखकर उसे मारनेके लिये मेरे पति गये हुए हैं॥ ५७॥

अपने भाईका शब्द सुनकर लक्ष्मण भी इस समय उधर ही गये हुए हैं। उन्हीं दोनोंके बाहुबलसे मैं यहाँ निडर होकर रहती हूँ॥ ५८॥

मैंने आपको वनवास-सम्बन्धी अपना सम्पूर्ण वृत्तान्त बता दिया। अब वे लोग यहाँ आकर आपका विधिपूर्वक सत्कार करेंगे॥ ५९॥

संन्यासी विष्णुस्वरूप होता है, इसीलिये मैंने आपकी पूजा की है। राक्षसोंके समुदायद्वारा सेवित इस भयंकर जंगलमें यह आश्रम बना हुआ है। इसलिये मैं आपसे यह पूछती हूँ कि त्रिदण्डीके रूपमें इस वनमें पधारे हुए आप कौन हैं? आप मेरे समक्ष सत्य कहिये॥ ६०-६१॥

रावण बोला—हे हंसनयने! मैं मन्दोदरीका पति तथा लंकाका नरेश श्रीमान् रावण हूँ। हे सुन्दर आकृतिवाली! तुम्हारे लिये ही मैंने इस प्रकारका वेष बनाया है॥ ६२॥

हे सुन्दरि! जनस्थानमें अपने भाई खर-दूषणके मारे जानेका समाचार सुनकर तथा अपनी बहन शूर्पणखाद्वारा प्रेरित किये जानेपर मैं यहाँ आया हूँ॥ ६३॥

अब तुम उस राज्यच्युत, लक्ष्मीहीन, निर्बल, वनवासी तथा मानवयोनिवाले पतिको छोड़कर मुझ राजाको स्वीकार कर लो॥ ६४॥

तुम मेरी बात मानकर मन्दोदरीसे भी बड़ी पटरानी बन जाओ, मैं सत्य कहता हूँ। हे तन्वंगि! मैं तुम्हारा दास हूँ। हे भामिनि! तुम मेरी स्वामिनी हो जाओ॥ ६५॥

समस्त लोकपालोंपर विजय प्राप्त करनेवाला मैं तुम्हारे चरणोंपर पड़ता हूँ। हे जनकनन्दिनि! तुम इस समय मेरा हाथ पकड़ लो और मुझे सनाथ कर दो॥ ६६॥

हे अबले! मैंने पहले भी तुम्हारे पिता जनकसे तुम्हें प्राप्त करनेके लिये याचना की थी, किंतु उस समय उन्होंने मुझसे यह कहा था कि मैं [धनुषभंगकी] शर्त रख चुका हूँ॥ ६७॥

शंकरजीके धनुषके भयके कारण मैं उस समय स्वयंवरमें सम्मिलित नहीं हुआ था। उसी समयसे विरह-वेदनासे पीड़ित मेरा मन तुममें ही लगा हुआ है॥ ६८॥

हे श्याम नयनोंवाली! तुम इस वनमें रह रही हो—यह सुनकर तुम्हारे प्रति पूर्व प्रेमके अधीन हुआ मैं यहाँ आया हूँ; अब तुम मेरा परिश्रम सार्थक कर दो॥ ६९॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत तृतीय स्कन्धका 'रामचरित्रवर्णन' नामक अट्ठाईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २८॥

उनतीसवाँ अध्याय

सीताहरण, रामका शोक और लक्ष्मणद्वारा उन्हें सान्त्वना देना

व्यासजी बोले—रावणका कुविचारपूर्ण वचन सुनकर सीता भयसे व्याकुल होकर काँप उठीं। पुनः मनको स्थिर करके उन्होंने कहा—हे पुलस्त्यके वंशज! कामके वशीभूत होकर तुम ऐसा अनर्गल वचन क्यों कह रहे हो? मैं स्वैरिणी नारी नहीं हूँ, बल्कि महाराज जनकके कुलमें उत्पन्न हुई हूँ॥ १-२॥

हे दशकन्धर! तुम लंका चले जाओ, नहीं तो श्रीराम निश्चय ही तुम्हें मार डालेंगे। मेरे लिये ही तुम्हारी मृत्यु होगी; इसमें सन्देह नहीं है॥ ३॥

ऐसा कह करके वे सीताजी जगत्को रुलानेवाले रावणके प्रति 'चले जाओ, चले जाओ' इस प्रकार बोलती हुई पर्णशालामें अग्निकुण्डके पास चली गयीं॥ ४॥

इतनेमें वह रावण अपना वास्तविक रूप धारण करके तुरन्त पर्णशालामें उनके पास जा पहुँचा और उसने भयसे व्याकुल होकर रोती हुई उस बाला सीताको बलपूर्वक पकड़ लिया॥ ५॥

हा राम! हा राम! हा लक्ष्मण!—ऐसा बार-बार कहकर विलाप करती हुई सीताको पकड़कर और उन्हें अपने रथपर बैठाकर रावण शीघ्रतापूर्वक निकल गया। तब अरुणपुत्र जटायुने जाते हुए उस रावणको मार्गमें रोक दिया। उस वनमें दोनोंमें महाभयंकर युद्ध होने लगा॥ ६-७॥

हे तात! अन्तमें वह राक्षसराज रावण जटायुको मारकर और सीताको साथ लेकर चला गया। तदनन्तर उस दुष्टात्माने कुररी पक्षीकी भाँति क्रन्दन करती हुई सीताको लंकामें अशोकवाटिकामें रख दिया और उसकी रखवालीके लिये राक्षसियोंको नियुक्त कर दिया। उस राक्षसके साम-दान आदि उपायोंसे भी सीताजी अपने सतीत्वसे विचलित नहीं हुईं॥ ८-९॥

उधर श्रीराम भी स्वर्ण-मृगको शीघ्र मारकर उसे लिये हुए प्रसन्नतापूर्वक [आश्रमकी ओर] चल पड़े। मार्गमें आते हुए लक्ष्मणको देखकर वे बोले—भाई! यह तुमने कैसा विषम कार्य कर दिया? वहाँ प्रिया सीताको अकेली छोड़कर तथा इस पापीकी पुकार सुनकर तुम इधर क्यों चले आये?॥ १०-११॥

तब सीताके वचनरूपी बाणसे आहत लक्ष्मणने कहा—प्रभो! मैं कालकी प्रेरणासे यहाँ चला आया हूँ; इसमें सन्देह नहीं है॥ १२॥

तदनन्तर वे दोनों पर्णशालामें जाकर वहाँकी स्थिति देखकर अत्यन्त दु:खित हुए और जानकीको खोजनेका प्रयत्न करने लगे॥ १३॥

खोजते हुए वे उस स्थानपर पहुँचे जहाँ पक्षिराज 'जटायु' गिरा पड़ा था। वह पृथ्वीपर मृतप्राय पड़ा हुआ

था। उसने बताया कि रावण जानकीको अभी हर ले गया है। मैंने उस पापीको रोका, किंतु उसने युद्धमें मुझे मारकर गिरा दिया॥ १४-१५॥

ऐसा कहकर वह जटायु मर गया। तब श्रीरामने उसका दाह-संस्कार किया। उसकी समस्त और्ध्वदैहिक क्रिया सम्पन्न करके श्रीराम और लक्ष्मण वहाँसे आगे बढ़े॥ १६॥

मार्गमें कबन्धका वध करके भगवान् श्रीरामने उसे शापसे छुड़ाया और उसीके कथनानुसार उन्होंने सुग्रीवसे मित्रता की॥ १७॥

तदनन्तर पराक्रमी वालीका वध करके श्रीरामने कार्यसाधनहेतु किष्किन्धाका उत्तम राज्य अपने सखा सुग्रीवको दे दिया॥ १८॥

वहींपर लक्ष्मणसहित श्रीरामने रावणके द्वारा अपहृत अपनी प्रिया जानकीके विषयमें मनमें सोचते हुए वर्षाके चार मास व्यतीत किये॥ १९॥

सीताके विरहमें अत्यन्त दु:खित श्रीरामने एक दिन लक्ष्मणसे कहा—हे सौमित्रे! कैकेयीकी कामना पूरी हो गयी। अभीतक जानकी नहीं मिली, मैं उसके बिना जीवित नहीं रह सकता। जनकतनया सीताके बिना मैं अयोध्या नहीं जाऊँगा॥ २०-२१॥

राज्य चला गया, वनवास करना पड़ा, पिताजी मृत हो गये और प्रिया सीता भी हर ली गयी। इस प्रकार मुझे पीड़ित करता हुआ दुर्दैव आगे न जाने क्या करेगा?॥ २२॥

हे भरतानुज! प्राणियोंके प्रारब्धको जान पाना अत्यन्त कठिन है। हे तात! अब हम दोनोंकी न जाने कौन-सी दु:खद गति होगी?॥ २३॥

मनुके कुलमें जन्म पाकर हम राजकुमार हुए; फिर भी हमलोग पूर्वजन्ममें किये गये कर्मके कारण वनमें अत्यधिक दु:ख भोग रहे हैं॥ २४॥

हे सौमित्रे! तुम भी भोगोंका परित्याग करके दैवयोगसे मेरे साथ निकल पड़े; तो फिर अब यह कठिन कष्ट भोगो॥ २५॥

हमारे कुलमें मेरे समान दु:ख भोगनेवाला, अकिंचन,

असमर्थ तथा क्लेशयुक्त व्यक्ति न हुआ है और न होगा॥ २६॥

हे लक्ष्मण! अब मैं क्या करूँ? मैं शोकसागरमें डूब रहा हूँ, मुझ असहायको इससे पार होनेका कोई उपाय नहीं सूझता। हे वीर! मेरे पास न धन है, न बल; एकमात्र तुम ही मेरा साथ देनेवाले हो। हे अनुज! अपने ही द्वारा किये इस कर्मभोगके विषयमें अब मैं किसपर क्रोध करूँ?॥ २७-२८॥

इन्द्र और यमके राज्यकी तरह हाथमें आया हुआ राज्य क्षणभरमें चला गया और वनवास प्राप्त हुआ; विधिकी रचनाको कौन जान सकता है?॥ २९॥

बाल-स्वभावके कारण सीता भी हम दोनोंके साथ चली आयी। दुष्ट दैवने उस सुन्दरीको अत्यधिक दुःखपूर्ण स्थितिमें पहुँचा दिया॥ ३०॥

वह सुन्दरी जानकी लंकापति रावणके घरमें किस प्रकार दुःखित जीवन व्यतीत करती होगी? वह पतिव्रता है, शीलवती है और मुझसे अत्यधिक अनुराग रखती है॥ ३१॥

हे लक्ष्मण! वह जनकनन्दिनी उस रावणके वशमें कभी नहीं हो सकती, सुन्दर शरीरवाली वह विदेहतनया सीता स्वैरिणीकी भाँति भला किस प्रकार आचरण करेगी?॥ ३२॥

हे भरतानुज! वह मैथिली अधिक नियन्त्रण किये जानेपर अपने प्राण त्याग देगी, किंतु यह सुनिश्चित है कि वह रावणकी वशवर्तिनी नहीं होगी॥ ३३॥

हे वीर! यदि जानकी मर गयी तो मैं भी निस्सन्देह अपने प्राण त्याग दूँगा; क्योंकि हे लक्ष्मण! श्यामनयना सीताके मृत हो जानेपर मुझे अपने देहसे क्या लाभ?॥ ३४॥

इस प्रकार विलाप करते हुए उन कमलनयन रामको सत्यपूर्ण वाणीसे सान्त्वना प्रदान करते हुए धर्मात्मा लक्ष्मणने कहा—॥ ३५॥

हे महाबाहो! आप इस समय दैन्यभाव छोड़कर धैर्य धारण कीजिये। मैं उस अधम राक्षसको मारकर जानकीको वापस ले आऊँगा॥ ३६॥

विपत्ति तथा सम्पत्ति—इन दोनों ही स्थितियोंमें धैर्य धारण करते हुए जो एक समान रहते हैं, वे ही धीर होते हैं, किंतु अल्प बुद्धिवाले लोग तो सम्पत्तिकी दशामें भी कष्टमें पड़े रहते हैं॥ ३७॥

संयोग तथा वियोग—ये दोनों ही दैवके अधीन होते हैं। शरीर तो आत्मासे भिन्न है, अतः उसके लिये शोक कैसा?॥ ३८॥

जिस प्रकार [प्रतिकूल समय आनेपर] राज्यसे निर्वासित होकर हमें वनवास भोगना पड़ा तथा सीताहरण हुआ, उसी प्रकार अनुकूल समय आनेपर संयोग भी हो जायगा॥ ३९॥

हे सीतापते! सुखों तथा दुःखोंके भोगसे छुटकारा कहाँ? वह तो निःसन्देह भोगना ही पड़ता है। अतः आप इस समय शोकका त्याग कर दीजिये॥ ४०॥

बहुतसे वानर हैं; वे चारों दिशाओंमें जायँगे और जानकीकी खोज-खबर ले आयेंगे। [पता लग जानेपर] मार्गकी जानकारी करके मैं स्वयं वहाँ जाऊँगा और आक्रमण करके उस पापकर्मवाले रावणका वध करके जानकीजीको अवश्य ले आऊँगा॥ ४१-४२॥

अथवा हे अग्रज! यदि इससे कार्य न चलेगा, तो मैं भरत तथा शत्रुघ्नको भी सेनासमेत बुला लूँगा और हमलोग उस शत्रुको मार डालेंगे; आप वृथा क्यों चिन्ता कर रहे हैं?॥ ४३॥

पूर्वकालमें राजा रघुने केवल एक रथसे ही चारों दिशाओंको जीत लिया था। हे राघवेन्द्र! आप उसी वंशके होकर शोक क्यों कर रहे हैं?॥ ४४॥

अकेला मैं सभी देवताओं तथा दानवोंको जीतनेमें समर्थ हूँ, तब फिर आप-जैसे सहायकके रहते उस कुलकलंकी रावणका वध करनेमें क्या कठिनाई है?॥ ४५॥

अथवा हे रघुनन्दन! मैं महाराज जनकको सहायताके लिये बुलाकर देवताओंके कण्टकस्वरूप उस दुराचारी रावणका वध कर डालूँगा॥ ४६॥

हे रघुनन्दन! सुखके बाद दुःख तथा दुःखके बाद सुख पहियेकी धुरीकी तरह आया-जाया करते हैं। सदा एक स्थिति नहीं रहती। सुख-दुःखके आनेपर जिसका मन कातर हो जाता है, वह शोकसागरमें निमग्न रहता है और कभी सुखी नहीं रह सकता॥ ४७-४८॥

हे राघव! पूर्वकालमें इन्द्रके ऊपर भी विपत्ति आयी थी, तब सभी देवताओंने उनके स्थानपर राजा नहुषको स्थापित कर दिया था। उस समय इन्द्रने भयवश अपना पद त्यागकर बहुत दिनोंतक कमलवनमें छिपकर अज्ञातवास किया था। समय बदलनेपर उन्होंने पुनः अपना पद प्राप्त कर लिया और नहुषको शापवश अजगरके रूपमें होकर पृथ्वीपर गिरना पड़ा। ब्राह्मणोंका अपमान करके इन्द्राणीको पानेकी इच्छाके कारण ही अगस्त्यमुनिके कोपपूर्वक शाप देनेसे राजा नहुष सर्पदेहवाले हो गये थे॥ ४९—५२॥

अतः हे राघव! दुःख आनेपर शोक नहीं करना चाहिये। विज्ञ पुरुषको चाहिये कि ऐसी परिस्थितिमें मनको उद्यमशील बनाकर समयकी प्रतीक्षा करता रहे॥ ५३॥

हे महाभाग! आप सर्वज्ञ हैं। हे जगत्पते! आप सर्वसमर्थ हैं; तब एक प्राकृत पुरुषकी भाँति आप अपने मनमें अत्यन्त शोक क्यों कर रहे हैं?॥ ५४॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार लक्ष्मणकी बातोंसे रघुनन्दन श्रीरामचन्द्रजीको सान्त्वना मिली और वे शोक त्यागकर बिलकुल निश्चिन्त हो गये॥ ५५॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत तृतीय स्कन्धका 'लक्ष्मणकृत रामशोकसान्त्वना' नामक उनतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २९॥

तीसवाँ अध्याय

श्रीराम और लक्ष्मणके पास नारदजीका आना और उन्हें नवरात्रव्रत करनेका परामर्श देना, श्रीरामके पूछनेपर नारदजीका उनसे देवीकी महिमा और नवरात्रव्रतकी विधि बतलाना, श्रीरामद्वारा देवीका पूजन और देवीद्वारा उन्हें विजयका वरदान देना

व्यासजी बोले—इस प्रकार राम और लक्ष्मण परस्परमें परामर्श करके ज्यों ही चुप हुए, त्यों ही आकाशमार्गसे देवर्षि नारद वहाँ आ गये॥ १॥

उस समय वे स्वर तथा ग्रामसे विभूषित अपनी महती नामक वीणा बजाते हुए तथा बृहद्रथन्तर सामका गायन करते हुए उनके समीप पहुँचे॥ २॥

उन्हें देखते ही अमित तेजवाले श्रीरामने उठकर उन्हें श्रेष्ठ पवित्र आसन प्रदान किया और तत्पश्चात् अर्घ्य तथा पाद्यसे उनकी पूजा की॥ ३॥

भलीभाँति पूजा करनेके बाद भगवान् श्रीराम हाथ जोड़कर खड़े हो गये और फिर मुनिके आज्ञा देनेपर उनके पास ही बैठ गये॥ ४॥

तब अपने अनुज लक्ष्मणके साथ बैठे हुए खिन्न-मनस्क रामसे मुनीन्द्र नारदजी प्रेमपूर्वक कुशलक्षेम पूछने लगे॥ ५॥

नारदजी बोले—हे राघव! आप इस समय साधारण मनुष्यके समान शोकाकुल क्यों हैं? मैं यह जानता हूँ

कृपा
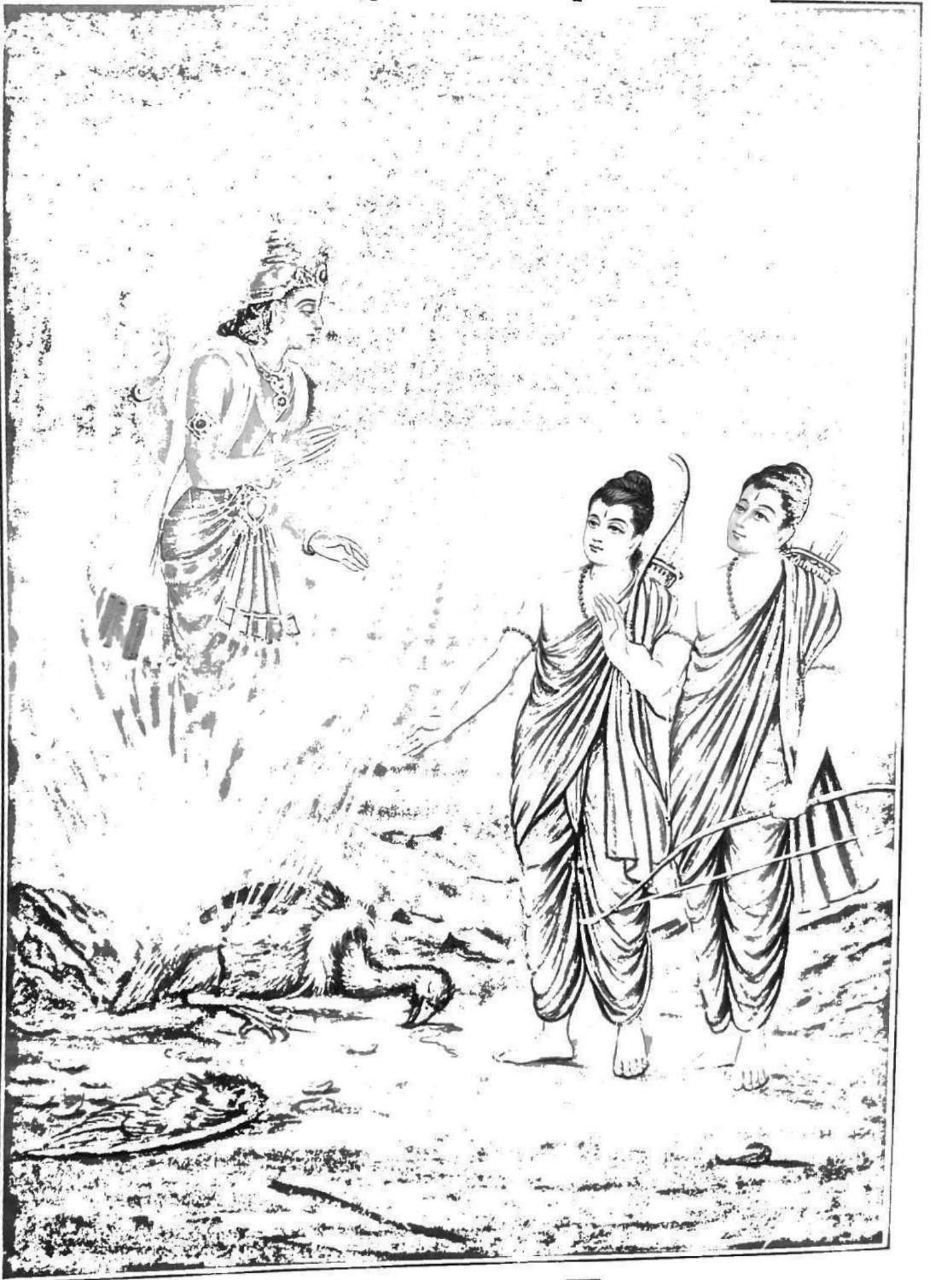
कि दुष्ट रावण सीताको हर ले गया है। जब मैं देवलोकमें था, तभी मैंने वहाँ सुना कि अपनी मृत्युको न जाननेसे ही मोहके वशीभूत होकर रावणने जनकनन्दिनीका हरण कर लिया है॥ ६-७॥

हे काकुत्स्थ! आपका जन्म ही रावणके निधनके लिये हुआ है। हे नराधिप! इसी कार्यसिद्धिके लिये सीताका हरण हुआ है॥ ८॥

पूर्वजन्ममें ये वैदेही एक मुनिकी तपस्विनी कन्या थीं। उस पवित्र मुसकानवाली कन्याको रावणने वनमें तप करते हुए देखा। हे राघव! तब रावणने उससे प्रार्थना की कि तुम मेरी पत्नी बन जाओ। इसपर उसके द्वारा तिरस्कृत किये गये रावणने बलपूर्वक उसके केश पकड़ लिये॥ ९-१०॥

हे राम! रावणके स्पर्शसे दूषित अपनी देहको त्यागनेकी आकांक्षा रखती हुई उस तापसी मुनिकन्याने अत्यन्त कुपित होकर उसे तत्काल यह घोर शाप दे दिया कि हे दुरात्मन्! तुम्हारे विनाशके लिये मैं भूतलपर गर्भसे जन्म न लेकर एक श्रेष्ठ स्त्रीके रूपमें प्रकट होऊँगी—ऐसा कहकर उस तापसीने अपना शरीर त्याग दिया॥ ११-१२॥

लक्ष्मीके अंशसे उत्पन्न यह सीता वही है; जिसे भ्रमवश माला समझकर नागिनको धारण करनेवाले व्यक्तिकी भाँति रावणने अपने ही वंशका नाश करनेके लिये हर लिया है॥ १३॥

हे काकुत्स्थ! आपका भी जन्म उसी रावणके नाशके लिये देवताओंके प्रार्थना करनेपर अनादि भगवान् विष्णुके अंशसे अजवंशमें हुआ है॥ १४॥

हे महाबाहो! आप धैर्य धारण करें; वे किसी दूसरेके वशमें नहीं हो सकतीं! वे सतीधर्मपरायण सीता लंकामें दिन-रात आपका ध्यान करती हुई रह रही हैं॥ १५॥

स्वयं इन्द्रने एक पात्रमें कामधेनुका दूध सीताको पीनेके लिये भेजा था, उस अमृततुल्य दूधको उन्होंने पी लिया है। वे कामधेनुके दुग्धपानसे भूख-प्यासके दुःखसे रहित हो गयी हैं। मैंने उन कमलनयनीको स्वयं देखा है॥ १६-१७॥

हे राघवेन्द्र! मैं उस रावणके नाशका उपाय बताता हूँ। अब आप इसी आश्विनमासमें श्रद्धापूर्वक नवरात्रव्रत कीजिये॥ १८॥

हे राम! नवरात्रमें उपवास तथा जप-होमके विधानसे किया गया भगवती-पूजन समस्त सिद्धियोंको प्रदान करनेवाला है। देवीको पवित्र बलि देकर तथा दशांश हवन करके आप पूर्ण शक्तिशाली बन जायँगे॥ १९-२०॥

पूर्वकालमें भगवान् विष्णु, शिव, ब्रह्मा तथा स्वर्गलोकमें विराजमान इन्द्रने भी इसका अनुष्ठान किया था॥ २१॥

हे राम! सुखी मनुष्यको इस व्रतका अनुष्ठान करना चाहिये और कष्टमें पड़े हुए मनुष्यको तो यह व्रत विशेषरूपसे करना चाहिये॥ २२॥

हे काकुत्स्थ! विश्वामित्र, भृगु, वसिष्ठ और कश्यप तथा देवगुरु बृहस्पति भी इस व्रतको कर चुके हैं; इसमें सन्देह नहीं है। इसलिये हे राजेन्द्र! रावणके वध तथा सीताकी प्राप्तिके लिये आप इस व्रतको कीजिये। पूर्वकालमें इन्द्रने वृत्रासुरके वधके लिये तथा शिवने त्रिपुरदैत्यके वधके लिये यह सर्वश्रेष्ठ व्रत किया था। हे महामते! इसी प्रकार भगवान् विष्णुने भी मधुदैत्यके वधके लिये सुमेरुपर्वतपर यह व्रत किया था, अतः हे काकुत्स्थ! आप भी आलस्यरहित होकर विधिपूर्वक यह व्रत कीजिये॥ २३—२६॥

श्रीराम बोले—हे दयानिधे! आप सर्वज्ञ हैं, अतः मुझे विधिपूर्वक बताइये कि वे कौन देवी हैं, उनका प्रभाव क्या है, वे कहाँसे उत्पन्न हुई हैं, उनका नाम क्या है तथा वह व्रत कौन-सा है?॥ २७॥

नारदजी बोले—हे राम! सुनिये—वे देवी नित्य, सनातनी और आद्याशक्ति हैं, वे सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण कर देती हैं और अपनी आराधनासे सभी प्रकारके कष्ट दूर कर देती हैं॥ २८॥

हे रघुनन्दन! वे ब्रह्मा आदि देवताओं तथा समस्त जीवोंकी कारणस्वरूपा हैं। उनसे शक्ति पाये बिना कोई हिल-डुल सकनेमें भी समर्थ नहीं है॥ २९॥

वे ही मेरे पिता ब्रह्माकी सृष्टि-शक्ति हैं, विष्णुकी पालन-शक्ति हैं तथा शंकरकी संहार-शक्ति हैं। वे कल्याणमयी पराम्बा अन्य शक्तिरूपा भी हैं॥ ३०॥

इन तीनों लोकोंमें जो कुछ भी कहीं भी सत् या असत् पदार्थ है, उसकी उत्पत्तिमें निमित्तकारण इस देवीके अतिरिक्त और कौन हो सकता है?॥ ३१॥

इस सृष्टिके आरम्भमें जब ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य, इन्द्रादि देवता, पृथ्वी और पर्वत आदि कुछ भी नहीं रहता, तब उस समय वे निर्गुणा, कल्याणमयी, परा प्रकृति ही परमपुरुषके साथ विहार करती हैं॥ ३२-३३॥

वे ही बादमें सगुणा शक्ति बनकर सर्वप्रथम ब्रह्मा आदिका सृजन करके और उन्हें शक्तियाँ प्रदानकर तीनों भुवनोंकी सम्यक् रचना करती हैं॥ ३४॥

उन आदिशक्तिको जानकर प्राणी संसारबन्धनसे मुक्त हो जाता है। विद्यास्वरूपा, वेदोंकी आदिकारण, वेदोंको प्रकट करनेवाली तथा परमा उन भगवतीको अवश्य जानना चाहिये॥ ३५॥

ब्रह्मादि देवताओंने गुण-कर्मके विधानानुसार उनके असंख्य नाम कल्पित किये हैं, मैं कहाँतक बताऊँ? हे रघुनन्दन! 'अ' कारसे लेकर 'क्ष' पर्यन्त सभी स्वरों तथा वर्णोंके संयोगसे उनके असंख्य नाम बनते हैं॥ ३६-३७॥

श्रीराम बोले—हे देवर्षे! इस नवरात्रव्रतका विधान मुझे संक्षेपमें बताइये; मैं आज ही श्रद्धापूर्वक श्रीदेवीका विधिवत् पूजन करूँगा॥ ३८॥

नारदजी बोले—हे राम! किसी समतल भूमिपर पीठासन बनाकर उसपर भगवती जगदम्बिकाकी स्थापना करके विधानपूर्वक नौ दिन उपवास कीजिये। हे राजन्! इस कार्यमें मैं आचार्य बनूँगा; क्योंकि देवताओंके कार्य करनेमें मैं अधिक उत्साह रखता हूँ॥ ३९-४०॥

व्यासजी बोले—नारदजीका वचन सुनकर प्रतापी श्रीरामने उसे सत्य मानकर तदनुसार एक सुन्दर पीठासन बनवाकर उसपर अम्बिकाकी स्थापना की। व्रतधारी भगवान् श्रीरामने आश्विनमास लगनेपर उस श्रेष्ठ पर्वतपर उन भगवतीका पूजन किया। उपवासपरायण श्रीरामने यह श्रेष्ठ व्रत करते हुए विधिवत् होम, बलिदान और पूजन किया। इस प्रकार दोनों भाइयोंने नारदजीके द्वारा बताये गये इस व्रतको प्रेमपूर्वक सम्पन्न किया। उनसे सम्यक् पूजित होकर अष्टमीकी मध्यरात्रिकी वेलामें भगवती दुर्गाने सिंहपर सवार होकर उन्हें साक्षात् दर्शन दिया। तदनन्तर भक्तिभावसे प्रसन्न उन भगवतीने पर्वतके शिखरपर

स्थित होकर लक्ष्मणसहित रामसे मेघके समान गम्भीर वाणीमें कहा॥ ४१—४५१/२॥

देवी बोलीं—हे राम! हे महाबाहो! इस समय मैं आपके व्रतसे सन्तुष्ट हूँ। आपके मनमें जो भी हो, उस अभिलषित वरको माँग लीजिये। आप पवित्र मनुवंशमें नारायणके अंशसे उत्पन्न हुए हैं। हे राम! देवताओंके प्रार्थना करनेपर रावणके वधके लिये आप अवतरित हुए हैं। पूर्वकालमें मत्स्यरूप धारणकर भयानक राक्षसका वध करके देवताओंके हितकी इच्छावाले आपने ही वेदोंकी रक्षा की थी। पुनः कच्छपके रूपमें अवतार लेकर मन्दराचलको अपनी पीठपर धारण किया, जिससे समुद्रका मन्थन करके [अमृतपान कराकर] देवताओंका पोषण किया था। हे राम! आपने वराहका रूप धारणकर अपने दाँतोंकी नोंकपर पृथ्वीको रख लिया और हिरण्याक्षका वध किया था। हे राघव! हे राम! पूर्वकालमें नरसिंहका रूप धारणकर प्रह्लादकी रक्षा करके आपने हिरण्यकशिपुका वध किया था। इसी प्रकार पूर्वकालमें वामनका रूप धारण करके आपने बलिको छला था। उस समय इन्द्रका लघु भ्राता बनकर आपने देवताओंका महान् कार्य सिद्ध किया था। पुनः भगवान् विष्णुके अंशसे जमदग्निके पुत्र परशुरामके रूपमें अवतरित होकर क्षत्रियोंका अन्त करके आपने सारी

पृथ्वी ब्राह्मणोंको दे दी थी। उसी प्रकार हे काकुत्स्थ! रावणके द्वारा अत्यधिक सताये गये सभी देवताओंके प्रार्थना करनेपर इस समय आप ही दशरथपुत्र श्रीरामके रूपमें अवतीर्ण हुए हैं॥ ४६—५४१/२॥

हे नरोत्तम! देवताओंके अंशसे उत्पन्न ये परम बलशाली वानर मेरी शक्तिसे सम्पन्न होकर आपके सहायक होंगे। शेषनागके अंशस्वरूप आपके ये अनुज लक्ष्मण रावणके पुत्र मेघनादका वध करनेवाले होंगे। हे अनघ! इस विषयमें आपको सन्देह नहीं करना चाहिये॥ ५५-५६१/२॥

वसन्त ऋतुके नवरात्रमें आप परम श्रद्धाके साथ [पुनः] मेरी पूजा कीजिये। तत्पश्चात् पापी रावणका वध करके आप सुखपूर्वक राज्य कीजिये। हे रघुश्रेष्ठ! इस प्रकार ग्यारह हजार वर्षोंतक भूतलपर राज्य करके पुनः आप देवलोकके लिये प्रस्थान करेंगे॥ ५७-५८१/२॥

व्यासजी बोले—ऐसा कहकर भगवती दुर्गा वहीं अन्तर्धान हो गयीं और श्रीरामचन्द्रजीने प्रसन्न मनसे उस व्रतका समापन करके दशमी तिथिको विजयापूजन करके तथा अनेकविध दान देकर वहाँसे प्रस्थान कर दिया॥ ५९-६०॥

वानरराज सुग्रीवकी सेनाके साथ अपने अनुजसहित विख्यात यशवाले तथा पूर्णकाम लक्ष्मीपति श्रीराम साक्षात् परमा शक्तिकी प्रेरणासे समुद्रतटपर पहुँचे। वहाँ सेतु-बन्धन करके उन्होंने देवशत्रु रावणका संहार किया॥ ६१॥

जो मनुष्य भक्तिपूर्वक देवीके उत्तम चरित्रका श्रवण करता है, वह अनेक सुखोंका उपभोग करके परमपद प्राप्त कर लेता है॥ ६२॥

यद्यपि अन्य बहुतसे विस्तृत पुराण हैं, किंतु वे इस श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणके तुल्य नहीं हैं, ऐसी मेरी धारणा है॥ ६३॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत तृतीय स्कन्धका 'रामके प्रति देवीका वरदान' नामक तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३०॥

॥ तृतीय स्कन्ध समाप्त॥

ज्ञानावाप्तिर्यदा न स्याद्योगशास्त्राणि यत्नतः। अध्येतव्यानि पौराणं शास्त्रं श्रोतव्यमेव च॥
पापं संक्षीयते नित्यं धर्मश्चैव विवर्धते। पुराणश्रवणाज्ज्ञानी न संसारं प्रपद्यते॥
अतएव पुराणानि श्रोतव्यानि प्रयत्नतः। धर्मार्थकामलाभाय मोक्षमार्गाप्तये तथा॥
यज्ञैर्दानैस्तपोभिस्तु यत्फलं तीर्थसेवया। तत्फलं समवाप्नोति पुराणश्रवणान्नरः॥
अन्यो न दृष्टः सुखदो हि मार्गः पुराणमार्गो हि सदा वरिष्ठः।
शास्त्रं विना सर्वमिदं न भाति सूर्येण हीना इव जीवलोकाः॥

मनुष्यको यदि योगादि शास्त्रों, अन्य मार्गों या साधनोंसे ज्ञानकी प्राप्ति न हो तो पुराणोंका प्रयत्नपूर्वक श्रवण तथा अध्ययन करना चाहिये। पुराणोंके श्रवणसे सारे पापोंका क्षय होता है, धर्मकी अभिवृद्धि होती है और मनुष्य ज्ञानी होकर संसारमें पुनर्जन्म नहीं लेता। इसलिये अत्यन्त प्रयत्नसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी प्राप्तिके लिये पुराणोंका श्रद्धासे श्रवण करना चाहिये। यज्ञ, दान, तपस्या और तीर्थोंकी सेवासे जो फल प्राप्त होता है, वही फल पुराणोंके श्रवणसे अनायास प्राप्त हो जाता है। पुराण-मार्ग सर्वदा सर्वश्रेष्ठ रहा है। दूसरा कोई भी मार्ग सुखद नहीं देखा गया। जैसे सूर्यके बिना समस्त जीवलोक प्रकाशित नहीं होता, वैसे ही पुराणशास्त्रके बिना यह सब कुछ अज्ञानान्धकारमें डूबा-सा रहता है। **[शिवपुराण, उमासंहिता, अ० १३]**

॥ श्रीजगदम्बिकायै नमः ॥

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण

चतुर्थ स्कन्ध

पहला अध्याय

वसुदेव, देवकी आदिके कष्टोंके कारणके सम्बन्धमें जनमेजयका प्रश्न

जनमेजय बोले—हे वासवेय! हे मुनिवर! हे सर्वज्ञाननिधे! हे अनघ! हमारे कुलकी वृद्धि करनेवाले हे स्वामिन्! मैं [श्रीकृष्णके विषयमें] पूछना चाहता हूँ॥ १॥

मैंने सुना है कि परम प्रतापी श्रीमान् वसुदेव राजा शूरसेनके पुत्र थे, जिनके पुत्ररूपमें साक्षात् भगवान् विष्णु अवतरित हुए थे॥ २॥

आनकदुन्दुभि नामसे विख्यात वे वसुदेव देवताओंके भी पूज्य थे। धर्मपरायण होते हुए भी वे कंसके कारागारमें क्यों बन्द हुए? उन्होंने अपनी भार्या देवकीके साथ ऐसा क्या अपराध किया था, जिससे ययातिके कुलमें उत्पन्न कंसके द्वारा देवकीके छः पुत्रोंका वध कर दिया गया?॥ ३-४ $^{1}/_{2}$॥

साक्षात् भगवान् विष्णुने वसुदेवके पुत्ररूपमें कारागारमें जन्म क्यों ग्रहण किया? देवताओंके अधिपति भगवान् श्रीकृष्ण गोकुलमें किस प्रकार ले जाये गये और वे भगवान् होते हुए भी जन्मान्तरको क्यों प्राप्त हुए? अमित तेजस्वी श्रीकृष्णके माता-पिता वसुदेव और देवकीको बन्धनमें क्यों आना पड़ा? जगत्‌की सृष्टि करनेमें समर्थ उन भगवान् श्रीकृष्णने माता देवकीके गर्भमें स्थित रहते हुए ही अपने वृद्ध माता-पिताको बन्धनसे मुक्त क्यों नहीं कर दिया? उन वसुदेव तथा देवकीने महात्माओंद्वारा भी दुःसाध्य ऐसे कौन-से कर्म पूर्वजन्ममें किये थे, जिससे उनके यहाँ परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णका जन्म हुआ? वे छः पुत्र कौन थे, वह कन्या कौन थी, जिसे कंसने पत्थरपर पटक दिया था और वह हाथसे छूटकर आकाशमें चली गयी तथा पुनः अष्टभुजाके रूपमें प्रकट हुई?॥ ५—९ $^{1}/_{2}$॥

हे अनघ! बहुत-सी पत्नियोंवाले श्रीकृष्णके गृहस्थ-जीवन, उसमें उनके द्वारा किये गये कार्यों तथा अन्तमें उनके शरीर-त्यागके विषयमें बताइये। किंवदन्तीके आधारपर मैंने भगवान् श्रीकृष्णका जो चरित्र सुना है, उससे मेरा मन परम विस्मयमें पड़ गया है। अतः आप उनके चरित्रका सम्यक् रूपसे वर्णन कीजिये॥ १०-११ $^{1}/_{2}$॥

पुरातन, धर्मपुत्र, महात्मा तथा देवस्वरूप ऋषिश्रेष्ठ नर-नारायणने उत्तम तप किया था। जगत्‌के कल्याणार्थ निराहार, जितेन्द्रिय तथा स्पृहारहित रहते हुए काम-क्रोध-लोभ-मोह-मद-मात्सर्य—इन छहोंपर पूर्ण नियन्त्रण रखकर साक्षात् भगवान् विष्णुके अंशस्वरूप जिन नर-नारायण मुनियोंने पुण्यक्षेत्र बदरिकाश्रममें बहुत वर्षोंतक श्रेष्ठ तपस्या की थी, नारद आदि सर्वज्ञ मुनियोंने प्रसिद्ध तथा महाबलसम्पन्न अर्जुन तथा श्रीकृष्णको उन्हीं दोनोंका अंशावतार बताया है। उन भगवान् नर-नारायणने एक शरीर धारण करते हुए भी दूसरा जन्म क्यों प्राप्त किया और पुनः वे कृष्ण तथा अर्जुन कैसे हुए?॥ १२—१६॥

जिन मुनिप्रवर नर-नारायणने मुक्तिहेतु कठोर तपस्या की थी; उन महातपस्वी तथा योगसिद्धिसम्पन्न दोनों देवोंने मानव-शरीर क्यों प्राप्त किया?॥ १७॥

अपने धर्ममें निष्ठा रखनेवाला शूद्र अगले जन्ममें

क्षत्रिय होता है और जो शूद्र वर्तमान जन्ममें पवित्र आचरण करता है, वह मृत्युके अनन्तर ब्राह्मण होता है। कामनाओंसे रहित शान्त-स्वभाव ब्राह्मण पुनर्जन्मरूपी रोगसे मुक्त हो जाता है, किंतु उनके विषयमें तो सर्वथा विपरीत स्थिति दिखायी देती है। उन नर-नारायणने तपस्यासे अपना शरीरतक सुखा दिया, फिर भी वे ब्राह्मणसे क्षत्रिय हो गये। शान्त-स्वभाव वे दोनों अपने किस कर्मसे अथवा किस शापसे ब्राह्मणसे क्षत्रिय हुए? हे मुने! वह कारण बताइये॥ १८—२०१/२ ॥

मैंने यह भी सुना है कि यादवोंका विनाश ब्राह्मणके शापसे हुआ था और गान्धारीके शापसे ही श्रीकृष्णके वंशका विनाश हुआ था। शम्बरासुरने कृष्ण-पुत्र प्रद्युम्नका अपहरण क्यों किया? देवाधिदेव जनार्दन वासुदेवके रहते सूतिकागृहसे पुत्रका हरण हो जाना एक अत्यन्त अद्भुत बात है। द्वारकाके किलेमें श्रीकृष्णके दुर्गम राजमहलसे पुत्रका हरण हो गया; किंतु भगवान् श्रीकृष्णने उसे अपनी दिव्य दृष्टिसे क्यों नहीं देख लिया? हे ब्रह्मन्! यह एक महान् शंका मेरे समक्ष उपस्थित है। हे प्रभो! आप मुझे सन्देह-मुक्त कर दीजिये॥ २१—२४१/२ ॥

देवदेव श्रीकृष्णके स्वर्गगमनके अनन्तर उनकी पत्नियोंको लुटेरोंने लूट लिया; हे मुनिराज! वह कैसे हुआ? हे ब्रह्मन्! मनको आन्दोलित कर देनेवाला यह संदेह मुझे हो रहा है॥ २५-२६ ॥

श्रीकृष्ण भगवान् विष्णुके अंशसे उत्पन्न हुए थे और उन्होंने पृथ्वीका भार उतारा था। हे साधो! ऐसे वे जनार्दन जरासन्धके भयसे मथुराका राज्य छोड़कर अपनी सेना तथा बन्धु-बान्धवोंके सहित द्वारकापुरी क्यों चले गये? ऐसा कहा जाता है कि श्रीकृष्णका अवतार पृथ्वीको भारसे मुक्त करने, पापाचारियोंको विनष्ट करने तथा धर्मकी स्थापना करनेके लिये हुआ था, फिर भी वासुदेवने उन लुटेरोंको क्यों नहीं मार डाला, जिन लुटेरोंने श्रीकृष्णकी पत्नियोंको लूटा तथा उनका हरण किया? सर्वज्ञ होते हुए भी श्रीकृष्ण उन चोरोंको क्यों नहीं जान सके?॥ २७—३० ॥

भीष्मपितामह तथा द्रोणाचार्यका वध पृथ्वीका भार-हरणस्वरूप कार्य कैसे माना गया? युधिष्ठिर आदि सदाचारवान्, महात्मा, धर्मपरायण, पूज्य तथा श्रीकृष्ण-भक्त उन पाण्डवोंने यज्ञोंके राजा कहे जानेवाले राजसूय-यज्ञका विधिपूर्वक अनुष्ठान करके उस यज्ञमें ब्राह्मणोंको श्रद्धापूर्वक अनेक प्रकारकी दक्षिणाएँ दीं। हे मुने! वे पाण्डु-पुत्र देवताओंके अंशसे प्रादुर्भूत थे तथा श्रीकृष्णके आश्रित थे, फिर भी उन्हें इतने महान् कष्ट क्यों भोगने पड़े? उस समय उनके पुण्य कार्य कहाँ चले गये थे? उन्होंने ऐसा कौन-सा महाभयानक पाप किया था, जिसके कारण वे सदा कष्ट पाते रहे?॥ ३१—३४ ॥

पुण्यात्मा द्रौपदी यज्ञकी वेदीके मध्यसे प्रकट हुई थी। वह लक्ष्मीके अंशसे उत्पन्न थी, साध्वी थी तथा सदा श्रीकृष्णकी भक्तिमें लीन रहती थी। उस द्रौपदीने भी बार-बार महाभीषण संकट क्यों प्राप्त किया? दुःशासनके द्वारा उसे बाल पकड़कर घसीटा गया तथा अत्यधिक प्रताड़ित किया गया। केवल एक वस्त्र धारण की हुई वह भयाकुल द्रौपदी रजस्वलावस्थामें ही कौरवोंकी सभामें ले जायी गयी। पुनः उसे विराटनगरमें मत्स्यनरेशकी दासी बनना पड़ा। कीचकके द्वारा अपमानित होनेपर वह कुररी पक्षीकी भाँति बहुत रोयी थी। पुनः जयद्रथने उसका अपहरण कर लिया, जिसपर वह करुणक्रन्दन करती हुई अत्यधिक दुःखित हुई थी। बादमें बलवान् महात्मा पाण्डवोंने उसे मुक्त कराया था। क्या यह उन सबके पूर्वजन्ममें किये गये पापकृत्यका फल था, जो वे इतने पीड़ित हुए?॥ ३५—३९ ॥

हे महामते! उन्हें नानाविध कष्ट प्राप्त हुए, मुझे इसका कारण बताइये। यज्ञोंमें श्रेष्ठ राजसूययज्ञ करनेपर भी मेरे उन पूर्वजोंने महान् कष्ट प्राप्त किया। लगता है पूर्वजन्ममें कृत कर्मोंका ही यह फल है। देवताओंके अंश होनेपर भी उन्हें कष्ट प्राप्त हुआ; मुझे यह महान् सन्देह है!॥ ४०-४१ ॥

महान् सदाचारपरायण पाण्डवोंने जगत्को नाशवान् जाननेके बावजूद भी धनके लोभसे छद्मका आश्रय लेकर भीष्मपितामह तथा द्रोणाचार्य आदिका संहार किया॥ ४२ ॥

महात्मा वासुदेवने उन्हें इस घोर पापकृत्यके लिये प्रेरित किया और उन्हीं परमात्मा श्रीकृष्णके द्वारा प्रेरित किये जानेपर उन पाण्डवोंने अपने कुलका विनाश कर

डाला ॥ ४३ ॥

सज्जन पुरुषोंके लिये भिक्षा माँगकर अथवा नीवार आदि खाकर जीवन बिता लेना श्रेयस्कर होता है। लोभके वशीभूत होकर वीर पुरुषोंका वध न करके शिल्पकार्य आदिके माध्यमसे जीवन-यापन करना उत्तम होता है ॥ ४४ ॥

हे मुनिसत्तम! आपने वंशके समाप्त हो जानेपर शत्रुओंका विनाश करनेमें समर्थ गोलक पुत्रोंको [नियोगद्वारा] उत्पन्न करके शीघ्र ही वंशकी रक्षा की थी ॥ ४५ ॥

कुछ ही समयके पश्चात् विराटपुत्री उत्तराके पुत्र महाराज परीक्षित्ने एक तपस्वीके गलेमें मृत सर्प डाल दिया। यह अद्भुत घटना कैसे घटित हो गयी? ॥ ४६ ॥

क्षत्रिय-कुलमें उत्पन्न कोई भी व्यक्ति ब्राह्मणसे द्वेष नहीं करता है। हे मुने! मेरे पिताने मौनव्रत धारण किये हुए उन तपस्वीके साथ ऐसा क्यों किया? ॥ ४७ ॥

इन तथा अन्य कई प्रकारकी शंकाओंसे मेरा मन इस समय आकुलित हो रहा है। हे तात! हे साधो! हे दयानिधे! आप तो सर्वज्ञ हैं, अतएव [सन्देहोंको दूर करके] मेरे मनको शान्त कीजिये ॥ ४८ ॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत चतुर्थ स्कन्धका 'जनमेजयप्रश्न' नामक पहला अध्याय पूर्ण हुआ ॥ १ ॥

दूसरा अध्याय

व्यासजीका जनमेजयको कर्मकी प्रधानता समझाना

सूतजी बोले—हे मुनियो! ऐसा पूछे जानेपर पुराणवेत्ता, वाणीविशारद सत्यवती-पुत्र महर्षि व्यासने शान्त स्वभाववाले परीक्षित्-पुत्र जनमेजयसे उनके सन्देहोंको दूर करनेवाले वचन कहे— ॥ १$^{1}/_{2}$ ॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! इस विषयमें क्या कहा जाय। कर्मोंकी बड़ी गहन गति होती है। कर्मकी गति जाननेमें देवता भी समर्थ नहीं हैं, मानवोंकी क्या बात! जब इस त्रिगुणात्मक ब्रह्माण्डका आविर्भाव हुआ, उसी समयसे कर्मके द्वारा सभीकी उत्पत्ति होती आ रही है, इस विषयमें सन्देह नहीं है। आदि तथा अन्तसे रहित होते हुए भी समस्त जीव कर्मरूपी बीजसे उत्पन्न होते हैं। वे जीव नानाविध योनियोंमें बार-बार पैदा होते हैं और मरते हैं। कर्मसे रहित जीवका देह-संयोग कदापि सम्भव नहीं है ॥ २—५ ॥

शुभ, अशुभ तथा मिश्र—इन कर्मोंसे यह जगत् सदा व्याप्त रहता है। तत्त्वोंके ज्ञाता जो विद्वान् हैं; उन्होंने संचित, प्रारब्ध तथा वर्तमान—ये तीन प्रकारके कर्म बताये हैं। कर्मोंका त्रैविध्य इस शरीरमें अवश्य विद्यमान रहता है ॥ ६-७ ॥

हे राजन्! ब्रह्मा आदि सभी देवता भी उस कर्मके वशवर्ती होते हैं। सुख, दुःख, वृद्धावस्था, मृत्यु, हर्ष, शोक, काम, क्रोध, लोभ आदि—ये सभी देहगत गुण हैं। हे राजेन्द्र! ये दैवके अधीन होकर सभी जीवोंको प्राप्त होते हैं ॥ ८-९ ॥

राग, द्वेष आदि भाव स्वर्गमें भी होते हैं और इस प्रकार ये भाव देवताओं, मनुष्यों तथा पशु-पक्षियोंमें भी विद्यमान रहते हैं ॥ १० ॥

पूर्वजन्मके किये हुए वैर तथा स्नेहके कारण ये समस्त विकार शरीरके साथ सदा ही संलग्न रहते हैं ॥ ११ ॥

समस्त जीवोंकी उत्पत्ति कर्मके बिना हो ही नहीं सकती है। कर्मसे ही सूर्य नियमित रूपसे परिभ्रमण करता है और चन्द्रमा क्षयरोगसे ग्रस्त रहता है ॥ १२ ॥

अपने कर्मके प्रभावसे ही रुद्रको मुण्डोंकी माला धारण करनी पड़ती है; इसमें कोई सन्देह नहीं है। आदि-अन्तरहित यह कर्म ही जगत्का कारण है ॥ १३ ॥

स्थावर-जंगमात्मक यह समग्र शाश्वत विश्व उसी कर्मके प्रभावसे नियन्त्रित है। सभी मुनिगण इस कर्ममय जगत्की नित्यता तथा अनित्यताके विचारमें सदा डूबे रहते हैं। फिर भी वे नहीं जान पाते कि यह जगत् नित्य है अथवा अनित्य। जबतक माया विद्यमान रहती है, तबतक यह जगत् नित्य प्रतीत होता है ॥ १४-१५ ॥

कारणकी सर्वथा सत्ता रहनेपर कार्यका अभाव कैसे कहा जा सकता है? माया नित्य है और वही सर्वदा सबका कारण है॥ १६॥

अतएव कर्मबीजकी अनित्यतापर बुद्धिमान् पुरुषोंको सदा चिन्तन करना चाहिये। हे राजन्! सम्पूर्ण जगत् कर्मके द्वारा नियन्त्रित होकर सदा परिवर्तित होता रहता है॥ १७॥

हे राजेन्द्र! यदि अमित तेजवाले भगवान् विष्णु अपनी इच्छासे जन्म लेनेके लिये स्वतन्त्र होते तो वे नानाविध योनियोंमें, नानाविध धर्म-कर्मानुरूप युगोंमें तथा अनेक प्रकारकी निम्न योनियोंमें जन्म क्यों लेते? अनेक प्रकारके सुखभोगों और वैकुण्ठपुरीका निवास छोड़कर मल-मूत्रवाले स्थान (उदर)-में भयभीत होकर भला कौन रहना चाहेगा? फूल चुननेकी क्रीड़ा, जल-विहार तथा सुखदायक आसनका परित्यागकर कौन बुद्धिमान् गर्भगृहमें वास करना चाहेगा? कोमल रूईसे निर्मित गद्दे तथा दिव्य शय्याको छोड़कर गर्भमें औंधे मुँह पड़े रहना भला कौन विद्वान् पुरुष पसन्द कर सकता है? अनेक प्रकारके भावोंसे युक्त गीत, वाद्य तथा नृत्यका परित्याग करके गर्भरूपी नरकमें रहनेका मनमें विचारतक भला कौन कर सकता है? ऐसा कौन बुद्धिमान् व्यक्ति होगा जो लक्ष्मीके अद्भुत भावोंके अत्यन्त कठिनाईसे त्याग करनेयोग्य रसको छोड़कर मल-मूत्रका रस पीनेकी इच्छा करेगा? अतएव तीनों लोकोंमें गर्भवाससे बढ़कर नरकस्वरूप अन्य कोई स्थल नहीं है। गर्भवाससे भयभीत होकर मुनिलोग कठिन तपस्या करते हैं। बड़े-बड़े मनस्वी पुरुष जिस गर्भवाससे डरकर राज्य तथा सुखका परित्याग करके वनमें चले जाते हैं, ऐसा कौन मूर्ख होगा, जो उसके सेवनकी इच्छा करेगा?॥ १८—२५ १/२ ॥

गर्भमें कीड़े काटते हैं और नीचेसे जठराग्नि तपाती रहती है। हे राजन्! उस समय शरीरमें अतिशय दुर्गन्धयुक्त मज्जा लगी रहती है; तो फिर वहाँ कौन-सा सुख है? कारागारमें रहना और बेड़ियोंमें बँधे रहना अच्छा है, किंतु एक क्षणके अल्पांश कालतक भी गर्भमें रहना कदापि शुभ नहीं होता। गर्भवासमें जीवको अत्यधिक पीड़ा होती है; वहाँ दस महीनेतक रहना पड़ता है। इसके अतिरिक्त अत्यन्त दारुण योनि-यन्त्रसे बाहर आनेमें महान् कष्ट प्राप्त होता है। बाल्यावस्थामें भी अज्ञानता तथा न बोल पानेके कारण बहुत कष्ट मिलता है। परतन्त्र तथा अत्यन्त भयभीत बालक भूख तथा प्यासकी पीड़ाके कारण अशक्त रहता है। भूखे बालकको रोता हुआ देखकर माता [रोनेका कारण जाननेके लिये] चिन्ताग्रस्त हो उठती है और पुनः किसी बड़े रोगजनित कष्टका अनुमान करके उसे दवा पिलानेकी इच्छा करने लगती है। इस प्रकार बाल्यावस्थामें अनेक प्रकारके कष्ट होते हैं, तब विवेकी पुरुष किस सुखको देखकर स्वयं जन्म लेनेकी इच्छा करते हैं!॥ २६—३१ १/२ ॥

कौन ऐसा मूर्ख होगा, जो देवताओंके साथ रहते हुए निरन्तर सुख-भोगका त्याग करके श्रमपूर्ण तथा सुखनाशक युद्ध करनेकी इच्छा रखेगा; हे नृपश्रेष्ठ! ब्रह्मादि सभी देवता भी अपने किये कर्मोंके फलस्वरूप सुख-दुःख प्राप्त करते हैं। हे नृपोत्तम! सभी देहधारी जीव चाहे मनुष्य, देवता या पशु-पक्षी हों, अपने-अपने किये कर्मका शुभाशुभ फल पाते हैं॥ ३२—३४॥

मनुष्य तप, यज्ञ तथा दानके द्वारा इन्द्रत्वको प्राप्त हो जाता है और पुण्य क्षीण होनेपर इन्द्र भी च्युत हो जाता है; इसमें सन्देह नहीं॥ ३५॥

रामावतारके समय देवता कर्मबन्धनके कारण वानर बने थे और कृष्णावतारमें भी कृष्णकी सहायताके लिये देवता यादव बने थे॥ ३६॥

इस प्रकार प्रत्येक युगमें धर्मकी रक्षाके लिये भगवान् विष्णु ब्रह्माजीसे अत्यन्त प्रेरित होकर अनेक अवतार धारण करते हैं॥ ३७॥

हे राजन्! इस प्रकार रथचक्रकी भाँति विविध प्रकारकी योनियोंमें भगवान् विष्णुके अद्भुत अवतार बार-बार होते रहते हैं॥ ३८॥

महात्मा भगवान् विष्णु अपने अंशांशसे पृथ्वीपर अवतार लेकर दैत्योंका वधरूपी कार्य सम्पन्न करते हैं। इसलिये अब मैं यहाँ श्रीकृष्णके जन्मकी पवित्र कथा कह रहा हूँ। वे साक्षात् भगवान् विष्णु ही यदुवंशमें अवतरित हुए थे॥ ३९-४०॥

हे राजन्! कश्यपमुनिके अंशसे प्रतापी वसुदेवजी उत्पन्न हुए थे, जो पूर्वजन्मके शापवश इस जन्ममें गोपालनका काम करते थे॥ ४१॥

हे महाराज! हे पृथ्वीपते! उन्हीं कश्यपमुनिकी दो पत्नियाँ—अदिति और सुरसाने भी शापवश पृथ्वीपर अवतार ग्रहण किया था। हे भरतश्रेष्ठ! उन दोनोंने देवकी और रोहिणी नामक बहनोंके रूपमें जन्म लिया था। मैंने यह सुना है कि क्रुद्ध होकर वरुणने उन्हें महान् शाप दिया था॥ ४२-४३॥

राजा बोले—हे महामते! महर्षि कश्यपने कौन-सा ऐसा अपराध किया था, जिसके कारण उन्हें स्त्रियोंसहित शाप मिला; इसे मुझे बताइये॥ ४४॥

वैकुण्ठवासी, अविनाशी, रमापति भगवान् विष्णुको गोकुलमें जन्म क्यों लेना पड़ा?॥ ४५॥

सबके स्वामी, अविनाशी, देवश्रेष्ठ, युगके आदि तथा सबको धारण करनेवाले साक्षात् भगवान् नारायण किसके आदेशसे व्यवहार करते हैं और वे अपने स्थानको छोड़कर मानव-योनिमें जन्म लेकर मनुष्योंकी भाँति सब काम क्यों करते हैं; इस विषयमें मुझे महान् सन्देह है॥ ४६-४७॥

भगवान् विष्णु स्वयं मानव-शरीर धारण करके हीन मनुष्य-जन्ममें अनेकविध लीलाएँ दिखाते हुए प्रपंच क्यों करते हैं?॥ ४८॥

काम, क्रोध, अमर्ष, शोक, वैर, प्रेम, सुख, दुःख, भय, दीनता, सरलता, पाप, पुण्य, वचन, मारण, पोषण, चलन, ताप, विमर्श, आत्मश्लाघा, लोभ, दम्भ, मोह, कपट और चिन्ता—ये तथा अन्य भी नाना प्रकारके भाव मनुष्य-जन्ममें विद्यमान रहते हैं॥ ४९—५१॥

वे भगवान् विष्णु शाश्वत सुखका त्याग करके इन भावोंसे ग्रस्त मनुष्य-जन्म किसलिये धारण करते हैं? हे मुनीश्वर! इस पृथ्वीपर मानव-जन्म पाकर कौन-सा सुख मिल जाता है? वे साक्षात् भगवान् विष्णु किस कारणसे गर्भवास करते हैं?॥ ५२-५३॥

गर्भवासमें दुःख, जन्मग्रहणमें दुःख, बाल्यावस्थामें दुःख, यौवनावस्थामें कामजनित दुःख एवं गार्हस्थ्य जीवनमें तो बहुत बड़ा दुःख होता है॥ ५४॥

हे विप्रवर! ये अनेक कष्ट मानव-जीवनमें प्राप्त होते हैं, तो फिर वे भगवान् विष्णु अवतार क्यों लेते हैं?॥ ५५॥

ब्रह्मयोनि भगवान् विष्णुको रामावतार ग्रहण करके अत्यन्त दारुण वनवासकालमें घोर कष्ट प्राप्त हुआ था। उन्हें सीता-वियोगसे उत्पन्न महान् दुःख प्राप्त हुआ तथा अनेक बार राक्षसोंसे युद्ध करना पड़ा। अन्तमें महान् आत्मावाले इन श्रीरामको पत्नी-परित्यागकी असीम वेदना भी सहनी पड़ी॥ ५६-५७॥

उसी प्रकार कृष्णावतारमें भी बन्दीगृहमें जन्म, गोकुल-गमन, गोचारण, कंसका वध और पुनः कष्टपूर्वक द्वारकाके लिये प्रस्थान—इन अनेकविध सांसारिक दुःखोंको भगवान् कृष्णने क्यों भोगा?॥ ५८-५९॥

ऐसा कौन ज्ञानी व्यक्ति होगा जो मुक्त होता हुआ भी स्वेच्छासे इन दुःखोंकी प्रतीक्षा करेगा? हे सर्वज्ञ! मेरे मनकी शान्तिके लिये सन्देहका निवारण कीजिये॥ ६०॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत चतुर्थ स्कन्धका 'कर्मसे जन्मादिकारणनिरूपण' नामक दूसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ २॥

तीसरा अध्याय

वसुदेव और देवकीके पूर्वजन्मकी कथा

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] भगवान् विष्णुके विभिन्न अवतार ग्रहण करने तथा इसी प्रकार सभी देवताओंके भी अंशावतार ग्रहण करनेके बहुतसे कारण हैं॥ १॥

अब वसुदेव, देवकी तथा रोहिणीके अवतारोंका कारण यथार्थ रूपसे सुनिये॥ २॥

एक बार महर्षि कश्यप यज्ञकार्यके लिये वरुणदेवकी गौ ले आये। [यज्ञ-कार्यकी समाप्तिके पश्चात्] वरुणदेवके बहुत याचना करनेपर भी उन्होंने वह उत्तम धेनु वापस नहीं दी॥ ३॥

तत्पश्चात् उदास मनवाले वरुणदेवने जगत्‌के स्वामी

ब्रह्माके पास जाकर उन्हें प्रणाम करके विनम्रतापूर्वक उनसे अपना दुःख कहा॥ ४॥

हे महाभाग! मैं क्या करूँ? वह अभिमानी कश्यप मेरी गाय नहीं लौटा रहा है। अतएव मैंने उसे शाप दे दिया कि मानवयोनिमें जन्म लेकर तुम गोपालक हो जाओ और तुम्हारी दोनों भार्याएँ भी मानवयोनिमें उत्पन्न होकर अत्यधिक दुःखी रहें। मेरी गायके बछड़े मातासे वियुक्त होकर अति दुःखित हैं और रो रहे हैं, अतएव पृथ्वीलोकमें जन्म लेनेपर यह अदिति भी मृतवत्सा होगी। इसे कारागारमें रहना पड़ेगा, उससे भी उसे महान् कष्ट भोगना होगा॥ ५—७॥

व्यासजी बोले—जल-जन्तुओंके स्वामी वरुणका यह वचन सुनकर प्रजापति ब्रह्माने मुनि कश्यपको वहाँ बुलाकर उनसे कहा—हे महाभाग! आपने लोकपाल वरुणकी गायोंका हरण क्यों किया; और फिर आपने उन्हें लौटाया भी नहीं। आप ऐसा अन्याय क्यों कर रहे हैं?॥ ८-९॥

हे महाभाग! न्यायको जानते हुए भी आपने दूसरेके धनका हरण किया। हे महामते! आप तो सर्वज्ञ हैं; तो फिर आपने यह अन्याय क्यों किया?॥ १०॥

अहो! लोभकी ऐसी महिमा है कि वह महान्-से-महान् लोगोंको भी नहीं छोड़ता है। लोभ तो निश्चय ही पापोंकी खान, नरककी प्राप्ति करानेवाला और सर्वथा अनुचित है॥ ११॥

महर्षि कश्यप भी उस लोभका परित्याग कर सकनेमें समर्थ नहीं हुए तो मैं क्या कर सकता हूँ। अन्ततः मैंने यही निष्कर्ष निकाला कि लोभ सदासे सबसे प्रबल है॥ १२॥

शान्त स्वभाववाले, प्रतिग्रहसे पराङ्मुख तथा इन्द्रियजित वानप्रस्थ-आश्रम स्वीकार किये हुए वे मुनिलोग धन्य हैं, जिन्होंने लोभपर विजय प्राप्त कर ली है॥ १३॥

संसारमें लोभसे बढ़कर अपवित्र अन्य कोई चीज नहीं है; यह सबसे बलवान् शत्रु है। महर्षि कश्यप भी इस नीच लोभसे स्नेह करनेके कारण दुराचारमें लिप्त हो गये॥ १४॥

अतएव मर्यादाकी रक्षाके लिये ब्रह्माजीने भी अपने परमप्रिय पौत्र मुनिश्रेष्ठ कश्यपको शाप दे दिया कि तुम अपने अंशसे पृथ्वीपर यदुवंशमें जन्म लेकर वहाँ अपनी
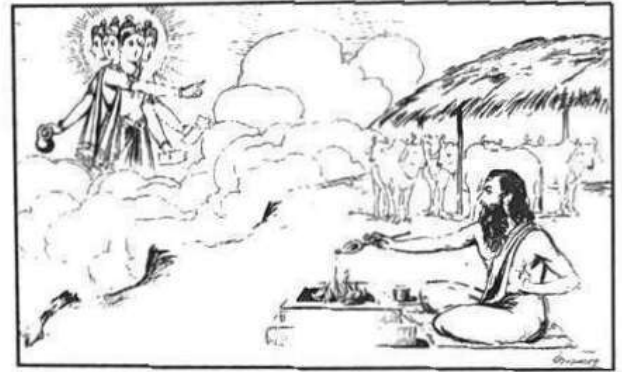
दोनों पत्नियोंके साथ गोपालनका कार्य करोगे॥ १५-१६॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार अंशावतार लेने तथा पृथ्वीका बोझ उतारनेके लिये वरुणदेव तथा ब्रह्माजीने उन महर्षि कश्यपको शाप दे दिया था॥ १७॥

उधर कश्यपकी भार्या दितिने भी अत्यधिक शोकसन्तप्त होकर अदितिको शाप दे दिया कि क्रमसे तुम्हारे सातों पुत्र उत्पन्न होते ही मृत्युको प्राप्त हो जायँ॥ १८॥

जनमेजय बोले—हे मुने! दितिके द्वारा उसकी अपनी बहन तथा इन्द्रकी माता अदिति क्यों शापित की गयी? हे मुनिवर! आप दितिके शोक तथा उसके द्वारा प्रदत्त शापका कारण मुझे बताइये॥ १९॥

सूतजी बोले—परीक्षित्-पुत्र राजा जनमेजयके पूछनेपर सत्यवती-पुत्र व्यासजी पूर्ण सावधान होकर राजाको शापका कारण बतलाने लगे॥ २०॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! दक्षप्रजापतिकी दिति और अदिति नामक दो सुन्दर कन्याएँ थीं। दोनों ही कश्यपमुनिकी प्रिय तथा गौरवशालिनी पत्नियाँ बनीं॥ २१॥

जब अदितिके अत्यन्त तेजस्वी पुत्र इन्द्र हुए, तब वैसे ही ओजस्वी पुत्रके लिये दितिके भी मनमें इच्छा जाग्रत् हुई॥ २२॥

उस समय सुन्दरी दितिने कश्यपजीसे प्रार्थना की—हे मानद! इन्द्रके ही समान बलशाली, वीर, धर्मात्मा तथा परम शक्तिसम्पन्न पुत्र मुझे भी देनेकी कृपा करें॥ २३॥

तब मुनि कश्यपने उनसे कहा—प्रिये! धैर्य धारण करो, मेरे द्वारा बताये गये व्रतको पूर्ण करनेके अनन्तर इन्द्रके समान पुत्र तुम्हें अवश्य प्राप्त होगा॥ २४॥

कश्यपमुनिकी बात स्वीकार करके दिति उस उत्तम

व्रतके पालनमें तत्पर हो गयी। उनके ओजसे सुन्दर गर्भ धारण करती हुई वह सुन्दरी दिति पयोव्रतमें स्थित रहकर भूमिपर सोती थी और पवित्रताका सदा ध्यान रखती थी। इस प्रकार क्रमशः जब वह महान् तेजस्वी गर्भ पूर्ण हो गया, तब शुभ्र ज्योतियुक्त तथा दीप्तिमान् अंगोंवाली दितिको देखकर अदिति दुःखित हुई॥ २५—२७॥

[उसने अपने मनमें सोचा—] यदि दितिके गर्भसे इन्द्रतुल्य महाबली पुत्र उत्पन्न होगा तो निश्चय ही मेरा पुत्र निस्तेज हो जायगा॥ २८॥

इस प्रकार चिन्ता करती हुई मानिनी अदितिने अपने पुत्र इन्द्रसे कहा—प्रिय पुत्र! इस समय दितिके गर्भमें तुम्हारा अत्यन्त पराक्रमशाली शत्रु विद्यमान है। हे शोभन! तुम सम्यक् विचार करके उस शत्रुके नाशका प्रयत्न करो, जिससे दितिका गर्भस्थ शिशु नष्ट हो जाय॥ २९-३०॥

मुझसे सपत्नीभाव रखनेवाली उस सुन्दरी दितिको देखकर सुखका नाश कर देनेवाली चिन्ता मेरे मनको सताने लगती है॥ ३१॥

जब शत्रु बढ़ जाता है तब राजयक्ष्मा रोगकी भाँति वह नष्ट नहीं हो पाता है। इसलिये बुद्धिमान् मनुष्यका कर्तव्य है कि वह ऐसे शत्रुको अंकुरित होते ही नष्ट कर डाले॥ ३२॥

हे देवेन्द्र! दितिका वह गर्भ मेरे हृदयमें लोहेकी कीलके समान चुभ रहा है, अतः जिस किसी भी उपायसे तुम उसे नष्ट कर दो। हे महाभाग! यदि तुम मेरा हित करना चाहते हो तो साम, दान आदिके बलसे दितिके गर्भस्थ शिशुका संहार कर डालो॥ ३३-३४॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! तब अपनी माताकी वाणी सुनकर देवराज इन्द्र मन-ही-मन उपाय सोचकर अपनी विमाता दितिके पास गये। उस पापबुद्धि इन्द्रने विनयपूर्वक दितिके चरणोंमें प्रणाम किया और ऊपरसे मधुर किंतु भीतरसे विषभरी वाणीमें विनम्रतापूर्वक उससे कहा—॥ ३५-३६॥

इन्द्र बोले—हे माता! आप व्रतपरायण हैं, और अत्यन्त दुर्बल तथा कृशकाय हो गयी हैं। अतः मैं आपकी सेवा करनेके लिये आया हूँ। मुझे बताइये, मैं क्या करूँ? हे पतिव्रते! मैं आपके चरण दबाऊँगा; क्योंकि बड़ोंकी सेवासे मनुष्य अक्षय गति प्राप्त कर लेता है॥ ३७-३८॥

मैं शपथपूर्वक कहता हूँ कि मेरे लिये माता अदिति तथा आपमें कुछ भी भेद नहीं है। ऐसा कहकर इन्द्र उनके दोनों चरण पकड़कर दबाने लगे॥ ३९॥

पादसंवाहनका सुख पाकर सुन्दर नेत्रोंवाली उस दितिको नींद आने लगी। वह परम सती दिति थकी हुई थी, व्रतके कारण दुर्बल हो गयी थी और उसे इन्द्रपर विश्वास था, अतः वह सो गयी॥ ४०॥

दितिको नींदके वशीभूत देखकर इन्द्र अपना अत्यन्त सूक्ष्म रूप बनाकर हाथमें शस्त्र लेकर बड़ी सावधानीके साथ दितिके शरीरमें प्रवेश कर गये॥ ४१॥

इस प्रकार योगबलद्वारा दितिके उदरमें शीघ्र ही प्रविष्ट होकर इन्द्रने वज्रसे उस गर्भके सात टुकड़े कर डाले॥ ४२॥

उस समय वज्राघातसे दुःखित हो गर्भस्थ शिशु रुदन करने लगा। तब धीरेसे इन्द्रने उससे '**मा रुद**' 'मत रोओ'—ऐसा कहा॥ ४३॥

तत्पश्चात् इन्द्रने पुनः उन सातों टुकड़ोंके सात-सात खण्ड कर डाले। हे राजन्! वे ही टुकड़े उनचास मरुद्गणके रूपमें प्रकट हो गये॥ ४४॥

उस छली इन्द्रद्वारा अपने गर्भको वैसा (विकृत) किया गया जानकर सुन्दर दाँतोंवाली वह दिति जाग गयी और अत्यन्त दुःखी होकर क्रोध करने लगी॥ ४५॥

यह सब बहन अदितिद्वारा किया गया है—ऐसा जानकर सत्यव्रतपरायण दितिने कुपित होकर अदिति और इन्द्र दोनोंको शाप दे दिया कि जिस प्रकार तुम्हारे पुत्र इन्द्रने छलपूर्वक मेरा गर्भ छिन्न-भिन्न कर डाला है, उसी प्रकार उसका त्रिभुवनका राज्य शीघ्र ही नष्ट हो जाय। जिस प्रकार पापिनी अदितिने गुप्त पापके द्वारा मेरा गर्भ गिराया है और मेरे गर्भको नष्ट करवा डाला है, उसी प्रकार उसके पुत्र भी क्रमशः उत्पन्न होते ही नष्ट हो जायँगे और वह पुत्र-शोकसे अत्यन्त चिन्तित होकर कारागारमें रहेगी। अन्य जन्ममें भी इसकी सन्तानें मर

जाया करेंगी॥ ४६—४९½॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार मरीचिपुत्र कश्यपने दितिप्रदत्त शापको सुनकर उसे सान्त्वना देते हुए प्रेमपूर्वक यह वचन कहा—हे कल्याणि! तुम क्रोध मत करो, तुम्हारे पुत्र बड़े बलवान् होंगे। वे सब उनचास मरुद् देवता होंगे, जो इन्द्रके मित्र बनेंगे। हे सुन्दरि! अट्ठाईसवें द्वापरयुगमें तुम्हारा शाप सफल होगा। उस समय अदिति मनुष्ययोनिमें जन्म लेकर अपने किये कर्मका फल भोगेगी। इसी प्रकार दुःखित वरुणने भी उसे शाप दिया है। इन दोनों शापोंके संयोगसे यह अदिति मनुष्ययोनिमें उत्पन्न होगी॥ ५०—५३½॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार पति कश्यपके आश्वासन देनेपर दिति सन्तुष्ट हो गयी॥ ५४॥

और वह पुनः कोई अप्रिय वाणी नहीं बोली। हे राजन्! इस प्रकार मैंने आपको अदितिके पूर्व शापका कारण बताया। हे नृपश्रेष्ठ! वही अदिति अपने अंशसे देवकीके रूपमें उत्पन्न हुई॥ ५५-५६॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत चतुर्थ स्कन्धका 'दितिद्वारा अदितिको शापदान' नामक तीसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३॥

चौथा अध्याय

व्यासजीद्वारा जनमेजयको मायाकी प्रबलता समझाना

राजा बोले—हे महाभाग! इस आख्यानको सुनकर मैं बड़े आश्चर्यमें पड़ गया हूँ। हे महामते! यह संसार पापका मूर्तरूप है। इसके बन्धनसे मनुष्य किस प्रकार मुक्त हो सकता है?॥ १॥

जब तीनों लोकोंका वैभव पास रखते हुए भी कश्यपमुनिकी संतान इन्द्रने ऐसा पापकर्म कर डाला, तब कौन मनुष्य पाप नहीं कर सकता?॥ २॥

अद्भुत शपथ लेकर सेवाके बहाने माताके गर्भमें प्रविष्ट होकर बालककी हत्या करना तो बड़ा भयानक पाप है!॥ ३॥

सबके शासक, धर्मके रक्षक और तीनों लोकोंके स्वामी इन्द्रने जब ऐसा निन्दित कर्म कर डाला, तब फिर दूसरा कौन नहीं करेगा?॥ ४॥

हे जगद्गुरो! मेरे पितामहलोगोंने भी कुरुक्षेत्रके संग्राममें ऐसा ही विस्मयकारी दारुण और निन्दित कर्म किया था। भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, कर्ण तथा धर्मके अंशरूप युधिष्ठिर—इन सभीने भगवान् श्रीकृष्णकी प्रेरणासे धर्मविरुद्ध कर्म किया था॥ ५-६॥

संसारकी असारता जानते हुए भी उन प्रतिभाशाली तथा देवांशसे उत्पन्न धर्मपरायण पाण्डवोंने भी ऐसा गर्हित कर्म क्यों किया?॥ ७॥

हे द्विजेन्द्र! यदि ऐसी बात है तो धर्मपर किसकी आस्था होगी और धर्मके विषयमें सैद्धान्तिक प्रमाण ही क्या रह जायगा? यह वृत्तान्त सुनकर तो मेरा मन चंचल हो उठा है॥ ८॥

यदि आप्त वचनको प्रमाण मानें, तो फिर कौन पुरुष आप्त है? विषयासक्त मनुष्यमें राग आ ही जाता है और अपना स्वार्थ भंग होनेपर उसमें निःसन्देह राग-द्वेषकी बहुलता हो जाती है। द्वेषके कारण अपनी स्वार्थसिद्धिके लिये असत्य भाषण करना पड़ता है॥ ९-१०॥

परम ज्ञानी और सत्त्वगुणके मूर्तस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णने भी जरासन्धके वधके लिये छलसे ब्राह्मणका वेष धारण किया था। जब सत्त्वमूर्ति भी इस प्रकारके होते हैं, तब किस आप्त पुरुषको प्रमाण माना जाय? उसी प्रकार [राजसूय] यज्ञके अवसरपर अर्जुनने भी वैसा ही कर्म किया था॥ ११-१२॥

जिस यज्ञमें अशान्तिका वातावरण रहा, उस यज्ञको किस श्रेणीका यज्ञ कहा जाय? वह यज्ञ परलोकमें परमपदकी प्राप्तिके लिये किया गया था अथवा सुयश पानेके लिये किया गया था या अन्य किसी कार्यकी सिद्धिके लिये किया गया था?॥ १३॥

श्रुतिका यह वचन है कि धर्मका प्रथम चरण सत्य, दूसरा चरण पवित्रता, तीसरा चरण दया तथा चतुर्थ चरण दान है। पुराणवेत्ता भी यही कहते हैं। इन चारोंके बिना परम आदृत धर्म कैसे टिक सकता है?॥ १४-१५॥

तब मेरे पूर्वजोंके द्वारा किया गया वह धर्मविहीन यज्ञ-कर्म [उत्तम] फल देनेवाला कैसे हो सकता था? इससे तो यही प्रतीत होता है कि उस समय किसीका भी कहीं भी धर्ममें अटल विश्वास नहीं था॥ १६॥

जगत्प्रभु भगवान् विष्णुने भी छलनेहेतु वामनका रूप धारण किया था, जिन्होंने वामनरूपसे राजा बलिको ठग लिया था॥ १७॥

महाराज बलि सौ यज्ञ कर चुके थे। वे वेदोंकी आज्ञाका पालन करनेवाले धर्मात्मा, दानी, सत्यवादी एवं जितेन्द्रिय थे। ऐसे महापुरुषको परम प्रभावशाली भगवान् विष्णुने अकस्मात् पदच्युत कर दिया। अत: हे कृष्णद्वैपायन! उन दोनोंमें कौन जीता? वंचना करके छलकर्ममें निपुण भगवान् वामनकी विजय हुई या छले गये राजा बलिकी; इस विषयमें मुझे महान् सन्देह है। हे द्विजश्रेष्ठ! मुझे सत्य बात बताइये; क्योंकि आप पुराणोंके रचयिता, धर्मज्ञ तथा महान् बुद्धिसम्पन्न हैं॥ १८—२०$^{१}/_{२}$॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! उस राजा बलिकी ही विजय हुई, जिसने समस्त भूमण्डलका दान कर दिया था। हे राजन्! जो त्रिविक्रम नामसे विख्यात थे, वे भगवान् विष्णु वामन बने। हे नरेन्द्र! उन्होंने छल करनेके लिये यह वामनरूप धारण किया था और इसी छलके परिणामस्वरूप उन श्रीहरिको राजा बलिका द्वारपाल बनना पड़ा। अत: हे राजन्! सत्यसे बढ़कर धर्मका मूल और कुछ नहीं है॥ २१—२३॥

हे राजन्! सम्यक् प्रकारसे सत्यका पालन करना प्राणियोंके लिये अत्यन्त दुष्कर है। अनेक रूप धारण करनेवाली त्रिगुणात्मिका माया बड़ी बलवती है, जिसने तीनों गुणोंसे सम्मिश्रित इस विश्वकी रचना की है। अत: हे राजन्! छल-कपट करनेवालेसे बिना प्रभावित हुए यह सत्य कैसे रह सकता है?॥ २४-२५॥

सत्त्व, रज और तम—इन्हीं तीनों गुणोंके मेलसे मायाका प्रादुर्भाव हुआ, यही सृष्टिका सनातन नियम है। केवल अनासक्त, प्रतिग्रहशून्य, रागरहित और तृष्णाविहीन वानप्रस्थ तथा मुनिजन अवश्य सत्यपरायण होते हैं, किंतु वैसे लोग केवल दृष्टान्त दिखानेके लिये ही बनाये गये हैं॥ २६-२७॥

हे राजन्! उनके अतिरिक्त सब कुछ सत्त्व, रज एवं तम—इन तीनों गुणोंसे ओत-प्रोत है। हे नृपश्रेष्ठ! पुराणों, वेदों, धर्मशास्त्रों, वेदांगों और सगुण प्राणियोंद्वारा रचित ग्रन्थोंमें भी कहीं एकवाक्यता नहीं मिलती; सगुण प्राणी ही सगुण कार्य करता है, निर्गुणसे सगुण कार्य नहीं हो सकता; क्योंकि वे सभी गुण मिश्रित हैं, वे पृथक्-पृथक् नहीं रहते। इसी कारण किसीकी भी बुद्धि सत्य तथा सनातनधर्ममें टिक नहीं पाती॥ २८—३०॥

हे महाराज! संसारकी सृष्टिके समय मायासे मोहित मनुष्यकी इन्द्रियाँ अत्यन्त चंचल हो जाती हैं और उनमें आसक्त मन उन गुणोंसे प्रेरित होकर विविध प्रकारके भाव प्रकट करने लगता है। हे राजन्! ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त स्थावर-जंगम सभी प्राणी मायाके वशीभूत रहते हैं और वह माया उनके साथ क्रीडा करती रहती है। यह माया सभीको मोहमें डाल देती है और जगत्में निरन्तर विकार उत्पन्न किया करती है॥ ३१—३३॥

हे राजन्! सर्वप्रथम अपना कार्य सिद्ध करनेके लिये मनुष्य असत्यका सहारा लेता है। उस समय इन्द्रियोंके विषयोंका चिन्तन करते हुए जब मनुष्य अपना अभीष्ट नहीं पाता, तो वह उसके लिये छल करने लगता है। इस प्रकार छलके कारण वह पापमें प्रवृत्त हो जाता है। काम, क्रोध और लोभ मनुष्योंके सबसे बड़े शत्रु हैं। इनके वशमें होनेके कारण प्राणी कर्तव्य-अकर्तव्यको नहीं जान पाते। ऐश्वर्य बढ़ जानेपर अहंकार और भी बढ़ जाता है। अहंकारसे मोह उत्पन्न होता है और मोहसे विनाश हो जाता है। मोहके

कारण मनुष्यके मनमें अनेक प्रकारके संकल्प-विकल्प होने लगते हैं। उस समय मनमें ईर्ष्या, असूया तथा द्वेष उत्पन्न हो जाते हैं। प्राणियोंके हृदयमें आशा, तृष्णा, दीनता, दम्भ और अधार्मिक बुद्धि—ये सब उत्पन्न हो जाते हैं। ये भावनाएँ प्राणियोंमें मोहसे ही उत्पन्न होती हैं। यज्ञ, दान, तीर्थ, व्रत और नियम जो कुछ भी सत्कर्म हैं, उन्हें भी मनुष्य अहंकारके ही वशीभूत होकर निरन्तर करता है, उनका अहंभावसे किया गया सारा कार्य वैसा नहीं होता, जैसा कि शुद्ध अन्त:करणसे किया जाता है। आसक्ति एवं लोभसे किया हुआ कोई भी कर्म सर्वथा अशुद्ध होता है ॥ ३४—४०$^{१}/_{२}$ ॥

बुद्धिमान् मनुष्योंको चाहिये कि वे सर्वप्रथम द्रव्य-शुद्धिपर विचार कर लें। द्रोहरहित कर्म करके अर्जित किया हुआ धन धर्मकार्यमें प्रशस्त माना गया है। हे नृपश्रेष्ठ! द्रोहपूर्वक उपार्जित किये हुए द्रव्यके द्वारा मनुष्य जो उत्तम कार्य करता है, समय आनेपर उसका विपरीत फल प्राप्त होता है। जिसका मन परम पवित्र है, वही पूर्ण फलका अधिकारी होता है और मनके विकारपूर्ण रहनेपर उसे यथार्थ फल नहीं मिलता ॥ ४१—४३$^{१}/_{२}$ ॥

जब कर्म करानेवाले ऋत्विक्, आचार्य आदि लोगोंका चित्त शुद्ध रहता है, तभी पूर्ण फल प्राप्त होता है। यदि देश, काल, क्रिया, द्रव्य, कर्ता और मन्त्र—इन सबकी शुद्धता रहती है, तभी कर्मोंका पूरा फल प्राप्त होता है। जो मनुष्य शत्रुनाश तथा अपनी अभिवृद्धिके उद्देश्यसे पुण्यकर्म करता है तो उसे भी वैसा ही विपरीत फल मिलता है। स्वार्थमें लिप्त मनुष्य शुभाशुभका ज्ञान नहीं रख पाता और दैवाधीन होकर सदा पाप ही किया करता है, पुण्य नहीं ॥ ४४—४७$^{१}/_{२}$ ॥

प्रजापति ब्रह्मासे ही देवता उत्पन्न हुए हैं और उन्हींसे असुरोंकी भी उत्पत्ति हुई है। वे सब-के-सब स्वार्थमें लिप्त होकर एक-दूसरेके विरुद्ध काम करते हैं। वेदोंमें कहा गया है कि सत्त्वगुणसे सभी देवता, रजोगुणसे मनुष्य तथा तमोगुणसे पशु-पक्षी आदि तिर्यक्योनिके जीव उत्पन्न होते हैं। अतएव जब सत्त्वगुणसे उत्पन्न देवताओंमें भी निरन्तर आपसमें वैरभाव रहता है तब पशु-पक्षियोंमें परस्पर जातिवैर उत्पन्न होनेमें क्या आश्चर्य! देवता भी सदैव द्रोहमें तत्पर रहते हैं और तपस्यामें विघ्न डाला करते हैं। हे नृप! वे सदा असन्तुष्ट रहते हुए द्वेषपरायण होकर आपसमें विरोधभाव रखते हैं। अत: हे राजन्! जब यह संसार ही अहंकारसे उत्पन्न हुआ है, तब वह राग-द्वेषसे हीन हो ही कैसे सकता है? ॥ ४८—५३ ॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत चतुर्थ स्कन्धका 'अधम जगत्‌की स्थितिका वर्णन' नामक चौथा अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ४ ॥

पाँचवाँ अध्याय

नर-नारायणकी तपस्यासे चिन्तित होकर इन्द्रका उनके पास जाना और मोहिनी माया प्रकट करना तथा उससे भी अप्रभावित रहनेपर कामदेव, वसन्त और अप्सराओंको भेजना

व्यासजी बोले—हे नृपोत्तम! अब अधिक कहनेसे क्या लाभ? इस संसारमें कहीं बिरला ही ऐसा कोई धर्मात्मा पुरुष होगा जो द्रोहभावसे रहित हो। यह चर-अचर सम्पूर्ण संसार राग-द्वेषसे ओत-प्रोत है। हे राजेन्द्र! सत्ययुगमें भी यह संसार ऐसा ही था, तब कलिसे दूषित इसके विषयमें क्या कहा जाय? ॥ १-२ ॥

हे राजन्! जब देवता भी सदा ईर्ष्यायुक्त द्रोहसे भरे हुए और छल-परायण रहते हैं, तब मनुष्य तथा पशु-पक्षियोंकी बात ही क्या है? यदि कोई मनुष्य द्रोह करनेवालेके प्रति द्रोहभाव रखे तो यह समानताकी बात है, किंतु द्रोह न करनेवाले तथा शान्त स्वभाववालेके प्रति विद्वेष रखनेको नीचता कहा गया है ॥ ३-४ ॥

यदि कोई तपस्वी शान्त होकर जप-ध्यानमें लीन हो जाता है तो इन्द्र उसके जपमें विघ्न डालनेहेतु तत्पर हो जाते हैं॥ ५॥

सज्जन पुरुषोंके लिये हर समय सत्ययुग दिखलायी पड़ता है और दुष्ट लोगोंके लिये सर्वदा कलियुग ही रहता है। जिस युगमें क्रिया तथा योग व्यवस्थित रहते हैं, वे द्वापर तथा त्रेतारूप मध्यम युग मध्यम कोटिके लोगोंके लिये कहे गये हैं॥ ६॥

अतः किसी समय भी कोई सत्यधर्मा हो सकता है अथवा सभी युगोंमें जो चाहे धर्मपरायण हो सकता है। हे राजन्! सर्वत्र धर्मकी स्थितिमें वासना ही प्रधान कारण मानी गयी है। उसमें मलिनता आ जानेपर धर्म भी मलिन हो जाता है। मलिन वासना विनाशके लिये होती है; यह सर्वथा सत्य है॥ ७-८$^{१}/_{२}$॥

ब्रह्माजीके हृदयसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो धर्म—इस नामसे कहा गया। वह ब्राह्मण सत्यसम्पन्न और वैदिक धर्ममें सदा संलग्न रहनेवाला था। उस गृहस्थधर्मी महात्मा मुनिने पाणिग्रहणकी विधिसे दक्षप्रजापतिकी दस कन्याओंका सम्यक् रूपसे वरण किया। सत्यव्रतियोंमें श्रेष्ठ उस धर्मने उनसे 'हरि', 'कृष्ण', 'नर' और 'नारायण' नामक चार पुत्र उत्पन्न किये। हे राजन्! उनमें 'हरि' और 'कृष्ण' ये दोनों योगाभ्यास करने लगे तथा नर और नारायण ये दोनों हिमालयपर्वतके शिखरपर जाकर 'बदरिकाश्रम' तीर्थमें कठिन तपस्या करने लगे॥ ९—१३॥

वे प्राचीन मुनिश्रेष्ठ नर और नारायण तपस्वियोंमें सबसे प्रधान थे। गंगाके विस्तृत तटपर रहकर ब्रह्मचिन्तन करते हुए भगवान् विष्णुके अंशावतार नर-नारायणने वहाँ पूरे एक हजार वर्षोंतक कठोर तप किया। उनके तपसे चराचरसहित सम्पूर्ण संसार सन्तप्त हो गया। इससे इन्द्रके मनमें नर-नारायणके प्रति क्षोभ उत्पन्न हो गया॥ १४—१६॥

तब चिन्तित होकर इन्द्रने अपने मनमें सोचा—अब मुझे क्या करना चाहिये? ये धर्मपुत्र नर-नारायण तपस्वी तथा ध्यानपरायण हैं। ये पूर्णरूपसे सिद्ध होकर मेरा श्रेष्ठ आसन ग्रहण कर लेंगे, अतः किस प्रकार विघ्न उत्पन्न करूँ, जिससे तप न कर सकें॥ १७-१८॥

अब इनके मनमें काम, क्रोध अथवा अत्यन्त भीषण लोभ उत्पन्न करके तपमें विघ्न करना चाहिये। यह विचारकर इन्द्र अपने उत्तम ऐरावत हाथीपर सवार होकर उनके तपमें विघ्न डालनेकी इच्छासे गन्धमादनपर्वतपर शीघ्रतापूर्वक जा पहुँचे। वहाँ जाकर उन्होंने उस पवित्र आश्रममें तप करते हुए नर-नारायणको देखा॥ १९—२०॥

उस समय तपके प्रभावसे दीप्त शरीरवाले वे दोनों ऋषि उगे हुए सूर्यकी भाँति प्रतीत हो रहे थे। [इन्द्रने सोचा—] क्या ये ब्रह्मा और विष्णु प्रकट हुए हैं अथवा दो सूर्य उदित हो गये हैं? धर्मके ये दोनों पुत्र अपने तपद्वारा न जाने क्या कर देंगे? ऐसा विचार करके शचीपति इन्द्रने नर-नारायणकी ओर देखकर उनसे कहा—हे महाभाग धर्मनन्दन! आपलोगोंका क्या कार्य है, बताइये। मैं श्रेष्ठ वर अभी प्रदान करता हूँ। हे ऋषियो! मैं वर देनेके लिये ही आया हूँ। वर अदेय हो तो भी मैं दूँगा; क्योंकि मैं आप लोगोंकी तपस्यासे परम प्रसन्न हूँ॥ २१-२३$^{१}/_{२}$॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार उनके सामने खड़े होकर इन्द्रने बार-बार उनसे [वरदान माँगनेको] कहा, किंतु ध्यानमग्न तथा दृढ़चित्त वे दोनों ऋषि नहीं बोले। तब इन्द्रने अपनी भयदायिनी मोहिनी माया प्रकट की। उन्होंने भेड़िये, सिंह, व्याघ्र आदि हिंसक जन्तुओंको उत्पन्न करके

उन्हें भयभीत किया। इसी प्रकार वर्षा, वायु तथा अग्नि उत्पन्न करके इन्द्रने अपनी मोहिनी माया रचकर उन दोनोंको भयभीत करनेकी चेष्टा की किंतु धर्मपुत्र वे दोनों मुनि इस भयसे भी वशमें नहीं किये जा सके। ऐसे उन

नर-नारायणको देखकर इन्द्र अपने भवन चले गये। वे नर-नारायण वरदानके लोभमें नहीं आये और अग्नि तथा वायुसे भयभीत नहीं हुए। व्याघ्र, सिंह आदिके आक्रमण करनेपर भी वे दोनों अपने आसनसे हिलेतक नहीं। उन दोनोंके ध्यानको भंग करनेमें उस समय कोई भी समर्थ नहीं हो सका॥ २४—२९ ॥

इन्द्र भी अपने घर पहुँचकर दु:खित होकर विचार करने लगे कि मुनिवरोंमें उत्तम ये दोनों ऋषि भय तथा लोभसे विचलित नहीं हुए। वे तो महाविद्या, आदिशक्ति, सनातनी, सब लोकोंकी स्वामिनी और अद्भुत परा-प्रकृतिका ध्यान कर रहे थे। देवताओं तथा असुरोंके द्वारा रची गयी सारी माया जिन भगवतीसे ही उत्पन्न होती है, उनका ध्यान करनेवालेको विचलित करनेमें कौन समर्थ है, चाहे वह कितना ही बड़ा मायाविज्ञ क्यों न हो? जो लोग कल्मषरहित होकर भगवतीका ध्यान करते हैं, वे भला कैसे विचलित किये जा सकते हैं? देवीका वाग्बीज, कामबीज और मायाबीज—यह जिसके हृदयमें विद्यमान है, उसे विचलित करनेमें कोई भी समर्थ नहीं है॥ ३०—३३ १/२ ॥

अब मायासे मोहित इन्द्रने पुन: उनका प्रतीकार करनेहेतु कामदेव तथा वसन्तको बुलाकर यह वचन कहा—हे कामदेव! तुम वसन्त और रतिको लेकर अनेक अप्सराओंके साथ उस गन्धमादनपर्वतपर अभी शीघ्रतापूर्वक जाओ। वहाँ 'नर-नारायण' नामक दो प्राचीन श्रेष्ठ ऋषि बदरिकाश्रमके एकान्त स्थानमें स्थित होकर तपस्या कर रहे हैं। हे मन्मथ! उनके पास जाकर तुम अपने बाणोंसे उनके चित्तको कामासक्त कर दो। उनका मोहन तथा उच्चाटन करके तुम अपने बाणोंसे उन्हें शीघ्र आहत कर डालो; मेरा यह कार्य अभी सिद्ध करो॥ ३४—३८ ॥

इस प्रकार हे महाभाग! धर्मके पुत्र उन दोनों मुनियोंको वशीभूत कर लो। इस सम्पूर्ण संसारमें देवता, दैत्य या मनुष्य कौन ऐसा है, जो तुम्हारे बाणके वशीभूत होकर अत्यन्त कामासक्त न हो जाय? हे कामदेव! जब ब्रह्मा, मैं (इन्द्र), शिव, चन्द्रमा या अग्नि भी मोहित हो जाते हैं तब तुम्हारे बाणोंके पराक्रमके सामने उन दोनोंकी क्या गणना है?॥ ३९-४० १/२ ॥

तुम्हारी सहायताके लिये मेरे द्वारा यह रम्भा आदि अप्सराओंका समूह भेजा जा रहा है, जो वहाँ पहुँच जायगा। अकेली तिलोत्तमा या रम्भा ही इस कार्यको करनेमें समर्थ है अथवा तुम अकेले भी इसे करनेमें समर्थ हो, तब सभी सम्मिलित रूपसे कार्य सिद्ध कर लेंगे; इसमें सन्देहकी बात ही क्या? हे महाभाग! तुम मेरे इस कार्यको सम्पन्न करो, मैं तुम्हें वांछित वस्तु प्रदान करूँगा॥ ४१—४३ ॥

मैंने उन दोनों तपस्वियोंको वरदानोंके द्वारा बहुत प्रलोभन दिया, किंतु वे अपने स्थानसे विचलित नहीं हुए, बल्कि शान्त बैठे रहे। मेरा यह परिश्रम व्यर्थ चला गया। मैंने माया रचकर उन तपस्वियोंको बहुत डराया, फिर भी वे अपने आसनसे नहीं उठे। वे दोनों शरीररक्षाके लिये जरा भी चिन्तित नहीं हैं॥ ४४-४५ ॥

व्यासजी बोले—इन्द्रका यह वचन सुनकर कामदेवने उनसे कहा—हे इन्द्र! मैं अभी आपका मनोवांछित कार्य करूँगा। यदि वे दोनों मुनि विष्णु, शिव, ब्रह्मा अथवा सूर्य किसीका ध्यान करते होंगे, तो वे हमारे वशमें हो जायँगे। मैं केवल कामराज महाबीज 'क्लीं' का अपने मनमें चिन्तन करनेवाले देवीभक्तको वशमें करनेमें किसी प्रकार भी समर्थ नहीं हूँ। यदि वे भक्ति-भावसे महाशक्तिस्वरूपा देवीकी उपासनामें लगे होंगे, तो मेरे बाणोंका प्रभाव उन तपस्वियोंपर नहीं पड़ेगा॥ ४६—४९ ॥

इन्द्र बोले—हे महाभाग! जानेके लिये उद्यत इन सभी के साथ तुम वहाँ जाओ। यद्यपि मेरा यह कार्य अत्यन्त दु:साध्य है, फिर भी तुम इस हितकर तथा उत्तम कार्यको पूर्ण कर ही लोगे॥ ५० ॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार इन्द्रका आदेश पाकर वे लोग पूरी तैयारीके साथ उस स्थानपर गये, जहाँ वे धर्मपुत्र नर-नारायण कठोर तपस्या कर रहे थे॥ ५१ ॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके
अन्तर्गत चतुर्थ स्कन्धका 'नर-नारायणकथावर्णन'
नामक पाँचवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५ ॥

छठा अध्याय

कामदेवद्वारा नर-नारायणके समीप वसन्त ऋतुकी सृष्टि, नारायणद्वारा उर्वशीकी उत्पत्ति, अप्सराओंद्वारा नारायणसे स्वयंको अंगीकार करनेकी प्रार्थना

व्यासजी बोले—सर्वप्रथम उस पर्वतश्रेष्ठ गन्धमादनपर वसन्त पहुँचा। उस पर्वतपर स्थित सभी वृक्ष पुष्पित हो गये और उनपर भ्रमरोंके समूह मँडराने लगे॥ १॥

आम, मौलसिरी, रम्य, तिलक, सुन्दर किंशुक, साल, ताल, तमाल तथा महुए—ये सब-के-सब फूलोंसे सुशोभित हो गये॥ २॥

वृक्षोंकी डालियोंपर कोयलोंकी मनोहारिणी कूक आरम्भ हो गयी। पुष्पोंसे लदी हुई सभी लताएँ ऊँचे पर्वतोंपर चढ़ने लगीं॥ ३॥

सभी प्राणी अपनी-अपनी भार्याओंमें प्रेमासक्त हो गये तथा मत्त होकर परस्पर क्रीड़ा करने लगे॥ ४॥

मन्द, सुगन्धयुक्त तथा सुखद स्पर्शवाली दक्षिणी हवाएँ चलने लगीं। उस समय मुनियोंकी भी वृत्तियाँ अतीव चंचल हो उठीं॥ ५॥

तत्पश्चात् अपनी भार्या रतिके साथ कामदेव भी अपने पंचबाणोंको छोड़ता हुआ तत्काल बदरिकाश्रम पहुँचकर वहाँ रहने लगा॥ ६॥

संगीतकलामें अत्यन्त प्रवीण रम्भा और तिलोत्तमा आदि अप्सराएँ भी उस रमणीक बदरिकाश्रममें पहुँचकर स्वर तथा तानमें आबद्ध गीत गाने लगीं॥ ७॥

उस मधुर गायन, कोयलोंकी कूक तथा भ्रमर-समूहोंका गुंजार सुनकर उन दोनों मुनिवरोंका ध्यान भंग हो गया॥ ८॥

असमयमें ही वसन्तका आगमन तथा सम्पूर्ण वनको पुष्पोंसे सुशोभित देखकर वे दोनों नर तथा नारायणऋषि चिन्तित हो उठे [वे सोचने लगे कि] क्या आज समय पूरा हुए बिना ही शिशिर ऋतु बीत गयी? इस समय तो समस्त प्राणी कामसे पीड़ित होनेके कारण अत्यन्त विह्वल दिखायी पड़ रहे हैं। कालके स्वभाव तथा नियममें यह अद्भुत परिवर्तन आज कैसे हो गया? विस्मयके कारण विस्फारित नेत्रोंवाले मुनि नारायण नरसे कहने लगे॥ ९—११॥

नारायण बोले—हे भाई! देखो, ये सभी वृक्ष पुष्पोंसे लदे हुए सुशोभित हो रहे हैं। इन वृक्षोंपर कोयलोंकी मधुर ध्वनि हो रही है तथा भ्रमरोंकी पंक्तियाँ विराजमान हैं॥ १२॥

हे मुने! यह वसन्तरूपी सिंह अपने पलाशपुष्परूपी तीखे नाखूनोंसे शिशिररूपी भयानक हाथीको विदीर्ण करता हुआ यहाँ आ पहुँचा है॥ १३॥

हे देवर्षे! लाल अशोक जिसके हाथ हैं, किंशुकके पुष्प जिसके पैर हैं, नील अशोक जिसके केश हैं, विकसित श्याम कमल जिसका मुख है, नीले कमल जिसके नेत्र हैं, बिल्व-वृक्षके फल जिसके स्तन हैं, खिले हुए कुन्दके फूल जिसके दाँत हैं, आमके बौर जिसके कान हैं, बन्धुजीव (गुलदुपहरिया)-के पुष्प जिसके शुभ्र अधर हैं, सिन्धुवारके पुष्प जिसके नख हैं, कोयलके समान जिसका स्वर है, कदम्बके पुष्प जिस सुन्दरीके पावन वस्त्र हैं, मयूरपंखोंके समूह जिसके आभूषण हैं, सारसोंका स्वर जिसका नूपुर है, माधवी लता जिसकी करधनी है— ऐसी मत्त हंसके समान गतिवाली तथा इंगुदीके पत्तोंको रोमस्वरूप धारण की हुई वसन्तश्री इस बदरिकाश्रममें छायी हुई है॥ १४—१८॥

मुझे तो यह महान् आश्चर्य हो रहा है कि असमयमें यह यहाँ क्यों आ गयी? हे देवर्षे! आप यह निश्चित समझिये कि इस समय यह हमलोगोंकी तपस्यामें विघ्न डालनेवाली है॥ १९॥

ध्यान भंग कर देनेवाला यह देवांगनाओंका गीत सुनायी दे रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि हम दोनोंका तप नष्ट करनेके लिये इन्द्रने ही यह उपक्रम रचा है। अन्यथा ऋतुराज वसन्त अकालमें कैसे प्रीति प्रकट कर सकता है? जान पड़ता है कि भयभीत होकर असुरोंके शत्रु इन्द्रके द्वारा ही यह विघ्न उपस्थित किया गया है। सुरभित, शीतल एवं

मनोहर हवाएँ चल रही हैं; इसमें इन्द्रकी चालके अतिरिक्त अन्य कोई कारण नहीं है॥ २०—२२॥

विप्रवर विभु भगवान् नारायण ऐसा कह ही रहे थे कि कामदेव आदि सभी दिखायी पड़ गये। भगवान् नर तथा नारायणने उन सबको प्रत्यक्ष देखा और इससे उन दोनोंके मनमें महान् आश्चर्य हुआ॥ २३-२४॥

कामदेव, मेनका, रम्भा, तिलोत्तमा, पुष्पगन्धा, सुकेशी, महाश्वेता, मनोरमा, प्रमद्वरा, गीतज्ञ और सुन्दर हास्य करनेवाली घृताची, चन्द्रप्रभा, कोकिलके समान आलाप करनेवाली सोमा, विद्युन्माला, अम्बुजाक्षी और कांचनमालिनी—इन्हें तथा अन्य भी बहुत-सी सुन्दर अप्सराओंको नर-नारायणने अपने पास उपस्थित देखा। उनकी संख्या सोलह हजार पचास थी, कामदेवकी उस विशाल सेनाको देखकर वे दोनों मुनि चकित हो गये॥ २५—२८॥

उस समय दिव्य वस्त्र तथा आभूषणोंसे विभूषित और दिव्य मालाओंसे सुशोभित देवलोककी वे अप्सराएँ प्रणाम करके सामने खड़ी हो गयीं॥ २९॥

तत्पश्चात् वे अनेक प्रकारके हाव-भाव प्रदर्शित करती हुई छलपूर्वक पृथ्वीतलपर अत्यन्त दुर्लभ एवं कामवासनावर्धक गीत गाने लगीं। भगवान् नर-नारायणने उस गीतको सुना। तदनन्तर उसे सुनकर नारायणमुनिने प्रेमपूर्वक उनसे कहा—तुमलोग आनन्दसे बैठो, मैं तुम्हारा अद्भुत आतिथ्य-सत्कार करूँगा। हे सुन्दरियो! तुमलोग स्वर्गसे यहाँ आयी हो, अतएव हमारी अतिथिस्वरूपा हो॥ ३०—३२॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! उस समय मुनि नारायण अभिमानमें आकर सोचने लगे कि निश्चितरूपसे इन्द्रने हमारे तपमें बाधा डालनेकी इच्छासे इन्हें भेजा है। ये सब बेचारी क्या चीज हैं, मैं अभी अपना तपोबल दिखाता हूँ और इनसे भी अधिक दिव्य रूपवाली नवीन अप्सराएँ उत्पन्न करता हूँ॥ ३३-३४॥

मनमें ऐसा विचार करके उन्होंने हाथसे अपनी जंघापर आघातकर तत्काल एक सर्वांगसुन्दरी स्त्री उत्पन्न कर दी॥ ३५॥

वह सुन्दरी भगवान् नारायणके ऊरुदेश (जंघा)-से उत्पन्न हुई थी, अतः उसका नाम उर्वशी पड़ा। वहाँ उपस्थित वे अप्सराएँ उर्वशीको देखकर अत्यन्त आश्चर्यचकित हो गयीं॥ ३६॥

तदनन्तर उन अप्सराओंकी सेवाके लिये मुनिने तत्काल उतनी ही अन्य अत्यन्त सुन्दर अप्सराएँ उत्पन्न कर दीं। हाथमें विविध प्रकारके उपहार लिये हँसती हुई तथा मधुर गीत गाती हुई उन सब अप्सराओंने उन मुनियोंको प्रणाम किया और वे हाथ जोड़कर उनके समक्ष खड़ी हो गयीं॥ ३७-३८॥

लोगोंको मोहमें डाल देनेवाली वे [इन्द्रप्रेषित] अप्सराएँ तपस्याकी विभूति उस विस्मयकारिणी उर्वशीको देखकर अपनी सुध-बुध खो बैठीं। उन अप्सराओंके मुखकमल आनन्दातिरेकसे खिल उठे तथा उनके मनोहर शरीररूपी वल्लरियोंपर रोमांचरूपी अंकुर निकल आये। वे अप्सराएँ उन दोनों मुनियोंसे कहने लगीं—॥ ३९॥

अहो! हम मूर्ख अप्सराएँ आपकी स्तुति कैसे करें? हम तो आपके धैर्य तथा तपके प्रभावको देखकर परम विस्मयमें पड़ गयी हैं। ऐसा कौन है जो हमलोगोंके कटाक्षरूपी विषसे बुझे बाणोंसे दग्ध न हो गया हो, फिर भी आपके मनको थोड़ी भी व्यथा नहीं हुई॥ ४०॥

अब हमलोगोंको ज्ञात हो गया कि आप दोनों देवस्वरूप मुनि साक्षात् भगवान् विष्णुके परम अंश हैं और सदा ही शम, दम आदि गुणोंके निधान हैं। आप दोनोंकी सेवाके लिये यहाँ हमारा आगमन नहीं हुआ है, अपितु देवराज इन्द्रका कार्य सिद्ध करनेके लिये ही हम सब यहाँ आयी हुई हैं॥ ४१॥

न जाने हमारे किस भाग्यसे आप दोनों मुनिवरोंके दर्शन हुए। हम यह नहीं जान पा रही हैं कि हमारे द्वारा सम्पादित किस संचित पुण्यकर्मका यह फल है। [शाप देनेमें समर्थ होते हुए भी] आप दोनों मुनियोंने हम-जैसे अपराधीजनोंको स्वजन समझकर अपने चित्तको क्षमाशील बनाया और हमें सन्तापरहित कर दिया। विवेकशील महानुभाव तुच्छ फल देनेवाले शापको उपयोगमें लाकर अपने तपका अपव्यय नहीं करते॥ ४२$^{1}/_{2}$॥

व्यासजी बोले—उन अति विनम्र देवसुन्दरियोंका

वचन सुनकर प्रसन्न मुखमण्डलवाले, काम तथा लोभको जीत लेनेवाले तथा अपनी तपस्याके प्रभावसे देदीप्यमान अंगोंवाले वे धर्मपुत्र मुनिवर नर-नारायण प्रेमपूर्वक कहने लगे॥ ४३१/२॥

नर-नारायण बोले—हम दोनों तुम सभीपर अत्यन्त प्रसन्न हैं। तुमलोग अपने वांछित मनोरथ बताओ, हम उसे देंगे। इस सुन्दर नयनोंवाली उर्वशीको भी अपने साथ लेकर तुम सब स्वर्गके लिये प्रस्थान करो। उपहारस्वरूप यह मनोहर युवती अब यहाँसे तुमलोगोंके साथ जाय॥ ४४-४५॥

ऊरुसे प्रादुर्भूत इस उर्वशीको इन्द्रके प्रसन्नार्थ हमने उनको दे दिया है। सभी देवताओंका कल्याण हो और अब सभी लोग इच्छानुसार यहाँसे प्रस्थान करें॥ ४६॥ (अब इसके बाद तुमलोग किसीकी तपस्यामें विघ्न मत उत्पन्न करना।)

देवियाँ बोलीं—हे महाभाग! हे नारायण! हे सुरश्रेष्ठ! परमभक्तिके साथ प्रसन्नतापूर्वक हम सभी अप्सराएँ आपके चरणकमलोंका सांनिध्य प्राप्त कर चुकी हैं; अब हम सब कहाँ जायँ?॥ ४७॥
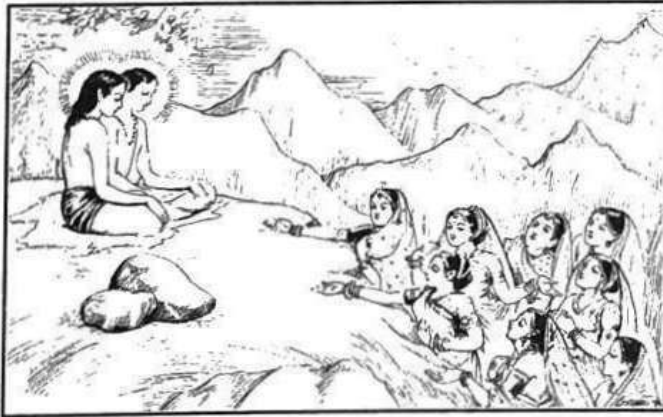
हे नाथ! हे मधुसूदन! हे कमलपत्राक्ष! यदि आप हमारे ऊपर प्रसन्न होकर वांछित वरदान देना चाहते हैं, तो हम अपने मनकी इच्छा प्रकट कर रही हैं॥ ४८॥

हे देवेश! आप हमारे पति बन जायँ। हे परन्तप! हमलोगोंके इसी वरदानको पूर्ण कीजिये। हे जगदीश्वर! आपकी सेवा करनेमें हम सभीको प्रसन्नता होगी॥ ४९॥

आपने जिन उर्वशी आदि सुन्दर नयनोंवाली अन्य रमणियोंको उत्पन्न किया है, वे अब आपकी आज्ञासे स्वर्ग चली जायँ। हे श्रेष्ठ तपस्वियो! हम सोलह हजार पचास अप्सराएँ यहीं रहेंगी और यहाँ हम सब आप दोनोंकी सेवा करेंगी॥ ५०-५१॥

हे देवेश! आप हमारा मनोवांछित वर दीजिये और अपने सत्यव्रतका पालन कीजिये। हे माधव! धर्मज्ञ तथा तत्त्वदर्शी मुनियोंने प्रेमासक्त स्त्रियोंकी आशाको भंग करना हिंसा बताया है। दैवयोगसे हम अप्सराएँ भी स्वर्गसे यहाँ आकर आपदोनोंके प्रेमरससे संसिक्त हो गयी हैं। हे देवेश! आप हमारा त्याग न कीजिये। हे जगत्पते! आप तो सर्वसमर्थ हैं॥ ५२-५३१/२॥

नारायण बोले—इन्द्रियोंको जीतकर मैंने पूरे एक हजार वर्षोंतक यहाँ तपस्या की है, अतएव हे सुन्दरियो! उसे कैसे नष्ट कर दूँ? सुख तथा धर्मका नाश करनेवाले वासनात्मक सुखमें मेरी कोई रुचि नहीं है। पाशविक धर्मके समान सुखमें विवेकशील पुरुष कैसे प्रवृत्त हो सकता है?॥ ५४-५५१/२॥

अप्सराएँ बोलीं—शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध—इन पाँच सुखोंमें स्पर्श-सुख सर्वश्रेष्ठ है। यह आनन्दरसका मूल है और इससे बढ़कर अन्य कोई भी सुख नहीं है। अतः हे महाराज! आप हमारी बात मान लीजिये॥ ५६-५७॥

पूर्ण आनन्द प्राप्त करते हुए आप गन्धमादन-पर्वतपर विचरण कीजिये। यदि आप स्वर्ग-प्राप्तिकी आकांक्षा रखते हैं तो यह निश्चय जान लीजिये कि वह स्वर्ग इस गन्धमादनसे अच्छा नहीं है। अतः हम सभी अप्सराओंको अंगीकार करके आप इस दिव्य स्थानमें विहार कीजिये॥ ५८-५९॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत चतुर्थ स्कन्धका 'अप्सराओंका नारायणके समीप प्रार्थना करना' नामक छठा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ६॥

सातवाँ अध्याय

अप्सराओंके प्रस्तावसे नारायणके मनमें ऊहापोह और नरका उन्हें समझाना तथा अहंकारके कारण प्रह्लादके साथ हुए युद्धका स्मरण कराना

व्यासजी बोले—उन देवांगनाओंका वचन सुनकर धर्मपुत्र प्रतापी नारायण अपने मनमें विचार करने लगे कि इस समय मुझे क्या करना चाहिये? यदि मैं इस समय विषयभोगमें लिप्त होता हूँ तो मुनिसमुदायमें उपहासका पात्र बनूँगा। अहंकारसे ही मुझे यह दु:ख प्राप्त हुआ है; इसमें कोई संशय नहीं। धर्मके विनाशका मूल तथा प्रधान कारण अहंकार है। अत: महात्माओंने ही उसे संसाररूपी वृक्षका मूल कहा है॥ १-२$^{१}/_{२}$ ॥

इन वारांगनाओंके समूहको आया हुआ देखकर मैं मौन धारणकर स्थित नहीं रह सका और प्रसन्नतापूर्वक मैंने इनसे वार्तालाप किया, इसीलिये मैं दु:खका भाजन हुआ। अपने धर्मका व्यय करके मैंने उन उर्वशी आदि स्त्रियोंकी व्यर्थ रचना की। ये कामार्त अप्सराएँ मेरी तपस्यामें विघ्न डालनेमें प्रवृत्त हैं। मकड़ियोंके द्वारा बनाये गये जालकी भाँति अब अपने ही द्वारा उत्पादित सुदृढ़ जालमें मैं बुरी तरह फँस गया हूँ, अब मुझे क्या करना चाहिये? यदि चिन्ता छोड़कर इन स्त्रियोंको अस्वीकार कर देता हूँ तो अपना मनोरथ निष्फल हुआ पाकर ये भ्रष्ट स्त्रियाँ मुझे शाप देकर चली जायँगी। तब इनसे छुटकारा पाकर मैं निर्जन स्थानमें कठोर तप करूँगा। अतएव क्रोध उत्पन्न करके मैं इनका परित्याग कर दूँगा॥ ३—७$^{१}/_{२}$ ॥

व्यासजी बोले—मुनि नारायणने ऐसा निश्चय करके अपने मनमें विचार किया कि सुख-प्राप्तिके समस्त साधनोंमें [अहंकारके बाद] यह क्रोध दूसरा प्रबल शत्रु है, जो अत्यन्त कष्ट प्रदान करता है। यह क्रोध संसारमें काम तथा लोभसे भी अधिक भयंकर है। क्रोधके वशीभूत प्राणी प्राणघातक हिंसातक कर डालता है, जो (हिंसा) सभी प्राणियोंके लिये दु:खदायिनी तथा नरकरूपी बगीचेकी बावलीके तुल्य है। जिस प्रकार वृक्षोंके परस्पर घर्षणसे उत्पन्न अग्नि वृक्षको ही जला डालती है, उसी प्रकार शरीरसे उत्पन्न भीषण क्रोध उसी शरीरको जला डालता है॥ ८—११$^{१}/_{२}$ ॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार खिन्नमनस्क होकर चिन्तन करते हुए अपने भाई नारायणसे उनके लघु भ्राता धर्मपुत्र नरने यह तथ्यपूर्ण वचन कहा॥ १२$^{१}/_{२}$ ॥

नर बोले—हे नारायण! हे महाभाग! हे महामते! आप क्रोधका त्याग कीजिये और शान्तभावका आश्रय लेकर इस प्रबल अहंकारका नाश कीजिये; क्योंकि पूर्व समयमें इसी अहंकारके दोषसे हमदोनोंका तप विनष्ट हो गया था॥ १३-१४॥

अहंकार तथा क्रोध—इन्हीं दोनों भावोंके कारण हमलोगोंको असुरराज प्रह्लादके साथ एक हजार दिव्य वर्षोंतक अत्यन्त अद्भुत युद्ध करना पड़ा था। हे सुरश्रेष्ठ! उस युद्धमें हम दोनोंको महान् क्लेश मिला था। अतएव हे मुनीश्वर! आप क्रोधका परित्याग करके शान्त हो जाइये॥ १५-१६॥ (मुनियोंने शान्तिको तपस्याका मूल बतलाया है।)

व्यासजी बोले—उनकी यह बात सुनकर धर्मपुत्र नारायण शान्त हो गये॥ १६$^{१}/_{२}$ ॥

जनमेजय बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! मेरे मनमें यह सन्देह उत्पन्न हो गया है कि शान्त स्वभाववाले विष्णुभक्त महात्मा प्रह्लादने पूर्वकालमें यह युद्ध क्यों किया और ऋषि नर-नारायणने भी संग्राम क्यों किया?॥ १७-१८॥

धर्मपुत्र नर-नारायण—ये दोनों ही अत्यन्त शान्त स्वभाववाले तपस्वी थे। ऐसी स्थितिमें दैत्यपुत्र प्रह्लाद तथा उन दोनों ऋषियोंका सम्पर्क कैसे हुआ?॥ १९॥

प्रह्लाद भी अत्यन्त धर्मपरायण, ज्ञानसम्पन्न तथा विष्णुभक्त थे, तब महात्मा प्रह्लादने उन ऋषियोंके साथ युद्ध क्यों किया?॥ २०॥

तपस्वी नर-नारायण भी प्रह्लादकी ही भाँति सात्त्विक भावसे सम्पन्न थे। उन दोनों ऋषियों तथा प्रह्लादमें यदि परस्पर वैर उत्पन्न हो गया तो फिर उनकी तपस्या तथा धर्माचरणके पालनमें केवल परिश्रम ही उनके हाथ लगा।

उस सत्ययुगमें भी उनके जप तथा घोर तप कहाँ चले गये थे?॥ २१-२२॥

वैसे वे महात्मा भी क्रोध और अहंकारसे भरे अपने मनको वशमें नहीं कर सके। अहंकाररूपी बीजके अंकुरित हुए बिना क्रोध तथा मात्सर्य उत्पन्न नहीं होते हैं। यह निश्चित है कि काम-क्रोध आदि अहंकारसे ही उत्पन्न होते हैं। हजार करोड़ वर्षोंतक घोर तपस्या करनेके पश्चात् भी यदि अहंकारका अंकुरण हुआ तो फिर सब कुछ निरर्थक हो जाता है। जिस प्रकार सूर्योदय होनेपर अन्धकार नहीं ठहरता, उसी प्रकार अहंकाररूपी अंकुरके समक्ष पुण्य नहीं ठहर पाता है॥ २३—२५ १/२ ॥

हे महाभाग! प्रह्लादने भी भगवान् नर-नारायणके साथ संग्राम किया, जिसके कारण पृथ्वीपर उनके द्वारा अर्जित समस्त पुण्य व्यर्थ हो गया॥ २६ १/२ ॥

शान्त स्वभाववाले नर-नारायण भी अपनी कठिन तपस्या त्यागकर यदि युद्ध करनेमें तत्पर हुए तो फिर उनकी शान्तिवृत्ति तथा पुण्यशीलताका क्या महत्त्व रहा?॥ २७ १/२ ॥

हे मुने! जब सात्त्विक भावोंसे सम्पन्न इस प्रकारके वे दोनों महात्मा भी अहंकारपर विजय प्राप्त करनेमें असमर्थ रहे, तब मेरे-जैसे व्यक्तियोंके लिये अहंकार नष्ट करनेकी बात ही क्या है? इस त्रिलोकमें ऐसा कोई भी प्राणी नहीं है जो अहंकारसे मुक्त हो, इसी तरह ऐसा कोई भी न तो हुआ है और न होगा, जो अहंकारसे पूर्णतया मुक्त हो॥ २८-२९ १/२ ॥

काष्ठ तथा लोहेकी जंजीरमें बँधा हुआ व्यक्ति बन्धनमुक्त हो सकता है, किंतु अहंकारसे बँधा व्यक्ति कभी भी नहीं छूट सकता। यह सम्पूर्ण चराचर जगत् अहंकारसे व्याप्त है॥ ३०-३१॥

अहंकारी मनुष्य मल-मूत्रसे प्रदूषित इस संसारमें चक्कर काटता रहता है, तो फिर इस मोहाच्छन्न संसारमें ब्रह्मज्ञानकी कल्पना ही कहाँ रह गयी?॥ ३२॥

हे सुव्रत! मुझे तो मीमांसकोंका कर्म-सिद्धान्त ही उचित प्रतीत होता है। हे मुने! जब महान्-से-महान् लोग भी काम, क्रोध आदिसे सदा ग्रस्त रहते हैं, तब हे मुनिश्रेष्ठ! इस कलियुगमें मुझ-जैसे लोगोंकी बात ही क्या?॥ ३३ १/२ ॥

व्यासजी बोले—हे भारत (जनमेजय)! कारणसे कार्य भिन्न कैसे हो सकता है? कड़ा तथा कुण्डल आकारमें भिन्न होते हुए भी स्वर्णके सदृश होते हैं। चराचरसहित समस्त ब्रह्माण्ड अहंकारसे उत्पन्न हुआ है। [धागेसे निर्मित होनेके कारण] वस्त्र उसके अधीन कहा गया है, अतएव वस्त्ररूपी कार्य तन्तुरूपी कारणसे पृथक् कैसे रह सकता है? जब मायाके तीनों गुणोंद्वारा ही तिनकेसे लेकर पर्वततक स्थावर-जंगमात्मक यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड विरचित है, तब सृष्टिके विषयमें खेद किस बातका? हे नृपश्रेष्ठ! ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव भी अहंकारसे मोहित होकर इस अत्यन्त अगाध संसारमें भ्रमण करते रहते हैं। वसिष्ठ, नारद आदि परम ज्ञानी मुनिगण भी अहंकारके वशवर्ती होकर इस संसारमें बार-बार आते-जाते रहते हैं। हे नृपश्रेष्ठ! तीनों लोकोंमें ऐसा कोई भी देहधारी नहीं है जो मायाके इन गुणोंसे मुक्त होकर शान्ति धारण करता हुआ आत्मसुखका अनुभव कर सके। हे नृपश्रेष्ठ! अहंकारसे उत्पन्न काम, क्रोध, लोभ तथा मोह किसी भी देहधारी प्राणीको नहीं छोड़ते॥ ३४—४० १/२ ॥

वेद-शास्त्रोंका अध्ययन, पुराणोंका पर्यालोचन, तीर्थभ्रमण, दान, ध्यान तथा देव-पूजन करके भी विषयासक्त प्राणी चोरोंकी भाँति सभी कर्म करता रहता है। काम, मोह और मदसे युक्त होनेके कारण प्राणी आरम्भमें कुछ विचार ही नहीं करता॥ ४१—४२ १/२ ॥

हे कुरुनन्दन! सत्ययुग, त्रेता तथा द्वापरमें भी धर्मका विरोध किया गया था, तो आज कलियुगमें उसकी बात ही क्या! इसमें तो द्रोह, स्पर्धा, लोभ तथा क्रोध सर्वदा ही विद्यमान हैं। संसार ऐसे ही स्वभाववाला है; इस विषयमें सन्देह नहीं करना चाहिये। संसारमें मत्सरहीन साधु पुरुष विरले ही होते हैं। क्रोध तथा ईर्ष्यापर विजय प्राप्त कर लेनेवाले तो दृष्टान्तमात्रके लिये मिलते हैं॥ ४३—४५ १/२ ॥

राजा बोले—वे लोग धन्य तथा पुण्यात्मा हैं, जिन्होंने मद तथा मोहसे छुटकारा प्राप्त कर लिया है। जो

सदाचारपरायण तथा जितेन्द्रिय हैं, उन्होंने मानो तीनों लोकोंपर विजय प्राप्त कर ली है। अपने महात्मा पिताके पापका स्मरण करके मैं दुःखित रहता हूँ। उन्होंने बिना किसी अपराधके एक तपस्वीके गलेमें मरा हुआ सर्प डाल दिया। अतः हे मुनिवर! अब मेरे आगे उनकी क्या गति होगी? बुद्धिके मोहग्रस्त हो जानेपर क्या कार्य हो जायगा, यह मैं नहीं जानता। मूर्ख मनुष्य केवल मधु देखता है, किंतु उसके पास ही विद्यमान [गहरे] प्रपातकी ओर नहीं निहारता। वह निन्दनीय कर्म करता रहता है और नरकसे नहीं डरता॥ ४६—४९१/२॥

[हे मुने!] अब आप मुझे विस्तारपूर्वक यह बताइये कि पूर्वकालमें प्रह्लादके साथ नर-नारायणका घोर युद्ध क्यों हुआ था? प्रह्लाद पाताललोकसे नर-नारायणके पास कैसे पहुँचे, यह भी मुझे बताइये। शान्त स्वभाववाले मुनिश्रेष्ठ नर-नारायण तो महान् तपस्वी थे और वे सारस्वत महातीर्थ पवित्र बदरिकाश्रममें रहते थे; तब हे मानद! उन दोनों तपस्वियोंने प्रह्लादके साथ युद्ध किस कारणसे किया?॥ ५०—५२१/२॥

प्रायः धन अथवा स्त्रीके लिये लोगोंमें परस्पर शत्रुता होती है। तब हर प्रकारकी इच्छाओंसे रहित उन दोनोंने वह भीषण युद्ध क्यों किया और उन नर-नारायणको सनातन देवता जानते हुए भी महात्मा प्रह्लादने उनके साथ युद्ध क्यों किया? हे ब्रह्मन्! मैं विस्तारपूर्वक इसका कारण सुनना चाहता हूँ॥ ५३—५५॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत चतुर्थ स्कन्धका 'अहंकारावर्तनवर्णन' नामक सातवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ७॥

आठवाँ अध्याय

व्यासजीद्वारा राजा जनमेजयको प्रह्लादकी कथा सुनाना और इस प्रसंगमें च्यवनऋषिके पाताललोक जानेका वर्णन

सूतजी बोले—परीक्षित्-पुत्र राजा ज़नमेजयके यह पूछनेपर सत्यवतीसुत विप्र व्यासजीने विस्तारपूर्वक सारा वृत्तान्त बताया॥ १॥

धर्मपरायण राजा जनमेजय भी उत्तरापुत्र अपने पिता परीक्षित्की कुत्सित चेष्टाको सोच-सोचकर अत्यन्त दुःखी हो गये थे॥ २॥

विप्रको अपमानित करनेके परिणामस्वरूप पापके कारण यमलोकको प्राप्त अपने उन पिताके उद्धारके लिये वे निरन्तर अपने मनमें अनेक प्रकारके उपाय सोचा करते थे॥ ३॥

हे मुनीश्वरो! जब पुत्र अपने पिताकी 'पुम्' नामक नरकसे रक्षा कर देता है, तभी उसका 'पुत्र' नाम सार्थक होता है॥ ४॥

जब उन्हें यह विदित हुआ कि एक महलकी ऊपरी मंजिलमें स्नान-दान किये बिना ही विप्रके शापवश सर्प-दंशसे महाराज परीक्षित्की मृत्यु हुई थी, तब अपने पिताकी दुर्गति सुनकर वे राजा जनमेजय अत्यन्त दुःखित हुए और शोकसे सन्तप्त तथा भयसे व्याकुल हो उठे॥ ५-६॥

इसके अनन्तर निष्पाप राजा जनमेजयने अपने घरपर स्वतः आये हुए महामुनि व्याससे नर-नारायणकी अति विस्तृत इस कथाके विषयमें पूछा॥ ७॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! जब नृसिंहभगवान्‌के द्वारा उस भयानक हिरण्यकशिपुका वध हो गया, तब प्रह्लाद नामक उसके पुत्रका राज्याभिषेक किया गया॥ ८॥

देवताओं तथा ब्राह्मणोंका पूजन-सम्मान करनेवाले उस दैत्यराज प्रह्लादके शासनकालमें पृथ्वीलोकके सभी राजागण श्रद्धापूर्वक यज्ञादिका अनुष्ठान करने लगे॥ ९॥

ब्राह्मणलोग तपश्चरण, धर्मानुष्ठान तथा तीर्थाटनमें तत्पर हो गये; वैश्यसमुदाय अपने-अपने व्यावसायिक कार्योंमें लग गये तथा शूद्रगण सेवापरायण हो गये॥ १०॥

नृसिंहभगवान्‌ने उस दैत्यराज प्रह्लादको पाताललोकके राजसिंहासनपर स्थापित कर दिया था और वे वहींपर

प्रजापालनमें तत्पर होकर राज्य करने लगे॥ ११॥

एक बार भृगुके पुत्र महातपस्वी च्यवन नर्मदामें स्नान करनेके लिये व्याहृतीश्वर नामक तीर्थमें पहुँचे॥ १२॥

वहाँपर रेवा नामक महानदीको देखकर वे उसमें उतरने लगे। इसी बीच एक भयंकर विषधर सर्पने उतरते हुए मुनिको पकड़ लिया॥ १३॥

तदनन्तर उन महामुनि च्यवनको वह नागराज खींचकर पाताललोकमें ले गया। तब उन भयाक्रान्त मुनिने मन-ही-मन देवाधिदेव जनार्दन विष्णुका स्मरण किया॥ १४॥

मुनि च्यवनके द्वारा हृदयसे कमलनयन भगवान् विष्णुका स्मरण किये जानेपर वह भयंकर सर्प विषहीन हो गया। अतएव रसातलमें ले जाये गये उन मुनिको कष्ट नहीं हुआ॥ १५॥

तत्पश्चात् अत्यन्त दुःखी तथा सशंकित उस सर्पने यह सोचकर उन्हें छोड़ दिया कि ये महातपस्वी मुनि क्रोधित होकर कहीं मुझे शाप न दे दें॥ १६॥

वहाँकी नागकन्याओंद्वारा पूजित होते हुए मुनिश्रेष्ठ च्यवन पाताललोकमें विचरण करने लगे। वे नागों तथा दानवोंके विशाल पुरमें भी आने-जाने लगे॥ १७॥

एक बार उन धर्मानुरागी दैत्यराज प्रह्लादने अपनी श्रेष्ठ पुरीमें विचरण करते हुए उन भृगुपुत्र मुनि च्यवनको देखा॥ १८॥

मुनिको देखकर दैत्यराज प्रह्लादने उनकी पूजा की और उनसे पूछा कि पाताललोकमें आपके आगमनका क्या कारण है, आप मुझे बताइये?॥ १९॥

हे द्विजश्रेष्ठ! क्या दैत्योंके प्रति द्वेष-भाव रखनेवाले इन्द्रने मेरे राज्यके विषयमें जानकारीके लिये आपको यहाँ भेजा है? आप मुझे सच-सच बताइये॥ २०॥

च्यवन बोले—हे राजन्! इन्द्रसे मेरा क्या प्रयोजन है, जो कि वे मुझे यहाँ भेजें और मैं उनके दूतका कार्य करता हुआ आपके नगरमें घूमता फिरूँ?॥ २१॥

हे दैत्यराज! आप मुझे महर्षि भृगुका धर्मनिष्ठ तथा ज्ञाननेत्रसम्पन्न पुत्र च्यवन जानिये। आप मेरे प्रति इन्द्रके द्वारा भेजे गये किसी दूतकी शंका मत करें॥ २२॥

हे नृपश्रेष्ठ! मैं नर्मदानदीमें स्नान करनेके लिये पुण्यतीर्थमें गया था। मैं नदीमें उतरा ही था कि एक विशाल सर्पने मुझे पकड़ लिया॥ २३॥

मेरे द्वारा भगवान् विष्णुका स्मरण करनेसे वह सर्प विषहीन हो गया और विष्णुस्मरणके प्रभावसे मैं उस नागसे मुक्त हो गया॥ २४॥

हे राजेन्द्र! यहाँ आनेसे मुझे आपका दर्शन प्राप्त हो गया। हे दैत्यराज! आप भगवान् विष्णुके भक्त हैं और मुझे भी उनका भक्त ही समझिये॥ २५॥

व्यासजी बोले—महर्षि च्यवनका मधुर वचन सुनकर हिरण्यकशिपुपुत्र प्रह्लाद अत्यन्त प्रेमपूर्वक नानाविध तीर्थोंके विषयमें उनसे पूछने लगे॥ २६॥

प्रह्लाद बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! पृथ्वी, पाताल तथा आकाशमें कौन-कौनसे पवित्र तीर्थ हैं? उनके सम्बन्धमें विस्तारपूर्वक मुझे बताइये॥ २७॥

च्यवन बोले—हे राजन्! मन, वचन तथा कर्मसे शुद्ध प्राणियोंके लिये तो पद-पदपर तीर्थ हैं, किंतु दूषित मनवाले प्राणियोंके लिये गंगा भी मगधसे अधिक अपवित्र हो जाती हैं॥ २८॥

यदि मनुष्यका मन शुद्ध तथा पापरहित हो गया तो उसके लिये सभी तीर्थ पवित्र हो जाते हैं। गंगाके तटपर तो सर्वत्र नानाविध नगर बसे हुए हैं। इसके अतिरिक्त अन्य भी प्रायः सभी गोष्ठ (गायोंका बाड़ा), बाजार, गाँव तथा अनेक कस्बे वहाँ बसे हैं। हे दैत्यराज! निषादों, धीवरों, हूणों, बंगों तथा खस आदि म्लेच्छ जातियोंका निवास भी वहाँ रहता है। हे दैत्येन्द्र! वे सदैव ब्रह्मसदृश गंगाजलका पान करते हैं और अपनी इच्छासे त्रिकाल गंगा-स्नान भी करते हैं। किंतु हे धर्मात्मन्! उनमेंसे कोई एक भी शुद्ध अन्तःकरणवाला नहीं हो पाता। तब नानाविध वासनाओंसे प्रदूषित चित्तवाले लोगोंके लिये तीर्थका क्या फल हो सकता है?॥ २९—३३॥

हे राजन्! आप यह निश्चित समझिये कि मन ही इसमें प्रमुख कारण है; इसके अतिरिक्त दूसरा कुछ नहीं। अतः शुद्धिकी इच्छा रखनेवाले प्राणीको निरन्तर अपने मनको शुद्ध बनाये रखना चाहिये॥ ३४॥

तीर्थमें निवास करनेवाला प्राणी भी आत्मवंचनाके

कारण महापापी हो जाता है। वहाँ किया गया पाप अनन्तगुना हो जाता है॥ ३५॥

जिस प्रकार इन्द्रवारुणका फल पक जानेपर भी मीठा नहीं होता, उसी प्रकार दूषित भावनाओंवाला मनुष्य तीर्थमें करोड़ों बार स्नान करके भी पवित्र नहीं हो पाता॥ ३६॥

अत: कल्याणकी कामना करनेवाले पुरुषको सर्वप्रथम अपने मनको शुद्ध कर लेना चाहिये। मनके शुद्ध हो जानेपर द्रव्यशुद्धि स्वतः हो जाती है; इसके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है॥ ३७॥

उसी प्रकार आचार-शुद्धि भी आवश्यक है; इसके अनन्तर ही तीर्थयात्राकी पूर्ण सिद्धि होती है। इसके विपरीत उसका किया हुआ सारा कर्म उसी क्षण व्यर्थ हो जाता है॥ ३८॥

(तीर्थमें पहुँचकर नीच प्राणीके संसर्गका सर्वदाके लिये त्याग कर देना चाहिये।) कर्म तथा बुद्धिसे प्राणियोंके प्रति सदा दयाभाव रखना चाहिये। फिर भी हे राजेन्द्र! यदि आप पूछते ही हैं तो मैं आपको प्रमुख तीर्थोंके विषयमें बता रहा हूँ॥ ३९॥

प्रथम श्रेणीका तीर्थ पुण्यमय नैमिषारण्य है। इसी प्रकार चक्रतीर्थ, पुष्करतीर्थ तथा अन्य भी अनेक तीर्थ पृथ्वीलोकमें हैं, जिनकी संख्या निश्चित नहीं है। हे नृपश्रेष्ठ! और भी बहुत-से पवित्र स्थान हैं॥ ४०१/२॥

व्यासजी बोले—च्यवनऋषिका वचन सुनकर राजा प्रह्लाद नैमिषारण्यतीर्थ जानेको तैयार हो गये। हर्षातिरेकसे परिपूर्ण हृदयवाले प्रह्लादने अन्य दैत्योंको भी चलनेकी आज्ञा दी॥ ४११/२॥

प्रह्लाद बोले—हे महाभाग दैत्यगण! आपलोग उठिये, हम सभी लोग आज नैमिषारण्य चलेंगे। वहाँ हमलोग पीताम्बर धारण करनेवाले कमलनयन भगवान् अच्युत (विष्णु)-का दर्शन करेंगे॥ ४२१/२॥

व्यासजी बोले—विष्णुभक्त प्रह्लादके ऐसा कहनेपर वे समस्त दानव परम प्रसन्नतापूर्वक उनके साथ पाताललोकसे निकल पड़े। उन महाबली दैत्यों तथा दानवोंने एक साथ नैमिषारण्य पहुँचकर आनन्दपूर्वक स्नान किया। दैत्योंके साथ वहाँके तीर्थोंमें भ्रमण करते हुए प्रह्लादने स्वच्छ जलसे परिपूर्ण तथा महापुण्यदायिनी सरस्वतीनदीका दर्शन किया। हे नृपश्रेष्ठ! उस पवित्र तीर्थमें सरस्वतीके जलमें स्नान करनेसे महात्मा प्रह्लादका मन प्रसन्न हो गया। दैत्येन्द्र प्रह्लादने उस शुभ तथा परम पावन तीर्थमें प्रसन्न मनसे स्नान, दान आदि कर्म विधिवत् सम्पन्न किये॥ ४३—४८॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत चतुर्थ स्कन्धका 'प्रह्लादतीर्थयात्रावर्णन' नामक आठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ८॥

नौवाँ अध्याय

प्रह्लादजीका तीर्थयात्राके क्रममें नैमिषारण्य पहुँचना और वहाँ नर-नारायणसे उनका घोर युद्ध, भगवान् विष्णुका आगमन और उनके द्वारा प्रह्लादको नर-नारायणका परिचय देना

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] इस प्रकार तीर्थके कृत्य सम्पन्न करते हुए हिरण्यकशिपुपुत्र प्रह्लादको अपने समक्ष एक विशाल छायासम्पन्न वटवृक्ष दिखायी पड़ा॥ १॥

वहाँपर प्रह्लादने गीधोंके पंखोंसे सुसज्जित, नुकीले तथा शिलापर घर्षित करके अत्यन्त दीप्त एवं उज्ज्वल बनाये गये अनेक प्रकारके बाण देखे॥ २॥

उन्हें देखकर प्रह्लादने मनमें सोचा कि इस परम पवित्र तीर्थमें ऋषियोंके पुण्यमय आश्रममें ये बाण किसके हैं?॥ ३॥

इस प्रकार चिन्तन करते हुए प्रह्लादने कृष्णमृगचर्म धारण किये हुए तथा सिरपर विशाल जटाओंसे सुशोभित धर्मपुत्र नर-नारायण मुनियोंको देखा॥ ४॥

उनके आगे धनुर्वेदोक्त लक्षणोंसे सम्पन्न चमकीले शार्ङ्ग तथा आजगव नामक दो धनुष तथा दो अक्षय तरकस

रखे हुए थे॥ ५॥

उन महाभाग धर्मपुत्र नर-नारायण ऋषियोंको उस समय ध्यानावस्थित देखकर क्रोधसे लाल आँखें किये हुए दैत्याधिपति असुररक्षक प्रह्लादने उनसे कहा—आप दोनोंने धर्मको नष्ट करनेवाला यह कैसा पाखण्ड कर रखा है?॥ ६-७॥

इस प्रकारकी घोर तपस्या तथा धनुष-धारण करना—ऐसा तो इस संसारमें न कभी सुना गया और न देखा ही गया॥ ८॥

ये तो परस्पर विरोधी स्थितियाँ हैं। कलियुगके लिये यह विरोधभाव भला सत्ययुगमें किस प्रकार उचित है? ब्राह्मणके लिये तो तपश्चरण ही उचित है, उन्हें धनुष-धारण करनेकी क्या आवश्यकता है?॥ ९॥

कहाँ तो मस्तकपर जटा धारण करना और कहाँ यह तरकस रखना—ये दोनों बातें आडम्बरमात्र हैं। दिव्य भावनावाले आप दोनोंके लिये धर्मका आचरण ही उचित है॥ १०॥

व्यासजी बोले—हे भारत! प्रह्लादका यह वचन सुनकर मुनिवर नरने कहा—हे दैत्येन्द्र! हम दोनोंकी तपस्याके विषयमें आप यह व्यर्थ चिन्ता क्यों कर रहे हैं?॥ ११॥

सामर्थ्यसम्पन्न हो जानेपर व्यक्ति जो कुछ करता है, उसका वह सब कुछ पूर्ण हो जाता है। हे मन्दबुद्धि! हम इन दोनों प्रकारके कार्योंको [एक साथ] करनेमें समर्थ हैं; इसके लिये हम लोकमें प्रसिद्ध हैं॥ १२॥

युद्ध तथा तपस्या दोनोंमें हम समान रूपसे समर्थ हैं। फिर इस विषयमें आप पूछकर क्या करेंगे? आप इच्छानुसार अपने रास्ते चले जाइये, यहाँ व्यर्थकी बात क्यों कर रहे हैं?॥ १३॥

मोहग्रस्त होनेके कारण आप अत्यन्त कठिनतासे प्राप्त किये जानेवाले ब्रह्मतेजको नहीं जानते। सुखकी कामना करनेवाले प्राणियोंको ब्राह्मणोंसे बहस नहीं करनी चाहिये॥ १४॥

प्रह्लाद बोले—आप दोनों तपस्वी मन्द बुद्धिवाले हैं और व्यर्थ ही अहंकारके वशवर्ती हो गये हैं। धर्मसेतुका प्रवर्तन करनेवाले मुझ दैत्येन्द्र प्रह्लादके रहते इस पवित्र तीर्थमें इस प्रकारका अधर्मपूर्ण आचरण उचित नहीं है। हे तपोधन! आपमें कितनी शक्ति है, इसे युद्धमें अभी प्रदर्शित कीजिये॥ १५-१६॥

व्यासजी बोले—तब प्रह्लादका वचन सुनकर ऋषि नरने उनसे कहा—यदि आपकी ऐसी ही धारणा है तो मेरे साथ इसी समय युद्ध कर लीजिये। हे असुराधम! आज मैं तुम्हारा सिर विदीर्ण कर डालूँगा (इसके बाद युद्ध करनेकी तुम्हारी कभी इच्छा नहीं होगी)॥ १७ $^{1}/_{2}$॥

व्यासजी बोले—तब ऋषि नरका वचन सुनकर दैत्यपति प्रह्लाद कुपित हो उठे। बलशाली उन प्रह्लादने प्रतिज्ञा की कि जिस किसी भी उपायसे मैं इन दोनों जितेन्द्रिय तथा परम तपस्वी नर-नारायण ऋषियोंको जीतकर रहूँगा॥ १८-१९ $^{1}/_{2}$॥

व्यासजी बोले—ऐसा वचन बोलकर दैत्य प्रह्लादने धनुष उठाकर और शीघ्रतापूर्वक उसे खींचकर प्रत्यंचाकी टंकार की। हे राजन्! मुनि नरने भी धनुष लेकर शिलापर घिसकर तेज किये हुए अनेक तीक्ष्ण बाण प्रह्लादके ऊपर क्रोधपूर्वक छोड़े॥ २०—२२॥

दैत्यराज प्रह्लादने अपने सुनहले पंखोंवाले बाणोंसे शीघ्र ही उन बाणोंको आते ही काट डाला। तब नर अपने द्वारा छोड़े गये बाणोंको प्रह्लादद्वारा छिन्न किया गया देखकर अत्यन्त कोपाविष्ट हो शीघ्रतासे उनपर अन्य बाणोंसे प्रहार करने लगे॥ २३॥

दैत्यपति प्रह्लादने उन बाणोंको भी अपने द्रुतगामी बाणोंसे काटकर उन मुनिराज नरके वक्षःस्थलपर प्रहार किया। नरने भी क्रुद्ध होकर अपने तीव्रगामी पाँच बाणोंसे दैत्येन्द्र प्रह्लादके बाहुदेशपर प्रहार किया॥ २४॥
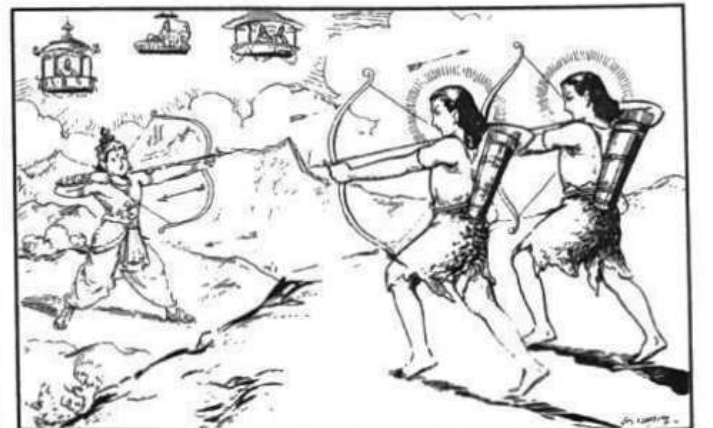
इन्द्रसहित सभी देवगण उन दोनोंका युद्ध देखनेके लिये विमानोंमें बैठकर आकाशमण्डलमें स्थित हो गये। वे कभी समरांगणमें विराजमान नरके पराक्रमकी प्रशंसा करते थे और फिर कभी दैत्यपति प्रह्लादके पराक्रमकी प्रशंसा करने लगते थे॥ २५॥

धनुष धारण किये हुए दैत्यराज प्रह्लाद इस प्रकार बाणोंकी वर्षा कर रहे थे, मानो मेघ जल बरसा रहे हों। [ऋषि नर भी अपना] अप्रतिम शार्ङ्ग धनुष लेकर तीक्ष्ण तथा सुनहले पंखवाले बाण छोड़ रहे थे॥ २६॥

हे राजन्! इस प्रकार एक-दूसरेको जीतनेके इच्छुक उन ऋषि नर तथा दैत्यराज प्रह्लादके बीच भीषण युद्ध होने लगा। आकाशमार्गमें स्थित वे [देवतागण] प्रसन्नचित्त होकर उनके ऊपर दिव्य पुष्पोंकी वर्षा कर रहे थे॥ २७॥

अचानक प्रह्लाद कुपित हो उठे और उन्होंने अति तीव्रगामी बाण ऋषि नारायणपर छोड़े। धर्मपुत्र नारायणने शीघ्र ही उन बाणोंको अपने धनुषसे छोड़े गये अत्यन्त तीक्ष्ण बाणोंसे खण्ड-खण्ड कर डाला॥ २८॥

दैत्यराज प्रह्लाद समरांगणमें डटकर खड़े अतीव पराक्रमी तथा सनातन धर्मपुत्र नारायणपर अपने अति तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे। नारायणने भी सानपर चढ़ाकर तेज किये गये अपने वेगपूर्वक छोड़े गये बाणोंके द्वारा सम्मुख खड़े दैत्यपति प्रह्लादको अत्यन्त भीषण चोट पहुँचायी। उस युद्धका अवलोकन करनेके इच्छुक देवताओं तथा दैत्योंका एक विशाल समूह अपने-अपने पक्षका जयघोष करते हुए आकाशमें एकत्र हो गया॥ २९-३०१/२॥

दोनों पक्षोंकी बाणवर्षासे आकाशके आच्छादित हो जानेपर उस समय इतना घना अन्धकार हो गया कि दिन भी रातके समान प्रतीत होने लगा। इससे अति आश्चर्यचकित होकर देवता तथा दैत्य परस्पर कहने लगे कि यह अत्यन्त भयावह संग्राम हो रहा है। ऐसा भीषण युद्ध तो पहले कभी नहीं देखा गया। बड़े-बड़े देवर्षि, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर, नाग, विद्याधर तथा चारणगण इस युद्धको देखकर अत्यन्त विस्मयमें पड़ गये॥ ३१—३३१/२॥

उस युद्धका अवलोकन करनेके लिये मुनि नारद तथा पर्वत भी आये हुए थे। नारदमुनिने पर्वतसे कहा—ऐसा घोर संग्राम पहले नहीं हुआ था; तारकासुरयुद्ध, वृत्रासुरका युद्ध यहाँतक कि मधु-कैटभका युद्ध भी वैसा नहीं हुआ था, जैसा कि इस समय नारायणके द्वारा किया गया। प्रह्लाद अत्यन्त वीर हैं जो कि वे अद्भुत कर्मवाले सिद्धिसम्पन्न नारायणके साथ यह बराबरीका युद्ध कर रहे हैं॥ ३४—३६१/२॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार प्रतिदिन तथा प्रतिरात्रि बार-बार युद्ध करते हुए वे दोनों दैत्य तथा तपस्वी घोर संग्राममें तत्पर रहे। नारायणने एक बाणसे प्रह्लादका धनुष काट दिया। तब प्रह्लादने तत्काल दूसरा धनुष ले लिया। नारायणने हस्तकौशल दिखाते हुए पुनः बड़ी शीघ्रतासे दूसरा बाण चलाकर उस धनुषको भी बीचोबीचसे काट डाला। इस प्रकार नारायण बार-बार धनुष काटते जाते थे और प्रह्लाद दूसरा धनुष लेते जाते थे। अन्तमें नारायणने कुपित होकर अपने बाणोंसे उसके धनुषको शीघ्रतासे पुनः काट दिया। उस धनुषके भी कट जानेपर दैत्यराज प्रह्लादने अपना परिघ उठा लिया और अत्यन्त क्रोधित होकर बड़ी फुर्तीसे धर्मपुत्र नारायणकी भुजाओंपर प्रहार किया॥ ३७—४११/२॥

प्रतापी नारायणने अपनी ओर आते हुए उस परिघको नौ बाणोंसे काट दिया और दस बाणोंसे प्रह्लादपर चोट की॥ ४२१/२॥

तत्पश्चात् दैत्येन्द्र प्रह्लादने पूर्णतः लोहमयी सुदृढ़ गदा उठाकर क्रोधपूर्वक नारायणमुनिकी जाँघपर शीघ्रतापूर्वक प्रहार किया॥ ४३१/२॥

उस गदा-प्रहारसे भी धर्मपुत्र नारायण पर्वतकी भाँति अविचल भावसे स्थिरचित्त होकर खड़े रहे। तदनन्तर परम पराक्रमी भगवान् नारायणने बड़ी तेजीसे अनेक बाण छोड़े और दैत्यपति प्रह्लादकी सुदृढ़ गदाको खण्ड-खण्ड कर दिया। आकाशमें स्थित होकर युद्ध देखनेवाले बड़े आश्चर्यमें पड़ गये॥ ४४-४५१/२॥

तत्पश्चात् शत्रुओंका दमन करनेवाले प्रह्लादने शक्ति उठाकर कुपित हो बलपूर्वक बड़ी तेजीसे नारायणके वक्षःस्थलपर प्रहार किया। तब सामने आती हुई उस शक्तिको देखकर नारायणने एक ही बाणसे बड़ी आसानीसे

उसके सात खण्ड कर दिये और साथ ही सात बाणोंसे प्रह्लादपर प्रहार किया॥ ४६—४७$^{१}/_{२}$ ॥

हे राजन्! इस प्रकार सबको विस्मित कर देनेवाला वह युद्ध एक सौ दिव्य वर्षतक चलता रहा। तदनन्तर चार भुजाओंसे शोभा पानेवाले पीताम्बरधारी भगवान् विष्णु शीघ्रतापूर्वक उस आश्रममें आ गये। तत्पश्चात् हाथोंमें शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण करनेवाले वे चतुर्भुज लक्ष्मीपति विष्णु प्रह्लादके आश्रमपर पहुँचे॥ ४८—५०॥

वहाँ उन्हें आये हुए देखकर हिरण्यकशिपुपुत्र प्रह्लाद बड़ी श्रद्धाके साथ उन्हें प्रणाम करके हाथ जोड़कर कहने लगे॥ ५१॥

प्रह्लाद बोले—हे देवदेव! हे जगन्नाथ! हे भक्तवत्सल! हे माधव! मैं इन दोनों तपस्वियोंको युद्धमें क्यों नहीं जीत सका? हे देव! मैंने देवताओंके पूरे सौ वर्षतक इनके साथ युद्ध किया, फिर भी ये जीते न जा सके—मुझे यह महान् आश्चर्य है!॥ ५२$^{१}/_{२}$ ॥

विष्णु बोले—हे आर्य! ये दोनों सिद्ध पुरुष हैं और मेरे अंशसे आविर्भूत हैं; अतः [इन्हें न जीत पानेमें] आश्चर्य क्या! नर-नारायण नामसे प्रसिद्ध इन जितात्मा तपस्वियोंको तुम नहीं जीत सकते। अतः हे राजन्! तुम अपने वितललोकको चले जाओ और वहाँ मेरी अविचल भक्ति करो। हे महामते! तुम इन दोनों तपस्वियोंसे विरोध मत करो॥ ५३-५४$^{१}/_{२}$ ॥

व्यासजी बोले—भगवान् विष्णुसे ऐसी आज्ञा पाकर दैत्यपति प्रह्लाद असुरोंके साथ वहाँसे प्रस्थित हो गये। तदनन्तर नर-नारायण पुनः तपस्यामें संलग्न हो गये॥ ५५-५६॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत चतुर्थ स्कन्धका 'प्रह्लाद और नर-नारायणके युद्धमें विष्णुका आगमन' नामक नौवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ९॥

दसवाँ अध्याय

राजा जनमेजयद्वारा प्रह्लादके साथ नर-नारायणके युद्धका कारण पूछना, व्यासजीद्वारा उत्तरमें संसारके मूल कारण अहंकारका निरूपण करना तथा महर्षि भृगुद्वारा भगवान् विष्णुको शाप देनेकी कथा

जनमेजय बोले—हे व्यासजी! इस कथानकमें मुझे यह महान् संशय हो रहा है कि जब वे नर-नारायण शान्तस्वभाव, भगवान् विष्णुके अंशस्वरूप, तपको ही अपना सर्वस्व माननेवाले, तीर्थमें निवास करनेवाले, सत्त्वगुणसम्पन्न, वनके फल-मूलका सदा आहार करनेवाले, धर्मपुत्र, महात्मा, तपस्वी तथा सत्यनिष्ठ थे; तब वे युद्धमें परस्पर राग-द्वेषसे ग्रस्त कैसे हो गये और उन्होंने उत्कृष्ट तपस्याका त्याग करके संग्राम क्यों किया?॥ १—३॥

उन दोनों मुनियोंने शान्ति-सुखका त्याग करके प्रह्लादके साथ पूरे सौ दिव्य वर्षोंतक युद्ध किसलिये किया?॥ ४॥

उन दोनों मुनियोंने प्रह्लादके साथ वह संग्राम क्यों किया? हे महाभाग! आप मुझे उस युद्धका कारण बताइये॥ ५॥

(स्त्री, धन तथा कोई कार्यविशेष ही प्रायः युद्धके कारण होते हैं) उन विरक्त मुनियोंको युद्धका विचार क्यों उत्पन्न हुआ? हे परन्तप! उन्होंने उस प्रकारका तप किसीको प्रसन्न करनेके लिये, सुखभोगके लिये अथवा स्वर्गके लिये—किस उद्देश्यसे किया था? शान्त चित्तवाले उन मुनियोंने समस्त फल प्रदान करनेवाला कठोर तप तो किया था, किंतु उन्होंने कौन-सा अद्भुत फल प्राप्त किया? उन्होंने तपस्यासे शरीरको कष्ट दिया और पूरे सौ दिव्य वर्षोंतक बार-बार संग्राम करके परिश्रमके द्वारा अपनेको संतप्त किया। उन मुनियोंने न राज्यके लिये, न धनके लिये, न स्त्रीके लिये और न तो गृहके लिये ही यह युद्ध किया

तो फिर उन्होंने महात्मा प्रह्लादके साथ किसलिये युद्ध किया? ॥ ६—९१/२ ॥

युद्ध शरीरके लिये कष्टदायक होता है—इस सनातन बातको जानते हुए कोई तृष्णारहित पुरुष आखिर ऐसा युद्ध किसलिये करेगा? हे धर्मज्ञ! उत्तम बुद्धिवाला मनुष्य इस लोकमें सदा सुखदायी कर्म ही करता है, दुःखप्रद कर्म नहीं—यह सनातन सिद्धान्त है। तब धर्मपुत्र, भगवान् विष्णुके अंशस्वरूप, सर्वज्ञ तथा सभी गुणोंसे विभूषित उन मुनियोंने वह धर्मविनाशक युद्ध क्यों किया? हे व्यासजी! कोई मूर्ख भी अच्छी प्रकार आचरित सुखके आगार और महाफलदायी तपका त्याग करके दारुण युद्ध करना नहीं चाहता॥ १०—१३१/२ ॥

मैंने सुना है कि राजा ययाति स्वर्गसे च्युत हो गये थे। अहंकारजन्य पापके कारण वे पृथ्वीतलपर गिरा दिये गये थे। वे यज्ञकर्ता, दानी और धर्मनिष्ठ थे; किंतु केवल थोड़ेसे अहंकारभरे शब्दोंका उच्चारण करनेके कारण वज्रपाणि इन्द्रने उन्हें [स्वर्गसे पृथ्वीपर] गिरा दिया था। यह निश्चित है कि बिना अहंकारके युद्ध हो ही नहीं सकता। अन्ततः मुनिको उस युद्धका क्या फल मिला, उससे तो केवल उनका पुण्य ही नष्ट हुआ॥ १४—१६१/२ ॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! धर्मका निर्णय करते समय सर्वज्ञ मुनियोंने अहंकारको ही संसारका मूल कारण कहा है और इसे [सत्त्वादि भेदसे] तीन प्रकारका बतलाया है। [ऐसी स्थितिमें] शरीरधारी होकर मुनि नारायण उस अहंकारका त्याग करनेमें कैसे समर्थ हो सकते थे? यह निश्चित है कि बिना कारणके कार्य नहीं होता॥ १७-१८१/२ ॥

तप, दान तथा यज्ञ सात्त्विक अहंकारसे होते हैं। हे महाभाग! राजस और तामस अहंकारसे कलह उत्पन्न होता है। हे राजेन्द्र! यह निश्चय है कि छोटी-सी भी क्रिया चाहे वह शुभ हो अथवा अशुभ—बिना अहंकारके कभी नहीं हो सकती। जगत्में अहंकारसे बढ़कर बन्धनमें डालनेवाला दूसरा कोई पदार्थ नहीं है। अतः जिस अहंकारसे ही यह विश्व निर्मित है, उसके बिना यह संसार कैसे रह सकता है? ॥ १९—२११/२ ॥

हे पृथ्वीपते! जब ब्रह्मा, विष्णु और शिव भी अहंकारयुक्त रहते हैं, तब अन्य प्राणियों और मुनियोंकी बात ही क्या? यह चराचर जगत् अहंकारके वशीभूत होकर भ्रमण करता रहता है। सभी जीव कर्मके अधीन हैं और उसीके अनुसार बार-बार उनका जन्म तथा मरण होता रहता है। हे महीपते! देवता, मनुष्य और पशु-पक्षियोंका इस संसारमें बराबर चक्कर काटना रथके पहियेके भ्रमणके समान बताया गया है॥ २२—२४१/२ ॥

इस विस्तृत संसारमें उत्तम-अधम सभी योनियोंमें भगवान् विष्णुके अवतारोंकी संख्या कौन मनुष्य जान सकता है? साक्षात् नारायण श्रीहरिको मत्स्य, कच्छप, वराह, नरसिंह और वामनतकका शरीर धारण करना पड़ा। वे जगत्प्रभु, वासुदेव, भगवान् जनार्दन भी विधिके अधीन होकर विभिन्न युगोंमें असंख्य अवतार धारण करते रहते हैं॥ २५—२७१/२ ॥

हे महाराज! सातवें वैवस्वत मन्वन्तरमें भगवान् श्रीहरिने जो-जो अवतार लिये थे, उन्हें आप ध्यानपूर्वक सुनें। हे महाराज! देवश्रेष्ठ और सबके स्वामी भगवान् विष्णुको महर्षि भृगुके शापके कारण अनेक अवतार धारण करने पड़े थे॥ २८-२९१/२ ॥

राजा बोले—हे महाभाग! हे पितामह! मेरे मनमें यह संदेह हो रहा है कि भृगुने भगवान्‌को शाप क्यों दे दिया? हे मुने! भगवान् विष्णुने उन भृगुमुनिका कौन-सा अप्रिय कार्य कर दिया था, जिससे रुष्ट होकर महर्षि भृगुने सभी देवताओंद्वारा नमस्कार किये जानेवाले भगवान् विष्णुको शाप दे दिया॥ ३०-३११/२ ॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! सुनिये, मैं आपको भृगुके शापका कारण बताता हूँ। पूर्वकालमें कश्यपतनय हिरण्यकशिपु नामक एक राजा था। उस समय जब भी वह देवताओंके साथ परस्पर संघर्ष करने लगता था, तब युद्ध आरम्भ हो जानेपर सारा संसार व्याकुल हो उठता था॥ ३२-३३१/२ ॥

बादमें हिरण्यकशिपुका वध हो जानेपर प्रह्लाद राजा बने। शत्रुओंको कष्ट पहुँचानेवाले वे प्रह्लाद भी देवताओंको पीड़ित करने लगे। अतः इन्द्र और प्रह्लादमें भयानक संग्राम

आरम्भ हो गया। हे राजन्! पूरे सौ वर्षतक देवताओंने लोगोंको अचम्भेमें डाल देनेवाला भीषण युद्ध किया और प्रह्लादको पराजित कर दिया। हे राजन्! तब शाश्वत धर्मको समझकर वे महान् विरक्तिको प्राप्त हुए और विरोचनपुत्र बलिको राज्यपर प्रतिष्ठित करके तप करनेके लिये गन्धमादनपर्वतपर चले गये॥ ३४—३७१/२॥

राज्य प्राप्त करके ऐश्वर्यशाली राजा बलिने देवताओंसे शत्रुता कर ली, जिससे [देवताओं और दैत्योंमें] पुनः परस्पर अत्यन्त भीषण युद्ध होने लगा। उसमें देवताओं तथा अमित तेजस्वी इन्द्रने दैत्योंको जीत लिया। हे राजन्! उस समय इन्द्रके सहायक बनकर भगवान् विष्णुने दैत्योंको राज्यसे च्युत कर दिया॥ ३८-३९१/२॥

तदनन्तर हारे हुए दैत्य [अपने गुरु] शुक्राचार्यकी

शरणमें गये। [सभी दैत्य उनसे कहने लगे—] हे ब्रह्मन्! आप प्रतापशाली होते हुए भी हमारी सहायता क्यों नहीं कर रहे हैं? हे मन्त्रज्ञोंमें श्रेष्ठ! यदि हमारी रक्षाहेतु आप सहायक न हुए तो हमलोग यहाँ नहीं रह पायेंगे और निश्चय ही हमें पातालमें जाना पड़ेगा॥ ४०-४११/२॥

व्यासजी बोले—दैत्योंके ऐसा कहनेपर दयालु शुक्राचार्यमुनिने उनसे कहा—हे असुरो! डरो मत। मैं अपने तेजसे [तुमलोगोंको धरातलपर] स्थापित करूँगा और मन्त्रों तथा औषधियोंसे सर्वदा तुमलोगोंकी सहायता करूँगा। तुमलोग चिन्तामुक्त होकर उत्साह बनाये रखो॥ ४२-४३१/२॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार शुक्राचार्यका आश्रय पाकर वे दैत्य निर्भय हो गये। उधर देवताओंने गुप्तचरोंसे यह समाचार सुन लिया। तत्पश्चात् शुक्राचार्यके मन्त्रके प्रभावको समझकर अत्यन्त घबराये हुए देवताओंने इन्द्रके साथ परस्पर मन्त्रणा करके यह योजना बनायी कि जबतक शुक्राचार्यके मन्त्रके प्रभावसे दैत्य हमें राज्यच्युत करें, उसके पहले ही हमलोग युद्ध करनेके लिये शीघ्रतापूर्वक प्रस्थान कर दें और बलपूर्वक उनका वध करके बचे हुए दैत्योंको पाताल भेज दें॥ ४४—४६१/२॥

तदनन्तर अत्यधिक रोषमें भरे देवताओंने हाथोंमें शस्त्र धारणकर दैत्योंपर चढ़ाई कर दी। इन्द्रकी प्रेरणासे भगवान् विष्णुसहित सभी देवता उनपर टूट पड़े। तब देवताओंके द्वारा मारे जा रहे वे दैत्य आतंकित तथा भयभीत होकर शुक्राचार्यकी शरणमें गये और 'रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये'—ऐसा बार-बार कहने लगे॥ ४७-४८१/२॥

देवताओंके द्वारा पीड़ित किये गये उन महाबली दैत्योंको देखकर मन्त्र और औषधिके प्रभावसे शक्तिशाली बने शुक्राचार्यने उनसे 'डरो मत'—ऐसा वचन कहा। तब शुक्राचार्यको देखते ही सभी देवता उन दैत्योंको छोड़कर चले गये॥ ४९-५०॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत चतुर्थ स्कन्धका 'भृगुशापकारणवर्णन' नामक दसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १०॥

ग्यारहवाँ अध्याय

मन्त्रविद्याकी प्राप्तिके लिये शुक्राचार्यका तपस्यारत होना, देवताओंद्वारा दैत्योंपर आक्रमण, शुक्राचार्यकी माताद्वारा दैत्योंकी रक्षा और इन्द्र तथा विष्णुको संज्ञाशून्य कर देना, विष्णुद्वारा शुक्रमाताका वध

व्यासजी बोले—तत्पश्चात् देवताओंके चले जानेपर शुक्राचार्यने उन दैत्योंसे कहा—हे श्रेष्ठ दानवो! पूर्वकालमें ब्रह्माजीने मुझसे जो कहा था, उसे तुमलोग सुनो। दैत्योंके वधके लिये भगवान् विष्णु सदा प्रयत्नरत रहते हैं, वे दैत्योंका वध अवश्य करेंगे। जैसे वाराहका रूप धारण करके उन्होंने हिरण्याक्षका वध किया और नृसिंहरूपसे

हिरण्यकशिपुको मारा, उसी प्रकार उत्साहसम्पन्न होकर वे सब दैत्योंका संहार करेंगे; इसमें सन्देह नहीं है॥ १—३॥

मुझे जान पड़ता है कि वैसा समुचित मन्त्रबल अभी मेरे पास नहीं है, जिससे मेरे द्वारा सुरक्षित होकर तुमलोग इन्द्र तथा देवताओंको जीतनेमें समर्थ हो सको। अतः हे श्रेष्ठ दानवगण! तुमलोग कुछ समयतक प्रतीक्षा करो। मैं मन्त्रसिद्धिके लिये आज ही भगवान् शिवके पास जा रहा हूँ। हे श्रेष्ठ दानवो! महादेवजीसे मन्त्र लेकर मैं तत्काल आऊँगा और यथावत् रूपमें तुमलोगोंको सिखा दूँगा॥ ४—६॥

दैत्योंने कहा—हे मुनिश्रेष्ठ! देवताओंसे पराजित होकर हमलोग अत्यन्त निर्बल हो गये हैं, अतः उतने समयतक प्रतीक्षा करनेके लिये हम पृथ्वीपर रहनेमें कैसे समर्थ हो सकते हैं? सभी पराक्रमी दानव मारे जा चुके हैं और जो शेष बचे हुए हैं, अब वे सुखपूर्वक युद्धमें ठहरनेमें समर्थ नहीं हैं॥ ७-८॥

शुक्राचार्य बोले—जबतक मैं शिवजीसे मन्त्रविद्या लेकर नहीं आता हूँ, तबतक तुमलोग शान्ति और तपस्यासे युक्त होकर यहीं रुके रहो॥ ९॥

विद्वानोंने कहा है कि समयानुसार साम, दान आदिका प्रयोग करना चाहिये। बुद्धिमान् तथा वीर पुरुष देश, काल, बल, शक्ति और सेनाकी जानकारी करके ही अपना सामर्थ्य दिखाते हैं॥ १०॥

बुद्धिमान् पुरुषोंको चाहिये कि अपने कल्याणकी इच्छासे समयपर शत्रुओंकी भी सेवा करे और अपनी शक्तिका संचय हो जानेपर उन्हें मार डाले॥ ११॥

अतः देवताओंकी विनती करके छलपूर्वक सामनीतिका प्रयोग करते हुए मेरे लौटनेकी प्रतीक्षाके साथ अपने-अपने घरोंमें रहो॥ १२॥

हे दानवो! महादेवजीसे मन्त्र प्राप्त करके मैं आऊँगा और तब उसी मन्त्रबलका आश्रय लेकर हमलोग देवताओंसे युद्ध करेंगे॥ १३॥

हे महाराज! उन दानवोंसे ऐसा कहकर दृढ़ संकल्पवाले मुनिश्रेष्ठ शुक्राचार्य मन्त्रप्राप्तिके लिये शिवजीके पास चले गये॥ १४॥

तदनन्तर दैत्योंने सत्यवादी, धैर्यवान् तथा देवताओंके विश्वासपात्र प्रह्लादको देवताओंके पास भेजा॥ १५॥

असुरोंके साथ वहाँ जाकर राजा प्रह्लाद विनय-सम्पन्न होकर देवताओंसे नम्रतायुक्त वचन बोले। हे देवताओ! हम सभी लोगोंने शस्त्र रख दिये हैं और कवचका त्याग कर दिया है। अब हम वल्कल धारण करके तपस्या करेंगे॥ १६-१७॥

प्रह्लादका वचन सुनकर देवताओंने उसे सत्य मान लिया और इसके बाद वे निश्चिन्त होकर प्रसन्नतापूर्वक वहाँसे लौट गये॥ १८॥

तब दैत्योंके शस्त्र त्याग देनेपर देवता युद्धसे विरत हो गये और चिन्तारहित होकर अपने-अपने घर जाकर स्वस्थचित्त हो क्रीडाविलासमें संलग्न हो गये॥ १९॥

उस समय दैत्यगण पाखण्डका सहारा लेकर तपस्वीके रूपमें तपस्यारत होकर शुक्राचार्यके आगमनकी प्रतीक्षा करते हुए कश्यपमुनिके आश्रममें रहने लगे॥ २०॥

उधर, मुनि शुक्राचार्यने कैलासपर्वतपर पहुँचकर शंकरजीको प्रणाम किया। भगवान् शिवके पूछनेपर कि 'आपका क्या कार्य है?'—उन्होंने कहा—हे देव! मैं देवताओंकी

पराजय और असुरोंकी विजयके लिये उन मन्त्रोंको चाहता हूँ, जो बृहस्पतिके भी पास न हों॥ २१-२२॥

व्यासजी बोले—उनका वचन सुनकर सर्वज्ञ और कल्याणकारी भगवान् शिव मनमें सोचने लगे कि अब मुझे क्या करना चाहिये? ये दैत्यगुरु शुक्राचार्य देवताओंके प्रति द्रोह-बुद्धिसे युक्त होकर उन दैत्योंकी विजयके लिये मन्त्रहेतु इस समय यहाँ आये हैं, अतः मुझे देवताओंकी रक्षा करनी चाहिये—ऐसा सोचकर शिवजीने उन्हें यह

अत्यन्त कठोर और दुष्कर व्रत करनेको कहा—पूरे एक हजार वर्षोंतक यदि आप सिर नीचे करके कणधूम (भूसीके धुएँ)-का पान करेंगे, तभी आपका कल्याण होगा और आप मन्त्र प्राप्त कर सकेंगे॥ २३—२६॥

शिवजीके ऐसा कहनेपर उन्होंने महेश्वरको प्रणाम करके यह वचन कहा—'बहुत अच्छा', हे देव! हे सुरेश्वर! आपने मुझे जो आदेश दिया है, मैं उस व्रतका पालन करूँगा॥ २७॥

व्यासजी बोले—शिवजीसे ऐसा कहकर मन्त्रप्राप्तिके लिये दृढ़संकल्प शुक्राचार्यजी शान्त होकर धुएँका सेवन करते हुए कठोर व्रत करने लगे॥ २८॥

तब उस समय शुक्राचार्यको व्रतमें संलग्न तथा दैत्योंको [तपस्वी बनकर] पाखण्डमें निरत देखकर देवता लोग आपसमें मन्त्रणा करने लगे॥ २९॥

हे राजन्! भलीभाँति विचार करके सभी देवता संग्रामके लिये उद्यत हो गये और शस्त्रास्त्र धारणकर वहाँ पहुँच गये, जहाँ वे बड़े-बड़े दानव विद्यमान थे॥ ३०॥

तदनन्तर दैत्यगण उन आये हुए देवताओंको आयुधोंसे सज्जित और कवच धारण किये तथा अपनेको उनसे सब ओरसे घिरा देखकर भयसे व्याकुल हो उठे॥ ३१॥

वे भयातुर दानव तुरंत उठकर खड़े हो गये और युद्धके लिये उद्यत बलाभिमानी देवताओंसे सारगर्भित वचन कहने लगे—हमने शस्त्र रख दिये हैं, हम भयभीत हैं और हमारे आचार्य इस समय व्रतमें संलग्न हैं। हे देवताओ! पहले अभयदान देकर भी आप लोग हमें मारनेकी इच्छासे आ गये। हे देवगण! आप लोगोंका सत्य और श्रुतिसम्मत वह धर्म कहाँ चला गया कि 'जो शस्त्र रख चुके हों, भयभीत हों और शरणागत हो गये हों, उन्हें नहीं मारना चाहिये'॥ ३२—३४॥

देवता बोले—आप लोगोंने छलसे शुक्राचार्यको मन्त्र प्राप्त करनेके लिये भेजा है। हम आपलोगोंके तपको जान गये हैं, इसीलिये हमलोग युद्ध करनेके लिये उद्यत हुए हैं॥ ३५॥

अब क्षुब्ध हुए आपलोग भी हाथोंमें शस्त्र धारणकर युद्धके लिये तैयार हो जाइये। यह सनातन सिद्धान्त है कि जब शत्रु दुर्बल हो, तभी उसे मार डालना चाहिये॥ ३६॥

व्यासजी बोले—उनका वचन सुनकर सभी दैत्य आपसमें विचार करके भागनेके लिये तत्पर हो गये और भयसे व्याकुल होकर वहाँसे निकल भागे॥ ३७॥

वे भयभीत दैत्य शुक्राचार्यकी माताकी शरणमें गये। उन दैत्योंको बहुत सन्तप्त देखकर उन्होंने अभय प्रदान कर दिया॥ ३८॥

शुक्राचार्यकी माताने कहा—हे दानवगण! डरो मत, डरो मत; तुम लोग भय छोड़ दो। मेरे पास रहनेवालोंको भय हो ही नहीं सकता॥ ३९॥

यह वचन सुनकर दैत्योंकी व्यथा दूर हो गयी और वे शस्त्रास्त्र त्यागकर पूर्ण रूपसे निश्चिन्त हो वहींपर उनके उत्तम आश्रममें रहने लगे॥ ४०॥

तब दैत्योंको पलायित देखकर वे देवता उनके पैरोंके चिह्नोंके पीछे-पीछे जाते हुए उनके बलाबलका बिना विचार किये हठात् उनके पास पहुँच गये॥ ४१॥

वहाँपर आये हुए सभी देवता आश्रममें रहनेवाले दैत्योंका वध करनेको उद्यत हो गये और शुक्राचार्यकी माताके रोकनेपर भी उन दैत्योंको मारने लगे॥ ४२॥

इस प्रकार देवताओंके द्वारा उन्हें मारे जाते हुए देखकर शुक्राचार्यकी माता बहुत काँपने लगीं और बोलीं—

मैं अभी समस्त देवताओंको अपने तपके प्रभावसे निद्राग्रस्त कर दे रही हूँ॥ ४३॥

ऐसा कहकर उन्होंने निद्राको प्रेरित किया। उस निद्राने देवताओंके पास आकर उनपर अपना प्रभाव डाल दिया, जिससे इन्द्रसहित सभी देवता निद्राके वशीभूत हो गये और गूँगेकी भाँति पड़े रहे॥ ४४॥

इन्द्रको निद्राके द्वारा नियन्त्रित तथा दीन देखकर भगवान्

विष्णुने कहा—हे देवश्रेष्ठ! तुम मुझमें प्रविष्ट हो जाओ, तुम्हारा कल्याण हो, मैं तुम्हें अन्यत्र पहुँचाता हूँ॥ ४५॥

विष्णुके इस प्रकार कहनेपर इन्द्र उनमें प्रवेश कर गये और उन श्रीहरिसे रक्षित होकर वे निर्भय तथा निद्रारहित हो गये॥ ४६॥

तब भगवान् विष्णुके द्वारा रक्षित इन्द्रको व्यथाशून्य देखकर शुक्राचार्यकी माता कुपित हो उठीं और यह वचन बोलीं—हे इन्द्र! सभी देवताओंके देखते-देखते मैं अपने तपोबलसे विष्णुसहित तुम्हें खा जाऊँगी; ऐसा मेरा तपोबल है॥ ४७-४८॥

व्यासजी बोले—ऐसा कहकर उन्होंने अपनी योगविद्याके द्वारा इन्द्र तथा विष्णुको आक्रान्त कर दिया और वे दोनों महात्मा स्तब्ध हो गये॥ ४९॥

उन दोनोंको बहुत बड़े संकटमें पड़ा देखकर देवताओंको महान् आश्चर्य हुआ और वे दुःखीचित्त हो जोर-जोरसे चीखने-चिल्लाने लगे॥ ५०॥

देवताओंको चीखते-चिल्लाते देखकर इन्द्रने विष्णुसे कहा—हे मधुसूदन! मैं [इस समय] आपकी अपेक्षा अधिक आक्रान्त हूँ। अतः हे विष्णो! हे प्रभो! यह हमें जबतक भस्म न कर दे, आप तपस्याके अभिमानमें चूर इस दुष्टाको शीघ्रतापूर्वक मार डालिये। हे माधव! अब आप सोच-विचार न करें॥ ५१-५२॥

कीर्तिमान् इन्द्रके ऐसा कहनेपर लक्ष्मीपति भगवान् विष्णुने दया छोड़कर तत्काल सुदर्शन चक्रका स्मरण किया। विष्णुके वशमें रहनेवाला वह चक्र उनके स्मरण करते ही आ पहुँचा और इन्द्रसे प्रेरित होकर उन्होंने कुपित हो उसके वधके लिये चक्रको अपने हाथमें ले लिया॥ ५३-५४॥

उस चक्रको हाथमें लेकर भगवान् विष्णुने बड़े वेगसे उसका सिर काट दिया। तब उसे मृत देखकर इन्द्र हर्षित हो उठे। सभी देवता भी अत्यन्त सन्तुष्ट होकर विष्णुकी जयकार करने लगे। वे प्रसन्न होकर उनकी स्तुति करने लगे और सन्तापरहित हो गये॥ ५५-५६॥

स्त्रीवधसे [होनेवाले पाप] तथा भृगुमुनिके भीषण शापकी शंका करते हुए वे भगवान् विष्णु तथा इन्द्र उसी समयसे दुःखीचित्त रहने लगे॥ ५७॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत चतुर्थ स्कन्धका 'शुक्रमातावधवर्णन' नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ११॥

बारहवाँ अध्याय

महात्मा भृगुद्वारा विष्णुको मानवयोनिमें जन्म लेनेका शाप देना, इन्द्रद्वारा अपनी पुत्री जयन्तीको शुक्राचार्यके लिये अर्पित करना, देवगुरु बृहस्पतिद्वारा शुक्राचार्यका रूप धारणकर दैत्योंका पुरोहित बनना

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] उस भयानक वधको देखकर भगवान् भृगु अत्यन्त कुपित हुए और दुःखसे व्याकुल होकर काँपते हुए वे मधुसूदन विष्णुसे कहने लगे॥ १॥

भृगु बोले—हे महाबुद्धिमान् विष्णो! जो नहीं करना चाहिये वह पाप आपने जानबूझकर कर डाला। विप्र-स्त्रीके इस वधकी तो मनसे कल्पना करना भी अनुचित है॥ २॥

आप तो सत्त्वगुणसे सम्पन्न कहे गये हैं, ब्रह्मा रजोगुणी और शिव तमोगुणी बताये गये हैं; तब आपने अपने गुणके विपरीत कार्य क्यों किया? आप तामसी कैसे हो गये, जिससे आपने यह घोर निन्दनीय कर्म कर डाला?

हे विष्णो! आपने उस अवध्य तथा निरपराध स्त्रीको क्यों मार डाला?॥ ३-४॥

[उन्होंने क्रोधपूर्वक कहा कि] अब मैं तुझ दुराचारीको शाप दे रहा हूँ, इसके अतिरिक्त तुम्हारा क्या प्रतीकार करूँ? अरे पापी! तुमने इन्द्रके हितके लिये मुझे विधुर बना दिया। हे मधुसूदन! मैं इन्द्रको शाप नहीं दूँगा, बल्कि तुम्हें ही शाप दूँगा। कृष्ण सर्पसदृश दुरभिप्रायवाले तुम सदा छल करनेमें ही तत्पर रहते हो॥ ५-६॥

हे जनार्दन! जो मुनि तुम्हें सात्त्विक कहते हैं, वे निश्चय ही मूर्ख हैं। मैंने तो प्रत्यक्ष जान लिया कि तुम तमोगुणी तथा दुराचारी हो। अतः हे जनार्दन! मेरे शापसे मृत्युलोकमें तुम्हारे अनेक अवतार हों और [इस स्त्री-वधजन्य] पापके कारण बार-बार गर्भवाससे होनेवाले दुःखको भोगो॥ ७-८॥

व्यासजी बोले—उसी शापके कारण भगवान् विष्णु धर्मका ह्रास होनेपर संसारके कल्याणके लिये बार-बार मानवरूपोंमें प्रकट होते हैं॥ ९॥

राजा बोले—[हे व्यासजी!] जब अमित तेजस्वी चक्रके द्वारा भृगुपत्नीका वध हो गया, उसके बाद महात्मा भृगुका गार्हस्थ्य-जीवन कैसे व्यतीत हुआ?॥ १०॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार रोषपूर्वक भगवान् विष्णुको शाप देकर कार्यकुशल महर्षि भृगु तत्काल उस [कटे] सिरको लेकर शीघ्रतापूर्वक [अपनी पत्नीके] धड़में जोड़ते हुए बोले—हे देवि! विष्णुके द्वारा तुम मारी जा चुकी हो, किंतु अब मैं तुम्हें फिरसे जीवित कर रहा हूँ। यदि मैं सम्पूर्ण धर्म जानता हूँ तथा उसका सम्यक् आचरण करता हूँ और सदा सत्य भाषण करता हूँ तो उसी सत्यके प्रभावसे तुम जीवित हो जाओ। सभी देवता मेरे महान् तेज-बलको देख लें। यदि मुझमें सत्य, पवित्रता, वेदाध्ययन तथा तपस्याका बल होगा तो मैं उन्हींके प्रभावसे शीतल जल प्रोक्षण करके तुम्हें जीवित कर दूँगा॥ ११—१४॥

व्यासजी बोले—तब जलसे प्रोक्षित करते ही मधुर मुसकानवाली वे भृगुपत्नी शीघ्र ही जीवित हो गयीं और बड़ी प्रसन्नतापूर्वक उठकर खड़ी हो गयीं॥ १५॥

तब सोकर उठी हुईके समान उसे देखकर सब ओरसे लोग 'साधु-साधु'—ऐसा कहकर भृगुमुनि तथा उनकी भार्या दोनोंकी स्तुति करने लगे॥ १६॥

इस प्रकार उन महर्षि भृगुने उस सुन्दरीको जीवित कर दिया। यह देखकर इन्द्रसहित सभी देवता अत्यन्त आश्चर्यचकित हो उठे॥ १७॥

तत्पश्चात् इन्द्रने देवताओंसे कहा—भृगुमुनिने अपनी साध्वी भार्याको जीवित कर दिया। साथ ही मन्त्रज्ञानी शुक्राचार्य कठोर तपस्या करके [शिवसे मन्त्र प्राप्तकर] पता नहीं क्या कर डालेंगे!॥ १८॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! मन्त्रप्राप्तिके लिये शुक्राचार्यके अत्यन्त कठोर तपका स्मरण करके इन्द्रकी नींद समाप्त हो गयी और उनके शरीरमें व्याकुलता होने लगी॥ १९॥

तब मनमें भली-भाँति विचार करके इन्द्रने सुन्दर स्वरूपवाली अपनी पुत्री जयन्तीसे मुसकराते हुए कहा—हे पुत्रि! मैंने तुम्हें तपस्वी शुक्राचार्यको सौंप दिया। अतः हे तन्वंगि! अब तुम जाओ और मेरे कल्याणके लिये उनकी सेवा करो और उन्हें वशमें कर लो। उस उत्तम आश्रममें शीघ्र जाकर उनके मनको प्रिय लगनेवाले विविध उपचारोंसे उन्हें प्रसन्न करके मेरा भय दूर करो॥ २०—२२॥

विशाल नयनोंवाली वह सुन्दर कन्या पिताकी बात सुनकर [शुक्राचार्यके] आश्रममें गयी और वहाँपर उसने मुनिको [नीचेकी ओर सिर करके] धुएँका सेवन करते हुए देखा॥ २३॥

तब उनके [तपोरत] शरीरको देखकर और पिताकी बात याद करके वह केलेका एक पत्ता लेकर मुनिको पंखा

भगवान् हयग्रीवद्वारा वेदोंका उद्धारकर ब्रह्माजीको प्रदान करना

श्रीराम, श्रीलक्ष्मण, श्रीभरत तथा श्रीशत्रुघ्न—अवधकी वीथियोंमें

झलने लगी॥ २४॥

तबसे वह उनके पीनेके लिये अत्यन्त स्वच्छ, शीतल, सुगन्धित तथा रुचिकर जल ले आकर [उनके समक्ष] श्रद्धापूर्वक उपस्थित किया करती। सूर्यके मध्य आकाशमें होते ही वह सुन्दरी उनके ऊपर वस्त्रसे छतरी बनाकर छाया कर देती थी। वह साध्वी सदा पातिव्रत्य धर्मका पालन करती थी॥ २५-२६॥

वह शास्त्रविहित दिव्य, पके तथा मीठे फल लाकर खानेके लिये उन मुनिके समक्ष रख देती थी। वह कन्या उनके नित्यकर्मके सम्पादनार्थ पुष्प और तोतेके वर्णके समान प्रादेशमात्र मापवाले हरे-हरे कुश उनके आगे प्रस्तुत कर देती थी। उनके शयनके लिये वह कोमल-कोमल पत्तोंका बिछौना तैयार करती थी और फिर उन मुनिके प्रति आदरभाव रखकर धीरे-धीरे पंखा झलने लगती थी॥ २७—२९॥

मुनिके शापसे भयभीत होकर वह जयन्ती उनके मनमें विकार उत्पन्न करनेवाला कोई हाव-भाव प्रदर्शित नहीं करती थी॥ ३०॥

सुकुमार अंगोंवाली तथा मृदुभाषण करनेवाली वह कन्या उन महात्माके मनके अनुकूल तथा प्रीति उत्पन्न करनेवाले शब्दोंसे उनकी स्तुति करती थी। तत्पश्चात् उनके जाग जानेपर आचमनके लिये जल लाकर रख देती थी। इस प्रकार सदा उनके मनके अनुकूल कार्य करती हुई उनके साथ व्यवहार करती थी॥ ३१-३२॥

चिन्तासे व्याकुल इन्द्र भी उन जितेन्द्रिय मुनिकी प्रवृत्ति जाननेकी इच्छासे अपने सेवक भेजते रहते थे॥ ३३॥

इस प्रकार वह साध्वी कन्या क्रोधपर विजय प्राप्त करके, निर्विकार होकर तथा ब्रह्मचर्यपरायण रहती हुई बहुत वर्षोंतक मुनिकी सेवामें संलग्न रही॥ ३४॥

तदनन्तर हजार वर्ष पूर्ण होनेपर महेश्वर शिव प्रसन्न हो गये और प्रसन्नतापूर्वक वे शुक्राचार्यसे वर माँगनेके लिये कहने लगे॥ ३५॥

ईश्वर बोले—हे ब्रह्मन्! हे भृगुनन्दन! जगत्में जो कुछ भी विद्यमान है, आप जो सब देख रहे हैं तथा जो किसीकी भी वाणीका विषय नहीं है—उन सबके स्वामित्वसे आप युक्त हो जायँगे; इसमें कोई सन्देह नहीं है। आप सभी प्राणियोंसे अवध्य होंगे। आप प्रजाओंके स्वामी तथा श्रेष्ठ ब्राह्मणके रूपमें प्रतिष्ठित होंगे॥ ३६-३७॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार वर प्रदान करके शिवजी वहीं अन्तर्धान हो गये। तत्पश्चात् जयन्तीको देखकर शुक्राचार्यने उससे कहा—हे सुश्रोणि! तुम कौन हो और किसकी पुत्री हो; मुझे अपनी अभिलाषा बताओ। हे सुन्दरि! तुम यहाँ किसलिये आयी हो, अपना कार्य बताओ। हे सुनयने! तुम क्या चाहती हो; यदि वह कार्य दुष्कर भी हो तो भी मैं उसे अभी कर दूँगा। हे सुव्रते! आज मैं तुम्हारी सेवासे प्रसन्न हूँ, अतः वर माँग लो॥ ३८—४०॥

तदनन्तर प्रसन्न मुखमण्डलवाली जयन्तीने मुनिसे कहा—हे भगवन्! आप तो अपनी तपस्यासे मेरा अभिलषित जान लेनेमें समर्थ हैं॥ ४१॥

शुक्राचार्य बोले—वह तो मैंने जान लिया, फिर भी जो तुम्हारा मनोभिलषित है, उसे तुम मुझे बताओ। मैं हर तरहसे तुम्हारा कल्याण करूँगा; क्योंकि मैं तुम्हारी सेवासे प्रसन्न हूँ॥ ४२॥

जयन्ती बोली—हे ब्रह्मन्! मैं इन्द्रकी पुत्री हूँ और पिताजीने मुझे आपको सौंप दिया है। हे मुने! मेरा नाम जयन्ती है और मैं जयन्तकी छोटी बहन हूँ॥ ४३॥

हे विभो! मैं आपपर आसक्त हूँ, अतः मेरी अभिलाषा पूर्ण कीजिये। हे महाभाग! मैं पातिव्रत-धर्मके अनुसार प्रेमपूर्वक आपके साथ विहार करूँगी॥ ४४॥

शुक्राचार्य बोले—हे सुश्रोणि! हे भामिनि! तुम सभी प्राणियोंसे अदृश्य रहती हुई दस वर्षोंतक इच्छानुसार मेरे साथ यहाँ विहार करो॥ ४५॥

व्यासजी बोले—ऐसा कहकर शुक्राचार्यने घर जाकर जयन्तीके साथ विवाह किया। तत्पश्चात् मायासे आच्छादित होकर सभी प्राणियोंसे अदृश्य रहते हुए वे ऐश्वर्यसम्पन्न मुनि शुक्राचार्य देवी जयन्तीके साथ दस वर्षोंतक वहाँ रहे॥ ४६ $^{1}/_{2}$ ॥

गुरु शुक्राचार्यको अपने उद्देश्यमें सफल हो मन्त्रसे युक्त होकर आया हुआ सुनकर सभी दैत्य उनके दर्शनकी इच्छासे प्रसन्नतापूर्वक उनके घर गये, किंतु वे उन्हें देख न सके; क्योंकि उस समय वे जयन्तीके साथ विहार कर

रहे थे॥ ४७-४८॥

इससे उन सभी दैत्योंका मन उदास हो गया और उनके सभी उद्योग व्यर्थ हो गये। वे बहुत चिन्तित और दुःखी होकर उन्हें बार-बार खोजते रहे। अन्तमें [मायासे] आच्छादित उन मुनिको न देखकर वे चिन्तित तथा भयभीत दैत्य जैसे आये थे वैसे ही अपने घर लौट गये॥ ४९-५०॥

तत्पश्चात् शुक्राचार्यको विहार करता हुआ जानकर इन्द्रने अपने गुरु महाभाग बृहस्पतिसे कहा—अब क्या किया जाय? हे ब्रह्मन्! आप दानवोंके पास जाइये और मायाके द्वारा उन्हें मोहमें डाल दीजिये। हे मानद! बुद्धिसे भलीभाँति विचार करके आप हमारा कार्य सिद्ध कर दीजिये॥ ५१-५२॥

इन्द्रकी बात सुनकर देवगुरु बृहस्पति शुक्राचार्यको मायाच्छादित होनेके कारण [अदृश्य हो जयन्तीके साथ] क्रीडा करते जानकर उन्हींका रूप धारण करके दैत्योंके पास गये॥ ५३॥

वहाँ पहुँचकर उन्होंने बड़े आदरके साथ दानवोंको बुलवाया। तब सभी दानव आ गये और उन्होंने शुक्राचार्यको अपने सम्मुख देखा॥ ५४॥

मायासे विमोहित सभी दैत्य [उन छद्मवेषधारी देवगुरु बृहस्पतिको ही] शुक्राचार्य समझकर उन्हें प्रणाम करके उनके समक्ष खड़े हो गये। वे शुक्राचार्यका कृत्रिम रूप प्रकट करनेवाली देवगुरु बृहस्पतिकी मायाको नहीं जान सके॥ ५५॥

तत्पश्चात् छद्म मायासे शुक्राचार्यका रूप धारण करनेवाले गुरु बृहस्पतिने उनसे कहा—मेरे यजमानोंका स्वागत है। मैं आपलोगोंके हितके लिये अब आ गया हूँ। मैंने आप सबके कल्याणके लिये तपस्याके द्वारा भगवान् शिवको प्रसन्न कर लिया और अब मैं उनसे प्राप्त विद्याको निष्कपट भावसे आपलोगोंको बता दूँगा॥ ५६-५७॥

यह सुनकर वे श्रेष्ठ दानव प्रसन्नचित्त हो गये। गुरु शुक्राचार्यको अपने उद्देश्यमें सफल समझकर वे मोहग्रस्त दानव बहुत हर्षित हुए और बड़ी प्रसन्नताके साथ उन्हें प्रणाम किया। वे भयमुक्त तथा सन्तापरहित हो गये। अब देवताओंका भय छोड़कर वे सभी दैत्य स्वस्थचित्त होकर रहने लगे॥ ५८-५९॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत चतुर्थ स्कन्धका 'जयन्तीका शुक्रसहवासवर्णन' नामक बारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १२॥

तेरहवाँ अध्याय

शुक्राचार्यरूपधारी बृहस्पतिका दैत्योंको उपदेश देना

राजा बोले—[हे व्यासजी!] तत्पश्चात् शुक्राचार्यका रूप धारण करनेवाले बुद्धिमान् गुरु बृहस्पतिने छलपूर्वक दैत्योंका पुरोहित बनकर क्या किया?॥ १॥

वे तो देवताओंके गुरु हैं, सदासे सभी विद्याओंके निधान हैं और महर्षि अंगिराके पुत्र हैं; तब उन मुनिने छल क्यों किया?॥ २॥

मुनियोंने समस्त धर्मशास्त्रोंमें सत्यको ही धर्मका मूल बताया है, जिससे परमात्मातक प्राप्त किये जा सकते हैं॥ ३॥

जब बृहस्पति भी दानवोंसे झूठ बोले, तब संसारमें कौन गृहस्थ सत्य बोलनेवाला हो सकेगा?॥ ४॥

हे मुने! सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका वैभव पासमें हो जानेपर भी [कोई व्यक्ति अपने] आहारसे अधिक नहीं खा सकता, तब उसीके निमित्त मुनिलोग भी मिथ्या-भाषणमें किसलिये प्रवृत्त हो जाते हैं?॥ ५॥

इस प्रकारके अशिष्ट आचरणसे देवगुरु बृहस्पतिके वचनोंकी प्रामाणिकता क्या नष्ट नहीं हो गयी और इस छलकर्ममें लिप्त होनेसे उन्हें निष्कलंक कैसे कहा जा सकता है?॥ ६॥

मुनियोंने देवताओंको सत्त्वगुणसे, मनुष्योंको रजोगुणसे तथा पशु-पक्षियोंको तमोगुणसे उत्पन्न बतलाया है॥ ७॥

यदि स्वयं देवगुरु बृहस्पति ही साक्षात् मिथ्या-भाषणमें प्रवृत्त हो गये, तब रजोगुण तथा तमोगुणसे युक्त कौन प्राणी सत्यवादी हो सकेगा?॥ ८॥

इस प्रकार तीनों लोकोंके मिथ्यापरायण हो जानेपर धर्मकी स्थिति कहाँ होगी और सभी प्राणियोंकी क्या दशा होगी? यही मेरा संदेह है॥ ९॥

भगवान् विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र तथा और भी दूसरे महान् देवतागण—सब छलकार्यमें निपुण हैं, तब मनुष्योंकी बात ही क्या?॥ १०॥

सभी देवता और तपोधन मुनिगण भी काम तथा क्रोधसे सन्तप्त और लोभसे व्याकुलचित्त होकर छल-प्रपंचमें तत्पर रहते हैं॥ ११॥

हे मानद! जब वसिष्ठ, वामदेव, विश्वामित्र और गुरु बृहस्पति—ये लोग भी पाप-कर्ममें संलग्न हो गये, तब धर्मकी क्या दशा होगी?॥ १२॥

इन्द्र, अग्नि, चन्द्रमा और ब्रह्मातक कामके वशीभूत हो गये, तब हे मुने! आप ही बतायें कि इन भुवनोंमें शिष्टता कहाँ रह गयी?॥ १३॥

हे पुण्यात्मन्! जब वे सब देवता और मुनिलोग भी लोभके वशीभूत हैं, तब उपदेश ग्रहण करनेके विचारसे किसका वचन प्रमाण माना जाय?॥ १४॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] चाहे विष्णु, ब्रह्मा, शिव, इन्द्र और बृहस्पति ही क्यों न हों—देहधारी तो विकारोंसे युक्त रहता ही है॥ १५॥

ब्रह्मा, विष्णु और महेशतक आसक्तिसे ग्रस्त हैं। (हे राजन्! आसक्त प्राणी कौन-सा अनर्थ नहीं कर बैठता) आसक्तिसे युक्त प्राणी भी चतुराईके कारण विरक्तकी भाँति दिखायी पड़ता है, किंतु संकट उपस्थित होनेपर वह [सत्त्व, रज, तम] गुणोंसे आबद्ध हो जाता है। कोई भी कार्य बिना कारणके कैसे हो सकता है? ब्रह्मा आदि समस्त देवताओंके भी मूल कारण गुण ही हैं। उनके भी शरीर पचीस तत्त्वोंसे बने हैं, इसमें सन्देह नहीं है। हे राजन्! समय आ जानेपर वे भी मृत्युको प्राप्त होते हैं, इसमें आपको संशय कैसा?॥ १६—१८½॥

यह पूर्णरूपसे स्पष्ट है कि दूसरोंको उपदेश देनेमें सभी लोग शिष्ट बन जाते हैं, किंतु अपना कार्य पड़नेपर उस उपदेशका पूर्णतः लोप हो जाता है। जो काम, क्रोध, लोभ, द्रोह, अहंकार और डाह आदि विकार हैं; उन्हें छोड़नेमें कौन-सा देहधारी प्राणी समर्थ हो सकता है? हे महाराज! यह संसार सदासे ही इसी प्रकार शुभाशुभसे युक्त कहा गया है, इसमें सन्देह नहीं है॥ १९—२१½॥

कभी भगवान् विष्णु घोर तपस्या करते हैं, कभी वे ही सुरेश्वर अनेक प्रकारके यज्ञ करते हैं, कभी वे परमेश्वर विष्णु लक्ष्मीके प्रेम-रसमें सिक्त होकर उनके वशीभूत हो वैकुण्ठमें विहार करते हैं। वे करुणासागर विष्णु कभी दानवोंके साथ अत्यन्त भीषण युद्ध करते हैं और उनके बाणोंसे आहत हो जाते हैं। [उस युद्धमें] वे कभी विजयी होते हैं और कभी दैववश पराजित भी हो जाते हैं। इस प्रकार वे भी सुख तथा दुःखसे प्रभावित होते हैं; इसमें सन्देह नहीं है। वे विश्वात्मा कभी योगनिद्राके वशवर्ती होकर शेषशय्यापर शयन करते हैं और कभी सृष्टिकाल आनेपर योगमायासे प्रेरित होकर जाग भी जाते हैं॥ २२—२६½॥

ब्रह्मा, विष्णु, महेश और इन्द्र आदि जो देवता तथा मुनिगण हैं—वे भी अपने आयुपर्यन्त ही जीवित रहते हैं। हे राजन्! अन्तकाल आनेपर स्थावर-जंगमात्मक यह जगत् भी विनष्ट हो जाता है, इसमें कभी भी कुछ भी सन्देह नहीं करना चाहिये। हे भूपाल! अपनी आयुका अन्त हो जानेपर ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र आदि देवता भी विनष्ट हो जाते हैं और [सृष्टिकाल आनेपर] पुनः ये उत्पन्न भी हो जाते हैं॥ २७—२९½॥

अतएव देहधारी प्राणी काम आदि भावोंसे ग्रस्त हो ही जाता है; हे राजन्! इस विषयमें आपको कभी भी विस्मय नहीं करना चाहिये। हे राजन्! यह संसार तो काम, क्रोध आदिसे ओतप्रोत है। इनसे पूर्णतः मुक्त तथा परम तत्त्वको जाननेवाला पुरुष दुर्लभ है॥ ३०-३१½॥

जो इस संसारमें [काम, क्रोध आदि विकारोंसे] डरता है, वह विवाह नहीं करता। वह समस्त प्रकारकी आसक्तियोंसे मुक्त होकर निर्भीकतापूर्वक विचरता है। इसके विपरीत संसारसे आबद्ध रहनेके कारण ही बृहस्पतिकी पत्नीको चन्द्रमाने रख लिया था और देवगुरु बृहस्पतिने अपने छोटे भाईकी पत्नीको अपना लिया था। इस प्रकार इस संसार-चक्रमें राग, लोभ आदिसे जकड़ा हुआ मनुष्य

गृहस्थीमें आसक्त रहकर भला मुक्त कैसे हो सकता है? ॥ ३२—३४१/२ ॥

अतः पूर्ण प्रयत्नके साथ संसारमें आसक्तिका त्याग करके सच्चिदानन्दस्वरूपिणी भगवती महेश्वरीकी आराधना करनी चाहिये। हे राजन्! यह सम्पूर्ण चराचर जगत् उन्हींके मायारूपी गुणसे आच्छादित होकर उन्मत्त तथा मदिरापान करके मतवाले मनुष्यकी भाँति चक्कर काटता रहता है ॥ ३५-३६१/२ ॥

उन्हींकी आराधनाके द्वारा [सत्त्व आदि] सभी गुणोंको पराभूत करके बुद्धिमान् मनुष्य मुक्ति प्राप्त कर सकता है, इसके अतिरिक्त कोई दूसरा मार्ग नहीं है। आराधित होकर महेश्वरी जबतक कृपा नहीं करतीं, तबतक सुख कैसे हो सकता है? उनके सदृश दयावान् दूसरा कौन है? अतः निष्कपट भावसे करुणासागर भगवतीकी आराधना करनी चाहिये, जिनके भजनसे मनुष्य जीते-जी मुक्ति प्राप्त कर सकता है ॥ ३७—३९१/२ ॥

दुर्लभ मनुष्य-जन्म पाकर जिसने उन महेश्वरीकी उपासना नहीं की, वह मानो अन्तिम सीढ़ीसे फिसलकर गिर गया—मैं तो यही धारणा रखता हूँ। सम्पूर्ण विश्व अहंकारसे आच्छादित है, तीनों गुणोंसे युक्त है तथा असत्यसे बँधा हुआ है, तब प्राणी मुक्त कैसे हो सकता है? अतः सबकुछ छोड़कर सभी लोगोंको भगवती भुवनेश्वरीकी उपासना करनी चाहिये ॥ ४०—४२ ॥

राजा बोले—हे पितामह! शुक्राचार्यका रूप धारण करनेवाले देवगुरु बृहस्पतिने वहाँ दैत्योंके पास पहुँचकर क्या किया और शुक्राचार्य पुनः कब लौटे? वह हमें बताइये ॥ ४३ ॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! तब गोपनीय ढंगसे शुक्राचार्यका स्वरूप बनाकर देवगुरुने जो कुछ किया, वह मैं बताता हूँ, आप सुनिये ॥ ४४ ॥

देवगुरु बृहस्पतिने दैत्योंको बोध प्रदान किया। तब शुक्राचार्यको अपना गुरु समझकर और उनपर पूर्ण विश्वास करके सभी दैत्य उन्हींके कथनानुसार व्यवहार करने लगे ॥ ४५ ॥

अत्यधिक मोहितचित्त वे दैत्य बृहस्पतिको शुक्राचार्य समझकर विद्याप्राप्तिके लिये उनके शरणागत हुए। देवगुरु बृहस्पतिने भी उन्हें बहुत ठगा। [यह सत्य है कि] लोभसे कौन-सा प्राणी मोहमें नहीं पड़ जाता ॥ ४६ ॥

तब जयन्तीके साथ क्रीडा करते-करते निर्धारित प्रतिज्ञासम्बन्धी दस वर्षकी अवधि पूर्ण हो जानेपर शुक्राचार्य अपने यजमानोंके विषयमें विचार करने लगे कि मेरी राह देखते हुए वे आशान्वित हो बैठे होंगे। अतः अब मैं चलकर अपने उन अत्यन्त भयभीत यजमानोंको देखूँ। कहीं ऐसा न हो कि मेरे उन भक्तोंके सम्मुख देवताओंसे कोई भय उत्पन्न हो गया हो ॥ ४७-४८१/२ ॥

यह सोचकर अपनी बुद्धि स्थिर करके उन्होंने जयन्तीसे कहा—हे सुनयने! मेरे पुत्रसदृश दैत्यगण देवताओंके पास कालक्षेप कर रहे हैं। प्रतिज्ञानुसार तुम्हारे साथ रहनेका दस वर्षका समय पूरा हो चुका है, अतः हे देवि! अब मैं अपने यजमानोंसे मिलने जा रहा हूँ। हे सुमध्यमे! मैं पुनः तुम्हारे पास शीघ्र ही लौट आऊँगा ॥ ४९—५१ ॥

परम धर्मपरायणा जयन्तीने उनसे कहा—हे धर्मज्ञ! बहुत ठीक है, आप स्वेच्छापूर्वक जाइये। मैं आपका धर्म लुप्त नहीं होने दूँगी ॥ ५२ ॥

उसका यह वचन सुनकर शुक्राचार्य वहाँसे शीघ्रतापूर्वक चल पड़े। वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा कि दैत्योंके पास विराजमान होकर बृहस्पति छद्मरूप धारण करके शान्तचित्त हो छलसे उन्हें अपने द्वारा रचित जिनधर्म तथा यज्ञनिन्दापरक वचनोंकी शिक्षा इस प्रकार दे रहे हैं—'हे देवताओंके शत्रुगण! मैं सत्य तथा आपलोगोंके हितकी बात बता रहा हूँ कि अहिंसा सर्वोपरि धर्म है। आततायियोंको भी नहीं मारना चाहिये। भोगपरायण तथा अपनी जिह्वाके स्वादके लिये सदा तत्पर रहनेवाले द्विजोंने वेदमें पशुहिंसाका उल्लेख कर दिया है, किंतु सच्चाई यह है कि अहिंसाको ही सर्वोत्कृष्ट माना गया है' ॥ ५३—५६ ॥

इस प्रकारकी वेद-शास्त्रविरोधी बातें कहते हुए देवगुरु बृहस्पतिको देखकर वे भृगुपुत्र शुक्राचार्य आश्चर्यचकित हो गये। वे मन-ही-मन सोचने लगे कि यह देवगुरु तो मेरा शत्रु है। इस धूर्तने मेरे यजमानोंको अवश्य ठग लिया

है, इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५७-५८ ॥

नरकके द्वारस्वरूप तथा पापके बीजरूप उस उग्र लोभको धिक्कार है, जिस लोभरूप पापसे प्रेरित होकर देवगुरु बृहस्पति भी झूठ बोल रहे हैं ॥ ५९ ॥

जिनका वचन प्रमाण माना जाता है और जो समस्त देवताओंके गुरु तथा धर्मशास्त्रोंके प्रवर्तक हैं, वे भी पाखण्डके पोषक हो गये हैं ॥ ६० ॥

लोभसे विकृत मनवाला प्राणी क्या-क्या नहीं कर डालता। दूसरोंकी क्या बात, जबकि साक्षात् देवगुरु ही इस प्रकारके पाखण्डके पण्डित हो गये हैं। श्रेष्ठ ब्राह्मण होकर भी ये धूर्तोंकी सारी भाव-भंगिमाएँ बनाकर मेरे इन घोर अज्ञानी दैत्य यजमानोंको ठग रहे हैं ॥ ६१-६२ ॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत चतुर्थ स्कन्धका 'शुक्ररूपधारी बृहस्पतिद्वारा दैत्यवंचनावर्णन' नामक तेरहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ १३ ॥

चौदहवाँ अध्याय

शुक्राचार्यद्वारा दैत्योंको बृहस्पतिका पाखण्डपूर्ण कृत्य बताना, बृहस्पतिकी मायासे मोहित दैत्योंका उन्हें फटकारना, क्रुद्ध शुक्राचार्यका दैत्योंको शाप देना, बृहस्पतिका अन्तर्धान हो जाना, प्रह्लादका शुक्राचार्यजीसे क्षमा माँगना और शुक्राचार्यका उन्हें प्रारब्धकी बलवत्ता समझाना

व्यासजी बोले—मनमें ऐसा सोचकर उन दैत्योंसे शुक्राचार्यने हँसते हुए कहा—हे दैत्यगण! मेरा स्वरूप बनाये हुए इस देवगुरु बृहस्पतिने तुमलोगोंको ठग लिया क्या? शुक्राचार्य मैं हूँ और ये तो देवताओंका कार्य सिद्ध करनेवाले देवगुरु बृहस्पति हैं। हे मेरे यजमानो! इन्होंने तुम सबको अवश्य ठग लिया; इसमें सन्देह नहीं है। हे आर्यो! इनकी बातोंपर विश्वास मत करो। ये पाखण्डी हैं तथा मेरा स्वरूप बनाये हुए हैं। हे यजमानो! तुमलोग मेरा अनुसरण करो और इन बृहस्पतिका त्याग कर दो ॥ १—३ ॥

उनका यह वचन सुनकर और फिर उन दोनोंको समान रूपवाला देखकर सभी दैत्य महान् आश्चर्यमें पड़ गये। पुन: उन्होंने विचार किया कि हो सकता है ये ही शुक्राचार्य हों ॥ ४ ॥

इस प्रकार उन दैत्योंको अत्यन्त विस्मित देखकर [शुक्राचार्यरूपधारी] गुरु बृहस्पतिने यह बात कही—मेरा स्वरूप बनाये हुए ये देवगुरु बृहस्पति तुम सबको धोखा दे रहे हैं। ये देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके निमित्त तुमलोगोंको ठगनेके लिये आये हुए हैं। हे श्रेष्ठ दैत्यगण! तुमलोग इनकी बातपर विश्वास मत करो। मैंने शंकरजीसे विद्या प्राप्त कर ली है और उसे तुम सबको पढ़ा रहा हूँ। इस प्रकार मैं तुम्हें देवताओंपर विजय दिला दूँगा; इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५—७ ॥

शुक्राचार्यका रूप धारण करनेवाले देवगुरु बृहस्पतिका यह वाक्य सुनकर उन दैत्योंको पूर्ण विश्वास हो गया कि ये ही निश्चितरूपसे [हमारे गुरु] शुक्राचार्य हैं। उस समय शुक्राचार्यने उन्हें बहुत प्रकारसे समझाया फिर भी समयके फेरसे गुरु बृहस्पतिकी मायासे मोहित होनेके कारण वे दैत्य समझ नहीं सके ॥ ८-९ ॥

ऐसा निश्चय करनेके उपरान्त उन्होंने शुक्राचार्यसे कहा—ये ही हमारे गुरु हैं। ये धर्मात्मा हमें बुद्धि प्रदान

करनेवाले हैं और हमारा हित करनेमें तत्पर हैं। इन शुक्राचार्यजीने हमें निरन्तर दस वर्षतक शिक्षा दी है। तुम

चले जाओ, तुम धूर्त जान पड़ते हो; तुम हमारे गुरु बिलकुल नहीं हो सकते॥ १०-११॥

ऐसा कहकर उन मूर्ख दैत्योंने शुक्राचार्यको बार-बार फटकारा और बृहस्पतिको प्रेमपूर्वक प्रणाम तथा अभिवादन करके उन्हें ही अपना गुरु स्वीकार कर लिया॥ १२॥

देवगुरु बृहस्पतिने इन दैत्योंको पूर्णरूपसे सिखा-पढ़ा दिया है तथा इन्हें खूब ठगा है—ऐसा मानकर और इन्हें गुरु बृहस्पतिमें तन्मय देखकर शुक्राचार्य बहुत कुपित हुए और उन्होंने शाप दे दिया कि मेरे बार-बार समझानेपर भी तुमलोगोंने मेरी बात नहीं मानी, इसलिये नष्ट बुद्धिवाले तुम सब पराभवको प्राप्त होओगे। तुमलोग थोड़े ही समयमें मेरे तिरस्कारका फल पाओगे। तब इनका सारा कपट तुम सबको मालूम पड़ जायगा॥ १३—१५॥

व्यासजी बोले—ऐसा कहकर क्रोधमें भरे शुक्राचार्य तत्काल चल दिये और [शुक्राचार्यरूपधारी] बृहस्पति प्रसन्न होकर निश्चिन्तभावसे वहाँ रहने लगे॥ १६॥

तदनन्तर शुक्राचार्यके द्वारा उन दैत्योंको शापित हुआ जानकर गुरु बृहस्पति तत्काल उन्हें छोड़कर अपना रूप धारणकर वहाँसे चल पड़े। उन्होंने जाकर इन्द्रसे कहा—मैंने [आपका] सम्पूर्ण कार्य भलीभाँति बना दिया है। शुक्राचार्यने उन दैत्योंको शाप दे दिया और बादमें मैंने भी उनका त्याग कर दिया। अब मैंने उन्हें पूर्णरूपसे असहाय बना दिया है। अतः हे श्रेष्ठ देवतागण! आपलोग युद्धके लिये अब उद्योग करें। हे महाभाग! मैंने उन दैत्योंको शापसे दग्ध कर दिया है॥ १७—१९॥

गुरु बृहस्पतिका यह वचन सुनकर इन्द्र बहुत आनन्दित हुए और सभी देवता भी हर्षित हो उठे। तत्पश्चात् गुरु बृहस्पतिकी पूजा करके वे युद्धके लिये मन्त्रणा करने लगे। आपसमें भलीभाँति सोच-विचार करके सभी देवता एक साथ मिलकर दानवोंसे लड़नेके लिये वहाँसे निकल पड़े॥ २०-२१॥

उधर महाबली देवताओंको युद्धकी तैयारी करके आक्रमणके लिये उद्यत तथा शुक्राचार्यरूपधारी गुरु बृहस्पतिको अन्तर्हित जान करके दैत्यगण बहुत चिन्तित हुए॥ २२॥

अब उन देवगुरुकी मायासे मोहित वे दैत्य आपसमें कहने लगे कि वे गुरु शुक्राचार्य कुपितमन होकर यहाँसे चले गये, अतः हमें उन महात्माको भलीभाँति मनाना चाहिये॥ २३॥

वह पापी और कपटकार्यमें अत्यन्त प्रवीण देवगुरु हमें ठगकर चला गया। अपने भाईकी पत्नीके साथ अनाचार करनेवाला वह भीतरसे कलुषित है तथा ऊपरसे पवित्र प्रतीत होता है॥ २४॥

अब हम क्या करें और कहाँ जायँ? अत्यन्त कुपित गुरु शुक्राचार्यको अपनी सहायताके लिये हम किस तरह हर्षित तथा प्रसन्नचित्त करें॥ २५॥

ऐसा विचार करके वे सब एकजुट हुए। प्रह्लादको आगे करके भयसे काँपते हुए वे दैत्य पुनः भृगुपुत्र शुक्राचार्यके पास गये। [वहाँ पहुँचकर] उन्होंने मौन धारण किये हुए उन मुनिके चरणोंमें प्रणाम किया। तब क्रोधसे लाल नेत्रोंवाले शुक्राचार्य उनसे कहने लगे॥ २६-२७॥

हे यजमानो! मैंने तुमलोगोंको बहुत समझाया, किंतु देवगुरुकी मायासे व्यामुग्ध रहनेके कारण तुम-लोगोंने मेरा उचित, हितकर और निष्कपट वचन नहीं माना॥ २८॥

उस समय उनके वशवर्ती हुए तुम सबने मेरी अवहेलना की। मदसे उन्मत्त रहनेवाले तुम सबको मेरे अपमान करनेका फल अवश्य मिल गया॥ २९॥

तुमलोगोंका सर्वस्व छिन गया। अब तुमलोग वहींपर चले जाओ; जहाँ वह कपटी, छली और देवताओंका कार्य सिद्ध करनेवाला बृहस्पति विद्यमान है; मैं उसकी तरह वंचक नहीं हूँ॥ ३०॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार संदेहयुक्त वाणीमें बोलते हुए शुक्राचार्यके दोनों पैर पकड़कर प्रह्लाद उनसे कहने लगे—॥ ३१॥

प्रह्लाद बोले—हे भार्गव! हे सर्वज्ञ! अत्यन्त दुःखी होकर आज पास आये हुए अपने पुत्रतुल्य तथा हितचिन्तक हम यजमानोंका आप त्याग न करें॥ ३२॥

मन्त्र-प्राप्तिके लिये आपके चले जानेपर उस कपटी तथा दुष्टात्मा बृहस्पतिने आपकी वेश-भूषा तथा मधुर

वाणीके द्वारा हमलोगोंको खूब ठगा॥ ३३॥

शान्तिसम्पन्न व्यक्ति किसीके द्वारा अनजानमें किये गये अपराधसे कुपित नहीं होता। आप तो सर्वज्ञ हैं, अतः जानते ही हैं कि हमलोगोंका चित्त सदा आपमें ही अनुरक्त रहता है॥ ३४॥

अतः हे महामते! अपने तपोबलसे हमलोगोंका भाव जानकर आप क्रोधका त्याग कर दीजिये; क्योंकि सभी मुनिगण कहा करते हैं कि साधुपुरुषोंका क्रोध क्षणभरके लिये ही होता है॥ ३५॥

जल स्वभावसे शीतल होता है, किंतु अग्नि और धूपके संपर्कसे वह गर्म हो जाता है। वही जल आग तथा धूपका संयोग दूर होते ही पुनः शीतलता प्राप्त कर लेता है॥ ३६॥

क्रोध चाण्डालरूप होता है; बुद्धिमान् लोगोंको इसका पूर्णरूपसे त्याग कर देना चाहिये। अतः हे सुव्रत! क्रोध छोड़कर आप हमपर प्रसन्न हो जाइये॥ ३७॥

हे महाभाग! यदि आप क्रोधका त्याग नहीं करते बल्कि अत्यन्त दुःखित हमलोगोंका ही त्याग कर देते हैं, तो आपसे परित्यक्त होकर हम सब रसातलमें चले जायँगे॥ ३८॥

व्यासजी बोले—प्रह्लादका वचन सुनकर शुक्राचार्य ज्ञानदृष्टिसे सब कुछ देख करके प्रसन्नचित्त हो उनसे हँसते हुए बोले—॥ ३९॥

हे दानवो! तुमलोगोंको अब न तो डरना है और न रसातलमें ही जाना है। मैं अपने अचूक मन्त्रोंसे तुम सब यजमानोंकी निश्चय ही रक्षा करूँगा॥ ४०॥

हे धर्मज्ञो! पूर्वकालमें मैंने ब्रह्माजीसे जो सुना है, वह हितकर, सत्य तथा अटल बात मैं आपलोगोंको बता रहा हूँ, आपलोग मेरी वह बात सुनिये—॥ ४१॥

निश्चित रूपसे होनेवाली शुभ या अशुभ घटनाएँ होकर रहती हैं। धरातलपर कोई भी प्राणी प्रारब्धको टाल पानेमें समर्थ नहीं है॥ ४२॥

इसमें संदेह नहीं कि तुमलोग आज समयके फेरसे क्षीण बलवाले हो गये हो, अतः एक बार देवताओंसे पराजित होकर तुमलोगोंको पातालमें जाना ही पड़ेगा॥ ४३॥

अब तुमलोगोंका समय-परिवर्तन उपस्थित हुआ है, ऐसा ब्रह्माजीने कहा था। कुछ दिनों पूर्व तुमलोगोंने सब प्रकारसे समृद्ध राज्यसुखका भोग किया था। उस समय देवताओंपर आक्रमण करके [उन्हें पराजितकर] तुमलोगोंने दैवयोगसे पूरे दस युगोंतक इस दिव्य त्रिलोकीपर शासन किया था॥ ४४-४५॥

[अब आगे आनेवाले] सावर्णि मन्वन्तरमें तुम्हें वह राज्य पुनः प्राप्त होगा। तुम्हारा पौत्र बलि तीनों लोकोंमें विजयी होकर राज्यको पुनः प्राप्त कर लेगा॥ ४६॥

जिस समय वामनरूप धारण करके भगवान् विष्णुने [राजा बलिका राज्य] छीन लिया था, उस समय भगवान् विष्णुने आपके पौत्र बलिसे कहा था—हे बले! मैंने तुम्हारा यह राज्य देवताओंकी अभिलाषा पूरी करनेके लिये छीना है, किंतु आगे सावर्णि मन्वन्तरके उपस्थित होनेपर तुम इन्द्र होओगे॥ ४७-४८॥

शुक्राचार्य बोले—हे प्रह्लाद! भगवान् विष्णुके द्वारा ऐसा कहा गया तुम्हारा पौत्र बलि इस समय सभी प्राणियोंसे अदृश्य रहकर डरे हुएकी भाँति गुप्तरूपसे विचरण कर रहा है॥ ४९॥

एक समयकी बात है—इन्द्रसे भयभीत बलि गर्दभका रूप धारण करके एक सूने घरमें स्थित थे, तभी [वहाँ पहुँचकर] इन्द्र उन बलिसे बार-बार पूछने लगे—हे दैत्यश्रेष्ठ! आपने गर्दभका रूप क्यों धारण किया है? आप तो समस्त लोकोंका भोग करनेवाले और दैत्योंके शासक हैं। (हे राक्षसश्रेष्ठ! क्या गर्दभका रूप धारण करनेमें आपको लज्जा नहीं लगती?)॥ ५०-५१ $^{1}/_{2}$॥

तब इन्द्रकी वह बात सुनकर बलिने इन्द्रसे यह वचन कहा—हे शतक्रतो! इसमें शोक कैसा? जैसे महान् तेजस्वी भगवान् विष्णुने मत्स्य और कच्छपका रूप धारण किया था, उसी प्रकार मैं भी समयके फेरसे गर्दभरूपसे स्थित हूँ। जिस प्रकार तुम ब्रह्महत्यासे दुःखी होकर कमलमें छिपकर पड़े रहे, उसी तरह मैं भी आज गर्दभका रूप धारण करके स्थित हूँ। हे पाकशासन! दैवके अधीन रहनेवालोंको क्या दुःख और क्या सुख? दैव जिस रूपमें जो चाहता है, वैसा निश्चितरूपसे करता है॥ ५२—५५ १/२ ॥

शुक्राचार्य बोले—इस प्रकार बलि और देवराज इन्द्रने परस्पर उत्तम बातें करके परम सन्तुष्टि प्राप्त की और इसके बाद वे अपने-अपने स्थानको चले गये। यह मैंने तुमसे प्रारब्धकी बलवत्ताका भलीभाँति वर्णन कर दिया। देवताओं, असुरों और मानवोंसे युक्त सम्पूर्ण जगत् दैवके अधीन है॥ ५६—५८ ॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत चतुर्थ स्कन्धका 'प्रह्लादके द्वारा शुक्रकोपसान्त्वन' नामक चौदहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १४॥

पन्द्रहवाँ अध्याय

देवता और दैत्योंके युद्धमें दैत्योंकी विजय, इन्द्रद्वारा भगवतीकी स्तुति, भगवतीका प्रकट होकर दैत्योंके पास जाना, प्रह्लादद्वारा भगवतीकी स्तुति, देवीके आदेशसे दैत्योंका पातालगमन

व्यासजी बोले—उन महात्मा शुक्राचार्यका यह वचन सुनकर राजकुमार प्रह्लाद अत्यन्त हर्षित हुए। प्रारब्धको बलवान् मानकर प्रह्लादने उन दैत्योंसे कहा—युद्ध करनेपर भी विजय कभी नहीं होगी॥ १-२ ॥

तदनन्तर विजयकी अभिलाषा रखनेवाले उन दानवोंने अभिमानसे चूर होकर कहा—हमें तो निश्चितरूपसे संग्राम करना चाहिये। दैव क्या है! इसे हमलोग नहीं जानते। हे दानवेश्वर! उद्यमरहित लोगोंके लिये ही दैव प्रधान होता है। दैवको किसने देखा है, कहाँ देखा है, दैव कैसा है और उसे किसने बनाया है! अतएव अब हमलोग बलका आश्रय लेकर युद्ध करेंगे। हे दैत्यश्रेष्ठ! हे महामते! आप सर्वज्ञ हैं, आप केवल हमारे आगे रहें॥ ३—५ ॥

हे राजन्! तब उन दैत्योंके ऐसा कहनेपर महाबली शत्रुओंको भी मार डालनेवाले प्रह्लादने उनका सेनाध्यक्ष बनकर देवताओंको युद्धके लिये ललकारा॥ ६ ॥

दैत्योंको समरांगणमें डटे हुए देखकर उन सभी देवताओंने भी अपनी पूरी तैयारी कर ली और वे उनके साथ युद्ध करने लगे॥ ७ ॥

तदनन्तर इन्द्र और प्रह्लादका वह भीषण संग्राम पूरे सौ वर्षोंतक होता रहा। वह युद्ध मुनियोंको विस्मित कर देनेवाला था॥ ८ ॥

हे राजन्! शुक्राचार्यके द्वारा संरक्षित प्रह्लाद आदि प्रधान दैत्योंने उस हो रहे महायुद्धमें विजय प्राप्त की॥ ९ ॥

तब इन्द्रने गुरु बृहस्पतिके वचनानुसार सम्पूर्ण दुःखोंको दूर करनेवाली, मुक्ति देनेवाली तथा परम कल्याणस्वरूपिणी भगवतीका मन-ही-मन स्मरण किया॥ १० ॥

इन्द्र बोले—हे महामाये! हे शूलधारिणि! हे अम्बिके! हे शंख, चक्र, गदा, पद्म तथा खड्गसे सुशोभित हाथोंवाली! हे अभय प्रदान करनेवाली! हे देवि! आपकी जय हो॥ ११ ॥

हे भुवनेश्वरि! हे शक्ति! हे शाक्तादि छः दर्शनोंकी नायिकास्वरूपिणि! हे दस तत्त्वोंकी अधिष्ठातृदेवि! हे महाबिन्दुस्वरूपिणि! हे माता! आपको नमस्कार है॥ १२ ॥

हे महाकुण्डलिनीस्वरूपे! हे सच्चिदानन्दरूपिणि! हे प्राणाग्निहोत्रविद्ये! हे दीपशिखात्मिके! हे [अन्नमय, मनोमय, प्राणमय, विज्ञानमय, आनन्दमय] पंचकोशोंमें सदा विराजमान रहनेवाली! हे पुच्छब्रह्मस्वरूपिणि! हे आनन्दकलिके! सभी उपनिषदोंद्वारा स्तुत हे माता! आपको नमस्कार है॥ १३-१४ ॥

हे माता! आप हमपर प्रसन्न होनेकी कृपा करें

और प्रफुल्लित मुखमण्डलवाली हो जायँ। हे जननि! दैत्योंसे पराजित हम निर्बलोंकी रक्षा कीजिये। हे देवि! एकमात्र आप ही हमें शरण प्रदान करनेवाली हैं; आप संसारमें प्रमाणस्वरूपा हैं। हे समस्त पराक्रमोंसे युक्त भगवति! हमलोगोंका दु:ख दूर करनेमें आप पूर्ण समर्थ हैं॥ १५॥

जो भी आपका ध्यान करते हैं, वे परम सुखी हो जाते हैं; और [आपकी उपासना न करनेवाले] दूसरे लोग दु:खी तथा शोक और भयसे युक्त रहते हैं। मोक्षकी अभिलाषा रखनेवाले अहंकारशून्य तथा आसक्तिरहित संतलोग संसार-सागरके असीम जलको पार कर लेते हैं॥ १६॥

हे देवि! हे विश्वजननि! आप विस्तृत प्रभाववाली हैं। भक्तोंकी रक्षाके लिये आप प्रकट हो जाती हैं। आप भक्तजनोंका दु:ख दूर करनेमें समर्थप्रतापवाली हैं। इस सम्पूर्ण जगत्का संहार करनेके लिये आप कालस्वरूपिणी हैं। हे अम्ब! कौन मन्दबुद्धि प्राणी आपका चरित्र जान सकता है?॥ १७॥

ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सूर्य, इन्द्र, यम, वरुण, अग्नि, वायु, निगम, आगम तथा महातपस्वी मुनिगण भी आपकी अनुपम महिमाको जाननेमें समर्थ नहीं हैं॥ १८॥

हे उमे! जो आपकी भक्तिमें तत्पर हैं, वे ही परम धन्य हैं और सांसारिक दु:खोंसे मुक्त होकर सुखके समुद्रमें डूबे रहते हैं; किंतु जो लोग आपकी भक्तिभावनासे वंचित हैं, वे जन्म-मरणरूपी तरंगोंवाले दु:खमय भवसागरको कभी भी पार नहीं कर सकते॥ १९॥

जिन भाग्यशाली लोगोंके ऊपर स्वच्छ चँवर डुलाये जा रहे हैं, जो हास-विलासका सुख भोग रहे हैं तथा जो सुन्दर यानोंपर सवारी कर रहे हैं—उनके विषयमें मैं तो यही सोचता हूँ कि उन्होंने पूर्वजन्ममें अनेकविध पूजनोपचारोंसे निश्चय ही आपकी पूजा की है॥ २०॥

पूजित होते हुए जो लोग उत्तम हाथियोंपर विराजमान रहते हैं, जो रमणियोंके साथ आमोद-प्रमोदमें संलग्न हैं और जो विनम्र सामंतोंके साथ चलते हैं, मैं मानता हूँ कि उन्होंने अवश्य आपकी पूजा की है॥ २१॥

व्यासजी बोले—तब इन्द्रके इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवती विश्वेश्वरी तुरंत प्रकट हो गयीं। उस समय वे सिंहपर बैठी हुई थीं; वे चार भुजाओंसे युक्त थीं; उन्होंने शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण कर रखा था; उनके नेत्र सुन्दर थे; वे लाल वस्त्र पहने हुए थीं और वे देवी दिव्य मालाओंसे विभूषित थीं॥ २२-२३॥

प्रसन्न मुखमण्डलवाली भगवतीने उन देवताओंसे कहा—हे देवताओ! आपलोग भयका त्याग कर दें, अब मैं आपलोगोंका कल्याण अवश्य करूँगी॥ २४॥

तब ऐसा कहकर सिंहपर सवार वे परम सुन्दर भगवती तुरंत वहाँ चल पड़ीं, जहाँ अभिमानी दानव विद्यमान थे॥ २५॥

प्रह्लाद आदि सभी प्रमुख दानव भगवतीको सामने स्थित देखकर भयभीत हो आपसमें कहने लगे कि अब हमें क्या करना चाहिये?॥ २६॥

सम्भवत: यह चण्डिका भगवान् नारायणसे मिलकर यहाँ आयी है। इसीने महिषासुरका वध किया था तथा चण्ड-मुण्डका विनाश किया था। जिसने पूर्वकालमें अपनी वक्रदृष्टिसे मधु-कैटभका संहार कर डाला था, वह अम्बिका हम सबको अवश्य मार डालेगी॥ २७-२८॥

इस प्रकार उन्हें चिन्तासे व्याकुल देखकर प्रह्लादने उनसे कहा—हे श्रेष्ठ दानवो! इस समय हमें युद्ध नहीं करना चाहिये, बल्कि भागकर यहाँसे चले जाना चाहिये॥ २९॥

तब भागनेकी चेष्टा करनेवाले उन दैत्योंसे नमुचिने कहा—ये जगन्माता भगवती कुपित होकर शस्त्रोंसे हमलोगोंका संहार अवश्य कर देंगी। [इसके बाद उसने प्रह्लादसे कहा—] हे महाभाग! आप ऐसा उपाय करें, जिससे हमलोगोंको दु:ख न मिले। उन भगवतीकी स्तुति करके उनकी आज्ञासे हमलोग इसी क्षण पातालके लिये प्रस्थान कर दें॥ ३०-३१॥

प्रह्लाद बोले—सृष्टि, पालन और संहार करनेवाली, सभी प्राणियोंकी माता तथा भक्तोंको अभय प्रदान करनेवाली शक्तिस्वरूपा भगवती महामायाकी मैं स्तुति करता हूँ॥ ३२॥

व्यासजी बोले—ऐसा कहकर परमार्थवेत्ता विष्णुभक्त

प्रह्लाद दोनों हाथ जोड़कर जगज्जननी भगवतीकी स्तुति करने लगे— ॥ ३३ ॥

जिनमें यह सम्पूर्ण चराचर जगत् मालामें सर्पकी भाँति प्रतीत हो रहा है, सबकी अधिष्ठानस्वरूपा उन 'ह्रीं' मूर्तिधारिणी भगवतीको नमस्कार है॥ ३४ ॥

यह स्थावर-जंगमात्मक सम्पूर्ण विश्व आपसे ही उत्पन्न हुआ है। जो दूसरे कर्ता हैं, वे तो निमित्तमात्र हैं; क्योंकि वे भी आपके बनाये हुए हैं॥ ३५ ॥

हे देवि! आपको नमस्कार है। हे महामाये! आप सभी प्राणियोंकी जननी कही गयी हैं। स्वयं आपके ही द्वारा बनाये गये देवताओं और दैत्योंमें आपका यह कैसा भेदभाव!॥ ३६ ॥

पुत्र अच्छे हों अथवा बुरे, उनमें माताका कैसा भेदभाव? उसी प्रकार देवताओं और हम दैत्योंमें आपको इस समय भेदभाव नहीं करना चाहिये॥ ३७ ॥

हे माता! दानव चाहे जिस किसी भी प्रकारके हों, किंतु वे आपके ही पुत्र हैं; क्योंकि आप पुराणोंमें विश्वजननी बतायी गयी हैं॥ ३८ ॥

वे देवता भी तो निश्चितरूपसे वैसे ही स्वार्थी हैं जैसे हम दैत्यगण। देवताओं और दैत्योंमें अन्तर नहीं है। यह भेद केवल मोहजनित है॥ ३९ ॥

जैसे हमलोग धन, स्त्री आदिके भोगोंमें दिन-रात आसक्त रहते हैं, वैसे ही देवता भी तो [विषय-भोगोंमें लीन] रहते हैं। अत: हे देवेश्वरि! असुरों और देवताओंमें भेद कैसा?॥ ४० ॥

वे भी कश्यपजीकी संतान हैं और हम भी उन्हीं कश्यपजीसे उत्पन्न हुए हैं। हे माता! ऐसी स्थितिमें हमारे प्रति आपके मनमें यह विरोधभाव कैसे उत्पन्न हो गया?॥ ४१ ॥

हे माता! जब सबकी उत्पत्तिमें आप ही मूल कारण हैं, तो इस प्रकार भेद करना आपके लिये उचित नहीं है। देवताओं तथा हम दैत्योंमें आपको समान व्यवहार रखना चाहिये॥ ४२ ॥

गुणोंसे सम्बन्ध होनेके कारण ही सम्पूर्ण देवता तथा दैत्य उत्पन्न हुए हैं। तब गुणोंसे युक्त केवल वे देहधारी देवता ही आपके प्रिय क्यों हैं?॥ ४३ ॥

काम, क्रोध और लोभ सभी प्राणियोंके भीतर सदा विद्यमान रहते हैं। अत: कौन व्यक्ति विरोधभावसे शून्य रह सकता है? ॥ ४४ ॥

मैं तो समझता हूँ कि अपने विनोदके लिये आपने ही युद्ध देखनेकी इच्छासे निश्चय ही [हम दैत्यों तथा देवताओंके बीच] भेद उत्पन्न करके परस्पर यह विरोधभाव पैदा कर दिया है। अन्यथा हे अनघे! भाइयोंमें परस्पर विरोध कैसा? हे चामुण्डे! यदि आप [दैत्यों तथा देवताओंमें] कलह देखना न चाहतीं तो यह विरोधभाव नहीं होता॥ ४५-४६ ॥

हे धर्मज्ञे! मैं धर्मको जानता हूँ और इन्द्रको भी भलीभाँति जानता हूँ, तथापि हे देवि! भोगके लिये हमलोगोंके बीच कलह सदासे होता रहा है॥ ४७ ॥

हे अम्बिके! आपके अतिरिक्त संसारमें कोई भी एक शासक नहीं है। कौन बुद्धिमान् प्राणी किसी लोभीकी बातपर विश्वास करेगा? किसी समयकी बात है देवताओं और असुरोंने मिलकर इस समुद्रका मन्थन किया। किंतु विष्णुने अमृतरत्नके विभाजनमें छलपूर्वक देवताओं और असुरोंमें भेदभाव किया॥ ४८-४९ ॥

आपने पालन-कार्यके लिये विष्णुको जगद्गुरु बनाया है, किंतु उन्होंने लोभवश दिव्य सुन्दरी लक्ष्मीको स्वयं अपना लिया॥ ५० ॥

उसी प्रकार विष्णुकी ही इच्छासे इन्द्रने ऐरावत हाथी, पारिजात, कामधेनु तथा उच्चै:श्रवा घोड़ेको ले लिया तथा अन्य देवताओंने शेष सब कुछ ग्रहण कर लिया॥ ५१ ॥

इस प्रकारका अन्याय करके देवता साधु बन गये! (यदि आप धर्मका लक्षण देखें तो उससे ज्ञात हो जायगा कि देवता निश्चितरूपसे अन्यायी हैं।) महाभिमानी विष्णुने ऐसे अन्यायी देवताओंको उच्च स्थानोंपर प्रतिष्ठित किया। इसके विपरीत दैत्यगण पराभूत हुए; अब आप ही धर्मका लक्षण देख लीजिये। धर्म कहाँ है, धर्मका स्वरूप कैसा है, कैसा कार्य हुआ है और साधुता कहाँ है?॥ ५२-५३ ॥

अब मैं किसके आगे अपनी बात कहूँ? मैमांसिक मत तो प्रसिद्ध ही है। [मीमांसक निरीश्वरवादका समर्थन करते हैं] नैयायिक विद्वान् युक्तिवादके ज्ञाता और वैदिक विद्वान् विधिके ज्ञाता कहे गये हैं। कुछ लोग विश्वको सकर्तृक मानते हैं। [उनमें कुछ लोग विश्वका रचयिता 'पुरुष' को और कुछ लोग 'प्रकृति' को बताते हैं] जड़वादी लोग इससे विपरीत प्रकारकी बात करते हैं। यदि इस विस्तृत संसारमें कोई एक कर्ता होता तो एक ही कर्मके विषयमें लोगोंमें परस्पर विरोध कैसे होता? वेदमें एक मत नहीं है और उसी प्रकार शास्त्रोंमें भी मतैक्य नहीं है। उन वेदविदोंके वचनमें भी एकवाक्यता नहीं है; क्योंकि यह समस्त स्थावर-जंगमात्मक जगत् ही स्वार्थपरायण है। संसारमें कोई भी न तो निःस्पृह हुआ है और न होगा॥ ५४—५७१/२ ॥

चन्द्रमाने जान-बूझकर अपने गुरु बृहस्पतिकी भार्याका बलपूर्वक हरण कर लिया। उसी प्रकार धर्मका निर्णय जानते हुए भी इन्द्रने महर्षि गौतमकी पत्नीके साथ अनाचार किया। देवगुरु बृहस्पतिने अपने छोटे भाईकी गर्भवती भार्याके साथ रमण किया और गर्भस्थ शिशुको शाप दे दिया तथा उसे अन्धा बना दिया॥ ५८-५९१/२ ॥

हे अम्बिके! सत्त्व-सम्पन्न होते हुए भी विष्णुने बलपूर्वक सुदर्शनचक्रसे निरपराध राहुका सिर काट लिया। मेरा पौत्र बलि धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ, वीर, सत्यव्रतमें संलग्न रहनेवाला, यज्ञकर्ता, महादानी, शान्त, सर्वज्ञ तथा सबका सम्मान करनेवाला था। पूर्वकालमें कपटज्ञानी विष्णुने वामनका रूप धारण करके उस बलिके साथ भी छल किया और उसका सारा राज्य छीन लिया। फिर भी विद्वान् लोग देवताओंको धर्मनिष्ठ कहते हैं और चाटुकारितापूर्ण वचन बोलते हैं कि धर्मवादी होनेके कारण ही देवता विजयको प्राप्त हुए। हे जगज्जननि! यह सब सोच-समझकर आप जैसा चाहें, वैसा करें। सभी दानव आपकी शरणमें हैं, अब आप उनका संहार करें अथवा उनकी रक्षा करें॥ ६०—६४१/२ ॥

श्रीदेवी बोलीं—हे दानवो! तुम सबलोग पाताल चले जाओ और वहाँपर निर्भय तथा शोकरहित होकर इच्छानुसार निवास करो। अभी तुमलोगोंको समयकी प्रतीक्षा करनी चाहिये। वह काल ही अच्छे या बुरे कार्यमें कारण बनता है॥ ६५-६६ ॥

परम सन्तोषी लोगोंको सभी जगह सदा सुख-ही-सुख है, किंतु लोभयुक्त मनवाले लोगोंको तीनों लोकोंका राज्य मिल जानेपर भी सुख नहीं प्राप्त होता। सत्ययुगमें भी नानाविध भोगोंके रहते प्रबल कामनावाले लोगोंका सुख कभी पूरा नहीं हुआ। अतः सभी दैत्य मेरी आज्ञा मानकर इस पृथ्वीको छोड़कर अभी पातालमें चले जायँ और वहाँ निष्पाप होकर रहें॥ ६७-६८ ॥

व्यासजी बोले—भगवतीका यह वचन सुनकर सभी दानवोंने 'ठीक है'—ऐसा कहकर उन्हें प्रणाम किया और उनकी शक्तिसे रक्षित होकर वे वहाँसे चल पड़े। तत्पश्चात् भगवती अन्तर्धान हो गयीं और देवता अपने-अपने लोक चले गये। उस समय सभी देवता तथा दानव वैर-भाव छोड़कर रहने लगे॥ ६९-७०१/२ ॥

जो मनुष्य इस सम्पूर्ण कथानकको सुनता अथवा कहता है, वह सभी दुःखोंसे मुक्त होकर परमपद प्राप्त कर लेता है॥ ७१-७२ ॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत चतुर्थ स्कन्धका 'देवीके कहनेसे दानवोंका रसातलगमन' नामक पन्द्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १५ ॥

सोलहवाँ अध्याय

भगवान् श्रीहरिके विविध अवतारोंका संक्षिप्त वर्णन

जनमेजय बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! हे विभो! अद्भुत चरित्रवाले भगवान् विष्णुने भृगुके शापसे किस मन्वन्तरमें किस प्रकार अवतार ग्रहण किये। हे धर्मज्ञ! हे ब्रह्मन्! श्रवण करनेपर समस्त सुख सुलभ करानेवाली तथा पापोंका नाश कर देनेवाली भगवान् विष्णुकी अवतार-कथाका विस्तारसे वर्णन कीजिये॥ १-२॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! हे नराधिप! जिस मन्वन्तर तथा जिस युगमें जैसे-जैसे भगवान् विष्णुके अवतार हुए हैं, उन अवतारोंको मैं बता रहा हूँ, आप सुनें। हे नृप! भगवान् नारायणने जिस रूपसे जो कार्य किया, वह सब मैं आपको इस समय संक्षेपमें बताता हूँ॥ ३-४॥

चाक्षुष मन्वन्तरमें साक्षात् विष्णुका धर्मावतार हुआ था। उस समय वे धर्मपुत्र होकर नर-नारायण नामसे धरातलपर विख्यात हुए॥ ५॥

इस वैवस्वत मन्वन्तरके दूसरे चतुर्युगमें भगवान्का दत्तात्रेयावतार हुआ। वे भगवान् श्रीहरि महर्षि अत्रिके पुत्ररूपमें अवतीर्ण हुए॥ ६॥

उन अत्रिमुनिकी भार्या अनसूयाकी प्रार्थनापर ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश—ये तीनों महान् देवता उनके पुत्ररूपमें उत्पन्न हुए थे॥ ७॥

अत्रिकी पत्नी साध्वी अनसूया सती स्त्रियोंमें श्रेष्ठ थीं, जिनके सम्यक् रूपसे प्रार्थना करनेपर वे तीनों देवता उनके पुत्ररूपमें अवतरित हुए॥ ८॥

उनमें ब्रह्माजी सोम (चन्द्रमा)-रूपमें, साक्षात् विष्णु दत्तात्रेयके रूपमें और शंकरजी दुर्वासाके रूपमें उनके यहाँ पुत्रत्वको प्राप्त हुए॥ ९॥

देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये चौथे चतुर्युगमें दो प्रकारके रूपोंवाला मनोहर नृसिंहावतार हुआ। भगवान् श्रीविष्णुने उस समय हिरण्यकशिपुका सम्यक् वध करनेके लिये ही देवताओंको भी चकित कर देनेवाला नारसिंहरूप धारण किया था॥ १०-११॥

भगवान् विष्णुने दैत्यराज बलिका शमन करनेके उद्देश्यसे उत्तम त्रेतायुगमें कश्यपमुनिके यहाँ वामनरूपसे अवतार धारण किया था। उन वामनरूपधारी विष्णुने यज्ञमें राजा बलिको छलकर उनका राज्य हर लिया और उन्हें पातालमें स्थापित कर दिया॥ १२-१३॥

उन्नीसवें चतुर्युगके त्रेता नामक युगमें भगवान् विष्णु महर्षि जमदग्निके परशुराम नामक महाबली पुत्रके रूपमें उत्पन्न हुए॥ १४॥

क्षत्रियोंका नाश कर डालनेवाले उन प्रतापी, सत्यवादी तथा जितेन्द्रिय परशुरामने सम्पूर्ण पृथ्वी [क्षत्रियोंसे छीनकर] महात्मा कश्यपको दे दी थी॥ १५॥

हे राजेन्द्र! मैंने अद्भुत कर्मवाले भगवान् विष्णुके पापनाशक 'परशुराम' नामक अवतारका यह वर्णन कर दिया॥ १६॥

भगवान् विष्णुने त्रेतायुगमें रघुके वंशमें दशरथपुत्र रामके रूपमें अवतार धारण किया था। इसी प्रकार अट्ठाईसवें द्वापरयुगमें साक्षात् नर तथा नारायणके अंशसे कल्याणप्रद तथा महाबली अर्जुन और श्रीकृष्ण पृथ्वीतलपर अवतीर्ण हुए। श्रीकृष्ण तथा अर्जुनने पृथ्वीका भार उतारनेके लिये ही भूमण्डलपर अवतार लिया और कुरुक्षेत्रमें अत्यन्त भयंकर महायुद्ध किया॥ १७-१८ $^{1}/_{2}$॥

हे राजन्! इस प्रकार प्रकृतिके आदेशानुसार युग-युगमें भगवान् विष्णुके अनेक अवतार हुआ करते हैं। यह सम्पूर्ण त्रिलोकी प्रकृतिके अधीन रहती है। ये भगवती प्रकृति जैसे चाहती हैं वैसे ही जगत्को निरन्तर नचाया करती हैं। परमपुरुषकी प्रसन्नताके लिये ही वे समस्त संसारकी रचना करती हैं॥ १९—२१॥

प्राचीनकालमें इस चराचर जगत्का सृजन करके सबके आदिरूप, सर्वत्र गमन करनेवाले, दुर्ज्ञेय, महान्, अविनाशी, स्वतन्त्र, निराकार, निःस्पृह और परात्पर वे भगवान् जिन मायारूपिणी भगवतीके संयोगसे उपाधिरूपमें [ब्रह्मा, विष्णु, महेश] तीन प्रकारके प्रतीत होते हैं, वे ही 'परा प्रकृति' हैं॥ २२-२३॥

उत्पत्ति और कालके योगसे ही वे कल्याणमयी प्रकृति उस परमात्मासे भिन्न भासती हैं। सबका मनोरथ पूर्ण करनेवाली वे प्रकृति ही विश्वकी रचना करती हैं, सम्यक् रूपसे पालन करती हैं और कल्पके अन्तमें संहार भी कर देती हैं। इस प्रकार वे विश्वमोहिनी भगवती प्रकृति ही तीन रूपोंमें विराजमान रहती हैं। उन्हींसे संयुक्त होकर ब्रह्माने जगत्‌की सृष्टि की है, उन्हींसे सम्बद्ध होकर विष्णु पालन करते हैं और उन्हींके साथ मिलकर कल्याणकारी रुद्र संहार करते हैं॥ २४-२५ १/२ ॥

पूर्वकालमें उन भगवती परा प्रकृतिने ही ककुत्स्थवंशी नृपश्रेष्ठको उत्पन्न करके दानवोंको पराजित करनेके लिये उन्हें कहींपर स्थापित कर दिया। इस प्रकार इस संसारमें सभी प्राणी विधिके नियमोंमें बँधकर सदा सुख तथा दुःखसे युक्त रहते हैं॥ २६—२८॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत चतुर्थ स्कन्धका 'हरिके नाना अवतारोंका वर्णन' नामक सोलहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १६॥

सत्रहवाँ अध्याय

श्रीनारायणद्वारा अप्सराओंको वरदान देना, राजा जनमेजयद्वारा व्यासजीसे श्रीकृष्णावतारका चरित सुनानेका निवेदन करना

जनमेजय बोले—हे मुने! आप नर-नारायणके आश्रममें आयी हुई अप्सराओंकी चर्चा पहले ही कर चुके हैं, जो काम-पीड़ित होकर शान्तचित्त मुनि नारायणपर आसक्त हो गयी थीं। उसके बाद मुनि नारायण उन्हें शाप देनेको उद्यत हो गये। इसपर उनके भाई धर्मवेत्ता नरने उन्हें ऐसा करनेसे रोक दिया था॥ १-२॥

हे मुने! अत्यन्त कामासक्त उन अप्सराओं के द्वारा [अपने मनमें पतिरूपमें] संकल्पित किये गये उन मुनि नारायणने इस विषम संकटके उपस्थित होनेपर क्या किया? इन्द्रके द्वारा प्रेषित उन वारांगनाओंके बार-बार बहुत प्रार्थना करके विवाहके लिये याचित उन भगवान् नारायणमुनिने क्या किया? हे पितामह! मैं उन नारायणमुनिका यह मोक्षदायक चरित्र सुनना चाहता हूँ; विस्तारके साथ मुझे बतायें॥ ३—५॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! सुनिये, मैं बताऊँगा। हे धर्मज्ञ! उन महात्मा धर्मपुत्र नारायणका चरित्र विस्तारपूर्वक मैं आपको बता रहा हूँ॥ ६॥

जब नरने मुनि नारायणको शाप देनेके लिये उद्यत देखा तब उन्होंने नारायणको आश्वासन देकर [वैसा करनेसे] रोक दिया॥ ७॥

तत्पश्चात् क्रोधके शान्त हो जानेपर महामुनि तपस्वी धर्मपुत्र नारायण उन अप्सराओंसे मन्द-मन्द मुसकराते हुए यह मधुर वचन कहने लगे—॥ ८॥

हे सुन्दरियो! हमने इस जन्ममें संकल्प कर रखा है कि हम दोनों कभी भी विवाह नहीं करेंगे। अत: मेरे ऊपर कृपा करके आपलोग स्वर्ग लौट जायँ। धर्मज्ञ लोग दूसरेका व्रत भंग नहीं करते॥ ९-१०॥

हे सुन्दर नेत्रोंवाली! इस शृंगार-रसमें रतिको ही स्थायी भाव कहा गया है। अत: [ब्रह्मचर्यव्रत धारण करनेके कारण] उसके अभावमें मैं सम्बन्ध कैसे कर सकता हूँ?॥ ११॥

कारणके बिना कार्य नहीं हो सकता है—यह सुनिश्चित है। कवियोंने शास्त्रमें कहा है कि स्थायीभाव ही रसस्वरूप है॥ १२॥

समस्त सुन्दर अंगोंवाला मैं इस धरातलपर धन्य तथा सौभाग्यशाली हूँ जो कि आपलोगोंका स्वाभाविक प्रीतिपात्र बन सका॥ १३॥

हे महाभागाओ! आपलोग कृपा करके मेरे व्रतकी रक्षा करें। मैं दूसरे जन्ममें आपलोगोंका पति अवश्य बनूँगा॥ १४॥

हे विशाल नेत्रोंवाली सुन्दरियो! देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये मैं अट्ठाईसवें द्वापरमें इस धरातलपर निश्चितरूपसे अवतरित होऊँगा॥ १५॥

उस समय आपलोग भी राजाओंकी कन्याएँ होकर पृथक्-पृथक् जन्म ग्रहण करेंगी और मेरी भार्याएँ बनकर पत्नी-भावको प्राप्त होंगी॥ १६॥

पाणिग्रहणका ऐसा आश्वासन देकर भगवान् नारायण-मुनिने उन्हें विदा किया और वे अप्सराएँ भी कामव्यथासे रहित होकर वहाँसे चली गयीं॥ १७॥

इस प्रकार उनसे विदा पाकर वे अप्सराएँ स्वर्ग पहुँचीं और फिर उन्होंने इन्द्रको सारा वृत्तान्त बता दिया॥ १८॥

तदनन्तर उन अप्सराओंसे नारायणमुनिका वृत्तान्त विस्तारपूर्वक सुनकर तथा साथमें आयी उर्वशी आदि नारियोंको देखकर इन्द्र उन महात्मा नारायणकी प्रशंसा करने लगे॥ १९॥

इन्द्र बोले—अहो, उन मुनिका ऐसा अपार धैर्य तथा तपोबल है, जिन्होंने अपने तपके प्रभावसे उन्हीं अप्सराओंके सदृश रूपवाली अन्य उर्वशी आदि अप्सराएँ उत्पन्न कर दीं। नारायणमुनिकी यह प्रशंसा करके देवराज इन्द्रका मन प्रसन्नतासे परिपूर्ण हो गया। उधर, धर्मात्मा नारायण भी तपस्यामें संलग्न हो गये॥ २०-२१॥

[हे राजन्!] इस प्रकार मैंने आपसे मुनि नारायण और महामुनि नरके सम्पूर्ण अद्भुत वृत्तान्तका वर्णन कर दिया॥ २२॥

हे भरतश्रेष्ठ! वे ही नर-नारायण भृगुके शापवश पृथ्वीका भार उतारनेके लिये इस लोकमें पराक्रमी कृष्ण तथा अर्जुनके रूपमें अवतरित हुए थे॥ २३॥

राजा बोले—हे मानद! अब आप कृष्णावतारकी कथा विस्तारके साथ मुझसे कहिये और मेरे मनमें जो सन्देह है, उसका निवारण कीजिये॥ २४॥

हे मुने! महाबली श्रीकृष्ण और बलराम जिनके पुत्ररूपमें उत्पन्न हुए, उन वसुदेव और देवकीको दुःखका भागी क्यों होना पड़ा?॥ २५॥

जिनकी तपस्यासे सन्तुष्ट होकर साक्षात् भगवान् श्रीहरि उनके पुत्र बने थे, वे ही [वसुदेव और देवकी] बेड़ियोंमें बद्ध होकर कंसके द्वारा बहुत वर्षोंतक क्यों सताये गये?॥ २६॥

वे श्रीकृष्ण उत्पन्न तो मथुरामें हुए, किंतु गोकुल क्यों ले जाये गये? बादमें कंसका वध करके उन्होंने द्वारकामें निवास क्यों किया? अपने पिता आदिके द्वारा सेवित, समृद्धिसम्पन्न तथा पवित्र स्थानको छोड़कर वे भगवान् श्रीकृष्ण दूसरे अनार्य देशमें क्यों चले गये?॥ २७-२८॥

एक ब्राह्मणके शापसे भगवान् श्रीकृष्णके वंशका नाश क्यों हो गया? पृथ्वीका भार उतारकर उन सनातन भगवान् श्रीकृष्णने तुरंत देहत्याग कर दिया और वे स्वर्ग चले गये। जिन पापियोंके भारसे पृथ्वी व्याकुल हो उठी थी, उन्हें तो अमित कर्मोंवाले भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनने मार डाला था, किंतु जिन चोरोंने भगवान् श्रीकृष्णकी पत्नियोंका अपहरण कर लिया था, उन्हें वे क्यों नहीं मार सके?॥ २९—३१॥

हे मुने! भीष्म, द्रोण, कर्ण, राजा बाह्लीक, वैराट, विकर्ण, राजा धृष्टद्युम्न, सोमदत्त आदि सभी राजागण युद्धमें मार डाले गये। भगवान् श्रीकृष्णने उनका भार तो पृथ्वीपरसे उतार दिया, किंतु वे चोरोंका भार क्यों नहीं मिटा सके? कृष्णकी पतिव्रता पत्नियोंको निर्जन स्थानमें इस प्रकारका दुःख क्यों मिला? हे मुनिश्रेष्ठ! मेरे मनमें यह संदेह बार-बार हो रहा है॥ ३२—३४॥

धर्मात्मा वसुदेवने पुत्रशोकसे सन्तप्त होकर अपने प्राण त्याग दिये; इस प्रकार वे अकालमृत्युको क्यों प्राप्त हुए?॥ ३५॥

हे मुनिवर! पाण्डव धर्मनिष्ठ थे और भगवान् कृष्णमें सदा तल्लीन रहते थे; फिर भी उन्हें दुःख क्यों भोगना पड़ा?॥ ३६॥

महाभागा द्रौपदीको दुःख क्यों सहने पड़े? वह तो साक्षात् लक्ष्मीके अंशसे उत्पन्न थी और वेदीके मध्यसे

प्रकट हुई थी। रजोधर्मसे युक्त उस युवती द्रौपदीको उसके बाल पकड़कर घसीटते हुए दुःशासन सभामें ले आया था। वनमें गयी हुई उस पतिव्रताको सिन्धुराज जयद्रथने सताया, उसी प्रकार [अज्ञातवासके समय] कीचकने भी रोती-कलपती उस द्रौपदीको बहुत पीड़ा पहुँचायी। अश्वत्थामाने घरके अन्दर ही उसके पाँच पुत्रोंको मार डाला। सुभद्रापुत्र अभिमन्यु बाल्यावस्थामें ही युद्धमें मार डाला गया। उसी प्रकार कंसने देवकीके छः पुत्रोंका वध कर दिया। किंतु [सब कुछ करनेमें] समर्थ होते हुए भी भगवान् श्रीकृष्ण प्रारब्धको नहीं टाल सके॥ ३७—४१॥

यादवोंको शाप मिला और इसके बाद प्रभास-क्षेत्रमें उनका निधन हो गया। इस प्रकार भयंकर कुलनाश हो गया और अन्तमें उनकी पत्नियोंका हरण भी हो गया। भगवान् कृष्ण स्वयं नारायण, ईश्वर और विष्णु थे; फिर भी उन्होंने दासकी भाँति उग्रसेनकी सदा सेवा की। हे महाभाग! मुनि नारायणके विषयमें मुझे यह सन्देह है कि आचार-व्यवहारमें वे सदा साधारण प्राणियोंके समान ही रहते थे॥ ४२—४४॥

सभी प्राणियोंके समान हर्ष-शोकादि भाव उनमें भी क्यों थे? उन भगवान् श्रीकृष्णकी भी यह अन्यथा गति क्यों हुई?॥ ४५॥

अतः आप श्रीकृष्णके महान् चरित्रका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये और उन लोकोत्तर भगवान्‌के द्वारा पृथ्वीतलपर किये गये कर्मोंको भी बताइये॥ ४६॥

हे मुनिश्रेष्ठ! भगवान् श्रीकृष्ण दैत्योंकी आयु समाप्त होनेपर भी बड़े कष्टसे उन्हें मार पाये। उस समय उनकी विख्यात ईश्वरीय शक्ति कहाँ थी?॥ ४७॥

रुक्मिणीहरणके समय वे वासुदेव श्रीकृष्ण उसे लेकर भाग गये थे। उस समय तो उन्होंने चौर-तुल्य आचरण किया था॥ ४८॥

समृद्धिशाली तथा अपने पूर्वजोंके द्वारा प्रतिष्ठित किये गये मथुरामण्डलको छोड़कर वे श्रीकृष्ण जरासन्धके भयसे द्वारका चले गये थे। उस समय कोई भी नहीं जान सका कि ये श्रीकृष्ण ही भगवान् विष्णु हैं। हे ब्रह्मन्! [श्रीकृष्णके द्वारा अपनेको] व्रजमें छिपाये रखनेका कुछ कारण आप मुझे बताइये॥ ४९-५०॥

हे सत्यवतीनन्दन! ये तथा और भी दूसरे बहुत-से सन्देह हैं। हे महाभाग! हे द्विजवर! आप सर्वज्ञ हैं, अतः आज आप उन्हें दूर कर दीजिये॥ ५१॥

एक और गोपनीय सन्देह है जो मेरे मनसे नहीं निकल पा रहा है। क्या द्रौपदीके पाँच पतियोंका होना लोकमें निन्दनीय नहीं है? विद्वज्जन तो सदाचारको ही प्रमाण मानते हैं; तब समर्थ होकर भी उन पाण्डवोंने पशु-धर्म क्यों स्वीकार किया?॥ ५२-५३॥

देवतास्वरूप भीष्मपितामहने भी भूतलपर दो गोलक सन्तानें उत्पन्न कराकर अपने वंशकी जो रक्षा की, क्या यह उचित है? मुनियोंके द्वारा जो धर्मनिर्णय प्रदर्शित किया गया है कि जिस किसी भी उपायसे पुत्रोत्पत्ति करनी चाहिये, उसे धिक्कार है!॥ ५४-५५॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत चतुर्थ स्कन्धका 'सुरांगनाओंके प्रति नारायणका वरदान' नामक सत्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १७॥

अठारहवाँ अध्याय

पापभारसे व्यथित पृथ्वीका देवलोक जाना, इन्द्रका देवताओं और पृथ्वीके साथ ब्रह्मलोक जाना, ब्रह्माजीका पृथ्वी तथा इन्द्रादि देवताओंसहित विष्णुलोक जाकर विष्णुकी स्तुति करना, विष्णुद्वारा अपनेको भगवतीके अधीन बताना

व्यासजी बोले—हे राजन्! सुनिये, अब मैं श्रीकृष्णके महान् चरित्र, उनके अवतारके कारण और भगवतीके अद्भुत चरित्रका वर्णन करूँगा॥ १॥

एक समयकी बात है—[पापियोंके] भारसे व्यथित, अत्यधिक कृश, दीन तथा भयभीत पृथ्वी गौका रूप धारण करके रोती हुई स्वर्गलोक गयी॥ २॥

वहाँ इन्द्रने पूछा—हे वसुन्धरे! इस समय तुम्हें कौन-सा भय है, तुम्हें किसने पीड़ा पहुँचायी है और तुम्हें क्या दुःख है?॥ ३॥

यह सुनकर पृथ्वीने कहा—हे देवेश! यदि आप पूछ ही रहे हैं तो मेरा सारा दुःख सुन लीजिये। हे मानद! मैं भारसे दबी हुई हूँ॥ ४॥

मगधदेशका राजा महापापी जरासन्ध, चेदिनरेश शिशुपाल, प्रतापी काशिराज, रुक्मी, बलवान् कंस, महाबली नरकासुर, सौभनरेश शाल्व, क्रूर केशी, धेनुकासुर और वत्सासुर—ये सभी राजागण धर्महीन, परस्पर विरोध रखनेवाले, पापाचारी, मदोन्मत्त और साक्षात् कालस्वरूप हो गये हैं॥ ५—७॥

हे इन्द्र! उनसे मुझे बहुत व्यथा हो रही है। मैं उनके भारसे दबी हुई हूँ और अब [उनका भार सहनेमें] मैं असमर्थ हो गयी हूँ। हे विभो! मैं क्या करूँ और कहाँ जाऊँ? मुझे यही महान् चिन्ता है॥ ८॥

हे इन्द्र! पूर्वमें मैं [दानव हिरण्याक्षसे] पीड़ित थी। उस समय परम ऐश्वर्यशाली वराहरूपधारी भगवान् विष्णुने मेरा उद्धार किया था। यदि वे वराहरूप धारण करके मेरा उद्धार न किये होते तो उससे भी अधिक दुःखकी स्थितिमें मैं न पहुँचती—आप ऐसा जानिये॥ ९॥

कश्यपके पुत्र दुष्ट दैत्य हिरण्याक्षने मुझे चुरा लिया था और उस महासमुद्रमें डुबो दिया था। उस समय भगवान् विष्णुने सूकरका रूप धारणकर उसका संहार किया और मेरा उद्धार किया। तदनन्तर उन वराहरूपधारी विष्णुने मुझे स्थापित करके स्थिर कर दिया अन्यथा मैं इस समय पातालमें स्वस्थचित्त रहकर सुखपूर्वक सोयी रहती। हे देवेश! अब मैं दुष्टात्मा राजाओंका भार वहन करनेमें समर्थ नहीं हूँ॥ १०—१२॥

हे इन्द्र! अब आगे अट्ठाईसवाँ दुष्ट कलियुग आ रहा है। उस समय मैं और भी पीड़ित हो जाऊँगी तब तो मैं शीघ्र ही रसातलमें चली जाऊँगी। अतएव हे देवदेवेश! इस दुःखरूपी महासागरसे मुझे पार कर दीजिये; मेरा बोझ उतार दीजिये, मैं आपके चरणोंमें नमन करती हूँ॥ १३-१४॥

इन्द्र बोले—हे वसुन्धरे! मैं इस समय तुम्हारे लिये क्या कर सकता हूँ! तुम ब्रह्माकी शरणमें जाओ, वे ही तुम्हारा दुःख दूर करेंगे, मैं भी वहाँ आ जाऊँगा॥ १५॥

यह सुनकर पृथ्वीने तत्काल ब्रह्मलोकके लिये प्रस्थान कर दिया। उसके पीछे-पीछे इन्द्र भी सभी देवताओंके साथ वहाँ पहुँच गये॥ १६॥

उस आयी हुई धेनुको अपने सम्मुख उपस्थित देखकर तथा ध्यान-दृष्टिद्वारा उसे पृथ्वी जान करके ब्रह्माजीने कहा—हे कल्याणि! तुम किसलिये रो रही हो और तुम्हें कौन-सा दुःख है; मुझे अभी बताओ। हे पृथ्वि! किस पापाचारीने तुम्हें पीड़ा पहुँचायी है, मुझे बताओ॥ १७-१८॥

धरा बोली—हे जगत्पते! यह दुष्ट कलि अब आनेवाला है। मैं उसीके आतंकसे डर रही हूँ; क्योंकि उस समय सभी लोग पापाचारी हो जायँगे। सभी राजालोग दुराचारी हो जायँगे, आपसमें विरोध करनेवाले होंगे और चोरीके कर्ममें संलग्न रहेंगे। वे राक्षसके रूपमें एक-दूसरेके पूर्णरूपसे शत्रु बन जायँगे। हे पितामह! उन राजाओंका वध करके मेरा भार उतार दीजिये। हे महाराज! मैं राजाओंकी सेनाके भारसे दबी हुई हूँ॥ १९—२१॥

ब्रह्माजी बोले—हे देवि! तुम्हारा भार उतारनेमें मैं सर्वथा समर्थ नहीं हूँ। अब हम दोनों चक्रधारी देवाधिदेव भगवान् विष्णुके धाम चलते हैं। वे जनार्दन तुम्हारा भार अवश्य उतार देंगे। मैंने पहलेसे ही भलीभाँति विचार करके तुम्हारा कार्य करनेकी योजना बनायी है। [उन्होंने इन्द्रसे कहा—] हे सुरश्रेष्ठ! जहाँपर भगवान् जनार्दन विद्यमान हैं, अब आप वहींपर चलें॥ २२-२३$^{१}/_{२}$॥

व्यासजी बोले—ऐसा कहकर वे वेदकर्ता चतुर्मुख ब्रह्माजी हंसपर आरूढ़ हुए और देवताओं तथा गोरूपधारिणी पृथ्वीको साथमें लेकर विष्णुलोकके लिये प्रस्थित हो गये। [वहाँ पहुँचकर] भक्तिसे परिपूर्ण हृदयवाले ब्रह्माजी वेदवाक्योंसे उनकी स्तुति करने लगे॥ २४-२५॥

ब्रह्माजी बोले—आप हजार मस्तकोंवाले, हजार नेत्रोंवाले और हजार पैरोंवाले हैं। आप देवताओंके भी आदिदेव तथा सनातन वेदपुरुष हैं। हे विभो! हे रमापते! भूतकाल, भविष्यकाल तथा वर्तमानकालका जो भी हमारा

अमरत्व है, उसे आपने ही हमें प्रदान किया है। आपकी

इतनी बड़ी महिमा है कि उसे त्रिलोकीमें कौन नहीं जानता? आप ही सृष्टि करनेवाले, पालन करनेवाले और संहार करनेवाले हैं। आप सर्वव्यापी और सर्वशक्तिसम्पन्न हैं॥ २६—२८॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार स्तुति करनेपर पवित्र हृदयवाले वे गरुडध्वज भगवान् विष्णु प्रसन्न हो गये और उन्होंने ब्रह्मा आदि देवताओंको अपने दर्शन दिये। प्रसन्न मुखमण्डलवाले भगवान् विष्णुने देवताओंका स्वागत किया और विस्तारपूर्वक उनके आगमनका कारण पूछा॥ २९-३०॥

तदनन्तर पद्मयोनि ब्रह्माजीने उन्हें प्रणाम करनेके उपरान्त पृथ्वीके दु:खका स्मरण करते हुए उनसे कहा—हे विष्णो! हे जनार्दन! अब पृथ्वीका भार दूर कर देना आपका कर्तव्य है। अत: हे दयानिधे! द्वापरका अन्तिम समय उपस्थित होनेपर आप पृथ्वीपर अवतार लेकर दुष्ट राजाओंको मारकर पृथ्वीका भार उतार दीजिये॥ ३१-३२॥

विष्णु बोले—इस विषयमें मैं (विष्णु), ब्रह्मा, शंकर, इन्द्र, अग्नि, यम, त्वष्टा, सूर्य और वरुण—कोई भी स्वतन्त्र नहीं है। यह सम्पूर्ण चराचर जगत् योगमायाके अधीन रहता है। ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त सब कुछ [सात्त्विक, राजस, तामस] गुणोंके सूत्रोंद्वारा उन्हींमें गुँथा हुआ है॥ ३३-३४॥

हे सुव्रत! वे हितकारिणी भगवती सर्वप्रथम स्वेच्छापूर्वक जैसा करना चाहती हैं, वैसा ही करती हैं। हमलोग भी सदा उनके ही अधीन रहते हैं॥ ३५॥

अब आपलोग स्वयं अपनी बुद्धिसे विचार करें कि यदि मैं स्वतन्त्र होता तो महासमुद्रमें मत्स्य और कच्छपरूपधारी क्यों बनता? तिर्यक्-योनियोंमें कौन-सा भोग प्राप्त होता है, क्या यश मिलता है, कौन-सा सुख होता है और कौन-सा पुण्य प्राप्त होता है? [इस प्रकार] क्षुद्रयोनियोंमें जन्म लेनेवाले मुझ विष्णुको क्या फल मिला?॥ ३६-३७॥

यदि मैं स्वतन्त्र होता तो सूकर, नृसिंह और वामन क्यों बनता? इसी प्रकार हे पितामह! मैं जमदग्निपुत्र (परशुराम)-के रूपमें उत्पन्न क्यों होता? इस भूतलपर मैं [क्षत्रियोंके संहार जैसा] नृशंस कर्म क्यों करता और उनके रुधिरसे समस्त सरोवरोंको क्यों भर डालता? उस समय मैं जमदग्निपुत्र परशुरामके रूपमें जन्म लेकर एक श्रेष्ठ ब्राह्मण होकर भी युद्धमें क्षत्रियोंका संहार क्यों करता और घोर निर्दयी बनकर गर्भस्थ शिशुओंतकको भला क्यों मारता?॥ ३८—४०॥

हे देवेन्द्र! रामका अवतार लेकर मुझे दण्डकवनमें पैदल विचरण करना पड़ा, गेरुआ वस्त्र धारण करना पड़ा और जटा-वल्कलधारी बनना पड़ा। उस निर्जन वनमें असहाय रहते हुए तथा पासमें बिना किसी भोज्य-सामग्रीके ही निर्लज्ज होकर आखेट करते हुए मैं इधर-उधर भटकता रहा॥ ४१-४२॥

उस समय मायासे आच्छादित रहनेके कारण मैं उस मायावी स्वर्ण-मृगको नहीं पहचान सका और जानकीको पर्णकुटीमें छोड़कर उस मृगके पीछे-पीछे निकल पड़ा॥ ४३॥

मेरे बहुत मना करनेपर भी प्राकृत गुणोंसे व्यामुग्ध होनेके कारण लक्ष्मण भी उस सीताको छोड़कर मेरे पदचिह्नोंका अनुसरण करते हुए वहाँसे निकल पड़े॥ ४४॥

तदनन्तर कपटस्वभाव राक्षस रावणने भिक्षुकका रूप धारण करके शोकसे व्याकुल जानकीका तत्काल हरण कर लिया॥ ४५॥

तब दु:खसे व्याकुल होकर मैं वन-वन भटकता हुआ रोता रहा और अपना कार्य सिद्ध करनेके लिये मैंने सुग्रीवसे मित्रता की। मैंने अन्यायपूर्वक वालीका वध किया तथा उसे शापसे मुक्ति दिलायी और इसके बाद

वानरोंको अपना सहायक बनाकर लंकाकी ओर प्रस्थान किया॥ ४६-४७॥

[वहाँ युद्धमें] मैं तथा मेरा छोटा भाई लक्ष्मण दोनों ही नागपाशोंसे बाँध दिये गये। हम दोनोंको अचेत पड़ा देखकर सभी वानर आश्चर्यचकित हो गये। तब गरुड़ने आकर हम दोनों भाइयोंको छुड़ाया। उस समय मुझे महान् चिन्ता होने लगी कि दैव अब न जाने क्या करेगा? राज्य छिन गया, वनमें वास करना पड़ा, पिताकी मृत्यु हो गयी और प्रिय सीता हर ली गयी। युद्ध कष्ट दे ही रहा है, अब आगे दैव न जाने क्या करेगा!॥ ४८—५०॥

हे देवतागण! सर्वप्रथम दुःख तो मुझ राज्यविहीनका वनवास हुआ। वनके लिये चलते समय (राजकुमारी सीता मेरे साथ थीं और) मेरे पास धन भी नहीं था। उस समय क्षत्रियधर्मका त्याग करके वन्यवृत्तिके द्वारा मैंने उस महावनमें चौदह वर्ष व्यतीत किये॥ ५१—५३ ॥

तदनन्तर भाग्यवश युद्धमें मुझे विजय प्राप्त हुई और वह महान् असुर रावण मारा गया। इसके बाद मैं सीताको ले आया और मुझे अयोध्या फिरसे प्राप्त हो गयी। इस प्रकार जब मुझे सम्पूर्ण राज्य मिल गया, तब कोसलदेशपर अधिष्ठित रहते हुए मैंने वहाँपर कुछ वर्षोंतक सांसारिक सुखका भोग किया॥ ५४-५५॥

इस प्रकार पूर्वकालमें जब मुझे राज्य प्राप्त हो गया तब मैंने लोकनिन्दाके भयसे वनमें सीताका परित्याग कर दिया। इसके बाद मुझे पुनः पत्नी-वियोगसे होनेवाला भयंकर दुःख प्राप्त हुआ। वह धरानन्दिनी सीता पृथ्वीको भेदकर पातालमें चली गयी॥ ५६-५७॥

इस प्रकार रामावतारमें भी मैं परतन्त्र होकर निरन्तर दुःख पाता रहा। तब भला दूसरा कौन स्वतन्त्र हो सकता है? तत्पश्चात् कालके वशीभूत होकर मुझे अपने भाइयोंके साथ स्वर्ग जाना पड़ा। अतः कोई भी विद्वान् पराधीन व्यक्तिकी क्या बात करेगा? हे कमलोद्भव! आप यह जान लीजिये कि जैसे मैं परतन्त्र हूँ वैसे ही आप, शंकर तथा अन्य सभी बड़े-बड़े देवता भी निश्चितरूपसे परतन्त्र हैं॥ ५८—६०॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत चतुर्थ स्कन्धका 'ब्रह्माके प्रति विष्णुवचन' नामक अठारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १८॥

उन्नीसवाँ अध्याय

देवताओंद्वारा भगवतीका स्तवन, भगवतीद्वारा श्रीकृष्ण और अर्जुनको निमित्त बनाकर अपनी शक्तिसे पृथ्वीका भार दूर करनेका आश्वासन देना

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] ऐसा कहनेके उपरान्त भगवान् विष्णुने ब्रह्माजीसे फिर कहा—जिन भगवतीकी मायासे मोहित रहनेके कारण सभी लोग परमतत्त्वको नहीं जान पाते, उन्हींकी मायासे आच्छादित रहनेके कारण हम लोग भी जगद्गुरु, शान्तस्वरूप, सच्चिदानन्द तथा अविनाशी परमपुरुषका स्मरण नहीं कर पाते॥ १-२॥

हे ब्रह्मन्! मैं विष्णु हूँ, मैं ब्रह्मा हूँ, मैं शिव हूँ—इसी [अभिमानसे] मोहित हमलोग उस सनातन परम-तत्त्वको नहीं जान पाते॥ ३॥

उस परमात्माकी मायासे मोहित मैं उसी प्रकार सदा उसके अधीन रहता हूँ, जैसे कठपुतली बाजीगरके अधीन रहती है॥ ४॥

कल्पके आरम्भमें आप (ब्रह्मा)-ने, शिवने तथा मैंने भी सुधासागरमें उस परमात्माकी अद्भुत विभूतिका दर्शन किया था। मणिद्वीपमें मन्दारवृक्षके नीचे चल रहे रासमण्डलमें एकत्रित सभामें भी वह विभूति साक्षात् देखी गयी थी; न कि वह केवल कही-सुनी गयी बात है॥ ५-६॥

अतएव इस अवसरपर सभी देवता उसी परमा शक्ति, कल्याणकारिणी, सभी कामनाएँ पूर्ण करनेवाली, माया-स्वरूपिणी तथा परमात्माकी आद्याशक्ति भगवतीका स्मरण करें॥ ७॥

व्यासजी बोले—भगवान् विष्णुके ऐसा कहनेपर ब्रह्मा आदि देवता सदा विराजमान रहनेवाली भगवती योगमायाका एकाग्र मनसे ध्यान करने लगे॥ ८॥

उनके स्मरण करते ही भगवतीने उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन प्रदान किया। उस समय वे देवी जपाकुसुमके समान रक्तवर्णसे सुशोभित थीं और उन्होंने पाश, अंकुश, वर तथा अभय मुद्रा धारण कर रखी थी। उन परम सुन्दर भगवतीको देखकर सभी देवता अत्यन्त प्रसन्न हुए और उनकी स्तुति करने लगे॥ ९॥

देवता बोले—जिस प्रकार मकड़ीकी नाभिसे तन्तु तथा अग्निसे चिनगारियाँ निकलती हैं, उसी प्रकार यह जगत् जिनसे प्रकट हुआ है, उन भगवतीको हम नमस्कार करते हैं॥ १०॥

जिनकी मायाशक्तिसे सम्पूर्ण चराचर जगत् पूर्णतः ओत-प्रोत है, उन चित्स्वरूपिणी करुणासिन्धु भुवनेश्वरीका हम स्मरण करते हैं॥ ११॥

जिन्हें न जाननेसे संसारमें बार-बार जन्म होता रहता है और जिनका ज्ञान हो जानेसे भव-बन्धनका नाश हो जाता है, उन ज्ञानस्वरूपिणी भगवतीका हम स्मरण करते हैं। वे हमें [सन्मार्गपर चलनेके लिये] प्रेरित करें। हम उन महालक्ष्मीको जानें। हम सर्वशक्तिमयी भगवतीका ध्यान करते हैं। वे भगवती हमें [सत्कर्ममें प्रवृत्त होनेकी] प्रेरणा प्रदान करें॥ १२-१३॥

संसारका कष्ट हरनेवाली हे माता! हम आपको प्रणाम करते हैं, आप प्रसन्न होइये। हे दयासे आर्द्र हृदयवाली! हमारा कल्याण कीजिये; हमारा यह कार्य सम्पन्न कर दीजिये। हे महेश्वरि! असुर-समुदायका संहार करके पृथ्वीका भार उतार दीजिये। हे भवानि! आप सज्जनोंका कल्याण करें॥ १४॥

हे कमलनयने! यदि आप देवताओंपर दया नहीं करेंगी तो वे समरांगणमें तलवारों तथा बाणोंसे [दैत्योंपर] प्रहार करनेमें समर्थ कैसे हो सकेंगे? इस बातको आपने स्वयं [यक्षोपाख्यान-प्रसंगमें] यक्षरूप धारण करके 'हे हुताशन! आप इस तिनकेको जला दें' इत्यादि पद-कथनोंके द्वारा व्यक्त कर दिया है॥ १५॥

हे माता! कंस, भौमासुर, कालयवन, केशी, बृहद्रथ-पुत्र जरासन्ध, बकासुर, पूतना, खर और शाल्व आदि तथा इनके अतिरिक्त और भी जो दुष्ट राजागण पृथ्वीपर हैं, उन्हें मारकर आप शीघ्र ही पृथ्वीका भार उतार दीजिये॥ १६॥

हे कमलनयने! जिन दैत्योंको भगवान् विष्णु, शिव और इन्द्र भी [कई बार] युद्ध करके नहीं मार सके, वे दैत्य युद्धभूमिमें आपका सुखदायक मुखमण्डल देखते हुए आपकी लीलासे आपके बाणोंके द्वारा मार डाले गये॥ १७॥

चन्द्रकलाको मस्तकपर धारण करनेवाली हे देवदेवि! विष्णु, शिव आदि प्रमुख देवता भी आपकी शक्तिके बिना हिलने-डुलनेतकमें समर्थ नहीं हैं। इसी प्रकार क्या शेषनाग भी आपकी शक्तिके बिना पृथ्वीको धारण कर सकनेमें समर्थ हैं?॥ १८॥

इन्द्र बोले—[हे माता!] क्या सरस्वतीके बिना ब्रह्मा इस विश्वकी सृष्टि करनेमें, लक्ष्मीके बिना विष्णु पालन करनेमें और पार्वतीके बिना शिवजी संहार करनेमें समर्थ हो सकते हैं? वे महान् देवगण उन्हीं [तीनों महाशक्तियों]-के साथ अपना-अपना कार्य कर सकनेमें समर्थ होते हैं॥ १९॥

विष्णु बोले—हे अनघे! आपकी कलासे रहित होकर न तो ब्रह्मा इस त्रिलोकीकी रचना कर सकनेमें, न तो मैं इसका पालन कर सकनेमें और न तो शिव इसका संहार कर सकनेमें समर्थ हैं। हे समस्त विभवोंकी स्वामिनि! इसका सृजन, पालन तथा संहार करनेमें समर्थ निश्चितरूपसे आप ही प्रतीत होती हैं॥ २०॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार उन देवताओंने जब देवीकी स्तुति की, तब उन्होंने उन देवेश्वरोंसे कहा—वह

कौन-सा कार्य है? आपलोग सन्तापरहित होकर बतायें, मैं अभी करूँगी। इस संसारमें देवताओंके द्वारा अभिलषित जो असाध्य कार्य भी होगा, उसे मैं करूँगी। हे श्रेष्ठ देवतागण! आपलोग अपना तथा पृथ्वीका दुःख मुझे बताइये॥ २१-२२॥

देवता बोले—दुष्ट राजाओंसे पीड़ित यह पृथ्वी उनके भारसे व्याकुल होकर रोती तथा थर-थर काँपती हुई हम देवताओंके पास आयी। हे भुवनेश्वरि! आप इसका भार उतार दें। हे शिवे! इस समय हम देवताओंका यही अभीष्ट कार्य है॥ २३-२४॥

हे माता! पूर्वकालमें आप अत्यधिक बलसम्पन्न दानव महिषासुरका वध कर चुकी हैं। इसके अतिरिक्त आप उसके करोड़ों सहायकों, शुम्भ, निशुम्भ, रक्तबीज, महाबली चण्ड-मुण्ड, धूम्रलोचन, दुर्मुख, दुःसह, अतिशय बलवान् कराल तथा दूसरे भी अनेक क्रूर दानवोंको मार चुकी हैं। उसी प्रकार आप हम देवताओंके शत्रुरूप सभी दुष्ट राजाओंका वध कीजिये। (दुष्ट राजाओंका वध करके पृथ्वीका दुःसह भार उतार दीजिये)॥ २५—२७१/२॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] देवताओंके ऐसा कहनेपर नीले नेत्रप्रान्तवाली कल्याणमयी भगवती हँसकर मेघके समान गम्भीर वाणीमें उनसे कहने लगीं—॥ २८१/२॥

श्रीदेवी बोलीं—हे देवताओ! मैंने यह पहलेसे ही सोच रखा है कि मैं अंशावतार धारण करूँ, जिससे पृथ्वीपरसे दुष्ट राजाओंका भार उतर जाय। हे महाभाग देवताओ! मन्द तेजवाले जरासन्ध आदि जो बड़े-बड़े दैत्य राजागण हैं, उन सबको मैं अपनी शक्तिसे मार डालूँगी। हे देवतागण! आपलोग भी अपने-अपने अंशोंसे पृथ्वीपर अवतार लेकर मेरी शक्तिसे युक्त होकर भार उतारें॥ २९—३११/२॥

मेरे अवतार लेनेसे पूर्व देवताओंके प्रजापति कश्यप अपनी पत्नीके साथ यदुकुलमें वसुदेव नामसे अवतीर्ण होंगे। उसी प्रकार भृगुके शापसे अविनाशी भगवान् विष्णु अपने अंशसे वहींपर वसुदेवके पुत्रके रूपमें उत्पन्न होंगे॥ ३२-३३१/२॥

हे श्रेष्ठ देवताओ! उस समय मैं भी गोकुलमें यशोदाके गर्भसे उत्पन्न होऊँगी और देवताओंका सारा कार्य सिद्ध करूँगी। कारागारमें अवतीर्ण हुए [कृष्णरूपधारी] विष्णुको मैं गोकुलमें पहुँचा दूँगी और देवकीके गर्भसे शेषभगवान्‌को खींचकर रोहिणीके गर्भमें स्थापित कर दूँगी। मेरी शक्तिसे सम्पन्न होकर वे दोनों ही दुष्टोंका विनाश करेंगे। द्वापरके व्यतीत होते ही दुष्ट राजाओंका पूर्णरूपसे संहार बिलकुल निश्चित है॥ ३४—३६१/२॥

साक्षात् इन्द्रके अंशस्वरूप अर्जुन भी [उन दुष्ट राजाओंके] बलका नाश करेंगे। धर्मके अंशरूप महाराज युधिष्ठिर, वायुके अंशरूप भीमसेन तथा दोनों अश्विनीकुमारोंके अंशरूप नकुल-सहदेव भी उत्पन्न होंगे। [उसी समय] वसुके अंशसे अवतीर्ण गंगापुत्र भीष्म उन दुष्ट राजाओंकी शक्ति नष्ट करेंगे॥ ३७-३८१/२॥

हे श्रेष्ठ देवतागण! अब आपलोग जायँ और पृथ्वी भी निश्चिन्त होकर रहे। मैं उन अंशावतारी लोगोंको निमित्तमात्र बनाकर अपनी शक्तिसे इस पृथ्वीका भार दूर करूँगी, इसमें सन्देह नहीं है। मैं क्षत्रियोंका यह संहार कुरुक्षेत्रमें करूँगी॥ ३९-४०१/२॥

असूया, ईर्ष्या, बुद्धि, तृष्णा, ममता, अपनी प्रिय वस्तुकी इच्छा, स्पृहा, विजयकी अभिलाषा, काम और मोह—इन दोषोंके कारण सभी यादव नष्ट हो जायँगे। ब्राह्मणके शापसे उनके वंशका नाश हो जायगा और उसी शापवश भगवान् श्रीकृष्ण भी अपने शरीरका त्याग कर देंगे। अब आपलोग भी अपनी शक्तिस्वरूपा भार्याओंसहित अपने-अपने अंशोंसे मथुरा तथा गोकुलमें अवतरित हों और शार्ङ्गपाणि भगवान् विष्णुके सहायक बनें॥ ४१—४३१/२॥

व्यासजी बोले—ऐसा कहकर परमात्माकी योगमाया भगवती अन्तर्धान हो गयीं। तदनन्तर पृथ्वीसहित सभी देवता अपने-अपने स्थानपर चले गये। पृथ्वी भी उन भगवतीकी वाणीसे सन्तुष्ट होकर शान्तचित्त हो गयी। हे जनमेजय! वह औषधियों और लताओंसे सम्पन्न हो गयी। प्रजाएँ सुखी हो गयीं, द्विजगणोंकी महान् उन्नति होने लगी और सभी मुनिगण सन्तुष्ट होकर धर्मपरायण हो गये॥ ४४—४६॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत चतुर्थ स्कन्धका 'देवोंके प्रति देवीवाक्यवर्णन' नामक उन्नीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १९॥

बीसवाँ अध्याय

व्यासजीद्वारा जनमेजयको भगवतीकी महिमा सुनाना तथा कृष्णावतारकी कथाका उपक्रम

व्यासजी बोले—हे भारत! सुनिये, अब मैं आपको पृथ्वीका भार उतारने और कुरुक्षेत्र तथा प्रभासक्षेत्रमें योगमायाके द्वारा सेनाके संहारका वृत्तान्त बताऊँगा॥ १॥

भृगुके शापके प्रताप तथा महामायाकी शक्तिसे ही अमित तेजस्वी भगवान् विष्णुका आविर्भाव यदुवंशमें हुआ था। मेरा यह मानना है कि पृथ्वीका भार उतारना तो निमित्तमात्र था, वस्तुतः योगमायाने ही इस संयोगका विधान कर दिया था कि धरातलपर भगवान् विष्णुका अवतार हो॥ २-३॥

हे राजन्! इसमें आश्चर्य कैसा! वे भगवती योगमाया जब ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओंको भी निरन्तर नचाती रहती हैं, तब त्रिगुणात्मक सामान्यजनकी क्या बात!॥ ४॥

उन भगवतीने अपनी रहस्यमयी लीलासे भगवान् विष्णुको भी सम्यक् रूपसे मल, मूत्र तथा स्नायुसे भरे गर्भवाससे होनेवाला दुःख भोगनेको विवश कर दिया था॥ ५॥

पूर्वकालमें रामावतारके समय भी उन्हीं योगमायाने जिस प्रकार देवताओंको वानर बना दिया था और [राम-रूपमें अवतीर्ण] भगवान् विष्णुको दुःखपाशसे व्यथित कर दिया था, वह तो आपको विदित ही है॥ ६॥

हे महाराज! अहंता और ममताके इस सुदृढ़ बन्धनसे सभी लोग आबद्ध हैं। अतः अनासक्त तथा मोक्षकी इच्छा रखनेवाले योगीजन और भोगकी कामना करनेवाले लोग भी उन्हीं कल्याणकारिणी भगवती जगदम्बाकी उपासना करते हैं। जिन योगमायाकी भक्तिके लेशलेशांश तथा लेशलेशलवांशको प्राप्त करके प्राणी मुक्त हो जाता है, उनकी उपासना कौन व्यक्ति नहीं करेगा? 'हे भुवनेशि!' ऐसा उच्चारण करनेवालेको वे भगवती तीनों लोक प्रदान कर देती हैं और 'मेरी रक्षा कीजिये' इस वाक्यके कहनेपर [उसे पहले ही त्रिलोक दे देनेके कारण] अब कुछ भी न दे पानेसे वे उस भक्तकी ऋणी हो जाती हैं। हे राजन्! आप उन भगवतीके विद्या तथा अविद्या—ये दो रूप जानिये। विद्यासे प्राणी मुक्त होता है और अविद्यासे बन्धनमें पड़ता है॥ ७—१०१/२॥

ब्रह्मा, विष्णु और महेश—ये सब उनके अधीन रहते हैं। भगवान्‌के सभी अवतार रस्सीसे बँधे हुएके समान भगवतीसे ही नियन्त्रित रहते हैं। भगवान् विष्णु कभी वैकुण्ठमें और कभी क्षीरसागरमें आनन्द लेते हैं, कभी अत्यधिक बलशाली दानवोंके साथ युद्ध करते हैं, कभी बड़े-बड़े यज्ञ करते हैं, कभी तीर्थमें कठोर तपस्या करते हैं और हे सुव्रत! कभी योगनिद्राके वशीभूत होकर शय्यापर सोते हैं। वे भगवान् मधुसूदन कभी भी स्वतन्त्र नहीं रहते॥ ११—१४१/२॥

ऐसे ही ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, वरुण, यम, कुबेर, अग्नि, सूर्य, चन्द्र, अन्य श्रेष्ठ देवतागण, सनक आदि मुनि और वसिष्ठ आदि महर्षि—ये सब-के-सब बाजीगरके अधीन कठपुतलीकी भाँति सदा भगवतीके वशमें रहते हैं। जिस प्रकार नथे हुए बैल अपने स्वामीके अधीन रहकर विचरण करते हैं, उसी प्रकार सभी देवता कालपाशमें आबद्ध रहते हैं॥ १५—१७१/२॥

हे राजन्! हर्ष, शोक, निद्रा, तन्द्रा, आलस्य आदि भाव सभी देहधारियोंके शरीरमें सदा विद्यमान रहते हैं। ग्रन्थकारोंने देवताओंको अमर (मृत्युरहित) तथा निर्जर (बुढ़ापारहित) कहा है, किंतु वे निश्चय ही न तो नामसे और न अर्थसे ही कभी वैसे हैं; क्योंकि जिनमें सदा उत्पत्ति, स्थिति और विनाश नामक अवस्थाएँ रहती हैं, वे अमर और निर्जर कैसे कहे जा सकते हैं? वे देवता विबुध (विशेष बुद्धिवाले) होते हुए भी दुःखोंसे पीड़ित क्यों होते हैं? जब वे भी [सामान्य लोगोंकी भाँति] व्यसन तथा क्रीडामें आसक्त रहते हैं, तब उन्हें देव क्यों कहा जाय? इसमें कोई सन्देह नहीं कि सामान्य जीवोंकी भाँति इनकी भी क्षणमें उत्पत्ति होती है और क्षणमें नाश होता है। [ऐसी स्थितिमें] इनकी उपमा जलमें उत्पन्न होनेवाले कीटों और मच्छरोंसे क्यों न दी जाय? और जब आयुके समाप्त होनेपर वे भी मर जाते हैं, तब उन्हें [अमर न

कहकर] 'मर' क्यों न कहा जाय?॥ १८—२३॥

कुछ मनुष्य एक वर्षकी आयुवाले और कुछ सौ वर्षकी आयुवाले होते हैं, उनसे अधिक आयुवाले देवता होते हैं और उनसे भी अधिक आयुवाले ब्रह्मा कहे गये हैं। ब्रह्मासे अधिक आयुवाले शिव हैं और उनसे भी अधिक आयुवाले विष्णु हैं। अन्तमें वे भी नष्ट होते हैं और इसके बाद वे फिरसे क्रमशः उत्पन्न होते हैं और उत्तरोत्तर बढ़ते हैं॥ २४-२५॥

हे राजन्! निश्चितरूपसे सभी देहधारियोंकी मृत्यु होती है और मरे हुए प्राणीका जन्म होता है। इस प्रकार पहियेकी भाँति सभी प्राणियोंका [जन्म-मृत्युका] चक्कर लगा रहता है; इसमें सन्देह नहीं है॥ २६॥

मोहके जालमें फँसा हुआ प्राणी कभी मुक्त नहीं होता; क्योंकि मायाके रहते मोहका बन्धन नष्ट नहीं होता है॥ २७॥

हे राजन्! सृष्टिके समय ब्रह्मा आदि सभी देवताओंकी उत्पत्ति होती है और कल्पके अन्तमें क्रमशः उनका नाश भी हो जाता है॥ २८॥

हे नृप! जिसके नाशमें जो निमित्त बन चुका है, उसीके द्वारा उसकी मृत्यु होती है। विधाताने जो रच दिया है, वह अवश्य होता है; इसके विपरीत कुछ नहीं होता॥ २९॥

जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा, रोग, दुःख अथवा सुख—जो सुनिश्चित है, वह उसी रूपमें अवश्य प्राप्त होता है; इसके विपरीत दूसरा सिद्धान्त है ही नहीं*॥ ३०॥

प्रत्यक्ष दिखायी देनेवाले सूर्य तथा चन्द्रदेव सबको सुख प्रदान करते हैं, किंतु उनके शत्रु [राहु]-के द्वारा उन्हें होनेवाली पीड़ा दूर नहीं होती। सूर्यपुत्र शनैश्चर 'मन्द' और चन्द्रमा 'क्षयरोगी तथा कलंकी' कहे जाते हैं। हे राजन्! देखिये, बड़े-बड़े देवताओंके भी विषयमें विधिका विधान अटल है॥ ३१—३२॥

ब्रह्माजी वेदकर्ता, जगत्की सृष्टि करनेवाले तथा सबको बुद्धि देनेवाले हैं, किंतु वे भी सरस्वतीको देखकर विकल हो गये॥ ३३॥

जब शिवजीकी भार्या सती अपने शरीरको दग्ध करके मर गयी, तब लोगोंका दुःख दूर करनेवाले होते हुए भी वे शिवजी शोकसन्तप्त तथा पीड़ित हो गये। उस समय कामाग्निसे जलते हुए देहवाले शिवजी यमुनानदीमें कूद पड़े। तब हे राजन्! उनके तापके कारण यमुनाजीका जल श्यामवर्णका हो गया॥ ३४-३५॥

भृगुके वनमें जाकर जब वे शिवजी दिगम्बर होकर विहार करने लगे, तब भृगुमुनिने अतीव आतुर उन शिवजीको यह शाप दे दिया—हे निर्लज्ज! तुम्हारा लिंग अभी कटकर गिर जाय। तब शान्तिके लिये शिवजीने दानवोंके द्वारा निर्मित बावलीका अमृत पिया॥ ३६-३७॥

बैल बनकर इन्द्रको भी धरातलपर [सूर्यवंशी राजा ककुत्स्थका] वाहन बनना पड़ा। समस्त लोकके आदिपुरुष और महान् विवेकशील भगवान् विष्णुकी सर्वज्ञता तथा प्रभुशक्ति उस समय कहाँ चली गयी थी, जब [रामावतारमें] वे स्वर्णमृग-सम्बन्धी उस विशेष रहस्यको बिलकुल नहीं जान सके!॥ ३८-३९॥

हे राजन्! मायाका बल तो देखिये कि भगवान् श्रीराम भी कामसे व्याकुल हुए। उन श्रीरामने सीताके वियोगसे संतप्त तथा व्याकुल होकर बहुत विलाप किया था। वे विह्वल होकर जोर-जोरसे रोते हुए वृक्षोंसे पूछते-फिरते थे कि सीता कहाँ चली गयी? उसे कोई [हिंसक जन्तु] खा गया या किसीने हर लिया?॥ ४०-४१॥

हे लक्ष्मण! मैं तो अपनी भार्याके वियोगसे दुःखित होकर मर जाऊँगा और हे अनुज! मेरे दुःखसे तुम भी इस वनमें मर जाओगे। इस प्रकार हम दोनोंकी मृत्यु जान करके मेरी माता कौसल्या मर जायँगी। शत्रुघ्न भी इस महान् दुःखसे पीड़ित होकर कैसे जीवित रह पायेगा? तब पुत्रमरणसे व्यथित होकर माता सुमित्रा भी अपने प्राण त्याग देंगी, किंतु अपने पुत्र भरतके साथ कैकेयीकी कामना अवश्य पूर्ण हो जायगी॥ ४२—४४॥

हा सीते! मुझे पीड़ित छोड़कर तुम कहाँ चली गयी हो? हे मृगलोचने! आओ, आओ। हे कृशोदरि! मुझे जीवन प्रदान करो। हे जनकनन्दिनि! मैं क्या करूँ और कहाँ जाऊँ? मेरा जीवन तो तुम्हारे अधीन है। अपने प्रिय मुझ दुःखितको सान्त्वना प्रदान करो॥ ४५-४६॥

* जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखं वा सुखमेव वा। तत्तथैव भवेत्कामं नान्यथेह विनिर्णयः॥ (श्रीमद्देवीभा० ४। २०। ३०)

इस प्रकार विलाप करते हुए तथा वन-वन भटकते हुए वे अमित तेजस्वी राम जनकपुत्री सीताको नहीं खोज पाये। तत्पश्चात् समस्त लोकोंको शरण देनेवाले वे कमलनयन श्रीराम मायासे मोहित होकर वानरोंकी शरणमें गये। उन वानरोंको सहायक बनाकर उन्होंने समुद्रपर सेतु बाँधा और पराक्रमी रावण, कुम्भकर्ण तथा महोदरका संहार किया॥ ४७—४९॥

तदनन्तर दुष्टात्मा रावणके द्वारा सीताको हरी गयी समझकर सर्वज्ञ होते हुए भी श्रीरामने उन्हें लाकर उनकी अग्निपरीक्षा करायी॥ ५०॥

हे महाराज! योगमायाकी महिमा बहुत बड़ी है। मैं उन योगमायाके विषयमें क्या कहूँ, जिनके द्वारा नचाया हुआ यह सम्पूर्ण विश्व निरन्तर चक्कर काट रहा है॥ ५१॥

इस प्रकार शापके वशीभूत होकर भगवान् विष्णु इस लोकमें [धारण किये गये] अनेक अवतारोंमें दैवके अधीन होकर नाना प्रकारकी लीलाएँ करते हैं॥ ५२॥

अब मैं आपसे देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये मनुष्य-लोकमें भगवान् श्रीकृष्णके अवतार तथा उनकी लीलाका वर्णन करूँगा॥ ५३॥

प्राचीन समयकी बात है—यमुनाके मनोहर तटपर मधुवन नामक एक वन था। वहाँ लवणासुर नामवाला एक बलवान् दानव रहता था, जो मधुका पुत्र था॥ ५४॥

वरप्राप्तिके कारण अभिमानमें चूर वह पापी दैत्य ब्राह्मणोंको दुःख देता था। हे महाभाग! लक्ष्मणके छोटे भाई शत्रुघ्नने संग्राममें उसका वध कर दिया। उस मदोन्मत्तको मारकर उन्होंने मथुरा नामक परम सुन्दर नगरी बसायी॥ ५५-५६॥

कमलके समान नेत्रोंवाले अपने दो पुत्रोंको राज्यकार्यमें नियुक्त करके वे बुद्धिमान् शत्रुघ्न समय आ जानेपर स्वर्ग चले गये॥ ५७॥

सूर्यवंशके नष्ट हो जानेपर उस मुक्तिदायिनी मथुराको यादवोंने अधिकारमें कर लिया। हे राजन्! पूर्वकालमें राजा ययातिका शूरसेन नामक एक पराक्रमी पुत्र था, जो वहाँका राजा हुआ। हे राजन्! उसने मथुरा और शूरसेन दोनों ही राज्योंके विषयोंका भोग किया॥ ५८—५९॥

वहाँपर वरुणदेवके शापवश महर्षि कश्यपके अंशस्वरूप परम यशस्वी वसुदेवजी शूरसेनके पुत्र होकर उत्पन्न हुए। पिताके मर जानेपर वे वसुदेवजी वैश्यवृत्तिमें संलग्न होकर जीवन-यापन करने लगे। उस समय वहाँके राजा उग्रसेन थे और उनका कंस नामक एक प्रतापी पुत्र था॥ ६०-६१॥

वरुणदेवके ही शापके कारण कश्यपकी अनुगामिनी अदिति भी राजा देवककी पुत्री देवकीके रूपमें उत्पन्न हुईं। महात्मा देवकने उस देवकीको वसुदेवको सौंप दिया। विवाह सम्पन्न हो जानेके पश्चात् वहाँ आकाशवाणी हुई—हे महाभाग कंस! इस देवकीके गर्भसे उत्पन्न होनेवाला आठवाँ ऐश्वर्यशाली पुत्र तुम्हारा संहारक होगा॥ ६२—६४॥

उस आकाशवाणीको सुनकर महाबली कंस आश्चर्यचकित हो गया। उस आकाशवाणीको सत्य मानकर वह चिन्तामें पड़ गया। 'अब मैं क्या करूँ' ऐसा भलीभाँति सोच-विचारकर उसने यह निश्चय किया कि यदि मैं देवकीको इसी समय शीघ्र मार डालूँ तो मेरी मृत्यु नहीं होगी। मृत्युका भय उत्पन्न करनेवाले इस विषम अवसरपर दूसरा कोई उपाय नहीं है, किंतु यह मेरी पूज्य चचेरी बहन है। अतः इसकी हत्या कैसे करूँ, वह ऐसा सोचने लगा॥ ६५—६७॥

उसने पुनः सोचा—अरे! यही बहन तो मेरी मृत्युस्वरूपा है। बुद्धिमान् मनुष्यको पापकर्मसे भी अपने शरीरकी रक्षा कर लेनी चाहिये। बादमें प्रायश्चित्त कर लेनेसे उस पापकी शुद्धि हो जाती है। अतः चतुर लोगोंको चाहिये कि पापकर्मसे भी अपने प्राणकी रक्षा कर लें॥ ६८-६९॥

मनमें ऐसा सोचकर पापी कंसने बाल खींचकर उस सुन्दरी देवकीको तुरंत पकड़ लिया। तत्पश्चात् म्यानसे तलवार निकालकर उसे मारनेकी इच्छासे बुरे विचारोंवाला

कंस सभी लोगोंके सामने ही उस नवविवाहिता देवकीको अपनी ओर खींचने लगा॥ ७०-७१॥

उसे मारी जाती देखकर लोगोंमें महान् हाहाकार मच गया। वसुदेवजीके वीर साथीगण धनुष लेकर युद्धके लिये तैयार हो गये। अद्भुत साहसवाले वे सब कंससे कहने लगे—कृपा करके इसे छोड़ दो, छोड़ दो। वे देवमाता देवकीको कंससे छुड़ाने लगे॥ ७२-७३॥

तब शक्तिशाली कंसके साथ वसुदेवजीके पराक्रमी सहायकोंका घोर युद्ध होने लगा। उस भीषण लोमहर्षक युद्धके निरन्तर होते रहनेपर जो श्रेष्ठ तथा वृद्ध यदुगण थे, उन्होंने कंसको युद्ध करनेसे रोक दिया॥ ७४-७५॥

[उन्होंने कंससे कहा—] हे वीर! यह तुम्हारी पूजनीय चचेरी बहन है। इस विवाहोत्सवके शुभ अवसरपर तुम्हें इस अबोध देवकीकी हत्या नहीं करनी चाहिये। हे वीर! स्त्रीहत्या दु:सह कार्य है; यह यशका नाश करनेवाली है और इससे घोर पाप लगता है। केवल आकाशवाणी सुनकर तुम-जैसे बुद्धिमान्‌को बिना सोचे-समझे यह हत्या नहीं करनी चाहिये॥ ७६-७७॥

हे विभो! हो-न-हो तुम्हारे या इन वसुदेवके किसी गुप्त शत्रुने यह अनर्थकारी वाणी बोल दी हो। हे राजन्! तुम्हारा यश और वसुदेवका गार्हस्थ्य नष्ट करनेके लिये किसी मायावी शत्रुने यह कृत्रिम वाणी घोषित कर दी हो॥ ७८-७९॥

तुम वीर होकर भी आकाशवाणीसे डर रहे हो। तुम्हारे यशरूपी वृक्षको उखाड़ फेंकनेके लिये तुम्हारे किसी शत्रुने ही यह चाल चली है॥ ८०॥

जो कुछ भी हो, विवाहके इस अवसरपर तुम्हें बहनकी हत्या तो करनी ही नहीं चाहिये। हे महाराज! होनहार तो होगी ही, उसे कोई कैसे टाल सकता है?॥ ८१॥

इस प्रकार उन वृद्ध यादवोंके समझानेपर भी जब वह कंस पापकर्मसे विरत नहीं हुआ, तब नीतिज्ञ वसुदेवजीने उससे कहा—हे कंस! तीनों लोक सत्यपर टिके हुए हैं, अत: मैं इस समय तुमसे सत्य बोल रहा हूँ। उत्पन्न होते ही देवकीके सभी पुत्रोंको लाकर मैं आपको दे दूँगा। हे विभो! यदि क्रमसे उत्पन्न होते हुए ही प्रत्येक पुत्र आपको न दे दूँ तो मेरे पूर्वज भयंकर कुम्भीपाक नरकमें गिर पड़ें॥ ८२—८४॥

वसुदेवजीका यह सत्य वचन सुनकर वहाँ जो नागरिक सामने खड़े थे, वे कंससे तुरंत बोल उठे—'बहुत ठीक, बहुत ठीक। महात्मा वसुदेव कभी भी झूठ नहीं बोलते। हे महाभाग! अब इस देवकीके केश छोड़ दीजिये; क्योंकि स्त्रीहत्या पाप है'॥ ८५-८६॥

व्यासजी बोले—उन महात्मा वृद्ध यादवोंके इस प्रकार समझानेपर कंसने क्रोध त्यागकर वसुदेवजीके सत्य वचनपर विश्वास कर लिया॥ ८७॥

तब दुन्दुभियाँ तथा अन्य बाजे ऊँचे स्वरमें बजने लगे और उस सभामें उपस्थित सभी लोगोंके मुखसे जय-जयकारकी ध्वनि होने लगी॥ ८८॥

इस प्रकार उस समय महायशस्वी वसुदेवजी कंसको प्रसन्न करके उससे देवकीको छुड़ाकर उस नवविवाहिताके साथ अपने इष्टजनोंसहित निर्भय होकर शीघ्रतापूर्वक घर चले गये॥ ८९॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत चतुर्थ स्कन्धका 'कृष्णावतारकथोपक्रमवर्णन' नामक बीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २०॥

इक्कीसवाँ अध्याय

देवकीके प्रथम पुत्रका जन्म, वसुदेवद्वारा प्रतिज्ञानुसार उसे कंसको अर्पित करना और कंसद्वारा उस नवजात शिशुका वध

व्यासजी बोले—हे राजन्! इसके बाद समय आनेपर देवस्वरूपिणी देवकीने वसुदेवके संयोगसे विधिवत् गर्भ धारण किया॥ १॥

दसवाँ माह पूर्ण होनेपर जब देवकीने अत्यन्त रूपसम्पन्न तथा सुडौल अंगोंवाले अत्युत्तम प्रथम पुत्रको जन्म दिया तब सत्यप्रतिज्ञासे बँधे हुए महाभाग वसुदेवने

होनहारसे विवश होकर देवमाता देवकीसे कहा—॥ २-३॥

हे सुन्दरि! अपने सभी पुत्र कंसको अर्पित कर देनेकी मेरी प्रतिज्ञाको तुम भलीभाँति जानती हो। हे महाभागे! उस समय इसी प्रतिज्ञाके द्वारा मैंने तुम्हें कंससे मुक्त कराया था। अतएव हे सुन्दर केशोंवाली! मैं यह पुत्र तुम्हारे चचेरे भाई कंसको अर्पित कर दे रहा हूँ। (जब दुष्ट कंस अथवा प्रारब्ध विनाशके लिये उद्यत ही है तो तुम कर ही क्या सकोगी?) अद्भुत कर्मोंका परिणाम आत्मज्ञानसे रहित प्राणियोंके लिये दुर्ज्ञेय होता है। कालके पाशमें बँधे हुए समस्त जीवोंको अपने द्वारा किये गये शुभ अथवा अशुभ कर्मोंका फल निश्चितरूपसे भोगना ही पड़ता है। प्रत्येक जीवका प्रारब्ध निश्चित-रूपसे विधिके द्वारा ही निर्मित है॥ ४—६१/२॥

देवकी बोली—हे स्वामिन्! मनुष्योंको अपने पूर्वजन्ममें किये गये कर्मोंका फल अवश्य भोगना पड़ता है; किंतु क्या तीर्थाटन, तपश्चरण एवं दानादिसे वह कर्म-फल नष्ट नहीं हो सकता है? हे महाराज! पूर्व अर्जित पापोंके विनाशके लिये महात्माओंने धर्मशास्त्रोंमें तो नानाविध प्रायश्चित्तके विधानका उल्लेख किया है॥ ७-८१/२॥

ब्रह्महत्या करनेवाला, स्वर्णका हरण करनेवाला, सुरापान करनेवाला तथा गुरुपत्नीके साथ व्यभिचार करनेवाला महापापी भी बारह वर्षोंतक व्रतका अनुष्ठान कर लेनेपर शुद्ध हो जाता है। हे अनघ! उसी प्रकार मनु आदिके द्वारा उपदिष्ट प्रायश्चित्तका विधानपूर्वक अनुष्ठान करके मनुष्य क्या पापसे मुक्त नहीं हो जाता है? [यदि प्रायश्चित्त-विधानके द्वारा पापसे मुक्ति नहीं मिलती है तो] क्या याज्ञवल्क्य आदि धर्मशास्त्रप्रणेता तत्त्वदर्शी मुनियोंके वचन निरर्थक हो जायँगे? हे स्वामिन्! होनी होकर ही रहती है—यदि यह निश्चित है तब तो सभी आयुर्वेद एवं सभी मन्त्रशास्त्र झूठे सिद्ध हो जायँगे और इस प्रकार भाग्यलेखके समक्ष सभी उद्यम अर्थहीन हो जायँगे॥ ९—१३॥

'जो होना है, वह अवश्य घटित होता है' यदि [यही सत्य है] तो सत्कर्मोंकी ओर प्रवृत्त होना व्यर्थ हो जायगा और अग्निष्टोम आदि स्वर्गप्राप्तिके शास्त्र-सम्मत साधन भी निरर्थक हो जायँगे। जब वेद-शास्त्रादिके उपदेश ही व्यर्थ हो गये, तब उन प्रमाणोंके झूठा हो जानेपर क्या धर्मका समूल नाश नहीं हो जायगा?॥ १४-१५॥

उद्यम करनेपर सिद्धिकी प्रत्यक्ष प्राप्ति हो जाती है। अतएव अपने मनमें भलीभाँति सोच करके कोई ऐसा उपाय कीजिये, जिससे मेरा यह बालक पुत्र बच जाय। किसीके कल्याणकी इच्छासे यदि झूठ बोल दिया जाय तो इसमें किसी प्रकारका दोष नहीं होता है—ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं॥ १६-१७१/२॥

वसुदेव बोले—हे महाभागे! सुनो, मैं तुमसे यह सत्य कह रहा हूँ। मनुष्यको उद्यम करना चाहिये, उसका फल दैवके अधीन रहता है। प्राचीन तत्त्ववेत्ताओंने इस संसारमें प्राणियोंके तीन प्रकारके कर्म पुराणों तथा शास्त्रोंमें बताये हैं। हे सुमध्यमे! संचित, प्रारब्ध और वर्तमान—ये तीन प्रकारके कर्म देहधारियोंके होते हैं। हे सुजघने! प्राणियोंद्वारा सम्पादित जो भी शुभाशुभ कर्म होते हैं, वे बीजका रूप धारण कर लेते हैं और अनेक जन्मोंके उपार्जित वे कर्म समय पाकर फल देनेके लिये उपस्थित हो जाते हैं॥ १८—२११/२॥

जीव अपना पूर्व शरीर छोड़कर अपने द्वारा किये गये कर्मोंके अधीन होकर स्वर्ग अथवा नरकमें जाता है। सुकर्म करनेवाला जीव दिव्य शरीर प्राप्त करके स्वर्गमें नानाविध सुखोंका उपभोग करता है तथा दुष्कर्म करनेवाला विषयभोगजन्य यातना देह प्राप्त करके नरकमें अनेक प्रकारके कष्ट भोगता है॥ २२-२३१/२॥

इस प्रकार भोग पूर्ण हो जानेपर जब पुनः उसके जन्मका समय आता है, तब लिंगदेहके साथ संयोग होनेपर उसकी 'जीव' संज्ञा हो जाती है। उसी समय जीवका संचित कर्मोंसे सम्बन्ध हो जाता है और पुनः लिंगदेहके आविर्भावके समय परमात्मा उन कर्मोंके साथ जीवको जोड़ देते हैं। हे सुलोचने! इसी शरीरके द्वारा जीवको संचित, वर्तमान और प्रारब्ध—इन तीन प्रकारके शुभ अथवा अशुभ कर्म भोगने पड़ते हैं। हे भामिनि!

केवल वर्तमान कर्म ही प्रायश्चित्त आदिके द्वारा नष्ट किये जा सकते हैं। इसी प्रकार समुचित शास्त्रोक्त उपायोंद्वारा संचित कर्मोंको भी विनष्ट किया जा सकता है, किंतु प्रारब्ध कर्मोंका क्षय तो भोगसे ही सम्भव है, अन्यथा नहीं॥ २४—२८॥

अतएव मुझे तुम्हारे इस पुत्रको हर प्रकारसे कंसको अर्पित कर ही देना चाहिये। ऐसा करनेसे मेरा वचन भी मिथ्या नहीं होगा और लोकनिन्दाका दोष भी मुझे नहीं लगेगा॥ २९॥

इस अनित्य संसारमें महापुरुषोंके लिये धर्म ही एकमात्र सार-तत्त्व है। इस लोकमें प्राणियोंका जन्म तथा मरण दैवके अधीन है। अतएव हे प्रिये! प्राणियोंको व्यर्थ शोक नहीं करना चाहिये। इस संसारमें जिसने सत्य छोड़ दिया उसका जीवन निरर्थक ही है॥ ३०-३१॥

जिसका यह लोक बिगड़ गया, उसके लिये परलोक कहाँ? अतः हे सुन्दर भौंहोंवाली! यह बालक मुझे दे दो और मैं इसे कंसको सौंप दूँ॥ ३२॥

हे देवि! सत्य-पथका अनुगमन करनेसे आगे कल्याण होगा। हे प्रिये! सुख अथवा दुःख—किसी भी परिस्थितिमें मनुष्योंको सत्कर्म ही करना चाहिये। (हे देवि! सत्यकी भलीभाँति रक्षा करनेसे कल्याण ही होगा)॥ ३३॥

व्यासजी बोले—अपने प्रिय पतिके ऐसा कहनेपर शोक-सन्तप्त तथा काँपती हुई मनस्विनी देवकीने वह नवजात शिशु वसुदेवको दे दिया॥ ३४॥

धर्मात्मा वसुदेव भी अपने पुत्र उस अबोध शिशुको लेकर कंसके महलकी ओर चल पड़े। मार्गमें लोग उनकी प्रशंसा कर रहे थे॥ ३५॥

लोगोंने कहा—हे नागरिको! इस मनस्वी वसुदेवको देखो; इस अबोध बालकको लेकर ये द्वेषरहित एवं सत्यवादी वसुदेव अपने वचनकी रक्षाके लिये आज इसे मृत्युको समर्पित करने जा रहे हैं। इनका जीवन सफल हो गया है। इनके इस अद्भुत धर्मपालनको देखो, जो साक्षात् कालस्वरूप कंसको अपना पुत्र देनेके लिये जा रहे हैं॥ ३६-३७½॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! इस प्रकार लोगोंद्वारा प्रशंसित होते हुए वे वसुदेव कंसके महलमें पहुँच गये और

उस दिव्य नवजात शिशुको कंसको अर्पित कर दिया। महात्मा वसुदेवके इस धैर्यको देखकर कंस भी विस्मित हो गया॥ ३८-३९॥

उस बालकको अपने हाथोंमें लेकर कंसने मुसकराते हुए यह वचन कहा—हे शूरसेनतनय! आप धन्य हैं; आज आपके इस पुत्र-समर्पणके कृत्यसे मैंने आपका महत्त्व जान लिया॥ ४०॥

यह बालक मेरी मृत्युका कारण नहीं है; क्योंकि आकाशवाणीके द्वारा देवकीका आठवाँ पुत्र मेरी मृत्युका कारण बताया गया है। अतएव मैं इस बालकका वध नहीं करूँगा, आप इसे अपने घर ले जाइये॥ ४१॥

हे महामते! आप मुझे देवकीका आठवाँ पुत्र दे दीजियेगा। ऐसा कहकर उस दुष्ट कंसने तुरंत वह शिशु वसुदेवको वापस दे दिया॥ ४२॥

राजा कंसने कहा कि यह बालक अपने घर जाय और सकुशल रहे। तत्पश्चात् उस बालकको लेकर शूरसेन-पुत्र वसुदेव प्रसन्नतापूर्वक अपने घरकी ओर चल पड़े॥ ४३॥

इसके बाद कंसने भी अपने मन्त्रियोंसे कहा कि मैं इस शिशुकी व्यर्थ ही हत्या क्यों करता; क्योंकि मेरी मृत्यु तो देवकीके आठवें पुत्रसे कही गयी है, अतः देवकीके

प्रथम शिशुका वध करके मैं पाप क्यों करूँ? तब वहाँ विद्यमान श्रेष्ठ मन्त्रिगण 'साधु, साधु'—ऐसा कहकर और कंससे आज्ञा पाकर अपने-अपने घर चले गये। उनके चले जानेपर मुनिश्रेष्ठ नारदजी वहाँ आ गये॥ ४४—४६॥

उस समय उग्रसेन-पुत्र कंसने श्रद्धापूर्वक उठकर विधिवत् अर्घ्य, पाद्य आदि अर्पण किया और पुनः कुशल-क्षेम तथा उनके आगमनका कारण पूछा॥ ४७॥

तब नारदजीने मुसकराकर कंससे यह वचन कहा—हे कंस! हे महाभाग! मैं सुमेरुपर्वतपर गया था। वहाँ ब्रह्मा आदि देवगण एकत्र होकर आपसमें मन्त्रणा कर रहे थे कि वसुदेवकी पत्नी देवकीके गर्भसे सुरश्रेष्ठ भगवान् विष्णु आपके संहारके उद्देश्यसे अवतार लेंगे; तो फिर नीतिका ज्ञान रखते हुए भी आपने उस शिशुका वध क्यों नहीं किया?॥ ४८—५०॥

कंस बोला—आकाशवाणीके द्वारा बताये गये अपने मृत्यु-रूप [देवकीके] आठवें पुत्रका मैं वध करूँगा॥ ५०½॥

नारदजी बोले—हे नृपश्रेष्ठ! आप शुभ तथा अशुभ राजनीतिको नहीं जानते हैं और देवताओंकी माया-शक्ति भी नहीं जानते हैं। अब मैं क्या बताऊँ? अपना कल्याण चाहनेवाले वीरको छोटे-से-छोटे शत्रुकी भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये॥ ५१-५२॥

[गणितशास्त्रकी] सम्मेलन-क्रियाके आधारपर तो सभी पुत्र आठवें कहे जा सकते हैं। आप मूर्ख हैं; क्योंकि ऐसा जानते हुए भी आपने शत्रुको छोड़ दिया है॥ ५३॥

ऐसा कहकर श्रीमान् देवदर्शन नारद वहाँसे शीघ्रतापूर्वक चले गये। नारदके चले जानेपर कंसने उस बालकको मँगवाकर उसे पत्थरपर पटक दिया और उस मन्दबुद्धि कंसको महान् सुख प्राप्त हुआ॥ ५४॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत चतुर्थ स्कन्धका 'कंसद्वारा देवकीके प्रथम पुत्रके वधका वर्णन' नामक इक्कीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २१॥

बाईसवाँ अध्याय

देवकीके छः पुत्रोंके पूर्वजन्मकी कथा, सातवें पुत्रके रूपमें भगवान् संकर्षणका अवतार, देवताओं तथा दानवोंके अंशावतारोंका वर्णन

जनमेजय बोले—हे पितामह! उस बालकने ऐसा कौन-सा पापकर्म किया था, जिससे जन्म लेते ही उसको दुष्टात्मा कंसने मार डाला?॥ १॥

महान् ज्ञानी, धर्मपरायण तथा ब्रह्मवेत्ता होते हुए भी मुनिश्रेष्ठ नारदने इस प्रकारका पाप क्यों किया? विद्वज्जनोंने पाप करने तथा करानेवाले—इन दोनोंको समान पापी बताया है; तो फिर उन देवर्षि नारदने इस पापकर्मके लिये दुष्ट कंसको प्रेरित क्यों किया?॥ २-३॥

इस विषयमें मुझे यह महान् सन्देह हो गया है। जिस कर्मफलसे वह बालक मारा गया, उसके बारेमें मुझे सब कुछ विस्तारपूर्वक बताइये॥ ४॥

व्यासजी बोले—देवर्षि नारदको कौतुक करना तथा कलह करा देना अत्यन्त प्रिय है। अतः देवताओंका कार्य साधनेके लिये ही उन्होंने उपस्थित होकर यह सब किया था॥ ५॥

उन मुनि नारदकी बुद्धि झूठ बोलनेमें कभी भी प्रवृत्त नहीं हो सकती। सत्यवादी तथा पवित्र हृदयवाले वे सदा देवताओंका कार्य सिद्ध करनेमें तत्पर रहते हैं॥ ६॥

इस प्रकार कंसने देवकीके छः पुत्रोंको बारी-बारीसे जन्म लेते ही मार डाला। पूर्वजन्ममें प्राप्त शापके कारण वे छः बालक जन्म लेते ही मृत्युको प्राप्त हो गये॥ ७॥

हे राजन्! सुनिये, अब मैं उनके शापका कारण बताऊँगा। स्वायम्भुव मन्वन्तरमें मरीचिकी भार्या ऊर्णाके गर्भसे छः अत्यन्त बलशाली पुत्र उत्पन्न हुए; ये धर्मशास्त्रमें

पूर्णरूपसे निष्णात थे॥ ८१/२॥

एक बार ब्रह्माजीको अपनी पुत्री सरस्वतीके साथ समागमके लिये उद्यत देखकर वे हँस पड़े थे। तब ब्रह्माजीने उन्हें शाप दे दिया कि तुमलोगोंका पतन हो जाय और तुम सब दैत्ययोनिमें जन्म लो। हे महाराज! इस प्रकार वे छहों पुत्र कालनेमिके पुत्ररूपमें उत्पन्न हुए॥ ९-१०॥

हे राजन्! अगले जन्ममें वे हिरण्यकशिपुके पुत्र हुए। उनका पूर्वज्ञान अभी बना हुआ था। अतः वे सब पूर्वशापसे भयभीत होकर उस जन्ममें समाहितचित्त हो शान्तभावसे तप करने लगे। इससे ब्रह्माजीने अत्यधिक प्रसन्न होकर उन छहोंको वरदान दे दिया॥ ११-१२॥

ब्रह्माजी बोले—हे महाभाग पुत्रो! मैंने क्रोधमें आकर उस समय तुम लोगोंको शाप दे दिया था। मैं तुम सभीपर परम प्रसन्न हूँ; अतएव अपना अभिलषित वर माँगो॥ १३॥

व्यासजी बोले—उन ब्रह्माका वचन सुनकर उनके मनमें अत्यधिक प्रसन्नता हुई। अपना कार्य सिद्ध करनेमें तत्पर उन सबने ब्रह्माजीसे वर माँग लिया॥ १४॥

बालक बोले—हे पितामह! यदि आज आप हमपर प्रसन्न हैं तो हमें मनोवांछित वरदान दीजिये। हमलोगोंको सभी देवता, मानव और महानाग न मार सकें। हे पितामह! यहाँतक कि गन्धर्व तथा बड़े-से-बड़े सिद्ध पुरुषोंसे भी हमारा वध न हो सके॥ १५१/२॥

व्यासजी बोले—तब ब्रह्माजीने उनसे कहा कि यह सब पूर्ण होगा। हे महाभाग्यशाली बालको! अब तुमलोग जाओ। यह सत्य होकर रहेगा; इसमें सन्देह नहीं है। जब ब्रह्माजी वरदान देकर चले गये, तब वे सब परम प्रसन्न हुए॥ १६-१७॥

हे कुरुश्रेष्ठ! [वरदानकी बात जानकर] हिरण्यकशिपु कुपित होकर उनसे बोला—हे पुत्रो! तुमलोगोंने मेरी उपेक्षा करके अपनी तपस्यासे ब्रह्माको प्रसन्न किया है। उनसे प्रार्थना करके वरदान पाकर तुमलोग अत्यधिक बलशाली हो गये हो। तुम सभीने अपने पिताके स्नेहको अपमानित किया है; अतएव मैं तुमलोगोंका परित्याग करता हूँ॥ १८-१९॥

अब तुमलोग पाताललोक चले जाओ। इस पृथ्वीपर तुमलोग 'षड्गर्भ' नामसे विख्यात होओगे। पाताललोकमें तुमलोग बहुत वर्षोंतक निद्राके वशीभूत रहोगे। तत्पश्चात् तुमलोग क्रमसे प्रतिवर्ष देवकीके गर्भसे उत्पन्न होते रहोगे और पूर्वजन्मका तुम्हारा पिता कालनेमि उस समय कंस नामसे उत्पन्न होगा। वह अत्यन्त क्रूर कंस तुमलोगोंको उत्पन्न होते ही मार डालेगा॥ २०-२११/२॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार हिरण्यकशिपुसे शापित होकर वे क्रमसे एक-एक करके देवकीके गर्भमें आते गये और कंस पूर्वशापसे प्रेरित होकर उन षड्गर्भरूप देवकीके पुत्रोंका वध करता गया। इसके बाद शेषनागके अंशावतार बलभद्रजी देवकीके सातवें गर्भमें आये॥ २२-२३॥

तत्पश्चात् योगमायाने अपने योगबलसे उस गर्भको च्युत कर दिया और हठात् खींचकर उसे रोहिणीके गर्भमें स्थापित कर दिया॥ २४॥

इसी बीच लोगोंको यह बात मालूम हो गयी कि पाँचवें महीनेमें ही देवकीका गर्भस्राव हो गया। कंस भी देवकीके गर्भपातका समाचार जान गया। अपने लिये यह सुखप्रद समाचार सुनकर वह दुरात्मा कंस बहुत प्रसन्न हुआ॥ २५॥

उधर देवताओंके कार्यको सिद्ध करने तथा पृथ्वीका

भार उतारनेके लिये जगत्पति भगवान् विष्णु देवकीके आठवें गर्भमें विराजमान हो गये॥ २६$^{1}/_{2}$॥

राजा बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! आपने यह बता दिया कि वसुदेवजी महर्षि कश्यपके अंशावतार थे और उनके यहाँ शेषनाग तथा भगवान् विष्णु अपने-अपने अंशोंसे उत्पन्न हुए। हे अनघ! देवताओंके अन्य जो-जो अंशावतार पृथ्वीकी प्रार्थनापर उसका भार उतारनेके लिये हुए हैं, उन्हें भी बताइये॥ २७-२८$^{1}/_{2}$॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! देवताओं तथा असुरोंके जो-जो अंश लोकमें विख्यात हुए हैं, उनके विषयमें मैं संक्षिप्तरूपमें बता रहा हूँ; आप उन्हें सुनिये—वसुदेव कश्यपके अंशसे तथा देवकी अदितिके अंशसे उत्पन्न थीं॥ २९-३०॥

बलदेवजी शेषनागके अंश थे। इन सभीके अवतरित हो जानेपर जिन धर्मपुत्र श्रीमान् नारायणके विषयमें कहा जा चुका है, उन्हींके अंशसे ही साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णने अवतार लिया। मुनिवर नारायणके श्रीकृष्णरूपमें प्रकट हो जानेपर उनके नर नामक जो छोटे भाई हैं, उनके अंशस्वरूप अर्जुनका प्राकट्य हुआ॥ ३१-३२॥

महाराज युधिष्ठिर धर्मके अंश, भीमसेन पवनदेवके अंश तथा माद्रीके दोनों महाबली पुत्र नकुल एवं सहदेव दोनों अश्विनीकुमारोंके अंश कहे गये हैं॥ ३३॥

कर्ण सूर्यके अंशसे प्रकट हुए और विदुरको धर्मका अंश बताया गया है। द्रोणाचार्य बृहस्पतिके अंशसे तथा उनका पुत्र अश्वत्थामा शिवके अंशसे उत्पन्न थे॥ ३४॥

विद्वानोंका मानना है कि समुद्रके अंशसे महाराज शन्तनु तथा गंगाके अंशसे उनकी भार्या उत्पन्न हुई थीं। पुराणप्रसिद्ध गन्धर्वराजके अंशसे महाराज देवक उत्पन्न हुए थे॥ ३५॥

भीष्मपितामहको वसुका तथा राजा विराटको मरुद्-गणोंका अंशावतार बताया गया है। महाराज धृतराष्ट्र अरिष्टनेमिके पुत्र हंसके अंशसे उत्पन्न कहे गये हैं॥ ३६॥

कृपाचार्यको किसी एक मरुद्गणका अंश तथा कृतवर्माको किसी दूसरे मरुद्गणका अंश बताया गया है। [हे राजन्!] दुर्योधनको कलिका अंश तथा शकुनिको द्वापरका अंश समझिये॥ ३७॥

प्रसिद्ध सोमनन्दन सुवर्चा पृथ्वीपर सोमप्ररु नामसे विख्यात हुए। धृष्टद्युम्न अग्नि तथा शिखण्डी राक्षसके अंशसे उत्पन्न हुए॥ ३८॥

प्रद्युम्न सनत्कुमारके अंश कहे गये हैं। द्रुपद वरुणके अंश थे तथा द्रौपदी साक्षात् लक्ष्मीके अंशसे उत्पन्न थीं॥ ३९॥

द्रौपदीके पाँचों पुत्र विश्वेदेवके अंशसे उत्पन्न माने गये हैं। कुन्ती सिद्धिके अंशसे, माद्री धृतिके अंशसे तथा गान्धारी मतिके अंशसे उत्पन्न हुई थीं॥ ४०॥

भगवान् कृष्णकी सभी पत्नियाँ देवताओंकी रमणियोंके अंशसे उत्पन्न कही गयी हैं। इन्द्रके द्वारा भेजे हुए सब दैत्य धरातलपर आकर दुराचारी नरेश बने थे॥ ४१॥

शिशुपालको हिरण्यकशिपुका अंश कहा गया है। जरासन्ध विप्रचित्तिका तथा शल्य प्रह्लादका अंशावतार था॥ ४२॥

कालनेमि कंस हुआ तथा हयशिराको केशीका जन्म प्राप्त हुआ। बलिपुत्र ककुद्मी अरिष्टासुर बना, जो गोकुलमें मारा गया॥ ४३॥

अनुह्लाद धृष्टकेतु बना और बाष्कल भगदत्तके रूपमें उत्पन्न हुआ। लम्बने प्रलम्बासुरके रूपमें जन्म लिया तथा खर धेनुकासुर हुआ॥ ४४॥

अत्यन्त भयंकर वाराह और किशोर नामक दोनों दैत्य चाणूर और मुष्टिक नामक पहलवानोंके रूपमें प्रख्यात हुए॥ ४५॥

दितिका पुत्र अरिष्टासुर कुवलयापीड नामक हाथी हुआ। बलिकी पुत्री पूतना (बकी) राक्षसी बनी और उसका छोटा भाई बकासुर कहलाया॥ ४६॥

द्रोणपुत्र महाबली अश्वत्थामा यम, रुद्र, काम और क्रोध—इन चारोंके अंशसे उत्पन्न हुआ था॥ ४७॥

पूर्वकालमें जो दैत्य तथा राक्षस थे, वे अपने-अपने अंशोंसे उत्पन्न हुए। इस प्रकार पृथ्वीका भार उतारनेके लिये वे सभी देवताओंके अंशसे उत्पन्न हुए॥ ४८॥

हे राजन्! पुराणोंमें इन देवताओं तथा असुरोंके अंशावतारोंका जो वर्णन किया गया है, वह सब मैंने आपसे

कह दिया॥ ४९॥

जब ब्रह्मा आदि देवता प्रार्थना करनेके लिये भगवान् विष्णुके पास गये थे तब विष्णुजीने उन्हें श्वेत तथा श्याम वर्णवाले दो केश प्रदान किये थे॥ ५०॥

तदनन्तर पृथ्वीका भार उतारनेके लिये भगवान् कृष्ण श्यामवर्ण विष्णुका अंश लेकर तथा बलरामजी श्वेतवर्ण शेषनागका अंश लेकर अवतरित हुए॥ ५१॥

जो प्राणी भक्ति-भावनासे इस अंशावतारकी कथाका श्रवण करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त होकर अपने बन्धु-बान्धवोंके सहित आनन्दित रहता है॥ ५२॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत चतुर्थ स्कन्धका 'देवदानवोंका अंशावतारवर्णन' नामक बाईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २२॥

तेईसवाँ अध्याय

कंसके कारागारमें भगवान् श्रीकृष्णका अवतार, वसुदेवजीका उन्हें गोकुल पहुँचाना और वहाँसे योगमायास्वरूपा कन्याको लेकर आना, कंसद्वारा कन्याके वधका प्रयास, योगमायाद्वारा आकाशवाणी करनेपर कंसका अपने सेवकोंद्वारा नवजात शिशुओंका वध कराना

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] उग्रसेनपुत्र कंसके द्वारा देवकीके छः पुत्रोंका वध कर दिये जानेपर तथा सातवाँ गर्भ गिर जानेके पश्चात् वह राजा कंस नारदजीके कथनानुसार अपनी मृत्युके सम्बन्धमें भलीभाँति विचार करते हुए सावधानीपूर्वक आठवें गर्भको [गिरनेसे] बचानेका प्रयत्न करने लगा॥ १-२॥

उचित समय आनेपर भगवान् श्रीहरि अपने अंशके साथ वसुदेवमें प्रविष्ट होकर देवकीके गर्भमें विराजमान हो गये॥ ३॥

उसी समय देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके उद्देश्यसे भगवती योगमायाने अपनी इच्छासे यशोदाके गर्भमें प्रवेश किया॥ ४॥

कंसके भयसे उद्विग्न होकर गोकुलमें कालक्षेप कर रही वसुदेव-भार्या रोहिणीके गर्भसे पुत्ररूपमें बलरामजी प्रकट हो चुके थे॥ ५॥

तदनन्तर कंसने देववन्दिता देवकीको कारागारमें बन्द कर दिया और उनकी रखवालीके लिये बहुतसे सेवक नियुक्त कर दिये॥ ६॥

अपनी पत्नी देवकीके पुत्र-प्रसवकी बातको ध्यानमें रखते हुए तथा उनके प्रेमपाशमें आबद्ध रहनेके कारण वसुदेवजी भी उनके साथ कारागारमें ही रहने लगे॥ ७॥

देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये देवकीके गर्भमें विराजमान भगवान् विष्णु देवसमुदायद्वारा स्तूयमान होते हुए धीरे-धीरे वृद्धिको प्राप्त होने लगे॥ ८॥

श्रावणमासमें दसवाँ महीना पूर्ण हो जानेपर (भाद्रपद-मासके) कृष्णपक्षमें रोहिणी नक्षत्रयुक्त शुभ अष्टमी तिथिके उपस्थित होनेपर भयसे व्याकुल कंसने सभी दानवोंसे कहा कि आपलोग इस समय गर्भकक्षमें विद्यमान देवकीकी रखवाली करें॥ ९-१०॥

देवकीके आठवें गर्भसे उत्पन्न बालक मेरा शत्रु होगा। अतएव आपलोगोंको मेरे कालरूप उस बालककी यत्नपूर्वक रखवाली करनी चाहिये॥ ११॥

हे दैत्यो! इस समय मैं विषम दुःखकी स्थितिमें हूँ। देवकीके आठवें गर्भसे उत्पन्न बालकका वध कर लेनेके बाद ही मैं अपने महलमें सुखपूर्वक सो सकूँगा॥ १२॥

आप सभी लोग अपने हाथोंमें तलवार, भाला और धनुष धारण करके निद्रा तथा आलस्यसे रहित होकर चारों ओर दृष्टि रखियेगा॥ १३॥

व्यासजी बोले—उन दैत्योंको यह आज्ञा देकर भयाकुल तथा [चिन्ताके कारण] अति दुर्बल दानव कंस तत्काल अपने महलमें चला गया, किंतु वहाँ भी वह सुखकी नींद नहीं सो पा रहा था॥ १४॥

तत्पश्चात् मध्यरात्रिमें देवकीने वसुदेवजीसे कहा—महाराज! मेरे प्रसवका समय आ गया है, अब मैं क्या

करूँ ?॥ १५ ॥

यहाँपर बहुतसे भयंकर रक्षक नियुक्त हैं। यहाँ आनेके पूर्व नन्दकी पत्नी यशोदासे मेरी यह बात निश्चित हुई थी। [उन्होंने कहा था—] 'हे मानिनि! तुम अपने पुत्रको मेरे घर भेज देना, मैं मन लगाकर तुम्हारे पुत्रका पालन-पोषण करूँगी। कंसको विश्वास दिलानेके लिये मैं तुम्हें इसके बदले अपनी सन्तान दे दूँगी।' अत: हे प्रभो! इस विषम परिस्थितिमें अब हमें क्या करना चाहिये? हे शूरतनय! आप इन दोनों सन्तानोंकी अदला-बदली करनेमें कैसे समर्थ हो सकेंगे? हे कान्त! आप अपना मुख फेरकर मुझसे दूर होकर बैठिये; क्योंकि दुस्तर लज्जाके कारण मैं संकोचमें पड़ रही हूँ। हे स्वामिन्! इसके अतिरिक्त यहाँ कुछ विशेष कर ही क्या सकती हूँ॥ १६—१९१/२ ॥

देवतुल्य महाभाग वसुदेवसे ऐसा कहकर देवकीने उसी अर्धरात्रिकी शुभ वेलामें एक परम अद्भुत बालकको जन्म दिया। उस सुन्दर बालकको देखकर देवकीको महान् आश्चर्य हुआ॥ २०-२१ ॥

[पुत्रप्राप्तिके कारण] हर्षातिरेकसे प्रफुल्लित अंग-प्रत्यंगोंवाली महाभागा देवकीने पतिसे कहा—हे कान्त! अपने पुत्रका मुख तो देख लीजिये; क्योंकि हे प्रभो! इसका दर्शन आपके लिये फिर सर्वथा दुर्लभ हो जायगा। कालरूपी मेरा भाई कंस आज ही इसका वध कर डालेगा। तब 'ठीक है'—ऐसा कहकर वसुदेवजी उस पुत्रको अपने

हाथोंमें लेकर अद्भुत कर्मशाली अपने उस पुत्रका मुख निहारने लगे। तत्पश्चात् अपने पुत्रका मुख देखकर वसुदेवजी इस चिन्तासे आकुल हो गये कि मैं कौन-सा उपाय करूँ, जिससे इस बालकके लिये मुझे विषाद न हो॥ २२—२४१/२ ॥

वसुदेवजीके इस प्रकार चिन्तामग्न होनेपर उन्हें सम्बोधित करके आकाशमें स्पष्ट शब्दोंमें आकाश-वाणी हुई—हे वसुदेव! तुम इस बालकको लेकर तत्काल गोकुल पहुँचा दो। सभी रक्षकगण मेरे द्वारा निद्रासे अचेत कर दिये गये हैं, आठों फाटकोंको खोल दिया गया है तथा जंजीरें तोड़ दी गयी हैं। इस बालकको नन्दके घर छोड़कर वहाँसे तुम योगमायाको उठा लाओ॥ २५—२७१/२ ॥

यह वाणी सुनकर उस कारागृहमें निरुद्ध वसुदेवजी बाहरकी ओर गये। हे राजन्! इस प्रकार वसुदेवजी फाटकोंको खुला हुआ देखकर बड़ी शीघ्रतापूर्वक उस बालकको लेकर द्वारपालोंकी दृष्टिसे बचते हुए तत्काल कारागारसे निकल पड़े॥ २८-२९ ॥

यमुनाके किनारे पहुँचकर उन्होंने देखा कि इस पारसे उस पार अगाध जल आप्लावित हो रहा है। उनका गोकुल जाना भी सुनिश्चित था। उनके जलमें उतरते ही नदियोंमें श्रेष्ठ यमुनाजीमें कमरभर पानी हो गया॥ ३० ॥

योगमायाके प्रभावसे वसुदेवजीने सहजतापूर्वक यमुनाजीको पार कर लिया और वे उस आधी रातमें सुनसान मार्गपर चलते हुए गोकुलमें पहुँचकर नन्दके द्वारपर विपुल गौ-सम्पदा देखते हुए वहाँ स्थित हो गये॥ ३११/२ ॥

उसी समय योगमायाके अंशसे जायमान दिव्यरूपमयी त्रिगुणात्मिका भगवतीने यशोदाके गर्भसे अवतार लिया था। तदनन्तर सैरन्ध्रीका रूप धारण करके स्वयं भगवतीने उत्पन्न उस अलौकिक बालिकाको अपने करकमलमें ग्रहण करके वहाँ जाकर वसुदेवजीको दे दिया। वसुदेवजी भी अपने पुत्रको देवीरूपा सैरन्ध्रीके करकमलमें रखकर योगमायास्वरूपा उस बालिकाको लेकर प्रसन्नतापूर्वक वहाँसे तत्काल चल पड़े॥ ३२—३४१/२ ॥

कारागारमें पहुँचकर उन्होंने देवकीकी शय्यापर बालिकाको लिटा दिया और भय तथा चिन्तासे युक्त होकर वे पासहीमें एक ओर जाकर बैठ गये॥ ३५१/२॥

इतनेमें कन्याने उच्च स्वरमें रोना आरम्भ किया। तब प्रसवकालको सूचित करनेके लिये नियुक्त कंसके सेवकगण रातमें रोनेकी वह ध्वनि सुनकर जाग पड़े। आनन्दसे विह्वल वे सेवक तत्काल उसी समय जाकर राजासे बोले—हे महामते! देवकीका पुत्र उत्पन्न हो गया, आप शीघ्र चलिये॥ ३६-३७१/२॥

उनका यह वचन सुनते ही भोजपति कंस तत्काल जा पहुँचा और वहाँपर दरवाजा खुला हुआ देखकर कंसने वसुदेवजीको बुलवाया॥ ३८१/२॥

कंस बोला—हे महामतिसम्पन्न वसुदेव! देवकीके पुत्रको यहाँ ले आओ। देवकीका आठवाँ गर्भ मेरी मृत्यु है, अतः मैं उस विष्णुरूप अपने शत्रुका वध करूँगा॥ ३९१/२॥

व्यासजी बोले—कंसका वचन सुनकर भयसे सन्त्रस्त नयनोंवाले वसुदेवजीने शीघ्र ही उस कन्याको ले जाकर कंसके हाथोंमें रोते हुए रख दिया। उस बालिकाको देखकर राजा कंस बड़ा विस्मित हुआ॥ ४०-४१॥

आकाशवाणी तथा नारदजीका वचन—दोनों ही मिथ्या सिद्ध हुए और यहाँ संकटकी स्थितिमें पड़ा हुआ यह वसुदेव भी झूठी बात भला कैसे बना सकता है? मेरे सभी रक्षक भी सावधान थे; इसमें कोई सन्देह नहीं है। तब यह बालिका कहाँसे आ गयी और वह बालक कहाँ चला गया? कालकी बड़ी विषम गति होती है, अतएव इसके सम्बन्धमें अब किसी प्रकारका सन्देह नहीं करना चाहिये॥ ४२-४३१/२॥

ऐसा सोचकर उस दुष्ट, निर्मम तथा कुलकलंकी कंसने बालिकाके दोनों पैर पकड़कर पत्थरपर पटका। किंतु वह कन्या कंसके हाथसे छूटकर आकाशमें चली गयी। वहाँ दिव्य रूप धारण करके उस कन्याने मधुर स्वरमें उससे कहा—'अरे पापी! मुझे मारनेसे तुम्हारा क्या लाभ होगा; तेरा

महाबलशाली शत्रु तो जन्म ले चुका है। वे दुराराध्य परमपुरुष तुझ नराधमका वध अवश्य करेंगे।' ऐसा कहकर स्वेच्छा-विहारिणी तथा कल्याणकारिणी भगवतीस्वरूपा वह कन्या आकाशमें चली गयी॥ ४४—४७॥

यह सुनकर आश्चर्यसे युक्त कंस अपने महलके लिये प्रस्थान कर गया। वहाँ बकासुर, धेनुकासुर तथा वत्सासुर आदि दानवोंको बुलवाकर अत्यन्त कुपित तथा भयाक्रान्त कंसने उनसे कहा—हे दानवो! मेरा कार्य सिद्ध करनेके लिये तुम सभी यहाँसे अभी प्रस्थान करो और जहाँ कहीं भी तुमलोगोंको नवजात शिशु मिलें, उन्हें अवश्य मार डालना। बालघातिनी यह पूतना अभी नन्दराजके गोकुलमें चली जाय। वहाँ सद्यःप्रसूत जितने बालक मिलें, उन्हें यह पूतना मेरी आज्ञासे मार डाले। धेनुक, वत्सक, केशी, प्रलम्ब और बक—ये समस्त असुर मेरा कार्य सिद्ध करनेकी इच्छासे वहाँ निरन्तर विद्यमान रहें॥ ४८—५११/२॥

इस प्रकार सभी दैत्योंको आदेश देकर वह दुष्ट कंस अपने भवनमें चला गया। अपने शत्रुरूप उस बालकके विषयमें बार-बार सोचकर वह अत्यन्त चिन्तातुर तथा खिन्नमनस्क हो गया॥ ५२-५३॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत चतुर्थ स्कन्धका 'कंसके प्रति योगमायावचन' नामक तेईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २३॥

चौबीसवाँ अध्याय

श्रीकृष्णावतारकी संक्षिप्त कथा, कृष्णपुत्रका प्रसूतिगृहसे हरण, कृष्णद्वारा भगवतीकी स्तुति, भगवती चण्डिकाद्वारा सोलह वर्षके बाद पुनः पुत्रप्राप्तिका वर देना

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] प्रात:काल नन्दजीके घरमें पुत्रजन्मका बड़ा भारी समारोह सम्पन्न हुआ, यह बात चारों ओर फैल गयी और कंसने भी किसी दूतके मुखसे यह सुन लिया॥ १॥

कंस यह पहलेसे ही जानता था कि वसुदेवकी अन्य भार्या, पशु तथा सेवकगण—सब-के-सब गोकुलमें नन्दके यहाँ रह रहे हैं। हे भारत! इस कारणसे गोकुलके प्रति कंसका सन्देह और बढ़ गया। नारदजीने भी सभी कारण पहले ही बता दिये थे। उन्होंने कह दिया था कि गोकुलमें नन्द आदि गोप, उनकी पत्नियाँ, देवकी तथा वसुदेव आदि जो भी लोग हैं, वे सब देवताओंके अंशसे उत्पन्न हुए हैं; इसलिये वे निश्चितरूपसे तुम्हारे शत्रु हैं॥ २—४॥

हे राजन्! देवर्षि नारदने जब यह बात बतायी थी तो बड़े-से-बड़े पापकर्मोंमें प्रवृत्त रहनेवाला वह कुलकलंकी कंस अत्यधिक कुपित हो गया था॥ ५॥

अपरिमित तेजवाले श्रीकृष्णने पूतना, बकासुर, वत्सासुर, महाबली धेनुकासुर तथा प्रलम्बासुरको मार डाला और गोवर्धनपर्वतको उठा लिया—इस अद्भुत कर्मको सुनकर कंसने यह अनुमान लगा लिया कि मेरा भी मरण अब सुनिश्चित है॥ ६-७॥

[महान् बलशाली] केशी भी मार डाला गया—यह जानकर कंस अत्यधिक खिन्नमनस्क हो गया, तब उसने धनुष-यज्ञके बहाने [कृष्ण तथा बलराम] दोनोंको शीघ्र ही मथुरामें बुलानेकी योजना बनायी॥ ८॥

निर्दयी तथा पापबुद्धि कंसने असीम पराक्रमी श्रीकृष्ण तथा बलरामका वध करनेके उद्देश्यसे उन्हें बुलानेके लिये अक्रूरको भेजा॥ ९॥

तदनन्तर कंसका आदेश मानकर गान्दिनीपुत्र अक्रूर गोकुल गये और दोनों गोपालों—श्रीकृष्ण तथा बलरामको रथपर बैठाकर गोकुलसे मथुरा लौट आये॥ १०॥

वहाँ पहुँचकर श्रीकृष्ण तथा बलरामने धनुषको तोड़ा। पुनः रजक, कुवलयापीड हाथी, चाणूर और मुष्टिकका संहार करके भगवान् श्रीकृष्णने शल तथा तोशलका वध किया। तत्पश्चात् देवेश श्रीकृष्णने कंसके बाल पकड़कर लीलापूर्वक उसको भी मार डाला॥ ११-१२॥

तदनन्तर शत्रुविनाशक श्रीकृष्णने अपने माता-पिताको कारागारसे मुक्त कराकर उनका कष्ट दूर किया और उग्रसेनको उनका राज्य वापस दिला दिया॥ १३॥

तदनन्तर महामना वसुदेवने उन दोनोंका मौंजी-बन्धन तथा उपनयन-संस्कार विधिपूर्वक सम्पन्न करवाया॥ १४॥

उपनयन-संस्कार हो जानेके पश्चात् वे दोनों सान्दीपनिऋषिके आश्रममें विद्याध्ययनके लिये गये और समस्त विद्याओंका अध्ययन करके पुनः मथुरा लौट आये॥ १५॥

आनकदुन्दुभि (वसुदेवजी)-के पुत्र कृष्ण और बलराम बारह वर्षकी अवस्थामें ही सम्पूर्ण विद्याओंमें निष्णात तथा महान् बलशाली होकर मथुरामें ही निवास करने लगे॥ १६॥

उधर अपने जामाता कंसके वधसे मगधनरेश जरासन्ध अत्यन्त दु:खित हुआ और उसने विशाल सेना संगठितकर मथुरापुरीपर आक्रमण कर दिया॥ १७॥

किंतु मधुपुरी (मथुरा)-में निवास करनेवाले बुद्धिमान् श्रीकृष्णने समरांगणमें उपस्थित होकर सत्रह बार उसे पराजित किया॥ १८॥

इसके बाद जरासन्धने यादव-समुदायके लिये

भयदायक तथा सम्पूर्ण म्लेच्छोंके अधिपति कालयवन नामक योद्धाको श्रीकृष्णका सामना करनेके लिये प्रेरित किया॥ १९॥

कालयवनको आता सुनकर मधुसूदन श्रीकृष्णने सभी प्रसिद्ध यादवों तथा बलरामको बुलाकर कहा—महाबलशाली जरासन्धसे हमलोगोंको यहाँ बराबर भय बना हुआ है। [उसीकी प्रेरणासे] कालयवन यहाँ आ रहा है। हे महाभाग! ऐसी स्थितिमें हमलोगोंको क्या करना चाहिये?॥ २०-२१॥

इस समय घर, सेना और धन छोड़कर हमें प्राण बचा लेना चाहिये। जहाँ भी सुखपूर्वक रहनेका प्रबन्ध हो जाय, वही पैतृक देश होता है॥ २२॥

इसके विपरीत उत्तम कुलके निवास करनेयोग्य पैतृक भूमिमें भी यदि सदा अशान्ति बनी रहती हो तो ऐसे स्थानपर रहनेसे क्या लाभ? अत: सुखकी कामना करनेवालेको पर्वत या समुद्रके पास निवास कर लेना चाहिये॥ २३॥

जिस स्थानपर शत्रुओंका भय नहीं रहता, ऐसे स्थानपर ही विज्ञजनोंको रहना चाहिये। भगवान् विष्णु शेषशय्याका आश्रय लेकर समुद्रमें शयन करते हैं और इसी प्रकार त्रिपुरदमन भगवान् शंकर भी कैलासपर्वतपर निवास करते हैं। अतएव शत्रुओंद्वारा निरन्तर सन्तप्त किये गये हमलोगोंको अब यहाँ नहीं रहना चाहिये। अब हम सभी लोग एक साथ द्वारकापुरी चलेंगे। गरुडने मुझसे बताया है कि द्वारकापुरी अत्यन्त रमणीक तथा मनोहर है, जो समुद्रके तटपर तथा रैवतपर्वतके समीप विराजमान है॥ २४—२६ १/२॥

व्यासजी बोले—श्रीकृष्णकी यह युक्तिपूर्ण बात सुनकर सभी श्रेष्ठ यादवोंने अपने परिवारजनों तथा वाहनोंके साथ जानेका निश्चय कर लिया। गाड़ियों, ऊँटों, घोड़ियों और भैंसोंपर धन-सामग्री लादकर तथा श्रीकृष्ण और बलरामको आगे करके वे सभी यादवश्रेष्ठ अपने परिजनोंको साथ लेकर नगरसे बाहर हो गये। समस्त प्रजाजनोंको आगे-आगे करके सभी श्रेष्ठ यादव चल पड़े। वे सब कुछ ही दिनोंमें द्वारकापुरी पहुँच गये॥ २७—३०॥

श्रीकृष्णने कुशल शिल्पकारोंसे द्वारकापुरीका जीर्णोद्धार कराया, सभी यादवोंको वहाँ बसाकर वे श्रीकृष्ण और बलराम तत्काल मथुरा लौटकर उस निर्जन पुरीमें रहने लगे। उसी समय शक्तिशाली कालयवन भी वहाँ आ गया। कालयवनको आया जानकर वे पीताम्बरधारी तथा ऐश्वर्यसम्पन्न मधुसूदन भगवान् जनार्दन नगरसे बाहर निकल पड़े और जोर-जोर हँसते हुए उसके आगे-आगे पैदल ही चलने लगे॥ ३१-३३ १/२॥

उन कमललोचन श्रीकृष्णको अपने आगे जाता देखकर वह दुष्ट कालयवन उनके पीछे-पीछे पैदल ही चलता रहा। तत्पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण कालयवनसहित

वहाँ पहुँच गये, जहाँ महाबली राजर्षि मुचुकुन्द शयन कर रहे थे। मुचुकुन्दको देखकर भगवान् कृष्ण वहीं अन्तर्धान हो गये॥ ३४-३६॥

वह कालयवन भी वहीं पहुँच गया। उसने देखा कि कोई सो रहा है। राजर्षि मुचुकुन्दको कृष्ण समझकर कालयवनने उनके ऊपर पैरसे प्रहार किया॥ ३७॥

[कालयवनद्वारा पाद-प्रहार किये जानेसे] वे जग गये और क्रोधसे आँखें लाल किये हुए महाबली मुचुकुन्दने [उसकी ओर दृष्टिपात करके] उसे भस्म

कर दिया। उसे जलानेके बाद मुचुकुन्दने अपने समक्ष कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णको उपस्थित देखा। तदनन्तर देवाधिदेव वासुदेवको प्रणाम करके वे वनकी ओर प्रस्थान कर गये। भगवान् श्रीकृष्ण भी बलरामको साथ लेकर द्वारकापुरी चले गये॥ ३८-३९॥

इस प्रकार उग्रसेनको पुनः राजा बनाकर वे इच्छापूर्वक विहार करने लगे। इसके बाद शिशुपालके साथ रुक्मिणीके सुनिश्चित किये गये विवाहहेतु आयोजित स्वयंवरसे भगवान् श्रीकृष्णने रुक्मिणीका हरण कर लिया और उसके साथ राक्षसविधिसे विवाह कर लिया। तत्पश्चात् जाम्बवती, सत्यभामा, मित्रविन्दा, कालिन्दी, लक्ष्मणा, भद्रा तथा नाग्नजिती—इन दिव्य सुन्दरियोंको बारी-बारीसे ले आकर श्रीकृष्णने उनके साथ भी पाणिग्रहण किया। हे भूपाल! श्रीकृष्णकी ये ही परम सुन्दर आठ पत्नियाँ थीं। इनमें रुक्मिणीने देखनेमें परम सुन्दर पुत्र प्रद्युम्नको जन्म दिया॥ ४०—४३॥

मधुसूदन भगवान् श्रीकृष्णने उस बालकके जातकर्म आदि संस्कार किये। महाबली शम्बरासुरने प्रसवगृहसे उस बालकका हरण कर लिया और उसे अपनी नगरीमें ले जाकर मायावतीको सौंप दिया॥ ४४१/२॥

उधर, अपने पुत्रका हरण देखकर शोक-सन्तप्त वासुदेव श्रीकृष्णने भक्तिभावयुक्त हृदयसे उन भगवती योगमायाकी शरण ली, जिन्होंने वृत्रासुर आदि दैत्योंका लीलामात्रसे वध कर दिया था॥ ४५-४६॥

तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण अत्यन्त सारगर्भित अक्षरों तथा वाक्योंसे युक्त मंगलमय स्तवनोंके द्वारा योगमायाका पुण्य-स्मरण करने लगे॥ ४७॥

श्रीकृष्ण बोले—हे माता! पूर्वकालमें मैंने धर्मपुत्र नारायणके रूपमें बदरिकाश्रममें घोर तपस्या करके तथा पुष्प आदिसे आपकी विधिवत् पूजा करके आपको प्रसन्न किया था। हे जननि! क्या अपने प्रति मेरे उस भक्तिभावको आपने विस्मृत कर दिया?॥ ४८॥

किस कुत्सित हृदयवाले दुराचारीने प्रसूतिगृहसे मेरे पुत्रका हरण कर लिया? अथवा किसीने मेरा अभिमान दूर करनेके लिये कौतूहलवश यह प्रपंच रच दिया है। हे अम्ब! चाहे जो हो, किंतु आज अपने भक्तजनकी लाज रखना आपका परमोचित कर्तव्य है॥ ४९॥

चारों ओर दुस्तर खाइयोंसे अति सुरक्षित मेरी नगरी है, उसमें भी मेरा भवन मध्य भागमें स्थित है और उस भवनके अन्तःपुरमें प्रसूतिगृह स्थित है, जिसके दरवाजे बन्द रहते हैं; फिर भी मेरे पुत्रका हरण हो गया। यह तो मेरे दोषके ही कारण हुआ॥ ५०॥

मैं द्वारकापुरी छोड़कर किसी अन्य नगरमें नहीं गया और यादवगण भी वहाँसे कहीं नहीं गये थे। महान् वीरोंके द्वारा नगरीकी पूर्ण सुरक्षा की गयी थी। हे माता! इसमें तो मुझे आपकी ही मायाका प्रत्यक्ष प्रभाव परिलक्षित हो रहा है, जिसकी प्रेरणासे किसी मायावीने मेरे पुत्रका हरण कर लिया है॥ ५१॥

हे माता! जब मैं आपके अत्यन्त गुप्त चरित्रको नहीं जान पाया तो फिर मन्दबुद्धि तथा अल्पज्ञ ऐसा कौन प्राणी होगा, जो आपके चरित्रको जान सकता है। मेरे पुत्रका हरण करनेवाला कहाँ चला गया, जिसे मेरे सैनिक देखतक नहीं पाये, हे अम्बिके! यह आपकी ही रची हुई मायाका प्रभाव है॥ ५२॥

आपके लिये यह कोई विचित्र बात नहीं है; क्योंकि मेरे प्रकट होनेके पूर्व आपने अपनी मायाके प्रभावसे माता देवकीके पाँच महीनेके गर्भको खींचकर [माता रोहिणीके गर्भमें] स्थापित कर दिया था। वसुदेवजी कारागारमें निरुद्ध थे; उनसे दूर रहती हुई पतिपरायणा माता रोहिणीने सम्पर्कके बिना ही उसे जन्म दिया, जो हलधर नामसे प्रसिद्ध हुआ॥ ५३॥

हे अम्ब! आप सत्त्व, रज तथा तम—इन तीनों गुणोंके द्वारा जगत्का सृजन, पालन तथा संहार निरन्तर करती रहती हैं। हे जननि! आपके पापनाशक चरित्रको कौन जान सकता है? वास्तविकता तो यह है कि यह सम्पूर्ण जगत्प्रपंच आपके ही द्वारा विरचित है॥ ५४॥

आप पहले प्राणियोंके समक्ष पुत्र-जन्मसे होनेवाले असीम आनन्दको उपस्थित करके पुनः पुत्र-वियोगजनित दुःखका भार उनके ऊपर ला देती हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि उन सुललित प्रपंचोंकी रचना करके आप अपना मनोरंजन करती हैं। यदि ऐसा न होता तो पुत्र-प्राप्तिजनित मेरा आनन्द व्यर्थ क्यों होता?॥ ५५॥

हे अमित प्रभाववाली भगवति! इस बालककी माता कुररी पक्षीकी भाँति रो रही है। वह बेचारी सदा मेरे पास ही रहती है, जिसे देखकर मेरा दुःख और भी बढ़ जाता है। हे माता! आप ही तो भवव्याधिसे पीड़ित प्राणियोंकी एकमात्र शरण हैं; हे ललिते! आप उसका दुःख क्यों नहीं समझ रही हैं?॥ ५६॥

हे देवि! विद्वज्जन कहते हैं कि पुत्र-जन्मके अवसरपर सुखकी कोई सीमा नहीं रहती तथा उसके नष्ट हो जानेपर दुःखकी भी सीमा नहीं रहती। हे जननि! अब मैं क्या करूँ? हे माता! अपने प्रथम पुत्रके विनष्ट हो जानेपर मेरा हृदय अब विदीर्ण होता जा रहा है॥ ५७॥

मैं आपको प्रसन्न करनेवाला अम्बायज्ञ करूँगा, नवरात्रव्रत करूँगा और विधि-विधानसे आपका पूजन करूँगा; क्योंकि आप सम्पूर्ण दुःखोंका नाश करनेवाली हैं। हे माता! यदि मेरा पुत्र जीवित हो तो आप मुझे शीघ्र उसे दिखा दीजिये; क्योंकि आप समस्त प्रकारके शोकोंका शमन करनेमें समर्थ हैं॥ ५८॥

व्यासजी बोले—असाध्य-से-असाध्य कार्योंको भी सहज भावसे कर सकनेमें समर्थ भगवान् श्रीकृष्णके इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवती उन जगद्गुरु वासुदेवके

सामने प्रत्यक्ष प्रकट होकर बोलीं— ॥ ५९॥

श्रीदेवी बोलीं—हे देवेश! आप शोक न करें। यह आपका पूर्वजन्मका शाप है; उसीके परिणामस्वरूप शम्बरासुरने आपके पुत्रका बलपूर्वक हरण कर लिया है॥ ६०॥

सोलह वर्षका हो जानेपर वह पुत्र मेरी कृपासे उस शम्बरासुरका संहार करके स्वयं ही घर आ जायगा; इसमें सन्देह नहीं है॥ ६१॥

व्यासजी बोले—ऐसा कहकर प्रचण्ड पराक्रमसे सम्पन्न भगवती चण्डिका अन्तर्धान हो गयीं और भगवान् श्रीकृष्ण भी पुत्र-शोक त्यागकर प्रसन्न हो गये॥ ६२॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत चतुर्थ स्कन्धका 'देवीके द्वारा कृष्णशोकापनोदन' नामक चौबीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २४॥

पचीसवाँ अध्याय

व्यासजीद्वारा शाम्भवी मायाकी बलवत्ताका वर्णन, श्रीकृष्णद्वारा शिवजीकी प्रसन्नताके लिये तप करना और शिवजीद्वारा उन्हें वरदान देना

राजा बोले—हे मुनिवर! आपकी इस बातसे तथा साक्षात् विष्णुके अंशावतार भगवान् कृष्णके ऊपर कष्टका पड़ना देखकर मुझे सन्देह हो रहा है॥ १॥

भगवान् विष्णुके अंशसे उत्पन्न श्रीकृष्ण [अपरिमित] प्रतापसे सम्पन्न थे, फिर भी भगवान्‌के उस पुत्रका प्रसव-गृहसे हरण कैसे सम्भव हुआ?॥ २॥

वह दैत्य शम्बरासुर चारों ओरसे भलीभाँति सुरक्षित रमणीय नगरके अत्यन्त गुप्त स्थानमें अवस्थित प्रसव-गृहमें प्रवेश करके उस बालकको कैसे उठा ले गया?॥ ३॥

यह बड़ी विचित्र तथा अद्भुत बात है कि भगवान् श्रीकृष्ण भी इसे नहीं जान पाये। हे सत्यवतीनन्दन! मेरे मनमें [इस बातको लेकर] महान् आश्चर्य उत्पन्न हो रहा है!॥ ४॥

हे ब्रह्मन्! वहाँ द्वारकापुरीमें वासुदेव श्रीकृष्णके विद्यमान रहते हुए भी सूतिका-गृहसे बच्चेके हरणकी जानकारी उन्हें नहीं हो सकी; मुझे इसका कारण बताइये॥ ५॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! प्राणियोंकी बुद्धिको विमोहित कर देनेवाली माया बड़ी बलवती होती है; यह शाम्भवी नामसे प्रसिद्ध है। संसारमें कौन-सा प्राणी है, जो [इस मायाके प्रभावसे] मोहित नहीं हो जाता है॥ ६॥

मनुष्य-जन्म पाते ही प्राणीमें समस्त मानवोचित गुण उत्पन्न हो जाते हैं। ये सभी गुण देहसे सम्बन्ध रखते हैं। देवता अथवा दानव—कोई भी इससे परे नहीं है॥ ७॥

भूख, प्यास, निद्रा, भय, तन्द्रा, व्यामोह, शोक, सन्देह, हर्ष, अभिमान, बुढ़ापा, मृत्यु, अज्ञान, ग्लानि, वैर, ईर्ष्या, परदोषदृष्टि, मद और थकावट—ये देहके साथ उत्पन्न होते हैं। हे राजन्! ये भाव सभीपर अपना प्रभाव डालते हैं॥ ८-९॥

जिस प्रकार श्रीराम अपने समक्ष विचरणशील स्वर्ण-मृगकी वास्तविकताको नहीं जान पाये और वे सीताहरण तथा जटायुमरणकी घटना भी नहीं जान सके॥ १०॥

श्रीराम यह भी नहीं जान सके कि अभिषेकके दिन ही उन्हें वनवास होगा और वे अपने वियोगजनित शोकसे पिताकी मृत्यु भी नहीं जान पाये॥ ११॥

रावणके द्वारा बलपूर्वक हरी गयी सीताके सम्बन्धमें श्रीराम कुछ भी नहीं जान सके थे और एक अज्ञानी पुरुषकी भाँति उन्हें खोजते हुए वन-वनमें भटकते रहे॥ १२॥

तदनन्तर उन्होंने बलपूर्वक वालीका वध करके वानरोंको अपना सहायक बनाकर सागरपर सेतु बाँधा और पुनः उस समुद्रको पार करके उन्होंने सभी दिशाओंमें बड़े-बड़े शूरवीर वानरोंको भेजा। तत्पश्चात् संग्रामभूमिमें रावणके साथ घोर युद्ध किया, जिसमें उन्हें महान् कष्ट उठाना पड़ा॥ १३-१४॥

महाबली होते हुए भी श्रीरामको नागपाशमें बँधना पड़ा; बादमें गरुडकी सहायतासे वे रघुनन्दन बन्धनमुक्त हुए॥ १५॥

श्रीरामने कोप करके समरभूमिमें रावण, महाबली कुम्भकर्ण, मेघनाद तथा निकुम्भका संहार किया॥ १६॥

भगवान् श्रीरामको जानकीकी निर्दोषताका भी परिज्ञान नहीं हो सका और उन्होंने शुद्धताकी परीक्षाहेतु प्रज्वलित अग्निमें उनका प्रवेश कराया॥ १७॥

तत्पश्चात् दशरथपुत्र श्रीरामने परम पवित्र तथा प्रिय सीताको लोकनिन्दाके भयसे दूषित मानकर उनका परित्याग कर दिया॥ १८॥

वे श्रीराम अपने पुत्रों लव-कुशको नहीं पहचान सके। बादमें महर्षि वाल्मीकिने उन्हें बताया कि वे दोनों महाबली बालक उन्हींके पुत्र हैं॥ १९॥

वे रघुनन्दन श्रीराम सीताके पाताल जानेकी भी बात नहीं जान पाये। वे कुपित होकर भाईका वध करनेको उद्यत हो गये॥ २०॥

दानव खरके संहारक श्रीरामको कालके आगमनका भी ज्ञान नहीं हो सका। मानव-शरीर धारण करके उन्होंने मनुष्योंके समान कार्य किये॥ २१॥

ऐसे ही श्रीकृष्णने भी सभी मानवोचित भाव प्रदर्शित किये, इस विषयमें अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये। यदुनन्दन

श्रीकृष्ण पहले कंसके भयसे गोकुल जानेको विवश हुए। कुछ समयके पश्चात् जरासन्धके भयसे मथुरा छोड़कर श्रीकृष्णको द्वारका जाना पड़ा। वे ही श्रीकृष्ण अधर्मपूर्ण कार्य करनेमें प्रवृत्त हुए जो कि उन्होंने सनातन धर्मको जानते हुए भी शिशुपालके द्वारा वरण की गयी रुक्मिणीका हरण कर लिया। शम्बरासुरके द्वारा पुत्रका बलपूर्वक हरण कर लिये जानेपर उसके लिये श्रीकृष्ण शोकाकुल हो उठे और [भगवतीसे] पुत्रके जीवित होनेकी बात जानकर वे प्रसन्न हो गये। इस प्रकार हर्ष तथा शोक—इन दोनोंसे वे प्रभावित रहे॥ २२—२४१/२॥

सत्यभामाकी आज्ञासे स्वर्गमें जाकर कल्पवृक्षके लिये उन्होंने इन्द्रके साथ युद्ध किया। युद्धमें इन्द्रको परास्त करके अपना स्त्रीवशित्व प्रकट करते हुए श्रीकृष्णने इन्द्रसे वह कल्पवृक्ष छीन लिया था। मानिनी सत्यभामाका मान रखनेके लिये प्रभु श्रीकृष्ण काष्ठमूर्तिके रूपमें चित्रित हो गये और सत्यभामाने पति कृष्णको वृक्षमें बाँधकर उन्हें नारदको दान कर दिया। तत्पश्चात् सत्यभामाने सोनेका कृष्ण दानमें देकर उन्हें नारदजीसे मुक्त कराया॥ २५—२७१/२॥

रुक्मिणीके प्रद्युम्न आदि विशिष्ट गुणसम्पन्न पुत्रोंको देखकर दीनभावसे जाम्बवतीने कृष्णसे सुन्दर सन्तानहेतु याचना की, तब तपस्या करनेका निश्चय करके वे पर्वतपर चले गये, जहाँ महान् तपस्वी तथा शिवभक्त मुनि उपमन्यु विराजमान थे॥ २८-२९१/२॥

वहाँपर पुत्राभिलाषी श्रीकृष्णने उपमन्युको अपना गुरु बनाकर उनसे पाशुपत-दीक्षा ली और वे वहींपर मुण्डित होकर दण्डी हो गये। महीनेभर फलाहार करते हुए श्रीकृष्णने घोर तपस्या की और शिवके ध्यानमें लीन होकर शिवमन्त्रका जप किया। दूसरे महीनेमें केवल जल पीकर और एक पैरसे खड़े होकर श्रीकृष्णने कठोर तप किया। तीसरे महीनेमें वे वायुभक्षण करते हुए पैरके अँगूठेके अग्रभागपर स्थित रहे। तत्पश्चात् छठे महीनेमें भगवान् रुद्र उनके भक्तिभावसे प्रसन्न हो गये और उन चन्द्रकलाधारी भगवान् शंकरने पार्वतीसहित उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिया। वे नन्दी बैलपर सवार होकर वहाँ आये थे और इन्द्र आदि देवताओंसे घिरे हुए थे। उस समय ब्रह्मा और विष्णु भी उनके साथ थे तथा साक्षात् यक्ष और गन्धर्व उनकी निरन्तर सेवा कर रहे थे। उन वासुदेव श्रीकृष्णको सम्बोधित करते हुए शंकरजीने कहा—हे कृष्ण! हे महामते! तुम्हारी इस कठोर तपस्यासे मैं प्रसन्न हूँ। अतः हे यादवनन्दन! तुम अपने वांछित मनोरथ बताओ, मैं उन्हें दूँगा। सभी मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले मुझ शिवका दर्शन हो जानेपर कोई भी कामना शेष नहीं रह जाती॥ ३०—३६१/२॥

व्यासजी बोले—उन भगवान् शंकरको प्रसन्न देखकर देवकीनन्दन श्रीकृष्ण प्रेमपूर्वक उनके चरणोंमें दण्डकी भाँति गिर पड़े। तदनन्तर देवेश्वर सनातन श्रीकृष्ण शंकरजीके सम्मुख खड़े होकर मेघ-सदृश गम्भीर वाणीमें उनकी स्तुति करने लगे॥ ३७-३८१/२॥

श्रीकृष्ण बोले—हे देवदेव! हे जगन्नाथ! हे सभी प्राणियोंके कष्टके विनाशक! हे विश्वयोने! हे दैत्यमर्दन! हे त्रैलोक्यकारक! आपको नमस्कार है। हे नीलकण्ठ! आपको नमस्कार है, आप त्रिशूलधारीको बार-बार नमस्कार है। दक्षके यज्ञका विध्वंस करनेवाले आप पार्वतीवल्लभको नमस्कार है। हे सुव्रत! आपके दर्शनसे मैं धन्य तथा कृतकृत्य हो गया। आपके चरणकमलका नमन करके मेरा जन्म सफल हो गया। हे जगद्गुरो! इस संसारमें आकर मैं स्त्रीरूपी बन्धनोंमें आबद्ध हो गया हूँ॥ ३९—४२॥

हे त्रिलोचन! अपनी रक्षाके लिये आज मैं आपकी शरणमें आया हूँ। हे दुःखनाशन! मानव-जन्म पाकर मैं बहुत खिन्न हो गया हूँ। हे भव! शरणमें आये हुए तथा सांसारिक दुःखोंसे भयभीत मुझ दीनकी इस समय आप रक्षा कीजिये। हे मदनदाहक! मैंने गर्भमें रहकर बहुत कष्ट पाया है। जन्मकालसे ही गोकुलमें रहते हुए मुझे कंससे भयभीत रहना पड़ा। तत्पश्चात् नन्दके यहाँ मुझे गोपालनका कार्य करना पड़ा और गायोंके खुरसे उड़ी हुई धूलसे धूसरित केशपाशवाला होकर घने वृन्दावनमें इधर-उधर विचरण करता हुआ मैं ग्वालोंकी आज्ञाका पालन करनेको विवश हुआ॥ ४३—४५१/२॥

हे विभो! उसके बाद म्लेच्छराज कालयवनके भयसे सन्त्रस्त होकर मथुरा-जैसी दुर्लभ तथा शुभ पैतृक भूमि छोड़कर मुझे द्वारकापुरी चले जाना पड़ा। हे विभो! राजा ययातिके शापवश भयके कारण अपने कुल-धर्मकी रक्षामें तत्पर मैंने समृद्धिमयी मथुरा तथा द्वारकापुरीका राज्य

उग्रसेनको सौंप दिया और सदा उनका दास बनकर उनकी सेवा की। हमारे पूर्वजोंने उन उग्रसेनको ही यादवोंका राजा बनाया था॥ ४६—४८$^{1}/_{2}$॥

हे शम्भो! गृहस्थीका जीवन अत्यन्त कष्टप्रद होता है। इसमें सदा स्त्रीके वशीभूत रहना पड़ता है और अनेक धार्मिक मर्यादाओंका उल्लंघन हो जाता है। इसमें परतन्त्रता तथा स्त्रीपुत्रादिका बन्धन सदा बाँधे रखता है। इस जीवनमें मोक्षकी वार्ता तो दुर्लभ रहती है॥ ४९$^{1}/_{2}$॥

रुक्मिणीके पुत्रोंको देखकर मेरी भार्या जाम्बवतीने पुत्र-प्राप्तिके निमित्त तपस्या करनेके लिये मुझे प्रेरित किया। अतएव हे मदनान्तक! पुत्र-प्राप्तिकी कामनासे मुझे यह तपस्या करनी पड़ी। हे देवेश! [पुत्र-प्राप्तिके लिये] आपसे याचना करनेमें मुझे लज्जाका अनुभव हो रहा है। हे जगद्गुरो! आप मुक्तिदाता तथा भक्तवत्सल देवेश्वरकी आराधनाके बाद उनके प्रसन्न हो जानेपर कौन मूर्ख ऐसे विनाशशील तथा तुच्छ फलकी कामना करेगा? हे शम्भो! हे जगत्पते! हे विभो! अपनी भार्या जाम्बवतीसे प्रेरित होकर आपकी मायासे विमूढचित्त यह मैं आप मुक्तिदातासे पुत्र-सुखकी याचना कर रहा हूँ॥ ५०—५३$^{1}/_{2}$॥

हे शम्भो! मैं जानता हूँ कि यह संसार कष्टदायक, दु:खोंका आगार, अनित्य तथा विनाशशील है, फिर भी इसके प्रति मेरे मनमें वैराग्य-भावका उदय नहीं हो पा रहा है। नारायणका अंश होते हुए भी पूर्वजन्मके शापके कारण मायापाशमें आबद्ध होकर नानाविध कष्ट भोगनेके लिये मुझे पृथ्वीतलपर जन्म लेना पड़ा॥ ५४-५५$^{1}/_{2}$॥

व्यासजी बोले—भगवान् श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर महेश्वरने उनसे कहा—हे शत्रुदमन! आपके बहुतसे पुत्र होंगे; आपकी सोलह हजार पचास भार्याएँ भी होंगी। उनमेंसे प्रत्येक स्त्रीसे दस-दस महाबलवान् पुत्र उत्पन्न होंगे—ऐसा कहकर प्रियदर्शन शिवजी चुप हो गये॥ ५६—५८॥

तत्पश्चात् प्रणाम करते हुए श्रीकृष्णसे देवी पार्वतीने कहा—हे कृष्ण! हे महाबाहो! हे नराधिप! इस संसारमें आप सर्वश्रेष्ठ गृहस्थ होंगे। इसके बाद हे जनार्दन! सौ वर्ष व्यतीत होनेपर एक विप्र तथा गान्धारीके शापके कारण आपके कुलका नाश हो जायगा। शापवश अज्ञानमें पड़कर आपके वे पुत्र तथा अन्य सभी यादव आपसमें एक दूसरेको मारकर रणभूमिमें विनष्ट हो जायँगे और आप अपने भाई बलरामके साथ यह शरीर छोड़कर दिव्य लोकको प्रयाण करेंगे॥ ५९—६२॥

हे प्रभो! आपको होनहारके विषयमें किसी प्रकारकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये; क्योंकि अवश्यम्भावी घटनाओंका कोई भी प्रतीकार सम्भव नहीं है। हे मधुसूदन! मेरा सर्वदा यही निश्चित मन्तव्य रहा है कि भावीके विषयमें शोक नहीं करना चाहिये। हे कृष्ण! आपके प्रयाण कर जानेपर अष्टावक्रके शापके कारण आपकी भार्याएँ चोरोंद्वारा हर ली जायँगी॥ ६३-६४$^{1}/_{2}$॥

व्यासजी बोले—ऐसा कहकर भगवान् शिव समस्त देवताओं तथा पार्वतीसमेत अन्तर्धान हो गये। इसके बाद अपने गुरु उपमन्युको प्रणाम करके श्रीकृष्ण भी द्वारकापुरीके लिये प्रस्थित हुए। हे राजन्! यद्यपि ब्रह्मा आदि देवता लोकके अधीश्वर हैं, फिर भी मायारूपिणी नदीकी उत्ताल तरंगोंके आघात-प्रत्याघातसे क्षुब्ध अन्त:करणवाले बनकर वे भी उसी प्रकार उस मायाके अधीन रहते हैं, जैसे कठपुतली बाजीगरके अधीन रहती है॥ ६५—६७॥

उनके पूर्वजन्मके संचित कर्म जिस प्रकारके होते हैं, उसीके अनुरूप परब्रह्मस्वरूपिणी माया उन्हें सदा प्रेरित करती रहती है। उन भगवतीके हृदयमें किसी प्रकारकी विषमता अथवा निर्दयताका लेशमात्र भी नहीं रहता। वे अखिल भुवनकी ईश्वरी केवल जीवोंको भवबन्धनसे छुटकारा दिलानेके लिये निरन्तर प्रयत्नशील रहती हैं॥ ६८-६९॥

यदि वे भगवती इस चराचर जगत्की सृष्टि न करतीं तो समग्र जीव-जगत् माया-शक्तिके बिना सर्वदाके लिये जड़ ही रह जाता। अतएव वे भगवती करुणा करके यह जगत् और जीव आदि जो भी हैं, उनकी रचना करती हैं और उन्हें कर्मशील बनानेके लिये सतत प्रेरणा देती रहती हैं॥ ७०-७१॥

अतएव ब्रह्मादि देवताओंके भी इस प्रकार माया-विमोहित हो जानेमें सन्देह नहीं करना चाहिये; क्योंकि समस्त देवता तथा दानव मायासे निरन्तर आवृत रहते हुए भगवती योगमायाके अधीन रहते हैं॥ ७२॥

स्वेच्छया विचरण एवं विहार करनेवाली वे देवेश्वरी ही स्वतन्त्र हैं। अतएव हे राजन्! उन महेश्वरीकी सम्यक् प्रकारसे पूजा करनी चाहिये। तीनों लोकोंमें उनसे श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है। उन पराशक्ति भगवती योगमायाके पावन चरणोंका सदा स्मरण बना रहे—यही जीवनकी सफलता है॥ ७३-७४॥

मेरा जन्म उस कुलमें न हो, जहाँ देवीकी उपासना न होती हो। मैं उन देवीका ही अंश हूँ, दूसरा नहीं। मैं ही ब्रह्म हूँ; तब मैं शोकका भागी नहीं हो सकता। इस अभेदबुद्धिसे युक्त रहते हुए उन सनातन जगदम्बाका चिन्तन करना चाहिये। गुरुके उपदेशसे वेदान्तश्रवण आदिके द्वारा भगवतीके स्वरूपको जानकर नित्य एकाग्र मनसे उन आत्मस्वरूपिणी योगमायाकी भावना करनी चाहिये। ऐसा करनेसे प्राणी भव-बन्धनसे शीघ्र ही छूट जाता है, अन्यथा करोड़ों कर्मोंसे भी नहीं छूट सकता॥ ७५—७७॥

निर्मल अन्तःकरणवाले सभी श्वेताश्वतर आदि ऋषिगण उन्हीं आत्मस्वरूपिणी भगवतीका अपने हृदयमें साक्षात्कार करके भव-बन्धनसे मुक्त हुए हैं। उन्हींकी भाँति ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता तथा गौरी, लक्ष्मी आदि देवियाँ—ये सब उन्हीं सच्चिदानन्दस्वरूपिणी भगवतीकी उपासना करते हैं॥ ७८-७९॥

हे राजन्! हे अनघ! नानाविध प्रपंचोंके तापसे त्रस्त आपने मुझसे जो कुछ पूछा था, मैंने वह सब बता दिया। अब आप और क्या सुनना चाहते हैं?॥ ८०॥

हे महाराज! मैंने आपको यह परमश्रेष्ठ आख्यान सुनाया है; जो सर्वपापविनाशक, पुण्यदायक, पुरातन तथा अत्यन्त अद्भुत कथानक है॥ ८१॥

जो इस वेदतुल्य पुराणका नित्य श्रवण करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर देवीलोकमें महान् आनन्द प्राप्त करता है॥ ८२॥

सूतजी बोले—[हे मुनियो!] मैंने व्यासजीद्वारा विस्तारपूर्वक कहे गये इस श्रीमद् [देवी] भागवत नामक पंचम महापुराणको उनसे सुना था॥ ८३॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत चतुर्थ स्कन्धका 'पराशक्तिका सर्वज्ञत्वकथन' नामक पचीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २५॥

॥ चतुर्थ स्कन्ध समाप्त॥

श्रुतिस्मृती तु नेत्रे द्वे पुराणं हृदयं स्मृतम्। श्रुतिस्मृतिभ्यां हीनोऽन्धः काणः स्यादेकया विना॥
पुराणहीनाद्धृच्छून्यात् काणान्धावपि तौ वरौ। श्रुतिस्मृत्युदितो धर्मः पुराणे परिगीयते॥
यस्य धर्मेऽस्ति जिज्ञासा यस्य पापाद्भयं महत्। श्रोतव्यानि पुराणानि धर्ममूलानि तेन वै॥
चतुर्दशसु विद्यासु पुराणं दीप उत्तमः। अन्धोऽपि न तदालोकात् संसाराब्धौ क्वचित् पतेत्॥

विद्वानोंके श्रुति-स्मृति—ये दो नेत्र हैं और पुराण हृदय है। इनमेंसे जिसे श्रुति-स्मृतिमेंसे किसी एकका ज्ञान नहीं है; वह काना, दोनोंके ज्ञानसे हीन अन्धा है, किंतु जो पुराणरूपी विद्यासे हीन है वह तो हृदयहीन या शून्य होनेके कारण इन दोनोंसे भी निकृष्ट है। श्रुति तथा स्मृतियोंमें कहा गया धर्म पुराणमें प्रतिपादित है। जिसकी धर्ममें जिज्ञासा या रुचि हो, जो पापोंसे डरता हो, उसे पुराणोंका श्रवण करना चाहिये; क्योंकि वे ही धर्मके मूल हैं। चौदहों विद्याओंमें पुराण-विद्या ही उत्तम दीपक है। इसके आलोक—प्रकाशमें स्थित अन्धा भी संसार-सागरमें कभी नहीं गिरता। **[स्कन्दपु० का० २। ९६-९७, ९९-१००]**

॥ श्रीजगदम्बिकायै नमः ॥

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण

पंचम स्कन्ध

पहला अध्याय

व्यासजीद्वारा त्रिदेवोंकी तुलनामें भगवतीकी उत्तमताका वर्णन

ऋषिगण बोले—हे सूतजी! आपने यह बहुत ही उत्तम कथा कही, जिसमें भगवान् श्रीकृष्णके सर्वपापविनाशक तथा अलौकिक चरित्रका वर्णन है॥ १॥

हे महाभाग! हे महामते! [आपके द्वारा] विस्तारपूर्वक कहे जा रहे श्रीकृष्णके इस कथानकमें हमें सन्देह हो रहा है॥ २॥

[एक तो] विष्णुके अंशावतार श्रीकृष्णने वनमें जाकर घोर तप किया और शिवकी आराधना की; पुनः जगज्जननी श्रीदेवी भगवती पूर्णाकी अंशस्वरूपा देवी पार्वतीने श्रीकृष्णको जो वरदान दिया; ईश्वर होते हुए भी श्रीकृष्णने शिव तथा पार्वतीकी उपासना क्यों की? क्या श्रीकृष्णमें शिवकी अपेक्षा कोई न्यूनता थी? यही हमारा सन्देह है॥ ३—५॥

सूतजी बोले—हे महाभाग मुनिगण! व्यासजीसे इसका जो कारण मैंने सुना है, उसे आपलोग सुनिये। अब मैं भगवान् श्रीकृष्णके गुणोंसे परिपूर्ण कथा कहता हूँ॥ ६॥

व्यासजीसे यह वृत्तान्त सुनकर प्रतिभावान् राजा जनमेजय और भी अधिक सन्देहमें पड़ गये; तब उन्होंने फिर पूछा॥ ७॥

जनमेजय बोले—हे सत्यवतीतनय व्यासजी! मैंने परमकारणस्वरूपा भगवतीके विषयमें सुना। फिर भी मनकी वृत्ति संशयसे मुक्त नहीं हो पा रही है॥ ८॥

हे महाभाग! मुझे यह महान् विस्मय है कि देवोंके भी देव विष्णुके अंशसे उत्पन्न श्रीकृष्णने अति उग्र तपस्या करके भगवान् शिवकी आराधना की। जो सभी जीवोंकी आत्मा, सभीके ईश्वर और सभी प्रकारकी सिद्धियाँ देनेवाले हैं—उन भगवान् कृष्णने भी सामान्य प्राणियोंकी भाँति घोर तप क्यों किया? भगवान् श्रीकृष्ण तो जगत्का सृजन, पालन तथा संहार करनेमें समर्थ हैं; तब भी उन्होंने इतनी उग्र तपस्या किसलिये की?॥ ९—११॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! आपने सत्य कहा है। दैत्यदमन भगवान् वासुदेव देवताओंके सभी कार्य करनेमें समर्थ थे; फिर भी उन परमेश्वर श्रीकृष्णने मानव-देह धारण करनेके कारण वर्णाश्रमधर्मसे सम्बन्धित मानवोचित कार्य सम्पादित किये थे। उन्होंने वृद्धजनोंकी पूजा, गुरुजनोंकी चरण-वन्दना, ब्राह्मणोंकी सेवा तथा देवताओंकी आराधना की। शोकके अवसरपर वे शोकाकुल हुए तथा हर्षकी स्थितिमें हर्षित हुए। [अवसरके अनुसार] उन्होंने दीनताका प्रदर्शन किया, नानाविध लोकापवादोंको सहन किया तथा अपनी स्त्रियोंके साथ लीला-विहार किया। जिस प्रकार मानवमें समय-समयपर काम, क्रोध तथा लोभ होते रहते हैं, उसी प्रकारके भाव उनके भी मनमें जाग्रत् हुए; क्योंकि गुणमय देहमें निर्गुणत्व कैसे हो सकता है?॥ १२—१६॥

सुबलसुता गान्धारी तथा ब्राह्मण अष्टावक्रके शापजनित दोषके कारण यादवोंका विनाश हुआ और भगवान् कृष्णको देह-त्याग करना पड़ा॥ १७॥

हे राजन्! उसी प्रकार उनकी स्त्रियोंका हरण हुआ, उनका धन लूट लिया गया तथा अर्जुन उन लुटेरोंपर अपना अस्त्र चलानेमें पुरुषार्थहीन हो गये॥ १८॥

श्रीकृष्णको अपने घरसे प्रद्युम्न तथा अनिरुद्धके हरणकी जानकारी नहीं हो पायी। इस प्रकार यह मानव-शरीर पाकर उन्होंने साधारण प्राणीकी भाँति सभी मानवीय चेष्टाओंका प्रदर्शन किया॥ १९॥

तब भगवान् विष्णुके अंशावतार तथा साक्षात् नारायणके अंशसे उत्पन्न इन श्रीकृष्णने यदि शिवजीकी उपासना की तो इसमें आश्चर्य क्या?॥ २०॥

वे प्रभु सबके ईश्वर हैं तथा विष्णुकी भी उत्पत्तिके कारण हैं। वे सुषुप्तस्थान (कारण-देह)-के स्वामी हैं। इसीलिये वे विष्णुके द्वारा भी पूजित हैं। कृष्ण आदि उन्हीं विष्णुके अंशसे अवतीर्ण हैं तब वे शिवकी पूजा क्यों नहीं करेंगे? ॐकारका 'अ' ब्रह्माका रूप है, 'उ' विष्णुका रूप है, 'म्' भगवान् शिवका रूप है और अर्धमात्रा (चन्द्रबिन्दु) भगवती महेश्वरीका रूप है। ये उत्तरोत्तर क्रमसे एक-दूसरेसे उत्तम हैं—ऐसा विद्वानोंने कहा है॥ २१—२३॥

अतएव समस्त शास्त्रोंमें देवी सर्वोत्तम मानी गयी हैं। वे भगवती बिन्दुरूप नित्य अर्धमात्रामें स्थित हैं, जो [अर्धमात्रा] विशेषरूपसे उच्चारित नहीं की जा सकती॥ २४॥

ब्रह्माजीसे भी बढ़कर विष्णु तथा विष्णुसे भी बढ़कर भगवान् शिव हैं। अत: श्रीकृष्णद्वारा शिवकी आराधनामें किसी प्रकारका सन्देह नहीं करना चाहिये॥ २५॥

सृजन-कार्यके लिये जब ब्रह्माजीने शिवकी उपासना की तब इच्छापूर्वक उन्हें वरदान देनेके लिये शिवजी उन्हींके मुखसे प्रकट हो गये, जो मूलरुद्र कहलाये। पुन: उन मूलरुद्रके अंशसे द्वितीय रुद्र उत्पन्न हुए। वे रुद्रदेव भी सबके पूजनीय हैं तो फिर मूलरुद्रके विषयमें कहना ही क्या? देवीतत्त्वके सांनिध्यमें रहनेके कारण ही शिवजीमें उत्तमता कही गयी है॥ २६-२७॥

भगवती योगमायाके ही प्रभावसे प्रत्येक युगमें भगवान् विष्णुके विभिन्न अवतार होते रहते हैं; इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये॥ २८॥

अत्यन्त निगूढ रहस्योंवाली जो भगवती अप्रत्यक्षरूपसे नेत्रकी पलक झँपनेमात्रमें भलीभाँति जगत्‌की उत्पत्ति, पालन तथा संहार कर देती हैं; वे ही ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवको अनेकविध रूपोंमें अवतार ग्रहण करनेमें निरन्तर दु:खोंसे व्याकुल करती रहती हैं॥ २९॥

इन्हीं योगमायाके द्वारा श्रीकृष्णको प्रसूतिगृहसे निकालकर गोपराज नन्दके भवनमें पहुँचाकर उनकी रक्षा की गयी। वे योगमाया ही कंसके विनाशार्थ श्रीकृष्णको मथुरा ले गयीं। जरासन्धसे अत्यन्त भयाक्रान्त चित्तवाले श्रीकृष्णको द्वारका बनानेकी प्रेरणा भी उन्हीं भगवतीने दी॥ ३०॥

उन्होंने ही अपनी कला-शक्तिसे सोलह हजार पचास रानियों तथा आठ पटरानियोंकी रचना करके पुन: भगवान् श्रीकृष्णको उनके विलासके वशीभूत करके उन अनन्त शक्तिसम्पन्न श्रीकृष्णको उनका वशवर्ती बना दिया॥ ३१॥

केवल एक ही युवती अपने लौहमय सुदृढ़ पाशमें पुरुषको बाँध सकनेमें समर्थ है तो फिर जिसकी सोलह हजार पचास भार्याएँ हों उसके विषयमें क्या कहना? वे सब तो उस पुरुषको पालित तोतेकी भाँति अपनी इच्छाके अनुरूप नियन्त्रित कर ही सकती हैं॥ ३२॥

सत्राजित्‌की पुत्री सत्यभामाके वशीभूत श्रीकृष्ण उसके कहनेपर प्रसन्नतापूर्वक इन्द्रके भवनमें पहुँच गये। वहाँपर इन्द्रके साथ युद्ध करके उन्होंने तरुराज कल्पवृक्ष छीन लिया और उससे अपनी प्रिया सत्यभामाके महलको सुशोभित किया॥ ३३॥

समस्त धार्मिक अनुष्ठानोंको विधिपूर्वक करनेकी इच्छावाले भगवान् श्रीकृष्णने शिशुपाल आदि वीरोंको जीतकर [पूर्वत: वाग्दत्ता] रुक्मिणीका हरण कर लिया और अपने बलके प्रभावसे उसे अपनी धर्मपत्नीके रूपमें ग्रहण किया। किसी दूसरेकी भार्या हरण करनेकी यह कौन-सी विधि निर्मित हो गयी?॥ ३४॥

अत्यन्त दारुण अध:पतन करानेवाले मोहजालसे विमोहित तथा अहंकारके वशीभूत मनुष्य नानाविध शुभ

तथा अशुभ कार्य करता है॥ ३५॥

मूलप्रकृतिजन्य उग्र अहंकारसे ही इस स्थावर-जंगमात्मक जगत्की उत्पत्ति हुई है और इसीसे विष्णु, शिव आदि देवोंका भी प्रादुर्भाव हुआ है॥ ३६॥

जब ब्रह्माजी पूर्णरूपसे अहंकारसे रहित होते हैं, तब वे सृष्टिके निर्माण-कार्यसे मुक्त हो जाते हैं; अन्यथा अहंकारके वशवर्ती होकर वे सृष्टि-रचनामें प्रवृत्त रहते हैं॥ ३७॥

उस अहंकारसे मुक्त प्राणी सांसारिक बन्धनसे छूट जाता है और उसके वशीभूत हुआ प्राणी सांसारिक बन्धनमें पड़ जाता है। हे राजन्! स्त्री, धन, घर, पुत्र तथा सहोदर भाई—ये सब बन्धनके मूल कारण नहीं हैं, अपितु अहंकार ही प्राणियोंके लिये बन्धनकारी वस्तु है। मैं ही कर्ता हूँ, यह कार्य मैंने अपने ही सामर्थ्यसे पूरा किया है, यह कार्य पूरा कर लूँगा, यह कार्य अभी कर लेता हूँ—इन भावनाओंके कारण प्राणी स्वयं बँधता चला जाता है। कोई भी कार्य बिना कारणके कदापि नहीं होता है, जैसे मिट्टीके पिण्डके बिना घड़ा न तो बन सकता है, न दिखायी पड़ सकता है॥ ३८—४०$^{१}/_{२}$॥

जब भगवान् विष्णु अहंकारके वशवर्ती होते हैं तभी वे विश्वका पालन करनेमें समर्थ होते हैं। नहीं तो वे सदा [सृष्टिपालनके] चिन्तारूपी समुद्रमें डूबे क्यों रहते?॥ ४१$^{१}/_{२}$॥

अहंकारमुक्त होकर यदि वे मनुष्यरूप ग्रहण करें तो निर्मलचित्त हुए वे अवतार-प्रवाहमें होनेवाले (सुख-दु:खादि)-में कैसे डूबें-उतराएँ?॥ ४२$^{१}/_{२}$॥

अहंकार ही अज्ञानका मूल कारण है तथा उसीसे इस जगत्की उत्पत्ति हुई है। अहंकारसे विहीन प्राणीको अज्ञानता तथा सांसारिक बन्धन—दोनों ही नहीं होते॥ ४३$^{१}/_{२}$॥

हे महाराज! इस जगत्में सत्त्वगुणी, रजोगुणी तथा तमोगुणी—ये तीन प्रकारके पुरुष कहे गये हैं। हे राजेन्द्र! सृष्टि, पालन तथा संहारकार्य सम्पन्न करनेवाले ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि तीनों देवताओंमें भी ये तीन गुण सदा विद्यमान रहते हैं। तत्त्वदर्शी मुनियोंने अहंकारको ही जगत्की उत्पत्तिका परम कारण बताया है। अतएव इसमें सन्देह नहीं है कि ये ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश भी उसी अहंकारसे आबद्ध हैं॥ ४४—४६॥

मायासे विमोहित मन्द बुद्धिवाले कुछ मनीषी कहते हैं कि भगवान् विष्णु अपनी इच्छासे नानाविध अवतार ग्रहण करते हैं, किंतु जब कोई मन्दमति प्राणी भी अतिशय दु:खप्रद गर्भमें निवास करना पसन्द नहीं करता तो फिर सर्वविद्यासम्पन्न वे चक्रधारी भगवान् विष्णु अवतार ग्रहण करना क्यों चाहेंगे?॥ ४७-४८॥

कुछ लोग कहते हैं कि भगवान् विष्णु अपनी इच्छासे कौसल्या तथा देवकीके मल-मूत्रसे परिपूर्ण गर्भमें आये थे। किंतु वैकुण्ठ-भवन छोड़कर करोड़ों चिन्ताओंके आगार विषतुल्य दु:खदायक गर्भवासमें आनेसे उन्हें कौन-सा सुख प्राप्त हुआ होगा?॥ ४९-५०॥

जब साधारण प्राणी भी तपस्या करके, विविध प्रकारके यज्ञ सम्पन्न करके तथा नाना प्रकारके दान देकर अत्यन्त दु:खद गर्भवास नहीं चाहते तब यदि भगवान् विष्णु स्वतन्त्र होते तो उस गर्भवासको क्यों चाहते? यदि वे अपने वशमें होते तो गर्भवासके प्रति उनकी रुचि क्यों होती?॥ ५१-५२॥

अत: हे महाराज! आप यह जान लीजिये कि ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त सम्पूर्ण जगत्, सभी देव, मानव तथा पशु-पक्षी योगमाया आदिशक्ति भगवतीके वशमें हैं॥ ५३॥

मकड़ीके तन्तुजालमें फँसे कीटकी भाँति ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश आदि ये सभी देव उन भगवतीकी लीलासे मायारूपी बन्धनमें पड़ जाते हैं और आवागमनके चक्रमें भ्रमण करते रहते हैं॥ ५४॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत पंचम स्कन्धका 'योगमायाप्रभाववर्णन' नामक पहला अध्याय पूर्ण हुआ॥ १॥

दूसरा अध्याय

महिषासुरके जन्म, तप और वरदान-प्राप्तिकी कथा

राजा बोले—हे स्वामिन्! आपने भगवती योगेश्वरीका यह प्रभाव विस्तारपूर्वक कहा। अब आप उन महामायाका चरित्र कहिये, उसे सुननेकी मेरी बड़ी उत्सुकता है। जो मनुष्य इस बातको भलीभाँति जानता है कि यह स्थावर-जंगमात्मक संसार उन्हींसे उत्पन्न हुआ है, वह उन महादेवीके प्रभावको क्यों नहीं सुनना चाहेगा?॥ १-२॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! सुनिये, मैं विस्तारके साथ वर्णन करूँगा। हे महामते! जो वक्ता श्रद्धालु एवं शान्तचित्त श्रोतासे भगवतीकी कथा नहीं कहता, वह तो मन्द बुद्धिका होता है॥ ३॥

हे राजन्! प्राचीन कालकी बात है, जिस समय भूतलपर महिषासुर नामक राजा राज्य करता था, उस समय देवताओं और दैत्योंकी सेनाओंमें भीषण युद्ध छिड़ गया॥ ४॥

हे राजेन्द्र! उन्हीं दिनों सुमेरुपर्वतपर जाकर उस महिष नामक दानवने हृदयमें अपने इष्ट देवताका ध्यान करते हुए पूरे दस हजार वर्षोंतक देवताओंतकको चकित कर देनेवाला उत्तम तथा कठोर तप किया॥ ५$^{१}/_{२}$॥

हे महाराज! उसकी तपस्यासे लोकपितामह ब्रह्माजी प्रसन्न हो गये, अतः हंसपर सवार होकर वे चतुर्मुख ब्रह्मा वहाँ प्रकट होकर उससे बोले—हे धर्मात्मन्! वर माँगो, मैं तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण करूँगा॥ ६-७॥

महिष बोला—हे देवदेव! हे ब्रह्मन्! हे प्रभो! मैं अमरत्व चाहता हूँ। हे पितामह! आप ऐसा वर दीजिये, जिससे मुझे मृत्युका भय न रहे॥ ८॥

ब्रह्माजी बोले—[इस जगत्‌में] उत्पन्न हुएका मरना और मरे हुएका जन्म लेना निश्चित है। समस्त जीवोंका जन्म और मरण अनिवार्यरूपसे होता रहता है। हे दैत्यप्रवर! समयानुसार सम्पूर्ण प्राणियोंका नाश हो जाता है, यहाँतक कि बड़े-बड़े पर्वतों एवं समुद्रोंका भी नाश हो जाता है॥ ९-१०॥

अतः हे राजन्! मृत्युसम्बन्धी अपनी यह धारणा छोड़कर हे साधो! दूसरा जो भी वर तुम्हारे मनमें हो, वह माँग लो॥ ११॥

महिष बोला—हे पितामह! देव, दानव और मानव—इनमें किसी भी पुरुषसे मेरी मृत्यु न हो। इस प्रकार जब पुरुषसे मेरी मृत्यु नहीं होगी, तब भला कौन-सी स्त्री मुझे मार सकेगी? अतएव हे कमलयोने! मेरी मृत्यु किसी स्त्रीके हाथ होनेका वरदान दीजिये; क्योंकि कोई अबला भला मुझे मारनेमें कैसे समर्थ हो सकेगी?॥ १२-१३॥

ब्रह्माने कहा—हे दानवेन्द्र! जब भी तुम्हारी मृत्यु होगी किसी स्त्रीसे ही होगी। हे महाभाग महिषासुर! पुरुषसे तुम्हारी मृत्यु नहीं होगी॥ १४॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! इस प्रकार उसे वरदान देकर ब्रह्माजी अपने लोकको चले गये और वह दैत्यश्रेष्ठ महिषासुर भी प्रसन्न होकर अपने घर लौट गया॥ १५॥

राजा बोले—वह महिषासुर किसका पुत्र था, वह महान् बलशाली कैसे हो गया था और उस महान् दैत्यको महिषका रूप कैसे मिला था?॥ १६॥

व्यासजी बोले—हे महाराज! दनुके रम्भ और करम्भ—नामक दो पुत्र थे। वे दोनों दानवश्रेष्ठ भूमण्डलपर बहुत प्रसिद्ध थे॥ १७॥

हे महाराज! वे दोनों सन्तानहीन थे, अतः वे पुत्र-प्राप्तिके लिये तपस्या करने लगे। उनमें करम्भने पवित्र पंचनदके जलमें डूबकर अनेक वर्षोंतक कठोर तप किया और रम्भ दूधवाले वटवृक्षके नीचे जाकर पंचाग्निका सेवन करने लगा॥ १८-१९॥

बहुत कालतक जब रम्भ पंचाग्नि-साधना करता रह गया, तब यह जानकर इन्द्र बहुत चिन्तित हुए और वे उन दोनों दानवोंके पास पहुँच गये॥ २०॥

पंचनदके जलमें प्रविष्ट होकर इन्द्रने ग्राहका रूप धारण कर लिया और उस करम्भको दोनों पैरोंसे पकड़ लिया। इस प्रकार वृत्रासुरका वध करनेवाले इन्द्रने उस करम्भको मार डाला॥ २१$^{१}/_{२}$॥

तब अपने भाईका वध सुनकर रम्भ अत्यधिक कुपित हुआ। उसने अपने हाथसे अपना सिर काटकर उसे अग्निमें होम कर देनेकी इच्छा की। तदुपरान्त वह तत्काल अत्यन्त

क्रोधके साथ बायें हाथसे अपने केशपाश पकड़कर दाहिने हाथमें तीक्ष्ण तलवार लेकर जैसे ही अपना सिर काटनेको उद्यत हुआ, तभी अग्निदेव [प्रकट होकर] उसे समझाने लगे॥ २२—२४॥

[अग्निदेव उससे] बोले—हे दैत्य! तुम अपना ही सिर काटना चाहते हो; तुम तो बड़े मूर्ख हो। आत्महत्या अत्यन्त ही दु:साध्य कर्म है। इसे करनेके लिये तुम कैसे तैयार हो गये?॥ २५॥

तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हारे मनमें जो हो, वह वरदान माँग लो। मरो मत, मरनेसे तुम्हारा कौन-सा कार्य हो जायगा?॥ २६॥

व्यासजी बोले—अग्निदेवका सुन्दर वचन सुनकर रम्भने अपना केशपाश छोड़कर कहा—हे देवेश! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मुझे यही वांछित वरदान दीजिये कि मुझे तीनों लोकोंपर विजय प्राप्त करनेवाला तथा शत्रु-सेनाका विनाश करनेवाला पुत्र प्राप्त हो। वह देवता, दानव तथा मनुष्य—इन सभीसे सर्वथा अजेय हो। वह महापराक्रमी, अपने इच्छानुसार कोई भी रूप धारण करनेमें समर्थ तथा सभी लोगोंके लिये वन्दनीय हो॥ २७—२९॥

अग्निदेवने उससे कहा कि जैसी तुम्हारी अभिलाषा है, वैसा ही होगा। हे महाभाग! तुम्हें वैसा ही पुत्र प्राप्त होगा, किंतु अब तुम मरनेका विचार छोड़ दो॥ ३०॥

हे महाभाग! हे रम्भ! जिस भी स्त्रीके प्रति तुम्हारे मनमें आसक्ति-भाव आ जायगा, उसीसे तुम्हें वह महाबलशाली पुत्र उत्पन्न होगा॥ ३१॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! अग्निदेवने उससे ऐसा कहा। तब उनका मनमोहक वचन सुनकर दानवश्रेष्ठ रम्भ अग्निको प्रणाम करके वहाँसे चला गया और एक ऐसे स्थानपर जा पहुँचा जो रमणीक, समृद्धियोंसे सम्पन्न तथा यक्षोंसे घिरा हुआ था॥ ३२१/२॥

वहाँ एक रूपवती तथा मदमत्त महिषीको देखकर वह दानवश्रेष्ठ किसी अन्य स्त्रीको छोड़कर उसीपर आसक्त हो गया। वह महिषी भी उसे प्रसन्नतापूर्वक चाहती हुई तत्काल उसके साथ रमणके लिये तैयार हो गयी। होनहारसे प्रेरित होकर रम्भने उसके साथ समागम किया और उसके वीर्यसे वह महिषी गर्भवती हो गयी॥ ३३—३५॥

तत्पश्चात् उसे अपने साथ लेकर रम्भने मनोहर पाताललोकमें प्रवेश किया और वहाँपर महिषोंसे अपने मनोनुकूल उस प्रियतमाकी रक्षा करता हुआ वह सुखपूर्वक रहने लगा॥ ३६॥

किसी दिन एक दूसरे महिषने कामासक्त होकर उस महिषीको दौड़ा लिया। यह देखकर दानव रम्भ स्वयं वहाँ आकर उसे मारनेके लिये दौड़ा और उसके पास पहुँचकर अपनी रक्षाके लिये रम्भने उस महिषपर कठोर प्रहार किया। तब उस कामातुर महिषने भी अपनी सींगोंसे रम्भपर शीघ्रतासे प्रहार करना आरम्भ कर दिया॥ ३७-३८॥

उस महिषके द्वारा तीक्ष्ण सींगोंसे हृदयस्थलमें गहरी चोट पहुँचानेके कारण रम्भ शीघ्र ही मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा और मर गया॥ ३९॥

पतिके मर जानेपर अत्यन्त शोकाकुल तथा भयग्रस्त वह महिषी वहाँसे भाग चली। वेगपूर्वक भागती हुई वह एक वटवृक्षके नीचे पहुँचकर वहाँ रहनेवाले यक्षोंकी शरणमें जा पहुँची॥ ४०॥

वह कामार्त और बल तथा वीर्यसे मदोन्मत्त कामासक्त महिष भी उसकी कामना करता हुआ उसके पीछे-पीछे गया॥ ४१॥

यक्षोंने उस महिषसे पीड़ित तथा भयभीत होकर रोती हुई उस महिषीको देख लिया और महिषको दौड़ता हुआ देखकर उस महिषीकी रक्षाके लिये वे यक्ष वहाँ आ गये॥ ४२॥

अब उस महिषके साथ यक्षोंका विकराल युद्ध होने लगा और अन्तमें बाणसे आहत होकर वह महिष शीघ्र ही भूमिपर गिर पड़ा॥ ४३॥

तदनन्तर उन यक्षोंने परम प्रिय मृत रम्भको लाकर उसकी देह-शुद्धिके लिये उसे चितापर रख दिया। तब उस महिषीने अपने पतिको चितापर रखा हुआ देखकर उसके साथ स्वयं भी अग्निमें प्रवेश करनेका निश्चय किया॥ ४४-४५॥

यक्षोंके मना करनेपर भी अपने प्रिय पतिके साथ वह महिषी विकराल लपटोंवाली अग्निमें प्रविष्ट हो गयी॥ ४६॥

उसी समय एक महिष तथा अन्य शरीर प्राप्त करके वह पुत्रप्रेमी महाबली रम्भ भी चिताके मध्य-भागसे

निकल पड़ा। वही जगत्में रक्तबीज नामसे प्रसिद्ध हुआ तथा वह महिष भी महान् बलशाली हुआ। तदनन्तर श्रेष्ठ दानवोंने उस महिषासुरका राज्याभिषेक कर दिया॥ ४७-४८॥

हे नृपश्रेष्ठ! इस प्रकार महिषासुर तथा पराक्रमी रक्तबीज उत्पन्न हुए। वह महिषासुर देवताओं, दानवों तथा मनुष्योंसे अवध्य था॥ ४९॥

हे राजन्! इस प्रकार मैंने आपको उस महान् महिषासुरके जन्म तथा उससे सम्बन्धित वरदान-प्राप्तिका प्रसंग विस्तारपूर्वक बता दिया॥ ५०॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत पंचम स्कन्धका 'महिषासुरोत्पत्ति' नामक दूसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ २॥

तीसरा अध्याय

महिषासुरका दूत भेजकर इन्द्रको स्वर्ग खाली करनेका आदेश देना, दूतद्वारा इन्द्रका युद्धहेतु आमन्त्रण प्राप्तकर महिषासुरका दानववीरोंको युद्धके लिये सुसज्जित होनेका आदेश देना

व्यासजी बोले—इस प्रकार वरदान पानेके कारण अभिमानयुक्त उस महाबली दानव महिषासुरने राज्य प्राप्त करके सम्पूर्ण जगत्को अपने अधीन कर लिया॥ १॥

उसने समुद्रपर्यन्त सारी पृथ्वीको अपने बाहुबलसे जीतकर शत्रु-समुदायसे रहित कर दिया तथा वह निर्भय होकर एकच्छत्र राज्य करने लगा॥ २॥

उसका सेनाध्यक्ष चिक्षुर महापराक्रमी एवं मदमत्त था। ताम्र उसका कोषाध्यक्ष था, जिसके पास दस हजार सैनिक थे॥ ३॥

उस समय असिलोमा, उदर्क, बिडालाख्य, बाष्कल, त्रिनेत्र तथा बलोन्मत्त कालबन्धक—इन दानवोंने अपनी-अपनी विशाल सेनाओंके साथ सागरान्त समृद्धिशालिनी पृथ्वीको घेरकर राज्य स्थापित किया॥ ४-५॥

जो पुराने नरेश थे, वे भी अब महिषासुरको कर देने लगे। उनमें भी जो स्वाभिमानी थे और क्षात्र-धर्मानुसार जिन्होंने उसका सामना किया, वे मार डाले गये॥ ६॥

हे महाराज! सम्पूर्ण भूमण्डलपर ब्राह्मणलोग महिषासुरके अधीन हो गये और उसे यज्ञभाग देने लगे॥ ७॥

इस प्रकार एकच्छत्र राज्य स्थापित करके वरदानसे गर्वित वह महिषासुर स्वर्गपर भी विजय प्राप्त करनेकी अभिलाषा करने लगा॥ ८॥

महिषासुरने इन्द्रके पास अपना एक दूत भेजा। उस दैत्यराजने दूतको बुलाकर उससे कहा—हे वीर! जाओ, हे महाबाहो! तुम मेरा दूतकार्य करो। हे अनघ! तुम निडर होकर स्वर्गमें देवताओंके पास जाकर वहाँ इन्द्रसे कहो—हे सहस्राक्ष! तुम स्वर्ग छोड़ दो और अपनी इच्छाके अनुसार जहाँ चाहो, शीघ्र चले जाओ। अथवा हे देवेश! महान् महिषासुरकी सेवा करो॥ ९—११॥

यदि तुम राजा महिषासुरकी शरणागति स्वीकार कर लो तो वे तुम्हारी रक्षा अवश्य करेंगे। अतएव हे इन्द्र! तुम महिषासुरकी शरणमें चले जाओ॥ १२॥

अन्यथा हे बलसूदन! युद्धके लिये शीघ्र ही अपना वज्र उठा लो। हमारे पूर्वजोंने तुम्हें पराजित किया है, अतएव हम तुम्हारा पुरुषार्थ जानते हैं॥ १३॥

अहल्याके साथ अनाचार करनेवाले तथा देवसमुदायके अधिपति हे इन्द्र! मैं तुम्हारे बलसे भलीभाँति परिचित हूँ। तुम मेरे साथ युद्ध करो अथवा जहाँ तुम्हारा मन करे, वहाँ चले जाओ॥ १४॥

व्यासजी बोले—हे नृपश्रेष्ठ! दूतका वचन सुनकर इन्द्र कुपित हो उठे; फिर भी उन्होंने मुसकराकर दूतसे कहा—हे मन्दबुद्धि! मैं यह नहीं जान पा रहा हूँ कि तुम अभिमानके मदमें इतना चूर क्यों हो गये हो! मैं तुम्हारे स्वामी महिषासुरके अभिमानरूपी इस रोगकी चिकित्सा अवश्य करूँगा। इसके बाद मैं इस रोगको जड़से नष्ट कर दूँगा। हे दूत! अब तुम जाओ और उस महिषासुरसे मेरी कही गयी बात बता दो। शिष्टजनोंको चाहिये कि दूतोंका वध न करें, अतः मैं तुम्हें छोड़ दे रहा हूँ॥ १५—१७$^{१}/_{२}$ ॥

[वहाँ जाकर मेरी तरफसे उससे कह देना—] हे महिषीपुत्र! यदि तुम्हारी युद्ध करनेकी इच्छा हो तो शीघ्र आ जाओ। हे महिषासुर! तुम तो घास खानेवाले जड प्रकृतिके जीव हो। अतः मुझे तुम्हारा बल ज्ञात है। मैं तुम्हारी सींगोंसे एक सुदृढ़ धनुष बनाऊँगा। तुम्हारे अभिमानका कारण मुझे विदित है। तुम्हें अपनी सींगोंके बलपर गर्व है, अतएव तुम्हारी सींगोंको काटकर मैं उस अभिमानबलको समाप्त कर दूँगा। हे महिषाधम! जिन सींगोंके बलपर तुम गर्वोन्मत्त हो तथा अपनेको सर्वसमर्थ समझते हो, केवल उन्हींसे आघात करनेमें तुम कुशल हो; युद्ध करनेमें तुम दक्ष नहीं हो सकते॥ १८—२१ ॥

व्यासजी बोले—देवराज इन्द्रके ऐसा कहनेपर वह दूत तत्काल वहाँसे चल दिया। वह उन्मत्त महिषासुरके पास पहुँचा और उसे प्रणाम करके कहने लगा— ॥ २२ ॥

दूत बोला—हे राजन्! वह देवराज इन्द्र आपको कुछ भी नहीं समझ रहा है। देवसेनासे सम्पन्न होनेके कारण वह अपनेको पूर्ण बलवान् मानता है॥ २३ ॥

उस मूर्खने जो कुछ कहा है, उसके अतिरिक्त दूसरी बात मैं कैसे कहूँ? सेवकको अपने स्वामीके समक्ष सत्य तथा प्रिय वाणी बोलनी चाहिये॥ २४ ॥

कल्याणकी इच्छा रखनेवाले सेवकको अपने स्वामीके आगे सदा सत्य तथा प्रिय वचन बोलना चाहिये। हे महाराज! यही नीति संसारमें सदासे कल्याणप्रद होती आयी है॥ २५ ॥

किंतु यदि केवल प्रिय लगनेवाली बात ही कहूँ तो इससे आपका कार्य सिद्ध नहीं होगा। साथ ही अपना कल्याण चाहनेवाले सेवकको अपने स्वामीसे कठोर बात कभी नहीं कहनी चाहिये॥ २६ ॥

हे नाथ! शत्रुके मुखसे जिस तरहकी विषतुल्य बातें निकलती हैं, उस तरहकी बातें सेवकके मुखसे कैसे निकल सकती हैं?॥ २७ ॥

हे पृथ्वीपते! इन्द्रने जिस प्रकारके वाक्य बोले हैं, उन्हें कह सकनेमें मेरी जिह्वा कभी भी समर्थ नहीं है॥ २८ ॥

व्यासजी बोले—उस दूतका रहस्यपूर्ण वचन सुनकर घास खानेवाले महिषासुरका मन पूर्णरूपसे क्रोधके वशीभूत हो गया॥ २९ ॥

सभी दैत्योंको बुलाकर क्रोधके मारे लाल आँखोंवाला महिषासुर अपनी पूँछ पीठपर रख करके मूत्र त्याग करते हुए उनसे कहने लगा—हे दैत्यो! वह इन्द्र निश्चय ही युद्ध करना चाहता है। अतः तुमलोग सेना संगठित करो। हमें उस देवाधमको जीतना है॥ ३०-३१ ॥

मेरे सम्मुख भला कौन पराक्रमी बन सकता है? यदि उस इन्द्रके समान करोड़ों लोग मेरे सामने आ जायँ तो भी मैं नहीं डरूँगा, तब उस अकेले इन्द्रसे कैसे डर सकता हूँ? उसको तो मैं अब निश्चितरूपसे मार डालूँगा॥ ३२ ॥

वह इन्द्र शान्त स्वभाववाले लोगोंपर अपने पराक्रमका प्रदर्शन तथा तपस्वियोंपर अपने बलका प्रयोग करता है। वह मायावी, व्यभिचारी तथा दूसरेकी स्त्रीका हरण करनेवाला है॥ ३३ ॥

वह दुष्ट अपनी अप्सराओंके बलबूते दूसरोंकी तपस्यामें विघ्न डालता है, शत्रुकी कमजोरी देखकर अवसरवादिताका लाभ उठाकर उसपर प्रहार करता है, वह सदासे पापकृत्योंमें रत रहनेवाला तथा घोर विश्वासघात करनेवाला है॥ ३४ ॥

भयके मारे उस छली इन्द्रने पहले विश्वास-प्रदर्शनके लिये अनेक प्रकारकी शपथें खाकर नमुचि नामक दैत्यसे सन्धि स्थापित की, किंतु बादमें उस दुष्टात्माने छलपूर्वक नमुचिको मार डाला॥ ३५ ॥

विष्णु तो कपटका आचार्य, मायावी, झूठी प्रतिज्ञाएँ करनेमें बड़ा ही कुशल, बहुरूपिया, सैन्य-बलका संचय

करनेवाला तथा महान् पाखण्डी है। उसीने सूकरका रूप धारणकर हिरण्याक्षका वध कर डाला और नृसिंहका रूप धारणकर हिरण्यकशिपुका संहार किया॥ ३६-३७॥

अतएव हे दनुके वंशजो! मैं उसका वशवर्ती कभी भी नहीं होऊँगा और देवताओंका कहीं भी कदापि विश्वास नहीं करूँगा॥ ३८॥

विष्णु तथा इन्द्र—ये दोनों मेरा क्या कर लेंगे? यहाँतक कि उनसे भी अधिक शक्तिशाली रुद्र भी युद्ध-भूमिमें मेरा प्रतीकार कर पानेमें समर्थ नहीं हैं। इन्द्र, वरुण, यम, कुबेर, अग्नि, चन्द्रमा तथा सूर्यको जीतकर मैं स्वर्गपर अधिकार कर लूँगा॥ ३९-४०॥

अब हमलोग यज्ञका भाग प्राप्त करेंगे तथा सोमरसका पान करनेवाले होंगे। मैं देवसमुदायको जीतकर दानवोंके साथ विहार करूँगा॥ ४१॥

हे दानवो! वरदानके कारण मुझे देवताओंका भय नहीं है। पुरुषसे मेरी मृत्यु हो ही नहीं सकती; तब भला स्त्री मेरा क्या कर लेगी?॥ ४२॥

हे गुप्तचरो! पातालमें तथा पर्वतोंपर रहनेवाले बड़े-बड़े दानव-वीरोंको तत्काल यहाँ बुलाकर उन्हें मेरी सेनाओंका अध्यक्ष बना दो॥ ४३॥

हे दानवो! मैं तो अकेला ही समस्त देवताओंको जीतनेमें समर्थ हूँ, फिर भी रणभूमिकी शोभा बढ़ानेकी दृष्टिसे आप सबको भी बुलाकर युद्धभूमिमें ले चलूँगा॥ ४४॥

मैं अपनी सींगों तथा खुरोंसे देवताओंको निश्चित-रूपसे मार डालूँगा। वरदानके प्रभावसे मुझे देवताओंसे भय नहीं है॥ ४५॥

देवता, दानव तथा मनुष्य—सभीसे मैं अवध्य हूँ, अत: आप सब देवलोकपर विजय प्राप्त करनेके लिये अब तैयार हो जायँ॥ ४६॥

देवलोकको जीतकर मैं नन्दनवनमें विहार करूँगा। मन्दारपुष्पकी मालाएँ धारण करके आपलोग देवांगनाओंके साथ रहेंगे, कामधेनुके दुग्धका सेवन करेंगे, प्रसन्नतापूर्वक अमृत-पान करेंगे और देवताओं तथा गन्धर्वोंके गीतों तथा मनमोहक हाव-भाव-युक्त नृत्योंका आनन्द लेंगे॥ ४७-४८॥

उर्वशी, मेनका, रम्भा, घृताची, तिलोत्तमा, प्रमद्वरा, महासेना, मिश्रकेशी, मदोत्कटा, विप्रचित्ति आदि नृत्य तथा गायन-कलामें अति निपुण अप्सराएँ विविध प्रकारके मद्य पिलाकर आप सभीका मनोरंजन करेंगी॥ ४९-५०॥

देवताओंके साथ युद्ध करनेके लिये देवलोकके लिये प्रस्थान करना यदि आपलोगोंको उचित लगे तो आप सब उत्तम मंगलाचार सम्पन्न करके आज ही चलनेके लिये तैयार हो जाइये॥ ५१॥

मुनिश्रेष्ठ शुक्राचार्यको बुलाकर उनका पूजन कीजिये और समस्त दानवोंकी रक्षाके लिये यज्ञ आरम्भ करके उन्हें यज्ञका आचार्य बना दीजिये॥ ५२॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! इस प्रकार दानववीरोंको आदेश देकर वह पापबुद्धि महिषासुर प्रसन्नताके साथ शीघ्र ही अपने भवनको चला गया॥ ५३॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत पंचम स्कन्धका 'दैत्यसैन्योद्योग' नामक तीसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३॥

चौथा अध्याय

इन्द्रका देवताओं तथा गुरु बृहस्पतिसे परामर्श करना तथा बृहस्पतिद्वारा जय-पराजयमें दैवकी प्रधानता बतलाना

व्यासजी बोले—हे राजन्! दूतके चले जानेपर इन्द्रने भी यम, वायु, कुबेर तथा वरुण—इन देवताओंको बुलाकर यह बात कही॥ १॥

रम्भका पुत्र महाबली दैत्यराज महिषासुर इस समय वरदानके अभिमानमें मदोन्मत्त हो गया है। वह सैकड़ों प्रकारकी माया रचनेमें पारंगत है॥ २॥

हे देवताओ! स्वर्ग-प्राप्तिकी कामना करनेवाले उस लोभी महिषासुरके द्वारा भेजा गया दूत आज ही यहाँ आया

था। उसने मुझसे इस प्रकारकी बात कही—॥ ३॥

हे शक्र! तुम तत्काल देवलोक छोड़ दो और अपनी इच्छाके अनुसार जहाँ जाना चाहो, वहाँ चले जाओ; अथवा हे वासव! महान् महिषासुरका सेवकत्व स्वीकार कर लो॥ ४॥

वे दैत्यराज महिषासुर बड़े दयालु हैं। वे आपके लिये किसी जीविकाका प्रबन्ध अवश्य कर देंगे। विनम्र सेवकोंपर वे कभी भी क्रोध नहीं करते हैं॥ ५॥

हे देवेश! यदि आपको यह स्वीकार नहीं है तो युद्धके लिये सेनाके संगठनमें जुट जाइये। मेरे वहाँ पहुँचते ही वे दैत्येन्द्र महिषासुर [देवलोकपर आक्रमणके लिये] यहाँ शीघ्र आ पहुँचेंगे॥ ६॥

ऐसा कहकर दुष्टात्मा दानव महिषासुरका वह दूत यहाँसे चला गया। हे श्रेष्ठ देवगण! आपलोग विचार कीजिये कि अब क्या करना चाहिये?॥ ७॥

हे देवताओ! स्वयं बलवान् होते हुए भी अत्यन्त दुर्बल शत्रुकी भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। अपने बलका अभिमान करनेवाले, बलशाली तथा सदा उद्यमशील शत्रुकी तो विशेषरूपसे उपेक्षा नहीं करनी चाहिये॥ ८॥

अतः हमलोगोंको अपने बल तथा विवेकके अनुसार पुरुषार्थ अवश्य करना चाहिये। जीत अथवा हार तो दैवके अधीन रहती है॥ ९॥

इस परिस्थितिमें सन्धिकी भी सम्भावना नहीं है; क्योंकि नीचके साथ की गयी सन्धि व्यर्थ सिद्ध होती है। अतएव बार-बार विचार करके केवल सज्जनोंके साथ ही सन्धि करनी चाहिये॥ १०॥

इस समय अचानक आक्रमण करना भी उचित नहीं है। अतएव सर्वप्रथम शीघ्रगामी तथा सुगमतासे प्रवेश करनेमें दक्ष गुप्तचर वहाँ भेजे जाने चाहिये, जो शत्रुओंके अभिप्राय समझनेमें समर्थ, किसीके साथ अधिक भावासक्ति न रखनेवाले, निर्लोभी तथा सत्यवादी हों। वे गुप्तचर शत्रु-सेनाकी गतिविधि, प्रस्थान, सेनाकी ठीक-ठीक संख्या और शत्रुदलके वीरोंकी वास्तविक जानकारी करके शीघ्रतापूर्वक वापस आ जायँ। इस प्रकार दैत्यपति महिषासुरकी सेनाके बलाबलको भलीभाँति जान लेनेके पश्चात् मैं शीघ्र ही आक्रमण अथवा किलेबन्दी करनेका प्रबन्ध करूँगा। सर्वदा भलीभाँति सोच-समझकर बुद्धिमान् मनुष्यको कार्य करना चाहिये; क्योंकि बिना विचार किये अचानक किया गया कार्य हर तरहसे दुःखदायक ही होता है। अतएव बुद्धिमान् मनुष्योंको सम्यक् रूपसे विचार-विमर्श करके ऐसा कार्य करना चाहिये, जो सुखकर हो॥ ११—१४½॥

दानवोंमें मतभेद पैदा करनेवाली भेदनीतिका आश्रय लेना भी उचित नहीं जान पड़ता; क्योंकि उनमें पूर्ण मतैक्य है। अतएव इस कार्यके लिये पहले गुप्तचर भेजे जायँ। उनके द्वारा उन दानवोंके बलाबलको जाननेके पश्चात् श्रेष्ठ नीतिविदोंसे भलीभाँति विचार करके उन कार्योंके लिये नीति निर्धारित की जानी चाहिये। नीतिसे हटकर किया गया कार्य अज्ञात औषधिके सेवनसे उत्पन्न होनेवाले कष्टकी भाँति विपरीत फल देनेवाला होता है॥ १५—१७½॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार उन सभी देवताओंसे विचार-विमर्श करके देवराज इन्द्रने शत्रुपक्षके रहस्योंकी जानकारीके उद्देश्यसे एक कार्यकुशल गुप्तचर भेजा॥ १८½॥

उस दूतने तत्काल पहुँचकर शत्रुपक्षके सैन्य-बलाबलकी जानकारी प्राप्त की और पुनः इन्द्रके पास वापस आकर उनको सब कुछ बता दिया। शत्रुसेनाकी तैयारीके विषयमें जानकर इन्द्रको महान् आश्चर्य हुआ और उन्होंने देवताओंको तैयारीमें लगनेकी आज्ञा दे दी। तत्पश्चात् मन्त्रविदोंमें श्रेष्ठ पुरोधा देवगुरु बृहस्पतिको बुलाकर इन्द्र उनके साथ परामर्श करने लगे। उत्तम आसनपर विराजमान श्रेष्ठ अंगिरापुत्र बृहस्पतिसे इन्द्रने कहा॥ १९—२१½॥

इन्द्र बोले—हे देवगुरो! हे विद्वन्! हमलोगोंको क्या करना चाहिये, हमें बताइये। आप सर्वज्ञ हैं। आज उत्पन्न इस विषम परिस्थितिमें एकमात्र आप ही हमारे अवलम्ब हैं। महाबली तथा मदोन्मत्त दानव महिषासुर बहुतसे दानवोंको अपने साथ लेकर हम सबसे युद्ध करनेके लिये यहाँ आ रहा है। आप मन्त्रणाविद् हैं, अतएव इस समय कोई प्रतिक्रियात्मक युक्ति बतानेकी कृपा करें। जैसे शुक्राचार्य दानवोंकी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार हम

देवताओंके कष्टका निवारण करने हेतु आप सदा उद्यत रहते हैं॥ २२—२४१/२॥

व्यासजी बोले—यह वचन सुनकर अपने मनमें भलीभाँति सोचकर सदा कार्यसिद्धिके लिये तत्पर रहनेवाले बृहस्पति इन्द्रसे कहने लगे॥ २५१/२॥

गुरु बोले—हे देवेन्द्र! आप निश्चिन्त हो जाइये। हे महानुभाव! धैर्य धारण कीजिये, विषम परिस्थिति आ जानेपर सहसा धैर्य नहीं खोना चाहिये। हे सुराध्यक्ष! हार

तथा जीत सदा दैवाधीन होती हैं, अतएव बुद्धिमान् प्राणीको चाहिये कि वह सदैव धैर्य धारण करके स्थित रहे। हे शतक्रतो! होनी होकर रहती है, ऐसा समझते हुए मनुष्यको अपनी सामर्थ्यके अनुसार सदा उद्यम करना चाहिये। सब कुछ दैवके अधीन है—यह जानते हुए भी योगध्यानपरायण मुनिगण भी मुक्ति-प्राप्ति हेतु निरन्तर उद्यमशील रहते हैं। अतएव मनुष्यको अपने सामर्थ्यानुसार सदैव उद्योग करते रहना चाहिये॥ २६—३०॥

सुख मिले अथवा न मिले—इस दैवाधीन विषयमें चिन्ताकी क्या आवश्यकता? बिना पुरुषार्थ किये ही संयोगसे सिद्धि मिल जाय—ऐसा मानकर अन्धे तथा लँगड़ेकी भाँति अकर्मण्य होकर प्रसन्नतापूर्वक पड़े रहना उचित नहीं है। पुरुषार्थ करनेपर भी यदि सिद्धि नहीं मिलती है तो इसमें उस व्यक्तिका कोई अपराध नहीं है; क्योंकि प्रत्येक शरीरधारी सदा दैवके अधीन रहता है। कार्यकी सिद्धि न सेनासे, न मन्त्रसे, न मन्त्रणासे, न रथसे और न तो आयुधसे ही मिलती है। हे सुरेन्द्र! सफलता तो निश्चितरूपसे दैवके अधीन रहती है॥ ३१—३३१/२॥

[ऐसा भी देखा जाता है कि] बलशाली कष्ट पाता है तथा बलहीन सुखोपभोग करता है, बुद्धिमान् भूखा ही सो जाता है तथा बुद्धिहीन अनेक उत्तम भोज्य पदार्थोंका सेवन करता है, कायर व्यक्तिकी जीत हो जाती है तथा वीर पराजित हो जाता है। हे सुराधिप! यह समस्त जगत् ही दैवके अधीन है, तो फिर चिन्ताकी आवश्यकता ही क्या? ऐसा दृढ़ विश्वास करके भाग्यको उद्योगके साथ संयोजित कर देना चाहिये॥ ३४—३६॥

उद्योग करनेके बाद सुख प्राप्त हो अथवा दुःख—इन दोनोंके विषयमें किसी प्रकारकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। दुःख आनेपर अपनेसे अधिक दुःखीजनोंको तथा सुख आनेपर अधिक सुखी व्यक्तिको देखना चाहिये॥ ३७॥

अपने आपको शत्रुतुल्य हर्ष तथा शोकको अर्पित नहीं करना चाहिये। बुद्धिमान् पुरुषोंको हर्ष या शोकके उपस्थित होनेपर धैर्यका अवलम्बन करना चाहिये॥ ३८॥

अधीर हो जानेसे जैसा दुःख प्राप्त होता है, वैसा दुःख धैर्य धारण करनेसे कभी नहीं होता। किंतु सुख तथा दुःखके अवसरपर सहनशील बने रहना अति दुर्लभ है॥ ३९॥

जब हर्ष अथवा शोक उत्पन्न हों तब अपनी बुद्धिसे निश्चय करके उनसे अप्रभावित बने रहना चाहिये। वैसी परिस्थितिमें सोचना चाहिये कि दुःख क्या है; और यह दुःख किसे होता है? मैं तो सदा गुणोंसे रहित और अविनाशी हूँ। मैं तो चौबीस तत्त्वोंसे भिन्न आत्मतत्त्व हूँ, तब सुख अथवा दुःखसे मेरा क्या प्रयोजन? भूख तथा प्यासका सम्बन्ध प्राणसे, शोक तथा मोहका सम्बन्ध मनसे एवं जरा तथा मृत्युका सम्बन्ध शरीरसे है। मैं तो इन छहों ऊर्मियोंसे रहित कल्याणस्वरूप हूँ। शोक तथा मोह शरीरके गुण हैं; इनके विषयमें सोचनेकी मुझे क्या आवश्यकता?॥ ४०—४२॥

मैं न शरीर हूँ और न तो इससे मेरा कोई सम्बन्ध

है। मैं तो महदादि सात विकृतियों, एक प्रकृति तथा सोलह विकारोंसे पृथक् रहनेवाला सदा सुख-स्वरूप हूँ। मैं न प्रकृति हूँ और न तो विकृति हूँ; तब मुझे दुःख किस बातका? हे देवेश! अपने मनमें ऐसा निश्चय करके आप ममतारहित हो जाइये। हे शतयज्ञकर्ता इन्द्र! आपके दुःखनाशका यही प्रधान उपाय है; क्योंकि ममता सबसे बड़ा दुःख है तथा निर्ममता सबसे बड़ा सुख है॥ ४३—४५॥

हे शचीपते! सन्तोषसे बढ़कर सुखका कोई भी स्थान नहीं है। अथवा हे देवराज! यदि आपके पास ममताको नष्ट करनेवाले ज्ञानका अभाव हो, तो प्रारब्धके विषयमें विवेकका आश्रय लेना परमावश्यक है। बिना भोगके प्रारब्ध कर्मोंका नाश कभी नहीं हो सकता॥ ४६-४७॥

हे आर्य! सभी देवता आपके सहायक हों अथवा केवल आपकी बुद्धि सहायक बने—जो होना है, वह होकर रहेगा, तब सुख अथवा दुःखके विषयमें चिन्ता क्या?॥ ४८॥

हे महाभाग! सुखके उपभोगसे पुण्यका क्षय होता है और दुःख भोगनेसे पापका नाश होता है। अतएव बुद्धिमान् पुरुषोंको सुख-क्षयकी स्थितिमें हर प्रकारसे प्रसन्नताका अनुभव करना चाहिये*॥ ४९॥

अथवा हे महाराज! यदि आपकी इच्छा हो तो विधिवत् परामर्श करके आप यत्न करनेमें तत्पर हो जाइये। प्रयत्न करनेपर भी जो होना होगा, वही होगा॥ ५०॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत पंचम स्कन्धका 'भयातुर इन्द्र आदि देवोंका देवगुरु बृहस्पतिके साथ परामर्शवर्णन' नामक चौथा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४॥

पाँचवाँ अध्याय

इन्द्रका ब्रह्मा, शिव और विष्णुके पास जाना, तीनों देवताओंसहित इन्द्रका युद्धस्थलमें आना तथा चिक्षुर, बिडाल और ताम्रको पराजित करना

व्यासजी बोले—हे महाराज! यह सुनकर सहस्रनेत्र इन्द्रने बृहस्पतिसे कहा कि मैं महिषासुरके विनाशके लिये अब युद्धकी तैयारी अवश्य करूँगा; क्योंकि उद्योगके बिना न राज्य, न सुख और न तो यशकी ही प्राप्ति होती है। उद्यमहीनकी प्रशंसा न तो कायर लोग करते हैं और न उद्योगपरायण॥ १-२॥

संन्यासियोंका आभूषण ज्ञान है तथा ब्राह्मणोंका आभूषण सन्तोष है; किंतु अपनी उन्नतिकी आकांक्षा रखनेवाले लोगोंके लिये उद्योगपरायण रहते हुए शत्रुसंहारका कार्य ही आभूषण है॥ ३॥

हे मुनिश्रेष्ठ! उद्यमका आश्रय लेकर ही मैंने वृत्रासुर, नमुचि तथा बल आदि दैत्योंका संहार किया था; उसी प्रकार मैं महिषासुरका भी वध करूँगा॥ ४॥

आप देवगुरु बृहस्पति तथा श्रेष्ठ आयुध वज्र मेरे महान् बलके रूपमें सुलभ हैं। साथ ही भगवान् विष्णु तथा अविनाशी शिवजी मेरी सहायता अवश्य करेंगे॥ ५॥

हे मानद! अब मैं महिषासुरके साथ युद्ध करनेके लिये सेनाकी तैयारीके उद्योगमें लग रहा हूँ। हे साधो! अब आप मेरे कल्याणार्थ रक्षोघ्न मन्त्रोंका पाठ कीजिये॥ ६॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! देवराज इन्द्रके ऐसा कहनेपर युद्धके लिये सर्वथा तत्पर उन सुरेन्द्रसे मुसकराकर बृहस्पतिने यह वचन कहा—॥ ७॥

बृहस्पति बोले—इस समय मैं आपको युद्धके लिये न तो प्रेरित करूँगा और न तो इससे आपको रोकूँगा ही; क्योंकि युद्ध करनेवालेकी हार तथा जीत दोनों ही अनिश्चित रहती हैं॥ ८॥

हे शचीपते! इस होनहारके विषयमें आपका कोई दोष नहीं है। जो भी सुख-दुःख पूर्वतः निर्धारित है, वह तो अवश्य ही प्राप्त होगा॥ ९॥

भविष्यमें आपको प्राप्त होनेवाले सुख या दुःखके विषयमें मुझे कोई भी ज्ञान नहीं है; क्योंकि हे वासव! आप यह बात भलीभाँति जानते हैं कि पूर्व समयमें अपनी

* सुखं क्षयाय पुण्यस्य दुःखं पापस्य मारिष। तस्मात्सुखक्षये हर्षः कर्तव्यः सर्वथा बुधैः॥ (श्रीमद्देवीभा० ५।४।४९)

भार्याके हरणके अवसरपर मुझे बहुत ही कष्ट उठाना पड़ा था॥ १०॥

हे शत्रुनिषूदन! चन्द्रमाने मेरी पत्नीका हरण कर लिया था, जिसके फलस्वरूप अपने आश्रममें रहते हुए मुझे महान् कष्ट झेलना पड़ा; जिससे मेरा समस्त सुख नष्ट हो गया॥ ११॥

हे सुराधिप! मैं सभी लोकोंमें परम बुद्धिमान्के रूपमें विश्रुत हूँ; किंतु जब मेरी भार्याका बलपूर्वक हरण कर लिया गया था तो उस समय मेरी बुद्धि कहाँ चली गयी थी?॥ १२॥

अतएव हे सुराधिप! बुद्धिमान् लोगोंको सदा यत्नपरायण होना चाहिये। कार्यकी सिद्धि तो निश्चितरूपसे सदा दैवके ही अधीन रहती है॥ १३॥

व्यासजी बोले—गुरु बृहस्पतिका यह सत्य तथा अर्थयुक्त वचन सुनकर इन्द्र ब्रह्माजीकी शरणमें जाकर उन्हें प्रणाम करके बोले—॥ १४॥

हे पितामह! हे देवाध्यक्ष! इस समय महिषासुर नामक दैत्य मेरे स्वर्गलोकपर अपना अधिकार स्थापित करनेकी कामनासे सैन्य-बलकी तैयारी कर रहा है॥ १५॥

अन्य दानव भी उसकी सेनामें सम्मिलित हो रहे हैं। वे सब-के-सब सदा युद्धके लिये आतुर रहनेवाले, महान् पराक्रमी तथा युद्धकलामें अत्यन्त प्रवीण हैं॥ १६॥

उस दानवसे भयभीत होकर मैं आपकी शरणमें यहाँ आया हूँ। हे महाप्राज्ञ! आप तो सर्ववेत्ता हैं तथा मेरी सहायता करनेमें पूर्ण समर्थ हैं॥ १७॥

ब्रह्माजी बोले—हमलोग इसी समय शीघ्रतापूर्वक कैलास चलें और वहाँसे शंकरजीको आगे करके बलवानोंमें श्रेष्ठ विष्णुभगवान्के पास चलें। तत्पश्चात् सभी देवगणोंके साथ परस्पर मिलकर देश-कालके सम्बन्धमें भलीभाँति विचार करके एक समुचित निर्णय लेकर ही युद्ध करना चाहिये। अपनी शक्ति तथा निर्बलताका सम्यक् ज्ञान किये बिना विवेकका त्याग करके दु:साहसपूर्ण कार्य करनेवाला पतनको प्राप्त होता है॥ १८—२०॥

व्यासजी बोले—यह सुनकर इन्द्र ब्रह्माजीको आगे करके समस्त लोकपालोंके साथ कैलासकी ओर चल पड़े॥ २१॥

कैलास पहुँचकर इन्द्रने वेदमन्त्रोंके द्वारा शिवजीकी स्तुति की। तत्पश्चात् [स्तुतिगानसे] अत्यन्त प्रसन्नताको प्राप्त भगवान् शंकरको आगे करके वे विष्णुलोक गये॥ २२॥

उन देवाधिदेव भगवान् विष्णुकी स्तुति करके उन्होंने वहाँ अपने आनेका उद्देश्य बताया तथा वरदान पानेके कारण गर्वोन्मत्त महिषासुरसे उत्पन्न उग्र भयके बारेमें उनसे कहा॥ २३॥

उनके भयको सुनकर भगवान् विष्णुने देवताओंसे कहा कि हम देवगण युद्ध करेंगे और उस दुर्जयका वध कर डालेंगे॥ २४॥

व्यासजी बोले—ऐसा निश्चय करके ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश आदि देवता अपने-अपने वाहनोंपर चढ़कर चल पड़े॥ २५॥

ब्रह्माजी हंसपर चढ़े, विष्णुभगवान्ने गरुडको अपना वाहन बनाया, शंकरजी वृषभपर सवार हुए, इन्द्र ऐरावत हाथीपर बैठे, स्वामी कार्तिकेय मोरपर चढ़े और यमराज महिषपर आरूढ़ हुए। इस प्रकार अपनी सैन्य तैयारी करके देवता लोग ज्यों ही आगे बढ़े, तभी उन्हें महिषासुरके द्वारा पालित मदोन्मत्त दानवी-सेना सामने मिल गयी। इसके बाद वहींपर देवताओं तथा दानवोंकी सेनामें भयंकर युद्ध आरम्भ हो गया॥ २६—२८॥

वे एक-दूसरेपर बाण, तलवार, भाला, मूसल, परशु, गदा, पट्टिश, शूल, चक्र, शक्ति, तोमर, मुद्गर, भिन्दिपाल, हल तथा अन्य अति भयंकर शस्त्रोंसे प्रहार करने लगे॥ २९-३०॥

महिषासुरके सेनापति महाबली चिक्षुरने हाथीपर चढ़कर इन्द्रपर पाँच बाणोंसे प्रहार किया॥ ३१॥

युद्धकुशल इन्द्रने भी तत्काल अपने बाणोंसे उसके बाणोंको काटकर अपने अर्धचन्द्र नामक बाणसे उसके हृदय-स्थलपर आघात किया॥ ३२॥

उस बाणसे आहत होकर सेनानायक चिक्षुर हाथीपर बैठे-बैठे ही मूर्च्छित हो गया। इसके बाद इन्द्रने हाथीकी सूँड़पर वज्रसे प्रहार किया॥ ३३॥

उस वज्रके आघातसे हाथीकी सूँड़ कट गयी और

वह सेनाके बीच भाग खड़ा हुआ। उसे देखकर दानवराज महिषासुर कुपित हो गया और उसने बिडाल नामक दानवसे कहा—हे महाबाहो! हे वीर! तुम जाओ और बलके अभिमानमें चूर इन्द्रको मार डालो, साथ ही वरुण आदि अन्य देवताओंका भी वध करके शीघ्र ही मेरे पास लौट आओ॥ ३४-३५॥

व्यासजी बोले—उसकी बात सुनकर वह महाबली बिडाल एक मतवाले हाथीपर सवार होकर युद्धके लिये इन्द्रकी ओर चल पड़ा॥ ३६॥

उसे अपनी ओर आते देखकर इन्द्रने कुपित होकर विषधर सर्पतुल्य तीक्ष्ण बाणोंसे बिडालपर प्रहार किया॥ ३७॥

उस बिडालने शीघ्र ही अपने धनुषसे छूटे हुए बाणोंसे इन्द्रके बाण काटकर पुनः तत्काल अपने पचास बाणोंसे इन्द्रपर आघात किया॥ ३८॥

तब इन्द्रने भी क्रुद्ध होकर उसके उन बाणोंको काटकर अपने सर्पतुल्य तीक्ष्ण बाणोंसे उसपर प्रहार किया॥ ३९॥

अपने धनुषसे छूटे हुए बाणोंसे उसके बाणोंको काटकर इन्द्रने अपनी गदासे उसके हाथीकी सूँड़पर प्रहार किया॥ ४०॥

अपनी सूँड़पर गदाके आघातसे वह हाथी बार-बार आर्तनाद करने लगा और पीछे घूमकर भागता हुआ वह दैत्य-सेनाको ही कुचलने लगा, जिससे दानवोंकी सेना भयाकुल हो उठी॥ ४१॥

तत्पश्चात् हाथीको युद्धभूमिसे भागा देखकर वह दानव बिडाल लौटकर चला गया और पुनः एक सुन्दर रथपर सवार होकर देवताओंके समक्ष रणमें उपस्थित हो गया॥ ४२॥

इन्द्रने बिडालको रथपर सवार होकर पुनः समरांगणमें आया हुआ देखकर अपने सर्पतुल्य तीक्ष्ण बाणोंसे उसपर आघात करना आरम्भ कर दिया॥ ४३॥

वह महाबली बिडाल भी अत्यन्त कुपित होकर भयंकर बाण-वृष्टि करने लगा। इस प्रकार विजयके इच्छुक उन दोनोंके बीच भीषण युद्ध होने लगा॥ ४४॥

क्रोधके प्रभावसे व्याकुल इन्द्रियोंवाले इन्द्रने बिडालको विशेष बलवान् देखकर जयन्तको अपना अग्रणी बना लिया और अब उसके साथ मिलकर वे युद्ध करने लगे॥ ४५॥

जयन्तने धनुषपर चढ़ाकर प्रबलतापूर्वक खींचे गये पाँच तीक्ष्ण बाणोंसे मदोन्मत्त उस दानव बिडालके वक्षःस्थलपर आघात किया॥ ४६॥

उन बाणोंके आघातसे मूर्च्छित होकर बिडाल रथपर गिर पड़ा, तब उसका सारथि तत्काल रथ लेकर रण-भूमिसे बाहर निकल गया॥ ४७॥

उस बिडालके मूर्च्छित होकर युद्धभूमिसे बाहर चले जानेपर देवसेनामें महान् विजय-घोष तथा दुन्दुभियोंकी ध्वनि होने लगी॥ ४८॥

सभी देवता प्रसन्न होकर इन्द्रकी स्तुति करने लगे, गन्धर्व गाने लगे तथा अप्सराएँ नाचने लगीं॥ ४९॥

तत्पश्चात् देवताओंके द्वारा किये गये उस विजय-घोषको सुनकर महिषासुर कुपित हो उठा। उसने उसी क्षण घोर अभिमानको चूर-चूर कर देनेवाले ताम्र नामक दानवको युद्धक्षेत्रमें भेजा॥ ५०॥

ताम्र बहुत-से सैनिकोंके साथ समरांगणमें आकर इस प्रकार वेगपूर्वक बाणोंकी वर्षा करने लगा मानो मेघ समुद्रमें जल बरसा रहा हो॥ ५१॥

उस समय वरुणदेव पाश लेकर तथा यमराज हाथमें दण्ड धारण करके महिषपर चढ़कर [युद्धभूमिमें] शीघ्र ही पहुँच गये॥ ५२॥

अब देवताओं तथा दानवोंमें परस्पर बाणों, तलवारों, मुसलों, बर्छियों तथा फरसोंसे भीषण संग्राम होने लगा॥ ५३॥

यमराजके द्वारा अपने हाथसे फेंके गये दण्डसे ताम्र आहत हो गया, किंतु वह महाबाहु ताम्र समरांगणसे हिलातक नहीं॥ ५४॥

ताम्र उस संग्रामभूमिमें वेगपूर्वक धनुषको खींच-खींचकर अति तीक्ष्ण बाण छोड़कर इन्द्र आदि देवताओंपर शीघ्रतासे प्रहार करने लगा॥ ५५॥

वे देवता पत्थरपर घिसकर नुकीले बनाये गये तीक्ष्ण दिव्य बाणोंसे क्रुद्ध दानवोंको मारने लगे और 'ठहरो-ठहरो' कहकर चिल्लाने लगे॥ ५६॥

उन देवताओंके प्रहारसे घायल होकर दैत्य ताम्र युद्धभूमिमें मूर्च्छित हो गया। तब भयाक्रान्त दैत्यसेनामें महान् हाहाकार मच गया॥ ५७॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत पंचम स्कन्धका 'दैत्यसेनाकी पराजय' नामक पाँचवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५॥

छठा अध्याय

भगवान् विष्णु और शिवके साथ महिषासुरका भयानक युद्ध

व्यासजी बोले—इस प्रकार दानव ताम्रके मूर्च्छित हो जानेपर महिषासुर कुपित हो गया और एक विशाल गदा लेकर देवताओंके समक्ष जा डटा॥ १॥

हे देवताओ! तुम सब ठहरो; मैं अभी अपनी गदासे तुम सभीको मार डालूँगा। बलिभाग (हविष्य) खानेवाले तुम सब तो सदासे बलहीन रहे हो—ऐसा कहकर अभिमानके मदमें चूर वह महाबाहु महिषासुर हाथीपर बैठे हुए इन्द्रके पास पहुँचा और उसने उनके बाहुमूलपर अपनी गदासे तीव्र आघात किया॥ २-३॥

इन्द्रने अपने भयंकर वज्रसे उस गदाको तुरंत काट दिया और वे महिषासुरको मारनेकी इच्छासे बड़ी शीघ्रतापूर्वक उसकी ओर बढ़े॥ ४॥

तत्पश्चात् वह महिषासुर भी कुपित होकर अपने हाथमें चमचमाती हुई तलवार लेकर महाबली तथा शत्रुविनाशक इन्द्रपर प्रहार करनेके लिये उनके सामने पहुँच गया॥ ५॥

तब उन दोनोंमें नानाविध आयुधोंके द्वारा समस्त प्राणियोंको भयभीत कर देनेवाला तथा मुनिजनोंको भी विस्मित कर देनेवाला भीषण युद्ध छिड़ गया॥ ६॥

तत्पश्चात् दैत्य महिषासुरने सम्पूर्ण जगत्को नष्ट कर देनेवाली तथा मुनियोंको भी मोहित कर देनेवाली मोहकारिणी शाम्बरी मायाका तत्काल प्रयोग किया॥ ७॥

उस मायाके प्रभावसे महिषासुरके ही रूपवाले तथा उसीके समान पराक्रमी करोड़ों महिषासुर अनेक प्रकारके आयुध लेकर देवसेनाका संहार करते हुए दिखायी पड़े॥ ८॥

तब दैत्य महिषासुरद्वारा उत्पन्न की गयी उस मोहकरी मायाको देखकर इन्द्र विस्मयमें पड़ गये तथा भयसे बहुत व्याकुल हो उठे॥ ९॥

वरुण, कुबेर, यम, अग्नि, सूर्य तथा चन्द्रमा भी भयभीत हो गये और सभीके मनमें त्रास छा गया। सभी देवगण माया-विमोहित होकर भाग खड़े हुए और ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवका स्मरण करने लगे॥ १०-११॥

स्मरण करते ही उनकी रक्षाकी कामनासे श्रेष्ठ आयुध धारण करके सुरश्रेष्ठ ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश अपने-अपने वाहन हंस, गरुड तथा वृषभपर आरूढ होकर वहाँ आ गये॥ १२॥

मोहकारिणी उस आसुरी मायाको देखकर भगवान् विष्णुने अपना तेजोमय सुदर्शन चक्र चला दिया, जिसके प्रचण्ड तेजसे वह माया समाप्त हो गयी॥ १३॥

तदनन्तर सृष्टि, पालन तथा संहार करनेवाले उन देवताओंको देखकर उनसे युद्ध करनेकी इच्छासे वह महिषासुर परिघ लेकर उनकी ओर दौड़ा॥ १४॥

इसके बाद महावीर महिषासुर, सेनाध्यक्ष चिक्षुर, उग्रास्य, उग्रवीर्य, असिलोमा, त्रिनेत्र, बाष्कल तथा अन्धक—ये दानव एवं इनके अतिरिक्त अन्य बहुत-से दानव युद्धकी अभिलाषासे निकल पड़े॥ १५-१६॥

उन कवचधारी, धनुष धारण करनेवाले, रथारूढ तथा मदोन्मत्त दानवोंने सभी देवताओंको उसी प्रकार घेर लिया, जिस प्रकार भेड़िये अत्यन्त कोमल बछड़ोंको घेर लेते हैं॥ १७॥

तदनन्तर एक-दूसरेको मार डालनेकी इच्छावाले वे

मदोन्मत्त दानव तथा देवता बाण-वृष्टि करने लगे॥ १८॥

इसी बीच अन्धकासुरने भगवान् विष्णुके समक्ष पहुँचकर सानपर चढ़ाये गये, विषमें दग्ध किये गये तथा कानतक खींचे गये अत्यन्त शक्तिशाली पाँच बाण छोड़े॥ १९॥

शत्रुदमन भगवान् विष्णुने भी बड़ी तत्परताके साथ अपने तीव्रगामी बाणोंसे अन्धकासुरके उन बाणोंको दूरसे ही काट डाला और फिर उसके ऊपर पाँच बाण छोड़े॥ २०॥

इस प्रकार विष्णु तथा अन्धकासुर—उन दोनोंमें बाण, तलवार, चक्र, मूसल, गदा, बर्छी तथा फरसोंसे भीषण युद्ध होने लगा॥ २१॥

इसी प्रकार महेश्वर तथा अन्धकासुरके बीच भीषण रोमांचकारी युद्ध निरन्तर पचास दिनोंतक होता रहा॥ २२॥

उसी तरह इन्द्र तथा बाष्कल, महिषासुर तथा भगवान् रुद्र, यमराज तथा त्रिनेत्र, महाहनु तथा कुबेर एवं असिलोमा तथा वरुणके बीच महाभीषण युद्ध हुआ। इसी बीच अन्धकासुरने अपनी गदासे भगवान् विष्णुके वाहन गरुडपर प्रहार किया। गदाके प्रहारसे घायल अंगोंवाले गरुड लम्बी साँस खींचते हुए स्थित हो गये। तत्पश्चात् देवाधिदेव विष्णुने अपने दाहिने हाथसे सहलाकर महाबली गरुडको सान्त्वना प्रदान करते हुए उन्हें स्वस्थचित्त किया। तब भगवान् विष्णुने अन्धकका संहार करनेके विचारसे अपना शार्ङ्गधनुष खींचकर उसके ऊपर बहुत-से बाण छोड़े॥ २३—२६$^{1}/_{2}$॥

दानव अन्धकने अपने तीक्ष्ण बाणोंसे उन बाणोंको काट डाला और इसके बाद सानपर चढ़ाकर तेज बनाये गये पचास बाण भगवान् विष्णुके ऊपर कुपित होकर एक ही साथ छोड़े। भगवान् विष्णुने भी उन उत्तम बाणोंको तत्क्षण निष्फल करके अपना हजार अरोंवाला सुदर्शन चक्र अन्धकासुरके ऊपर वेगपूर्वक चलाया। तब अन्धकासुरने भगवान् विष्णुद्वारा छोड़े गये सुदर्शन चक्रको अपने चक्रसे काफी दूरसे ही विफल कर दिया। हे महाराज [जनमेजय]! इसके बाद देवताओंको सम्मोहित करते हुए उसने भीषण गर्जना की॥ २७—२९$^{1}/_{2}$॥

तत्पश्चात् शार्ङ्गधनुष धारण करनेवाले भगवान् विष्णुके सुदर्शन चक्रको विफल हुआ देखकर सभी देवता शोकाकुल हो उठे तथा दानवगण हर्षित हो गये। तब भगवान् विष्णु भी देवताओंको चिन्तामग्न देखकर अपनी कौमोदकी गदा लेकर दानव अन्धकपर झपट पड़े। श्रीहरिने बड़े वेगसे उस मायावीके मस्तकपर गदासे प्रहार किया। वह दैत्य गदाके प्रहारसे पूर्णरूपसे मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ ३०—३२$^{1}/_{2}$॥

उसे इस प्रकार गिरा हुआ देखकर महिषासुर अत्यन्त क्रोधित हो उठा और अपनी घोर गर्जनासे भयभीत करता हुआ भगवान् विष्णुके सामने आ गया। भगवान् विष्णुने भी उस महिषासुरको कुपित होकर अपने समक्ष आया देखकर देवताओंको आनन्दित करते हुए अपने धनुषकी प्रत्यंचासे भयानक टंकार उत्पन्न की। तत्पश्चात् भगवान् विष्णु महिषासुरके ऊपर शीघ्रतापूर्वक बाणोंकी बौछार करने लगे। उसने भी अपने बाणसमूहोंसे उन आते हुए बाणोंको आकाशमें ही काट डाला। हे राजन्! इस प्रकार उन दोनोंमें परस्पर अति भीषण युद्ध हुआ॥ ३३—३६॥

भगवान् विष्णुने गदासे महिषासुरके मस्तकपर प्रहार किया। मस्तकपर उस गदाके आघातसे मूर्च्छित होकर वह पृथ्वीपर गिर पड़ा। [यह देखकर] उसकी सेनामें अति भीषण हाहाकार मच गया। कुछ ही क्षणोंमें अपनी वेदनाको भूलकर वह दैत्य फिर उठकर खड़ा हो गया। उसने तत्काल एक परिघ लेकर मधुसूदन श्रीविष्णुके सिरपर प्रहार किया। उस परिघके प्रहारसे आहत होकर भगवान् विष्णु मूर्च्छाको प्राप्त हो गये। तब गरुड मूर्च्छाको प्राप्त उन भगवान् विष्णुको युद्धस्थलसे लेकर बाहर चले गये। इस प्रकार जगत्पति विष्णुके समरांगणसे लौट जानेपर इन्द्र आदि प्रधान देवता भयभीत हो गये और दुःखसे पीड़ित होकर युद्धभूमिमें चीखने-चिल्लाने लगे॥ ३७—४०$^{1}/_{2}$॥

तत्पश्चात् शूलधारी भगवान् शंकरने देवताओंको इस प्रकार करुण क्रन्दन करते हुए देखकर अत्यन्त क्रोधके साथ महिषासुरके पास द्रुतगतिसे पहुँचकर उसपर भीषण प्रहार किया। उस महिषासुरने भी भगवान् शंकरके वक्षःस्थलपर अपनी शक्ति (बर्छी)-से तेज प्रहार किया और उनके त्रिशूलप्रहारको विफल करके उस दुष्टात्माने बड़ी तेज

गर्जना की। वक्षपर प्रहार होनेपर भी भगवान् शंकरको कोई पीड़ा नहीं हुई और क्रोधसे आँखें लाल करके उन्होंने उसपर अपने त्रिशूलसे प्रहार किया॥ ४१—४३ $^{१}/_{२}$ ॥

इसी बीच दुष्टात्मा महिषासुरके साथ भगवान् शंकरको इस प्रकार युद्धरत देखकर प्रहारजनित मूर्च्छाका त्याग करके वहाँ भगवान् विष्णु आ गये। उस समय युद्धके लिये उत्सुक महापराक्रमी विष्णु तथा शिवको श्रेष्ठ सुदर्शन चक्र तथा त्रिशूल धारण करके लड़नेके लिये अपने समक्ष उपस्थित देखकर वह महाबली महिषासुर अत्यन्त कुपित हो उठा। तत्पश्चात् वह विशालबाहु दैत्य उन दोनों देवताओंको अपने समीप आया हुआ देखकर महिषका रूप धारण करके पूँछ हिलाता हुआ युद्ध करनेके लिये उनके समक्ष पहुँच गया। देवताओंको आतंकित करते हुए उस विशालकाय तथा भयावह महिषासुरने अपनी सींगें फटकारते हुए मेघकी भाँति भीषण गर्जना की तथा वह अपनी सींगोंसे पर्वतोंकी बड़ी-बड़ी चट्टानें उखाड़-उखाड़कर फेंकने लगा॥ ४४—४८ $^{१}/_{२}$ ॥

उस दानवको देखकर महापराक्रमी देवश्रेष्ठ विष्णु तथा शंकर उसके ऊपर भीषण बाण-वृष्टि करने लगे। भगवान् विष्णु तथा शिवको अपने ऊपर बाण-वृष्टि करते हुए देखकर महिषासुरने अपनी पूँछमें एक भयानक पर्वतशिखर लपेटकर उनके ऊपर फेंका। उस पर्वत-शिखरको आते देखकर भगवान् विष्णुने अपने बाणोंसे उसके सैकड़ों टुकड़े कर दिये और फिर सुदर्शन चक्रसे उसके ऊपर शीघ्रतासे प्रहार किया। भगवान् विष्णुके चक्रसे आहत होकर वह दैत्यराज महिषासुर युद्धमें मूर्च्छित हो गया। किंतु थोड़ी ही देरमें वह मनुष्यका शरीर धारण करके उठ खड़ा हुआ। पर्वतके समान शरीरवाला वह महाभयानक दैत्य हाथमें गदा धारणकर देवताओंको भयभीत करता हुआ मेघके समान जोर-जोरसे गरजने लगा॥ ४९—५३ $^{१}/_{२}$ ॥

उस नादको सुनकर भगवान् विष्णुने तीव्रतर ध्वनि उत्पन्न करनेके लिये बड़ी तेजीसे अपना देदीप्यमान पांचजन्य नामक शंख बजाया। शंखकी उस ध्वनिसे समस्त दानव भयभीत हो गये और तपोधन ऋषिगण तथा देवता आनन्दमग्न हो गये॥ ५४-५५ ॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत पंचम स्कन्धका 'महिषासुरका इन्द्रादिदेवोंके साथ युद्धवर्णन' नामक छठा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ६ ॥

सातवाँ अध्याय

महिषासुरको अवध्य जानकर त्रिदेवोंका अपने-अपने लोक लौट जाना, देवताओंकी पराजय तथा महिषासुरका स्वर्गपर आधिपत्य, इन्द्रका ब्रह्मा और शिवजीके साथ विष्णुलोकके लिये प्रस्थान

व्यासजी बोले—[हे महाराज जनमेजय!] महिषासुरने समस्त दानवोंको खिन्नमनस्क देखकर महिषका वह रूप छोड़कर तत्काल सिंहका रूप धारण कर लिया॥ १ ॥

तत्पश्चात् भयानक गर्जन करके गर्दनके बाल (अयाल) फैलाकर अपने तीक्ष्ण नख दिखाकर देवताओंको भयभीत करता हुआ वह देवसेनापर टूट पड़ा॥ २ ॥

उसने गरुडके ऊपर अपने नाखूनोंसे आघात करके उन्हें रक्तसे लथपथ कर दिया। पुनः सिंहरूपधारी उस दानवने विष्णुकी भुजापर अपने नखोंसे प्रहार किया॥ ३ ॥

भगवान् विष्णुने उसे देखकर कुपित हो तत्काल अपना सुदर्शन चक्र लेकर उस दैत्यको मार डालनेकी इच्छासे बड़े वेगसे उसपर चला दिया॥ ४ ॥

भगवान् विष्णुने उस महिषासुरपर ज्यों ही अपने चक्रसे तेज प्रहार किया त्यों ही वह महान् शक्तिशाली महिषका रूप धारणकर भगवान् विष्णुको अपनी सींगोंसे मारने लगा॥ ५ ॥

वक्षःस्थलपर सींगके आघातसे व्याकुल होकर भगवान् विष्णु बड़े वेगसे भागकर अपने लोक चले गये। विष्णुको पलायित देखकर शंकरजी भी बहुत भयभीत हो गये और उसे सर्वथा अवध्य मानकर कैलासपर्वतपर चले गये। ब्रह्माजी भी उसके डरसे तत्काल अपने लोक चले गये॥ ६-७ $^{१}/_{२}$ ॥

महाबली इन्द्र वज्र धारण किये हुए समरांगणमें डटे रहे। वरुणदेव अपना पाशास्त्र लेकर धैर्यपूर्वक खड़े रहे। यमराज अपना दण्ड धारण किये युद्ध करनेके लिये सावधान होकर खड़े थे। यक्षाधिपति कुबेर युद्ध करनेके लिये पूर्णरूपसे उद्यत थे और अग्निदेव बर्छी लेकर युद्ध करनेके विचारसे स्थित थे। नक्षत्रोंके नायक चन्द्रमा तथा भगवान् सूर्य—दोनों एक साथ युद्ध करनेके लिये खड़े हो गये और उस दानवश्रेष्ठ महिषासुरको देखकर उन्होंने युद्ध करनेका निश्चय कर लिया॥ ८—११॥

इतनेमें क्रूर सर्पोंके समान बाण-समूहोंकी वर्षा करती हुई क्रुद्ध दानवी सेना वहाँ आ गयी॥ १२॥

वह दानवराज महिषका रूप धारण करके खड़ा था। उस समय देवता तथा असुर-पक्षके योद्धाओंका भीषण गर्जन होने लगा॥ १३॥

देवताओं तथा दानवोंके बीच हो रहे महाभयानक संग्राममें धनुषकी टंकार तथा ताल ठोंकनेकी ध्वनि मेघ-गर्जना जैसी प्रतीत हो रही थी॥ १४॥

अभिमानमें चूर महाबली दैत्य महिषासुर अपनी सींगोंसे पर्वत-शिखर फेंक-फेंककर देवसमूहपर प्रहार कर रहा था॥ १५॥

क्रोधमें भरे हुए उस परम अद्भुत महिषासुरने अपने खुरोंके आघातसे तथा पूँछ घुमाकर बहुत-से देवताओंपर प्रहार किया॥ १६॥

तत्पश्चात् लड़नेके लिये उद्यत देवता तथा गन्धर्व भयभीत हो गये और महिषासुरको देखकर इन्द्र भी भाग गये॥ १७॥

संग्राम छोड़कर शचीपति इन्द्रके भाग जानेपर यमराज, धनाध्यक्ष कुबेर तथा वरुणदेव—ये सब भी भयभीत होकर भाग चले॥ १८॥

महिषासुर भी अपनी जीत मानकर अपने घर चला गया। इन्द्रके भाग जानेके बाद उनके द्वारा त्यक्त ऐरावत हाथी, सूर्यका उच्चैःश्रवा घोड़ा तथा दूध देनेवाली कामधेनु गौको उसने हस्तगत कर लिया। तत्पश्चात् उसने शीघ्र ही सेनाको साथमें लेकर स्वर्ग जानेका मनमें निश्चय किया॥ १९-२०॥

इसके बाद शीघ्र ही देवलोक पहुँचकर महिषासुरने भयाक्रान्त देवताओंके द्वारा पहलेसे ही छोड़ दिये गये उनके राज्यपर आधिपत्य कर लिया॥ २१॥

इसके बाद उस रमणीय इन्द्रासनपर महिषासुर आसीन हुआ और उसने राज्य-संचालनार्थ देवताओंके स्थानपर दानवोंको स्थापित कर दिया॥ २२॥

इस प्रकार पूरे सौ वर्षतक भीषण युद्ध करके अभिमानमें चूर उस दैत्यने इन्द्रपद प्राप्त किया॥ २३॥

सभी देवता उस महिषासुरसे प्रताड़ित होकर स्वर्गसे निकल गये और बहुत वर्षोंतक पर्वतकी गुफाओंमें घूमते-फिरते रहे॥ २४॥

हे राजन्! तब थके हुए सभी देवतागण ब्रह्माजीकी शरणमें गये। उस महिषासुरके भयसे त्रस्त वे सभी देवता समस्त वेद-वेदांगोंके पारगामी विद्वान्, शान्त स्वभाववाले और स्वयं ब्रह्माके मनसे उत्पन्न मरीचि आदि प्रमुख मुनियों एवं सिद्धों, किन्नरों, गन्धर्वों, चारणों, उरगों तथा पन्नगोंद्वारा निरन्तर सेवित, रजोगुणसे सम्पन्न, चार मुखवाले, जगन्नाथ, प्रजापति, वेदगर्भ, कमलके आसनपर विराजमान तथा समस्त संसारके गुरु देवाधिदेव ब्रह्माजीकी स्तुति करने लगे॥ २५—२७॥

देवता बोले—हे सम्पूर्ण दुःख दूर करनेवाले पद्मयोनि ब्रह्माजी! इस समय सभी देवता संग्राममें दानवेन्द्र महिषासुरसे पराजित होकर गिरि-कन्दराओंमें कालक्षेप कर रहे हैं। स्थानच्युत हो जानेके कारण उन्हें महान् कष्ट उठाना पड़ रहा है। हमारी ऐसी दशा देखकर भी क्या आपको दया नहीं आती, यह कैसी विचित्र बात है!॥ २८॥

क्या निर्लोभी पिता सैकड़ों अपराधोंसे युक्त अपने पुत्रोंको त्यागकर उन्हें कष्टमें पड़े रहना देख सकता है? तब फिर दैत्योंद्वारा सताये गये देवताओंकी, जो आपके चरणकमलकी भक्तिमें लगे रहते हैं, उपेक्षा आज आप क्यों कर रहे हैं?॥ २९॥

[दुष्ट] महिषासुर स्वर्ग और पृथ्वीका सम्पूर्ण साम्राज्य भोग रहा है। ब्राह्मणोंद्वारा यज्ञमें दी हुई पवित्र हविको वह

स्वयं ले लेता है। वह दुष्टात्मा असुर स्वर्गके पारिजातपुष्पोंको अपने उपभोगमें लाता है तथा समुद्रकी निधिस्वरूपा उस कामधेनु गौका भी उपयोग कर रहा है॥ ३०॥

हे देवेश! हमलोग देवताओंकी विषम स्थितिका वर्णन कहाँतक करें? आप तो अपने ज्ञानसे दैत्योंकी सारी कुचेष्टा जानते हैं; आप सम्पूर्ण कार्योंको जाननेवाले हैं। अतः हे प्रभो! हम सभी देवता आपके चरणोंमें आ पड़े हैं॥ ३१॥

हे देवेश! देवता जहाँ कहीं भी जाते हैं [वहीं पहुँचकर] विविध चरित्रोंवाला, पापमय विचारोंवाला तथा दुष्ट आचरणवाला वह महिषासुर उन्हें पीड़ित करने लगता है। हे विभो! अब आप ही हमारे रक्षक हैं; हमारा कल्याण कीजिये॥ ३२॥

यदि आप हमारी रक्षा नहीं करेंगे तो दैत्योंके भीषण अत्याचाररूपी दावानलसे पीड़ित हमलोग आप सदृश शान्तिदाता, अनन्त तेजस्वी, प्रजापति, देवताओंके पूज्य, आदिपिता तथा कल्याणकारी प्रभुको छोड़कर किसकी शरणमें जायँ?॥ ३३॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार स्तुति करके सम्पूर्ण देवता हाथ जोड़कर प्रजापति ब्रह्माको प्रणाम करने लगे। उन सबके मुखपर अत्यन्त उदासी छायी हुई थी। तब उन्हें इस प्रकार दुःखी देखकर लोकपितामह ब्रह्माजी उन्हें सुख पहुँचाते हुए मधुर वाणीमें कहने लगे—॥ ३४-३५॥

ब्रह्माजी बोले—हे देवताओ! मैं क्या करूँ? वर पानेके कारण वह दैत्य अभिमानी हो गया है। उसका वध कोई स्त्री ही कर सकती है, पुरुष नहीं। ऐसी परिस्थितिमें मैं क्या कर सकता हूँ?॥ ३६॥

हे देवताओ! हम सबलोग पर्वतश्रेष्ठ कैलासपर चलें। [वहाँ विराजमान] सम्पूर्ण कर्मोंके ज्ञाता भगवान् शंकरको आगे करके वहाँसे वैकुण्ठधामको चलें, जहाँ भगवान् विष्णु रहते हैं। उनसे मिलकर हमलोग देवताओंके कार्यके विषयमें विशेषरूपसे विचार करेंगे॥ ३७-३८॥

ऐसा कहकर ब्रह्माजी हंसपर सवार होकर कार्यसिद्धिके लिये देवताओंको साथ लेकर कैलासकी ओर चल पड़े॥ ३९॥

तभी शिवजी अपने ध्यानयोगसे सभी देवताओंसहित ब्रह्माजीको आता हुआ जानकर अपने भवनसे बाहर निकल आये॥ ४०॥

एक-दूसरेको देखकर उन्होंने परस्पर प्रणाम किया। उन सभी देवताओंने भी भगवान् शंकर तथा ब्रह्माको प्रणाम किया और वे दोनों अत्यन्त प्रसन्न हो गये॥ ४१॥

शिवजी वहाँ सभी देवताओंको पृथक्-पृथक् आसन देकर सबके यथास्थान बैठ जानेपर स्वयं भी अपने आसनपर बैठ गये। तब ब्रह्माजीसे कुशल-प्रश्न करके भगवान् शिवने देवताओंसे कैलास आनेका कारण पूछा॥ ४२-४३॥

शिवजी बोले—हे ब्रह्मन्! इन्द्र आदि देवताओंके साथ आपके यहाँ आनेका क्या प्रयोजन है? हे महाभाग! वह कारण अवश्य बताइये॥ ४४॥

ब्रह्माजी बोले—हे सुरेशान! महिषासुर स्वर्गमें रहनेवाले इन्द्रादि देवताओंको महान् कष्ट दे रहा है और उसके भयसे त्रस्त होकर ये देवगण पर्वतोंकी कन्दराओंमें घूम रहे हैं॥ ४५॥

महिषासुर यज्ञ-भाग स्वयं ग्रहण कर रहा है। अन्य अनेक दैत्य भी देवताओंके शत्रु बन गये हैं। उन सबसे पीड़ित होकर ये सभी लोकपाल आपकी शरणमें आये हुए हैं। हे शम्भो! इसी गुरुतर कार्यके लिये मैंने इन देवताओंको आपके भवनपर पहुँचा दिया है। अतः हे सुरेश्वर! अब इनके कार्यके विषयमें जो उचित जान पड़े, वह आप करें। हे भूतभावन! सम्पूर्ण देवताओंका भार अब आपपर है॥ ४६-४७$^{१}/_{२}$॥

व्यासजी बोले—ब्रह्माजीका यह वचन सुनकर भगवान् शंकर मुसकराते हुए कोमल वाणीमें ब्रह्माजीसे यह वचन कहने लगे—॥ ४८$^{१}/_{२}$॥

शिवजी बोले—हे विभो! आपने ही तो पूर्वकालमें [महिषासुरको] वरदान देकर देवताओंके लिये ऐसा अनर्थकारी कार्य किया है। अब इसके बाद हमें क्या करना चाहिये? [आपके वरके प्रभावसे ही] वह इतना बली, पराक्रमी तथा सभी देवताओंके लिये भयदायक हो गया है॥ ४९-५०॥

अभिमानमें चूर रहनेवाले उस दानवको मारनेमें

कौन श्रेष्ठ स्त्री समर्थ हो सकती है? न तो मेरी भार्या 'रुद्राणी' और न आपकी भार्या 'ब्रह्माणी' ही संग्राममें जानेयोग्य हैं। महाभाग्यवती ये देवियाँ संग्रामभूमिमें जाकर भी भला युद्ध किस प्रकार करेंगी? इन्द्रकी पत्नी महाभागा इन्द्राणी भी युद्धकलामें कुशल नहीं हैं। तब दूसरी कौन-सी देवांगना उस मदोन्मत्त पापीको मारनेमें समर्थ है?॥ ५१-५२१/२ ॥

अत: मेरा तो यह विचार है कि हमलोग इसी समय भगवान् विष्णुके पास चलकर और उनकी स्तुति करके देवताओंका कार्य करनेके लिये उन्हींको शीघ्रतापूर्वक प्रेरित करें। परम बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ वे विष्णु सम्पूर्ण कार्योंको सिद्ध करनेमें कुशल हैं। उन्हीं वासुदेवसे मिलकर इस कार्यके सम्बन्धमें विचार करना चाहिये। वे किसी प्रपंच अथवा बुद्धिसे कार्य सिद्ध होनेका उपाय बना देंगे॥ ५३—५५॥

व्यासजी बोले—भगवान् शंकरकी यह बात सुनकर ब्रह्मा आदि समस्त श्रेष्ठ देवता 'यह ठीक है'—ऐसा कहकर उठ खड़े हुए और वे सब अपने-अपने वाहनोंपर सवार हो शिवजीके साथ तुरन्त वैकुण्ठकी ओर चल दिये। उस समय कार्यसिद्धिके सूचक अनेक शुभ शकुन देखकर वे सब अत्यन्त प्रसन्न हुए। शुभ सूचना देनेवाली शीतल, मन्द तथा सुगन्धित हवाएँ चलने लगीं और पवित्र पक्षी सर्वत्र मार्गमें मंगलमयी बोली बोलने लगे। आकाश निर्मल हो गया और दिशाएँ स्वच्छ हो गयीं। इस प्रकार देवताओंकी यात्रामें मानो सब मंगल ही मंगल हो गया॥ ५६—५९॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत पंचम स्कन्धका 'पराजित देवताओंका भगवान् शंकरकी शरणमें गमन' नामक सातवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ७॥

आठवाँ अध्याय

ब्रह्माप्रभृति समस्त देवताओंके शरीरसे तेज:पुंजका निकलना और उस तेजोराशिसे भगवतीका प्राकट्य

व्यासजी बोले—हे राजन्! उन देवताओंने शीघ्रतापूर्वक भगवान् विष्णुके प्रिय धाम वैकुण्ठमें पहुँचकर वहाँ उन श्रीहरिका विशाल सदन देखा, जो सम्पूर्ण शोभाओंसे युक्त तथा दिव्य महलोंसे सुशोभित था। सुन्दर तथा सुखदायक वह भवन सरोवर, बावली एवं नदियोंसे सुशोभित था, जिनमें हंस, सारस, चक्रवाक आदि पक्षी कलरव कर रहे थे। उस भवनके चारों ओर सुशोभित हो रहे दिव्य उपवनोंमें चम्पा, अशोक, कह्लार, मन्दार, मौलसिरी, मालती, तिलक, आमड़ा और कुरबक आदि विविध प्रकारके वृक्ष लगे हुए थे। उपवनोंमें चारों ओर कोयलोंकी कूक सुनायी दे रही थी, मोर नृत्य कर रहे थे और भौंरे गुंजार कर रहे थे। नन्द-सुनन्द आदि भक्तिपरायण पार्षद तथा त्याग-वृत्तिसम्पन्न अनन्य भक्त भगवान् विष्णुकी स्तुति कर रहे थे। वहाँ रत्नजटित महल बने हुए थे, जिनपर सुनहरे चित्र बने हुए थे; सुन्दर-सुन्दर कक्षोंसे सुशोभित वे महल ऊँचाईमें आकाशको छू रहे थे। वहाँ देवता और गन्धर्व गा रहे थे, अप्सराएँ नाच रही थीं और वह मनको मुग्ध करनेवाले तथा मधुर कण्ठध्वनिवाले किन्नरोंसे मण्डित था। वैदिक सूक्तोंके द्वारा आदरपूर्वक भगवान् विष्णुकी स्तुति करते हुए शान्त स्वभाववाले वेदपाठपरायण मुनियोंसे वह भवन अत्यन्त सुशोभित हो रहा था॥ १—८॥

भगवान् विष्णुके भवनपर पहुँचकर देवताओंने सुन्दर स्वरूपवाले तथा हाथमें स्वर्णकी छड़ी धारण किये हुए जय-विजय नामक द्वारपालोंको देखकर उनसे कहा कि आप दोनोंमेंसे कोई एक जाकर भगवान् विष्णुसे कह दे कि आपके दर्शनकी अभिलाषासे ब्रह्मा, रुद्र आदि देवता द्वारपर खड़े हैं॥ ९-१०॥

व्यासजी बोले—उनकी बात सुनकर विजयने तुरन्त भगवान् विष्णुके पास जाकर उन्हें प्रणाम करके सभी देवताओंके आगमनकी बात उनको बतायी॥ ११॥

विजयने कहा—हे देवाधिदेव! हे महाराज! हे दैत्योंका दमन करनेवाले लक्ष्मीकान्त! हे विभो! इस समय

सभी देवता आये हुए हैं और वे द्वारपर खड़े हैं। आपके दर्शनके इच्छुक ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, वरुण, अग्नि, यम आदि देवता वेदवाक्योंसे आपकी स्तुति कर रहे हैं॥ १२-१३॥

व्यासजी बोले—लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु विजयकी बात सुनकर देवोंसे मिलनेहेतु अत्यधिक उत्साहित होकर शीघ्रतापूर्वक अपने भवनसे बाहर निकल आये॥ १४॥

वहाँ जाकर भगवान् विष्णुने द्वारपर स्थित उन देवताओंको थकानसे व्याकुल तथा दुःखित देखकर अपनी प्रेमभरी दृष्टिसे उन्हें आनन्दित किया॥ १५॥

उन सभी देवताओंने दैत्योंका संहार करनेवाले तथा वेदोंके द्वारा सुनिश्चित किये गये (तत्त्वस्वरूप) देवाधिदेव भगवान् विष्णुको प्रणाम किया और मधुर वाणीमें उनकी स्तुति की॥ १६॥

देवता बोले—हे देवदेव! हे जगन्नाथ! हे सृष्टि, पालन तथा संहार करनेवाले! हे दयासिन्धो! हे महाराज! हम शरणागतोंकी रक्षा कीजिये॥ १७॥

विष्णु बोले—हे देवताओ! आप सभी लोग आसनोंपर बैठ जाइये और फिर अपना कुशल-क्षेम बताइये। आपलोग एक साथ मिलकर यहाँ किसलिये आये हुए हैं? ब्रह्मा तथा शिवसहित आप सभी देवता चिन्तामग्न, दुःखित और उदास क्यों हो गये हैं? आपलोग अपना प्रयोजन शीघ्र बताएँ॥ १८-१९॥

देवता बोले—हे महाराज! पापकर्ममें संलग्न, अजेय, महादुष्ट, वरदान पाकर अभिमानमें चूर तथा पापी महिषासुरसे हमलोग पीड़ित हैं॥ २०॥

ब्राह्मणोंद्वारा देवताओंको दिये गये यज्ञभागोंको वह स्वयं ग्रहण कर लेता है। हम सभी देवता उससे भयभीत होकर पर्वतोंकी कन्दराओंमें भटकते फिरते हैं॥ २१॥

हे मधुसूदन! ब्रह्माजीके वरदानसे वह अजेय बन गया है, अतः इस कार्यको अत्यन्त गुरुतर जानकर हमलोग आपकी शरणमें आये हैं। दानवोंकी मायाको जाननेवाले तथा दानवोंका वध करनेवाले हे कृष्ण! आप ही देवताओंका उद्धार करनेमें समर्थ हैं, अतः उसके वधका कोई उपाय कीजिये॥ २२-२३॥

विधाताने उसे वर दे दिया है कि तुम पुरुषमात्रसे सदा अवध्य रहोगे। तब ऐसी कौन स्त्री होगी जो रणमें उस शठको मार सके?॥ २४॥

क्या भगवती पार्वती, लक्ष्मी, इन्द्राणी अथवा सरस्वती भी इस अत्यन्त दुष्ट तथा वरदानके कारण अत्यन्त अभिमानी महिषासुरका वध करनेमें समर्थ होंगी? अतएव हे भक्तवत्सल! हे भूधर! आप अपनी बुद्धिसे भलीभाँति विचार करके उसके मरणका जो भी उपाय हो उसके द्वारा हमलोगोंका यह कार्य सम्पन्न कर दीजिये॥ २५-२६॥

व्यासजी बोले—यह बात सुनकर भगवान् विष्णु मुसकराते हुए उनसे कहने लगे—पहले भी हमलोगोंने महिषासुरसे युद्ध किया था, किंतु वह नहीं मारा जा सका॥ २७॥

अब एक ही उपाय है कि यदि सभी देवताओंके तेजसे कोई श्रेष्ठ रूपवती सुन्दरी उत्पन्न की जाय तो वही समरांगणमें उसे अपने पराक्रमसे मार सकती है। हम सबकी शक्तिके अंशोंसे निर्मित कोई वीर नारी ही सैकड़ों प्रकारकी माया रचनेमें निपुण और वरप्राप्तिके कारण अभिमानमें चूर उस महिषासुरका वध करनेमें समर्थ होगी॥ २८-२९॥

अब आप सभी देवतागण तेजांशोंसे प्रार्थना करें; साथ ही हमारी स्त्रियाँ भी प्रार्थना करें, जिससे कि उन आविर्भूत तेजांशोंके द्वारा एक तेजोराशि उत्पन्न हो जाय॥ ३०॥

उस समय रुद्र आदि हम सब मुख्य देवतागण त्रिशूल

आदि जो भी दिव्य आयुध हैं, वह सब उसे दे देंगे। तत्पश्चात् सभी प्रकारके आयुध धारण करनेवाली तथा सम्पूर्ण तेजसे सम्पन्न वह देवी उस दुराचारी, पापी तथा मदोन्मत्त दानवको मार डालेगी॥ ३१-३२॥

व्यासजी बोले—भगवान् विष्णुके ऐसा कहते ही ब्रह्माजीके मुखसे अपने आप एक अत्यन्त असह्य तेज:पुंज निकल पड़ा। वह तेज लाल रंगका था, उसकी आकृति सुन्दर थी, वह पद्मराग मणिके समान प्रभावाला था। उसमें कुछ शीतलता एवं ऊष्णता भी थी और वह अनेक किरणोंसे सुशोभित था। हे महाराज! भगवान् विष्णु और शिवने भी उस नि:सृत तेजको देखा। [उसे देखकर] अमित पराक्रमवाले वे दोनों आश्चर्यचकित हो गये॥ ३३—३५॥
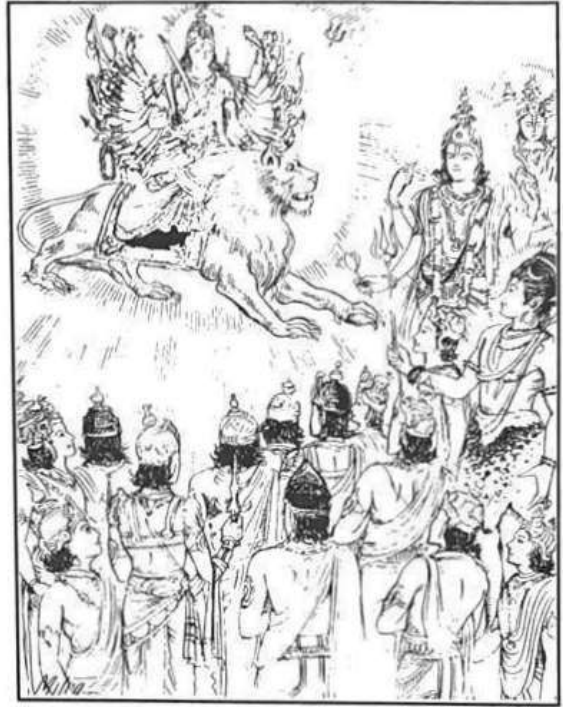
तत्पश्चात् शंकरजीके शरीरसे भी चाँदीके सदृश वर्णवाला, अत्यन्त अद्भुत, तीव्र, देखनेमें असह्य तथा महाप्रचण्ड तेज निकला जो दैत्योंको भयभीत कर देनेवाला तथा देवताओंको आश्चर्यमें डाल देनेवाला था। वह भयानक रूपवाला, पर्वतके समान विशाल तथा साक्षात् दूसरे तमोगुण जैसा था॥ ३६-३७॥

तदनन्तर भगवान् विष्णुके शरीरसे सत्त्वगुणसम्पन्न, नीलवर्ण और अत्यन्त दीप्तिमान् दूसरी तेजोराशि प्रकट हुई॥ ३८॥

इसके बाद इन्द्रके शरीरसे विचित्र आकारवाला, असह्य, पूर्ण गोलाकार और सर्वगुणात्मक तेज प्रादुर्भूत हुआ॥ ३९॥

कुबेर, यम, अग्नि तथा वरुणके भी शरीरोंसे सभी ओर महान् तेज निकलने लगा। इसी प्रकार अन्य देवताओंके शरीरोंसे भी अतिशय प्रदीप्त तेज निकला। वह महान् तेजोराशि अत्यन्त दीप्तिमान् थी॥ ४०-४१॥

दूसरे हिमालयपर्वतके सदृश उस महादिव्य तेजोराशिको देखकर विष्णु आदि सभी प्रधान देवता आश्चर्यचकित हो गये॥ ४२॥

उसी क्षण वहाँ सभी देवताओंके देखते-देखते उस तेज:पुंजसे अत्यन्त श्रेष्ठ, सुन्दर तथा सबको विस्मित कर देनेवाली एक स्त्री प्रकट हो गयी॥ ४३॥

सभी देवताओंके शरीरसे आविर्भूत वह नारी त्रिगुणात्मिका, अठारह भुजाओंवाली, मनोहर, त्रिवर्णा तथा विश्वको मोहमें डाल देनेवाली साक्षात् महालक्ष्मी थीं। वे उज्ज्वल मुखवाली, कृष्णवर्णके नेत्रोंवाली, अत्यन्त लाल अधरोष्ठसे सुशोभित, ताम्रवर्णकी हथेलीसे सुन्दर लगनेवाली, कान्तिसे सम्पन्न तथा दिव्य आभूषणोंसे अलंकृत थीं॥ ४४-४५॥

देवताओंके शरीरसे उत्पन्न तेजोराशिसे प्रकट वे अठारह भुजाओंवाली भगवती असुरोंका विनाश करनेके लिये हजारों भुजाओंसे सुशोभित हो गयीं॥ ४६॥

जनमेजय बोले—हे कृष्णद्वैपायन! हे महाभाग! हे सर्वज्ञ! हे मुनिवर! अब आप उन भगवतीके शरीरकी उत्पत्तिका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये। उन सब देवताओंके शरीरसे निकला हुआ तेज बादमें एकत्र हो गया अथवा पृथक्-पृथक् ही रहा? उनके अंग-प्रत्यंग विभिन्न देवताओंके तेजसे सम्पन्न थे अथवा नहीं? उनके शरीरके विभिन्न अंग—मुख, नासिका, नेत्र आदि अलग-अलग देवताओंके तेजसे निर्मित थे अथवा सब तेज एक साथ मिलकर बने थे? हे व्यासजी! उनके शरीरके अंगोंकी उत्पत्तिके विषयमें विस्तारपूर्वक बताइये। जिस देवताके तेजसे उनका जो-जो अद्भुत अंग बना, वह सब मुझे बताइये॥ ४७—५०॥

जिन-जिन देवताओंने उन भगवतीको जो-जो आयुध

तथा आभूषण आदि समर्पित किये, आपके मुखारविन्दसे निकली सारी बात मैं सुनना चाहता हूँ। हे ब्रह्मन्! आपके मुखकमलसे निकले महालक्ष्मीके चरित्ररूपी अमृतमय रसका पान करते हुए मैं तृप्त नहीं हो पा रहा हूँ॥ ५१-५२॥

सूतजी बोले—[हे मुनिवृन्द!] उन राजा जनमेजयका यह वचन सुनकर सत्यवतीपुत्र श्रीव्यासजी उन्हें प्रसन्न करते हुए यह मधुर वचन कहने लगे॥ ५३॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! हे महाभाग! हे कुरुश्रेष्ठ! सुनिये, मैं अपनी बुद्धिके अनुसार उनके शरीरकी उत्पत्तिके विषयमें विस्तारपूर्वक आपसे कहता हूँ॥ ५४॥

स्वयं ब्रह्मा, विष्णु, महेश और इन्द्र भी भगवतीके यथार्थ रूपको बता पानेमें कभी भी समर्थ नहीं हैं तब देवीका जो रूप है, जैसा है और जिस उद्देश्यसे बना है, उसे मैं कैसे जान सकता हूँ? बस, मेरी वाणी इतना ही कह सकती है कि वे भगवती प्रकट हुईं॥ ५५-५६॥

वे देवी नित्यस्वरूपा हैं और सदा ही सर्वत्र विराजमान रहती हैं। वे एक होती हुई भी गुरुतर कार्य पड़नेपर देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये नाना प्रकारके रूप धारण कर लेती हैं॥ ५७॥

जिस प्रकार नाटकका कोई नट एक होता हुआ भी रंगमंचपर जाकर लोगोंके मनोरंजनहेतु अनेक रूप धारण कर लेता है, उसी प्रकार रूपरहित तथा निर्गुणा होती हुई भी ये भगवती देवताओंका कार्य सम्पन्न करनेके लिये अपनी लीलासे अनेक सगुण रूप धारण कर लिया करती हैं और किये जानेवाले कर्मके अनुसार धात्वर्थ-गुणसंयुक्त उनके अनेक गौण नाम पड़ जाते हैं॥ ५८—६०॥

हे राजन्! देवताओंके तेजसमूहसे उन भगवतीका मनोहर रूप जिस प्रकार उत्पन्न हुआ, उसे मैं अपनी बुद्धिके अनुसार बता रहा हूँ॥ ६१॥

भगवान् शंकरका जो तेज था, उससे उन भगवतीका गौरवर्ण, सुन्दर आकारवाला तथा अत्यन्त विशाल मुखकमल निर्मित हुआ॥ ६२॥

यमराजके तेजसे उनके कोमल, घुँघराले, बहुत लम्बे, मेघके समान कृष्ण वर्णवाले और मनोहर केश बने॥ ६३॥

अग्निके तेजसे उन भगवतीके तीनों नेत्र बने। तीन प्रकारके वर्णोंसे सुशोभित वे नेत्र काले, लाल तथा श्वेत थे॥ ६४॥

उनकी भौंहें दोनों सन्ध्याओंके तेजसे बनीं। वे टेढ़ी, चिकनी, काले रंगकी, अत्यन्त तेजोमय तथा कामदेवके धनुषकी भाँति प्रतीत हो रही थीं॥ ६५॥

उनके दोनों उत्तम कान वायुके तेजसे बने, जो न बहुत बड़े तथा न बहुत छोटे थे। वे कामदेवके झूलेके सदृश प्रतीत हो रहे थे। तिलके फूलके समान आकृतिवाली, अत्यन्त मनोहर और स्निग्ध नाक कुबेरके तेजसे उत्पन्न हुई॥ ६६-६७॥

हे राजन्! उन देवीके नुकीले, चिकने, चमकीले, कुन्दके अग्रभागके सदृश तथा समान दाँत प्रजापतिके तेजसे उत्पन्न हुए॥ ६८॥

उनका रक्तवर्ण अधरोष्ठ अरुणके तेजसे उत्पन्न हुआ तथा ऊपरका अत्यन्त मनोहर उत्तरोष्ठ (ऊपरका ओष्ठ) कार्तिकेयके तेजसे उत्पन्न हुआ॥ ६९॥

उन देवीकी अठारह भुजाएँ विष्णुके तेजसे प्रकट हुईं तथा उनकी रक्तवर्णकी अँगुलियाँ वसुओंके तेजसे उत्पन्न हुईं। उनके दोनों उत्तम स्तन चन्द्रमाके तेजसे आविर्भूत हुए तथा तीन रेखाओंसे युक्त उनका मध्यभाग इन्द्रके तेजसे उत्पन्न हुआ। उनकी जाँघें तथा ऊरु-प्रदेश वरुणके तेजसे उत्पन्न हुए तथा उनका विशाल नितम्ब पृथ्वीके तेजसे उत्पन्न हुआ॥ ७०—७२॥

हे राजन्! इस प्रकार उस तेजोराशिसे सुन्दर आकारवाली, दिव्य रूपसे सम्पन्न तथा मधुर स्वरवाली भगवती नारी-रूपमें प्रकट हुईं॥ ७३॥

मनोहर अंग-प्रत्यंगवाली, सुन्दर दाँतोंवाली तथा भव्य नेत्रोंवाली उन देवीको देखकर महिषासुरसे पीड़ित समस्त देवता अत्यन्त आनन्दित हो उठे॥ ७४॥

उसी समय भगवान् विष्णुने सभी देवताओंसे कहा—हे देवताओ! अब आपलोग अपने-अपने सभी शुभ भूषण एवं आयुध इन देवीको प्रदान करें। अपने-अपने आयुधोंसे नानाविध तेजस्वी शस्त्रास्त्र उत्पन्न करके सभी लोग शीघ्र ही देवीको अर्पित कर दें॥ ७५-७६॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत पंचम स्कन्धका 'देवीके स्वरूपोद्भवका वर्णन' नामक आठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ८॥

नौवाँ अध्याय

देवताओंद्वारा भगवतीको आयुध और आभूषण समर्पित करना तथा उनकी स्तुति करना, देवीका प्रचण्ड अट्टहास करना, जिसे सुनकर महिषासुरका उद्विग्न होकर अपने प्रधान अमात्यको देवीके पास भेजना

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] तब भगवान् विष्णुका यह वचन सुनकर सभी देवता बहुत प्रसन्न हुए। वे तुरंत महालक्ष्मीको वस्त्र, आभूषण और अपने-अपने आयुध प्रदान करने लगे॥ १॥

क्षीरसागरने देवीको दिव्य, रक्तवर्णवाले, महीन तथा कभी भी जीर्ण न होनेवाले दो वस्त्र; निर्मल तथा मनोहर हार; करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान दिव्य चूडामणि; दो सुन्दर कुण्डल तथा कड़े प्रसन्नतापूर्वक दिये। विश्वकर्माने भुजाओंपर धारण करनेके लिये बाजूबन्द और अनेक प्रकारके रत्नजटित दिव्य कंकण प्रसन्नचित्त होकर उन्हें प्रदान किये। साथ ही त्वष्टाने मधुर ध्वनिवाले, चमकीले, स्वच्छ, रत्नजटित और सूर्यके समान प्रकाशमान दो नूपुर पैरोंमें पहननेके लिये उन्हें प्रदान किये॥ २—५॥

महासमुद्रने उन्हें गलेमें धारण करनेके लिये मनोहर कण्ठहार और रत्नोंसे निर्मित तेजोमय अँगूठियाँ प्रदान कीं॥ ६॥

वरुणदेवने कभी न मुरझानेवाले कमलोंकी वैजयन्ती नामक माला जो सुगन्धसे परिपूर्ण थी तथा जिसपर भौंरे मँडरा रहे थे, भगवतीको प्रदान की॥ ७॥

हिमवान्ने प्रसन्न होकर उन्हें नाना प्रकारके रत्न तथा सुवर्णके समान चमकीले वर्णवाला एक मनोहर सिंह वाहनके रूपमें प्रदान किया॥ ८॥

सभी लक्षणोंसे सम्पन्न तथा सुन्दर रूपवाली वे कल्याणमयी श्रेष्ठ भगवती दिव्य आभूषणोंसे विभूषित होकर सिंहपर आरूढ़ होकर अत्यन्त सुशोभित हो रही थीं॥ ९॥

तत्पश्चात् भगवान् विष्णुने अपने चक्रसे उत्पन्न करके सहस्र अरोंवाला, तेजसम्पन्न और दैत्योंका सिर काट लेनेकी सामर्थ्यवाला एक चक्र उन्हें प्रदान किया॥ १०॥

शंकरजीने अपने त्रिशूलसे उत्पन्न करके भगवतीको एक ऐसा उत्तम त्रिशूल अर्पण किया, जो दानवोंको काट डालनेकी शक्तिसे सम्पन्न तथा देवताओंके भयका नाश करनेवाला था॥ ११॥

वरुणदेवने अपने शंखसे उत्पन्न करके प्रसन्नचित्त होकर देवीजीको एक ऐसा शंख प्रदान किया; जो मंगलमय, अत्यन्त उज्ज्वल तथा तीव्र ध्वनि करनेवाला था॥ १२॥

अग्निदेवने प्रसन्नचित्त होकर सैकड़ों शत्रुओंका संहार करनेवाली, मनके समान तीव्र गतिसे चलनेवाली तथा दैत्योंका विनाश करनेवाली एक शक्ति उन्हें प्रदान की॥ १३॥

पवनदेवने उन भगवती महालक्ष्मीको बाणोंसे भरा हुआ एक तरकस तथा देखनेमें अत्यन्त अद्भुत, कठिनाईसे खींचा जा सकनेवाला और कर्कश टंकार करनेवाला धनुष प्रदान किया॥ १४॥

देवराज इन्द्रने अपने वज्रसे उत्पन्न करके एक अत्यन्त भयंकर वज्र तथा ऐरावत हाथीसे उतारकर एक परम सुन्दर तथा तीव्र ध्वनि करनेवाला घण्टा तुरंत भगवतीको अर्पण किया॥ १५॥

यमराजने अपने कालदण्डसे आविर्भूत एक ऐसा दण्ड भगवतीको प्रदान किया, जिससे वे समय आनेपर सभी प्राणियोंका अन्त करते थे॥ १६॥

ब्रह्माजीने गंगाजलसे परिपूर्ण दिव्य कमण्डलु और वरुणदेवने अपना पाश उन्हें प्रसन्नतापूर्वक प्रदान किया॥ १७॥

हे राजन्! कालने महालक्ष्मीको खड्ग तथा ढाल दिये और विश्वकर्माने उन्हें तीक्ष्ण परशु अर्पण किया॥ १८॥

कुबेरने भगवतीको एक सुवर्णमय पानपात्र तथा वरुणने उन्हें दिव्य तथा मनोहर कमल-पुष्प प्रदान किया॥ १९॥

प्रसन्न मनवाले त्वष्टाने सैकड़ों घण्टोंके समान ध्वनि करनेवाली और दानवोंका विनाश कर डालनेवाली कौमोदकी नामक गदा उन्हें प्रदान की। साथ ही उन त्वष्टाने जगज्जननी भगवती महालक्ष्मीको अनेक प्रकारके अस्त्र

तथा अभेद्य कवच प्रदान किये और सूर्यदेवने उन्हें अपनी किरणें प्रदान कीं॥ २०-२१॥

इस प्रकार सभी आयुधों तथा आभूषणोंसे युक्त उन भगवतीको देखकर देवतागण अत्यन्त विस्मित हुए और त्रैलोक्यमोहिनी उन कल्याणकारिणी देवीकी स्तुति करने लगे॥ २२॥

देवता बोले—शिवाको नमस्कार है। कल्याणी, शान्ति और पुष्टि देवीको बार-बार नमस्कार है। भगवतीको नमस्कार है। देवी रुद्राणीको निरन्तर नमस्कार है॥ २३॥

आप कालरात्रि, अम्बा तथा इन्द्राणीको बार-बार नमस्कार है। आप सिद्धि, बुद्धि, वृद्धि तथा वैष्णवीको बार-बार नमस्कार है॥ २४॥

पृथ्वीके भीतर स्थित रहकर जो पृथ्वीको नियन्त्रित करती हैं, किंतु पृथ्वी जिन्हें नहीं जान पातीं, उन परा परमेश्वरीकी मैं वन्दना करता हूँ॥ २५॥

जो मायाके अन्दर स्थित रहनेपर भी मायाके द्वारा नहीं जानी जा सकीं तथा जो मायाके अन्दर विराजमान रहकर उसे प्रेरणा प्रदान करती हैं, उन जन्मरहित तथा प्रेरणा प्रदान करनेवाली भगवती शिवाको हम नमस्कार करते हैं॥ २६॥

हे माता! आप हमारा कल्याण करें और शत्रुओंसे संत्रस्त हम देवताओंकी रक्षा करें। आप अपने तेजसे इस मोहग्रस्त पापी महिषासुरका वध कर डालें। यह महिषासुर दुष्ट, घोर मायावी, केवल स्त्रीके द्वारा मारा जा सकनेवाला, वरदान प्राप्त करनेसे अभिमानी, समस्त देवताओंको दुःख देनेवाला तथा अनेक रूप धारण करनेवाला महादुष्ट है॥ २७-२८॥

हे भक्तवत्सले! एकमात्र आप ही सभी देवताओंकी शरण हैं; दानव महिषासुरसे पीड़ित हम देवताओंकी आप रक्षा कीजिये। हे देवि! आपको नमस्कार है॥ २९॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार सब देवताओंके स्तुति करनेपर समस्त सुख प्रदान करनेवाली महादेवी मुसकराकर उन देवताओंसे यह मंगलमय वचन कहने लगीं॥ ३०॥

देवी बोलीं—हे देवतागण! आपलोग मन्दबुद्धि महिषासुरका भय त्याग दें। मैं वर पानेके कारण अभिमानमें चूर तथा मोहग्रस्त उस महिषासुरको आज ही रणमें मार डालूँगी॥ ३१॥

व्यासजी बोले—देवताओंसे ऐसा कहकर वे भगवती अत्यन्त उच्च स्वरमें हँस पड़ी। [वे बोलीं—] इस संसारमें यह बड़ी विचित्र बात है कि यह सारा जगत् ही भ्रम तथा मोहसे ग्रसित है। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र आदि तथा अन्य देवता भी महिषासुरसे भयभीत होकर काँपने लगते हैं॥ ३२-३३॥

हे श्रेष्ठ देवताओ! दैवबल बड़ा ही भयानक और दुर्जय है। काल ही सुख और दुःखका कर्ता है। यही सबका प्रभु तथा ईश्वर है। सृष्टि, पालन तथा संहार करनेमें समर्थ रहते हुए भी वे ब्रह्मा आदि मोह-ग्रस्त हो जाते हैं, कष्ट भोगते हैं और महिषासुरके द्वारा सताये जाते हैं॥ ३४-३५॥

मुसकराकर ऐसा कहनेके पश्चात् देवी अट्टहास करने लगीं। उस अट्टहासका महाभयानक गर्जन दानवोंको भयभीत कर देनेवाला था॥ ३६॥

उस अद्भुत शब्दको सुनकर पृथ्वी काँपने लगी, सभी पर्वत चलायमान हो उठे और अगाध महासमुद्रमें विक्षोभ उत्पन्न होने लगा। उस शब्दसे सुमेरुपर्वत हिलने लगा और सभी दिशाएँ गूँज उठीं। उस तीव्र ध्वनिको सुनकर सभी दानव भयभीत हो गये। सभी देवता परम प्रसन्न होकर 'आपकी जय हो', 'हमारी रक्षा करो'—ऐसा उन देवीसे

कहने लगे ॥ ३७-३८½ ॥

अभिमानमें चूर महिषासुर भी वह ध्वनि सुनकर क्रुद्ध हो उठा। उस ध्वनिसे सशंकित महिषासुरने दैत्योंसे पूछा—यह कैसी ध्वनि है? इस ध्वनिके उद्गम-स्थलको जाननेके लिये दूतगण तत्काल यहाँसे जायँ। कानोंको पीड़ा पहुँचानेवाला यह अति भीषण शब्द किसने किया है? देवता या दानव जो कोई भी इस ध्वनिको उत्पन्न करनेवाला हो, उस दुष्टात्माको पकड़कर मेरे पास ले आयें। ऐसा गर्जन करनेवाले उस अभिमानके मदमें उन्मत्त दुराचारीको मैं मार डालूँगा। मैं क्षीण-आयु तथा मन्दबुद्धिवाले उस दुष्टको अभी यमपुरी पहुँचा दूँगा। देवता मुझसे पराजित होकर भयभीत हो गये हैं, अत: वे ऐसा गर्जन कर ही नहीं सकते। दानव भी ऐसा नहीं कर सकते; क्योंकि वे सब तो मेरे अधीन हैं, तो फिर यह मूर्खतापूर्ण चेष्टा किसकी हो सकती है? अब दूतगण इस शब्दके कारणका पता लगाकर मेरे पास शीघ्र आयें। तत्पश्चात् मैं स्वयं वहाँ जाकर ऐसा व्यर्थ कर्म करनेवाले उस पापीका वध कर दूँगा ॥ ३९—४४½ ॥

व्यासजी बोले—महिषासुरके ऐसा कहनेपर वे दूत [शब्दके कारणका पता लगाते-लगाते] समस्त सुन्दर अंगोंवाली, अठारह भुजाओंवाली, दिव्य विग्रहमयी, सभी प्रकारके आभूषणोंसे अलंकृत, सम्पूर्ण शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न, उत्तम आयुध धारण करनेवाली और हाथमें मधुपात्र लेकर बार-बार उसका पान करती हुई भगवतीके पास पहुँच गये। उन्हें देखकर वे भयभीत हो गये और व्याकुल तथा सशंकित होकर वहाँसे भाग चले। महिषासुरके पास आकर वे उससे ध्वनिका कारण बताने लगे ॥ ४५—४७½ ॥

दूत बोले—हे दैत्येन्द्र! वह कोई अनुभवी स्त्री है और देवीकी भाँति दिखायी देती है। उस स्त्रीके सभी अंगोंमें आभूषण विद्यमान हैं तथा वह सभी प्रकारके रत्नोंसे सुशोभित है। वह स्त्री न तो मानवी है और न तो आसुरी है। दिव्यविग्रहवाली वह स्त्री बड़ी मनोहर है। अठारह भुजाओंवाली वह श्रेष्ठ नारी नानाविध आयुध धारण करके सिंहपर विराजमान है। वही स्त्री गर्जन कर रही है। वह मदोन्मत्त दिखायी दे रही है। वह निरन्तर मद्यपान कर रही है। हमें ऐसा जान पड़ता है कि वह अभी विवाहिता नहीं है ॥ ४८—५०½ ॥

देवतागण आकाशमें स्थित होकर प्रसन्नतापूर्वक उसकी इस प्रकार स्तुति कर रहे हैं—'आपकी जय हो', 'हमारी रक्षा करो' और 'शत्रुओंका वध करो'। हे प्रभो! मैं यह नहीं जानता कि वह सुन्दरी कौन है, किसकी पत्नी है, वह सुन्दरी यहाँ किसलिये आयी हुई है और वह क्या करना चाहती है? उस स्त्रीके तेजसे चकाचौंध हमलोग उसे देखनेमें समर्थ नहीं हो सके। वह स्त्री शृंगार, वीर, हास्य, रौद्र और अद्भुत—इन सभी रसोंसे परिपूर्ण थी। इस प्रकारकी अद्भुत स्वरूपवाली नारीको देखकर हमलोग बिना कुछ कहे ही आपके आज्ञानुसार लौट आये। हे राजन्! अब इसके बाद क्या करना है? ॥ ५१—५४½ ॥

महिषासुर बोला—हे वीर! हे मन्त्रिश्रेष्ठ! तुम मेरे आदेशसे सेना साथमें लेकर जाओ और साम आदि उपायोंसे उस सुन्दर मुखवाली स्त्रीको यहाँ ले आओ। यदि वह स्त्री साम, दान और भेद—इन तीन उपायोंसे भी यहाँ न आये तो उस सुन्दरीको बिना मारे ही पकड़कर मेरे पास ले आओ, यदि वह मृगनयनी प्रीतिपूर्वक आयेगी तो मैं हंसके समान भौंहोंवाली उस स्त्रीको प्रसन्नतापूर्वक अपनी पटरानी बनाऊँगा। मेरी इच्छा समझकर जिस प्रकार रसभंग न हो, वैसा करना। मैं उसकी रूपराशिकी बात सुनकर मोहित हो गया हूँ ॥ ५५—५८½ ॥

व्यासजी बोले—महिषासुरकी यह कोमल वाणी सुनकर वह श्रेष्ठ मन्त्री हाथी, घोड़े और रथ साथ लेकर तुरंत चल पड़ा। वहाँ पहुँचकर कुछ दूर खड़े होकर वह सचिव कोमल तथा मधुर वाणीमें विनम्रतापूर्वक उस दृढ़ निश्चयवाली नारीसे कहने लगा ॥ ५९-६०½ ॥

प्रधान बोला—हे मधुरभाषिणि! तुम कौन हो और यहाँ क्यों आयी हो? हे महाभागे! मेरे मुखसे ऐसा कहलाकर मेरे स्वामीने तुमसे यह बात पूछी है ॥ ६१½ ॥

उन्होंने समस्त देवताओंको जीत लिया है और वे मनुष्योंसे अवध्य हैं। हे चारुलोचने! ब्रह्माजीसे वरदान पानेके कारण वे बहुत गर्वयुक्त रहते हैं। वे दैत्यराज महिष

बड़े बलवान् हैं और अपनी इच्छाके अनुसार वे सदा विविध रूप धारण कर सकते हैं॥ ६२-६३॥

सुन्दर वेष तथा मनोहर विग्रहवाली आप यहाँ आयी हुई हैं—ऐसा सुनकर मेरे प्रभु महाराज महिषासुर आपको देखना चाहते हैं। वे मनुष्यका रूप धारण करके आपके पास आयेंगे। हे सुन्दर अंगोंवाली! आपकी जो इच्छा होगी, हम उसीको मान लेंगे॥ ६४-६५॥

हे बालमृगके समान नेत्रोंवाली! अब आप उन बुद्धिमान् राजा महिषके पास चलें और नहीं तो मैं स्वयं जाकर आपके प्रेममें लीन राजा महिषको यहाँ ले आऊँ॥ ६६॥

हे देवेशि! आपके मनमें जैसी इच्छा होगी, मैं वही करूँगा। आपके रूपके विषयमें सुनकर वे पूर्णरूपसे आपके वशवर्ती हो गये हैं। हे करभोरु! आप शीघ्र बताएँ; मैं उसीके अनुसार कार्य करूँगा॥ ६७-६८॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत पंचम स्कन्धका 'महिषासुरके मन्त्रीका देवीसे वार्तावर्णन' नामक नौवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ९॥

दसवाँ अध्याय

देवीद्वारा महिषासुरके अमात्यको अपना उद्देश्य बताना तथा अमात्यका वापस लौटकर देवीद्वारा कही गयी बातें महिषासुरको बताना

व्यासजी बोले—हे महाराज! उसकी यह बात सुनकर नारीश्रेष्ठ भगवती जोरसे हँसकर मेघके समान गम्भीर वाणीमें उससे कहने लगीं॥ १॥

देवी बोलीं—हे मन्त्रिवर! मुझे देवमाताके रूपमें जानो। मैं सभी दैत्योंका नाश करनेवाली तथा महालक्ष्मी नामसे विख्यात हूँ॥ २॥

दानवेन्द्र महिषासुरसे पीड़ित और यज्ञभागसे बहिष्कृत सभी देवताओंने उसके संहारके लिये मुझसे प्रार्थना की है। हे मन्त्रिश्रेष्ठ! इसलिये उसके वधके लिये पूर्णरूपसे तत्पर होकर मैं बिना किसी सेनाके अकेली ही आज यहाँ आयी हूँ॥ ३-४॥

हे अनघ! तुमने जो शान्तिपूर्वक आदरके साथ मेरा स्वागत करके मधुर वाणीमें मुझसे बात की है, उससे मैं बहुत प्रसन्न हूँ; अन्यथा अपनी कालाग्निके समान दृष्टिसे तुम्हें भस्म कर देती। मधुरतासे युक्त वचन भला किसके लिये प्रीतिकारक नहीं होता!॥ ५-६॥

अब तुम जाओ और मेरे शब्दोंमें उस पापी महिषासुरसे कह दो—यदि तुम्हें जीवित रहनेकी अभिलाषा हो तो अभी पाताललोकमें चले जाओ, नहीं तो मैं तुझ पापी तथा दुष्टको रणभूमिमें मार डालूँगी। मेरे बाणोंसे छिन्न-भिन्न शरीरवाले होकर तुम यमपुरी चले जाओगे॥ ७-८॥

हे मूर्ख! इसे मेरी दयालुता समझकर तुम यहाँसे शीघ्र चले जाओ, नहीं तो तुम्हारे मार दिये जानेपर देवतागण निश्चय ही तत्काल स्वर्गका राज्य पा जायँगे। इसलिये जबतक मेरे बाण तुझपर नहीं गिरते, उसके पूर्व ही तुम शीघ्रतापूर्वक समुद्रसहित पृथ्वीका त्याग करके पाताललोक चले जाओ॥ ९-१०॥

हे असुर! यदि तुम्हारे मनमें युद्धकी इच्छा हो तो अपने सभी महाबली वीरोंको साथ लेकर शीघ्र आ जाओ। मैं सबको यमपुरी पहुँचा दूँगी॥ ११॥

हे महामूढ! मैंने युग-युगमें तुम्हारे-जैसे असंख्य दैत्योंका संहार किया है, उसी प्रकार मैं तुम्हें भी रणमें मार डालूँगी। [मेरा सामना करके] तुम मेरे शस्त्र धारण करनेके परिश्रमको सफल करो, नहीं तो यह श्रम व्यर्थ हो जायगा। कामपीड़ित तुम रणभूमिमें मेरे साथ युद्ध करो॥ १२-१३॥

हे दुरात्मन्! तुम इस बातपर अभिमान मत करो कि मुझे ब्रह्माका वर प्राप्त हो गया है। हे मूढ़! केवल स्त्रीके द्वारा वध्य होनेके कारण तुमने श्रेष्ठ देवताओंको बहुत पीड़ित किया है॥ १४॥

अतः ब्रह्माजीका वचन सत्य करना है, इसीलिये स्त्रीका अनुपम रूप धारण करके मैं तुझ पापीका संहार करनेके लिये यहाँ आयी हूँ। हे मूढ! यदि जीवित रहनेकी

तुम्हारी इच्छा हो तो तत्काल पृथ्वीलोक छोड़कर तुम सर्पोंसे भरे पाताललोकको चले जाओ॥ १५-१६॥

व्यासजी बोले—देवीने उससे ऐसा कहा, तब उनकी बात सुनकर वह पराक्रमशाली मन्त्रिश्रेष्ठ उनसे सारगर्भित वचन कहने लगा—॥ १७॥

हे देवि! आप अभिमानमें चूर होकर एक साधारण स्त्रीके समान बात कर रही हैं। कहाँ वे महिषासुर और कहाँ आप, यह युद्ध तो असम्भव ही दीखता है॥ १८॥

आप यहाँ अकेली हैं और उसपर भी सद्यः युवावस्थाको प्राप्त सुकुमार बाला हैं। [इसके विपरीत] वे महिषासुर विशाल शरीरवाले हैं; ऐसी स्थितिमें उनकी और आपकी तुलना कल्पनातीत है॥ १९॥

उनके पास हाथी-घोड़े और रथसे परिपूर्ण, पैदल सैनिकोंसे सम्पन्न तथा अनेक प्रकारके आयुधोंसे सज्जित अनेक प्रकारकी सेना है॥ २०॥

मालतीके पुष्पोंको कुचल डालनेमें गजराजको भला कौन-सा परिश्रम करना पड़ता है। हे सुजघने! उसी प्रकार युद्धमें आपको मारनेमें महिषासुरको कुछ भी प्रयास नहीं करना पड़ेगा॥ २१॥

यदि मैं आपको थोड़ा भी कठोर वचन कह दूँ तो वह शृंगाररसके विरुद्ध होगा; और मैं रसभंगसे डरता हूँ॥ २२॥

हमारे राजा महिषासुर देवताओंके शत्रु हैं, किंतु वे आपके प्रति अनुरागयुक्त हैं। [मेरे राजाने कहा है कि] मैं आपसे साम तथा दाननीतियोंसे पूर्ण वचन ही बोलूँ, अन्यथा मैं झूठ बोलनेवाली, मिथ्या अभिमानमें भरकर चतुरता दिखानेवाली और रूप तथा यौवनके अभिमानमें चूर रहनेवाली आपको इसी समय अपने बाणसे मार डालता॥ २३-२४॥

आपके अलौकिक रूपके विषयमें सुनकर मेरे स्वामी मोहित हो गये हैं। उनकी प्रसन्नताके लिये ही मुझे प्रिय वचन बोलना पड़ रहा है॥ २५॥

उनका सम्पूर्ण राज्य तथा धन आपका है; क्योंकि वे महाराज महिषासुर निश्चय ही आपके दास हो चुके हैं। अतः हे विशालनयने! इस मृत्युदायक रोषका त्याग करके उनके प्रति प्रेमभाव प्रदर्शित कीजिये॥ २६॥

हे भामिनि! मैं भक्तिभावसे आपके चरणोंपर गिर रहा हूँ। हे पवित्र मुसकानवाली! आप शीघ्र ही महाराज महिषकी पटरानी बन जाइये॥ २७॥

महिषासुरको स्वीकार कर लेनेसे आपको तीनों लोकोंका सम्पूर्ण उत्तम वैभव तथा समस्त सांसारिक सुख प्राप्त हो जायगा॥ २८॥

देवी बोलीं—हे सचिव! सुनो, मैं बुद्धिचातुर्यसे सम्यक् विचार करके तथा शास्त्रप्रतिपादित मार्गसे निर्णय करके सारभूत बातें बताऊँगी॥ २९॥

तुम्हारी बातोंसे मैंने अपनी बुद्धिद्वारा जान लिया कि तुम महिषासुरके प्रधानमन्त्री हो और तुम भी [उसीकी तरह] पशुबुद्धिस्वभाववाले हो॥ ३०॥

जिस राजाके तुम्हारे-जैसे मन्त्री हों, वह बुद्धिमान् कैसे हो सकता है? ब्रह्माने निश्चय ही तुम दोनोंका यह समान योग रचा है॥ ३१॥

हे मूर्ख! तुमने जो यह कहा कि 'तुम स्त्रीस्वभाववाली हो', तो अब तुम इस बातपर जरा विचार करो कि क्या मैं पुरुष नहीं हूँ? वस्तुतः उसीके स्वभाववाली मैं इस समय स्त्रीवेषधारिणी हो गयी हूँ॥ ३२॥

तुम्हारे स्वामी महिषासुरने पूर्वकालमें जो स्त्रीसे मारे जानेका वरदान माँगा था, उसीसे मैं समझती हूँ कि वह महामूर्ख है। वह वीररसका थोड़ा भी जानकार नहीं है॥ ३३॥

स्त्रीके द्वारा मारा जाना पराक्रमहीनके लिये भले ही सुखकर हो, किंतु वीरके लिये यह कष्टप्रद होता है। महिषकी अपनी जो बुद्धि हो सकती है, उसीके अनुसार तुम्हारे स्वामीने ऐसा वरदान माँगा। इसीलिये मैं स्त्री-रूप धारण करके अपना कार्य सिद्ध करनेके लिये यहाँ आयी हूँ। मैं तुम्हारे धर्मशास्त्र-विरोधी वचनोंसे क्यों डरूँ?॥ ३४-३५॥

जब दैव प्रतिकूल होता है, तब एक तिनका भी वज्र-तुल्य हो जाता है और जब वह दैव अनुकूल होता है, तब वज्र भी तूल (रूई)-के समान कोमल हो जाता है॥ ३६॥

जिसकी मृत्यु सन्निकट हो उसके लिये सेना, अस्त्र-

शस्त्र तथा किलेकी सुरक्षा, सैन्यबल आदि प्रपंचोंसे क्या लाभ!॥ ३७॥

जब कालयोगसे देहके साथ जीवका सम्बन्ध स्थापित होता है, उसी समय विधाताके द्वारा सुख, दुःख तथा मृत्यु—सब कुछ निर्धारित कर दिया जाता है। दैवने जिस प्राणीकी मृत्यु जिस प्रकारसे निश्चित कर दी है, उसकी मृत्यु उसी प्रकारसे होगी, इसके विपरीत नहीं; यह पूर्ण सत्य है॥ ३८-३९॥

जिस प्रकारसे ब्रह्मा आदि देवताओंके भी जन्म और मृत्यु सुनिश्चित किये गये रहते हैं, समय आनेपर उसी प्रकारसे उनका भी जन्म-मरण होता है तब अन्य लोगोंके विषयमें विचार ही क्या! उन ब्रह्मा आदि मरणधर्माके वरदानसे गर्वित होकर जो लोग यह समझते हैं कि 'हम नहीं मरेंगे' वे मूर्ख तथा अल्पबुद्धिवाले हैं॥ ४०-४१॥

अतएव अब तुम शीघ्र जाओ और अपने राजासे मेरी बात कह दो। इसके बाद तुम्हारे राजा जैसी आज्ञा दें, तुम वैसा करो। इन्द्रको स्वर्ग प्राप्त हो जाय और देवताओंको यज्ञका भाग मिलने लगे। तुमलोग यदि जीवित रहना चाहते हो, तो पाताललोक चले जाओ और हे मूर्ख! यदि दुष्टात्मा महिषासुरका विचार विपरीत हो, तो वह मरनेके लिये तैयार होकर मेरे साथ युद्ध करे॥ ४२—४४॥

यदि तुम यह मानते हो कि विष्णु आदि प्रधान देवता तो युद्धमें पहले ही परास्त किये जा चुके हैं, तो उस समय उसका कारण था—विपरीत भाग्य तथा ब्रह्माजीका वरदान॥ ४५॥

व्यासजी बोले—देवीका यह वचन सुनकर वह दानव सोचने लगा—अब मुझे क्या करना चाहिये? मैं इसके साथ युद्ध करूँ या राजा महिषके पास लौट चलूँ॥ ४६॥

[किंतु यह भी है कि] कामातुर महाराज महिषने विवाहके लिये [उसे राजी करनेकी] मुझे आज्ञा दी है तो फिर रसभंग करके मैं राजाके पास लौटकर कैसे जाऊँ?॥ ४७॥

अन्तमें अब मुझे यही विचार उचित प्रतीत होता है कि बिना युद्ध किये ही राजाके पास शीघ्र चला जाऊँ और जैसा सामने उपस्थित है, वैसा उनको बता दूँ। उसके बाद बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ राजा महिष अपने चतुर मन्त्रियोंसे विचार-विमर्श करके जो उचित समझेंगे, उसे करेंगे॥ ४८-४९॥

मुझे अचानक इस स्त्रीके साथ युद्ध नहीं करना चाहिये; क्योंकि जय अथवा पराजय—इन दोनोंमें राजाका अप्रिय हो सकता है॥ ५०॥

यदि यह सुन्दरी मुझे मार डाले अथवा मैं ही जिस किसी उपायसे इसको मार डालूँ, तब भी राजा महिष निश्चितरूपसे कुपित होंगे। अतः अब मैं वहींपर चलकर इस सुन्दरीके द्वारा आज जो कुछ कहा गया है, वह सब राजा महिषको बता दूँगा। तत्पश्चात् उनकी जैसी रुचि होगी, वैसा वे करेंगे॥ ५१-५२॥

व्यासजी बोले—ऐसा विचार करके वह बुद्धिमान् मन्त्री राजा (महिष)-के पास गया और उसे प्रणामकर दोनों हाथ जोड़कर कहने लगा—॥ ५३॥

मन्त्री बोला—हे राजन्! सुन्दर रूपवाली वह देवी सिंहपर आरूढ है, उस मनोहर देवीकी अठारह भुजाएँ हैं और उस श्रेष्ठ देवीने उत्तम कोटिके आयुध धारण कर रखे हैं॥ ५४॥

हे महाराज! मैंने उससे कहा—हे भामिनि! तुम राजा महिषसे प्रेम कर लो और तीनों लोकोंके स्वामी उन महाराजकी प्रिय पटरानी बन जाओ। केवल तुम्हीं उनकी पटरानी बननेयोग्य हो; इसमें कोई संशय नहीं है। वे तुम्हारे आज्ञाकारी बनकर सदा तुम्हारे अधीन रहेंगे। हे सुमुखि! महाराज महिषको पतिरूपमें प्राप्त करके तुम चिरकालतक तीनों लोकोंके ऐश्वर्यका उपभोगकर समस्त स्त्रियोंमें सौभाग्यवती बन जाओ॥ ५५—५७॥

मेरा यह वचन सुनकर विशाल नयनोंवाली वह सुन्दरी गर्वके आवेगसे विमोहित होकर मुसकराती हुई मुझसे यह बात बोली—मैं देवताओंका हित करनेके विचारसे महिषीके गर्भसे उत्पन्न उस अधम पशु (महिष)-को देवीके लिये बलि चढ़ा दूँगी॥ ५८-५९॥

हे मन्दबुद्धे! इस संसारमें भला कौन मूर्ख स्त्री महिषको पतिरूपमें स्वीकार कर सकती है? क्या मुझ-जैसी स्त्री पशुस्वभाववाले उस महिषासुरसे प्रेम कर

सकती है?॥ ६०॥

हे मूर्ख! सींगवाली तथा जोर-जोरसे चिल्लानेवाली कोई महिषी ही उस शृंगधारी महिषको अपना पति बना सकती है; किंतु मैं वैसी मूर्ख नहीं हूँ। मैं तो देवताओंके शत्रु महिषासुरके साथ रणक्षेत्रमें युद्ध करूँगी और उसे मार डालूँगी। हे दुष्ट! यदि जीवित रहनेकी तुम्हारी इच्छा है, तो अभी पाताललोक चले जाओ॥ ६१-६२॥

हे राजन्! उस मदमत्त स्त्रीने ऐसी बहुत कठोर बात मुझसे कही। उसे सुनकर बार-बार विचार करनेके बाद मैं यहाँ लौट आया हूँ॥ ६३॥

आपका रसभंग न हो—यह सोचकर मैंने उसके साथ युद्ध नहीं किया और फिर आपकी आज्ञाके बिना मैं व्यर्थ ही युद्ध कैसे कर सकता था?॥ ६४॥

हे राजन्! वह स्त्री सदा अपने बलसे अत्यन्त उन्मत्त रहती है। होनीके विषयमें मैं नहीं जानता; आगे न जाने क्या होगा! इस विषयमें आप ही प्रमाण हैं। इसमें परामर्श देना मेरे लिये अत्यन्त कठिन है। इस समय हमारे लिये युद्ध करना अथवा पलायन कर जाना—इन दोनोंमें कौन श्रेयस्कर होगा, इसका निर्णय मैं नहीं कर पा रहा हूँ॥ ६५-६६॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत पंचम स्कन्धका 'मन्त्रीद्वारा महिषासुरके साथ देवीके लिये विवाहप्रस्ताव' नामक दसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १०॥

ग्यारहवाँ अध्याय

महिषासुरका अपने मन्त्रियोंसे विचार-विमर्श करना और ताम्रको भगवतीके पास भेजना

व्यासजी बोले—मन्त्रीकी यह बात सुनकर मदोन्मत्त राजा महिषासुर अपने वयोवृद्ध मन्त्रियोंको बुलाकर उनसे यह वचन कहने लगा॥ १॥

राजा बोला—हे मन्त्रिगण! आपलोग निर्भीकतापूर्वक मुझे शीघ्र बतायें कि इस समय मुझे क्या करना चाहिये? आपलोग इस कार्यमें प्रवीण हैं, साथ ही साम तथा दण्ड आदि नीतियोंमें भी कुशल हैं। कहीं देवताओंके द्वारा रची गयी शाम्बरी मायाके रूपमें तो यह नहीं आयी हुई है? अत: आपलोग मुझे यह बतायें कि इस समय किस नीतिका सहारा लिया जाय?॥ २-३॥

मन्त्रिगण बोले—हे नृपश्रेष्ठ! बुद्धिमान् लोगोंको सदा सत्य और प्रिय बोलना चाहिये तथा सम्यक् विचार करके हितकर कार्य करना चाहिये॥ ४॥

हे राजन्! सत्य वचन कल्याणकारी होता है और प्रिय वचन [प्राय:] अहितकर होता है। इस लोकमें अप्रिय वचन भी मनुष्योंके लिये उसी प्रकार हितकारक होता है, जैसे औषधि अरुचिकर होते हुए भी मनुष्योंके रोगोंका नाश करनेवाली होती है॥ ५॥

हे पृथिवीपते! सत्य बातको सुनने तथा माननेवाला दुर्लभ है। सत्य बोलनेवाला तो परम दुर्लभ है; किंतु चाटुकारितापूर्ण बातें करनेवाले बहुत-से लोग हैं॥ ६॥
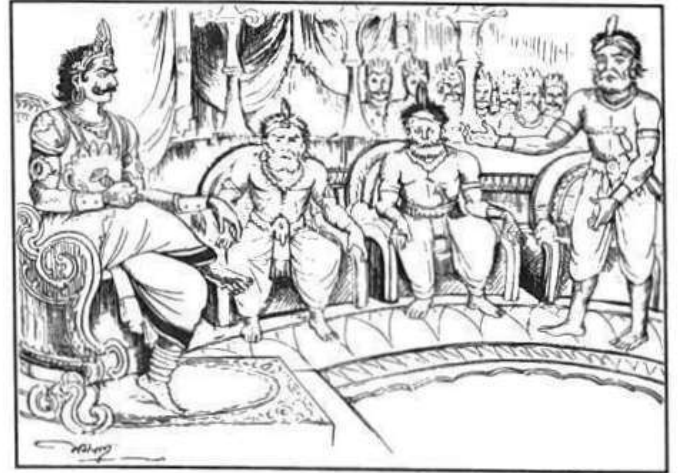
हे राजन्! इस गूढ़ विषयमें हमलोग कुछ कैसे कह सकते हैं, और फिर इस त्रिलोकीमें भविष्यमें होनेवाले शुभ अथवा अशुभ परिणामके विषयमें कौन जान सकता है?॥ ७॥

राजा बोला—आपलोग अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार अलग-अलग विचार प्रकट करें। जिसका जो भाव होगा,

उसे सुनकर मैं स्वयं विचार करूँगा; क्योंकि बुद्धिमान् पुरुषोंको चाहिये कि अनेक लोगोंके मन्तव्य सुनकर और फिर उनपर बार-बार विचार करके उनमेंसे अपने लिये जो कल्याणप्रद हो, उसी कामको करें॥ ८-९॥

व्यासजी बोले—उसकी यह बात सुनकर महाबली विरूपाक्ष राजा महिषको प्रसन्न करते हुए शीघ्र कहने लगा॥ १०॥

विरूपाक्ष बोला—हे राजन्! वह बेचारी स्त्री मदमत्त होकर जो कुछ बोल रही है, उन बातोंको आप केवल धमकीभर समझें॥ ११॥

यह जानते हुए कि झूठ और साहस स्त्रियोंकी आदत होती है, भला कौन एक स्त्रीके कहे हुए युद्धोन्मादी कठोर वाक्योंसे डरेगा?॥ १२॥

हे राजन्! तीनों लोकोंपर विजय प्राप्त करके भी आज आप स्त्रीके भयसे ग्रस्त हो गये हैं! उसकी अधीनता स्वीकार कर लेनेपर इस लोकमें अवश्य ही आप-जैसे वीरकी अपकीर्ति होगी॥ १३॥

अतएव हे महाराज! मैं अकेला ही उस चण्डिकासे युद्ध करनेके लिये जा रहा हूँ और उसे निश्चितरूपसे मार डालूँगा। अब आप भयमुक्त हो जायँ॥ १४॥

अपनी सेनाके साथ वहाँ जाकर अनेक प्रकारके शस्त्रास्त्रोंसे मैं उस दुःसह तथा प्रचण्ड पराक्रमसम्पन्न चण्डिकाका निश्चय ही वध कर दूँगा अथवा उसे नागपाशमें बाँधकर जीवित दशामें ही आपके पास ले आऊँगा, जिससे वह सदाके लिये आपकी वशवर्तिनी हो जाय। हे राजन्! अब आप मेरा पराक्रम देखिये॥ १५-१६॥

व्यासजी बोले—विरूपाक्षकी बात सुनकर दुर्धरने कहा—हे राजन्! बुद्धिमान् विरूपाक्षने यथार्थ बात कही है। प्रतिभासम्पन्न आप अब मेरी भी उत्तम बात सुन लें। अनुमानसे ऐसा प्रतीत होता है कि सुन्दर दाँतोंवाली यह स्त्री कामातुर है। अपने रूपके गर्वमें चूर इस प्रकारकी नायिकाएँ अपने प्रियको डरा-धमकाकर वशमें करनेका प्रयास करती हैं; वैसे ही यह सुन्दरी भी आपको धमकाकर अपने वशमें करना चाहती है॥ १७—१९॥

यह तो मानिनी स्त्रियोंका हाव-भाव होता है और रसका महान् ज्ञाता ही उस हाव-भावको समझ पाता है। स्वयंपर आसक्त प्रेमीके प्रति किसी स्त्रीकी ऐसी वक्रोक्ति होती ही है, जिसे कामशास्त्रका विद्वान् कोई विरला पुरुष ही समझ पाता है। जैसे उसने कहा है—'मैं तुम्हें युद्धक्षेत्रमें बाणोंसे मार डालूँगी', इस कथनमें बहुत बड़ा रहस्य निहित है, जिसे रहस्यविद् ही भलीभाँति समझ सकते हैं। मानिनी स्त्रियोंके बाण तो उनके कटाक्ष ही कहे गये हैं। हे राजन्! उसके अन्य व्यंग्यपूर्ण वचनोंको पुष्पांजलि समझना चाहिये; क्योंकि कटाक्षको छोड़कर वह अन्य प्रकारके बाण भला आपपर क्या चला सकेगी? जब ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदिमें आपपर बाण चलानेकी शक्ति नहीं है, तब वैसी स्त्रियोंमें अन्य बाण चलानेकी शक्ति कहाँ है? उसने अमात्यसे जो कहा था—'हे मन्द! मैं तुम्हारे राजाको अपने नेत्रबाणोंसे बेध डालूँगी' इस कथनका तात्पर्य उन रसज्ञानसे विहीन मन्त्रीने विपरीत ही समझ लिया था॥ २०—२४$^{१}/_{२}$॥

उसने प्रधान अमात्यसे जो यह कहा था कि 'मैं तुम्हारे स्वामीको रणमयी शय्यापर गिरा दूँगी'—इस कथनका तात्पर्य उस स्त्रीके द्वारा विपरीत रतिक्रीडाका किया जाना समझना चाहिये। साथ ही उसने जो यह बात कही थी कि 'मैं उन्हें प्राणहीन कर दूँगी'—तो [हे राजन्!] पुरुषोंमें वीर्यको ही प्राण कहा गया है, अतः उस स्त्रीके कथनका तात्पर्य आपको वीर्यहीन कर देनेसे है, इसके अतिरिक्त दूसरी बात नहीं॥ २५-२६$^{१}/_{२}$॥

हे राजन्! व्यंग्यभरे इस कथनके द्वारा वह सुन्दरी आपको पतिके रूपमें वरण करना चाहती है। रसशास्त्रके विद्वानोंको विचारपूर्वक इस कथनका अभिप्राय भलीभाँति जान लेना चाहिये। हे महाराज! ऐसा जानकर आपको उसके प्रति रसमय व्यवहार करना चाहिये। हे राजन्! साम (प्रिय वचन) और दान (प्रलोभन आदि)—ये ही दो उपाय उसे वशमें करनेके हैं, इनके अतिरिक्त कोई दूसरा उपाय नहीं है। रुष्ट अथवा मदगर्वित कोई भी मानिनी स्त्री इन उपायोंसे वशवर्तिनी हो जाती है। उसी प्रकारके मधुर वचनोंसे प्रसन्न करके मैं उसे आपके पास ले आऊँगा। हे राजन्! बहुत कहनेसे क्या लाभ! अभी वहाँ जाकर मैं उस

स्त्रीको एक दासीकी भाँति सदाके लिये आपके वशमें कर दूँगा॥ २७—३०½॥

व्यासजी बोले—दुर्धरकी यह बात सुनकर तत्त्वविद् ताम्र बोला—हे राजन्! अब आप मेरेद्वारा कही गयी बात सुनिये जो तर्कयुक्त, धर्मसे ओतप्रोत, रसमय तथा नीतिसे भरी हुई है॥ ३१-३२॥

हे मानद! यह बुद्धिसम्पन्न स्त्री न कामातुर है, न आपपर आसक्त है और न तो उसने व्यंग्यपूर्ण बातें ही कही हैं॥ ३३॥

हे महाबाहो! यह तो महान् आश्चर्य है कि एक अत्यधिक रूपवती और मनोहर स्त्री बिना किसीका आश्रय लिये अकेली ही युद्धहेतु आयी हुई है। अठारह भुजाओंसे सम्पन्न ऐसी पराक्रमशालिनी तथा सुन्दर स्त्री किसीके भी द्वारा तीनों लोकोंमें न तो देखी गयी और न तो सुनी ही गयी। उसने अनेक प्रकारके सुदृढ़ आयुध धारण कर रखे हैं। हे राजन्! इससे मैं तो यह मानता हूँ कि समयने सब कुछ हमारे विपरीत कर दिया है॥ ३४—३६॥

मैंने रातमें अपशकुनसूचक अनेक स्वप्न देखे हैं, इससे मैं तो यह समझता हूँ कि अब निश्चय ही हमारा विनाश आ चुका है॥ ३७॥

मैंने आज ही उषाकालमें स्वप्न देखा कि काले वस्त्र धारण किये एक स्त्री घरके आँगनमें रुदन कर रही है। यह विनाशसूचक स्वप्न विचारणीय है॥ ३८॥

हे राजन्! आजकल घर-घरमें भयानक पक्षी रोया करते हैं और घर-घरमें विविध प्रकारके उपद्रव होते रहते हैं। इससे मैं तो यह समझता हूँ कि इसमें निश्चितरूपसे कुछ और ही कारण है, तभी तो युद्धके लिये कृतसंकल्प यह स्त्री आपको ललकार रही है॥ ३९-४०॥

हे राजन्! यह न तो मानुषी, न गान्धर्वी और न आसुरी ही है; अपितु इसे देवताओंकी रची हुई मोहकरी माया समझना चाहिये॥ ४१॥

अतः मेरा यह दृढ़ मत है कि इस समय कायरता नहीं प्रदर्शित करनी चाहिये, अपितु हर तरहसे युद्ध करना चाहिये; जो होना होगा वह होगा। भविष्यमें विधाताके द्वारा किये जानेवाले शुभ या अशुभके बारेमें कौन जानता है? अतः विद्वान् पुरुषोंको चाहिये कि बुद्धिपूर्वक धैर्य धारण करके समयकी प्रतीक्षा करें॥ ४२-४३॥

हे नरेश! प्राणियोंका जन्म तथा मरण दैवके अधीन है। तीनों लोकोंमें कोई भी व्यक्ति इसके विपरीत कुछ भी करनेमें समर्थ नहीं है॥ ४४॥

महिष बोला—हे महाभाग! हे ताम्र! युद्धके लिये दृढ़ निश्चय करके तुम जाओ और धर्मपूर्वक उस मानिनी स्त्रीको जीतकर यहाँ ले आओ॥ ४५॥

यदि संग्राममें वह स्त्री तुम्हारे अधीन न हो सके, तब तुम उसे मार डालना; नहीं तो जहाँतक सम्भव हो, प्रयत्नपूर्वक उसका सम्मान करना॥ ४६॥

हे सर्वज्ञ! तुम पराक्रमी तथा कामशास्त्रके पूर्ण विद्वान् हो, अतः किसी भी युक्तिसे उस सुन्दरीपर विजय प्राप्त करना॥ ४७॥

हे वीर! हे महाबाहो! विशाल सेनाके साथ तुम वहाँ शीघ्रतापूर्वक जाओ और वहाँ पहुँचकर बार-बार चिन्तन-मनन करके इसका पता लगाओ कि यह किसलिये आयी हुई है? तुम यह भी ज्ञात करना कि वह कामभाव अथवा वैरभाव—किस भावसे आयी है और वह किसकी माया है?॥ ४८-४९॥

आरम्भमें इन बातोंकी जानकारी कर लेनेपर तुम यह पता करना कि वह क्या करना चाहती है? तत्पश्चात् उसकी सबलता तथा निर्बलताको भलीभाँति समझकर ही उसके साथ तुम युद्ध करना॥ ५०॥

तुम उसके समक्ष न तो कायरता प्रदर्शित करना और न बिलकुल निर्दयताका ही व्यवहार करना। उसकी जैसी मनोदशा देखना, उसीके अनुसार उससे बर्ताव करना॥ ५१॥

व्यासजी बोले—महिषासुरकी यह बात सुनकर कालके वशीभूत वह ताम्र राजा महिषको प्रणाम करके सेनाके साथ चल पड़ा। चलते समय मार्गमें यमका द्वार दिखलानेवाले अत्यन्त भयानक अपशकुनोंको देख-देखकर

वह बहुत विस्मित तथा भयभीत होता था॥ ५२-५३॥

देवीके समीप पहुँचकर उसने देखा कि वे सिंहपर सवार हैं, वे विविध प्रकारके आयुधोंसे विभूषित हैं तथा सभी देवता उनकी स्तुति कर रहे हैं। तदनन्तर उस ताम्रने विनम्र भावसे खड़े होकर सामनीतिका आश्रय लेकर मधुर वाणीमें शान्तिपूर्वक देवीसे यह वचन कहा—हे देवि! दैत्योंके अधिपति तथा विशाल सींगोंवाले राजा महिष आपके रूप तथा गुणपर मोहित होकर आपसे विवाह करनेकी अभिलाषा रखते हैं॥ ५४—५६॥

विशाल नयनों तथा सुकुमार अंगोंवाली हे सुन्दरि! देवताओंके लिये भी अजेय उन महिषसे आप प्रेम कीजिये और उन्हें पतिरूपमें प्राप्त करके अद्भुत नन्दनवनमें विहार कीजिये॥ ५७॥

सभी प्रकारके सुखोंके निधानस्वरूप इस सर्वांगसुन्दर शरीरको प्राप्त करके हर तरह सुख भोगना चाहिये और दुःखका तिरस्कार करना चाहिये, यही बात सर्वमान्य है॥ ५८॥

हे करभोरु! आपने अपने हाथोंमें ये आयुध किसलिये धारण कर रखे हैं? कमलके समान कोमल आपके ये हाथ तो पुष्पोंके गेंद धारण करनेयोग्य हैं॥ ५९॥

भौंहरूपी धनुषके रहते आपको यह धनुष धारण करनेसे क्या प्रयोजन है और जब आपके पास ये कटाक्षरूपी बाण हैं तो फिर व्यर्थ बाणोंको धारण करनेसे क्या लाभ?॥ ६०॥

इस संसारमें युद्ध दुःखदायी होता है, अतः ज्ञानीजनको युद्ध नहीं करना चाहिये। राज्य तथा धनके लोलुप लोग ही परस्पर युद्ध करते हैं॥ ६१॥

पुष्पोंसे भी युद्ध नहीं करना चाहिये, फिर तीक्ष्ण बाणोंसे युद्धकी बात ही क्या? अपने अंगोंका छिद जाना भला किसकी प्रसन्नताका कारण बन सकता है? अतएव हे तन्वंगि! आप कृपा करें और देवताओं तथा दानवोंके द्वारा पूजित मेरे स्वामी महिषको पतिके रूपमें स्वीकार कर लें॥ ६२-६३॥

वे आपके सभी वांछित मनोरथ पूर्ण कर देंगे और उन्हें पतिरूपमें पाकर आप सदाके लिये उनकी पटरानी बन जायँगी; इसमें सन्देह नहीं है॥ ६४॥

हे देवि! आप मेरी बात मान लें, इससे आपको उत्तम सुख मिलेगा। कष्ट पाकर भी संग्राममें विजयका सन्देह बना रहता है, इसमें संशय नहीं है॥ ६५॥

हे सुन्दरि! आप राजनीति भलीभाँति जानती हैं, अतः हजारों-हजारों वर्षोंतक राज्यसुखका भोग करें॥ ६६॥

आपको तेजस्वी पुत्र प्राप्त होगा; वह भी राजा बनेगा। इस प्रकार आप युवावस्थामें क्रीड़ासुख प्राप्त करके वृद्धावस्थामें आनन्द प्राप्त करेंगी॥ ६७॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत पंचम स्कन्धका 'ताम्रकृत देवीके प्रति विस्रंसनवचनवर्णन' नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ११॥

बारहवाँ अध्याय

देवीके अट्टहाससे भयभीत होकर ताम्रका महिषासुरके पास भाग आना, महिषासुरका अपने मन्त्रियोंके साथ पुनः विचार-विमर्श तथा दुर्धर, दुर्मुख और बाष्कलकी गर्वोक्ति

व्यासजी बोले—उस ताम्रकी वह बात सुनकर भगवती जगदम्बिका मेघके समान गम्भीर वाणीमें उससे हँसते हुए कहने लगीं॥ १॥

देवी बोलीं—हे ताम्र! तुम अपने स्वामी महिषके पास जाओ और मरनेको उद्यत, मन्दबुद्धि, अति कामातुर तथा ज्ञानशून्य उस मूर्खसे कहो कि जिस प्रकार तुम्हारी माता महिषी घास खानेवाली, प्रौढा, विशाल सींगोंवाली, लम्बी पूँछवाली तथा महान् उदरवाली है; वैसी मैं नहीं हूँ॥ २-३॥

मैं न देवराज इन्द्रको, न विष्णुको, न शिवको, न कुबेरको, न वरुणको, न ब्रह्माको और न तो अग्निदेवको ही चाहती हूँ। जब मैंने इन देवताओंकी उपेक्षा कर दी, तब

भला मैं एक पशुका उसके किस गुणसे प्रसन्न होकर वरण करूँगी; इससे तो संसारमें मेरी निन्दा ही होगी!॥ ४-५॥

मैं पतिका वरण करनेवाली साधारण स्त्री नहीं हूँ। मेरे पति तो साक्षात् प्रभु हैं। वे सब कुछ करनेवाले, सबके साक्षी, कुछ भी न करनेवाले, इच्छारहित, सदा रहनेवाले, निर्गुण, मोहरहित, अनन्त, निरालम्ब, आश्रयरहित, सर्वज्ञ, सर्वव्यापी, साक्षी, पूर्ण, पूर्ण आशयवाले, कल्याणकारी, सबको आश्रय देनेमें समर्थ, शान्त, सबको देखनेवाले तथा सबकी भावनाओंको जाननेवाले हैं। उन प्रभुको छोड़कर मैं मूर्ख महिषको अपना पति क्यों बनाना चाहूँगी?॥ ६—८॥

[उससे कह देना—] अब तुम उठकर युद्ध करो। मैं तुम्हें या तो यमका वाहन बना दूँगी अथवा मनुष्योंके लिये पानी ढोनेवाला महिष बना दूँगी॥ ९॥

अरे पापी! यदि जीवित रहनेकी तुम्हारी इच्छा हो तो शीघ्र ही समस्त दानवोंको साथ लेकर पाताललोक चले जाओ, अन्यथा मैं युद्धमें मार डालूँगी॥ १०॥

इस संसारमें समान कुल तथा आचारवालोंका परस्पर सम्बन्ध सुखदायक होता है, इसके विपरीत बिना सोचे-समझे यदि सम्बन्ध हो जाता है, तो वह बड़ा दु:खदायी होता है॥ ११॥

[अरे महिष!] तुम मूर्ख हो जो यह कहते हो कि 'हे भामिनि! मुझे पतिरूपमें स्वीकार कर लो।' कहाँ मैं और कहाँ तुम सींग धारण करनेवाले महिष! हम दोनोंका यह कैसा सम्बन्ध! अत: अब तुम [पाताललोक] चले जाओ अथवा मुझसे युद्ध करो, मैं तुम्हें बन्धु-बान्धवोंसहित निश्चय ही मार डालूँगी, नहीं तो देवताओंका यज्ञभाग दे दो और देवलोक छोड़कर सुखी हो जाओ॥ १२-१३॥

व्यासजी बोले—ऐसा कहकर देवीने बड़े जोरसे अद्भुत गर्जन किया। वह गर्जन प्रलयकालीन भीषण ध्वनिके समान तथा दैत्योंको भयभीत कर देनेवाला था। उस नादसे पृथ्वी काँप उठी और पर्वत डगमगाने लगे तथा दैत्योंकी पत्नियोंके गर्भ गिर गये॥ १४-१५॥

उस शब्दको सुनकर ताम्रके मनमें भय व्याप्त हो गया और तब वह वहाँसे भागकर महिषासुरके पास जा पहुँचा॥ १६॥

हे राजन्! उसके नगरमें जो भी दैत्य थे, वे सब बड़े चिन्तित हुए। वे उस ध्वनिके प्रभावसे बधिर हो गये और वहाँसे भागने लगे॥ १७॥

उसी समय देवीका सिंह भी क्रोधपूर्वक अपने अयालों (गर्दनके बालों)-को फैलाकर बड़े जोरसे दहाड़ा। उस गर्जनसे सभी दैत्य बहुत डर गये॥ १८॥

ताम्रको वापस आया हुआ देखकर महिषासुरको बहुत विस्मय हुआ। वह उसी समय मन्त्रियोंके साथ विचार-विमर्श करने लगा कि अब आगे क्या किया जाय?॥ १९॥

[उसने कहा—] हे श्रेष्ठ दानवो! हमें आत्मरक्षार्थ किलेके भीतर ही रहना चाहिये अथवा बाहर निकलकर युद्ध करना चाहिये अथवा भाग जानेमें ही हमारा कल्याण है?॥ २०॥

आपलोग बुद्धिमान्, अजेय तथा सभी शास्त्रोंके विद्वान् हैं। अत: मेरे कार्यकी सिद्धिके लिये आपलोग अत्यन्त गुप्त मन्त्रणा करें; क्योंकि मन्त्रणाको ही राज्यका मूल कहा गया है। यदि मन्त्रणा सुरक्षित (गुप्त) रहती है, तभी राज्यकी सुरक्षा सम्भव है। अतएव राजाको चाहिये कि बुद्धिमान् तथा सदाचारी मन्त्रियोंके साथ सदा गुप्त मन्त्रणा करे॥ २१-२२॥

मन्त्रणाके खुल जानेपर राज्य तथा राजा—इन दोनोंका विनाश हो जाता है। अत: अपने अभ्युदयकी इच्छा करनेवाले राजाको चाहिये कि भेद खुल जानेके भयसे सदा गुप्त मन्त्रणा करे॥ २३॥

अत: इस समय आप मन्त्रिगण नीति-निर्णयपर सम्यक् विचार करके देश-कालके अनुसार मुझे सार्थक तथा हितकर परामर्श प्रदान करें॥ २४॥

देवताओंद्वारा निर्मित जो यह अत्यन्त बलवती स्त्री बिना किसी सहायताके अकेली ही यहाँ आयी हुई है, उसके रहस्यपर आपलोग विचार करें॥ २५॥

वह बाला हमें युद्धके लिये चुनौती दे रही है, इससे बढ़कर आश्चर्य और क्या हो सकता है? इसमें मेरी विजय होगी अथवा पराजय—इसे तीनों लोकोंमें भला कौन जानता है?॥ २६॥

न तो बहुत संख्यावालोंकी ही सदा विजय होती है और न तो अकेला रहते हुए भी किसीकी पराजय ही होती है। युद्धमें जय तथा पराजयको सदा दैवके अधीन जानना

चाहिये॥ २७॥

पुरुषार्थवादी लोग कहते हैं कि दैव क्या है, उसे किसने देखा है; इसीलिये तो बुद्धिमान् उसे 'अदृष्ट' कहते हैं। उसके होनेमें क्या प्रमाण है? वह केवल कायरोंको आशा बँधानेका साधन है, सामर्थ्यवान् लोग उसे कहीं नहीं देखते। उद्यम और दैव—ये दोनों ही वीर तथा कायर लोगोंकी मान्यताएँ हैं। अत: बुद्धिपूर्वक सारी बातोंपर विचार करके हमें कर्तव्यका निश्चय करना चाहिये॥ २८—३०॥

व्यासजी बोले—राजा महिषकी यह सारगर्भित बात सुनकर महायशस्वी बिडालाख्यने हाथ जोड़कर अपने महाराज महिषासुरसे यह वचन कहा—हे राजन्! विशाल नयनोंवाली इस स्त्रीके विषयमें सावधानीपूर्वक बार-बार यह पता लगाया जाना चाहिये कि यह यहाँ किसलिये और कहाँसे आयी हुई है तथा यह किसकी पत्नी है?॥ ३१-३२॥

[मैं तो यह समझता हूँ कि] 'स्त्रीके द्वारा ही आपकी मृत्यु होगी'—ऐसा भलीभाँति जानकर सभी देवताओंने अपने तेजसे उस कमलनयनी स्त्रीका निर्माण करके यहाँ भेजा है॥ ३३॥

युद्ध देखनेकी इच्छावाले वे देवता भी आकाशमें छिपकर विद्यमान हैं और अवसर आनेपर युद्धकी इच्छावाले देवता भी उसकी सहायता करेंगे॥ ३४॥

उस स्त्रीको आगे करके वे विष्णु आदि प्रधान देवता युद्धमें हम सबका वध कर देंगे और वह स्त्री भी आपको मार डालेगी॥ ३५॥

हे नरेश! मैंने तो यही समझा है कि उन देवताओंका यही अभीष्ट है, किंतु मुझे भविष्यमें होनेवाले परिणामका बिलकुल ज्ञान नहीं है। हे प्रभो! मैं इस समय यह भी नहीं कह सकता कि आप युद्ध न करें। हे महाराज! देवताओंके द्वारा निर्मित इस कार्यमें कुछ भी निर्णय लेनेमें आप ही प्रमाण हैं॥ ३६-३७॥

हम अनुयायियोंका तो यही धर्म है कि अवसर आनेपर आपके लिये सदा मरनेको तैयार रहें अथवा आपके साथ आनन्दपूर्वक रहें॥ ३८॥

हे राजन्! अद्भुत बात तो यह है कि बलाभिमानी और सेनासम्पन्न हमलोगोंको एक स्त्री युद्धके लिये चुनौती दे रही है॥ ३९॥

दुर्मुख बोला—हे राजन्! मैं यह पूर्णरूपसे जानता हूँ कि आज युद्धमें विजय निश्चितरूपसे हमलोगोंकी होगी। हमलोगोंको पलायन नहीं करना चाहिये; क्योंकि युद्धसे भाग जाना पुरुषोंकी कीर्तिको नष्ट करनेवाला होता है॥ ४०॥

इन्द्र आदि देवताओंके साथ भी युद्धमें जब हमलोगोंने यह निन्दनीय कार्य नहीं किया था, तब उस अकेली स्त्रीको सामने पाकर उससे डरकर भला कौन पलायन करेगा?॥ ४१॥

अत: अब हमें युद्ध आरम्भ कर देना चाहिये, युद्धमें हमारी मृत्यु हो अथवा विजय। जो होना होगा वह तो होगा ही। यथार्थ ज्ञानवालेको इस विषयमें चिन्ताकी क्या आवश्यकता?॥ ४२॥

रणभूमिमें मरनेपर कीर्ति मिलेगी और विजयी होनेपर जीवनमें सुख मिलेगा। इन दोनों ही बातोंको मनमें स्थिर करके हमें आज ही युद्ध छेड़ देना चाहिये॥ ४३॥

युद्धसे पलायन कर जानेसे हमारा यश नष्ट हो जायगा। आयुके समाप्त हो जानेपर मृत्यु होनी तो निश्चित ही है। अतएव जीवन तथा मरणके लिये व्यर्थ चिन्ता नहीं करनी चाहिये॥ ४४॥

व्यासजी बोले—दुर्मुखका विचार सुनकर बात करनेमें परम प्रवीण बाष्कल हाथ जोड़कर विनम्रतापूर्वक राजा महिषासुरसे यह वचन कहने लगा॥ ४५॥

बाष्कल बोला—हे राजन्! कायर लोगोंके लिये प्रिय इस [पलायन] कार्यके विषयमें आपको विचार नहीं करना चाहिये। मैं उस चंचल नेत्रोंवाली चण्डीको अकेला ही मार डालूँगा॥ ४६॥

हमें सर्वदा उत्साहसे सम्पन्न रहना चाहिये; क्योंकि उत्साह ही वीररसका स्थायीभाव है। हे नृपश्रेष्ठ! भयानक रस तो वीररसका वैरी है॥ ४७॥

अतएव हे राजन्! भयका त्याग करके मैं अद्भुत युद्ध करूँगा। हे नरेन्द्र! मैं उस चण्डिकाको मारकर उसे यमपुरी पहुँचा दूँगा॥ ४८॥

मैं यम, इन्द्र, कुबेर, वरुण, वायु, अग्नि, विष्णु,

शिव, चन्द्रमा और सूर्यसे भी नहीं डरता, तब उस अकेली तथा मदोन्मत्त स्त्रीसे भला क्यों डरूँगा? पत्थरपर सान धरे हुए तीक्ष्ण बाणोंसे मैं उस स्त्रीका वध कर दूँगा। आज आप मेरा बाहुबल तो देखिये और इस स्त्रीके साथ युद्ध करनेके लिये आपको संग्राममें जानेकी आवश्यकता नहीं है; आप केवल सुखपूर्वक विहार कीजिये॥ ४९—५१॥

व्यासजी बोले—दैत्यराज महिषसे मदोन्मत्त बाष्कलके ऐसा कहनेपर वहाँ उपस्थित दुर्धर अपने राजा महिषासुरको प्रणाम करके कहने लगा॥ ५२॥

दुर्धर बोला—हे महाराज महिष! रहस्यमय ढंगसे आयी हुई उस देवनिर्मित अठारह भुजाओंवाली तथा मनोहर देवीपर मैं विजय प्राप्त करूँगा॥ ५३॥

हे राजन्! आपको भयभीत करनेके लिये ही देवताओंने इस मायाकी रचना की है। यह एक विभीषिकामात्र है—ऐसा जानकर आप अपने मनकी व्याकुलता दूर कर दीजिये॥ ५४॥

हे राजन्! यह सब तो राजनीतिकी बात हुई, अब आप मन्त्रियोंका कर्तव्य सुनिये। हे दानवेन्द्र! तीन प्रकारके मन्त्री संसारमें होते हैं। उनमें कुछ सात्त्विक, कुछ राजस तथा अन्य तामस होते हैं। सात्त्विक मन्त्री अपनी पूरी शक्तिसे अपने स्वामीका कार्य सिद्ध करते हैं। वे अपने स्वामीके कार्यमें बिना कोई अवरोध उत्पन्न किये अपना कार्य करते हैं। ऐसे मन्त्री एकाग्रचित्त, धर्मपरायण तथा मन्त्रशास्त्रों (मन्त्रणासे सम्बन्धित शास्त्र)-के विद्वान् होते हैं॥ ५५—५७॥

राजस प्रकृतिके मन्त्री चंचल चित्तवाले होते हैं और वे सदा अपना कार्य साधनेमें लगे रहते हैं। जब कभी उनके मनमें आ जाता है, तब वे अपने स्वामीका भी काम कर देते हैं॥ ५८॥

तामस प्रकृतिके मन्त्री लोभपरायण होते हैं और वे सदैव अपना कार्य सिद्ध करनेमें संलग्न रहते हैं। वे अपने स्वामीका कार्य विनष्ट करके भी अपना कार्य सिद्ध करते हैं। वे समय आनेपर परपक्षके लोगोंसे प्रलोभन पाकर अपने स्वामीका भेद खोल देते हैं और घरमें बैठे-बैठे अपनी कमजोरी शत्रुपक्षके लोगोंको बता देते हैं। ऐसे मन्त्री म्यानमें छिपी तलवारकी भाँति अपने स्वामीके कार्यमें बाधा डालते हैं और संग्रामकी स्थिति उत्पन्न होनेपर सदा उन्हें डराते रहते हैं॥ ५९—६१॥

हे राजन्! उन मन्त्रियोंका कभी विश्वास नहीं करना चाहिये; क्योंकि उनका विश्वास करनेपर काम बिगड़ जाता है और गुप्त भेद भी खुल जाता है। लोभी, तमोगुणी, पापी, बुद्धिहीन, शठ तथा खल मन्त्रियोंका विश्वास कर लेनेपर वे क्या-क्या अनर्थ नहीं कर डालते?॥ ६२-६३॥

अतएव हे नृपश्रेष्ठ! मैं स्वयं युद्धभूमिमें जाकर आपका कार्य सम्पन्न करूँगा। आप किसी भी तरहकी चिन्ता न करें। मैं उस दुराचारिणी स्त्रीको पकड़कर आपके पास शीघ्र ले आऊँगा। आप मेरा बल तथा धैर्य देखें। मैं अपनी पूरी शक्तिसे अपने स्वामीका कार्य सिद्ध करूँगा॥ ६४-६५॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत पंचम स्कन्धका 'देवीकी पराजयके लिये दुर्धरप्रबोधवचन' नामक बारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १२॥

तेरहवाँ अध्याय

बाष्कल और दुर्मुखका रणभूमिमें आना, देवीसे उनका वार्तालाप और युद्ध तथा देवीद्वारा उनका वध

व्यासजी बोले—हे राजन्! ऐसा कहकर अभिमानसे चूर अंगोंवाले तथा सभी शस्त्रास्त्रोंके विशारद वे दोनों महाबाहु दैत्य बाष्कल तथा दुर्मुख समरांगणकी ओर चल पड़े॥ १॥

इसके बाद वे दोनों मदोन्मत्त दानव समरभूमिमें पहुँचकर मेघ-गर्जनके समान गम्भीर वाणीमें देवीसे कहने लगे॥ २॥

हे देवि! हे सुन्दरि! जिन महान् महिषासुरने सभी

देवताओंपर विजय प्राप्त कर ली है; सभी दैत्योंके अधिष्ठाता उन नरेश महिषासुरका आप वरण कर लें ॥ ३ ॥

वे सभी लक्षणोंसे सम्पन्न मनुष्य-रूप धारण करके तथा दिव्य आभूषणोंसे अलंकृत होकर एकान्तमें आपसे मिलनेके लिये आयेंगे ॥ ४ ॥

हे सुन्दर मुसकानवाली देवि! [उन्हें पतिके रूपमें स्वीकार कर लेनेपर] आपको तीनों लोकोंका वैभव निश्चय ही प्राप्त हो जायगा। अतः हे कान्ते! उन महिषासुरके प्रति आप अपने मनमें परम प्रेमभाव रखिये ॥ ५ ॥

हे कोकिलभाषिणि! महान् पराक्रमी महिषासुरको अपना पति बनाकर आप स्त्रियोंके लिये अभीष्ट अद्भुत सांसारिक सुख प्राप्त करेंगी ॥ ६ ॥

देवी बोलीं—अरे दुष्ट! क्या तुम यह समझ रहे हो कि यह कोई काममोहित, बुद्धिहीन तथा बलरहित नारी है? मैं उस मूर्ख महिषासुरकी सेवा कैसे कर सकती हूँ? ॥ ७ ॥

कुलीन स्त्रियाँ कुल, चरित्र तथा गुणमें समानता रखनेवाले एवं रूप, चतुरता, बुद्धि, व्यवहार, क्षमा आदिसे विशेषरूपसे सम्पन्न पुरुषको ही स्वीकार करती हैं ॥ ८ ॥

ऐसी कौन देवरूपिणी नारी होगी, जो कामातुर होकर पशुरूपधारी तथा पशुओंमें भी अधम महिषको अपना पति बनाना चाहेगी? ॥ ९ ॥

हे बाष्कल और दुर्मुख! तुम लोग तत्काल अपने राजा महिषासुरके पास जाओ और हाथीके समान विशाल शरीरवाले तथा श्रृङ्गधारी उस दानवसे मेरा सन्देश कह दो—'तुम पाताललोक चले जाओ अथवा यहाँ आकर मेरे साथ युद्ध करो। संग्राम होनेपर ही इन्द्र निर्भय हो सकते हैं—यह निश्चित है। मैं तुम्हारा वध करके ही जाऊँगी, बिना तुम्हें मारे मैं नहीं जा सकती। हे महामूर्ख! यह समझकर अब तुम जो चाहते हो वैसा करो। हे चतुष्पाद! बिना मुझको पराजित किये पृथ्वीके किसी भी भागमें, अन्तरिक्ष या पर्वतकी गुफामें कहीं भी अब तुम्हें शरण नहीं मिलेगी' ॥ १०—१३ ॥

व्यासजी बोले—देवीके ऐसा कहनेपर क्रोधसे तमतमाये नेत्रोंवाले वे दोनों दैत्य धनुष-बाण लेकर युद्ध करनेके लिये तैयार हो गये ॥ १४ ॥

वे भगवती जगदम्बा भी गम्भीर गर्जना करके निर्भीक भावसे विराजमान थीं। हे कुरुनन्दन! वे दोनों दैत्य घनघोर बाण-वृष्टि करने लगे ॥ १५ ॥

भगवती जगदम्बा भी देवताओंकी कार्य-सिद्धिके निमित्त अत्यन्त मधुर नाद करती हुई उन दोनों दानवोंपर बाण-समूह बरसाने लगीं ॥ १६ ॥

उन दोनोंमेंसे बाष्कल शीघ्रतापूर्वक समरभूमिमें देवीके सामने आ गया। उस समय दुर्मुख केवल दर्शक बनकर देवीकी ओर मुख करके खड़ा रहा ॥ १७ ॥

अब भगवती तथा बाष्कलके बीच बाणों, तलवार तथा परिघके प्रहारसे भीषण युद्ध होने लगा, जो उत्साहहीन चित्तवाले लोगोंके लिये भयदायक था ॥ १८ ॥

तत्पश्चात् युद्धके लिये उन्मत्त उस बाष्कलको देखकर जगदम्बिका कुपित हो गयीं और उन्होंने पत्थरकी सानपर चढ़ाकर तीखे बनाये गये तथा कानोंतक खींचे गये पाँच बाणोंसे उसपर प्रहार किया ॥ १९ ॥

उस दानवने भी अपने तीक्ष्ण बाणोंसे देवीके बाणोंको काट दिया और पुनः सिंहपर विराजमान भगवतीपर सात बाणोंसे प्रहार किया ॥ २० ॥

देवी भगवतीने उसके बाणोंको काटकर पानी चढ़ाकर तीक्ष्ण किये हुए दस बाणोंसे उस दुष्टपर प्रहार किया और वे बार-बार जोर-जोरसे हँसने लगीं ॥ २१ ॥

जगदम्बाने अपने अर्धचन्द्राकार बाणसे उसका धनुष काट डाला। तब बाष्कल भी गदा लेकर देवीको मारनेके लिये उनकी ओर दौड़ा ॥ २२ ॥

अभिमानमें चूर उस दानवको हाथमें गदा लिये आता हुआ देखकर देवी चण्डिकाने अपनी गदाके प्रहारसे उसे धराशायी कर दिया ॥ २३ ॥

बाष्कल मुहूर्तभर पृथ्वीपर पड़ा रहा, इसके बाद वह फिर उठ खड़ा हुआ और प्रचण्ड, पराक्रमी उस वीरने भी भगवतीपर गदा चला दी ॥ २४ ॥

उस दैत्यको सामने आते देखकर भगवतीने कुपित होकर बाष्कलके वक्षःस्थलपर त्रिशूलसे प्रहार किया, जिससे वह गिर पड़ा और मर गया ॥ २५ ॥

बाष्कलके गिरते ही उस दुरात्माकी सेना भाग गयी और आकाशमण्डलमें विद्यमान देवता प्रसन्नतापूर्वक भगवतीकी जय-जयकार करने लगे॥ २६॥

उस दैत्यके मार दिये जानेपर महाबली दुर्मुख क्रोधसे आँखें लाल किये रणभूमिमें देवीके समक्ष आया॥ २७॥

उस समय वह वैभवशाली दैत्य 'अरी अबले! ठहरो, ठहरो'—ऐसा बार-बार कहते हुए धनुष-बाण धारण करके कवच पहने हुए रथपर सवार था॥ २८॥

उस दानवको अपनी ओर आते देखकर देवीने शंखध्वनि की और उसे कुपित करती हुई वे अपने धनुषकी टंकार करने लगीं॥ २९॥

दुर्मुख भी बड़ी तेजीसे सर्पके समान विषैले तीक्ष्ण बाण छोड़ने लगा। तब महामायाने अपने बाणोंसे उन बाणोंको काट डाला और वे गर्जन करने लगीं॥ ३०॥

हे राजन्! बाण, शक्ति, गदा, मुसल और तोमर आदिके प्रहारसे उन दोनोंमें परस्पर भयंकर युद्ध होने लगा॥ ३१॥

उस समय रणभूमिमें रुधिरकी नदी बह चली। उसके तटपर गिरे हुए मस्तक इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे, मानो वैतरणी पार करनेके लिये तैरना सीखनेवाले यमदूतोंके द्वारा प्रसन्नतापूर्वक तुम्बीफल लाकर रख दिये गये हों॥ ३२-३३॥

भूमिपर कटकर गिरे शवों तथा उन्हें खानेवाले भेड़िये आदि जन्तुओंसे वह रणभूमि अत्यन्त भयंकर तथा दुर्गम हो गयी थी॥ ३४॥

सियार, कुत्ते, कौए, कंक, अयोमुख नामक पक्षी, गिद्ध और बाज उन दुष्ट दानवोंके शरीरको [नोच-नोचकर] खा रहे थे॥ ३५॥

मृतकोंके शरीरके संसर्गसे दुर्गन्धित हवा चल रही थी और मांसाहारी पक्षियोंकी किलकिला ध्वनि हो रही थी॥ ३६॥

तब कालसे मोहित वह दुरात्मा दुर्मुख अत्यन्त क्रुद्ध हो उठा और गर्वके साथ अपनी सुन्दर भुजा उठाकर देवीसे कहने लगा— ॥ ३७॥

हे चण्डिके! हे मूर्ख बाले! भाग जाओ, नहीं तो मैं तुम्हें अभी मार डालूँगा अथवा हे वामोरु! मदसे मत्त महिषासुरको स्वीकार कर लो॥ ३८॥

देवी बोलीं—अब तुम्हारी मृत्यु समीप है, तभी तुम मोहित होकर ऐसा प्रलाप कर रहे हो। अभी मैं तुम्हें भी उसी प्रकार मार डालूँगी, जैसे मैंने इस बाष्कलको मारा है॥ ३९॥

हे मूर्ख! भाग जाओ और यदि तुम्हें मृत्यु अच्छी लगती हो तो रुके रहे। तुम्हें मारनेके बाद मैं मूर्ख महिषासुरका भी संहार कर दूँगी॥ ४०॥

देवीका वह वचन सुनकर मरणोन्मुख दुर्मुख भगवती चण्डिकाके ऊपर भीषण बाण-वृष्टि करने लगा॥ ४१॥

भगवतीने भी कुपित होकर अपने तीक्ष्ण बाणोंसे उस बाण-वृष्टिको तत्काल व्यर्थ करके उस दैत्यपर उसी प्रकार आघात किया, जैसे इन्द्रने वृत्रासुरपर किया था॥ ४२॥

अब उन दोनोंमें बड़ा भीषण युद्ध आरम्भ हो गया, जो कायरोंके लिये भयदायक तथा वीरोंके लिये उत्साहवर्धक था॥ ४३॥

देवीने बड़ी फुर्तीके साथ उसके हाथमें स्थित धनुषको काट डाला और उसी तरह अपने पाँच बाणोंसे उसके उत्तम रथको छिन्न-भिन्न कर दिया॥ ४४॥

रथके नष्ट हो जानेपर महाबाहु दुर्मुख अपनी भयानक गदा लेकर पैदल ही भगवती चण्डिकाकी ओर दौड़ा॥ ४५॥

[उनके पास पहुँचकर] उस महाबली दैत्यने सिंहके मस्तकपर गदासे प्रहार कर दिया, किंतु महाशक्तिशाली सिंह गदासे मारे जानेपर भी अपने स्थानसे विचलित नहीं हुआ॥ ४६॥

उसी समय जगदम्बाने हाथमें गदा लिये हुए उस दुर्मुखको सम्मुख उपस्थित देखकर अपनी तीक्ष्ण धारवाली तलवारसे उसके किरीटयुक्त मस्तकको काट दिया॥ ४७॥

मस्तक कट जानेपर दुर्मुख जमीनपर गिर पड़ा और मर गया। तब देवता परम प्रसन्न होकर देवीकी जय-जयकार करने लगे॥ ४८॥

दुर्मुखके मर जानेपर आकाशमें विद्यमान देवता

भगवतीकी स्तुति करने लगे। उनपर पुष्प बरसाने लगे तथा उनकी जयकार करने लगे॥ ४९॥

रणभूमिमें उस महान् दानवको मरा हुआ देखकर ऋषि, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर और किन्नर आनन्दित हो उठे॥ ५०॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत पंचम स्कन्धका 'महिषासुरके सेनापति बाष्कल एवं दुर्मुखके वधका वर्णन' नामक तेरहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १३॥

चौदहवाँ अध्याय

चिक्षुर और ताम्रका रणभूमिमें आना, देवीसे उनका वार्तालाप और युद्ध तथा देवीद्वारा उनका वध

व्यासजी बोले—हे राजन्! दुर्मुख मार दिया गया—यह सुनकर महिषासुर क्रोधसे मूर्च्छित हो गया और दानवोंसे बार-बार कहने लगा—'यह क्या हो गया?' दुर्मुख और बाष्कल तो बड़े शूर-वीर दानव थे। एक सुकुमार नारीने उन्हें रणभूमिमें मार डाला, यह तो महान् आश्चर्य है! दैवका विधान तो देखो॥ १-२॥

समय बड़ा बलवान् होता है, वही परतन्त्र मनुष्योंके पुण्य तथा पापके अनुसार सदा उनके सुखों-दु:खोंका निर्माण करता है॥ ३॥

ये दोनों ही श्रेष्ठ दानव मार डाले गये हैं, अब इसके बाद क्या करना चाहिये? इस विषम स्थितिमें सब लोग विचार करके जो उचित हो, बतायें॥ ४॥

व्यासजी बोले—हे राजेन्द्र! इस प्रकार महाशक्तिशाली महिषासुरके कहनेपर उसके महारथी सेनाध्यक्ष चिक्षुरने कहा—हे राजन्! स्त्रीको मार डालनेमें चिन्ता किस बातकी! मैं उसे मार डालूँगा॥ ५$^{1}/_{2}$॥

ऐसा कहकर वह चिक्षुराख्य रथपर बैठकर दूसरे महाबली ताम्रको अपना अंगरक्षक बनाकर सेनाकी तुमुल ध्वनिसे आकाश एवं दिशाओंको निनादित करता हुआ युद्धके लिये चल पड़ा॥ ६-७॥

उसे आता हुआ देखकर कल्याणमयी भगवतीने अद्भुत शंखध्वनि, घण्टानाद तथा धनुषकी टंकार की। उस ध्वनिसे सभी राक्षस भयभीत हो गये। 'यह क्या'—ऐसा कहते हुए वे भयसे काँपने लगे तथा भाग खड़े हुए॥ ८-९॥

उन्हें भागते हुए देखकर चिक्षुराख्यने अत्यन्त क्रोधित होकर कहा—तुम्हारे सामने कौन-सा भय आ गया? मैं इस मदोन्मत्त नारीको आज ही बाणोंद्वारा मार डालूँगा। हे दैत्यो! तुम लोग भय छोड़कर लड़ाईके मोर्चेपर डटे रहो॥ १०-११॥

ऐसा कहकर उस पराक्रमी दैत्यश्रेष्ठ चिक्षुरने हाथमें धनुष उठा लिया और युद्धभूमिमें आकर वह निश्चिन्ततापूर्वक भगवतीसे कहने लगा—हे विशालाक्षि! अन्य साधारण मनुष्योंको भयभीत करती हुई तुम क्यों गरज रही हो? तुम्हारा यह व्यर्थ गर्जन सुनकर मैं भयभीत नहीं हो सकता॥ १२-१३॥

हे सुलोचने! स्त्रीका वध करना पाप है तथा इससे जगत्में अपकीर्ति होती है—यह जानकर मेरा चित्त तुम्हें मारनेसे विचलित हो रहा है। हे सुन्दरि! तुम-जैसी स्त्रियोंके कटाक्षों तथा हाव-भावोंसे समरका कार्य सम्पन्न हो जाता है; कभी कहीं भी शस्त्रोंद्वारा स्त्रीका युद्ध नहीं हुआ है॥ १४-१५॥

हे सुन्दरि! तुम्हें तो पुष्पसे भी युद्ध नहीं करना चाहिये, तब फिर तीक्ष्ण बाणोंसे युद्धकी बात ही क्या; क्योंकि तुम्हारी-जैसी सुन्दरियोंके शरीरमें मालतीकी पंखुड़ी भी पीड़ा उत्पन्न कर सकती है॥ १६॥

इस संसारमें क्षात्रधर्मानुयायी लोगोंके जन्मको धिक्कार है; क्योंकि वे बड़े प्यारसे पाले गये अपने शरीरको भी तीक्ष्ण बाणोंसे छिदवाते हैं!॥ १७॥

तेलकी मालिशसे, फूलोंकी हवासे तथा स्वादिष्ट भोजन आदिसे पोषित इस प्रिय शरीर को शत्रुओंके बाणोंसे बिंधवाते हैं। तलवारकी धारसे अपना शरीर कटवाकर मनुष्य धनवान् होना चाहते हैं। ऐसे धनको धिक्कार है जो

प्रारम्भमें ही दु:ख देनेवाला होता है; तो बादमें क्या वह सुख देनेवाला हो सकता है?॥ १८-१९॥

हे सुन्दरि! तुम भी मूर्ख ही हो, तभी तो सम्भोगजन्य सुखको त्यागकर युद्धकी इच्छा कर रही हो। युद्धमें तुम कौन-सा लाभ समझ रही हो?॥ २०॥

युद्धमें तलवारें चलती हैं, गदाका प्रहार होता है और बाणोंसे शरीरका बेधन किया जाता है। मृत्युके अन्तमें सियार अपने मुँहसे नोच-नोचकर उस देहका संस्कार करते हैं॥ २१॥

धूर्त कवियोंने उसी युद्धकी अत्यन्त प्रशंसा की है कि रणभूमिमें मरनेवालोंको स्वर्ग प्राप्त होता है। उनका यह कहना केवल अर्थवादमात्र है॥ २२॥

अत: हे वरारोहे! तुम्हारा मन जहाँ लगे, वहाँ चली जाओ अथवा तुम देवताओंका दमन करनेवाले मेरे स्वामी महाराज महिषासुरको स्वीकार कर लो॥ २३॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार बोलते हुए उस दैत्यसे भगवती जगदम्बाने कहा—मूर्ख! तुम अपनेको बुद्धिमान् पण्डितके समान मानकर व्यर्थ क्यों बोल रहे हो? तुम न तो नीतिशास्त्र जानते हो, न आन्वीक्षिकी विद्या ही जानते हो, तुमने कभी न वृद्धोंकी सेवा की है और न तो तुम्हारी बुद्धि ही धर्मपरायण है॥ २४-२५॥

क्योंकि तुम मूर्खकी सेवामें लगे रहते हो, अत: तुम भी मूर्ख हो। जब तुम्हें राजधर्म ही ज्ञात नहीं, तब मेरे सामने क्यों व्यर्थ बकवाद कर रहे हो?॥ २६॥

संग्राममें महिषासुरका वध करके समरांगणको रुधिरसे पंकमय बनाकर अपना यश-स्तम्भ सुदृढ़ स्थापितकर मैं सुखपूर्वक चली जाऊँगी॥ २७॥

देवताओंको दु:ख देनेवाले इस दुराचारी तथा मदोन्मत्त दानवको मैं अवश्य मार डालूँगी। तुम सावधान होकर युद्ध करो। हे मूर्ख! यदि तुम्हें तथा महिषासुरको जीनेकी अभिलाषा हो तो सभी दानव पाताललोकको शीघ्र ही चले जायँ; अन्यथा यदि तुमलोगोंके मनमें मरनेकी इच्छा हो तो तुरंत युद्ध करो। यह मेरा संकल्प है कि मैं सभी दानवोंको मार डालूँगी॥ २८—३०॥

व्यासजी बोले—देवीका वचन सुनकर बलके अभिमानसे युक्त वह दैत्य उनपर इस प्रकार बाणोंकी वर्षा करने लगा, मानो दूसरे मेघ ही जलकी धारा बरसा रहे हों॥ ३१॥

तब भगवतीने अपने तीक्ष्ण बाणोंद्वारा उसके सभी बाण काट डाले और विषधर सर्पके समान विषैले बाणोंसे उसपर प्रहार किया। उन दोनोंमें परस्पर विस्मयकारी युद्ध होने लगा। जगदम्बाने अपने वाहन सिंहपरसे ही उस दैत्यपर गदासे प्रहार किया॥ ३२-३३॥

गदासे अत्यधिक आहत होनेके कारण वह दुष्टात्मा दैत्य मूर्च्छित हो गया और दो मुहूर्ततक पाषाणकी भाँति रथपर ही पड़ा रहा॥ ३४॥

इस प्रकार उसे मूर्च्छित देखकर शत्रुसेनाको नष्ट कर डालनेवाला ताम्र नामक दैत्य चण्डिकासे लड़नेके लिये वेगपूर्वक रणमें उपस्थित हो गया॥ ३५॥

उसे आते देखकर भगवती चण्डिका उससे हँसती हुई बोलीं—अरे दानवश्रेष्ठ! आओ-आओ, अभी तुम्हें यमलोक भेज देती हूँ॥ ३६॥

निर्बल और समाप्त आयुवाले तुमलोगोंके यहाँ आनेसे क्या लाभ? वह मूर्ख महिषासुर घरमें रहकर अपने जीनेका कौन-सा उपाय कर रहा है? देवताओंके शत्रु दुष्टात्मा तथा पापी महिषासुरका संहार किये बिना तुम मूर्खोंको मारनेसे मुझे क्या लाभ होगा? इससे तो मेरा परिश्रम भी व्यर्थ हो जायगा, अत: तुमलोग घरपर जाकर महिषासुरको यहाँ भेज दो, जिससे वह मन्दबुद्धि भी मैं जिस रूपमें स्थित हूँ, उसमें मुझको देख ले॥ ३७—३९॥

भगवतीका वचन सुनकर वह ताम्र कुपित हो धनुषको कानतक खींचकर उनपर बाणोंकी वर्षा करने लगा॥ ४०॥

देवताओंके शत्रु उस दैत्यको मारनेकी इच्छावाली ताम्राक्षी भगवती भी धनुष खींचकर उसके ऊपर वेगपूर्वक बाण छोड़ने लगीं॥ ४१॥

इतनेमें बलवान् चिक्षुर भी मूर्च्छा त्यागकर उठ खड़ा हुआ और तुरंत धनुष तथा बाण लेकर देवीके सामने आकर खड़ा हो गया॥ ४२॥

चिक्षुराख्य और ताम्र दोनों ही अत्यन्त उग्र बलवान् और महान् वीर थे। अब वे दोनों ही मिलकर भगवती

जगदम्बासे रणमें युद्ध करने लगे॥ ४३॥

तब महामाया क्रोधित होकर बाणसमूहोंकी वर्षा करने लगीं, और उन्होंने अपने बाणोंके प्रहारसे सभी दानवोंके कवच छिन्न-भिन्न कर दिये॥ ४४॥

उन बाणोंसे आहत होकर सभी असुर क्रोधसे व्याकुल हो गये तथा रोषपूर्वक देवीपर बाणसमूह छोड़ने लगे। उस समय समस्त रणभूमिमें भगवतीके बाणोंसे घायल सभी राक्षस ऐसे सुशोभित होने लगे, जैसे वसन्त ऋतुमें वनमें किंशुकके लाल पुष्प दिखायी पड़ते हों॥ ४५-४६॥

उस समरभूमिमें ताम्रके साथ देवीका भीषण युद्ध होने लगा। इसे देखनेवाले जो देवता आकाशमें स्थित थे, वे आश्चर्यचकित हो गये॥ ४७॥

उसी समय ताम्रने लोहेका बना हुआ एक सुदृढ़ तथा भयंकर मूसल लेकर देवीके सिंहके सिरपर प्रहार किया और वह जोरसे हँसने तथा गरजने लगा॥ ४८॥

तब उसे गरजता हुआ देखकर भगवती क्रोधित हो गयीं और उन्होंने तुरंत अपनी तेज धारवाली तलवारसे उसका मस्तक काट डाला॥ ४९॥

सिर कट जानेपर भी वह मस्तकविहीन बलशाली ताम्र मूसल लिये हुए कुछ क्षणतक घूमता रहा, इसके बाद वह समरांगणमें गिर पड़ा॥ ५०॥

ताम्रको गिरा हुआ देखकर महाबली चिक्षुराख्य खड्ग लेकर बड़े वेगसे चण्डिकाकी ओर झपटा॥ ५१॥

हाथमें तलवार लिये उस दानवको रणमें अपनी ओर आते देखकर देवीने भी तुरंत पाँच बाणोंसे उसपर प्रहार किया॥ ५२॥

भगवतीने एक बाणसे उसका खड्ग काट दिया, दूसरेसे उसका हाथ काट दिया और अन्य बाणोंसे उसका मस्तक कण्ठसे अलग कर दिया॥ ५३॥

इस प्रकार युद्धके लिये उन्मत्त रहनेवाले उन दोनों क्रूर राक्षसोंका वध हो गया, तब उन दोनोंकी सेना भयभीत होकर चारों दिशाओंमें शीघ्रतापूर्वक भाग चली॥ ५४॥

उन दोनों दानवोंको रणमें मारा गया देखकर आकाशमें विराजमान सम्पूर्ण देवता आह्लादित हो गये और प्रसन्नतापूर्वक भगवतीकी जयध्वनि करते हुए फूलोंकी वर्षा करने लगे। ऋषि, देवता, गन्धर्व, वेताल, सिद्ध और चारण—वे सब 'देवीकी जय, अम्बिकाकी जय' ऐसा बार-बार बोलने लगे॥ ५५-५६॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत पंचम स्कन्धका 'ताम्र एवं चिक्षुरका वधवर्णन' नामक चौदहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १४॥

पन्द्रहवाँ अध्याय

बिडालाख्य और असिलोमाका रणभूमिमें आना, देवीसे उनका वार्तालाप और युद्ध तथा देवीद्वारा उनका वध

व्यासजी बोले—उस देवीने चिक्षुराख्य तथा ताम्रका वध कर दिया—यह सुनकर महिषासुरको बड़ा विस्मय हुआ। अब उसने विशाल सेनासे युक्त, शस्त्रास्त्र लिये हुए तथा कवच धारण किये हुए असिलोमा, बिडालाख्य आदि प्रमुख युद्धोन्मत्त तथा महाबली दैत्योंको भगवतीका वध करनेके लिये भेजा॥ १-२॥

वहाँपर उन्होंने सिंहके ऊपर विराजमान, अठारह भुजाओंसे सुशोभित, खड्ग तथा ढाल धारण की हुई दिव्यस्वरूपवाली भगवतीको देखा॥ ३॥

तब असिलोमा दैत्योंके वधके लिये उद्यत देवीके पास जाकर विनयावनत होकर शान्तिपूर्वक उनसे हँसते हुए कहने लगा—॥ ४॥

असिलोमा बोला—हे देवि! सच्ची बात बताइये, आप यहाँ किस प्रयोजनसे आयी हैं? हे सुन्दरि! इन निरपराध दैत्योंको आप क्यों मार रही हैं? इसका कारण बताइये। मैं अभी आपके साथ सन्धि करनेको तैयार हूँ। हे वरारोहे! सुवर्ण, मणि, रत्न और अच्छे-अच्छे पात्र जो भी आप चाहती हैं, उन्हें लेकर यहाँसे शीघ्र चली जाइये। आप

युद्धकी इच्छुक क्यों हैं? महात्मा पुरुष कहते हैं कि युद्ध दु:ख तथा सन्तापको बढ़ानेवाला और सम्पूर्ण सुखोंका विघातक होता है॥ ५—७१/२ ॥

मुझे महान् आश्चर्य हो रहा है कि पुष्पका भी आघात न सह सकनेवाले अपने अत्यन्त सुकोमल शरीरमें आप शस्त्रोंके आघात सहनेके लिये क्यों तैयार हैं? चातुर्यका फल तो शान्ति और निरन्तर सुख भोगना है। अत: एकमात्र दु:खके कारणस्वरूप इस संग्रामको आप क्यों करना चाहती हैं? इस संसारमें सुख ग्रहण करना चाहिये और दु:खका परित्याग करना चाहिये—यही सर्वमान्य नियम है॥ ८—१० ॥

वह सुख भी नित्य और अनित्यके भेदसे दो प्रकारका कहा गया है। आत्मज्ञानसम्बन्धी सुखको 'नित्य' और भोगजनित सुखको 'अनित्य' माना गया है। वेद और शास्त्रके तत्त्वका चिन्तन करनेवाले लोगोंको चाहिये कि उस विनाशशील अनित्य सुखको त्याग दें। हे वरानने! यदि आप नास्तिकका मत स्वीकार करती हों तो भी इस यौवनको पाकर उत्तमसे उत्तम सुखोंका भोग करें। हे कृशोदरि! हे भामिनि! यदि परलोकके विषयमें आपको सन्देह हो तो इस पृथ्वीपर ही सदाचारपूर्वक रहती हुई स्वर्गीय सुख प्राप्त करनेमें सदा तत्पर रहें, नहीं तो शरीरमें यह यौवन अनित्य है—ऐसा समझकर आपको सदा सत्कर्म करते रहना चाहिये॥ ११—१४ ॥

बुद्धिमान् पुरुषोंको चाहिये कि वे दूसरोंको पीड़ित करनेके कार्यका त्याग कर दें। अत: बिना विरोधके धर्म, अर्थ और कामका सेवन करना चाहिये। इसलिये हे कल्याणि! आप अपनी बुद्धि धर्मकृत्यमें लगाइये। हे अम्बिके! आप हम दैत्योंको बिना अपराधके क्यों मार रही हैं? दयाभाव पुरुषमात्रका शरीर है और सत्यमें ही उसका प्राण प्रतिष्ठित कहा गया है। अत: बुद्धिमान् पुरुषोंको चाहिये कि दया और सत्यकी सदा रक्षा करें। हे देवि! आप दानवोंके संहारमें अपना प्रयोजन बतायें?॥ १५—१७१/२ ॥

देवी बोलीं—हे महाबाहो! तुमने जो यह पूछा है कि मैं यहाँ क्यों आयी हूँ—उसे बताती हूँ और दानववधका प्रयोजन भी बताती हूँ। हे दैत्य! मैं सदा साक्षी बनकर सभी प्राणियोंके न्याय तथा अन्यायको देखती हुई सब लोकोंमें निरन्तर विचरती रहती हूँ। मुझे न तो कभी भोगविलासकी इच्छा है, न लोभ है और न किसीके प्रति द्वेषभाव ही है॥ १८—२० ॥

धर्मकी मर्यादा रखनेके लिये मैं इस संसारमें विचरण करती रहती हूँ। साधुपुरुषोंकी रक्षा करना—अपने इस व्रतका मैं सदा पालन करती हूँ। अनेक अवतार धारण करके मैं सज्जनोंकी रक्षा करती हूँ, जो असाधु हैं उनका संहार करती हूँ और वेदोंका संरक्षण करती हूँ। मैं प्रत्येक युगमें उन अवतारोंको धारण करती रहती हूँ॥ २१-२२१/२ ॥

दुराचारी महिषासुर देवताओंको मार डालनेके लिये उद्यत है—यह जानकर मैं उसके वधके लिये इस समय यहाँ उपस्थित हुई हूँ। हे दानव! मैं उस दुराचारी तथा सुरद्रोही महाबली महिषको मार डालूँगी॥ २३-२४ ॥

अब तुम इच्छानुसार जाओ या रुके रहो, मैंने तुमसे यह सब सच-सच बतला दिया। अत: जाकर अपने उस दुराचारी राजा महिषसे कह दो—'आप अन्य दैत्योंको क्यों भेजते हैं? स्वयं युद्ध कीजिये।' यदि तुम्हारे राजाकी इच्छा मेरे साथ सन्धि करनेकी हो, तो सभी दैत्य शत्रुता छोड़कर सुखपूर्वक पाताल चले जायँ। देवताओंको जीतकर जो भी देवद्रव्य असुरोंने छीन लिया है, वह सब वापस करके वे उस पातालपुरीमें चले जायँ, जहाँ इस समय प्रह्लाद विराजमान हैं॥ २५—२७ ॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] इस प्रकार देवीका वचन सुनकर असिलोमा भगवतीके सामने ही महान् शूरवीर बिडालाख्यसे प्रीतिपूर्वक पूछने लगा—॥ २८ ॥

असिलोमा बोला—बिडालाख्य! देवीने अभी-अभी जो कहा है, वह तो तुमने सुन लिया, इस स्थितिमें हमें सन्धि या विग्रह—क्या करना चाहिये?॥ २९ ॥

बिडालाख्य बोला—युद्धमें मृत्युको निश्चित जानते हुए भी हमारे अभिमानी महाराज सन्धि नहीं करना चाहते। समरमें बहुत-से योद्धा मारे जा चुके हैं—यह देखकर भी

वे हमें भेज रहे हैं। दैवको टाल सकनेमें भला कौन समर्थ है! ॥ ३० ॥

(सम्मानकी भावनासे रहित, स्वामीकी आज्ञाका पालन करनेवाले तथा सदा उनके अधीन रहनेवाले सेवकोंका सेवाधर्म अत्यन्त कठिन है। सूतके संकेतपर नर्तन करनेवाली कठपुतलीकी भाँति वे सदा परतन्त्र रहते हैं।)

अतः उन महिषासुरके सामने जाकर मेरे अथवा तुम्हारे द्वारा ऐसा अप्रिय वचन कैसे कहा जा सकता है कि देवताओंके धन एवं रत्न वापस करके सभी दानव यहाँसे पातालको लौट चलें? ॥ ३१ ॥

(सदा प्रिय वचन बोलना चाहिये, किंतु वह असत्य न हो। वचन हितकारक तथा प्रिय होना चाहिये। यदि वचन सत्य होनेपर भी प्रिय न हो तो ऐसी दशामें बुद्धिमान् मनुष्योंके लिये मौन ही श्रेष्ठ होता है।)

नीतिशास्त्रका कथन है कि वीर पुरुषोंको चाहिये कि वे मिथ्या वचनोंद्वारा राजाको धोखेमें न डालें ॥ ३२ ॥

[सत्य बात तो यह है कि] आदरके साथ हितकी बात कहने अथवा पूछनेके लिये हमलोगोंको वहाँ नहीं चलना चाहिये। राजा महिषासुर कोपाविष्ट हो जायँगे। यह विचारकर अब हमलोगोंको यहाँ युद्ध ही करना चाहिये। जहाँ प्राणका संशय हो वहाँ स्वामीके कार्यको मुख्य मानकर मृत्युको तृणसदृश समझना चाहिये ॥ ३३-३४ ॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार विचार करके वे दोनों वीर युद्धके लिये तत्पर हो गये और कवच धारण करके हाथोंमें धनुष-बाण लेकर रथपर आरूढ हो देवीके सामने आ डटे ॥ ३५ ॥

सर्वप्रथम बिडालाख्यने देवीके ऊपर सात बाण चलाये। अस्त्र चलानेमें अत्यन्त निपुण असिलोमा दूर जाकर दर्शकके रूपमें खड़ा हो गया ॥ ३६ ॥

भगवती जगदम्बाने अपने बाणोंसे बिडालाख्यके द्वारा चलाये गये उन बाणोंको काट डाला और पत्थरपर घिसकर तीक्ष्ण बनाये गये तीन बाणोंसे बिडालाख्यपर आघात किया ॥ ३७ ॥

उन बाणोंकी असह्य वेदनासे पीड़ित होकर वह दैत्य समरभूमिमें गिर पड़ा, उसे मूर्च्छा आ गयी और कालयोगसे वह मर गया ॥ ३८ ॥

इस प्रकार भगवतीके बाणसमूहोंसे रणमें बिडालाख्यको मारा गया देखकर असिलोमा भी हाथमें धनुष लेकरके युद्ध करनेके लिये तैयार होकर सामने आ गया और दाहिना हाथ ऊपर उठाकर अभिमानपूर्वक बोला—हे देवि! मैं जानता हूँ कि सभी दुराचारी दानव मारे जायँगे, फिर भी पराधीन होनेके कारण मुझे युद्ध करना ही होगा। वह मन्दबुद्धि महिषासुर अपने प्रिय तथा अप्रियके विषयमें नहीं जानता ॥ ३९—४१ ॥

उसके सामने हितकर वचन भी यदि अप्रिय है तो मुझे नहीं बोलना चाहिये। अब वीरधर्मके अनुसार मर जाना ही मेरे लिये उचित है—वह चाहे शुभ हो अथवा अशुभ। मैं तो दैवको ही बलवान् मानता हूँ, अनर्थकारी पुरुषार्थको धिक्कार है, तभी तो आपके बाणोंसे हत होकर दानव पृथ्वीपर गिरते जा रहे हैं ॥ ४२-४३ ॥

ऐसा कहकर दानवश्रेष्ठ असिलोमा बाणवृष्टि करने लगा। देवीने अपने पासतक न पहुँचे हुए उन बाणोंको अपने बाणोंसे काट डाला और अपने अन्य शीघ्रगामी बाणोंसे असिलोमाको शीघ्रतापूर्वक बींध डाला। उस समय आकाशमें स्थित देवताओंने देखा कि भगवतीका मुखमण्डल क्रोधसे भर उठा है। देवीके बाणोंसे बिंधे शरीरवाला तथा बहती हुई रुधिरकी धारासे युक्त वह दैत्य ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो पुष्पित हुआ पलाशका वृक्ष हो ॥ ४४—४६ ॥

अब असिलोमा लोहेकी बनी एक विशाल गदा लेकर बड़ी तेजीसे चण्डिकाकी ओर दौड़ा और क्रोधपूर्वक सिंहके सिरपर उसने गदासे प्रहार कर दिया। परंतु देवीके सिंहने उस बलवान् दानवके द्वारा किये गये गदा-प्रहारकी कुछ भी परवाह न करके अपने नखोंद्वारा उसके वक्षःस्थलको फाड़ डाला ॥ ४७-४८ ॥

तब उस महाविकराल दैत्यने हाथमें गदा लिये ही बड़े वेगसे उछलकर सिंहके मस्तकपर सवार हो भगवतीके ऊपर गदासे प्रहार किया ॥ ४९ ॥

हे राजन्! उसके द्वारा किये गये प्रहारको रोककर

देवीने तेज धारवाली तलवारसे उसका मस्तक गर्दनसे अलग कर दिया। इस प्रकार मस्तक कट जानेपर वह दानवराज तुरंत गिर पड़ा। अब उस दुरात्माकी सेनामें हाहाकार मच गया॥ ५०-५१ ॥

हे राजन्! देवीकी जय हो—ऐसा कहकर देवतागण भगवतीकी स्तुति करने लगे। देवताओंकी दुन्दुभियाँ बज उठीं और किन्नरगण देवीका यशोगान करने लगे॥ ५२ ॥

मारे गये उन दोनों दैत्योंको समरांगणमें गिरा हुआ देखकर शेष सम्पूर्ण सैनिकोंको सिंहने अपने पराक्रमद्वारा मार गिराया और कुछ दानवोंको खा डाला और इस प्रकार उस युद्धभूमिको दानवोंसे रहित कर दिया। कुछ अंग-भंग हुए मूर्ख दानव दुःखी होकर महिषासुरके पास पहुँचे और 'रक्षा कीजिये-रक्षा कीजिये'—ऐसा कहते हुए वे चीखने-चिल्लाने तथा रोने लगे—'हे नृपश्रेष्ठ! असिलोमा और बिडालाख्य दोनों ही मारे गये। हे राजन्! अन्य जो भी सैनिक थे, उन्हें सिंह खा गया' ऐसा कहते हुए वे सब महिषासुरको युद्धके लिये प्रेरित

करने लगे॥ ५३—५६ ॥

उनकी बात सुनकर महिषासुर खिन्नमनस्क, चिन्तासे व्याकुल, उदास तथा दुःखी हो गया॥ ५७ ॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत पंचम स्कन्धका 'असिलोमा और बिडालके वधका वर्णन' नामक पन्द्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १५ ॥

सोलहवाँ अध्याय

महिषासुरका रणभूमिमें आना तथा देवीसे प्रणय-याचना करना

व्यासजी बोले—उन सैनिकोंकी बात सुनकर राजा महिष क्रोधित हो उठा और उसने सारथिसे कहा—हजार गधोंसे जुते हुए, ध्वजा तथा पताकाओंसे सुशोभित, अनेक प्रकारके आयुधोंसे परिपूर्ण, सुन्दर चक्कों तथा जुएसे विभूषित तथा प्रकाशमान मेरा अद्भुत रथ तुरंत ले आओ॥ १-२ ॥

सारथिने भी तत्क्षण रथ लाकर उससे कहा—हे राजन्! सुसज्जित करके रथ ला दिया गया; यह सुसज्जित होकर द्वारपर खड़ा है॥ ३$^{1}/_{2}$ ॥

रथके आनेकी बात सुनकर महाबली दानवराज महिष मनुष्यका रूप धारण करके युद्धभूमिमें जानेको तैयार हुआ। उसने अपने मनमें सोचा कि यदि मैं अपने महिषरूपमें जाऊँगा तो देवी मुझ श्रृंगयुक्त महिषको देखकर अवश्य उदास हो जायगी। स्त्रियोंको सुन्दर रूप और चातुर्य अत्यन्त प्रिय होता है। अतः आकर्षक रूप तथा चातुर्यसे सम्पन्न होकर मैं उसके पास जाऊँगा, जिससे मुझे देखते ही वह युवती प्रेमयुक्त—मोहित हो जायगी। मुझे भी इसी स्थितिमें सुख होगा, अन्य किसी स्वरूपसे नहीं॥ ४—७$^{1}/_{2}$ ॥

मनमें ऐसा विचार करके महाबली वह दानवेन्द्र महिषरूप छोड़कर एक सुन्दर पुरुष बन गया। वह सभी प्रकारके आयुधको धारण किये हुए था, वह ऐश्वर्यसम्पन्न था, वह सुन्दर आभूषणोंसे अलंकृत था, उसने दिव्य वस्त्र धारण कर रखे थे। केयूर और हार पहने तथा हाथमें धनुष-बाण धारण किये रथपर बैठा हुआ वह कान्तिमान् दैत्य दूसरे कामदेवके सदृश प्रतीत हो रहा था। मानिनी सुन्दरियोंका भी मन हर लेनेवाला ऐसा सुन्दर रूप बनाकर वह मदोन्मत्त दैत्य अपनी विशाल सेनाके साथ देवीकी ओर चला॥ ८—११ ॥

अनेक वीरोंसे घिरे हुए उस दैत्यराज महिषासुरको आया हुआ देखकर देवीने अपना शंख बजाया॥ १२ ॥

लोगोंको आश्चर्यचकित कर देनेवाली उस शंखध्वनिको सुनकर भगवतीके पास आकर वह दैत्य हँसता हुआ उनसे कहने लगा— ॥ १३ ॥

हे देवि! इस परिवर्तनशील जगत्में रहनेवाला व्यक्ति वह स्त्री अथवा पुरुष चाहे कोई भी हो, सब प्रकारसे सुख ही चाहता है। इस लोकमें सुख मनुष्योंको संयोगमें ही प्राप्त होता है, वियोगमें सुख होता ही नहीं। संयोग भी अनेक प्रकारका होता है। मैं उन भेदोंको बताता हूँ, सुनो। कहीं उत्तम प्रीतिके कारण संयोग हो जाता है और कहीं स्वभावत: संयोग हो जाता है, इनमें सर्वप्रथम मैं प्रीतिसे उत्पन्न होनेवाले संयोगके विषयमें अपनी बुद्धिके अनुसार बता रहा हूँ॥ १४—१६ ॥

माता-पिताका पुत्रके साथ होनेवाला संयोग उत्तम कहा गया है। भाईका भाईके साथ संयोग किसी प्रयोजनसे होता है, अत: वह मध्यम माना गया है। उत्तम सुख प्रदान करनेके कारण पहले प्रकारके संयोगको उत्तम तथा उससे कम सुख प्रदान करनेके कारण [दूसरे प्रकारके] संयोगको मध्यम कहा गया है॥ १७-१८ ॥

विविध विचारोंसे युक्त चित्तवाले तथा प्रसंगवश एकत्रित नौकामें बैठे हुए लोगोंके मिलनेको विद्वानोंने स्वाभाविक संयोग कहा है। बहुत कम समयके लिये सुख प्रदान करनेके कारण विद्वानोंके द्वारा इसे कनिष्ठ संयोग कहा गया है॥ १९$^{१}/_{२}$ ॥

अत्युत्तम संयोग संसारमें सदा सुखदायक होता है। हे कान्ते! समान अवस्थावाले स्त्री-पुरुषका जो संयोग है, वही अत्युत्तम कहा गया है। अत्युत्तम सुख प्रदान करनेके कारण ही उसे उस प्रकारका संयोग कहा गया है। चातुर्य, रूप, वेष, कुल, शील, गुण आदिमें समानता रहनेपर परस्पर सुखकी अभिवृद्धि कही जाती है॥ २०—२२$^{१}/_{२}$ ॥

यदि तुम मुझ वीरके साथ संयोग करोगी तो तुम्हें अत्युत्तम सुखकी प्राप्ति होगी; इसमें सन्देह नहीं है। हे प्रिये! मैं अपनी रुचिके अनुसार अनेक प्रकारके रूप धारण कर लेता हूँ। मैंने इन्द्र आदि सभी देवताओंको संग्राममें जीत लिया है। मेरे भवनमें इस समय जो भी दिव्य रत्न हैं, उन सबका तुम उपभोग करो; अथवा इच्छानुसार उसका दान करो। अब तुम मेरी पटरानी बन जाओ। हे सुन्दरि! मैं तुम्हारा दास हूँ॥ २३—२६ ॥

तुम्हारे कहनेसे मैं देवताओंसे वैर करना भी छोड़ दूँगा; इसमें सन्देह नही है। तुम्हें जैसे भी सुख मिलेगा, मैं वही करूँगा। हे विशालनयने! अब तुम मुझे आज्ञा दो और

मैं उसका पालन करूँ। हे मधुरभाषिणि! मेरा मन तुम्हारे रूपपर मोहित हो गया है॥ २७-२८ ॥

हे सुन्दरि! मैं [तुम्हें पानेके लिये] व्याकुल हूँ, इसलिये इस समय तुम्हारी शरणमें आया हूँ। हे रम्भोरु! कामबाणसे आहत मुझ शरणागतकी रक्षा करो। शरणमें आये हुएकी रक्षा करना सभी धर्मोंमें उत्तम धर्म है। श्याम नेत्रोंवाली हे कृशोदरि! मैं तुम्हारा सेवक हूँ। मैं मरणपर्यन्त सत्य वचनका पालन करूँगा, इसके विपरीत नहीं करूँगा। हे तन्वंगि! नानाविध आयुधोंको त्यागकर मैं तुम्हारे चरणोंमें अवनत हूँ॥ २९—३१ ॥

हे विशालाक्षि! मैं कामदेवके बाणोंद्वारा सन्तप्त हो रहा हूँ, अत: तुम मेरे ऊपर दया करो। हे सुन्दरि! जन्मसे लेकर आजतक मैंने ब्रह्मा आदि देवताओंके समक्ष भी दीनता नहीं प्रदर्शित की, किंतु तुम्हारे समक्ष आज उसे प्रकट कर रहा हूँ। ब्रह्मा आदि देवता समरांगणमें मेरे चरित्रको जानते हैं। हे भामिनि! वही मैं आज तुम्हारी दासता स्वीकार करता हूँ, मेरी ओर देखो॥ ३२-३३$^{१}/_{२}$ ॥

व्यासजी बोले—ऐसा कहते हुए उस दैत्य महिषासुरसे हँसकर अनुपम सौन्दर्यमयी भगवती मुसकानके साथ यह वचन कहने लगीं॥ ३४$^{१}/_{२}$ ॥

देवी बोलीं—मैं परमपुरुषके अतिरिक्त अन्य किसी

पुरुषको नहीं चाहती। हे दैत्य! मैं उनकी इच्छाशक्ति हूँ, मैं ही सारे संसारकी सृष्टि करती हूँ। वे विश्वात्मा मुझे देख रहे हैं; मैं उनकी कल्याणमयी प्रकृति हूँ। निरन्तर उनके सांनिध्यके कारण ही मुझमें शाश्वत चेतना है। वैसे तो मैं जड़ हूँ, किंतु उन्हींके संयोगसे मैं चेतनायुक्त हो जाती हूँ जैसे चुम्बकके संयोगसे साधारण लोहेमें भी चेतना उत्पन्न हो जाती है ॥ ३५—३७१/२ ॥

मेरे मनमें कभी भी विषयभोगकी इच्छा नहीं होती। हे मन्दबुद्धि! तुम मूर्ख हो जो कि स्त्रीसंग करना चाहते हो; पुरुषको बाँधनेके लिये स्त्री जंजीर कही गयी है। लोहेसे बँधा हुआ मनुष्य बन्धनमुक्त हो भी सकता है, किंतु स्त्रीके बन्धनमें बँधा हुआ प्राणी कभी नहीं छूटता। हे मूर्ख! मूत्रागार (गुह्य अंग)-का सेवन क्यों करना चाहते हो? सुखके लिये मनमें शान्ति धारण करो। शान्तिसे ही तुम सुख प्राप्त कर सकोगे। स्त्रीसंगसे बहुत दु:ख मिलता है—इस बातको जानते हुए भी तुम अज्ञानी क्यों बनते हो? ॥ ३८—४१ ॥

तुम देवताओंके साथ वैरभाव छोड़ दो और पृथ्वीपर इच्छानुसार विचरण करो। यदि जीवित रहनेकी तुम्हारी अभिलाषा हो तो पाताललोक चले जाओ अथवा मेरे साथ युद्ध करो। इस समय मुझमें पूर्ण शक्ति विद्यमान है। हे दानव! सभी देवताओंने तुम्हारा नाश करनेके लिये मुझे यहाँ भेजा है ॥ ४२-४३ ॥

मैं तुमसे यह सत्य कह रही हूँ, तुमने वाणीद्वारा सौहार्दपूर्ण भाव प्रदर्शित किया है, अत: मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूँ। अब तुम जीवित रहते ही सुखपूर्वक यहाँसे चले जाओ। केवल सात पग साथ चलनेपर ही सज्जनोंमें मैत्री हो जाती है, इसी कारण मैं तुम्हें जीवित छोड़ दे रही हूँ। हे वीर! यदि मरनेकी ही इच्छा हो तो तुम मेरे साथ आनन्दसे युद्ध कर सकते हो। हे महाबाहो! मैं तुम्हें युद्धमें मार डालूँगी; इसमें संशय नहीं है ॥ ४४-४५१/२ ॥

व्यासजी बोले—भगवतीका यह वचन सुनकर कामसे मोहित दानव [पुन:] मधुर वाणीमें मीठी बातें करने लगा—हे सुन्दरि! हे सुमुखि! कोमल, सुन्दर अंगोंवाली तथा पुरुषोंको मोह लेनेवाली तुझ युवतीके ऊपर प्रहार करनेमें मुझे भय लगता है। हे कमललोचने! विष्णु, शिव आदि बड़े-बड़े देवताओं और सब लोकपालोंपर विजय प्राप्त करके क्या अब तुम्हारे साथ मेरा युद्ध करना उचित होगा? ॥ ४६—४८१/२ ॥

हे सुन्दर अंगोंवाली! यदि तुम्हारी इच्छा हो तो मेरे साथ विवाह कर लो और मेरा सेवन करो; अन्यथा तुम जहाँसे आयी हो, उसी देशमें इच्छानुसार चली जाओ। मैं तुम्हारे साथ मित्रता कर चुका हूँ, इसलिये तुमपर प्रहार नहीं करूँगा। यह मैंने तुम्हारे लिये हितकर तथा कल्याणकारी बात बतायी है; इसलिये तुम सुखपूर्वक यहाँसे चली जाओ। सुन्दर नेत्रोंवाली तुझ रमणीका वध करनेसे मेरी कौन-सी गरिमा बढ़ जायगी? स्त्रीहत्या, बालहत्या और ब्रह्महत्याका पाप बहुत ही जघन्य होता है ॥ ४९—५११/२ ॥

हे वरानने! वैसे तो मैं तुम्हें बलपूर्वक पकड़कर अपने घर निश्चितरूपसे ले जा सकता हूँ, किंतु बलप्रयोगसे मुझे सच्चा सुख नहीं मिलेगा, उसमें भोगसुख कैसे प्राप्त हो सकता है? अतएव हे सुकेशि! मैं बहुत विनीतभावसे तुमसे कह रहा हूँ कि जैसे पुरुषको अपनी प्रियाके मुखकमलके बिना सुख नहीं मिलता, उसी प्रकार स्त्रियोंको भी पुरुषके बिना सुख नहीं मिलता ॥ ५२—५४ ॥

संयोगमें सुख उत्पन्न होता है और वियोगमें दु:ख। तुम सुन्दर, रूपवती और सभी आभूषणोंसे अलंकृत हो। [यह सब होते हुये भी] तुझमें चतुरता क्यों नहीं है, जिससे तुम मुझे स्वीकार नहीं कर रही हो? इस तरह भोगोंको छोड़ देनेका परामर्श तुम्हें किसने दिया है? हे मधुरभाषिणि! [ऐसा करके] किसी शत्रुने तुम्हें धोखा दिया है ॥ ५५-५६१/२ ॥

हे कान्ते! अब तुम यह आग्रह छोड़ दो और अत्यन्त सुन्दर कार्य करनेमें तत्पर हो जाओ। विवाह सम्पन्न हो जानेपर तुम्हें और मुझे दोनोंको सुख प्राप्त होगा। विष्णु लक्ष्मीके साथ, ब्रह्मा सावित्रीके साथ, शंकर पार्वतीके साथ तथा इन्द्र शचीके साथ रहकर ही सुशोभित होते हैं। पतिके बिना कौन स्त्री चिरस्थायी सुख प्राप्त कर सकती है? हे सुन्दरि! [कौन-सा ऐसा कारण है] जिससे तुम मुझ-जैसे उत्तम पुरुषको अपना पति नहीं बना

रही हो ? ॥ ५७—५९१/२ ॥

हे कान्ते! न जाने मन्दबुद्धि कामदेव इस समय कहाँ चला गया जो अपने अत्यन्त कोमल तथा मादक पंचबाणोंसे तुम्हें आहत नहीं कर रहा है। हे सुन्दरि! मुझे तो लगता है कि कामदेव भी तुम्हारे ऊपर दयालु हो गया है और तुम्हें अबला समझते हुए वह अपने बाण नहीं छोड़ रहा है। हे तिरछी चितवनवाली सुन्दरि! सम्भव है उस कामदेवको भी मेरे साथ कुछ शत्रुता हो, इसीलिये वह तुम्हारे ऊपर बाण न चलाता हो। अथवा यह भी हो सकता है कि मेरे सुखका नाश करनेवाले मेरे शत्रु देवताओंने उस कामदेवको मना कर दिया हो, इसीलिये वह तुम्हारे ऊपर [अपने बाणोंसे] प्रहार नहीं कर रहा है॥ ६०—६३१/२ ॥

हे मृगशावकके समान नेत्रोंवाली! मुझे त्यागकर तुम मन्दोदरीकी भाँति पश्चात्ताप करोगी, हे तन्वंगि! पतिरूपमें प्राप्त सुन्दर तथा अनुकूल राजाका त्याग करके बादमें वह मन्दोदरी जब कामार्त तथा मोहसे व्याकुल अन्तःकरणवाली हो गयी, तब उसने एक धूर्तको अपना पति बना लिया था॥ ६४-६५ ॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत पंचम स्कन्धका 'महिषासुरद्वारा देवीप्रबोधन' नामक सोलहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १६ ॥

सत्रहवाँ अध्याय

महिषासुरका देवीको मन्दोदरी नामक राजकुमारीका आख्यान सुनाना

व्यासजी बोले—[हे महाराज!] उसका यह वचन सुनकर भगवतीने उस दानवसे पूछा—वह स्त्री मन्दोदरी कौन थी और वह राजा कौन था, जिसे उसने त्याग दिया था?॥ १ ॥

बादमें उसने जिसे पति बनाया, वह धूर्त राजा कौन था? उस स्त्रीको पुनः जिस प्रकार दुःख मिला हो, वह कथानक विस्तारपूर्वक बताओ॥ २ ॥

महिषासुर बोला—पृथ्वीतलपर विख्यात सिंहल नामक एक देश है। उसमें बहुत ही घने-घने वृक्ष हैं और वह धन-धान्यसे समृद्ध है॥ ३ ॥

वहाँ चन्द्रसेन नामका राजा राज्य करता था, जो बड़ा धर्मात्मा, शान्तस्वभाव, प्रजापालनमें तत्पर, न्यायपूर्वक शासन-कार्य करनेवाला, सत्यवादी, मृदु स्वभाववाला, वीर, सहिष्णु, नीतिशास्त्रका सागर, शास्त्रवेत्ता, सब धर्मोंका ज्ञाता और धनुर्वेदमें अत्यन्त प्रवीण था॥ ४-५ ॥

उसकी भार्या भी रूपवती, सुन्दरी, सौभाग्यशालिनी, सद्गुणी, सदाचारिणी, अत्यन्त सुन्दर मुखवाली, पतिभक्तिमें लीन रहनेवाली, मनोहर और सभी उत्तम लक्षणोंसे सम्पन्न थी। उसका नाम गुणवती था। उसने प्रथम गर्भसे एक अति सुन्दर कन्याको जन्म दिया॥ ६-७ ॥

उस मनोरम कन्याको पाकर पिता बहुत ही प्रसन्न हुए और उन्होंने बड़े हर्षके साथ उसका नाम मन्दोदरी रखा॥ ८ ॥

वह कन्या चन्द्रमाकी कलाके समान दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगी। अत्यन्त मनोहारिणी वह कन्या जब दस वर्षकी हुई, तब उसके वरके लिये राजा चन्द्रसेन प्रतिदिन चिन्तित रहने लगे॥ ९१/२ ॥

उस समय मद्रदेशके अधिपति सुधन्वा नामवाले एक पराक्रमी नरेश थे। कम्बुग्रीव नामसे अति विख्यात उनका एक पुत्र था, जो बहुत मेधावी था। ब्राह्मणोंने राजा चन्द्रसेनसे कहा कि कम्बुग्रीव उस कन्याके योग्य वर है। वह सुन्दर, सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न तथा समस्त विद्याओंमें पारंगत है॥ १०-१११/२ ॥

तब राजाने गुणवती नामवाली अपनी प्रिय रानीसे पूछा—[मेरा विचार है कि] मैं अपनी सुन्दर पुत्री मन्दोदरीको कम्बुग्रीवको सौंप दूँ॥ १२१/२ ॥

पतिकी यह बात सुनकर उस रानीने अपनी पुत्रीसे आदरपूर्वक पूछा—तुम्हारे पिता कम्बुग्रीवके साथ तुम्हारा विवाह करना चाहते हैं॥ १३१/२ ॥

तब यह सुनकर मन्दोदरीने मातासे यह वचन कहा—

मैं पति नहीं बनाऊँगी, विवाह करनेमें मेरी अभिरुचि नहीं है। मैं सदा कौमार्यव्रतका आश्रय लेकर अपना जीवन व्यतीत करूँगी। मैं स्वतन्त्रतापूर्वक सदा कठोर तप करूँगी। हे माता! संसारसागरमें परतन्त्रता परम दुःख है। स्वतन्त्रतासे ही मोक्षकी प्राप्ति होती है—ऐसा शास्त्रोंके ज्ञाता पण्डितजनोंने कहा है, अतएव मैं बन्धनसे मुक्त रहूँगी, मुझे पतिसे कोई भी प्रयोजन नहीं है॥ १४—१७॥

विवाह होते समय अग्निके साक्ष्यमें [प्रतिज्ञारूपमें] यह वचन कहना पड़ता है—'[हे पतिदेव!] अब मैं सदाके लिये पूर्णरूपसे आपके अधीन हो चुकी हूँ।' इसके अतिरिक्त ससुरालमें सास तथा देवर आदि लोगोंकी दासी बनकर रहना तथा सदा पतिके अनुकूल रहना अत्यन्त दुःखदायक बताया गया है॥ १८-१९॥

कहीं यदि पतिने अन्य स्त्रीके साथ विवाह कर लिया तब तो सौतसे मिलनेवाला महान् दुःख उपस्थित हो जाता है। उस समय पतिके प्रति ईर्ष्याभाव उत्पन्न हो जाता है, कलह भी होने लगता है। हे माता! संसारमें सुख कहाँ है? और विशेष करके स्वभावसे ही परतन्त्र नारियोंके लिये इस स्वप्नधर्मा संसारमें सुख है ही नहीं॥ २०-२१ $^{१}/_{२}$॥

हे माता! मैंने सुना है कि प्राचीनकालमें राजा उत्तानपादके एक 'उत्तम' नामक पुत्र थे, जो समस्त धर्मोंके ज्ञाता एवं ध्रुवके कनिष्ठ भ्राता थे। उन्होंने अपनी धर्मनिष्ठ, पतिव्रता, पतिके प्रति भक्तिभाव रखनेवाली, प्रिय तथा सुन्दर पत्नीको बिना किसी अपराधके ही वनमें छोड़ दिया था॥ २२-२३ $^{१}/_{२}$॥

पतिके रहते हुए भी इस प्रकारके अनेक दुःख स्त्रीको सहने पड़ते हैं। दैवयोगसे उसकी मृत्यु हो जानेपर स्त्रीको [विधवा बनकर] दुःख उठाना पड़ता है; क्योंकि वैधव्य परम दुःखमय होता है तथा नानाविध शोक एवं संताप उत्पन्न करता रहता है। पतिके परदेश चले जानेपर कामदेवकी अग्निमें जलती हुई स्त्रीको घरमें अत्यधिक दुःख सहना पड़ता है, तो फिर उसे पतिसंगजनित क्या सुख प्राप्त हुआ? अतएव मेरा तो यही मत है कि स्त्रियोंको विवाह कभी नहीं करना चाहिये॥ २४—२६ $^{१}/_{२}$॥

[पुत्रीके] ऐसा कहनेपर उसकी माताने अपने पतिसे कहा—कौमारव्रत धारण करनेकी इच्छावाली आपकी पुत्री पतिकी कामना नहीं करती है। संसारसे विरक्त रहकर वह सदा व्रत और जपमें तत्पर रहना चाहती है। [पतिसंगजनित] अनेक दोषोंको जाननेवाली वह कन्या विवाह नहीं करना चाहती॥ २७-२८ $^{१}/_{२}$॥

अपनी भार्याकी बात सुनकर राजा चन्द्रसेन भी चुप रह गये। अपनी पुत्रीको विवाहकी इच्छासे रहित भाववाली जानकर राजाने भी उसका विवाह नहीं किया। वह मन्दोदरी भी माता-पिताके द्वारा भलीभाँति रक्षित होती हुई घरपर ही रहने लगी। कुछ समय पश्चात् नारियोंमें कामोत्तेजना उत्पन्न करनेवाले यौवन-सम्बन्धी लक्षण उसमें विकसित होने लगे। उस समय उसकी सखियोंने विवाहके लिये उसे बार-बार प्रेरित किया, फिर भी ज्ञान-तत्त्वकी बातें कहकर वह मन्दोदरी पति बनानेके लिये तैयार न हुई॥ २९—३१ $^{१}/_{२}$॥

एक दिन सुन्दर मुखवाली वह कन्या अपनी दासियोंके साथ बहुत-से वृक्षोंसे सुशोभित उद्यानमें आनन्दपूर्वक विहार करनेके लिये गयी। उस कृशोदरीने वहाँ पुष्पित लताओंको देखा और अपनी सखियोंके साथ पुष्प चुनती हुई वह वहींपर क्रीडाविहार करने लगी॥ ३२-३३ $^{१}/_{२}$॥

उसी समय उस मार्गसे संयोगवश कोसलनरेश वीरसेन आ गये। वे महान् शूरवीर तथा बहुत विख्यात थे। वे रथपर अकेले ही आरूढ़ थे तथा उनके साथ कुछ सेवक भी थे और सेना उनके पीछे धीरे-धीरे चली आ रही थी॥ ३४-३५ $^{१}/_{२}$॥

तभी उसकी सखियोंने दूरसे ही राजाको देख लिया और [उनमेंसे किसी युवतीने] मन्दोदरीसे कहा—विशाल भुजाओंवाला, रूपवान् तथा दूसरे कामदेवके समान एक पुरुष रथपर सवार होकर इस मार्गसे चला आ रहा है। मैं तो यह मानती हूँ कि यहाँ भाग्यवश कोई राजा ही आ गया है॥ ३६-३७ $^{१}/_{२}$॥

वह युवती ऐसा कह रही थी कि इतनेमें कोसल-नरेश वीरसेन वहाँ आ गये। उस श्याम कटाक्षोंवाली मन्दोदरीको देखकर राजा विस्मयमें पड़ गये। रथसे तुरंत उतरकर उन्होंने दासीसे पूछा—विशाल नेत्रोंवाली यह

युवती कौन है और किसकी पुत्री है? मुझे शीघ्र बताओ॥ ३८-३९$^{१}/_{२}$॥

इस प्रकार पूछे जानेपर मधुर मुसकानवाली दासीने उनसे कहा—सुन्दर नेत्रोंवाले हे वीर! पहले आप मुझे बतायें, मैं आपसे पूछ रही हूँ कि आप कौन हैं? यहाँ किसलिये आये हैं और यहाँ आपका कौन-सा कार्य है? [यह सब] अभी बतानेकी कृपा करें॥ ४०-४१॥

दासीके यह पूछनेपर राजाने उससे कहा—पृथ्वीपर अत्यन्त अद्भुत कोसल नामक एक देश है। हे प्रिये! वीरसेन नामवाला मैं उसी देशका शासक हूँ। मेरी विशाल चतुरंगिणी सेना पीछे-पीछे आ रही है। मार्ग भूल जानेके कारण यहाँ आये हुए मुझको तुम कोसलदेशका राजा समझो॥ ४२-४३॥

सैरन्ध्री बोली—हे राजन्! यह महाराज चन्द्रसेनकी पुत्री है और इसका नाम मन्दोदरी है। कमलसदृश नेत्रोंवाली यह राजकुमारी विहार करनेकी इच्छासे इस उपवनमें आयी है॥ ४४$^{१}/_{२}$॥

उसकी बात सुनकर राजाने उस सैरन्ध्रीसे कहा—हे सैरन्ध्रि! तुम चतुर हो, अतः राजकुमारीको समझा दो। 'हे सुनयने! मैं ककुत्स्थवंशमें उत्पन्न एक राजा हूँ। अतः हे कामिनि! तुम गान्धर्व-विवाहके द्वारा मुझे पति बना लो। हे सुश्रोणि! मेरी कोई भार्या नहीं है। मैं भी अद्भुत यौवनावस्थासे सम्पन्न, रूपवती और कुलीन युवतीकी आकांक्षा रखता हूँ। अथवा [यदि गान्धर्व-विवाह पसन्द न हो तो] तुम्हारे पिता विधि-विधानसे तुमको मुझे सौंप दें। मैं सर्वथा तुम्हारे अनुकूल पति होऊँगा; इसमें सन्देह नहीं है'॥ ४५—४८$^{१}/_{२}$॥

महिष बोला—तब वीरसेनका वचन सुनकर कामशास्त्रमें प्रवीण सैरन्ध्रीने हँसकर उस मन्दोदरीसे मधुर वाणीमें कहा—हे मन्दोदरि! सूर्यवंशमें उत्पन्न ये राजा यहाँ आये हैं। ये रूपवान्, बलवान् तथा आयुमें तुम्हारे ही तुल्य हैं। हे सुन्दरि! ये राजा सम्यक् प्रकारसे तुझमें प्रेमासक्त हो गये हैं॥ ४९—५१॥

हे विशाल नयनोंवाली! तुम्हारी विवाहयोग्य अवस्था हो गयी है और तुम वैराग्यभावसे युक्त रहती हो—यह जानकर तुम्हारे पिता भी सदा चिन्तित रहते हैं। उन महाराजने बार-बार लंबी साँस लेकर हमलोगोंसे यह कहा था—'हे दासियो! तुमलोग सदा उसकी सेवामें संलग्न रहती हो, अतः तुम्ही लोग मेरी इस पुत्रीको समझाओ।' किंतु हमलोग तुझ हठधर्मपरायणासे कुछ भी कहनेमें समर्थ नहीं हैं। [फिर भी हम तुम्हें बता देना चाहती हैं कि] पतिकी सेवा ही स्त्रियोंके लिये परम धर्म है—ऐसा मनुने कहा है। पतिकी सेवा करनेवाली स्त्री स्वर्ग प्राप्त कर लेती है। अतएव हे विशाल नेत्रोंवाली! तुम विधिपूर्वक विवाह कर लो॥ ५२—५५॥

मन्दोदरी बोली—मैं पति नहीं बनाऊँगी; मैं अद्भुत तप करूँगी। हे बाले! तुम इस राजाको मना कर दो; यह निर्लज्ज मेरी ओर क्यों देख रहा है?॥ ५६॥

सैरन्ध्री बोली—हे देवि! यह कामदेव अजेय है तथा कालका अतिक्रमण भी अत्यन्त कठिन है। अतएव हे सुन्दरि! तुम मेरे इस कल्याणकारी वचनको मान लेनेकी कृपा करो। अन्यथा [तुम्हारे ऊपर कभी-न-कभी] संकट अवश्य पड़ेगा; यह मेरा दृढ़ विश्वास है॥ ५७$^{१}/_{२}$॥

उसकी यह बात सुनकर राजकुमारीने उस सखीसे कहा—हे परिचारिके! दैवयोगसे जो भी होनेवाला है वह हो, किंतु मैं विवाह बिलकुल नहीं करूँगी; इसमें सन्देह नहीं है॥ ५८-५९॥

महिष बोला—उस राजकुमारीका निश्चित विचार जानकर सैरन्ध्रीने राजासे पुनः कहा—हे राजन्! आप इच्छानुसार यहाँसे जा सकते हैं। यह राजकुमारी उत्तम पति बनाना नहीं चाहती॥ ६०॥

उसकी बात सुनकर राजा वीरसेन उदास हो गये और उस राजकुमारीके प्रति आसक्तिरहित होकर अपनी सेनाके साथ कोसलदेशके लिये प्रस्थित हो गये॥ ६१॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत पंचम स्कन्धका 'देवी और महिषासुरके संवादमें राजपुत्री मन्दोदरीका वृत्तान्तवर्णन' नामक सत्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १७॥

अठारहवाँ अध्याय

दुर्धर, त्रिनेत्र, अन्धक और महिषासुरका वध

महिष बोला—उस मन्दोदरीकी इन्दुमती नामकी एक छोटी बहन थी, जो समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न तथा अत्यन्त रूपवती थी। जब वह विवाहके योग्य हुई, तब उसके विवाहकी तैयारी होने लगी। उसका स्वयंवर रचाया गया, स्वयंवरके मण्डपमें अनेक देशोंके राजा एकत्रित हुए॥ १-२॥

इन्दुमतीने उनमेंसे एक बलशाली, रूपवान्, कुलीन, शीलवान् तथा समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न राजाका वरण कर लिया॥ ३॥

उसी समय वह मन्दोदरी दैवयोगसे एक धूर्त, शठ तथा चातुर्यसम्पन्न राजाको देखकर कामातुर हो उठी और उसपर मोहित हो गयी॥ ४॥

उस कोमलांगीने अपने पितासे कहा—हे पिताजी! अब आप मेरा भी विवाह कर दीजिये। मद्रदेशके राजाको यहाँ देखकर अब मेरी भी विवाह करनेकी इच्छा हो गयी है॥ ५॥

पुत्रीने एकान्तमें अपने पितासे जो कुछ कहा था, उसे सुनकर राजा चन्द्रसेन प्रसन्नमनसे उसके भी विवाहकार्यकी व्यवस्थामें संलग्न हो गये॥ ६॥

तत्पश्चात् मद्रदेशके उन राजाको अपने घर बुलाकर उन्होंने वैवाहिक विधिके अनुसार उन्हें अपनी कन्या मन्दोदरी सौंप दी और बहुत-सा वैवाहिक उपहार प्रदान किया॥ ७॥

मद्रनरेश चारुदेष्ण भी उस सुन्दरीको पाकर बहुत प्रसन्न हुआ और सन्तुष्ट होकर स्त्रीके साथ अपने घर चला गया॥ ८॥

राजाओंमें श्रेष्ठ वह चारुदेष्ण बहुत दिनोंतक उस कामिनीके साथ रमण करता रहा। एक दिन वह किसी दासीके साथ एकान्तमें रमण कर रहा था। सैरन्ध्रीने यह बात मन्दोदरीको बता दी और उसने स्वयं जाकर पतिको [उस स्थितिमें] देख लिया। तब उसने मुसकराकर क्रोधके साथ राजाको बहुत उपालम्भ दिया॥ ९-१०॥

इसके बाद पुनः किसी दिन मन्दोदरीने राजाको एक रूपवती दासीके साथ एकान्तमें क्रीड़ाविहार करते हुए देख लिया। [यह देखकर] उस समय उसे महान् कष्ट हुआ॥ ११॥

वह सोचने लगी कि जब मैंने इसे स्वयंवरमें देखा था, तब मैं इस शठके विषयमें ऐसा नहीं समझ पायी थी। मैंने मोहवश यह क्या कर डाला? इस राजाने तो मुझे ठग लिया॥ १२॥

अब मैं क्या करूँ; केवल सन्ताप ही मिला। ऐसे निर्लज्ज, निर्दयी और धूर्त पतिके प्रति प्रेम कैसे हो सकता है! अब मेरे जीवनको धिक्कार है॥ १३॥

आजसे मैं संसारमें पतिके साथ सहवाससे प्राप्त होनेवाले सारे सुखका त्याग कर रही हूँ; अब मैंने सन्तोष कर लिया॥ १४॥

मैंने वह काम कर डाला, जिसे मुझे नहीं करना चाहिये था, इसीलिये वह मेरे लिये कष्टदायक सिद्ध हुआ। अब यदि मैं देहत्याग करती हूँ तो वह दुस्तर आत्महत्याके समान होगा। यदि पिताके घर चली जाऊँ तो वहाँ भी सुख नहीं मिलेगा और वहाँपर मैं अपनी सखियोंकी हँसीका पात्र बनी रहूँगी; इसमें कोई संशय नहीं है। अतः वैराग्ययुक्त होकर भोगविलासके सुखका परित्याग करके कालयोगसे मुझे यहींपर निवास करना चाहिये॥ १५—१७॥

महिष बोला—ऐसा विचार करके वह नारी सांसारिक सुखका परित्याग करके दुःख तथा शोकसे सन्तप्त रहती हुई अपने पतिके घरपर ही रह गयी॥ १८॥

अतः हे कल्याणि! उसी प्रकार तुम भी मुझ राजा पतिका अनादर करके पुनः कामातुर होनेपर किसी अन्य मूर्ख तथा कायर पुरुषका आश्रय ग्रहण करोगी॥ १९॥

अतः स्त्रियोंके लिये परम हितकारी तथा सच्ची मेरी यह बात मान लो। इसे न मानकर तुम बहुत कष्ट उठाओगी; इसमें सन्देह नहीं है॥ २०॥

देवी बोलीं—हे मन्दबुद्धि! अब तुम पाताललोक

भाग जाओ अथवा मेरे साथ युद्ध करो। मैं तुम्हें तथा सभी असुरोंको मारकर सुखपूर्वक यहाँसे चली जाऊँगी॥ २१॥

हे दानव! जब-जब साधु पुरुषोंपर संकट आता है, तब-तब उनकी रक्षाके लिये मैं देह धारण करती हूँ॥ २२॥

हे दैत्य! वास्तवमें मैं निराकार और अजन्मा हूँ, तथापि देवताओंकी रक्षा करनेके लिये रूप और जन्म धारण करती हूँ; यह तुम निश्चित समझ लो॥ २३॥

मैं सत्य कहती हूँ कि देवताओंने तुम्हारा वध करनेके लिये मुझसे प्रार्थना की थी। हे महिष! तुझे मारकर मैं सर्वथा निश्चिन्त हो जाऊँगी॥ २४॥

अतएव अब तुम मेरे साथ युद्ध करो अथवा असुरोंकी निवासभूमि पाताललोकको चले जाओ। अब मैं तुम्हें निश्चय ही मार डालूँगी, मैं यह बिलकुल सच कह रही हूँ॥ २५॥

व्यासजी बोले—देवीके ऐसा कहनेपर महिषासुर धनुष लेकर युद्ध करनेकी इच्छासे संग्रामभूमिमें डट गया॥ २६॥

वह पत्थरपर घिसकर नुकीले बनाये गये बाणोंको कानतक खींचकर बड़े वेगसे छोड़ने लगा। तब भगवतीने कुपित होकर अपने लौहमुख बाणोंसे उसके बाणोंको काट डाला॥ २७॥

अब देवी और दानव महिषमें भीषण संग्राम होने लगा। वह युद्ध अपनी-अपनी विजय चाहनेवाले देवताओं और दानवोंके लिये बड़ा भयदायक था॥ २८॥

उसी समय दुर्धर नामक दैत्य बीचमें आकर भगवतीको कुपित करता हुआ उनपर अतिशय दारुण और विषैले बाणोंकी वर्षा करने लगा॥ २९॥

तब भगवतीने क्रोधित होकर उसपर तीक्ष्ण बाणोंके द्वारा प्रहार किया, जिससे दुर्धर प्राणहीन होकर पर्वतशिखरकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ ३०॥

दुर्धरको मृत देखकर शस्त्रोंका महान् ज्ञाता त्रिनेत्र रणभूमिमें आकर सात बाणोंसे भगवती परमेश्वरीपर आघात करने लगा॥ ३१॥

वे बाण देवीके पास पहुँच भी नहीं पाये थे कि बीचहीमें उन्होंने अपने बाणोंसे उन बाणोंको काट दिया। तत्पश्चात् जगदम्बाने अपने त्रिशूलसे त्रिनेत्रको मार डाला॥ ३२॥

तब त्रिनेत्रको मारा गया देखकर तुरंत अन्धक आ गया और उसने अपनी लौहमयी गदासे सिंहके मस्तकपर प्रहार कर दिया, किंतु सिंह क्रोधमें भरकर अपने तीक्ष्ण नखोंके प्रहारसे उस महान् बलशाली दानवका वध करके उसका मांस खाने लगा॥ ३३-३४॥

उन्हें रणमें मारा गया देखकर महिषासुरको बहुत आश्चर्य हुआ। अतएव वह और भी वेगके साथ अति तीक्ष्ण और पत्थरकी सानपर चढ़ाकर तीक्ष्ण किये हुए बाणोंको छोड़ने लगा॥ ३५॥

किंतु भगवतीने उन बाणोंको अपने पास पहुँचनेके पहले ही अपने बाणोंसे काटकर उनके दो टुकड़े कर दिये। इसी समय जगदम्बाने महिषासुरके वक्षपर अपनी गदासे आघात किया॥ ३६॥

देवताओंको दुःख देनेवाला महिष गदासे घायल होकर मूर्च्छित हो गया। किंतु उस वेदनाको सहन करके वह पापी उठ खड़ा हुआ और पुनः तुरंत आकर उसने कोपाविष्ट होकर अपनी गदासे सिंहके मस्तकपर प्रहार कर दिया। तब सिंह भी नखोंके आघातसे उस महान् असुरको विदीर्ण करने लगा॥ ३७-३८॥

तब महिषासुरने मानवरूप त्यागकर सिंहका रूप धारण कर लिया और वह अपने नखोंसे भगवतीके मतवाले सिंहको चीरने लगा॥ ३९॥

उसे सिंहरूपमें देखकर भगवती क्रोधित हो उठीं और अपने लौहमुख, तीक्ष्ण, क्रूर एवं सर्पसदृश बाणोंसे उसे बींधने लगीं॥ ४०॥

तदनन्तर सिंहरूप त्यागकर महिषासुरने मद बहाते हुए हाथीका रूप धारण करके अपनी सूँड़से एक विशाल शैलशिखर उठाकर चण्डिकापर फेंका॥ ४१॥

उस पर्वतशिखरको आते देखकर भगवती जगदम्बाने पत्थरपर घिसकर तेज किये गये बाणोंसे उसे तिल-तिल करके काट डाला और वे बड़ी जोरसे अट्टहास करने लगीं॥ ४२॥

उस समय देवीका सिंह उछलकर उसके मस्तकपर

चढ़ बैठा और अपने तीक्ष्ण नखोंसे उस गजरूपधारी महिषको विदीर्ण करने लगा॥ ४३॥

अब महिषने क्रोधपूर्वक उस सिंहको मारनेके विचारसे हाथीका रूप त्यागकर अत्यन्त भीषण और बलवान् आठ पैरोंवाले शरभका रूप धारण कर लिया॥ ४४॥

उस शरभको देखकर जगदम्बाने अतिशय क्रोधमें भरकर उसके मस्तकपर खड्गसे आघात किया। तब उसने भी भगवतीपर प्रहार किया॥ ४५॥

अब उन दोनोंमें महाभयंकर युद्ध होने लगा। उसी समय उसने महिषरूप धारण करके अपनी सींगोंसे देवीके ऊपर आघात किया॥ ४६॥

विकराल रूपवाला तथा भयानक वह महान् असुर अपनी पूँछके घुमाने तथा सींगोंसे कोमल अंगोंवाली देवीपर प्रहार करने लगा॥ ४७॥

वह पापी अपनी पूँछसे पर्वतोंको सींगपर रखकर बड़े वेगसे घुमाता हुआ हँसकर अति प्रसन्नतापूर्वक भगवतीके ऊपर फेंकने लगा॥ ४८॥

बलसे उन्मत्त उस दानवने भगवतीसे कहा—हे देवि! ठहरो। रूप और यौवनसे सम्पन्न तुमको मैं आज मार डालूँगा॥ ४९॥

तुम मूर्ख हो जो कि मदमत्त हो मेरे साथ युद्ध कर रही हो। तुम अज्ञानवश अपनेको व्यर्थ ही बलवती समझकर मुखर हो रही हो॥ ५०॥

तुम्हें मारनेके बाद मैं उन सब कपटपण्डित देवताओंको मार डालूँगा, जो शठ देवतागण एक स्त्रीको आगे करके मुझे जीतना चाहते हैं॥ ५१॥

देवी बोलीं—अरे मूर्ख! व्यर्थ अभिमान मत करो, रणभूमिमें ठहर जाओ, ठहर जाओ। तुम्हें मारकर मैं देवताओंको निर्भय बना दूँगी॥ ५२॥

अरे अधम! मैं अभी मधुर मद्य पीकर देवताओंके लिये दु:खदायी और मुनियोंको भयभीत करनेवाले तुझ पापीको रणमें काट डालूँगी॥ ५३॥

व्यासजी बोले—ऐसा कहकर क्रोधपूर्वक उस दैत्यको मार डालनेके विचारसे भगवती मद्यपूर्ण सोनेका पात्र लेकर बारम्बार उसे पीने लगीं॥ ५४॥

उस मीठे द्राक्षारसको पीकर भगवती बड़े वेगसे अपना त्रिशूल उठाकर देवताओंको हर्षित करती हुई उस दानवपर झपटीं॥ ५५॥

उस समय देवता प्रेमपूर्वक उनकी स्तुति करने लगे और पुष्पवर्षा करने लगे। वे दुन्दुभियोंकी ध्वनिके साथ देवीकी जय हो—ऐसा बार-बार कहने लगे॥ ५६॥

सभी ऋषि, सिद्ध, गन्धर्व, पिशाच, नाग, चारण और किन्नरगण आकाशमण्डलमें स्थित होकर उस युद्धको देखकर आनन्दित हो रहे थे॥ ५७॥

कपटकार्यमें प्रवीण वह महिषासुर रणभूमिमें बार-बार विविध प्रकारके मायामय शरीर धारण करके भगवतीपर प्रहार करने लगा॥ ५८॥

तब क्रोधसे लाल नेत्र करके चण्डिकाने अपने तीक्ष्ण त्रिशूलसे उस पापीके हृदयदेशपर बलपूर्वक आघात किया॥ ५९॥

उससे आहत होकर महिषासुर भूमिपर गिर पड़ा और मूर्च्छित हो गया, किंतु मुहूर्तभर बाद पुन: उठकर अपने पैरोंसे वेगपूर्वक देवी चामुण्डाको मारने लगा। इस प्रकार पदप्रहारोंसे देवीको चोट पहुँचाकर वह बारम्बार हँसने लगा और देवताओंको भयभीत कर देनेवाली भीषण ध्वनि करके चिल्लाने लगा॥ ६०-६१॥

तदनन्तर भगवतीने हजार अरों और सुन्दर नाभिवाला एक उत्कृष्ट चक्र हाथमें लेकर अपने समक्ष खड़े महिषासुरसे उच्च स्वरमें कहा—अरे मदान्ध! तुम्हारे गलेको काट डालनेवाले इस चक्रकी ओर देखो। तनिक देर और ठहरकर अब तुम यमलोकके लिये प्रस्थान कर दो॥ ६२-६३॥

ऐसा कहकर जगदम्बाने युद्धभूमिमें उस दारुण चक्रको चला दिया। तब चक्रसे उस दानवका सिर कट गया। उस समय उसके कण्ठकी नलीसे इस प्रकार उष्ण रक्त बहने लगा, जैसे गेरु आदिसे युक्त लाल पानीका झरना बड़े वेगके साथ पर्वतसे गिर रहा हो। [मस्तक कट जानेपर] उस दानवका धड़ घूमता हुआ भूमिपर गिर पड़ा। उस समय देवताओंके [मुखसे] सुखकी वृद्धि करनेवाला विजयघोष होने लगा॥ ६४—६६॥

अब भगवतीका महाबली सिंह मानो भूखसे व्याकुल होकर रणभूमिमें भागते हुए दानवोंको खाने लगा॥ ६७॥

हे नृप! क्रूर महिषासुरके मर जानेपर जो कोई दानव मरनेसे शेष बच गये थे, वे भयसे सन्त्रस्त होकर पाताल चले गये॥ ६८॥

उसके मर जानेपर भूमण्डलपर जो भी देवता, मुनिगण, मनुष्य और साधुजन थे, वे परम आनन्दित हो गये॥ ६९॥

भगवती चण्डिका भी रणभूमि छोड़कर एक पवित्र स्थानमें विराजमान हो गयीं। देवता भी उन सुख प्रदान करनेवाली भगवतीकी स्तुति करनेकी इच्छासे शीघ्र ही वहाँ आ पहुँचे॥ ७०॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत पंचम स्कन्धका 'महिषासुरवध' नामक अठारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १८॥

उन्नीसवाँ अध्याय

देवताओंद्वारा भगवतीकी स्तुति

व्यासजी बोले—महिषासुरका संहार देखकर इन्द्र आदि प्रधान देवता परम प्रसन्न हुए और वे जगदम्बाकी स्तुति करने लगे॥ १॥

देवता बोले—हे देवि! आपकी ही शक्तिसे ब्रह्मा इस जगत्का सृजन करते हैं, भगवान् विष्णु पालन करते हैं और शिवजी प्रलयकालमें संहार करते हैं। आपकी शक्तिसे रहित हो जानेपर वे कुछ भी करनेमें समर्थ नहीं हो सकते। अतः जगत्का सृजन, पालन और संहार करनेवाली आप ही हैं॥ २॥

इस संसारमें कीर्ति, मति, स्मृति, गति, करुणा, दया, श्रद्धा, धृति, वसुधा, कमला, अजपा, पुष्टि, कला, विजया, गिरिजा, जया, तुष्टि, प्रमा, बुद्धि, उमा, रमा, विद्या, क्षमा, कान्ति और मेधा—ये सब शक्तियाँ आप ही हैं। इस त्रिलोकीमें आप विख्यात हैं। सम्पूर्ण जगत्को आश्रय देनेवाली हे देवि! आपकी इन शक्तियोंके बिना कौन व्यक्ति कुछ भी स्वयं कर सकनेमें समर्थ है?॥ ३-४॥

हे अम्ब! धारणा शक्ति भी निश्चितरूपसे आप ही हैं, अन्यथा कच्छप और शेषनाग इस पृथ्वीको धारण कर सकनेमें कैसे समर्थ हो पाते? पृथ्वी-शक्ति भी आप ही हैं। यदि आप इस रूपमें न होतीं तो प्रचुर भारसे सम्पन्न यह सम्पूर्ण जगत् आकाशमें कैसे ठहर सकता था॥ ५॥

हे जननि! जो मनुष्य मायाके गुणोंसे प्रभावित होकर ब्रह्मा, विष्णु, महेश, चन्द्रमा, अग्नि, यम, वायु, गणेश आदि प्रमुख देवताओंकी स्तुति करते हैं, वे अज्ञानी ही हैं; क्योंकि क्या वे देवता भी आपकी कृपाशक्तिके बिना उन मनुष्योंको कार्य-फल प्रदान करनेमें समर्थ हो सकते हैं?॥ ६॥

हे अम्ब! जो लोग सुविस्तृत यज्ञमें देवताओंको अधिकृत करके अग्निमें पुष्कल आहुति देते हैं, वे मन्दमति हैं; क्योंकि यदि स्वाहाके रूपमें आप न होतीं, तो वे देवता हविर्द्रव्यको कैसे पाते? तब फिर वे मूढ़ आपका ही यजन क्यों नहीं करते?॥ ७॥

आप जगत्के चराचर प्राणियोंको भोग प्रदान करती हैं और अपने अंशोंसे उन्हें नित्य जीवन देती हैं। हे जननि! जिस प्रकार आप अपने प्रिय देवताओंका पोषण करती हैं, उसी प्रकार अपने शत्रुओंका भी पालन करती हैं॥ ८॥

हे माता! बुद्धिमान् पुरुष विनोदके लिये उद्यानमें

लगाये गये वृक्षोंमेंसे कुछ वृक्षोंके फल और पत्तोंसे रहित हो जाने अथवा उन वृक्षोंका रस कड़ुवा निकल जानेपर भी उन्हें कभी भी नहीं काटते, उसी प्रकार आप भी [अपने ही बनाये हुए] दैत्योंकी भलीभाँति रक्षा करती हैं॥ ९॥

करुणारससे ओत-प्रोत हृदयवाली आप रणभूमिमें बाणोंद्वारा शत्रुओंका जो संहार करती हैं, वह भी उनका मनोरथ पूर्ण करनेके लिये ही होता है; क्योंकि दूसरे जन्ममें देवांगनाओंके साथ क्रीड़ा-विहार करनेकी इच्छावाला उन्हें जानकर ही आपके द्वारा ऐसा किया जाता है; ऐसा आपका अद्‌भुत चरित्र है॥ १०॥

हे माता! बड़ी विलक्षण बात तो यह है कि विख्यात प्रभावोंवाले उन दैत्योंका संहार जो आपके संकल्पमात्रसे ही सम्भव था, इसके लिये आपको अवतार लेना पड़ा। यह शरीर धारण करके आप वास्तवमें इसीके सहारे लीला करती हैं; इसमें कोई दूसरा कारण नहीं है॥ ११॥

जो मनुष्य इस विकराल कलिके उपस्थित होनेपर भी आपकी आराधना नहीं करते, अपितु आपके ही द्वारा निर्मित विष्णु, शिव आदि देवताओंकी उपासनामें तत्पर रहते हैं, वे लोग पुराण-चतुर धूर्तजनोंके द्वारा निश्चित रूपसे ठग लिये गये हैं॥ १२॥

यह जानकर भी कि देवता आपके अधीन हैं तथा दैत्योंके द्वारा छिन्न-भिन्न और प्रताड़ित किये जाते हैं—जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक भूलोकमें अन्य देवताओंकी उपासना करते हैं, वे मानो हाथमें अत्यन्त प्रकाशमान दीपक लेकर भी किसी जलरहित भयानक कूपमें जा गिरते हैं॥ १३॥

हे माता! आप ही सुखदायिनी विद्या तथा दुःखदायिनी अविद्या हैं और आप ही मनुष्योंके जन्म-मृत्युका दुःख दूर करनेवाली हैं। हे जननि! मोक्षकी कामना करनेवाले लोग तो आपकी आराधना करते हैं, किंतु मन्दबुद्धि अज्ञानी तथा विषयभोगपरायण मनुष्य आपकी आराधना नहीं करते॥ १४॥

ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा अन्य देवतागण आपके शरणदायक चरणकमलकी निरन्तर उपासना करते हैं, किंतु जो अल्पबुद्धि मनुष्य भ्रमित होकर मनसे आपकी आराधना नहीं करते, वे संसार-सागरमें बार-बार गिरते हैं॥ १५॥

हे चण्डिके! आपके चरण-कमलसे उत्पन्न हुई धूलिके प्रभावसे ही ब्रह्मा सृष्टिके प्रारम्भमें सम्पूर्ण भुवनकी रचना करते हैं, विष्णु पालन करते हैं और शिवजी संहार करते हैं। इस लोकमें जो मनुष्य आपकी उपासना नहीं करता, वह अभागा है॥ १६॥

हे देवि! आप ही देवताओं तथा दैत्योंकी वाग्देवता हैं। यदि आप मुखमें विराजमान न रहतीं, तो बड़े-बड़े देवता भी बोलनेमें समर्थ नहीं हो सकते थे। मुख होनेपर भी मनुष्य उस वाक्शक्तिके बिना बोल नहीं सकता॥ १७॥

हे जननि! महर्षि भृगुने कुपित होकर भगवान् विष्णुको शाप दे दिया, जिससे उन्हें पृथ्वीपर बारम्बार मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह और छली वामनका अवतार लेना पड़ा। तो फिर [एक ऋषिके शापसे अपनी रक्षा न कर पानेवाले ऐसे विष्णु आदि*] उन देवताओंकी उपासना करनेवाले लोगोंको मृत्युका भय क्यों नहीं बना रहेगा?॥ १८॥

हे माता! सम्पूर्ण संसारमें यह बात प्रसिद्ध है कि भृगुमुनिके काननमें गये हुए भगवान् शिवका लिंग मुनिके शापके कारण कटकर पृथ्वीपर गिर पड़ा था। अतः जो मनुष्य पृथ्वीपर उन कापालिक शिवको ही भजते हैं, उन्हें इस लोक तथा परलोकमें भी सुख कैसे प्राप्त हो सकता है?॥ १९॥

शिवसे जो गणोंके अधिपति गणेश उत्पन्न हुए हैं—उन गणेशको जो लोग भजते हैं, उनकी यह शरणागति व्यर्थ है। हे देवि! वे लोग सभी प्रकारके अभीष्ट फल प्रदान करनेवाली तथा सुखपूर्वक आराधनीय आप जगज्जननीको नहीं जानते हैं॥ २०॥

यह बड़ी विचित्र बात है कि आपने अपने शत्रु-दैत्योंपर भी दया करके उन्हें तीक्ष्ण बाणोंसे रणमें मारकर स्वर्गलोक भेज दिया। यदि आप ऐसा न करतीं तो वे अपने कर्मोंके परिणामस्वरूप प्राप्त होनेवाले घोर नरकमें बड़े-से-बड़े दुःख और विपत्तिमें पड़ जाते॥ २१॥

जब ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवता भी अहंकारके

* इस पुराणमें जगदम्बा पराशक्तिकी विशिष्टता प्रदर्शित करनेके लिये ही अन्य देवोंकी उपासनासे विरत रहनेकी बात कही गयी है। वैसे तो भगवती एवं ब्रह्मा-विष्णु-महेश आदि देवगण भी परमात्मप्रभुके ही स्वरूप हैं; उनमें कोई भेद नहीं है।

कारण आपकी महिमा नहीं जानते, तब आपके अमित प्रभाववाले गुणोंसे मोहित तुच्छ मनुष्य आपकी महिमाको कैसे जान सकेंगे?॥ २२॥

जो मुनिगण आपके स्वरूपको बड़ी कठिनतासे ध्यानमें आनेवाला समझकर आपके चरणकमलकी उपासना नहीं करते; अपितु सूर्य, अग्नि आदिकी उपासनामें लगे रहते हैं, वे मूढ़बुद्धि अनेकविध कष्ट पाते हैं। समस्त श्रुतियोंके द्वारा प्रतिपादित वेदसारस्वरूप परमार्थतत्त्वको वे नहीं जान पाते॥ २३॥

मैं तो यही समझता हूँ कि अद्भुत प्रभावोंवाले जो आपके सत्त्व, रज और तम गुण हैं, वे ही मनुष्योंको उन्हींकी अपनी ही बुद्धिद्वारा विरचित अनेक प्रकारके शास्त्रोंमें उलझाकर उन्हें विष्णु, शिव, सूर्य, गणेश आदिका उपासक बनाकर आपके भक्तिभावसे सर्वथा विमुख कर देते हैं॥ २४॥

हे अम्बिके! जो लोग विष्णु तथा शिवकी पूजा और भक्तिसे परिपूर्ण शास्त्रोंके उपदेशद्वारा ब्राह्मणोंको आपके चरणोंसे विमुख कर देते हैं, उनके ऊपर भी आप क्रोध नहीं करती हैं, बल्कि दया ही करती हैं और इसके अतिरिक्त मोहन आदि मन्त्रोंके ज्ञाताओंको भी आप संसारमें बहुत प्रसिद्ध बना देती हैं॥ २५॥

सत्ययुगमें सत्त्वगुणकी प्रबलता रहती है, अतः उस युगमें असत्-शास्त्रोंपर आस्था नहीं हो पाती। किंतु कलिमें तो कवित्वके अभिमानी लोग आपकी उपेक्षा करते हैं और आपहीके द्वारा बनाये गये देवताओंकी स्तुति करते हैं॥ २६॥

इस पृथ्वीतलपर अत्यन्त शुद्ध अन्तःकरणवाले जो सात्त्विक मुनिगण मुक्ति-फल प्रदान करनेवाली योगसिद्धा एवं पराविद्यास्वरूपिणी आप भगवतीका ध्यान करते हैं, वे पुनः माताके गर्भमें आकर कष्ट नहीं पाते। जो मनुष्य आपमें ध्यानमग्न हैं, वे धन्य हैं॥ २७॥

आप चित्-शक्ति हैं और वही चित्-शक्ति परमात्मामें विद्यमान है, जिसके कारण वे भी [नाम और रूपसे] अभिव्यक्त होकर इस जगत्के सृजन, पालन एवं संहाररूपी कार्योंके कर्ताके रूपमें लोकोंमें प्रसिद्ध होते हैं। उन परमात्माके अतिरिक्त दूसरा कौन है, जो आपसे रहित होकर अपनी शक्तिसे इस जगत्का सृजन, पालन और संहार करनेमें समर्थ हो सकता है?॥ २८॥

हे जगदम्बे! क्या चित्-शून्य तत्त्व जगत्की रचना करनेमें समर्थ हो सकते हैं? चूँकि तत्त्व जड़ हैं, अतः वे जगत्की रचनामें समर्थ नहीं हैं। हे देवि! यद्यपि इन्द्रियाँ गुण तथा कर्मसे युक्त हैं, फिर भी आपसे रहित होकर क्या वे फल प्रदान कर सकती हैं?॥ २९॥

हे माता! यदि आप यज्ञोंमें 'स्वाहा' के रूपमें निमित्त न बनतीं तो क्या देवगण उन यज्ञोंमें मुनियोंके द्वारा विधिवत् प्रदत्त आहुति-रूप यज्ञभाग प्राप्त करते? अतः यह निश्चय हो गया कि आप ही विश्वका पालन करती हैं॥ ३०॥

सृष्टिके प्रारम्भमें इस सम्पूर्ण जगत्की रचना आपने ही की है, आप ही विष्णु-शिव आदि प्रमुख देवताओं तथा दिक्पालोंकी रक्षा करती हैं और प्रलयकालमें आप ही सम्पूर्ण विश्वको अपनेमें विलीन कर लेती हैं। [हे देवि!] जब हम देवता आपके चरित्रको नहीं जान पाते, तब मन्दभाग्य लोग भला उसे कैसे जान सकते हैं?॥ ३१॥

हे माता! आपने महिषका रूप धारण करनेवाले अत्यन्त उग्र असुरका वध करके इस देवसमुदायकी रक्षा की है। हे जननि! जब वेद भी यथार्थरूपसे आपकी गतिको नहीं जान पाये, तब हम मन्दबुद्धि देवता उसे कैसे जान सकते हैं, हम कैसे आपकी स्तुति करें?॥ ३२॥

विख्यात प्रभाववाली हे जननि! आपने जगत्में महान् कार्य किया है जो कि आपने संसारके अचिन्त्य कण्टकस्वरूप हमारे शत्रु दुरात्मा महिषासुरका वध कर दिया। ऐसा करके आपने सम्पूर्ण लोकोंमें अपनी कीर्ति स्थापित कर दी है, अब आप सारे संसारपर अनुग्रह करें और हमारी रक्षा करें॥ ३३॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार देवताओंके स्तुति करनेपर देवीने मधुर स्वरमें उनसे कहा—हे श्रेष्ठ देवतागण! इसके अतिरिक्त भी कोई दुःसाध्य कार्य हो तो उसे आपलोग बता दीजिये। जब-जब आप देवताओंके सामने कोई महान् दुःसाध्य कार्य उपस्थित हो, तब-तब आपलोग मेरा स्मरण कीजियेगा; मैं उस संकटको शीघ्र ही दूर कर

दूँगी॥ ३४-३५॥

देवता बोले—हे देवि! इस समय आपने हमारा सारा कार्य पूर्ण कर दिया है जो कि आपके द्वारा हमारा शत्रु यह महिषासुर मार डाला गया॥ ३६॥

हे अम्ब! हे जगज्जननि! अब आप हमारे मनमें अपने प्रति ऐसी अविचल भक्ति स्थापित कीजिये कि हम सदा आपके चरण-कमलका स्मरण करते रहें॥ ३७॥

माता ही [अपनी सन्तानके] हजारों अपराध सह सकती है—ऐसा समझकर लोग जगत्की उत्पत्तिस्वरूपा भगवतीकी उपासना क्यों नहीं करते?॥ ३८॥

इस देहरूपी वृक्षपर जीवात्मा और परमात्मारूपी दो पक्षी रहते हैं। उन दोनोंमें सर्वदा मित्रता बनी रहती है, किंतु उनका तीसरा सखा ऐसा कोई भी नहीं है, जो अपराधको सह सके। अतएव यह जीव आप-जैसे मित्रको त्यागकर क्या करेगा? देवताओं और मानवोंकी योनिमें वह प्राणी पापी, मन्दभागी और अधम है, जो अत्यन्त दुर्लभ देह पाकर भी आपका स्मरण नहीं करता॥ ३९-४०$^{१}/_{२}$॥

हम मन, वाणी और कर्मसे बार-बार यह सत्य कह रहे हैं कि सुख अथवा दुःख—प्रत्येक परिस्थितिमें एकमात्र आप ही हमारे लिये अद्भुत शरण हैं। हे देवि! आप अपने समस्त श्रेष्ठ आयुधोंद्वारा हमारी निरन्तर रक्षा करें। आपके चरणकमलोंकी धूलिको छोड़कर हमारे लिये कोई दूसरा शरण नहीं है॥ ४१-४२$^{१}/_{२}$॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार देवताओंके स्तुति करनेपर भगवती जगदम्बा वहीं अन्तर्धान हो गयीं। तब उन्हें अन्तर्हित देखकर देवता बड़े विस्मयमें पड़ गये॥ ४३॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत पंचम स्कन्धका 'देवीद्वारा सान्त्वनाप्रदान' नामक उन्नीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १९॥

बीसवाँ अध्याय

देवीका मणिद्वीप पधारना तथा राजा शत्रुघ्नका भूमण्डलाधिपति बनना

जनमेजय बोले—हे मुने! अब मैंने भगवतीके अत्यन्त अद्भुत तथा जगत्को शान्ति प्रदान करनेवाले प्रभावको तो देख लिया, फिर भी हे द्विजवर! आपके मुखारविन्दसे निकली हुई सुधामयी कथाको बार-बार सुनते हुए भी मुझे तृप्ति नहीं हो रही है। [अब आप बतायें] भगवतीके अन्तर्धान हो जानेपर उन प्रधान देवताओंने क्या किया? देवीका यह परम पावन चरित्र मनुष्योंके अल्प पुण्योंसे प्राप्त हो सकना सर्वथा दुर्लभ ही है॥ १-२॥

अल्पभाग्यवाले मनुष्यको छोड़कर भगवतीके कथाश्रवणमें सदा तत्पर कर्णपुटवाला ऐसा कौन होगा जो देवीके कथामृतसे तृप्ति प्राप्त कर लेता है? जिस कथामृतका पान करनेसे मनुष्य अमरत्व प्राप्त कर लेता है, उसे जो आदरपूर्वक नहीं पीते, उन मनुष्योंको धिक्कार है॥ ३॥

भगवती जगदम्बाका लीलाचरित्र देवताओं और बड़े-बड़े मुनियोंके लिये भी रक्षाका परम साधन है। [यह लीलाचरित्र] मनुष्योंको संसारसागरसे पार करनेके लिये एक नौका है। कृतज्ञजन उस चरित्रको भला कैसे त्याग सकते हैं?॥ ४॥

जीवन्मुक्त तथा मोक्षकी कामना करनेवाले अथवा रोगग्रस्त जो कोई भी सांसारिक प्राणी हों, उन सबको चाहिये कि वे अपने कर्णपुटसे भगवतीके इस सर्वार्थदायक कथामृतका पान करते रहें—ऐसा वेदवेत्ता कहते हैं। हे मुने! धर्म, अर्थ और काममें तत्पर राजाओंको तो विशेष रूपसे कथामृतका पान करना चाहिये। जब मुक्त प्राणीतक उस कथामृतका पान करते हैं, तब मुक्तिसे वंचित जन इसका पान क्यों न करें!॥ ५-६॥

मैं तो यह अनुमान करता हूँ कि जिन लोगोंने अपने पूर्वजन्ममें सुन्दर कुन्दपुष्पों, चम्पाके पुष्पों तथा बिल्वपत्रोंसे भगवतीका पूजन किया है, वे ही इस जन्ममें भूतलपर भोग तथा ऐश्वर्यसे सम्पन्न राजा होते हैं॥ ७॥

जो मनुष्य [पवित्र] भारत-भूभागमें यह मानवशरीर पाकर भी भगवतीकी भक्तिसे रहित हैं तथा जिन्होंने उनकी आराधना नहीं की, वे सदा धन-धान्यसे हीन, रोगग्रस्त और नि:सन्तान रहते हैं; साथ ही वे लोग दूसरोंके दास बनकर निरन्तर घूमते रहते हैं और आज्ञाकारी होकर दूसरोंका भार ढोया करते हैं। वे दिन-रात स्वार्थसाधनमें लगे रहते हैं, फिर भी उन्हें अपना पेट भरनेतकके लिये अन्न कभी नहीं मिलता॥ ८-९॥

इस संसारमें जो लोग अन्धे, गूँगे, बहरे, लूले और कोढ़ीके रूपमें कष्ट भोग रहे हैं, उनके विषयमें विद्वानोंको यह अनुमान कर लेना चाहिये कि उन्होंने भगवतीकी निरन्तर आराधना नहीं की है॥ १०॥

जो लोग राजोचित भोगसे युक्त, ऐश्वर्यसे सम्पन्न, अनेक मनुष्योंसे सेवित और वैभवशाली दिखायी पड़ते हैं, उनके विषयमें यह अनुमान लगाना चाहिये कि उन्होंने अवश्य ही जगदम्बाकी उपासना की है॥ ११॥

अतएव हे सत्यवतीनन्दन! अब आप कृपा करके भगवतीके उत्तम चरित्रका वर्णन कीजिये; आप बड़े दयालु हैं॥ १२॥

उस पापी महिषासुरका वध करनेके पश्चात् देवताओंसे भलीभाँति पूजित होकर सभी देवताओंके तेजसे प्रादुर्भूत वे भगवती महालक्ष्मी कहाँ चली गयीं?॥ १३॥

हे महाभाग! आपने अभी कहा है कि वे तुरंत अन्तर्धान हो गयीं। स्वर्गलोक अथवा मृत्युलोक किस जगह वे भगवती भुवनेश्वरी प्रतिष्ठित हुईं? वे वहींपर विलीन हो गयीं या वैकुण्ठधाममें विराजने लगीं अथवा वे सुमेरुपर्वतपर विराजमान हुईं, अब आप मुझे यह सब यथार्थरूपमें बतायें॥ १४-१५॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] इसके पहले मैं आपसे रमणीय मणिद्वीपका वर्णन कर चुका हूँ। वह भगवतीका क्रीडास्थल है तथा उनके लिये सदा परम प्रिय बतलाया गया है। जहाँ ब्रह्मा, विष्णु और महेश स्त्रीरूपमें परिणत हो गये थे और पुन: पुरुषत्व पाकर वे अपने-अपने कार्योंमें संलग्न हो गये। वह परम सुन्दर द्वीप सुधासागरके मध्यमें विराजमान है। भगवती जगदम्बा वहाँ अनेक रूपोंमें सदा विहार करती रहती हैं॥ १६—१८॥

[महिषासुरके वधके पश्चात्] देवताओंसे स्तुत तथा भलीभाँति पूजित होकर वे सनातनी मायाशक्ति भगवती शिवा उसी मणिद्वीपमें चली गयीं, जहाँ वे निरन्तर विहार करती रहती हैं॥ १९॥

उन सर्वेश्वरी भगवतीको अन्तर्हित देखकर देवताओंने सूर्यवंशमें उत्पन्न, महाबली एवं सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न अयोध्याधिपति शत्रुघ्न नामक पराक्रमी राजाको महिषासुरके सुन्दर आसनपर अभिषिक्त किया। इस प्रकार इन्द्र आदि सभी प्रधान देवता शत्रुघ्नको राज्य प्रदान करके अपने-अपने वाहनोंसे अपने-अपने स्थानोंको चले गये॥ २०—२२॥

हे भूपते! उन देवताओंके चले जानेपर पृथ्वीपर धर्मराज्य स्थापित हो गया और प्रजाएँ सुखी हो गयीं। मेघ उचित समयपर जल बरसाते थे और पृथ्वीपर उत्तम धान्य उत्पन्न होते थे। वृक्ष फलों तथा फूलोंसे सदा लदे रहते थे और वे लोगोंके लिये बड़े सुखदायक हो गये॥ २३-२४॥

घड़ेके समान थनवाली दुधारू गौएँ मनुष्योंको उनकी इच्छाके अनुसार दूध दिया करती थीं। स्वच्छ एवं शीतल जलवाली नदियाँ सुगमतापूर्वक बहती थीं और पक्षियोंसे सुशोभित रहती थीं॥ २५॥

ब्राह्मण वेदतत्त्वोंके ज्ञाता हो गये और यज्ञकर्ममें प्रवृत्त रहने लगे। क्षत्रिय धर्मभावनासे ओतप्रोत हो गये और सदा दान तथा अध्ययनमें तत्पर रहने लगे। सभी राजा शस्त्रविद्या प्राप्त करनेमें संलग्न हो गये, वे सदा प्रजाओंकी रक्षा करने लगे, उनका दण्ड-विधान न्यायके अनुसार चलने लगा और वे शान्तिगुणसे सम्पन्न हो गये॥ २६-२७॥

सभी प्राणियोंमें परस्पर मेल-जोल रहने लगा, खानोंसे मनुष्योंको अपार धन प्राप्त होने लगा और गोशालाएँ गोसमुदायसे सम्पन्न हो गयीं॥ २८॥

हे नृपश्रेष्ठ! उस समय धरातलपर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—ये सब-के-सब देवीकी भक्तिमें संलग्न हो गये॥ २९॥

सर्वत्र मनोहर यज्ञमण्डप तथा यज्ञयूप दृष्टिगोचर होते थे। ब्राह्मणों तथा क्षत्रियोंद्वारा सम्पन्न किये गये यज्ञोंसे सारी

पृथ्वी सुशोभित होने लगी॥ ३०॥

उस समय स्त्रियाँ पातिव्रतधर्मपरायण, सुशील तथा सत्यनिष्ठ थीं और पुत्र पिताके प्रति श्रद्धा रखनेवाले तथा धर्मशील होते थे॥ ३१॥

पृथ्वीतलपर पाखण्ड तथा अधर्म कहीं भी नहीं रह गया। उस समय वेदवाद और शास्त्रवादके अतिरिक्त अन्य कोई वाद प्रचलित नहीं थे॥ ३२॥

उस समय किसीमें भी परस्पर कलह नहीं होता था, दीनता नहीं थी और किसीकी अशुभ बुद्धि नहीं रह गयी थी। सभी जगह लोग सुखी थे और आयु पूर्ण होनेपर ही उनकी मृत्यु होती थी, किसीकी अकालमृत्यु नहीं होती थी॥ ३३॥

मित्रोंमें वियोग नहीं होता था, किसीपर कभी विपत्तियाँ नहीं आती थीं अनावृष्टि नहीं होती थी, न अकाल पड़ता था और न तो दु:खदायिनी महामारी ही मनुष्योंको ग्रसित करती थी॥ ३४॥

न किसीको रोग था और न तो लोगोंका आपसमें डाह तथा विरोध ही था। सर्वत्र नर तथा नारी सब प्रकारसे सुखी थे। सभी मनुष्य स्वर्गमें रहनेवाले देवताओंकी भाँति आनन्द भोगते थे। हे राजन्! उस समय चोर, पाखण्डी, धोखेबाज, दम्भी, चुगलखोर, लम्पट तथा जड़ प्रकृतिवाले मनुष्य नहीं रह गये थे। हे भूपते! वेदोंसे द्वेष करनेवाले तथा पापी मनुष्य उस समय नहीं थे, अपितु सभी लोग धर्मनिष्ठ थे और नित्य ब्राह्मणोंकी सेवामें लगे रहते थे॥ ३५—३७१/२॥

सृष्टिधर्मके तीन प्रकार होनेके कारण ब्राह्मण भी तीन प्रकारके थे—सात्त्विक, राजस तथा तामस। उनमें सत्त्व-वृत्तिवाले सभी सात्त्विक ब्राह्मण वेदोंके ज्ञाता तथा [यज्ञकार्योंमें] दक्ष, दान लेनेकी प्रवृत्तिसे रहित, दयालु तथा संयम रखनेवाले थे। वे धर्मपरायण रहकर सात्त्विक अन्नोंसे यज्ञ करते हुए सदा पुरोडाशके द्वारा विधिविधानसे हवन करते थे और पशुबलिके द्वारा कभी भी यज्ञ सम्पन्न नहीं करते थे। हे राजन्! वे सात्त्विक ब्राह्मण दान, अध्ययन और यज्ञ—इन्हीं तीनों कार्योंमें सदा अभिरुचि रखते थे*॥ ३८—४११/२॥

राजस ब्राह्मण वेदके विद्वान् थे और वे क्षत्रियोंके पुरोहित होते थे। वे सदा छ: कर्मोंमें ही संलग्न रहते थे। यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान देना, दान लेना, वेद पढ़ना और वेद पढ़ाना—ये ही उनके छ: कर्म थे॥ ४२-४३१/२॥

तामस प्रकृतिवाले ब्राह्मण क्रोधी और राग-द्वेषपरायण रहते थे। वे सदा राजाओंके यहाँ कर्मचारीके रूपमें कार्य करते थे। वे कुछ-कुछ अध्ययनमें भी संलग्न रहते थे॥ ४४१/२॥

इस प्रकार महिषासुरका वध हो जानेपर सभी ब्राह्मण सुखी, वेदपरायण, व्रतनिष्ठ तथा दान-धर्ममें संलग्न हो गये; क्षत्रिय प्रजापालनमें लग गये; वैश्य व्यवसायमें तत्पर हो गये और कुछ अन्य वैश्य कृषि, वाणिज्य, गोरक्षा तथा सूदपर धन देनेके कर्ममें प्रवृत्त हो गये इस प्रकार महिषासुरके संहारके पश्चात् सारा जनसमुदाय आनन्दसे परिपूर्ण हो गया॥ ४५—४७॥

प्रजाओंकी व्याकुलता दूर हो गयी, उन्हें पर्याप्त धन प्राप्त होने लगा, गौएँ परम सुन्दर तथा बहुत दूध देनेवाली हो गयीं, नदियाँ प्रचुर जलसे भर गयीं, वृक्ष बहुत अधिक फलोंसे लद गये और सभी मनुष्य रोगरहित हो गये। कहीं भी किसी प्राणीको मानसिक व्याधियाँ तथा प्राकृतिक आपदाएँ व्यथित नहीं करती थीं॥ ४८-४९॥

उस समय सभी प्राणी अकालमृत्युको प्राप्त नहीं होते थे, वे सब प्रकारके वैभवसे सम्पन्न तथा नीरोग रहते थे। वेदप्रतिपादित धर्ममें तत्पर रहते हुए सभी लोगोंने भगवती चण्डिकाके चरणकमलोंकी सेवामें ही अपना चित्त लगा दिया था॥ ५०॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत पंचम स्कन्धका 'महिषासुरके वधके पश्चात् पृथ्वीके सुखका वर्णन' नामक बीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २०॥

---

* सात्त्विक ब्राह्मणोंद्वारा किये जानेवाले निरामिष यज्ञकी प्रशंसा करनेसे यह स्पष्ट है कि मांस-भक्षणादि तथा काम-क्रोधादि विकार रजोगुण तथा तमोगुणसे उत्पन्न हो जाते हैं, अत: सर्वथा त्याज्य हैं; इन्हें भ्रमवश विधि नहीं समझना चाहिये।

इक्कीसवाँ अध्याय

शुम्भ और निशुम्भको ब्रह्माजीके द्वारा वरदान, देवताओंके साथ उनका युद्ध और देवताओंकी पराजय

व्यासजी बोले—हे राजन्! सुनिये, मैं देवीका उत्तम चरित्र कहता हूँ; यह सम्पूर्ण प्राणियोंको सुख देनेवाला तथा समस्त पापोंका नाश करनेवाला है॥ १॥

[पूर्वकालमें] शुम्भ और निशुम्भ नामक दो [असुर] भाई थे। वे बड़े बलवान्, महापराक्रमी तथा पुरुषोंसे अवध्य थे॥ २॥

उनके पास बहुत-से सैनिक थे। वे दोनों वीर देवताओंको सदा दुःख देते रहते थे। वे बड़े दुराचारी तथा मदमत्त थे। उनके पास बहुत अधिक दानव थे॥ ३॥

अम्बिकाने देवताओंके हितके लिये उन दोनों दानवोंको उनके परिचरोंसमेत अत्यन्त भीषण संग्राममें मार डाला॥ ४॥

महाबाहु चण्ड-मुण्ड, महाभयंकर रक्तबीज और धूम्रलोचन नामक असुर—वे सब भी भगवतीके द्वारा रणभूमिमें मारे गये थे॥ ५॥

उन सबका वध करके भगवती अम्बिकाने देवताओंका बहुत बड़ा भय दूर कर दिया। तदनन्तर देवताओंने पवित्र सुमेरुपर्वतपर उन देवीका स्तवन तथा विधिवत् पूजन किया॥ ६॥

राजा बोले—पूर्वकालमें ये दोनों दानव कौन थे, वे बड़े-बड़े बलशालियोंसे भी श्रेष्ठ कैसे हुए, उन्हें राजसिंहासनपर किसने प्रतिष्ठित किया, स्त्रीके द्वारा वे कैसे मारे गये, किस देवताकी तपस्याके परिणामस्वरूप प्राप्त वरदानसे वे महाबली हुए? और किस प्रकार वे मारे गये? यह सब विस्तारपूर्वक बताइये॥ ७-८॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! अब आप समस्त पापोंका नाश करनेवाली, सभी प्रकारके अभीष्ट फल प्रदान करनेवाली, मंगलमयी तथा भगवतीके चरित्रसे ओत-प्रोत दिव्य कथा सुनिये॥ ९॥

पूर्वकालमें शुम्भ-निशुम्भ नामक दो दैत्य पातालसे भूमण्डलपर आ गये। वे दोनों भाई देखनेमें बड़े सुन्दर थे॥ १०॥

पूर्ण वयस्क होनेपर उन दोनोंने जगत्पावन पुष्कर तीर्थमें अन्न तथा जलका परित्याग करके कठोर तप आरम्भ कर दिया॥ ११॥

योगसाधनामें तत्पर रहनेवाले शुम्भ और निशुम्भ एक ही स्थानपर आसन लगाकर दस हजार वर्षोंतक घोर तपस्या करते रहे॥ १२॥

अन्तमें समस्त लोकोंके पितामह भगवान् ब्रह्माजी उनपर प्रसन्न हो गये और हंसपर आरूढ़ होकर वहाँ आ गये॥ १३॥

ध्यानमग्न होकर बैठे हुए उन दोनोंको देखकर जगत्के रचयिता ब्रह्माजीने कहा—हे महाभाग! तुम दोनों उठो, मैं तुमलोगोंकी तपस्यासे परम प्रसन्न हूँ। तुमलोगोंका जो भी अभीष्ट वर हो उसे बताओ, मैं अवश्य दूँगा। तुम दोनोंका तपोबल देखकर तुमलोगोंकी अभिलाषा पूर्ण करनेके विचारसे ही मैं यहाँ आया हूँ॥ १४-१५॥

व्यासजी बोले—ब्रह्माजीकी यह वाणी सुनकर समाहित चित्तवाले उन दोनोंका ध्यान टूट गया। तब प्रदक्षिणा करके उन्होंने दण्डकी भाँति भूमिपर गिरकर ब्रह्माजीको प्रणाम किया। तत्पश्चात् तपके कारण दुर्बल शरीरवाले दोनों दानवोंने ब्रह्माजीसे बड़ी दीनतापूर्वक गद्गद वाणीमें यह मधुर वचन कहा—हे देवदेव! हे दयासिन्धो! हे भक्तोंको अभय देनेवाले ब्रह्मन्! हे विभो! यदि आप हमपर प्रसन्न हैं, तो हमें अमरत्व प्रदान कीजिये। मृत्युसे बढ़कर दूसरा कोई भी भय इस पृथ्वीलोकमें नहीं है, उसी भयसे सन्त्रस्त होकर हम दोनों आपकी शरणको प्राप्त हुए हैं। हे देवदेवेश! आप हमारी रक्षा कीजिये। हे जगत्कर्ता! हे क्षमानिधान! हे विश्वात्मा! आप हमारे मरणजन्य भयको शीघ्र ही दूर कीजिये॥ १६—२०॥

ब्रह्माजी बोले—तुम लोगोंने यह कैसा सर्वथा नियमविरुद्ध वरदान माँगा है, तीनों लोकोंमें किसीके द्वारा किसीके भी लिये यह वरदान सर्वथा अदेय है। जन्म लेनेवालेकी मृत्यु निश्चित है और मरनेवालेका जन्म निश्चित है। विश्वकी रचना करनेवाले प्रभुने यह नियम पहलेसे ही निर्धारित कर रखा है।* सभी प्राणियोंको

* जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च। मर्यादा विहिता लोके पूर्वं विश्वकृता किल॥ (श्रीमद्देवीभा० ५। २१। २२)

निश्चितरूपसे मरना ही पड़ता है; इसमें सन्देह नहीं है। अत: इसके अतिरिक्त तुमलोगोंका जो भी दूसरा अभिलषित वर हो, उसे माँग लो, मैं अभी देता हूँ॥ २१—२३॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] ब्रह्माजीकी यह बात सुनकर उन दोनों दानवोंने परस्पर भलीभाँति विचार करनेके उपरान्त अपने सम्मुख खड़े उन ब्रह्माजीको प्रणाम करके कहा—हे कृपासिन्धो! देवता, मनुष्य, मृग अथवा पक्षी—इनमेंसे किसी भी पुरुषजातिके द्वारा हमारा मरण न हो—यही हमारा अभीष्ट वर है, इसे आप हमें प्रदान करें। ऐसी कौन बलवती स्त्री है, जो हम दोनोंका नाश कर सके? इस चराचर त्रिलोकीमें किसी भी स्त्रीसे हम नहीं डरते। हे ब्रह्मन्! हम दोनों भाई पुरुषोंसे अवध्य होवें। हमें स्त्रियोंसे कोई डर नहीं है; क्योंकि वे तो स्वभावसे ही अबला होती हैं॥ २४—२७॥

व्यासजी बोले—उन दोनोंका यह वचन सुनकर ब्रह्माजीने उन्हें अभिलषित वर दे दिया और प्रसन्नमनसे अपने स्थानपर चले गये॥ २८॥

ब्रह्माजीके अपने लोक चले जानेपर वे दोनों दानव भी अपने घर चले गये। उन्होंने वहाँपर शुक्राचार्यको अपना पुरोहित बनाकर उनका पूजन किया॥ २९॥

तत्पश्चात् किसी उत्तम दिन और नक्षत्रमें सोनेका दिव्य तथा सुन्दर सिंहासन बनवाकर मुनिने राज्यस्थापनाके लिये उन्हें प्रदान किया। उन्होंने ज्येष्ठ होनेके कारण शुम्भको वह सुन्दर राजसिंहासन समर्पित किया। उसी समय अनेक श्रेष्ठ दानव उसकी सेवा करनेके लिये शीघ्र वहाँ उपस्थित हो गये॥ ३०-३१॥

बलाभिमानी तथा महापराक्रमी चण्ड और मुण्ड—ये दोनों भाई भी अपनी सेना तथा बहुत-से रथ, घोड़े और हाथी साथमें लेकर उनके पास आ गये॥ ३२॥

शुम्भको राजा बना हुआ सुनकर उसीके रूपवाला धूम्रलोचन नामक प्रचण्ड पराक्रमी दैत्य भी उस समय सेनासहित वहाँ पहुँच गया॥ ३३॥

उसी प्रकार वरदानके प्रभावसे अत्यधिक बलशाली तथा शूरवीर रक्तबीज भी दो अक्षौहिणी सेनाके साथ वहाँ आकर सम्मिलित हो गया। हे राजन्! उसके अतिशय बलवान् होनेका एक कारण यह था कि संग्राममें युद्ध करते हुए उस रक्तबीजके शस्त्राहत होनेपर उसके शरीरसे जब भूमिपर रुधिर गिरता था, उसी समय उसके ही समान क्रूर और हाथोंमें शस्त्र धारण किए बहुत-से वीर पुरुष उत्पन्न हो जाते थे। रक्तबिन्दुओंसे उत्पन्न वे पुरुष उसी रक्तबीजके आकार, रूप और पराक्रमवाले होते थे और वे सभी पुन: युद्ध करने लगते थे। इसलिये संग्राममें महापराक्रमी तथा अजेय समझा जानेवाला वह महान् असुर रक्तबीज सभी प्राणियोंसे अवध्य हो गया था॥ ३४—३८॥

इसके अतिरिक्त चतुरंगिणी सेनासे युक्त अन्य बहुत-से पराक्रमी दानव भी शुम्भको अपना राजा मानकर उसके सेवक बन गये॥ ३९॥

उस समय शुम्भ और निशुम्भके पास असंख्य सेना हो गयी थी और उन्होंने अपने बलके प्रभावसे भूमण्डलका सम्पूर्ण राज्य अपने अधिकारमें कर लिया॥ ४०॥

तत्पश्चात् शत्रुपक्षके वीरोंका संहार करनेवाले निशुम्भने अपनी सेना सुसज्जित करके इन्द्रको जीतनेहेतु बड़े वेगसे स्वर्गके लिये प्रस्थान किया। [वहाँ पहुँचकर] उसने लोकपालोंके साथ घोर युद्ध किया। तब इन्द्रने उसके वक्षपर वज्रसे प्रहार किया। उस वज्राघातसे आहत होकर दानव शुम्भका छोटा भाई निशुम्भ भूमिपर गिर पड़ा। तब परम साहसी उस निशुम्भकी सेना भाग गयी॥ ४१—४३॥

अपने भाईको मूर्च्छित हुआ सुनकर शत्रुसेनाको नष्ट कर डालनेवाला शुम्भ वहाँ आकर सभी देवताओंको बाणोंसे मारने लगा॥ ४४॥

इस प्रकार किसी भी कार्यको कठिन न समझनेवाले उस शुम्भने भीषण युद्ध किया और इन्द्रसहित सभी देवताओं तथा लोकपालोंको पराजित कर दिया॥ ४५॥

तब उस शुम्भने अपने पराक्रमके प्रभावसे कल्पवृक्ष और कामधेनुसहित इन्द्रपदको अधिकारमें कर लिया। उस दुस्साहसी शुम्भने तीनों लोकोंपर आधिपत्य जमा लिया

और देवताओंको मिलनेवाले यज्ञभागोंका हरण कर लिया। नन्दनवन पा करके वह महान् असुर आनन्दित हुआ और अमृतके पानसे उसे बहुत सुख मिला॥ ४६-४७१/२ ॥

उसने कुबेरको जीतकर उनके राज्यपर अधिकार कर लिया और सूर्य तथा चन्द्रमाका भी अधिकार छीन लिया। उसने यमराजको परास्त करके उनका पद स्वयं ले लिया। इसी प्रकार अपने बलके प्रभावसे वरुणका राज्य अपने अधीन करके वह शुम्भ राज्य-शासन स्वयं करने लगा और अग्नि तथा वायुके कार्य स्वयं करने लगा॥ ४८—५० ॥

तब [असुरोंके द्वारा] तिरस्कृत और राज्य छिन जानेके कारण नष्ट शोभावाले सभी देवता नन्दनवन छोड़कर पर्वतोंकी गुफाओंमें चले गये॥ ५१ ॥

अधिकारसे वंचित होकर वे सब निर्जन वनमें भटकने लगे। अब उनका कोई सहारा नहीं रहा, उनके रहनेकी जगह नहीं रही, वे तेजहीन और आयुधविहीन हो चुके थे। इस प्रकार सभी देवता पर्वतोंकी कन्दराओं, निर्जन उद्यानों और नदियोंकी घाटियोंमें विचरण करने लगे॥ ५२-५३ ॥

हे महाराज! स्थानभ्रष्ट हो जानेके कारण उन बेचारे लोकपालोंको कहीं भी सुख नहीं मिल रहा था, और फिर यह सुनिश्चित भी है कि सुख सदा प्रारब्धके अधीन रहता है॥ ५४ ॥

हे नराधिप! बलशाली, बड़े भाग्यवान्, महान् ज्ञानी तथा धनसम्पन्न व्यक्ति भी विपरीत समय उपस्थित होनेपर दुःख तथा कष्ट पाते हैं॥ ५५ ॥

हे महाराज! उस कालकी गति बड़ी ही विचित्र होती है, जो एक साधारण मनुष्यको राजा बना देता है और उसके बाद राजाको भिखारी बना देता है। वही काल दाताको याचक, बलवान्‌को निर्बल, पण्डितको अज्ञानी और वीरको अत्यन्त कायर बना देता है॥ ५६-५७ ॥

सौ अश्वमेधयज्ञ करनेके बाद सर्वोत्कृष्ट इन्द्रासन प्राप्त करके भी बादमें समयके फेरसे इन्द्रको असीम कष्ट उठाना पड़ा था—कालकी ऐसी विचित्र गति होती है॥ ५८ ॥

समय ही मनुष्यको धर्मात्मा तथा ज्ञानवान् बनाता है और फिर उसी व्यक्तिको पापी तथा अत्यल्प ज्ञानसे भी हीन बना देता है॥ ५९ ॥

अतः कालकी इस अद्भुत गतिके विषयमें कुछ भी आश्चर्य नहीं करना चाहिये। यही काल ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदिको भी इसी प्रकार संकटमें डाल देता है। बलवान् कालके ही प्रभावसे भगवान् विष्णुको सूकर आदि योनियोंमें जन्म लेना पड़ा और शिवजीको कपाली होना पड़ा॥ ६०-६१ ॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत पंचम स्कन्धका 'शुम्भ-निशुम्भद्वारा स्वर्गविजयवर्णन' नामक इक्कीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २१ ॥

बाईसवाँ अध्याय

देवताओंद्वारा भगवतीकी स्तुति और उनका प्राकट्य

व्यासजी बोले—हे नृपश्रेष्ठ! सभी देवता पराजित हो गये। इसके बाद शुम्भ राज्यपर शासन करने लगा। इस प्रकार एक हजार वर्ष व्यतीत हो गये॥ १ ॥

तत्पश्चात् राज्यच्युत होनेके कारण देवता महान् दुस्सह चिन्तामें पड़ गये। दुःखसे व्याकुल हुए वे देवता गुरु बृहस्पतिसे आदरपूर्वक यह पूछने लगे॥ २ ॥

हे गुरो! अब हम क्या करें, आप हमें बतायें। आप सर्वज्ञ महामुनि हैं। हे महाभाग! दुःखकी निवृत्तिका उपाय भी तो होता है। हजारों ऐसे वैदिक मन्त्र हैं, जो उपचारोंसे परिपूर्ण हैं और सभी मनोरथ पूर्ण करनेवाले हैं। सूत्रोंने उनका भलीभाँति निदर्शन भी किया है। सभी वांछित फल प्रदान करनेवाले अनेक प्रकारके यज्ञ भी बताये गये हैं। हे मुने! आप उनका अनुष्ठान कीजिये; क्योंकि आप उनकी क्रिया-विधिको भलीभाँति जानते हैं॥ ३—५ ॥

शत्रुओंके विनाशके लिये वेदमें जैसा उपाय बताया गया है, अब आप विधिपूर्वक उसका अनुष्ठान कीजिये, जिससे हमारे दुःखका पूर्णरूपसे नाश हो जाय। हे आंगिरस! दानवोंके विनाशके लिये आप अपनी बुद्धिके अनुसार आज ही अभिचारकर्म आरम्भ करनेकी कृपा कीजिये॥ ६-७ ॥

बृहस्पति बोले—हे देवराज! वेदोंमें बताये गये सभी मन्त्र प्रारब्धके अनुसार ही फल प्रदान करनेवाले हैं। वे स्वतन्त्र नहीं हैं और अकेले फल प्रदान नहीं कर सकते॥ ८ ॥

उन मन्त्रोंके देवता तो आप ही लोग हैं। जब आपलोग स्वयं समयके फेरसे कष्टमें पड़े हुए हैं तो मैं कौन-सा उपाय करूँ?॥ ९॥

यज्ञ-कर्मोंमें इन्द्र, अग्नि, वरुण आदिकी पूजा की जाती है और वे आप सब देवता ही स्वयं विपत्ति भोग रहे हैं, तब यज्ञ क्या कर सकेंगे?॥ १०॥

अवश्यम्भावी घटनाका कोई प्रतीकार नहीं है; फिर भी [संकटसे बचनेके लिये] उपाय तो करना ही चाहिये, यह शिष्ट पुरुषोंका उपदेश है॥ ११॥

कुछ विद्वान् कहते हैं कि दैव सबसे बलवान् होता है और उपायवादी लोग दैवको निरर्थक बताते हैं, किंतु मनुष्योंके लिये दैव और उपाय दोनों ही आवश्यक माने गये हैं। मात्र दैवका आश्रय लेकर कभी भी बैठे नहीं रहना चाहिये। अपनी बुद्धिसे विचार करके सम्यक् रूपसे प्रयत्न करनेमें तत्पर हो जाना चाहिये। इसलिये भलीभाँति बार-बार सोच-विचारकर मैं आप सभीको उपाय बता रहा हूँ॥ १२—१४॥

पूर्वकालमें जब भगवती जगदम्बाने आपलोगोंपर प्रसन्न होकर महिषासुरका वध किया था, उस समय आपलोगोंके स्तुति करनेपर उन्होंने यह वरदान दिया था—'आपलोगोंके स्मरण करनेपर मैं सदा आपलोगोंकी विपत्ति दूर करूँगी। हे देवेश्वरो! जब-जब आपलोगोंपर दैव-जन्य आपदाएँ आयें, तब-तब आप देवतागण मेरा ध्यान कीजियेगा, स्मरण करते ही मैं आपलोगोंकी बड़ीसे बड़ी विपत्तियोंका नाश कर दूँगी'॥ १५—१७॥

अतः अब आपलोग परम रमणीक हिमालयपर्वतपर जाकर प्रेमपूर्वक भगवती चण्डिकाकी आराधना कीजिये। आपलोग मायाबीजके विधानके ज्ञाता हैं, उसीके पुरश्चरणमें तत्पर हो जाइये। मैं जानता हूँ कि इस अनुष्ठानके प्रभावसे वे भगवती प्रसन्न हो जायँगी॥ १८-१९॥

अब आपलोगोंके दुःखका अन्त दिखायी पड़ रहा है; इसमें सन्देह नहीं है। मैंने सुना है कि वे भगवती उस हिमालयपर्वतपर सदा विराजमान रहती हैं। उनकी स्तुति तथा विधिवत् पूजा करनेपर वे शीघ्र ही आपलोगोंको वांछित फल प्रदान करेंगी। अतः हे देवताओ! आपलोग दृढ़ निश्चय करके हिमालयपर्वतपर जाइये; वे भगवती आपलोगोंका कार्य अवश्य सिद्ध कर देंगी॥ २०-२१$^{1}/_{2}$॥

व्यासजी बोले—हे महाराज! उनका वचन सुनकर देवता हिमालयपर्वतपर चले गये। वहाँ देवीके ध्यानमें लीन होकर एकाग्र मनसे निरन्तर मायाबीज-मन्त्रका जप करते हुए उन सब देवताओंने भक्तोंके लिये अभय-दायिनी महामाया भगवतीको प्रणाम किया और पूर्णभक्तिसे युक्त होकर स्तोत्र-मन्त्रोंसे वे इस प्रकार उनकी स्तुति करने लगे॥ २२—२४॥

हे विश्वेश्वरि! हे प्राणोंकी स्वामिनि! सदा आनन्द-रूपमें रहनेवाली तथा देवताओंको आनन्द प्रदान करनेवाली हे देवि! आपको नमस्कार है। दानवोंका अन्त करनेवाली, मनुष्योंकी समस्त कामनाएँ पूर्ण करनेवाली तथा भक्तिके द्वारा अपने रूपका दर्शन देनेवाली हे देवि! आपको नमस्कार है॥ २५॥

हे आदिदेवस्वरूपिणि! आपके नामोंकी निश्चित संख्या तथा आपके इस रूपको कोई भी नहीं जान सकता। सबमें आप ही विराजमान हैं। जीवोंके सृजन और संहारकालमें शक्तिस्वरूपसे सदा आप ही कार्य करती हैं॥ २६॥

आप ही स्मृति, धृति, बुद्धि, जरा, पुष्टि, तुष्टि, धृति, कान्ति, शान्ति, सुविद्या, सुलक्ष्मी, गति, कीर्ति, मेधा और विश्वकी पुरातन मूल प्रकृति हैं॥ २७॥

आप जिस समय जिन स्वरूपोंसे देवताओंका कार्य सम्पन्न करती हैं, हम शान्तिके लिये आपके उन स्वरूपोंको नमस्कार करते हैं। आप ही क्षमा, योगनिद्रा, दया तथा विवक्षा—इन कल्याणकारी रूपोंसे सभी जीवोंमें निवास करती हैं॥ २८॥

पूर्वकालमें आपने हम देवताओंका कार्य किया था जो कि महान् शत्रु मदान्ध महिषासुरका वध कर डाला था। हे देवि! सभी देवताओंपर आपकी दया सदैव रहती है, आपकी दया पूर्ण प्रसिद्ध है और पुराणों तथा वेदोंमें भी उसका वर्णन किया गया है॥ २९॥

इसमें आश्चर्यकी क्या बात; क्योंकि माता प्रसन्नतापूर्वक सम्यक् प्रकारसे अपने पुत्रका पालन-पोषण करती ही है। क्योंकि आप देवताओंकी जननी हैं, अतः उनका सहायक बनकर एकाग्रमनसे हमलोगोंका सम्पूर्ण कार्य सम्पन्न करें॥ ३०॥

हे देवि! हे विश्ववन्द्ये! हमलोग न आपके गुणोंकी सीमा जानते हैं और न आपका स्वरूप ही जानते हैं। अतः रक्षा करनेमें समर्थ हे देवि! हमें केवल अपना कृपापात्र मानकर आप भयोंसे निरन्तर हमारी रक्षा करती रहें॥ ३१॥

यद्यपि बिना बाण चलाये; बिना मुष्टिप्रहार किये और बिना त्रिशूल, तलवार, बर्छी, दण्ड आदिका प्रयोग किये भी आप विनोदपूर्वक शत्रुओंका संहार करनेमें समर्थ हैं, फिर भी जगत्‌के उपकारके लिये ही आपकी यह लीला दृष्टिगोचर होती है॥ ३२॥

आपका यह रूप सनातन है—इस रहस्यको अविवेकी लोग नहीं जानते हैं। [हे माता!] बिना कारणके कोई कार्य नहीं होता। अतः अनुमान और प्रमाणके आधारपर हम यही जानते हैं कि इस विश्वकी रचना करनेवाली आप ही हैं॥ ३३॥

ब्रह्मा सृष्टिकर्ता, विष्णु पालनकर्ता और शंकर संहारकर्ताके रूपमें पुराणमें प्रसिद्ध हैं, किंतु क्या वे तीनों देव आपसे उत्पन्न नहीं हुए हैं? युगके प्रारम्भमें केवल आप ही रहती हैं, अतः आप ही सबकी माता हैं॥ ३४॥

हे देवि! पूर्वकालमें इन तीनोंने आपकी आराधना की थी, तब आपने उन्हें अपनी समस्त प्रबल शक्ति प्रदान की थी। वास्तवमें उसी शक्तिसे सम्पन्न होकर वे जगत्‌का सृजन, पालन तथा संहार करते हैं॥ ३५॥

जो संन्यासी लोग विश्वकी जननी, परम विद्या-स्वरूपिणी, समस्त वांछित फल प्रदान करनेवाली, मुक्ति-दायिनी तथा सभी देवताओंसे वन्दित चरणोंवाली आप भगवतीकी उपासना नहीं करते, क्या वे मन्दबुद्धि तथा अज्ञानी नहीं हैं?॥ ३६॥

विष्णु, शिव तथा सूर्यकी आराधना करनेवाले जो लोग कमला, लज्जा, कान्ति, स्थिति, कीर्ति और पुष्टि नामोंसे विख्यात आप भगवतीका ध्यान नहीं करते हैं, वे निश्चितरूपसे दम्भी प्रतीत होते हैं॥ ३७॥

विष्णु और शंकर आदि श्रेष्ठ देवता तथा असुर भी आपकी पूजा करते हैं। अतः हे माता! इस जगत्‌में जो मन्दबुद्धि मनुष्य आपकी आराधना नहीं करते, निश्चय ही विधाताने उन्हें ठग लिया है॥ ३८॥

भगवान् विष्णु अपने पास लक्ष्मीरूपमें विराजमान आप भगवतीके चरणकमलोंमें स्वयं महावर लगाते हैं। इसी प्रकार त्रिनेत्र भगवान् शिव भी अपने पास पार्वती-रूपमें विराजमान आप भगवतीके चरणकमलकी रजके सेवनमें निरन्तर तत्पर रहते हैं; तब अन्य मनुष्यकी बात ही क्या! आपके चरणकमलोंकी आराधना कौन नहीं करते? घर-गृहस्थीसे विरक्त बुद्धिमान् मुनिगण भी दया और क्षमारूपमें प्रतिष्ठित आप भगवतीकी उपासना करते हैं॥ ३९-४०॥

हे देवि! जो लोग आपके चरणोंकी उपासनामें संलग्न नहीं रहते, उन्हें निश्चय ही इस संसाररूप अगाध कूपमें गिरना पड़ता है। वे कुष्ठ, गुल्म और शिरोरोगसे ग्रस्त रहते हैं, दरिद्रता तथा दीनतासे युक्त रहते हैं और सुखोंसे सदा वंचित रहते हैं॥ ४१॥

हे माता! धन और स्त्रीसे रहित जो मनुष्य लकड़ीका बोझ ढोने और तृण आदिका वहन करनेमें लगे हैं, [उनके विषयमें] हम तो यही समझते हैं कि उन मन्दबुद्धि मनुष्योंने पूर्वजन्ममें आपके चरणोंकी उपासना कभी नहीं की॥ ४२॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार समस्त देवताओंके स्तुति करनेपर अम्बिका करुणासे ओत-प्रोत होकर तुरंत प्रकट हो गयीं। [उस समय] वे भगवती रूप तथा यौवनसे सम्पन्न थीं, उन्होंने दिव्य वस्त्र धारण कर रखा था, वे अलौकिक आभूषणोंसे अलंकृत थीं, दिव्य मालाओंसे सुशोभित हो रही थीं, दिव्य चन्दनसे अनुलिप्त थीं, जगत्‌को मोहित कर देनेवाले सौन्दर्यसे सम्पन्न थीं और समस्त शुभ लक्षणोंसे समन्वित थीं। इस प्रकार अद्वितीय स्वरूपवाली वे भगवती देवताओंके समक्ष प्रकट हुईं॥ ४३—४५॥

दिव्य रूप धारण करनेवाली तथा विश्वको मोह लेनेमें समर्थ कामदेवको भी मोहित करनेवाली वे भगवती गंगामें स्नान करनेकी अभिलाषासे पर्वतकी कन्दरासे बाहर निकली थीं॥ ४६॥

कोकिलके समान मधुर बोलनेवाली भगवती प्रेमपूर्ण भावसे मुसकराकर स्तुति करनेमें संलग्न देवताओंसे मेघके समान गम्भीर वाणीमें कहने लगीं॥ ४७॥

देवी बोलीं—हे श्रेष्ठ देवतागण! आपलोग यहाँपर इतनी बड़ी स्तुति किसलिये कर रहे हैं? आपलोग इस प्रकार चिन्तासे व्याकुल क्यों हैं? मुझे अपना कार्य बताइये॥ ४८॥

व्यासजी बोले—भगवतीका यह वचन सुनकर उनके

रूप-वैभवसे मोहित श्रेष्ठ देवताओंका हृदय उत्साहसे परिपूर्ण हो गया, जिससे वे प्रेमपूर्वक उनसे कहने लगे॥ ४९॥

देवता बोले—जगत्को नियन्त्रणमें रखनेवाली हे देवि! हम आपकी स्तुति कर रहे हैं, हम आपके शरणागत हैं। हे कृपासिन्धो! दैत्योंसे सताये गये हम देवताओंकी सम्पूर्ण दुःखोंसे रक्षा कीजिये॥ ५०॥

हे महादेवि! पूर्वकालमें देवताओंके लिये कंटक बने महिषासुरका वध करके आपने हमें वर प्रदान किया था—'आपलोग संकटमें मुझे सदा याद कीजियेगा, स्मरण करते ही मैं दैत्योंके द्वारा आपलोगोंको पहुँचायी गयी पीड़ाका निःसन्देह नाश कर दूँगी।' हे देवि! इसीलिये हमलोगोंने आपका स्मरण किया है॥ ५१-५२॥

इस समय शुम्भ और निशुम्भ नामक दो दानव उत्पन्न हुए हैं, जो देखनेमें महाभयंकर हैं। वे [हमारे कार्योंमें] विघ्न डाला करते हैं। वे पुरुषोंसे सर्वथा अवध्य हैं। ऐसे ही बलशाली दानव रक्तबीज तथा चण्ड और मुण्ड भी हैं। इन सभी तथा अन्य महाबली दानवोंने हम देवताओंका राज्य छीन लिया है। हे महाबले! हमलोगोंका दूसरा कोई अवलम्ब नहीं, एकमात्र आप ही हमारी शरण हैं। हे सुमध्यमे! आप दुःखित देवताओंका कार्य सिद्ध करें॥ ५३—५५॥

देवता आपके चरणोंकी उपासनामें सदैव संलग्न रहते हैं। [इस समय] वे सब महान् बलशाली दैत्योंके द्वारा विपत्तिमें डाल दिये गये हैं। अतः हे देवि! आप उन भक्तिपरायण देवताओंको दुःखरहित कर दीजिये। हे माता! आप दुःखित देवताओंका आश्रय बन जाइये॥ ५६॥

हे देवि! युगके आरम्भमें इस विश्वकी रचना आप भगवतीने स्वयं की थी—यह जानकर आप इस समय सम्पूर्ण भूमण्डलकी रक्षा करें। हे जननि! हे माता! अपने बलसे मदान्वित तथा अभिमानमें चूर दानव जगत्में लोगोंको पीड़ित कर रहे हैं॥ ५७॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत पंचम स्कन्धका 'देवोंद्वारा देवीकी की गयी आराधनाका वर्णन' नामक बाईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २२॥

तेईसवाँ अध्याय

भगवतीके श्रीविग्रहसे कौशिकीका प्राकट्य, देवीकी कालिकारूपमें परिणति, चण्ड-मुण्डसे देवीके अद्भुत सौन्दर्यको सुनकर शुम्भका सुग्रीवको दूत बनाकर भेजना, जगदम्बाका विवाहके विषयमें अपनी शर्त बताना

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] तब शत्रुओंसे सन्त्रस्त देवताओंके इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवतीने अपने शरीरसे एक दूसरा रूप प्रकट कर दिया॥ १॥

जब भगवती पार्वतीके विग्रहकोशसे अम्बिका प्रकट हुईं, तब वे सम्पूर्ण जगत्में 'कौशिकी' इस नामसे कही जाने लगीं। पार्वतीके शरीरसे उन भगवती कौशिकीके निकल जानेसे शरीर क्षीण हो जानेके कारण वे पार्वती कृष्णवर्णकी हो गयीं। अतः वे कालिका नामसे विख्यात हुईं॥ २-३॥

वे कालिका स्याहीके समान काले वर्णकी थीं तथा महाभयंकर प्रतीत होती थीं। दैत्योंके लिये भयवर्धिनी तथा [भक्तोंके लिये] समस्त मनोरथ पूर्ण करनेवाली वे भगवती 'कालरात्रि' इस नामसे पुकारी जाने लगीं॥ ४॥

समस्त आभूषणोंसे मण्डित और लावण्यगुणसे सम्पन्न वह भगवतीका दूसरा रूप (कौशिकी) अत्यन्त मनोहर प्रतीत हो रहा था॥ ५॥

तदनन्तर अम्बिकाने मुसकराकर देवताओंसे यह कहा—आपलोग निर्भय रहें, मैं आपके शत्रुओंका वध अभी कर डालूँगी। आपलोगोंका कार्य मुझे सम्यक् प्रकारसे सम्पन्न करना है। मैं समरांगणमें विचरण करूँगी और आपलोगोंके कल्याणके लिये निशुम्भ आदि दानवोंका संहार करूँगी ॥ ६-७ ॥

तब ऐसा कहकर गर्वोन्मत्त वे भगवती कौशिकी सिंहपर सवार हो गयीं और देवी कालिकाको साथमें लेकर शत्रुके नगरकी ओर चल पड़ीं ॥ ८ ॥

कालिकासहित देवी अम्बिका वहाँ पहुँचकर नगरके उपवनमें रुक गयीं। तत्पश्चात् उन्होंने जगत्को मोहमें डालनेवालेको भी मोहित करनेवाला गीत गाना आरम्भ कर दिया ॥ ९ ॥

उस मधुर गानको सुनकर पशु-पक्षी भी मोहित हो गये और आकाशमण्डलमें स्थित देवतागण अत्यन्त आनन्दित हो उठे ॥ १० ॥

उसी समय शुम्भके चण्ड तथा मुण्ड नामक दो सेवक जो भयंकर दानव थे, स्वेच्छापूर्वक घूमते हुए वहाँ आ गये। उन्होंने देखा कि दिव्य स्वरूपवाली भगवती अम्बिका गायनमें लीन हैं और कालिका उनके सम्मुख विराजमान हैं ॥ ११-१२ ॥

हे नृपश्रेष्ठ! उन दिव्य रूपवाली भगवतीको देखकर दोनों दानव विस्मयमें पड़ गये। वे तुरंत शुम्भके पास जा पहुँचे ॥ १३ ॥

अपने महलमें बैठे हुए उस दानवराज शुम्भके पास जाकर उन दोनोंने सिर झुकाकर राजाको प्रणाम करके मधुर वाणीमें कहा— ॥ १४ ॥

हे राजन्! कामदेवको भी मोहित कर देनेवाली एक सुन्दरी हिमालयसे यहाँ आयी हुई है। वह सिंहपर सवार है तथा सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न है ॥ १५ ॥

ऐसी उत्तम स्त्री न स्वर्गमें है और न गन्धर्वलोकमें। सम्पूर्ण पृथ्वीपर ऐसी सुन्दरी न तो कहीं देखी गयी और न सुनी ही गयी ॥ १६ ॥

हे राजन्! वह ऐसा गाती है कि उसके गानेपर सभी मुग्ध हो जाते हैं। उसके मधुर स्वरसे मोहित होकर मृग भी उसके पास बैठे रह जाते हैं ॥ १७ ॥

हे नृपश्रेष्ठ! अब आप यह पता लगाइये कि यह किसकी पुत्री है और किसलिये यहाँ आयी हुई है? [उसके बाद] उसे अपने यहाँ रख लीजिये; क्योंकि वह सुन्दरी आपके योग्य है ॥ १८ ॥

यह जानकारी प्राप्त करके आप उस सुन्दर नेत्रोंवाली स्त्रीको अपने घर ले आइये और अपनी भार्या बना लीजिये; क्योंकि ऐसी स्त्री निश्चितरूपसे संसारमें नहीं है ॥ १९ ॥

हे राजन्! आप देवताओंके सम्पूर्ण रत्न अपने अधिकारमें कर चुके हैं, तो फिर हे नृपश्रेष्ठ! इस सुन्दरीको भी आप अपने अधिकारमें क्यों नहीं कर लेते? ॥ २० ॥

हे राजन्! आपने बलपूर्वक इन्द्रका ऐश्वर्ययुक्त ऐरावत हाथी, पारिजात वृक्ष और सप्तमुखवाला उच्चैःश्रवा घोड़ा छीन लिया ॥ २१ ॥

हे नृप! आपने ब्रह्माजीके हंसध्वजसम्पन्न, दिव्य तथा रत्नमय अद्भुत विमानको बलपूर्वक अपने अधिकारमें कर लिया ॥ २२ ॥

हे राजन्! आपने बलपूर्वक कुबेरकी पद्म नामक निधिको छीन लिया है और वरुणके श्वेत छत्रको अपने अधिकारमें कर लिया है ॥ २३ ॥

हे नृपश्रेष्ठ! आपके भाई निशुम्भने भी वरुणको पराजित करके उसके पाशको हठपूर्वक छीन लिया है ॥ २४ ॥

हे महाराज! आपके भयसे समुद्रने कभी भी न मुरझानेवाली कमल-पुष्पोंकी माला और विविध प्रकारके रत्न आपको प्रदान किये हैं ॥ २५ ॥

आपने मृत्युको जीतकर उसकी शक्तिको तथा यमराजको जीतकर उसके अति भीषण दण्डको अपने पूर्ण अधिकारमें कर लिया है। हे राजन्! आपके पराक्रमका और क्या वर्णन किया जाय? समुद्रसे प्रादुर्भूत कामधेनु आपने छीन ली, जो इस समय आपके पास विद्यमान है। हे राजन्! मेनका आदि अप्सराएँ भी आपके अधीन पड़ी हुई हैं ॥ २६-२७ ॥

इस प्रकार जब आपने सभी रत्न बलपूर्वक छीन लिये हैं, तब नारियोंमें रत्नस्वरूपा इस सुन्दरीको भी अपने अधिकारमें क्यों नहीं कर लेते? ॥ २८ ॥

हे भूपते! आपके गृहमें विद्यमान समस्त विपुल रत्न इस सुन्दरीसे सुशोभित होकर यथार्थरूपमें रत्नस्वरूप हो जायँगे ॥ २९ ॥

हे दैत्यराज! तीनों लोकोंमें ऐसी सुन्दरी स्त्री नहीं है।

अत: आप उस मनोहारिणी स्त्रीको शीघ्र ले आइये और अपनी भार्या बना लीजिये॥ ३०॥

व्यासजी बोले—चण्ड-मुण्डके मधुमय अक्षरोंसे युक्त यह मधुर वचन सुनकर प्रसन्न मुखमण्डलवाला शुम्भ अपने समीपमें बैठे हुए सुग्रीवसे कहने लगा—॥ ३१॥

हे बुद्धिसम्पन्न सुग्रीव! तुम दूत बनकर जाओ और मेरा यह कार्य सम्पन्न करो। वहाँ तुम ऐसी बातचीत करना, जिससे वह कृशोदरी यहाँ आ जाय॥ ३२॥

बुद्धिमान् पुरुषोंको स्त्रियोंके विषयमें साम और दान—इन दो उपायोंका प्रयोग करना चाहिये—ऐसा शृंगाररसके विद्वानोंने कहा है॥ ३३॥

भेदनीतिका प्रयोग करनेपर रसका आभासमात्र हो पाता है और दण्डनीतिका प्रयोग करनेपर रसभंग ही हो जाता है, अत: विद्वान् पुरुषोंने इन दोनोंको दोषपूर्ण बताया है॥ ३४॥

हे दूत! ऐसी कौन स्त्री होगी; जो साम, दान—इन मुख्य नीतियोंसे सम्पन्न, मधुर तथा हास-परिहाससे परिपूर्ण वाक्योंके द्वारा कामपीड़ित होकर वशमें न हो जाय॥ ३५॥

व्यासजी बोले—शुम्भके द्वारा कही गयी अत्यन्त प्रिय तथा चातुर्यपूर्ण बात सुनकर सुग्रीव बड़े वेगसे उधर चल पड़ा, जहाँ जगदम्बिका विराजमान थीं॥ ३६॥

वहाँपर उसने देखा कि एक सुन्दर मुखवाली युवती सिंहपर सवार है। तब जगदम्बिकाको प्रणाम करके वह मधुर वाणीमें कहने लगा—॥ ३७॥

दूत बोला—हे सुजघने! देवताओंके शत्रु राजा शुम्भ सर्वांगसुन्दर और पराक्रमी हैं। सबको जीतकर वे तीनों लोकोंके अधिपति हो गये हैं॥ ३८॥

आपके सौन्दर्यके विषयमें सुनकर आपपर आसक्त मनवाले उन्हीं महाराज शुम्भने व्याकुल होकर मुझे आपके पास भेजा है॥ ३९॥

हे तन्वंगि! दैत्यपति शुम्भने आपको प्रणाम करके जो प्रेमपूर्ण वचन कहा है, उनके उस वचनको आप सुनें—॥ ४०॥

हे कान्ते! मैंने सभी देवताओंको जीत लिया है, इस समय मैं तीनों लोकोंका स्वामी हूँ। मैं यहाँ रहते हुए सदा यज्ञभाग प्राप्त करता हूँ॥ ४१॥

मैंने स्वर्गलोककी सभी सार वस्तुएँ छीन ली हैं और उसे रत्नविहीन कर दिया है। देवताओंके पास जो भी रत्न थे, उन सबको मैंने हर लिया है॥ ४२॥

हे भामिनि! तीनों लोकोंमें सभी रत्नोंका भोग करनेवाला एकमात्र मैं ही हूँ। देवता, दैत्य और मनुष्य—ये सब मेरे अधीन रहते हैं॥ ४३॥

तुम्हारे गुणोंने कानोंके मार्गसे मेरे हृदयमें प्रवेश करके मुझे पूर्णरूपसे तुम्हारे वशमें कर दिया है। अब मैं क्या करूँ? मैं तो तुम्हारा दास बन गया हूँ॥ ४४॥

हे रम्भोरु! मैं तुम्हारे अधीन हूँ, तुम मुझे जो भी आज्ञा प्रदान करो, उसे मैं करूँगा। हे सुन्दर अंगोंवाली! मैं तुम्हारा दास हूँ, कामबाणसे मेरी रक्षा करो॥ ४५॥

हे मरालाक्षि! तुम्हारे अधीन हुए मुझ कामातुरको तुम स्वीकार कर लो और तीनों लोकोंकी स्वामिनी बनकर उत्कृष्ट सुखोंका उपभोग करो॥ ४६॥

हे कान्ते! मैं मरणपर्यन्त तुम्हारी आज्ञाका पालन करूँगा। हे वरारोहे! मैं देवता, असुर तथा मनुष्योंसे अवध्य हूँ। हे सुमुखि! [मुझे पति बनाकर] तुम सदा सौभाग्यवती रहोगी। हे सुन्दरि! जहाँ तुम्हारा मन लगे, वहाँ विहार करना॥ ४७-४८॥

मदसे अलसायी हुई हे कामिनि! [मेरे स्वामी] उन शुम्भकी बातपर अपने मनमें भलीभाँति विचार करके तुम्हें जो कुछ कहना हो, उसे प्रेमपूर्वक मधुर वाणीमें कहो। हे चंचल कटाक्षवाली! मैं वह सन्देश तुरंत शुम्भसे निवेदन करूँगा॥ ४९ १/२॥

व्यासजी बोले—दूतका वह वचन सुनकर देवताओंका कार्य सिद्ध करनेवाली भगवती अत्यन्त मधुर मुसकान करके मीठी वाणीमें उससे कहने लगीं॥ ५० १/२॥

देवी बोलीं—मैं महाबली राजा शुम्भ तथा निशुम्भ—दोनोंको जानती हूँ। उन्होंने सभी देवताओंको जीत लिया है

और अपने शत्रुओंका संहार कर डाला है, वे सभी गुणोंकी राशि हैं और सब सम्पदाओंका भोग करनेवाले हैं। वे दानी, महापराक्रमी, सुन्दर, कामदेवसदृश रूपवाले, बत्तीस लक्षणोंसे सम्पन्न और देवताओं तथा मनुष्योंसे अवध्य हैं—यह जानकर मैं उस महान् असुरको देखनेकी इच्छासे यहाँ आयी हूँ। जैसे रत्न अपनी शोभाको और अधिक बढ़ानेके लिये सुवर्णके पास आता है, वैसे ही मैं अपने पतिको देखनेके लिये दूरसे यहाँ आयी हूँ॥ ५१—५४$^{१}/_{२}$ ॥

सभी देवताओं, पृथ्वीलोकमें मान प्रदान करनेवाले सभी मनुष्यों, गन्धर्वों, राक्षसों तथा देखनेमें सुन्दर लगनेवाले जो भी अन्य लोग हैं; उन सबको मैंने देख लिया है। सब-के-सब शुम्भके आतंकसे डरे हुए हैं, भयके मारे काँपते रहते हैं और सदा व्याकुल रहते हैं॥ ५५-५६ ॥

शुम्भके गुण सुनकर उन्हें देखनेकी इच्छासे मैं इस समय यहाँ आयी हुई हूँ। हे महाभाग्यशाली दूत! तुम जाओ और महाबली शुम्भसे एकान्त स्थानमें मधुर वाणीमें मेरे शब्दोंमें यह बात कहो—हे राजन्! आपको बलवानोंमें सबसे बली, सुन्दरोंमें अति सुन्दर, दानी, गुणी, पराक्रमी, सभी विद्याओंमें पारंगत, सभी देवताओंको जीत लेनेवाला, कुशल, प्रतापी, श्रेष्ठ कुलवाला, समस्त रत्नोंका भोग करनेवाला, स्वतन्त्र तथा अपनी शक्तिसे समृद्धिशाली बना हुआ जानकर मैं आपको पति बनानेकी इच्छुक हूँ। हे नराधिप! मैं भी निश्चितरूपसे आपके योग्य हूँ। हे महामते! मैं आपके इस नगरमें अपनी इच्छासे आयी हूँ। किंतु हे राक्षसश्रेष्ठ! मेरे विवाहमें एक शर्त है। हे राजन्! पूर्वमें मैंने सखियोंके साथ खेलते समय बालस्वभाववश अपने शारीरिक बलके अभिमानके कारण उन सखियोंके समक्ष एकान्तमें यह प्रतिज्ञा कर ली थी कि मेरे समान पराक्रम रखनेवाला जो वीर रणमें मुझे स्पष्टरूपसे जीत लेगा, उसके बलाबलको जानकर ही मैं पतिरूपमें उसका वरण करूँगी। मेरी यह बात सुनकर सखियोंके मनमें बड़ा विस्मय हुआ और वे जोर-जोरसे हँसने लगीं। [वे कहने लगीं] 'इसने शीघ्रतापूर्वक यह कैसी भीषण प्रतिज्ञा कर ली।' अतएव हे राजेन्द्र! आप भी मेरे ऐसे पराक्रमको जानकर यहींपर अपने बलसे मुझे जीतकर अपना मनोरथ पूर्ण कर लीजिये। हे सुन्दर! आप अकेले अथवा समरांगणमें आकर अपने छोटे भाईके साथ युद्धके द्वारा मुझे जीतकर [मेरे साथ] विवाह कर लीजिये॥ ५७—६६ ॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत पंचम स्कन्धका 'देवीद्वारा दूत सुग्रीवसे स्वव्रतकथन' नामक तेईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २३ ॥

चौबीसवाँ अध्याय

शुम्भका धूम्रलोचनको देवीके पास भेजना और धूम्रलोचनका देवीको समझानेका प्रयास करना

व्यासजी बोले— भगवतीका वह वचन सुनकर वह दूत विस्मित हो गया और उसने देवीसे कहा—हे सुन्दर कटाक्षवाली! तुम स्त्रीस्वभावके कारण साहसपूर्वक यह क्या बोल रही हो?॥ १ ॥

हे भामिनि! हे देवि! जिन्होंने इन्द्र आदि देवताओं तथा अन्य दैत्योंको पराजित कर दिया है, उन्हें तुम संग्राममें जीतनेकी अभिलाषा कैसे रखती हो?॥ २ ॥

त्रिलोकीमें वैसा कोई नहीं है, जो शुम्भको संग्राममें जीत सके; तब हे कमलसदृश नेत्रोंवाली! तुम कौन-सी सामर्थ्यशालिनी हो जो इस समय युद्धमें उनके सामने टिक सको?॥ ३ ॥

हे सुन्दरि! बिना सोचे-समझे कोई बात नहीं बोलनी चाहिये, अपितु अपने तथा शत्रुके बलको जानकर ही समयके अनुसार बोलना चाहिये॥ ४ ॥

तीनों लोकोंके अधिपति महाराज शुम्भ तुम्हारे रूपपर मोहित हो गये हैं और तुमसे प्रार्थना कर रहे हैं। अतः हे प्रिये! उनका मनोरथ पूर्ण करो॥ ५ ॥

मूर्खतापूर्ण स्वभाव त्यागकर मेरी बातको मान करके तुम शुम्भ अथवा निशुम्भ किसीको [पतिरूपमें] स्वीकार कर लो; मैं तुम्हारे लिये यह हितकर बात कह रहा हूँ॥ ६ ॥

सभी बुद्धिमान् प्राणियोंको चाहिये कि बड़े हर्षके साथ शृंगाररसका उपभोग करें; क्योंकि यह सभी नौ रसोंमें उत्तम माना गया है॥ ७॥

हे बाले! यदि तुम मेरे साथ नहीं चलोगी तो राजा शुम्भ अत्यन्त कुपित होकर अन्य बहुत-से सेवकोंको अभी भेजकर तुम्हें बलपूर्वक पकड़वाकर ले जायँगे॥ ८॥

हे वामोरु! वे बलाभिमानी दानव तुम्हारे केश-पाश पकड़कर बलपूर्वक तुम्हें निश्चय ही शुम्भके पास ले जायँगे॥ ९॥

अतः हे कोमलांगी! अपनी लज्जाकी रक्षा करो और इस दुस्साहसको पूर्णरूपसे छोड़ दो। तुम सम्मानित होकर उनके पास चलो; क्योंकि तुम सम्मानकी पात्र हो॥ १०॥

कहाँ तीक्ष्ण बाणोंसे होनेवाला युद्ध और कहाँ रतिक्रीड़ासे उत्पन्न होनेवाला सुख! सार-असार बातपर सही-सही विचार करके तुम मेरे हितकर वचनको मान लो और शुम्भ अथवा निशुम्भको अपना पति स्वीकार कर लो; इससे तुम परम सुख प्राप्त करोगी॥ ११$^{1}/_{2}$॥

देवी बोलीं—हे महाभाग दूत! तुम बात करनेमें निपुण हो; यह सत्य है। शुम्भ और निशुम्भ निश्चय ही बलवान् हैं—यह मैं जानती हूँ। किंतु मैंने बाल्यकालसे ही जो प्रतिज्ञा कर रखी है, उसे मिथ्या कैसे किया जाय? अतः तुम निशुम्भसे अथवा उससे भी बलवान् शुम्भसे कह दो कि बिना युद्ध किये मात्र सौन्दर्यके बलपर कोई भी मेरा पति नहीं बन सकेगा। मुझे अपने बलसे जीतकर वह अभी पाणिग्रहण कर ले। हे राजन्! आप यह जान लीजिये कि मैं अबला होती हुई भी युद्धकी इच्छासे यहाँ आयी हूँ। यदि तुम समर्थ हो तो मेरे साथ युद्ध करो और वीरधर्मका पालन करो। इसके अतिरिक्त यदि मेरे त्रिशूलसे डरते हो और यदि जीनेकी तुम्हारी अभिलाषा है तो स्वर्ग और पृथ्वीलोकको छोड़कर अविलम्ब पाताललोक चले जाओ। हे दूत! अभी जाकर अपने स्वामीसे आदरपूर्वक ये बातें कह दो। इसके बाद वे महाबली शुम्भ विचार करके जो उचित होगा, उसे करेंगे। संसारमें यही दूतधर्म है कि जो सच्ची बात हो, उसे वैसा-का-वैसा शत्रु और स्वामी—दोनोंके प्रति अवश्य कह दे। हे धर्मज्ञ! तुम भी वैसा ही व्यवहार करो; विलम्ब मत करो॥ १२—१८॥

व्यासजी बोले—उस समय भगवती जगदम्बाके नीतियुक्त, शक्तिसम्पन्न, हेतुपूर्ण और ओजस्वी वचन सुनकर वह दूत आश्चर्यचकित हो गया और वहाँसे लौट गया। दैत्यपति शुम्भके पास पहुँचकर बार-बार विचार करके वह दूत विनम्र भावसे अपने राजाको प्रणाम करके उनसे नीतिपूर्ण, मधुरतासे युक्त तथा मनोहर बात कहने लगा॥ १९—२१॥

दूत बोला—हे राजेन्द्र! सत्य और प्रिय बात कहनी चाहिये, इसीलिये मैं अत्यन्त चिन्तामें पड़ा हुआ हूँ; क्योंकि जो सत्य हो और प्रिय भी हो, वैसा वचन निश्चय ही दुर्लभ है। अप्रिय बोलनेवाले दूतोंपर राजा सर्वथा कुपित हो सकते हैं, [तथापि अपना धर्मपालन करते हुए मैं सच्ची बात कह रहा हूँ] वह स्त्री कहाँसे आयी है, किसकी पुत्री है और कितनी सबल अथवा निर्बल है—इनमेंसे कुछ भी मैं नहीं जान सका, तब मैं उसके मनकी बात क्या बताऊँ! मुझे तो वह घमण्डी, कटु बोलनेवाली और सदा युद्धके लिये उत्सुक दिखायी पड़ती थी॥ २२—२४॥

हे महामते! उस स्त्रीने जो कुछ कहा है, उसे आप भलीभाँति सुनें—'मैंने पहले ही बाल्यावस्थामें सखियोंके समक्ष विनोदवश विवाहके विषयमें यह प्रतिज्ञा कर ली थी कि जो युद्धमें मुझे जीत लेगा और मेरे अभिमानको चूर्ण कर देगा, उसी समान बलवालेका मैं पतिरूपसे वरण करूँगी। हे नृपश्रेष्ठ! मेरी वह प्रतिज्ञा मिथ्या नहीं की जानी चाहिये। अतः हे धर्मज्ञ! मेरे साथ युद्ध करो और मुझे जीतकर अपने अधीन कर लो'॥ २५—२७$^{1}/_{2}$॥

उस स्त्रीके द्वारा कही गयी यह बात सुनकर मैं आपके पास आया हूँ। हे महाराज! अब आप जैसे भी अपना हित समझते हों, वैसा ही करें। आयुधोंसे सुसज्जित तथा सिंहपर सवार वह युद्धके लिये दृढ़ संकल्प किये हुए है। हे भूप! वह अपनी बातपर अडिग है, अतः जो उचित हो उसे आप करें॥ २८-२९$^{1}/_{2}$॥

व्यासजी बोले—अपने दूत सुग्रीवका यह वचन सुनकर राजा शुम्भने पासमें ही बैठे हुए शूरवीर तथा महाबली भाई निशुम्भसे पूछा॥ ३०$^{1}/_{2}$॥

शुम्भ बोला—हे भाई! इस स्थितिमें मुझे क्या करना चाहिये, हे महामते! सच-सच बताओ। एक स्त्री युद्ध

करनेकी अभिलाषा रखती है, इस समय [हमें युद्धके लिये] बुला रही है। अतः युद्धस्थलमें मैं जाऊँ अथवा सेना लेकर तुम जाओगे? हे निशुम्भ! इस विषयमें तुम्हें जो अच्छा लगेगा, निश्चय ही मैं वही करूँगा॥ ३१-३२१/२॥

निशुम्भ बोला—हे वीर! अभी रणक्षेत्रमें न मुझे और न तो आपको ही जाना चाहिये। हे महाराज! शीघ्र ही धूम्रलोचनको भेज दीजिये। वहाँ जाकर युद्धमें उस सुन्दर नेत्रोंवाली स्त्रीको जीतकर और उसे पकड़कर वह यहाँ ले आयेगा। तत्पश्चात् हे शुम्भ! आप उसके साथ सम्यक् विवाह कर लीजिये॥ ३३-३४१/२॥

व्यासजी बोले—अपने छोटे भाईकी वह बात सुनकर शुम्भने पासमें ही बैठे हुए धूम्रलोचनको जानेके लिये क्रोधपूर्वक आदेश दिया॥ ३५१/२॥

शुम्भ बोला—हे धूम्रलोचन! तुम एक विशाल सेना लेकर अभी जाओ और अपने बलके मदमें चूर रहनेवाली उस मूढ़ स्त्रीको पकड़कर ले आओ। देवता, दानव या

महाबली मनुष्य—कोई भी जो उसकी सहायताके लिये उपस्थित हो, उसे तुम तुरंत मार डालना। उसके साथमें रहनेवाली कालीको भी मारकर पुनः उस सुन्दरीको पकड़ करके और इस प्रकार मेरा यह अत्युत्तम कार्य सम्पन्नकर यहाँ शीघ्र आ जाओ। हे वीर! कोमल बाणोंको छोड़ती हुई उस सुकोमल शरीरवाली कृशोदरी साध्वी स्त्रीकी तुम प्रयत्नपूर्वक रक्षा करना। हाथमें शस्त्र धारण किये हुए उसके जो भी सहायक रणमें हों, उन्हें मार डालना, किंतु उसे मत मारना; सब तरहसे प्रयत्नपूर्वक उसकी रक्षा करना॥ ३६—४०१/२॥

व्यासजी बोले—अपने राजा शुम्भका यह आदेश पाकर धूम्रलोचन उसे प्रणाम करके सेना साथ लेकर तुरंत युद्धभूमिकी ओर चल पड़ा। उसके साथमें साठ हजार राक्षस थे॥ ४१-४२॥

वहाँ पहुँचकर उसने एक मनोहर उपवनमें विराजमान भगवती जगदम्बाको देखा। हरिणके बच्चेके समान नेत्रोंवाली देवीको देखकर वह विनम्रतापूर्वक उनसे मधुर, हेतुयुक्त तथा सरस वचन कहने लगा—हे महाभाग्यवती देवि! सुनो, शुम्भ तुम्हारे विरहसे अत्यन्त व्याकुल हैं। नीतिनिपुण महाराजने रसभंग होनेके भयसे उद्विग्न होकर शान्तिपूर्वक तुम्हारे पास स्वयं एक दूत भेजा था॥ ४३—४५॥

हे सुमुखि! उसने लौटकर विपरीत बात कह दी। उस बातसे मेरे स्वामी महाराज शुम्भके मनमें बहुत चिन्ता व्याप्त हो गयी है। हे रसतत्त्वको जाननेवाली! शुम्भ इस समय कामसे विमोहित हो गये हैं। वह दूत तुम्हारे सहेतुक वचनोंको नहीं समझ सका। हे मानिनि! तुमने जो यह कठिन वचन कहा था कि 'जो मुझे संग्राममें जीतेगा', उस संग्रामका तात्पर्य वह नहीं जान सका। हे मानिनि! संग्राम दो प्रकारका होता है। कामजनित और उत्साहजनित। पात्रभेदसे समय-समयपर इनका अलग-अलग अर्थ किया जाता है। हे सुन्दरि! उन दोनोंमें आप-जैसी युवतीके साथ होनेवाले संग्रामको कामजनित संग्राम और शत्रुके साथ होनेवाले संग्रामको उत्साहजनित संग्राम कहा गया है॥ ४६—४९॥

हे कान्ते! उनमें प्रथम रतिजन्य संग्राम सुखदायक और शत्रुके साथ किया जानेवाला उत्साहजन्य संग्राम दुःखदायक कहा गया है। हे सुन्दरि! मैं तुम्हारे मनकी बात जानता हूँ; तुम्हारे मनमें रतिजन्य संग्रामका भाव है। मुझको यह सब जाननेमें निपुण समझकर ही महाराज शुम्भने विशाल सेनाके साथ इस समय मुझे आपके पास भेजा है॥ ५०-५११/२॥

हे महाभागे! तुम बड़ी चतुर हो। मेरे मधुर वचन सुनो। देवताओंका अभिमान चूर्ण कर देनेवाले त्रिलोकाधिपति शुम्भको [पतिरूपसे] स्वीकार कर लो और उनकी प्रिय

पटरानी बनकर अत्युत्तम सुखोंका उपभोग करो॥ ५२-५३॥

कामसम्बन्धी बलका रहस्य जाननेवाले विशालबाहु शुम्भ तुम्हें जीत लेंगे। तुम उनके साथ विचित्र हाव-भाव करो, वे भी वैसे ही हाव-भाव प्रदर्शित करेंगे। यह कालिका [उस अवसरपर] हास-विलासकी साक्षी रहेगी। इस प्रकार कामतत्त्वके परमवेत्ता मेरे स्वामी शुम्भ कामयुद्धके द्वारा तुम्हें सुखशय्यापर जीतकर शिथिल कर देंगे। वे महाराज शुम्भ अपने नखोंके आघातसे तुम्हें रक्तरंजित शरीरवाली बना देंगे, दाँतोंसे काटकर तुम्हारे ओठोंको खण्डित कर देंगे, पसीनेसे तर कर देंगे और तुम्हें मर्दित कर डालेंगे, तब तुम्हारा रतिसंग्रामसम्बन्धी मनोरथ पूर्ण हो जायगा॥ ५४—५७॥

हे प्रिये! तुम्हें देखते ही शुम्भ पूर्णरूपसे तुम्हारे वशीभूत हो जायँगे। अतएव मेरी उचित, कल्याणकारी और सुखकर बात मान लो। तुम माननीयोंमें अत्यन्त मानिनी हो, अत: गणाध्यक्ष शुम्भको स्वीकार कर लो। जो शस्त्रयुद्धसे प्रेम रखते हैं, वे अवश्य ही मन्दभाग्य हैं। रतिक्रीड़ामें प्रीति रखनेवाली हे कान्ते! तुम शस्त्रयुद्धके योग्य नहीं हो। जैसे कामिनीके पदप्रहारसे अशोक, मदिराके कुल्लेसे मौलसिरी और आलिंगनसे कुरबक प्रफुल्लित हो उठता है, उसी प्रकार तुम भी महाराज शुम्भको शोकरहित और आह्लादित करो॥ ५८—६१॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत पंचम स्कन्धके देवीमाहात्म्यमें 'देवीके पास धूम्रलोचन-दूतका प्रेषण' नामक चौबीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २४॥

पचीसवाँ अध्याय

भगवती काली और धूम्रलोचनका संवाद, कालीके हुंकारसे धूम्रलोचनका भस्म होना तथा शुम्भका चण्ड-मुण्डको युद्धहेतु प्रस्थानका आदेश देना

व्यासजी बोले—[हे महाराज!] यह बात कहकर धूम्रलोचन चुप हो गया। तब भगवती काली हँसकर सुन्दर वचन बोलीं—धूर्त! तुम तो पूरे विदूषक हो और नटों-जैसी बात करते हो। मधुर बोलते हुए तुम व्यर्थ ही मनमें अनेकविध कामनाएँ कर रहे हो॥ १-२॥

हे मूढमते! दुष्टात्मा शुम्भने तुझ बलवान्‌को सेनासे सुसज्जित करके युद्धहेतु भेजा है, अत: अब युद्ध करो और व्यर्थकी बातें छोड़ दो॥ ३॥

ये देवी कुपित होकर शुम्भ, निशुम्भ तथा तुम्हारे अन्य बलवान् दैत्योंका अपने बाणोंके प्रहारसे संहार करके अपने धामको चली जायँगी॥ ४॥

कहाँ वह मन्दमति शुम्भ और कहाँ ये विश्व-मोहिनी जगदम्बा! इन दोनोंका विवाह इस संसारमें सर्वथा अनुपयुक्त है॥ ५॥

क्या अत्यधिक कामार्त होनेपर भी सिंहिनी सियारको, हथिनी किसी गर्दभको अथवा सुरभि किसी सामान्य वृषभको अपना पति बना सकती है?॥ ६॥

अब तुम शुम्भ-निशुम्भके पास चले जाओ और उनसे मेरी यह सच्ची बात कह दो कि 'तुम मेरे साथ युद्ध करो; अन्यथा इसी समय शीघ्र पाताललोक चले जाओ'॥ ७॥

व्यासजी बोले—हे महाभाग! देवी कालिकाका यह वचन सुनते ही वह दैत्य धूम्रलोचन क्रोधके मारे आँखें लाल करके उनसे कहने लगा—दुर्दर्शे! अभी तुझे तथा इस मदोन्मत्त सिंहको युद्धमें मारकर और इस स्त्रीको लेकर मैं राजा शुम्भके पास अवश्य चला जाऊँगा॥ ८-९॥

कलहमें अनुराग रखनेवाली हे काली! रसमें भंग पड़नेकी शंकासे मैं इस समय डर रहा हूँ, नहीं तो मैं अपने तीक्ष्ण बाणोंसे तुम्हें अभी मार डालता॥ १०॥

कालिका बोलीं—हे मन्दबुद्धि! तुम अनर्गल प्रलाप क्यों कर रहे हो, धनुर्धर वीरोंका यह धर्म नहीं है। तुम अपनी पूरी शक्तिसे बाण चलाओ। तुम तो अभी यमलोक जानेवाले हो॥ ११॥

व्यासजी बोले—यह वचन सुनकर वह दैत्य धूम्रलोचन अपना सुदृढ़ धनुष लेकर भगवती कालिकाके ऊपर

पत्थरकी सानपर चढ़ाकर तेज किये गये बाणोंकी घोर वर्षा करने लगा॥ १२॥

उस समय इन्द्र आदि प्रधान देवता उत्तम विमानोंमें बैठकर यह युद्ध देख रहे थे। वे देवीकी स्तुति करते हुए उनकी जयकार कर रहे थे॥ १३॥

परस्पर उन दोनोंमें बाण, खड्ग, गदा, शक्ति तथा मुसल आदि शस्त्रोंसे अत्यन्त भीषण तथा उग्र युद्ध होने लगा॥ १४॥

भगवती कालिकाने पहले अपने बाण-प्रहारोंसे [उसके रथमें जुते] खच्चरोंको मारकर बादमें उसके सुदृढ़ रथको भी चूर्ण कर दिया, फिर वे बार-बार अट्टहास करने लगीं॥ १५॥

हे भारत! क्रोधाग्निमें जलता हुआ-सा वह दानव धूम्रलोचन दूसरे रथपर सवार हो गया और कालिकाके ऊपर भयंकर बाण-वृष्टि करने लगा॥ १६॥

उसके बाण भगवतीके पास पहुँच भी नहीं पाते थे कि वे उन बाणोंको काट डालती थीं। तत्पश्चात् वे कालिका अन्य तीव्रगामी बाण उस दानवके ऊपर छोड़ने लगीं॥ १७॥

उन बाणोंसे उसके हजारों सहायक सैनिक मारे गये। तत्पश्चात् देवी कालिकाने उसके खच्चरों तथा सारथिको शीघ्रतापूर्वक मारकर उस रथको भी नष्ट कर दिया। उसके बाद देवीने अपने सर्प-सदृश बाणोंसे शीघ्रतापूर्वक उसका धनुष काट डाला। ऐसा करके देवीने देवताओंको आनन्दित कर दिया और वे शंखनाद करने लगीं॥ १८-१९॥

अब रथसे विहीन वह धूम्रलोचन कुपित होकर एक लोहमय मजबूत परिघ लेकर देवीके रथके सन्निकट आ गया॥ २०॥

कालसदृश भयंकर वह धूम्रलोचन वाणीसे भगवती कालीको फटकारते हुए कहने लगा—'कुरूपा तथा पिंगलनेत्रोंवाली! मैं तुम्हें अभी मार डालूँगा' ऐसा कहकर वह ज्यों ही कालिकापर परिघ चलानेको उद्यत हुआ, देवीने अपने हुंकारमात्रसे उसे तुरंत भस्म कर दिया॥ २१-२२॥

तब दैत्य धूम्रलोचनको भस्म हुआ देखकर सभी सैनिक भयाक्रान्त होकर 'हा तात'—ऐसा कहते हुए तुरंत मार्ग पकड़कर भाग चले॥ २३॥

उस धूम्रलोचनको मारा गया देखकर आकाशमें विद्यमान देवगण प्रसन्न होकर भगवतीपर पुष्प बरसाने लगे॥ २४॥

हे राजन्! मरे हुए दानवों, घोड़ों, खच्चरों और हाथियोंसे [पट जानेके कारण] वह रणभूमि उस समय बड़ी भयानक लग रही थी। युद्धभूमिमें पड़े हुए मृत दानवोंको देखकर गीध, कौए, बाज, सियार और पिशाच नाचने तथा कोलाहल करने लगे॥ २५-२६॥

अब भगवती अम्बिकाने उस रणभूमिको छोड़कर वहाँसे कुछ दूरीपर जाकर अत्यन्त तीव्र तथा भयदायक शंखनाद किया॥ २७॥

अपने महलमें स्थित शुम्भको भी वह भयानक शंख-ध्वनि सुनायी पड़ी। उसी समय उसने भागकर आये हुए बहुत-से दैत्योंको देखा। उनमेंसे बहुतोंके अंग भंग हो गये थे और वे रक्तसे लथपथ थे। अनेक दैत्योंके हाथ-पैर कट गये थे और नेत्र भग्न हो गये थे। कुछ दैत्य तो शय्या आदिपर लादकर लाये जा रहे थे; बहुतोंकी पीठ, कमर और गर्दन टूट गयी थी। सब-के-सब जोर-जोरसे चीख रहे थे। उन्हें देखकर शुम्भ-निशुम्भने सैनिकोंसे पूछा—'धूम्रलोचन कहाँ गया? तुमलोग इस तरह अंग-भंग होकर क्यों आये हो और उस सुन्दर मुखवाली स्त्रीको क्यों नहीं ले आये? हे मूर्खो! सही-सही बताओ कि मेरी सेना कहाँ गयी और भयको बढ़ानेवाला यह किसका शंखनाद इस समय सुनायी पड़ रहा है?'॥ २८—३१॥

गण बोले—सम्पूर्ण सेना मार डाली गयी और धूम्रलोचनका भी संहार कर दिया गया। रणभूमिमें यह अमानुषिक कार्य कालिकाके द्वारा किया गया है॥ ३२॥

उसी अम्बिकाकी यह शंखध्वनि है, जो सम्पूर्ण नभमण्डलको व्याप्त करके सुशोभित हो रही है। यह ध्वनि देवगणोंके लिये हर्षप्रद और दानवोंके लिये कष्टदायक है॥ ३३॥

हे विभो! जब देवीके सिंहने सारे सैनिकोंका विनाश कर डाला और उनके बाण-प्रहारोंसे दैत्योंके रथ टूट गये

तथा घोड़े मार डाले गये, तब आकाशमें स्थित देवता प्रसन्न होकर पुष्प-वृष्टि करने लगे॥ ३४½॥

इस प्रकार समस्त सेनाका विनाश तथा धूम्रलोचनका वध देखकर हमलोगोंने निश्चय कर लिया कि अब हमारी विजय नहीं हो सकती। हे महाराज! यह आश्चर्य है कि जगदम्बास्वरूपिणी वह मदमत्त बाला बिना किसी सेनाके ही सिंहपर सवार होकर निर्भयभावसे आपसे युद्ध करनेके लिये रणभूमिमें अकेली खड़ी है। अतएव हे राजेन्द्र! अब आप मन्त्रणाका उत्तम ज्ञान रखनेवाले अपने मन्त्रियोंसे इस विषयपर विचार कर लीजिये। हे महाराज! हमें तो यह सब बड़ा विचित्र और अद्भुत प्रतीत हो रहा है। अतएव अब आप शीघ्र मन्त्रणा करके सन्धि, युद्ध अथवा पलायन—इनमेंसे अपनी रुचिके अनुसार जो चाहें, वह करें॥ ३५—३९॥

हे शत्रुतापन! यद्यपि उसके पास सेना नहीं है फिर भी उसकी विपत्तिमें सभी देवता उसके सहायक बनकर उपस्थित हो जायँगे। ज्ञात हुआ है कि भगवान् विष्णु और शिव भी समयानुसार उसके पासमें विद्यमान रहते हैं; सभी लोकपाल आकाशमें रहते हुए भी इस समय उस देवीके पास विद्यमान हैं। हे सुरतापन! राक्षसगण, गन्धर्व, किन्नर और मनुष्य—इन सबको समय आनेपर उसका सहायक समझना चाहिये॥ ४०—४२॥

हमारी बुद्धिसे तो हर तरहसे ऐसा जान पड़ता है कि वे अम्बिका किसीसे भी कोई सहायता अथवा कार्यकी अपेक्षा नहीं रखतीं। वे अकेली ही सम्पूर्ण चराचर जगत्का नाश करनेमें समर्थ हैं, तो फिर सब दानवोंकी बात ही क्या—यह सत्य है॥ ४३-४४॥

हे महाभाग! यह सब भलीभाँति समझ-बूझकर आपकी जैसी रुचि हो, वैसा कीजिये। सेवकोंको तो अपने स्वामीसे हितकर, सत्य और नपी-तुली बात कहनी चाहिये॥ ४५॥

व्यासजी बोले—उनकी बात सुनकर शत्रुसेनाको विनष्ट कर डालनेवाले शुम्भने अपने छोटे भाई निशुम्भको एकान्त स्थानमें ले जाकर वहाँ स्थित हो उससे पूछा—हे भाई! आज कालिकाने अकेले ही धूम्रलोचनको मार डाला, सारी सेना नष्ट कर दी और शेष सैनिक अंग-भंग होकर भाग आये हैं। अभिमानमें चूर रहनेवाली वही अम्बिका शंखनाद कर रही है॥ ४६-४७½॥

कालकी गतिको पूर्णरूपसे समझना ज्ञानियोंके लिये भी अत्यन्त कठिन है। [कालकी प्रेरणासे] तृण वज्र बन जाता है, वज्र तृण बन जाता है और बलशाली प्राणी बलहीन हो जाता है; दैवकी ऐसी विचित्र गति है॥ ४८-४९॥

हे महाभाग! मैं तुमसे पूछता हूँ कि अब आगे मुझे क्या करना चाहिये? ऐसा लगता है कि यह अम्बिका किसी उद्देश्यसे यहाँ आयी हुई है। अत: निश्चय ही वह हमारे भोगके योग्य नहीं है॥ ५०॥

हे वीर! तुम मुझे शीघ्र बताओ कि इस समय भाग जाना उचित है या युद्ध करना? यद्यपि तुम छोटे हो, फिर भी इस संकटके समय मैं तुम्हें बड़ा मान रहा हूँ॥ ५१॥

निशुम्भ बोला—हे अनघ! इस समय न तो भागना उचित है और न तो किलेमें छिपना ही ठीक है। अब तो इस स्त्रीके साथ हर प्रकारसे युद्ध करना ही श्रेयस्कर है॥ ५२॥

श्रेष्ठ सेनापतियोंको लेकर मैं अपनी सेनाके साथ युद्धभूमिमें जाऊँगा और उस कालिकाको मारकर तथा अबला अम्बिकाको पकड़कर शीघ्र यहाँ ले आऊँगा और यदि बलवान् दैवके कारण इसके विपरीत हो जाय तो मेरे मर जानेपर बार-बार सोच-विचारकर ही आप कोई कार्य कीजियेगा॥ ५३-५४॥

छोटे भाई निशुम्भकी यह बात सुनकर शुम्भने उससे कहा—अभी तुम ठहरो, पहले पराक्रमी चण्ड-मुण्ड जायँ। खरगोश पकड़नेके लिये हाथी छोड़ना उचित नहीं है। चण्ड-मुण्ड बड़े वीर हैं, अत: ये दोनों उसे मार डालनेमें हर तरहसे समर्थ हैं॥ ५५-५६॥

अपने भाई निशुम्भसे ऐसा कहकर और उससे परामर्श करके राजा शुम्भने समक्ष बैठे हुए महान् बलशाली चण्ड-मुण्डसे कहा—हे चण्ड-मुण्ड! तुम दोनों अपनी सेना लेकर उस निर्लज्ज और मदोन्मत्त अबलाका वध

करनेके लिये शीघ्र जाओ। हे महाभागो! रणभूमिमें पिंग-नेत्रोंवाली उस कालिकाको मारकर अम्बिकाको पकड़ लो; इस प्रकार मेरा यह महान् कार्य करके यहाँ लौट आओ। यदि वह मदोन्मत्त अम्बिका पकड़ी जानेपर भी नहीं आती तो अपने अत्यन्त तीक्ष्ण बाणोंसे उस युद्धलोलुपाका भी वध कर देना॥ ५७—६०॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत पंचम स्कन्धका 'देवीके साथ युद्ध करनेके लिये चण्ड और मुण्डको भेजना' नामक पचीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २५॥

छब्बीसवाँ अध्याय

भगवती अम्बिकासे चण्ड-मुण्डका संवाद और युद्ध, देवी कालिकाद्वारा चण्ड-मुण्डका वध

व्यासजी बोले—[हे महाराज!] तदनन्तर शुम्भसे ऐसा आदेश पाकर महाबली चण्ड-मुण्ड विशाल सेनाके साथ बड़े वेगसे रणभूमिकी ओर चल पड़े॥ १॥

तब देवताओंका हित करनेवाली देवीको वहाँ युद्धभूमिमें विद्यमान देखकर वे दोनों महापराक्रमी दानव उनसे सामनीतियुक्त वचन बोले—॥ २॥

हे बाले! क्या तुम देवताओंकी सेनाका नाश करनेवाले शुम्भ तथा इन्द्रपर विजय प्राप्त करनेके कारण उद्धत स्वभाववाले महापराक्रमी निशुम्भको नहीं जानती हो?॥ ३॥

हे सुन्दरि! तुम यहाँ अकेली हो। हे दुर्बुद्धे! तुम मात्र कालिका और सिंहको साथ लेकर सभी प्रकारकी सेनाओंसे सम्पन्न शुम्भको जीतना चाहती हो!॥ ४॥

क्या कोई स्त्री या पुरुष तुम्हें सत्परामर्श देनेवाला नहीं है? देवतालोग तो तुम्हारे विनाशके लिये ही तुम्हें प्रेरित कर रहे हैं॥ ५॥

हे सुकुमार अंगोंवाली! तुम अपने तथा शत्रुके बलके विषयमें सम्यक् विचार करके ही कार्य करो। अठारह भुजाओंके कारण तुम अपनेपर व्यर्थ ही अभिमान करती हो॥ ६॥

देवताओंको जीतनेवाले तथा समरभूमिमें पराक्रम दिखानेवाले शुम्भके समक्ष तुम्हारी इन बहुत-सी व्यर्थ भुजाओं तथा श्रम प्रदान करनेवाले आयुधोंसे क्या लाभ? अतः तुम ऐरावतकी सूँड़ काट डालनेवाले, हाथियोंको विदीर्ण करनेवाले और देवताओंको जीत लेनेवाले शुम्भका मनोवांछित कार्य करो॥ ७-८॥

हे कान्ते! तुम वृथा गर्व करती हो। हे विशालाक्षि! तुम मेरी प्रिय बात मान लो, जो तुम्हारे लिये हितकर, सुखद तथा दुःखोंका नाश करनेवाली है॥ ९॥

शास्त्रोंका तत्त्व जाननेवाले विद्वान् तथा बुद्धिमान् पुरुषोंको चाहिये कि दुःख देनेवाले कार्योंका दूरसे ही त्याग कर दें और सुख प्रदान करनेवाले कार्योंका सेवन करें॥ १०॥

हे कोयलके समान मधुर बोलनेवाली! तुम तो बड़ी चतुर हो। तुम शुम्भके महान् बलको प्रत्यक्ष देख लो। अपने बलसे सभी देवताओंका मर्दन करके उन्होंने महान् अभ्युदय प्राप्त कर लिया है। प्रत्यक्ष प्रमाणका त्याग करके अनुमानका आश्रय लेना बिलकुल व्यर्थ है। किसी सन्देहात्मक कार्यमें विद्वान् पुरुष प्रवृत्त नहीं होते॥ ११-१२॥

शुम्भ देवताओंके महान् शत्रु हैं। वे संग्राममें अजेय हैं। इसीलिये दैत्येन्द्र शुम्भके द्वारा प्रताड़ित किये गये देवता तुम्हें युद्धके लिये प्रेरित कर रहे हैं॥ १३॥

हे सुन्दर मुसकानवाली! तुम देवताओंके मधुर वचनोंसे ठग ली गयी हो। तुम्हारे प्रति देवताओंकी यह शिक्षा उनका कार्य सिद्ध करनेवाली तथा तुम्हें दुःख प्रदान करनेवाली है॥ १४॥

अपना ही कार्य साधनेमें तत्पर रहनेवाले मित्रका त्यागकर धर्ममार्गपर चलनेवाले मित्रका ही अवलम्बन करना चाहिये। देवता बड़े ही स्वार्थी हैं, मैंने तुमसे यह सत्य कहा है, अतः तुम देवताओंके शासक, विजेता, तीनों लोकोंके स्वामी, चतुर, सुन्दर, वीर और कामशास्त्रमें प्रवीण शुम्भको स्वीकार कर लो। शुम्भके अधीन रहनेसे तुम समस्त लोकोंका वैभव प्राप्त करोगी। अतएव दृढ़ निश्चय करके तुम सौन्दर्यसम्पन्न शुम्भको अपना पति बना लो॥ १५—१७॥

व्यासजी बोले—चण्डकी यह बात सुनकर जगदम्बाने मेघके समान गम्भीर ध्वनिमें गर्जना की और वे बोलीं—धूर्त! भाग जाओ; तुम यह छलयुक्त बात व्यर्थ क्यों बोल

रहे हो? विष्णु, शिव आदिको छोड़कर मैं शुम्भको अपना पति किसलिये बनाऊँ?॥ १८-१९॥

न तो मुझे किसीको पति बनाना है और न तो पतिसे मेरा कोई काम ही है; क्योंकि जगत्‌के सभी प्राणियोंकी स्वामिनी मैं ही हूँ; इसे तुम सुन लो॥ २०॥

मैंने हजारों-हजार शुम्भ तथा निशुम्भ देखे हैं और पूर्वकालमें मैंने सैकड़ों दैत्यों तथा दानवोंका वध किया है॥ २१॥

प्रत्येक युगमें अनेक देवसमुदाय मेरे सामने ही नष्ट हो चुके हैं। दैत्योंके समूह अब फिर विनाशको प्राप्त होंगे। दैत्योंका विनाशकारी समय अब आ ही गया है। अतएव तुम अपनी सन्ततिकी रक्षाके लिये व्यर्थ प्रयत्न कर रहे हो॥ २२-२३॥

हे महामते! तुम वीरधर्मकी रक्षाके लिये मेरे साथ युद्ध करो। मृत्यु तो अवश्यम्भावी है, इसे टाला नहीं जा सकता। अत: महात्मा लोगोंको यशकी रक्षा करनी चाहिये॥ २४॥

दुराचारी शुम्भ तथा निशुम्भसे तुम्हारा क्या प्रयोजन सिद्ध हो सकता है? अत: अब तुम श्रेष्ठ वीरधर्मका आश्रय लेकर देवलोक स्वर्ग चले जाओ॥२५॥

अब शुम्भ, निशुम्भ तथा तुम्हारे जो अन्य बन्धु-बान्धव हैं, वे सब भी बादमें तुम्हारा अनुसरण करते हुए वहाँ पहुँचेंगे॥ २६॥

हे मन्दात्मन्! मैं अब क्रमश: सभी दैत्योंका संहार कर डालूँगी। हे विशांपते! अब विषाद त्यागो और मेरे साथ युद्ध करो॥ २७॥

मैं इसी समय तुम्हारा तथा तुम्हारे भाईका वध कर दूँगी। तत्पश्चात् शुम्भ, निशुम्भ, मदोन्मत्त रक्तबीज तथा अन्य दानवोंको रणभूमिमें मारकर मैं अपने धामको चली जाऊँगी। अब तुम यहाँ ठहरो अथवा शीघ्र भाग जाओ॥ २८-२९॥

व्यर्थ ही स्थूल शरीर धारण करनेवाले हे दैत्य! तुरंत शस्त्र उठा लो और मेरे साथ अभी युद्ध करो। कायरोंको सदा प्रिय लगनेवाली व्यर्थ बातें क्यों बोल रहे हो?॥ ३०॥

व्यासजी बोले—देवीके इस प्रकार उत्तेजित करनेपर दैत्य चण्ड-मुण्ड क्रोधसे भर उठे और अपने बलके अभिमानमें चूर उन दोनोंने वेगपूर्वक अपने धनुषकी प्रत्यंचाकी भीषण टंकार की॥ ३१॥

उसी समय दसों दिशाओंको गुंजित करती हुई भगवतीने भी शंखनाद किया और बलवान् सिंहने भी कुपित होकर गर्जन किया। उस गर्जनसे इन्द्र आदि देवता, मुनि, यक्ष, गन्धर्व, सिद्ध, साध्य और किन्नर बहुत हर्षित हुए॥ ३२-३३॥

तदनन्तर चण्डिका और चण्डमें परस्पर बाण, तलवार, गदा आदिके द्वारा भीषण संग्राम होने लगा; जो कायरोंके लिये भयदायक था॥ ३४॥

चण्डिकाने दैत्य चण्डके द्वारा छोड़े गये बाणोंको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे काट दिया और फिर वे चण्डपर अपने सर्पसदृश भयंकर बाण छोड़ने लगीं॥ ३५॥

उस समय संग्राममें आकाशमण्डल बाणोंसे उसी प्रकार आच्छादित हो गया, जैसे वर्षाऋतुके अन्तमें किसानोंको भय प्रदान करनेवाली टिड्डियोंसे आकाश छा जाता है॥ ३६॥

उसी समय अतीव भयंकर मुण्ड भी सैनिकोंके साथ बड़ी तेजीसे रणभूमिमें आ पहुँचा और क्रोधित होकर बाणोंकी वर्षा करने लगा॥ ३७॥

तब [मुण्डके द्वारा प्रक्षिप्त] महान् बाण-समूहको देखकर अम्बिका बहुत कुपित हुईं। क्रोधके कारण उनका मुख मेघके समान काला, आँखें केलेके पुष्पके समान लाल और भौंहें टेढ़ी हो गयीं॥ ३८ $^{१}/_{२}$॥

उसी समय देवीके ललाटपटलसे सहसा भगवती काली प्रकट हुईं। अत्यन्त क्रूर वे काली व्याघ्रचर्म पहने थीं और गजचर्मके उत्तरीय वस्त्रोंसे सुशोभित थीं। उन भयानक कालीने गलेमें मुण्डमाला धारण कर रखी थी और उनका उदर सूखी बावलीके समान प्रतीत हो रहा था। अत्यन्त भीषण तथा भय प्रदान करनेवाली वे भगवती काली हाथमें खड्ग, पाश तथा खट्वांग धारण किये हुई थीं। रौद्र रूपवाली वे काली साक्षात् दूसरी कालरात्रिके समान प्रतीत हो रही थीं॥ ३९—४१॥

विशाल मुख तथा विस्तृत जघनप्रदेशवाली वे भगवती काली बार-बार जिह्वा लपलपाती हुई बड़े वेगसे असुर-सैनिकोंका संहार करने लगीं॥ ४२॥

वे कुपित होकर बड़े-बड़े दैत्यवीरोंको हाथमें पकड़कर

अपने मुखमें डाल लेती थीं और धीरे-धीरे उन्हें दाँतोंसे पीस डालती थीं॥ ४३॥

घंटा तथा आरोहियोंसमेत हाथियोंको अपने हाथमें पकड़कर वे देवी उन्हें मुखमें डाल लेती थीं और उन्हें चबा-चबाकर अट्टहास करने लगती थीं। उसी प्रकार वे सारथियोंसहित घोड़ों और ऊँटोंको अपने मुखमें डालकर दाँतोंसे चबाती हुई अत्यन्त भयानक ध्वनि करने लगती थीं॥ ४४-४५॥

अपनी सेनाको मारे जाते देखकर महान् असुर चण्ड-मुण्डने निरन्तर बाण-वृष्टिके द्वारा भगवतीको आच्छादित कर दिया॥ ४६॥

चण्डने सूर्यके समान तेजस्वी तथा भगवान् विष्णुके सुदर्शनचक्रके तुल्य प्रभाववाला चक्र बड़े वेगसे देवीपर चला दिया और वह बार-बार गरजने लगा॥ ४७॥

उसे गर्जन करते देखकर कालीने अपने एक ही बाणसे उसके सूर्य-तुल्य तेजस्वी तथा सुदर्शनचक्र-सदृश प्रभावाले चक्रको काट डाला॥ ४८॥

तत्पश्चात् भगवती चण्डिकाने पत्थरकी सानपर चढ़ाये हुए अपने तीक्ष्ण बाणोंसे उस चण्डपर प्रहार किया। देवीके बाणोंसे अत्यधिक घायल होकर वह मूर्च्छित हो गया और पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ ४९॥

उस समय अपने भाईको पृथ्वीपर गिरा हुआ देखकर मुण्ड दुःखसे व्याकुल हो उठा और कुपित होकर कालिकाके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगा॥ ५०॥

भगवती चण्डिकाने मुण्डके द्वारा की गयी अत्यन्त भीषण बाणवर्षाको अपने द्वारा छोड़े गये ईषिकास्त्रोंसे बलपूर्वक तिल-तिल करके क्षणभरमें ही नष्ट कर डाला॥ ५१॥

तत्पश्चात् चण्डिकाने एक अर्धचन्द्राकार बाणसे मुण्डपर पुनः प्रहार किया, जिससे वह महाशक्तिशाली दैत्य मदहीन होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ ५२॥

[यह देखकर] उस समय दानवोंकी सेनामें महान् हाहाकार मच गया। आकाशमें विद्यमान सभी देवताओंकी व्यथा दूर हो गयी और वे हर्षसे भर उठे॥ ५३॥

इसके बाद कुछ देरमें मूर्च्छा दूर होनेपर चण्डने एक विशाल गदा लेकर बड़े वेगसे कालिकाकी दाहिनी भुजापर प्रहार किया॥ ५४॥

भगवती कालिकाने उसके गदाप्रहारको रोककर अभिमन्त्रित करके छोड़े गये बाण-पाशसे उस महान् असुरको शीघ्र ही बाँध लिया॥ ५५॥

उधर जब मुण्ड चेतनामें आया तब अपने अनुजको पाशास्त्रमें बलपूर्वक बँधा देखकर कवच पहने हुए वह अपने हाथमें एक सुदृढ़ शक्ति लेकर आ गया॥ ५६॥

तब भगवती कालीने उस दूसरे भाई दानव मुण्डको बड़े वेगसे अपनी ओर आता हुआ देखकर उसे भी बड़ी मजबूतीसे बाँध लिया॥ ५७॥

इस प्रकार महाबली चण्ड-मुण्डको खरगोशकी तरह पकड़कर जोर-जोरसे हँसती हुई वे कालिका अम्बिकाके पास जा पहुँची। उनके पास आकर कालिका कहने लगीं—हे प्रिये! मैं रणयज्ञमें पशुबलिके लिये इन रणदुर्जय दानवोंको यहाँ ले आयी हूँ, आप इन्हें स्वीकार करें॥ ५८-५९॥

तब उन लाये गये दोनों दानवोंको भेड़ियेकी तरह दीन-हीन देखकर भगवती अम्बिकाने कालिकासे मधुरताभरी वाणीमें कहा—हे रणप्रिये! न इनका वध करो और न छोड़ो ही। तुम चतुर हो अतः किसी उपायसे अब तुम्हें शीघ्र ही देवताओंका कार्य सिद्ध करना चाहिये॥ ६०-६१॥

व्यासजी बोले—अम्बिकाकी यह बात सुनकर कालिकाने उनसे पुनः कहा—जिस प्रकार यज्ञभूमिमें यूप स्थापित किये जाते हैं, उसी प्रकार विख्यात युद्धयज्ञमें बलिदान-स्तम्भके रूपमें प्रतिष्ठित खड्गके द्वारा मैं आलम्भनपूर्वक इस तरह इनका वध करूँगी, जिससे हिंसा नहीं होगी॥ ६२½॥

ऐसा कहकर देवी कालिकाने तुरंत तलवारसे उन

दोनोंका सिर काट लिया और वे आनन्दपूर्वक रुधिरपान करने लगीं॥ ६३१/२॥

इस प्रकार उन दोनों दैत्योंको मारा गया देखकर अम्बिकाने प्रसन्न होकर कहा—तुमने आज देवताओंका महान् कार्य किया है इसीलिये मैं तुम्हें एक शुभ वरदान दे रही हूँ। हे कालिके! चूँकि तुमने चण्ड-मुण्डका वध किया है, इसलिये अब तुम इस पृथ्वीलोकमें 'चामुण्डा'—इस नामसे अत्यधिक विख्यात होओगी॥ ६४-६५॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत पंचम स्कन्धका 'चण्ड और मुण्डका वध करनेके कारण देवीका चामुण्डानामवर्णन' नामक छब्बीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २६॥

सत्ताईसवाँ अध्याय

शुम्भका रक्तबीजको भगवती अम्बिकाके पास भेजना और उसका देवीसे वार्तालाप

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] उन दोनों दैत्योंको मारा गया देखकर मरनेसे बचे सभी सैनिक भागकर राजा शुम्भके पास गये। कुछ सैनिकोंके अंग बाणोंसे छिद गये थे, कुछके हाथ कट गये थे, उनके पूरे शरीरसे रक्त बह रहा था; वे सब रोते हुए नगरमें पहुँचे॥ १-२॥

दैत्यराज शुम्भके पास जाकर वे सब बार-बार चीख-पुकार करने लगे—हे महाराज! हमें बचा लीजिये, बचा लीजिये; नहीं तो आज हमें कालिका खा जायगी। उसने देवताओंका मर्दन करनेवाले महावीर चण्ड-मुण्डको मार डाला और वह बहुत-से सैनिकोंको खा गयी। अंग-भंग हुए हमलोग इस समय भयसे व्याकुल हैं॥ ३-४॥

हे प्रभो! मरे पड़े हाथियों, घोड़ों, ऊँटों तथा पैदल सैनिकोंसे उस कालिकाने युद्धभूमिको अत्यन्त डरावना बना दिया है॥ ५॥

उसने समरभूमिमें रक्तकी नदी बना डाली है, जिसमें मांस कीचड़की भाँति, मस्तकके केश सेवारके सदृश और टूटे हुए रथोंके पहिये भँवरके समान, सैनिकोंके कटे हाथ आदि मछलीके समान और सिर तुम्बीके फलके तुल्य प्रतीत हो रहे हैं। वह [रुधिर-नदी] कायरोंको भयभीत करनेवाली तथा देवताओंके हर्षको बढ़ानेवाली है॥ ६-७॥

हे महाराज! अब आप दैत्यकुलकी रक्षा कीजिये और शीघ्र पाताललोक चले जाइये; अन्यथा क्रोधमें भरी वह देवी आज ही [सभी दानवोंका] विनाश कर डालेगी; इसमें सन्देह नहीं है॥ ८॥

हे दानवेन्द्र! अम्बिकाका वाहन सिंह भी युद्धभूमिमें दानवोंको खाता जा रहा है और कालिकादेवी अपने बाणोंसे [दैत्य सैनिकोंका] अनेक तरहसे वध कर रही है। अतएव हे राजेन्द्र! आप भी कोपके वशीभूत होकर अपने भाई निशुम्भसहित मरनेका व्यर्थ विचार कर रहे हैं॥ ९-१०॥

हे महाराज! राक्षसकुलका नाश करनेवाली यह क्रूर स्त्री, जिसके लिये आप अपने बन्धुओंको मरवा डालना चाहते हैं, यदि आपको प्राप्त हो ही गयी तो यह आपको क्या सुख प्रदान करेगी?॥ ११॥

हे महाराज! जगत्में जय तथा पराजय दैवके अधीन होती है। बुद्धिमान्को चाहिये कि अल्प प्रयोजनके लिये भारी कष्ट न उठाये॥ १२॥

हे प्रभो! जिसके अधीन यह सारा जगत् रहता है, उस विधाताका अद्भुत कर्म देखिये कि इस स्त्रीने अकेले ही सम्पूर्ण राक्षसोंका संहार कर डाला॥ १३॥

आप लोकपालोंको जीत चुके हैं और इस समय आपके पास बहुत-से सैनिक भी हैं तथापि एक स्त्री युद्धके लिये आपको ललकार रही है; यह महान् आश्चर्य है!॥ १४॥

पूर्वकालमें आपने पुष्कर तीर्थमें एक देवालयमें तप किया था। उस समय वर प्रदान करनेके लिये लोकपितामह ब्रह्माजी आपके पास आये थे। हे महाराज! जब ब्रह्माजीने आपसे कहा—'हे सुव्रत! वर माँगो' तब आपने ब्रह्माजीसे अमर होनेकी यह प्रार्थना की थी—'देवता, दैत्य, मनुष्य, सर्प, किन्नर, यक्ष और पुरुषवाचक जो भी प्राणी हैं—इनमें किसीसे भी मेरी मृत्यु न हो'॥ १५—१७॥

हे प्रभो! इसी कारणसे यह श्रेष्ठ स्त्री आपका वध

करनेके लिये आयी हुई है। अतएव हे राजेन्द्र! बुद्धिसे ऐसा विचार करके अब आप युद्ध मत कीजिये॥ १८॥

इन देवी अम्बिकाको ही महामाया और परमा प्रकृति कहा गया है। हे राजेन्द्र! कल्पके अन्तमें ये भगवती ही सम्पूर्ण सृष्टिका संहार करती हैं॥ १९॥

सबपर शासन करनेवाली ये कल्याणमयी देवी सम्पूर्ण लोकों तथा देवताओंको भी उत्पन्न करनेवाली हैं। ये देवी तीनों गुणोंसे युक्त हैं, फिर भी ये विशेषरूपसे तमोगुणसे युक्त और सभी प्रकारकी शक्तियोंसे सम्पन्न हैं। ये अजेय, विनाशरहित, नित्य, सर्वज्ञ तथा सदा विराजमान रहती हैं। वेदमाता गायत्री और सन्ध्याके रूपमें प्रतिष्ठित ये देवी सम्पूर्ण देवताओंको आश्रय प्रदान करती हैं। ये देवी सम्पूर्ण सिद्धियोंको देनेवाली, स्वयं सिद्धिस्वरूपिणी, अविनाशिनी और निर्गुण तथा सगुण-रूपवाली; आनन्दस्वरूपा, गौरी नामसे विख्यात, सबको आनन्द देनेवाली तथा देवताओंको अभय प्रदान करनेवाली हैं॥ २०—२२॥

हे महाराज! ऐसा जानकर आप इनके साथ वैरभावका परित्याग कर दीजिये। हे राजेन्द्र! आप इनकी शरणमें चले जाइये; ये भगवती आपकी रक्षा करेंगी। आप इनके सेवक बन जाइये [और इस प्रकार] अपने कुलका जीवन बचा लीजिये; मरनेसे बचे हुए जो दैत्य हैं, वे भी दीर्घजीवी हो जायँ॥ २३-२४॥

व्यासजी बोले—उनका यह वचन सुनकर देवसेनाका मर्दन करनेवाले शुम्भने महान् वीरोंके पराक्रम-गुणसे सम्पन्न यथार्थ वचन कहना आरम्भ किया॥ २५॥

शुम्भ बोला—अरे मूर्खो! चुप रहो; तुमलोग युद्धभूमिसे भाग आये हो। तुम्हें यदि जीवित रहनेकी प्रबल अभिलाषा है तो तुम सब अभी पाताललोक चले जाओ॥ २६॥

जब यह सारा संसार ही दैवके अधीन है, तब विजयके सम्बन्धमें मुझे क्या चिन्ता हो सकती है? जैसे हमलोग दैवके अधीन हैं, वैसे ही ब्रह्मा आदि देवता भी सदा दैवके अधीन रहते हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश, यम, अग्नि, वरुण, सूर्य, चन्द्र और इन्द्र—ये सब देवता सदा दैवके अधीन हैं। हे मूर्खो! तब मुझे किस बातकी चिन्ता? जो होना होगा, वह तो होकर रहेगा। जैसी भवितव्यता होती है, उसी प्रकारका उद्यम भी आरम्भ हो जाता है। सब प्रकारसे ऐसा विचार करके विद्वान् लोग कभी शोक नहीं करते। ज्ञानी लोग मृत्युके भयसे अपने धर्मका त्याग नहीं करते॥ २७—३०॥

समय आनेपर दैवकी प्रेरणासे मनुष्योंको सुख, दु:ख, आयु, जीवन तथा मरण—ये सब निश्चितरूपसे प्राप्त होते हैं। अपना-अपना समय पूरा हो जानेपर ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी नष्ट हो जाते हैं। इन्द्रसहित सभी देवता भी अपनी आयुके अन्तमें विनाशको प्राप्त होते हैं। उसी प्रकार मैं भी सर्वथा कालका वशवर्ती हूँ। अत: अब मुझे विनाश अथवा विजय जो भी प्राप्त होगी, उसे मैं अपने धर्मका सम्यक् पालन करते हुए स्वीकार करूँगा॥ ३१—३३॥

जब इस स्त्रीने मुझे युद्धके लिये ललकारा है, तब [उसके भयसे] भागकर मैं सैकड़ों वर्ष जीवित रहनेकी आशा क्यों करूँ? मैं आज ही उसके साथ युद्ध करूँगा, फिर जो होना है वह होवे। युद्धमें विजय अथवा मृत्यु जो भी प्राप्त होगी, उसे मैं स्वीकार करूँगा॥ ३४-३५॥

'दैव मिथ्या है'—ऐसा उद्यमवादी विद्वान् कहते हैं। जो अच्छी तरहसे भाषण करना जानते हैं, उन उद्यमवादी विद्वानोंकी बात युक्तियुक्त भी है॥ ३६॥

बिना उद्यम किये मनोरथ कभी सिद्ध नहीं होते। केवल कायरलोग ही कहते हैं कि जो होना होगा, वह तो होकर रहेगा। अदृष्ट—प्रारब्ध बलवान् होता है—ऐसी बात मूर्ख कहते हैं न कि पण्डितजन। प्रारब्धकी सत्ता है—इसमें क्या प्रमाण हो सकता है? क्योंकि जो स्वयं अदृष्ट है, वह भला कैसे दिखायी पड़ सकता है?॥ ३७-३८॥

अदृष्टको कभी किसीने देखा भी है क्या? यह तो मूर्खोंके लिये विभीषिकामात्र है। इसका कोई आधार नहीं है; केवल कष्टकी स्थितिमें मनको ढाँढ़स देनेके लिये वह सहारामात्र अवश्य बन जाता है॥ ३९॥

आटा पीसनेवाली कोई स्त्री चक्कीके पास चुपचाप बैठी रहे, तो बिना उद्यम किये किसी प्रकार भी आटा तैयार नहीं हो सकता॥ ४०॥

उद्यम करनेपर ही हर प्रकारसे कार्य सिद्ध होता है।

जब कभी उद्यम करनेमें कमी रह जाती है, तब कार्य किसी तरह सिद्ध नहीं हो पाता है॥ ४१॥

देश, काल, अपना बल तथा शत्रुका बल—इन सबकी पूरी जानकारी करके किया गया कार्य निश्चय ही सिद्ध होता है—यह आचार्य बृहस्पतिका वचन है॥ ४२॥

व्यासजी बोले—ऐसा निश्चय करके दैत्यराज शुम्भने महान् असुर रक्तबीजको विशाल सेनाके साथ समरभूमिमें जानेकी आज्ञा दी॥ ४३॥

शुम्भ बोला—हे विशाल भुजाओंवाले रक्तबीज! तुम युद्धभूमिमें जाओ; और हे महाभाग! अपनी पूरी शक्ति लगाकर युद्ध करो॥ ४४॥

रक्तबीज बोला—हे महाराज! आपको तनिक भी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। मैं इस स्त्रीको या तो मार डालूँगा और या तो इसे आपके अधीन कर दूँगा। आप मेरा बुद्धिचातुर्य देखें। [मेरे आगे] देवताओंकी प्रिय यह बाला है ही क्या? मैं इसे युद्धमें बलपूर्वक जीतकर आपकी दासी बना दूँगा॥ ४५-४६॥

व्यासजी बोले—हे कुरुश्रेष्ठ! ऐसा कहकर महान् असुर रक्तबीज रथपर आरूढ होकर अपनी सेनाके साथ चल पड़ा॥ ४७॥

हाथी, घोड़े, रथ तथा पैदल सैनिकोंसे चारों ओरसे आवृत हुआ रक्तबीज रथपर आरूढ़ होकर पर्वतपर विराजमान भगवतीकी ओर चल दिया॥ ४८॥

उसे आया हुआ देखकर देवीने शंख बजाया। वह शंखनाद सभी दैत्योंके लिये भयदायक तथा देवताओंके लिये हर्षवर्धक था॥ ४९॥

उस भीषण शंखध्वनिको सुनकर वह रक्तबीज बड़े वेगसे देवी चामुण्डाके पास पहुँचकर मधुर वाणीमें उनसे कहने लगा॥ ५०॥

रक्तबीज बोला—हे बाले! क्या तुम कायर समझकर अपने शंखनादसे मुझको डरा रही हो? हे कोमलांगि! क्या तुमने मुझे धूम्रलोचन समझ रखा है?॥ ५१॥

मेरा नाम रक्तबीज है। मैं यहाँ तुम्हारे ही पास आया हूँ। हे पिकभाषिणि! यदि तुम्हारी युद्ध करनेकी इच्छा हो तो तैयार हो जाओ; मुझे तुमसे भय नहीं है॥ ५२॥

हे कान्ते! अब तुम मेरा पराक्रम देखो। अभीतक तुमने जिन-जिन कायर दैत्योंको देखा है, उनकी श्रेणीका मैं नहीं हूँ। तुम जिस तरहसे चाहो, वैसे लड़ लो॥ ५३॥

हे सुन्दरि! यदि तुमने वृद्धजनोंकी सेवा की हो, नीतिशास्त्रका अध्ययन किया हो, अर्थशास्त्र पढ़ा हो, विद्वानोंकी गोष्ठीमें भाग लिया हो और यदि तुम्हें साहित्य तथा तन्त्रविज्ञानका ज्ञान हो, तो मेरी हितकर, यथार्थ तथा प्रामाणिक बात सुन लो॥ ५४-५५॥

विद्वानोंकी सभाओंमें नौ रसोंके अन्तर्गत शृंगाररस तथा शान्तिरस—ये दो रस ही मुख्य माने गये हैं। उन दोनोंमें भी शृंगाररस रसोंके राजाके रूपमें प्रतिष्ठित है। [इसीके प्रभावसे] विष्णु लक्ष्मीके साथ, ब्रह्मा सावित्रीके साथ, इन्द्र शचीके साथ और भगवान् शिव पार्वतीके साथ शयन करते हैं; उसी प्रकार वृक्ष लताके साथ, मृग मृगीके साथ और कपोत कपोतीके साथ आनन्द करते हैं॥ ५६—५८॥

इस प्रकार जगत्‌के समस्त जीवधारी संयोगजनित सुखका अत्यधिक उपभोग करते हैं। जो लोग भोग तथा वैभवका सुख नहीं प्राप्त कर सके हैं और अन्य जो कायर मनुष्य संन्यासी हो जाते हैं, वे निश्चय ही मूर्ख हैं और दैवने उन्हें ठग लिया है। संसारके रसका ज्ञान न रखनेवाले वे लोग मीठी-मीठी बात बोलनेमें निपुण धूर्तों तथा वंचकोंद्वारा ठग लिये जाते हैं और सदा शान्तरसमें निमग्न रहते हैं; किंतु काम, लोभ, भयंकर क्रोध और बुद्धिनाशक मोहके उत्पन्न होते ही कहाँ ज्ञान रह जाता है और कहाँ वैराग्य! अतएव हे कल्याणि! तुम भी देवताओंपर विजय प्राप्त कर लेनेवाले मनोहर तथा महाबली शुम्भ अथवा निशुम्भको पति बना लो॥ ५९—६२$^{1}/_{2}$॥

व्यासजी बोले—इतना कहकर वह रक्तबीज देवीके सामने चुपचाप खड़ा हो गया। उसकी बातें सुनकर चामुण्डा, कालिका और अम्बिका हँसने लगीं॥ ६३॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत पंचम स्कन्धका 'रक्तबीजके द्वारा देवीके पास शुम्भ एवं निशुम्भका संवादवर्णन' नामक सत्ताईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २७॥

अट्ठाईसवाँ अध्याय

देवीके साथ रक्तबीजका युद्ध, विभिन्न शक्तियोंके साथ भगवान् शिवका रणस्थलमें आना तथा भगवतीका उन्हें दूत बनाकर शुम्भके पास भेजना, भगवान् शिवके सन्देशसे दानवोंका क्रुद्ध होकर युद्धके लिये आना

व्यासजी बोले—हे राजन्! तत्पश्चात् वे देवी हँसकर मेघके समान गम्भीर वाणीमें उस रक्तबीजसे यह युक्तिसंगत वचन बोलीं—हे मन्दबुद्धि! तुम क्यों व्यर्थ प्रलाप कर रहे हो? मैं तो पहले ही दूतके सामने उचित और हितकर बात कह चुकी हूँ कि यदि तीनों लोकोंमें कोई भी पुरुष रूप, बल और वैभवमें मेरे समान हो तो मैं पतिरूपमें उसका वरण कर लूँगी। अब तुम शुम्भ-निशुम्भसे कह दो कि मैं पूर्वकालमें ऐसी प्रतिज्ञा कर चुकी हूँ, अतः मेरे साथ युद्ध करो और रणमें मुझे जीतकर [मेरे साथ] विधिवत् विवाह कर लो॥ १—४॥

तुम भी शुम्भकी आज्ञासे उसका कार्य सिद्ध करनेके लिये यहाँ आये हो। अतएव यदि चाहो तो मेरे साथ युद्ध करो अथवा अपने स्वामीके साथ पाताललोक चले जाओ॥ ५॥

व्यासजी बोले—देवीकी बात सुनकर वह दैत्य क्रोधमें भर उठा और बड़े वेगसे देवीके सिंहपर भीषण बाण छोड़ने लगा॥ ६॥

सर्पसदृश उन बाणोंको देखकर अम्बिकाने दक्षतापूर्वक बड़ी फुर्तीके साथ अपने तीखे बाणोंसे उन्हें आकाशमें ही क्षणभरमें काट डाला॥ ७॥

इसके बाद अम्बिकाने कानतक खींचकर धनुषसे छोड़े गये तथा पत्थरपर घिसकर तीक्ष्ण बनाये गये अन्य बाणोंसे महान् असुर रक्तबीजपर प्रहार किया॥ ८॥

भगवतीके बाणोंसे आहत होकर पापी रक्तबीज रथपर ही मूर्च्छित हो गया। रक्तबीजके गिर जानेपर बड़ा हाहाकार मच गया। उसके सभी सैनिक चीखने-चिल्लाने लगे और 'हाय! हम मारे गये'—ऐसा कहने लगे॥ ९१/२॥

तब अपने सैनिकोंका अत्यन्त भीषण क्रन्दन सुनकर शुम्भने सभी दैत्ययोद्धाओंको शस्त्रास्त्रसे सुसज्जित होनेका आदेश दिया॥ १०१/२॥

शुम्भ बोला—कम्बोजदेशके सभी दानव तथा उनके अतिरिक्त अन्य महाबली वीर विशेष करके कालकेयसंज्ञक पराक्रमी योद्धा भी अपनी-अपनी सेनाके साथ निकल पड़ें॥ १११/२॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार शुम्भके आदेश देनेपर उसकी सारी चतुरंगिणी सेना मदमत्त होकर देवीके साथ संग्रामहेतु समरभूमिके लिये निकल पड़ी। समरभूमिमें आयी हुई उस दानवी सेनाको देखकर भगवती चण्डिका बार-बार भीषण तथा भयदायक घंटानाद करने लगीं। जगदम्बाने धनुषका टंकार तथा शंखनाद किया। उस नादके होते ही भगवती काली भी अपना मुख फैलाकर घोर ध्वनि करने लगीं॥ १२—१४१/२॥

उस भयंकर शब्दको सुनकर भगवतीका वाहन बलशाली सिंह भी अद्भुत भय उत्पन्न करता हुआ बड़े जोरका गर्जन करने लगा। वह निनाद सुनकर सभी दैत्य क्रोधके मारे बौखला उठे और वे महाबली दैत्य देवीपर अस्त्र छोड़ने लगे॥ १५-१६१/२॥

उस भयानक तथा रोमांचकारी महासंग्राममें ब्रह्मा आदि देवताओंकी विभिन्न शक्तियाँ भी चण्डिकाके पास पहुँच गयीं। जिस देवताका जैसा रूप, भूषण तथा वाहन था; ठीक उसी प्रकारके रूप, भूषण तथा वाहनसे युक्त होकर सभी देवियाँ रणक्षेत्रमें पहुँची थीं॥ १७-१८१/२॥

ब्रह्माजीकी शक्ति, जो ब्रह्माणी नामसे प्रख्यात हैं, हाथमें अक्षसूत्र तथा कमण्डलु धारण करके हंसपर आरूढ़ हो वहाँ आयीं। भगवान् विष्णुकी शक्ति वैष्णवी गरुडपर सवार होकर रणभूमिमें आयीं। वे पीताम्बरसे विभूषित थीं तथा उन्होंने हाथोंमें शंख-चक्र-गदा-पद्म धारण कर रखा था। शंकरकी शक्ति भगवती शिवा बैलपर सवार होकर हाथमें उत्तम त्रिशूल लिये मस्तकपर अर्धचन्द्र धारण किये तथा सर्पोंके कंगन पहने वहाँ उपस्थित हुईं॥ १९—२११/२॥

भगवान् कार्तिकेयके समान ही रूप धारण करके

सुन्दर मुखवाली भगवती कौमारी युद्धकी इच्छासे हाथमें शक्ति धारण करके मयूरपर आरूढ़ होकर आयीं। सुन्दर मुखवाली इन्द्राणी अतिशय उज्ज्वल हाथीपर सवार होकर हाथमें वज्र लिये उग्र क्रोधसे आविष्ट हो समरभूमिमें पहुँचीं। इसी प्रकार सूकरका रूप धारण करके एक विशाल प्रेतपर सवार होकर भगवती वाराही, नृसिंहके समान रूप धारण करके भगवती नारसिंही और यमराजके ही समान रूपवाली भयदायिनी शक्ति भगवती याम्या हाथमें दण्ड धारण किये तथा महिषपर आरूढ़ होकर मधुर-मधुर मुसकराती हुई संग्राममें आयीं। उसी प्रकार वरुणकी शक्ति वारुणी तथा कुबेरकी मदोन्मत्त शक्ति कौबेरी भी समरभूमिमें पहुँच गयीं। इसी तरह अन्य देवताओंकी शक्तियाँ भी उन्हीं देवोंका रूप धारणकर अपनी-अपनी सेनाओंके साथ रणभूमिमें उपस्थित हुईं। उन शक्तियोंको वहाँ उपस्थित देखकर भगवती अम्बिका बहुत हर्षित हुईं। इससे देवता निश्चिन्त तथा प्रसन्न हो गये और दैत्य भयभीत हो उठे॥ २२—२७१/२ ॥

लोककल्याणकारी शिवजी भी उन शक्तियोंके साथ वहाँ संग्राममें भगवती चण्डिकाके पास आकर उनसे कहने लगे—देवताओंकी कार्यसिद्धिके लिये आप शुम्भ-निशुम्भ तथा अन्य जो भी दानव उपस्थित हैं, उन सबका वध कर दीजिये। साथ ही सारी असुर-सेनाका संहार करके और इस प्रकार संसारको भयमुक्त करके ये समस्त शक्तियाँ अपने-अपने स्थानोंको चली जायँ। [आप यह कार्य सम्पन्न करें जिससे] देवता यज्ञभाग पाने लगें, ब्राह्मण [निर्भय होकर] यज्ञ आदि करनेमें तत्पर हो जायँ, सभी स्थावर-जंगम प्राणी सन्तुष्ट हो जायँ, सब प्रकारके उपद्रव और अकाल आदि आपदाएँ समाप्त हो जायँ, मेघ समयपर वृष्टि करें और कृषि लोगोंके लिये अधिक फलदायिनी हो॥ २८—३२१/२ ॥

व्यासजी बोले—लोकका कल्याण करनेवाले देवेश्वर शिवके ऐसा कहनेपर भगवती चण्डिकाके शरीरसे एक अद्भुत शक्ति प्रकट हुई। वह शक्ति अत्यन्त भयंकर तथा प्रचण्ड थी, वह सैकड़ों सियारिनोंके समवेत स्वरके समान ध्वनि कर रही थी और उसका रूप बहुत भयानक था। मन्द-मन्द मुसकानयुक्त मुखमण्डलवाली उस शक्तिने पंचमुख शिवजीसे कहा—हे देवदेव! आप दैत्यराज शुम्भके

पास शीघ्र जाइये। हे कामरिपु! इस समय आप मेरे दूतका काम कीजिये। हे शंकर! कामपीड़ित शुम्भ तथा मदोन्मत्त निशुम्भसे मेरे शब्दोंमें कह दीजिये—'तुम सब तत्काल स्वर्ग त्यागकर पाताललोक चले जाओ, जिससे देवगण सुखपूर्वक स्वर्गमें प्रविष्ट हो सकें और इन्द्रको स्वर्गलोक तथा अपना उत्तम इन्द्रासन पुनः प्राप्त हो जाय; साथ ही सभी देवताओंको उनके यज्ञभाग पुनः मिलने लगें। यदि जीवित रहनेकी तुमलोगोंकी बलवती इच्छा हो तो तुमलोग बहुत शीघ्र पाताललोक चले जाओ, जहाँ दानवलोग रहते हैं। अथवा अपने बलका आश्रय लेकर यदि तुम सब युद्धकी इच्छा रखते हो, तो मरनेके लिये आ जाओ, जिससे मेरी सियारिनें तुमलोगोंके कच्चे मांससे तृप्त हो जायँ॥ ३३—३९१/२ ॥

व्यासजी बोले—चण्डिकाका यह वचन सुनकर शिव अपनी सभामें बैठे हुए दैत्यराज शुम्भके पास जाकर उससे कहने लगे॥ ४०१/२ ॥

शिवजी बोले—हे राजन्! मैं त्रिपुरासुरका संहार करनेवाला महादेव हूँ। अम्बिकाका दूत बनकर मैं इस समय तुम्हारा सम्पूर्ण हित करनेके लिये यहाँ तुम्हारे पास आया हूँ। [देवीने कहलाया है कि] तुमलोग स्वर्ग तथा भूलोक त्यागकर शीघ्र पाताललोक चले जाओ, जहाँ प्रह्लाद तथा बलवानोंमें श्रेष्ठ राजा बलि रहते हैं। अथवा यदि मरनेकी ही इच्छा हो तो तुरंत सामने आ जाओ; मैं तुम सबको संग्राममें शीघ्र ही मार डालूँगी। तुमलोगोंके कल्याणके लिये महारानी अम्बिकाने ऐसा कहा है॥ ४१—४४॥

व्यासजी बोले—भगवतीका यह अमृत-तुल्य कल्याणकारी सन्देश उन प्रधान दैत्योंको सुनाकर शूलधारी भगवान् शंकर लौट आये॥ ४५॥

भगवती अम्बिकाने शिवजीको दूत बनाकर दानवोंके पास भेजा था, अतः वे सम्पूर्ण त्रिलोकीमें 'शिवदूती' इस नामसे विख्यात हुईं॥ ४६॥

शंकरजीके मुखसे कहे गये भगवतीके इस दुष्कर सन्देशको सुनते ही वे दैत्य भी कवच धारण करके तथा हाथोंमें शस्त्र लेकर शीघ्र ही युद्धके लिये निकल पड़े॥ ४७॥

वे दानव बड़े वेगसे रणभूमिमें चण्डिकाके समक्ष आकर कानोंतक खींचे गये तथा पत्थरपर सान चढ़े तीखे बाणोंसे प्रहार करने लगे॥ ४८॥

भगवती कालिका त्रिशूल, गदा और शक्तिसे दानवोंको विदीर्ण करती हुई और उनका भक्षण करती हुई युद्धमें विचरने लगीं॥ ४९॥

भगवती ब्रह्माणी युद्धभूमिमें अपने कमण्डलुके जलके प्रक्षेपमात्रसे उन महाबली दानवोंको प्राणशून्य कर देती थीं॥ ५०॥

वृषभपर विराजमान भगवती माहेश्वरी अपने त्रिशूलसे रणमें दानवोंपर बड़े वेगसे प्रहार करती थीं और उन्हें मारकर धराशायी कर देती थीं॥ ५१॥

भगवती वैष्णवी गदा तथा चक्रके प्रहारसे दानवोंको निष्प्राण तथा सिरविहीन कर डालती थीं॥ ५२॥

इन्द्रकी शक्ति देवी ऐन्द्री ऐरावत हाथीकी सूँड़की चोटसे पीड़ित बड़े-बड़े दैत्योंको अपने वज्रके प्रहारसे भूतलपर गिरा देती थीं॥ ५३॥

देवी वाराही कुपित होकर अपने तुण्ड तथा भयंकर दाढ़ोंके प्रहारसे सैकड़ों दैत्यों और दानवोंको मार डालती थीं॥ ५४॥

देवी नारसिंही अपने तीक्ष्ण नखोंसे बड़े-बड़े दैत्योंको फाड़-फाड़कर खाती हुई रणभूमिमें विचर रही थीं तथा बार-बार गर्जना कर रही थीं॥ ५५॥

शिवदूती अपने अट्टहाससे ही दैत्योंको धराशायी कर देती थीं और चामुण्डा तथा कालिका बड़ी शीघ्रतासे उन्हें खाने लगती थीं॥ ५६॥

मयूरपर विराजमान भगवती कौमारी देवताओंके कल्याणके लिये कानोंतक खींचे गये तथा पत्थरपर सान चढ़े तीक्ष्ण बाणोंसे शत्रुओंका संहार करने लगीं॥ ५७॥

भगवती वारुणी समरांगणमें दैत्योंको अपने पाशमें बाँधकर उन्हें अचेत करके एकके ऊपर एकके क्रमसे गिरा देती थीं और वे निष्प्राण हो जाते थे॥ ५८॥

इस प्रकार उन मातृशक्तियोंके प्रयाससे दानवोंकी वह ओजस्विनी तथा पराक्रमी सेना युद्धभूमिमें तहस-नहस होकर भाग खड़ी हुई॥ ५९॥

उस सेनारूपी समुद्रमें बड़े जोरसे रोने-चिल्लानेकी ध्वनि होने लगी। देवीके गणोंके ऊपर देवता पुष्पोंकी वर्षा करने लगे॥ ६०॥

दानवोंकी भयंकर चीत्कार तथा देवताओंकी जयध्वनि सुनकर और दैत्योंको पलायित देखकर रक्तबीज बहुत कुपित हुआ। उस समय देवताओंको गरजते हुए देखकर वह महाबली तथा तेजस्वी दैत्य रक्तबीज युद्धभूमिमें स्वयं आ डटा। वह आयुधोंसे सुसज्जित होकर रथपर सवार था और प्रत्यंचाकी अद्भुत टंकार करता हुआ क्रोधके मारे आँखें लाल किये युद्धके लिये देवीके सम्मुख आ गया॥ ६१—६३॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत पंचम स्कन्धका 'रक्तबीजके साथ देवीका युद्धवर्णन' नामक अट्ठाईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २८॥

उनतीसवाँ अध्याय

रक्तबीजका वध और निशुम्भका युद्धक्षेत्रके लिये प्रस्थान

व्यासजी बोले—हे राजन्! किसी समय शंकरजीने उस दानव रक्तबीजको यह बड़ा ही अद्भुत वर दे डाला था, मैं उसे बता रहा हूँ; आप सुनिये॥ १॥

उस दानवके शरीरसे जब रक्तकी बूँद पृथ्वीपर गिरती थी, तब उसीके रूप तथा पराक्रमवाले दानव तुरंत उत्पन्न हो जाते थे। भगवान् शंकरने उसे यह बड़ा ही अद्भुत वर दे दिया था कि तुम्हारे रक्तसे असंख्य महान् पराक्रमी दानव उत्पन्न हो जायँगे॥ २-३॥

उस वरदानके कारण अभिमानमें भरा हुआ वह दैत्य अत्यन्त कुपित होकर कालिकासमेत अम्बिकाको मारनेके लिये बड़े वेगसे रणभूमिमें पहुँचा॥ ४॥

गरुडपर विराजमान वैष्णवी शक्तिको देखकर उस दैत्येन्द्रने उन कमलनयनी देवीपर शक्ति (बर्छी)-से प्रहार कर दिया॥ ५॥

तब उस शक्तिशालिनी वैष्णवी शक्तिने अपनी गदासे उस प्रहारको विफल कर दिया और अपने चक्रसे महान् असुर रक्तबीजपर आघात किया॥ ६॥

उस चक्रके लगनेपर रक्तबीजके घायल शरीरसे रक्तकी विशाल धारा बह चली मानो वज्रप्रहारसे घायल पर्वतके शिखरसे गेरूकी धारा बह चली हो॥ ७॥

पृथ्वीतलपर जहाँ-जहाँ रक्तकी बूँदें गिरती थीं, वहाँ-वहाँ उसीके समान आकारवाले हजारों पुरुष उत्पन्न हो जाते थे॥ ८॥

तदनन्तर इन्द्रकी शक्ति ऐन्द्रीने क्रोधमें भरकर उस महान् असुर रक्तबीजपर वज्रसे आघात किया, जिससे उसके शरीरसे और रक्त निकलने लगा॥ ९॥

तब उसके रक्तसे अनेक रक्तबीज उत्पन्न हो गये, जो उसीके समान पराक्रमी तथा आकारवाले थे। वे सब-के-सब शस्त्रसम्पन्न तथा युद्धोन्मत्त थे॥ १०॥

ब्रह्माणीने कुपित होकर उसे ब्रह्मदण्डसे बहुत मारा और देवी माहेश्वरीने अपने त्रिशूलसे उस दानवको विदीर्ण कर दिया। देवी नारसिंहीने अपने नखोंके प्रहारोंसे उस महान् असुरको बींध डाला, देवी वाराहीने क्रुद्ध होकर उस अधम राक्षसको अपने तुण्डप्रहारसे चोट पहुँचायी और भगवती कौमारीने अपनी शक्तिसे उसके वक्षपर प्रहार किया॥ ११-१२$^1/_2$॥

तब वह दानव रक्तबीज भी क्रुद्ध होकर अलग-अलग उन सभी देवियोंको तीखे बाणोंकी घोर वर्षा तथा गदा और शक्तिके प्रहारोंसे चोट पहुँचाने लगा। उसके आघातसे कुपित होकर सभी देवियोंने बाणोंके प्रहारसे उसको बींध डाला। भगवती चण्डिकाने अपने तीक्ष्ण बाणोंसे उसके शस्त्रोंको काट डाला और अत्यन्त कुपित होकर वे अन्य बाणोंसे उस दानवको मारने लगीं॥ १३—१५॥

अब उसके शरीरसे अत्यधिक रक्त निकलने लगा। उस रक्तसे उसी रक्तबीजके समान हजारों वीर उत्पन्न हो गये। इस प्रकार उस रुधिर-राशिसे उत्पन्न रक्तबीजोंसे सारा जगत् भर गया; वे सब कवच पहने हुए थे, आयुधोंसे सुसज्जित थे और अद्भुत युद्ध कर रहे थे॥ १६-१७॥

उन असंख्य रक्तबीजोंको प्रहार करते देखकर देवता भयभीत, आतंकित, विषादग्रस्त और शोकसंतप्त हो गये। [वे सोचने लगे] इस समय रक्तबीजके रक्तसे उत्पन्न ये हजारों विशालकाय और महापराक्रमी दानव किस प्रकार विनष्ट होंगे? यहाँ रणभूमिमें केवल भगवती चण्डिका हैं और उनके साथमें देवी काली तथा कुछ मातृकाएँ हैं; केवल इन्हीं देवियोंको मिलकर सभी दानवोंको जीतना है—यह तो महान् कष्ट है। इसी समय यदि अचानक शुम्भ अथवा निशुम्भ भी सेनाके साथ संग्राममें आ जायगा, तब तो बहुत बड़ा अनर्थ हो जायगा॥ १८—२१॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] इस प्रकार जब सभी देवता भयसे व्याकुल होकर अत्यधिक चिन्तित हो उठे, तब भगवती अम्बिकाने कमलसदृश नेत्रोंवाली कालीसे कहा—हे चामुण्डे! तुम शीघ्रतापूर्वक अपना मुख पूर्णरूपसे फैला लो और मेरे शस्त्राघातके द्वारा [रक्तबीजके शरीरसे] निकले रक्तको जल्दी-जल्दी पीती जाओ। तुम दानवोंका भक्षण करती हुई इच्छानुसार युद्धभूमिमें विचरण करो। मैं तीक्ष्ण बाणों, गदा, तलवार तथा मुसलोंसे इन दैत्योंको मार डालूँगी॥ २२—२४॥

हे विशाल नयनोंवाली! तुम इस प्रकारसे इस दैत्यके रुधिरका पान करो, जिससे कि अब एक भी बूँद रक्त भूमिपर न गिरने पाये; तब इस ढंगसे भक्षण किये जानेपर दूसरे दानव उत्पन्न नहीं हो सकेंगे। इस प्रकार इन दैत्योंका नाश अवश्य हो जायगा, इसके अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय नहीं है॥ २५-२६॥

जब मैं इस दैत्यको मारूँ, तब तुम शत्रुसंहाररूपी इस कार्यमें प्रयत्नशील होकर सारा रक्त पीती हुई शीघ्रतापूर्वक इसका भक्षण कर जाना। इस प्रकार दैत्यवध करके स्वर्गका सारा राज्य इन्द्रको देकर हम सब आनन्दपूर्वक यहाँसे चली जायँगी॥ २७-२८॥

व्यासजी बोले—भगवती अम्बिकाके ऐसा कहनेपर प्रचण्ड पराक्रमवाली देवी चामुण्डा रक्तबीजके शरीरसे

निकले हुए समस्त रुधिरको पीने लगीं। जगदम्बा खड्ग तथा मुसलसे उस दैत्यको मारने लगीं और कृशोदरी चामुण्डा उसके शरीरके कटे हुए अंगोंका भक्षण करने लगीं॥ २९-३०॥

अब वह रक्तबीज भी कुपित होकर गदाके प्रहारोंसे चामुण्डाको घायल करने लगा, फिर भी वे शीघ्रतापूर्वक उसका रुधिर पीती रहीं और उसका भक्षण करती रहीं॥ ३१॥

उस दैत्यके रुधिरसे उत्पन्न हुए अन्य जो भी महाबली और क्रूर रक्तबीज थे, उन्हें भी चामुण्डाने मार डाला। वे देवी उनका भी रक्त पी गयीं और उन सबको खा गयीं॥ ३२॥

इस प्रकार भगवतीने जब सभी कृत्रिम रक्तबीजोंका भक्षण कर लिया, तब जो वास्तविक रक्तबीज था, उसे भी मारकर उन्होंने खड्गसे उसके अनेक टुकड़े करके भूमिपर गिरा दिया॥ ३३॥

तत्पश्चात् भयंकर रक्तबीजका वध हो जानेपर जो अन्य दानव रणभूमिमें थे, वे भयसे काँपते हुए भाग करके शुम्भके पास पहुँचे। उनका चित्त बहुत व्याकुल था, उनका शरीर रुधिरसे लथपथ था, वे शस्त्रविहीन हो गये थे और अचेत-से हो गये थे। वे हाय, हाय—ऐसा पुकारते हुए शुम्भसे कहने लगे—हे राजन्! अम्बिकाने उस रक्तबीजको मार डाला और चामुण्डा उसकी देहसे निकला सारा रुधिर पी गयी। जो अन्य दानववीर थे, उन सबको देवीके वाहन सिंहने बड़ी तेजीसे मार डाला और शेष दानवोंको भगवती काली खा गयीं॥ ३४—३७॥

हे राजन्! हमलोग आपको युद्धका वृत्तान्त तथा संग्राममें देवीके द्वारा प्रदर्शित किये गये उनके अत्यन्त अद्भुत चरित्रको बतानेके लिये आपके पास आये हुए हैं॥ ३८॥

हे महाराज! यह देवी दैत्य, दानव, गन्धर्व, असुर, यक्ष, पन्नग, उरग और राक्षस—इन सभीसे सर्वथा अजेय है॥ ३९॥

हे महाराज! इन्द्राणी आदि अन्य प्रमुख देवियाँ भी वहाँ आयी हुई हैं। वे अपने-अपने वाहनोंपर सवार होकर नानाविध आयुध धारण करके घोर युद्ध कर रही हैं। हे राजेन्द्र! उन देवियोंने अपने उत्तम अस्त्रोंसे दानवोंकी सारी सेनाका विध्वंस कर डाला और रक्तबीजको भी बड़ी शीघ्रतासे मार गिराया॥ ४०-४१॥

एकमात्र देवी अम्बिका ही हमलोगोंके लिये असह्य थी, और फिर जब वह उन देवियोंके साथ हो गयी है तब कहना ही क्या? असीम तेजवाला उसका वाहन सिंह भी संग्राममें राक्षसोंका वध कर रहा है॥ ४२॥

अतएव मन्त्रियोंके साथ विचार-विमर्श करके जो उचित हो, वह कीजिये। इसके साथ शत्रुता उचित नहीं है, अपितु सन्धि कर लेना ही सुखदायक होगा॥ ४३॥

यह आश्चर्य है कि एक स्त्री राक्षसोंका संहार कर रही है! रक्तबीज भी मार डाला गया! देवी चामुण्डा उसका सारा रक्त भी पी गयी! हे नृप! अम्बिकाने संग्राममें अन्य दैत्योंको मार डाला और देवी चामुण्डा उनका सम्पूर्ण मांस खा गयी॥ ४४-४५॥

हे महाराज! अब हमलोगोंके लिये या तो पाताल चला जाना श्रेयस्कर है अथवा उसकी दासता स्वीकार कर लेना; किंतु उस अम्बिकाके साथ युद्ध नहीं करना चाहिये। यह साधारण स्त्री नहीं है, यह देवताओंका कार्य सिद्ध करनेवाली है और यह मायारूपिणी शक्तिसम्पन्न देवीके रूपमें दैत्योंका नाश करनेके लिये प्रकट हुई है॥ ४६-४७॥

व्यासजी बोले—उन सैनिकोंकी यह यथार्थ बात सुनकर कालसे मोहित तथा मरनेके लिये उद्यत वह काँपते हुए ओठोंवाला शुम्भ उनसे कहने लगा॥ ४८॥

शुम्भ बोला—तुमलोग भयभीत होकर पाताल चले जाओ अथवा उसकी शरणमें चले जाओ, किंतु मैं तो युद्धमें पूर्णरूपसे तत्पर रहते हुए उस अम्बिका तथा उन देवियोंको

आज ही मार डालूँगा॥ ४९॥

रणभूमिमें सभी देवताओंको जीतकर मैं निष्कंटक राज्य करूँगा। भला एक स्त्रीके भयसे व्याकुल होकर मैं पाताल क्यों चला जाऊँ? रक्तबीज आदि प्रमुख पार्षदोंको रणमें मरवाकर और अपनी विशद कीर्तिका नाश करके प्राणरक्षाके लिये मैं पाताल क्यों चला जाऊँ?॥ ५०-५१॥

कालके द्वारा निर्धारित प्राणियोंकी मृत्यु तो अनिवार्य है। जन्मके साथ ही मृत्युका भय प्राणीके साथ लग जाता है। तब भला कौन (बुद्धिमान्) व्यक्ति दुर्लभ यशका त्याग कर सकता है?॥ ५२॥

हे निशुम्भ! मैं रथपर सवार होकर युद्धभूमिमें जाऊँगा और उसे मारकर ही वापस आऊँगा और यदि मैं उसे मार न सका तो फिर वापस नहीं लौटूँगा॥ ५३॥

हे वीर! तुम भी सेना साथमें लेकर चलो और युद्धमें मेरे सहायक बनो। वहाँ अपने तीक्ष्ण बाणोंसे मारकर तुम उस स्त्रीको शीघ्र ही यमलोक पहुँचा दो॥ ५४॥

निशुम्भ बोला—मैं अभी युद्धक्षेत्रमें जाकर दुष्ट कालिकाको मार डालूँगा और उस अम्बिकाको लेकर शीघ्र ही आपके पास आ जाऊँगा॥ ५५॥

हे राजेन्द्र! आप उस बेचारीके विषयमें चिन्ता मत कीजिये। कहाँ यह एक साधारण स्त्री और कहाँ पूरे विश्वको अपने वशमें कर लेनेवाला मेरा बाहुबल! हे भाई! आप इस भारी चिन्ताको छोड़कर सर्वोत्तम सुखोंका उपभोग कीजिये। मैं आदरकी पात्र उस मानिनीको अवश्य ही ले आऊँगा॥ ५६-५७॥

हे राजन्! मेरे रहते युद्धक्षेत्रमें आपका जाना उचित नहीं है। आपका कार्य सिद्ध करनेके लिये मैं वहाँ जाकर विजयश्री अवश्य ही प्राप्त करूँगा॥ ५८॥

व्यासजी बोले—बड़े भाई शुम्भसे ऐसा कहकर अपने बलपर अभिमान रखनेवाले छोटे भाई निशुम्भने कवच धारण कर लिया और अपनी सेना साथमें लेकर एक विशाल रथपर आरूढ़ हो स्वयं अनेकविध आयुध लेकर वह पूरी तैयारीके साथ तुरंत बड़ी तेजीसे युद्धभूमिकी ओर चल पड़ा। उस समय मंगलाचार किया जा रहा था और बन्दीजन तथा चारण उसका यशोगान कर रहे थे॥ ५९-६०॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत पंचम स्कन्धका 'देवीके साथ युद्ध करनेके लिये निशुम्भका प्रस्थान' नामक उनतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २९॥

तीसवाँ अध्याय

देवीद्वारा निशुम्भका वध

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] वह पराक्रमी निशुम्भ अब मृत्यु अथवा विजयका निश्चय करके पूरी तैयारीके साथ सेनासहित समरभूमिमें उपस्थित हो गया॥ १॥

अपनी सेना साथमें लेकर शुम्भ भी आ गया और युद्धकलाका पूर्ण ज्ञान रखनेवाला वह दैत्यराज शुम्भ रणमें दर्शक बनकर युद्धका अवलोकन करने लगा॥ २॥

इन्द्रसहित समस्त देवता तथा यक्षगण संग्राम देखनेकी इच्छासे आकाशमण्डलमें मेघपटलोंमें छिपकर विराजमान हो गये॥ ३॥

निशुम्भ रणभूमिमें पहुँचकर सींगका बना हुआ धनुष लेकर भगवती जगदम्बाको भयभीत करता हुआ उनके ऊपर बाणोंकी बौछार करने लगा॥ ४॥

युद्धभूमिमें निशुम्भको बाण-समूह छोड़ते हुए देखकर भगवती चण्डिका अपना उत्कृष्ट धनुष धारण करके उच्च स्वरमें बार-बार हँसने लगीं। देवी चण्डिकाने कालीसे कहा—हे काली! इन दोनोंकी मूर्खता तो देखो, ये दोनों इस समय यहाँ मेरे पास मरनेके लिये ही आये हुए हैं॥ ५-६॥

दैत्योंका भीषण संहार तथा रक्तबीजकी मृत्यु देखकर भी मेरी मायासे विमोहित हुए ये दोनों दैत्य विजयकी आशा कर रहे हैं॥ ७॥

यह आशा बड़ी बलवती होती है; यह प्राणियोंको कभी नहीं छोड़ती है। यहाँतक कि अंगहीन, बलहीन, नष्टप्राय, असहाय तथा अचेत प्राणी भी आशाके प्रभावसे छूट नहीं पाता है॥ ८॥

हे कालि! इस प्रकार आशा-पाशमें बँधे हुए ये दोनों शुम्भ-निशुम्भ युद्धके लिये समरभूमिमें आये हुए हैं, अब मुझे इन दोनोंका वध कर देना चाहिये॥ ९॥

आसन्न मृत्युवाले ये दोनों दैत्य प्रारब्धकी प्रेरणासे यहाँ आये हुए हैं। सभी देवताओंके समक्ष आज ही मैं इन्हें मार डालूँगी॥ १०॥

व्यासजी बोले—भगवती चण्डिकाने कालिकासे ऐसा कहकर कानोंतक खींचकर छोड़े गये बाण-समूहोंसे अपने समक्ष खड़े निशुम्भको शीघ्र ही आच्छादित कर दिया॥ ११॥

दैत्य निशुम्भने भी उन चण्डिकाके बाणोंको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे काट डाला। इस प्रकार उन दोनोंमें परस्पर अत्यन्त भयंकर युद्ध होने लगा॥ १२॥

देवीका सिंह भी अपने गर्दनके बालोंको झाड़ता हुआ दैत्योंके सेनारूपी समुद्रको उसी प्रकार मथने लगा, जैसे कोई बलवान् हाथी तालाबको मथ रहा हो॥ १३॥

जिस प्रकार कोई सिंह मतवाले हाथियोंके अंग-प्रत्यंग चीरकर खा डालता है, उसी प्रकार भगवतीका वह सिंह अपने समक्ष स्थित दानवोंको अपने नखों तथा दाँतोंके प्रहारसे फाड़कर खाने लगा॥ १४॥

भगवतीके उस सिंहद्वारा दानवी सेनाका इस प्रकार संहार होते देखकर निशुम्भ अपना श्रेष्ठ धनुष चढ़ाकर सिंहके पीछे दौड़ा॥ १५॥

उसी समय कोपके कारण लाल नेत्रोंवाले अन्य बहुतसे प्रधान दानव भी दाँतोंसे अपनी जीभ चबाते हुए भगवतीको मारनेके लिये उनपर टूट पड़े॥ १६॥

उसी अवसरपर कुपित होकर शुम्भ भी कालिकापर प्रहार करके भगवती अम्बिकाको पकड़नेके लिये अपनी सेनाके साथ बड़े वेगसे वहाँ आ पहुँचा॥ १७॥

वहाँ आकर उसने जगदम्बिकाको युद्धभूमिमें अपने सामने खड़ी देखा; जो परम सुन्दरी, शृंगाररससे परिपूर्ण तथा रौद्ररससे भरी हुई थीं॥ १८॥

[स्वभावतः] लाल नेत्रोंवाली, किंतु उस समय कोपके कारण अतिरक्त नयनोंवाली, तीनों लोकोंमें परम सुन्दरी तथा विशाल नेत्रप्रान्तोंवाली उन मनोहर भगवतीको देखकर विजयकी आशा तथा विवाहकी अभिलाषाका दूरसे ही परित्याग करके वह दानव अब अपने मरणका निश्चयकर हाथमें धनुष लिये हुए खड़ा ही रह गया॥ १९-२०॥

तब भगवतीने युद्धस्थलमें उपस्थित उन सभी दानवोंको सुनाते हुए मुसकराकर उस दैत्यसे यह वचन कहा—हे नीच दानवो! यदि तुम सब जीवित रहनेकी इच्छा रखते हो तो अपने आयुध यहीं छोड़कर पाताललोक या समुद्रमें चले जाओ अथवा तुमलोग समरांगणमें मेरे बाणोंके प्रहारसे निष्प्राण होकर स्वर्गमें सुख प्राप्तकर वहाँ निर्भय होकर विहार करो। कायरता तथा पराक्रम दोनोंका एक साथ रह पाना सम्भव नहीं है। मैं तुम सबको अभयदान देती हूँ; तुम सब सुखपूर्वक चले जाओ॥ २१—२४॥

व्यासजी बोले—उन भगवतीका वचन सुनकर मदोन्मत्त निशुम्भ तीक्ष्ण खड्ग तथा अष्टचन्द्र नामक ढाल लेकर बड़े वेगसे दौड़ा और उसने बलपूर्वक अपने खड्गसे मतवाले सिंहके मस्तकपर प्रहार किया। तत्पश्चात् उसने तलवार घुमाकर जगदम्बापर भी प्रहार किया॥ २५-२६॥

तब भगवतीने अपनी गदासे उसके तलवारके प्रहारको रोककर अपने परशुसे उसके बाहुमूल (कन्धे)-पर आघात किया॥ २७॥

अपने कन्धेपर खड्गसे प्रहार होनेपर भी उस महाभिमानी अहंकारी निशुम्भने उस आघातकी वेदना सहकर भगवती चण्डिकापर पुनः प्रहार किया॥ २८॥

तत्पश्चात् भगवती चण्डिकाने भी प्राणियोंको भयभीत कर देनेवाली भीषण घंटाध्वनि की और निशुम्भको मारनेकी इच्छा प्रकट करती हुई उन्होंने बार-बार मधुपान किया॥ २९॥

इस प्रकार एक-दूसरेको जीतनेकी प्रबल इच्छावाले देवताओं तथा दानवोंमें परस्पर अत्यन्त भयंकर युद्ध आरम्भ हो गया॥ ३०॥

मांसाहारी क्रूर पक्षी, कुत्ते, सियार, गीध, कंक, तथा कौए अति प्रसन्न होकर नृत्य करने लगे॥ ३१॥

उस समय बहुतसे मृत दैत्योंके रक्त बहते हुए शरीरोंसे तथा मृत हाथियों और घोड़ोंसे पटी हुई वह रणभूमि अत्यधिक [भयानक] प्रतीत हो रही थी॥ ३२॥

[भूमिपर] गिरे हुए दानवोंको देखकर निशुम्भ अत्यन्त कुपित हो उठा और एक भयंकर गदा लेकर

शीघ्रतापूर्वक भगवतीके समक्ष पहुँच गया॥ ३३॥

अभिमानमें चूर उस निशुम्भने सिंहके मस्तकपर गदासे प्रहार किया। तत्पश्चात् उसने मुसकराकर पुनः देवीपर प्रहार करके उन्हें चोट पहुँचायी॥ ३४॥

इससे वे भगवती भी अत्यन्त कुपित हो गयीं और समक्ष स्थित होकर प्रहार कर रहे उस निशुम्भको देखकर कहने लगीं— ॥ ३५॥

देवी बोलीं—हे मन्दबुद्धि! मैं तलवार चला रही हूँ। तुम तबतकके लिये ठहर जाओ, जबतक मेरी यह तलवार तुम्हारी गर्दनतक नहीं पहुँच जाती। इसके बाद तुम यमपुरी निश्चय ही पहुँच जाओगे॥ ३६॥

व्यासजी बोले—ऐसा कहकर भगवती चण्डिकाने एकाग्रचित्त होकर बड़ी शीघ्रतासे अपने कृपाणसे उस निशुम्भका मस्तक काट दिया॥ ३७॥

इस प्रकार भगवतीके द्वारा सिर कटा हुआ अत्यन्त विकराल वह धड़ हाथमें गदा धारण किये देवगणोंको भयभीत करता हुआ इधर-उधर घूमने लगा॥ ३८॥

तत्पश्चात् भगवतीने तीक्ष्ण बाणोंसे उसके दोनों हाथ तथा पैर भी काट दिये। इसके बाद पर्वतके समान शरीरवाला वह पापी दैत्य प्राणहीन होकर धरतीपर गिर पड़ा॥ ३९॥

प्रचण्ड पराक्रमवाले उस निशुम्भ दैत्यके गिर जानेपर भयसे कम्पित दानवसेनामें महान् हाहाकार मच गया। रक्तसे लथपथ समस्त दानवसैनिक अपने-अपने सभी आयुध फेंककर चीख-पुकार करते हुए राजभवनकी ओर भाग गये॥ ४०-४१॥

शत्रुओंके संहारकी शक्ति रखनेवाले शुम्भने वहाँ आये हुए उन सैनिकोंको देखकर उनसे पूछा—निशुम्भ कहाँ है और घायल होकर तुम सब युद्धभूमिसे भाग क्यों आये?॥ ४२॥

दानवराज शुम्भका वह वचन सुनकर उन सैनिकोंने अति विनम्रतापूर्वक कहा—हे राजन्! आपके भाई निशुम्भ मृत होकर रणभूमिमें सोये पड़े हैं॥ ४३॥

उस स्त्रीने आपके अनुज (निशुम्भ)-के जो भी अनुचर दानववीर थे, उन्हें मार डाला। यही सब समाचार आपको बतानेके लिये हम यहाँ आये हुए हैं॥ ४४॥

उस चण्डिकाने इसी समय युद्धभूमिमें निशुम्भका संहार किया है। अतएव हे राजन्! उसके साथ समरभूमिमें आपके लिये आज युद्ध करनेका [उचित] अवसर नहीं है॥ ४५॥

आप यह निश्चितरूपसे जान लीजिये कि देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके उद्देश्यसे दानवकुलका संहार करनेके लिये यह कोई अद्भुत देवी प्रकट हुई है॥ ४६॥

यह सामान्य नारी नहीं है, अपितु देवीरूपिणी कोई अत्युत्तम शक्ति है। अद्भुत चरित्रोंवाली ये देवी देवताओंके भी ज्ञानसे परे हैं॥ ४७॥

ये कल्याणी भगवती अनेक रूप धारण करनेमें समर्थ हैं, मायाके मूल तत्त्वका पूर्ण ज्ञान रखनेवाली हैं और अद्भुत भूषण तथा समस्त प्रकारके आयुध धारण करनेवाली हैं॥ ४८॥

गूढ़ चरित्रोंवाली इन देवीको जान पाना अत्यन्त कठिन है। ये दूसरी कालरात्रिके समान प्रतीत होती हैं। असीमके भी पार जा सकनेमें समर्थ ये पूर्णतामयी देवी सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न हैं॥ ४९॥

समस्त देवतागण अन्तरिक्षमें स्थित होकर देवकार्य सिद्ध करनेवाली परम अद्भुतस्वरूपिणी उन देवीका निर्भीकतापूर्वक स्तवन कर रहे हैं॥ ५०॥

यदि आप शरीरकी रक्षा करना चाहते हैं तो इस समय पलायन ही परम धर्म है। इस शरीरकी रक्षा हो जानेके बाद पुनः आनन्ददायक अनुकूल समय आनेपर संग्राममें आपकी विजय होगी, इसमें कोई सन्देह नहीं है। हे राजन्! कभी-कभी काल बलवान्को भी बलहीन बना देता है और पुनः समय आनेपर उसे बलशाली बनाकर विजयकी प्राप्ति करा देता है। कभी-कभी काल

विषम परिस्थितिमें दाताको भिखारी बना देता है और पुनः कुछ समय बीतनेपर उसी भिखारीको धन देनेवाला बना देता है॥ ५१—५३१/२ ॥

विष्णु, ब्रह्मा, शिव तथा इन्द्र आदि सभी देवता निश्चितरूपसे सदा कालके वशवर्ती हैं। यह काल स्वयं ही सबका स्वामी है। हे राजन्! अभी काल आपके लिये विपरीत है, अतएव आप समयकी प्रतीक्षा कीजिये॥ ५४-५५ ॥

हे पृथ्वीपते! इस समय काल देवताओंके लिये अनुकूल तथा दैत्योंके लिये विनाशकारी है। कालकी गति सर्वथा एक ही तरहकी नहीं बनी रहती है। यह काल-गति नानाविध रूप भी धारण करती है। अतः कालकी चेष्टापर विचार करते रहना चाहिये। कभी प्राणियोंका जन्म होता है और कभी उनका मरण उपस्थित हो जाता है। एक काल उत्पत्तिका हेतु होता है तो दूसरा काल विनाशका हेतु बन जाता है॥ ५६-५७१/२ ॥

हे महाराज! आपके समक्ष इसका प्रमाण विद्यमान है कि पहले इन्द्र आदि सभी देवता आपके लिये अनुकूल समय रहनेपर आपके करदाता बन गये थे, किंतु आज उसी कालके विपरीत हो जानेके कारण एक अबलाने बलशाली असुरोंका संहार कर डाला। यही काल हित भी करता है तथा अहित भी करता है। इस पराजयमें न तो काली कारण हैं और न तो सनातन देवता ही कारण हैं॥ ५८—६० ॥

हे राजन्! आपको जैसा उचित जान पड़े भलीभाँति सोच-समझकर आप वैसा ही कीजिये। हमारी समझमें तो यह काल अभी आपके तथा अन्य दानवोंके लिये भी अनुकूल नहीं है॥ ६१ ॥

किसी समय संग्राममें घायल होकर तथा अपने आयुध छोड़कर इन्द्र आपके सामनेसे भाग गये थे। ऐसे ही विष्णु, रुद्र, वरुण, कुबेर, यम आदि देवता भी आपके समक्ष टिक नहीं पाये थे। अतः हे राजेन्द्र! इस समस्त जगत्‌को कालके अधीन मानकर आप भी तत्काल पाताल-लोक चले जाइये। जीवन बचा रहा तो आप कल्याण अवश्य प्राप्त करेंगे॥ ६२-६३ ॥

हे महाराज! यदि कहीं आपका निधन हो गया तो आपके शत्रु प्रसन्नतापूर्वक मंगलगान करते हुए निर्भय होकर सर्वत्र विचरण करेंगे॥ ६४ ॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत पंचम स्कन्धका 'युद्धसे वापस आये राक्षसोंका शुम्भके साथ वार्तालाप' नामक तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३० ॥

इकतीसवाँ अध्याय

शुम्भका रणभूमिमें आना और देवीसे वार्तालाप करना, भगवती कालिकाद्वारा उसका वध, देवीके इस उत्तम चरित्रके पठन और श्रवणका फल

व्यासजी बोले—उन सैनिकोंका यह वचन सुनकर क्रोधसे आकुलित नेत्रोंवाले दानवराज शुम्भने उनसे तुरन्त कहा॥ १ ॥

शुम्भ बोला—हे मूर्खो! तुम सब खोटी बात क्यों बोल रहे हो? तुम्हारे वचनोंको मानकर मैं भला अपने जीवनकी रक्षा क्यों करूँ? क्या अपने सचिवों तथा भाई-बन्धुओंका वध कराकर मैं निर्लज्ज बनकर विचरण करूँ?॥ २ ॥

प्राणियोंके शुभ अथवा अशुभका कर्ता जब एकमात्र वही अति बलवान् काल है तो मुझे चिन्ता क्या? क्योंकि परोक्षरूपसे सबपर शासन करनेवाला वह काल टाला नहीं जा सकता॥ ३ ॥

जो हो रहा है, वह होता रहे तथा काल जो कुछ भी कर रहा है, उसे करता रहे; अब तो मुझे जीवन तथा मृत्युके विषयमें किसी भी प्रकारकी चिन्ता नहीं है॥ ४ ॥

वह काल भी भवितव्यताको मिटा सकनेमें समर्थ नहीं है। ऐसा भी होता है कि सावनके महीनेमें मेघ सदा नहीं बरसते; अपितु कभी-कभी अगहन, पौष, माघ तथा फाल्गुनमें असमय ही तेज वृष्टि होने लगती है। अतएव [समस्त कार्योंमें] काल ही प्रधान नहीं है॥ ५-६ ॥

काल तो निमित्तमात्र है, अपितु [इसकी तुलनामें] दैव अधिक बलवान् है। सब कुछ दैवनिर्मित है; इसके विपरीत कुछ नहीं होता॥ ७॥

मैं तो दैवको ही प्रधान मानता हूँ। अनर्थकारी पुरुषार्थको धिक्कार है; क्योंकि जिस निशुम्भने सभी देवताओंपर विजय प्राप्त कर ली थी, उसे इस स्त्रीने मार डाला॥ ८॥

जब महान् शूरवीर रक्तबीज भी विनाशको प्राप्त हो गया, तब अपनी कीर्तिको कलंकित करके मैं ही जीवनकी आशा क्यों करूँ?॥ ९॥

जगत्‌के रचयिता सर्वसमर्थ स्वयं ब्रह्मा भी दो परार्धका समय बीत जानेपर तत्क्षण ही निधनको प्राप्त हो जाते हैं॥ १०॥

ब्रह्माजीके एक दिनमें एक हजार चतुर्युग समाप्त हो जाते हैं और इतनी ही अवधिमें चौदह इन्द्रोंका स्वर्गसे पतन हो चुकता है॥ ११॥

इसी प्रकार [ब्रह्माजीके जीवनकालका] दुगुना समय बीतनेपर विष्णुका अन्त हो जाता है तथा इससे भी दूने समयके पश्चात् शंकर भी समाप्त हो जाते हैं॥ १२॥

इसी प्रकार पृथ्वी, पर्वत, सूर्य तथा चन्द्रमा आदिका भी विनाश हो जाता है, तब हे मूर्खो! दैवकी बनायी हुई इस अटल मृत्युके विषयमें क्या चिन्ता है?॥ १३॥

जन्म लेनेवालेकी मृत्यु निश्चित है तथा मरनेवालेका जन्म निश्चित है। अतः इस अनित्य शरीरके द्वारा अपनी स्थिर कीर्तिकी रक्षा करनी चाहिये*॥ १४॥

शीघ्रतापूर्वक मेरा रथ तैयार करो। मैं समरांगणमें जाऊँगा। विजय अथवा मरण प्रारब्धानुसार जो भी होनेवाला हो, वह आज ही हो जाय॥ १५॥

सैनिकोंसे ऐसा कहकर वह शुम्भ तुरंत रथपर सवार होकर हिमालयकी ओर चल दिया, जहाँ भगवती विराजमान थीं॥ १६॥

उस समय हाथी, घोड़े, रथ तथा पैदल चलनेवालोंसे सुसज्जित एवं नानाविध आयुधोंसे युक्त विशाल चतुरंगिणी सेना भी उसके साथ चल पड़ी॥ १७॥

उस पर्वतपर पहुँचकर शुम्भने त्रिभुवनको मोहित करनेवाली परम सुन्दरी सिंहवाहिनी भगवती जगदम्बिकाको वहाँ विराजमान देखा। वे सभी प्रकारके आभूषणोंसे अलंकृत थीं तथा सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न थीं; देवता, यक्ष तथा किन्नर आकाशमें स्थित होकर उनकी स्तुति कर रहे थे तथा मन्दारवृक्षके पुष्पोंसे पूजा कर रहे थे और वे मनोहर शंखध्वनि तथा घंटानाद कर रही थीं॥ १८—२०॥

उन्हें देखकर शुम्भ मोहित हो गया। कामबाणसे आहत वह शुम्भ कामासक्त होकर मन-ही-मन सोचने लगा—॥ २१॥

अहो, इसका ऐसा आकर्षक रूप तथा ऐसा अद्भुत चातुर्य है। सुकुमारता तथा धीरता—ये दोनों परस्पर विरोधीभाव इसमें एक साथ विद्यमान हैं!॥ २२॥

अत्यन्त कृश शरीरवाली इस सुकुमारीमें अभी-अभी यौवन प्रस्फुटित हुआ है, किंतु आश्चर्य है कि यह रमणी कामभावनासे रहित है॥ २३॥

रूपमें कामदेवकी पत्नी रतिके समान सुन्दर तथा सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न यह स्त्री कहीं अम्बिका ही तो नहीं, जो सभी महाबली दानवोंका संहार कर रही है॥ २४॥

इस अवसरपर मैं कौन-सा उपाय करूँ, जिससे यह मेरी वशवर्तिनी हो जाय? इस हंस-सदृश नेत्रोंवालीको वशमें करनेहेतु मेरे पास कोई मन्त्र भी नहीं है॥ २५॥

सर्वमन्त्रमयी, सबको मोहित करनेवाली, अभिमानमें मत्त रहनेवाली तथा उत्तम लक्षणोंवाली यह सुन्दरी किस प्रकार मेरे वशमें होगी?॥ २६॥

अब युद्धभूमि छोड़कर पाताललोक जाना भी मेरे लिये उचित नहीं है। साम, दान तथा भेद आदि उपायोंसे भी यह महाबलशालिनी वशमें नहीं की जा सकती॥ २७॥

इस विषम परिस्थितिके आ जानेपर अब मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ? स्त्रीके हाथों मर जाना भी उचित नहीं है; क्योंकि ऐसी मृत्यु यशको नष्ट करनेवाली होती है॥ २८॥

ऋषियोंने उस मृत्युको श्रेयस्कर कहा है, जो समरभूमिमें समान बलवाले योद्धाओंके साथ लड़ते-लड़ते प्राप्त हो॥ २९॥

---

* जातस्य हि ध्रुवं मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च। अध्रुवेऽस्मिञ्छरीरे तु रक्षणीयं यशः स्थिरम्॥ (श्रीमद्देवीभा० ५। ३१। १४)

सैकड़ों वीरोंसे श्रेष्ठ, महाबलशालिनी तथा दैव-विरचित यह नारी मेरे कुलके पूर्ण विनाशके लिये यहाँ उपस्थित हुई है॥ ३०॥

मैं इस समय सामनीतिसे युक्त वचनोंका प्रयोग व्यर्थमें क्यों करूँ? क्योंकि यह तो संहारके लिये आयी हुई है, तो फिर सामवचनोंसे यह कैसे प्रसन्न हो सकती है? अनेक प्रकारके शस्त्रोंसे विभूषित होनेके कारण दान आदिके प्रलोभनोंसे भी यह विचलित नहीं की जा सकती। भेदनीति भी निष्फल सिद्ध होगी; क्योंकि सभी देवता इसके वशमें हैं॥ ३१-३२॥

अतएव संग्राममें मर जाना श्रेयस्कर है, किंतु पलायन करना ठीक नहीं है। अब तो प्रारब्धके अनुसार विजय अथवा मृत्यु जो भी होना हो, वह हो॥ ३३॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार अपने मनमें विचार करके शुम्भने धैर्यका सहारा लिया। अब युद्धके लिये दृढ़ निश्चय करके उसने अपने सामने खड़ी भगवतीसे कहा॥ ३४॥

हे देवि! युद्ध करो, किंतु हे प्रिये! इस समय तुम्हारा यह परिश्रम व्यर्थ है। तुम मूर्ख हो; क्योंकि युद्ध करना स्त्रियोंका धर्म कदापि नहीं है॥ ३५॥

स्त्रियोंके नेत्र ही बाण हैं, उनकी भौंहें ही धनुष हैं, उनके हाव-भाव ही शस्त्र हैं और रसज्ञ पुरुष उनका लक्ष्य है॥ ३६॥

अंगराग (शीतल चन्दन आदि) ही उनका कवच है, मनोकामना रथ है तथा धीरे-धीरे मधुर वाणीमें बोलना भेरी-ध्वनि है। अतएव स्त्रियोंके लिये अन्य शस्त्रोंकी कोई आवश्यकता नहीं रहती॥ ३७॥

यदि स्त्रियाँ इनके अतिरिक्त अन्य अस्त्र धारण करें तो यह निश्चितरूपसे उनके लिये विडम्बना ही है। हे प्रिये! लज्जा ही नारियोंका आभूषण है, धृष्टता उन्हें कभी भी शोभा नहीं देती॥ ३८॥

युद्ध करती हुई उत्तम नारी भी कर्कशाके सदृश दिखायी देती है। धनुष खींचते समय कोई स्त्री अपने दोनों स्तनोंको छिपानेमें कैसे सफल हो सकती है?॥ ३९॥

कहाँ नारियोंकी मन्थरगति और कहाँ युद्धमें गदा लेकर दौड़ना। इस समय यह कालिका तथा दूसरी स्त्री चामुण्डा ही तुम्हें बुद्धि देनेवाली हैं। मध्यस्थ होकर चण्डिका मन्त्रणा देती है, कर्कश स्वरवाली शिवा तुम्हारी शुश्रूषामें रहती है और सभी प्राणियोंमें भयंकर सिंह तुम्हारा वाहन है॥ ४०-४१॥

हे सुन्दरि! वीणा-वादन छोड़कर तुम यह जो घंटा-नाद कर रही हो, वह सब तुम्हारे रूप तथा यौवनके सर्वथा विपरीत है॥ ४२॥

हे भामिनि! यदि युद्ध करना ही तुम्हें अभीष्ट है तो तुम सर्वप्रथम लम्बे ओठोंवाली, विचित्र नखोंवाली, क्रूर स्वभाववाली, कौए-जैसे वर्णवाली, विकृत आँखोंवाली, लम्बे पैरोंवाली, भयंकर दाँतोंवाली और बिल्लीसदृश नेत्रोंवाली कुरूप स्त्री बन जाओ। ऐसा ही विकराल रूप धारण करके तुम युद्धभूमिमें स्थिरतापूर्वक खड़ी हो जाओ और कर्कश वचन बोलो, तभी मैं तुम्हारे साथ युद्ध करूँगा; क्योंकि हे मृगशावक-सदृश नेत्रोंवाली! हे रतितुल्य सुन्दरि! सुन्दर दाँतोंवाली ऐसी रमणीको देखकर तुम्हें युद्धमें मारनेके लिये मेरा हाथ नहीं उठ पा रहा है॥ ४३—४५½॥

व्यासजी बोले—हे भरतवंशियोंमें श्रेष्ठ जनमेजय! उस कामातुर शुम्भको ऐसा बोलते हुए देखकर भगवती जगदम्बा मुसकराकर यह वचन कहने लगीं—॥ ४६½॥

देवी बोलीं—हे मन्दबुद्धि! कामबाणसे विमोहित होकर तुम इस प्रकार विषाद क्यों कर रहे हो? हे मूढ! तुम पहले कालिका अथवा चामुण्डाके साथ ही युद्ध कर लो। ये दोनों देवियाँ ही समरांगणमें तुम्हारे साथ युद्ध करनेमें पूर्ण समर्थ हैं। मैं तो केवल दर्शक बनकर खड़ी हूँ। तुम इन दोनोंपर यथेच्छ प्रहार करो। मैं तुमसे लड़नेकी इच्छा नहीं करती॥ ४७-४८½॥

शुम्भसे ऐसा कहकर भगवतीने मधुर वाणीमें कालिकासे कहा—हे क्रूर कालिके! कुरूपाके साथ लड़नेकी इच्छावाले इस दानवको तुम युद्धमें मार डालो॥ ४९½॥

व्यासजी बोले—भगवतीके इस प्रकार कहनेपर कालरूपिणी कालिका कालसे प्रेरित होकर बड़ी तेजीसे तत्काल गदा उठाकर सावधानीपूर्वक रणमें खड़ी हो गयीं। इसके बाद सभी देवताओं, मुनियों और महात्माओंके देखते-देखते उन दोनोंमें अतीव भीषण युद्ध प्रारम्भ हो गया॥ ५०-५१½॥

श्रीजगदम्बाका देवताओंको दर्शन देना

नमः शिवायै कल्याण्यै शान्त्यै पुष्ट्यै नमो नमः। भगवत्यै नमो देव्यै रुद्राण्यै सततं नमः॥
कालरात्र्यै तथाम्बायै इन्द्राण्यै ते नमो नमः। सिद्ध्यै बुद्ध्यै तथा वृद्ध्यै वैष्णव्यै ते नमो नमः॥
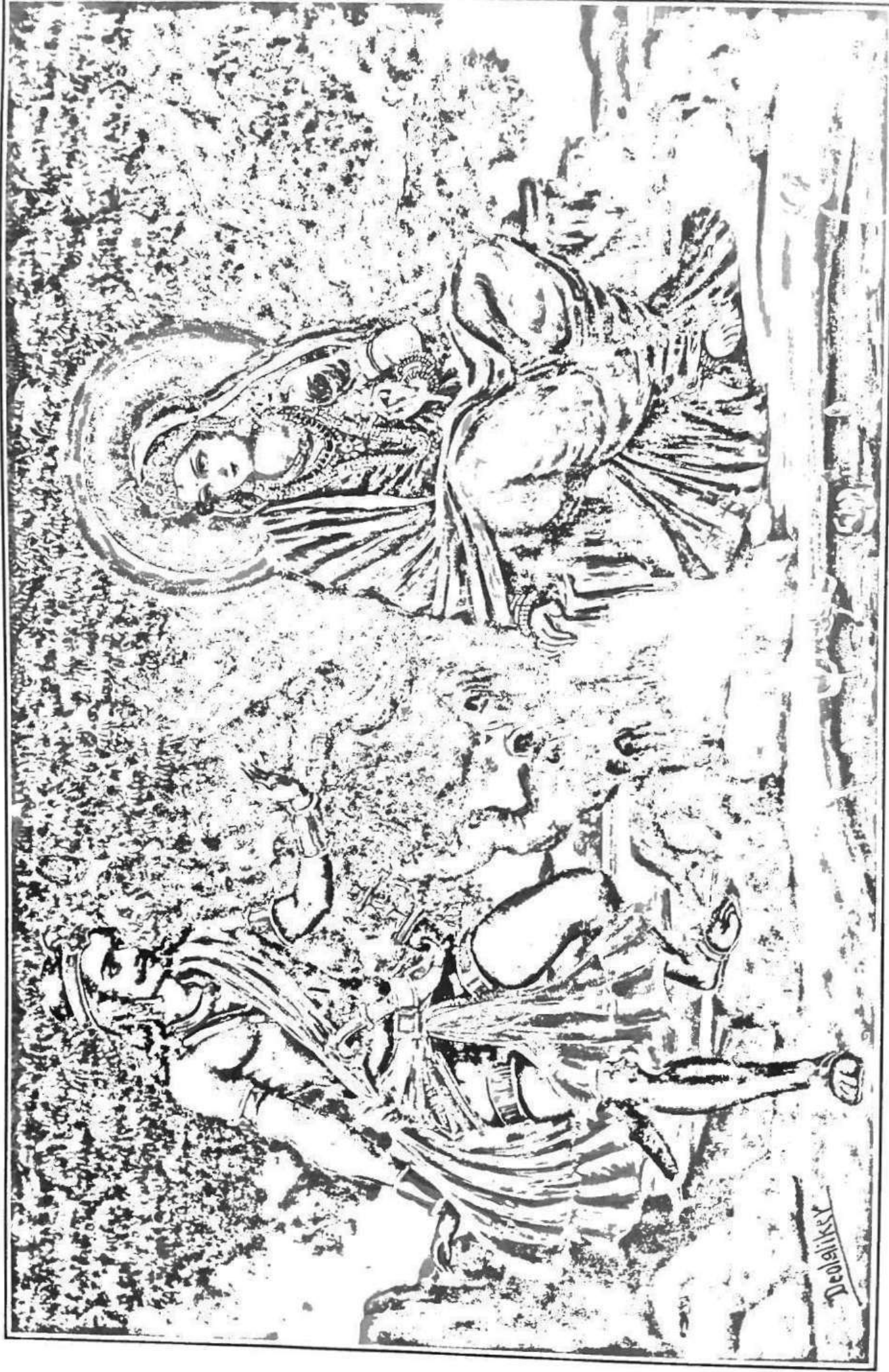
शुम्भासुरके दूत सुग्रीवका भगवती कौशिकीके पास पहुँचना

शुम्भने अपनी गदा लेकर उससे कालिकापर प्रहार किया। भगवती कालिका भी अपनी गदासे दैत्यराज शुम्भपर तेज प्रहार करने लगीं। भयानक स्वरवाली चण्डीने गदासे उस दैत्यके सुवर्णमय चमकीले रथको चूर-चूर कर डाला और [शुम्भका रथ खींचनेवाले] गदहोंको मारकर उसके सारथिको भी मार डाला॥ ५२-५३½ ॥

अब क्रोधमें भरे हुए शुम्भने अपनी विशाल गदा लेकर अट्टहास करते हुए पैदल ही पहुँचकर कालिकाकी दोनों भुजाओंके मध्यभाग (वक्ष:स्थल)-पर प्रहार किया॥ ५४॥

तब कालिकाने उसके गदा-प्रहारको निष्फल करके शीघ्रतापूर्वक तलवार उठाकर शुम्भके चन्दनचर्चित तथा आयुधयुक्त बायें हाथको काट दिया॥ ५५½ ॥

हाथ कट जाने तथा रथविहीन होनेके बावजूद भी रक्तसे लथपथ वह शुम्भ हाथमें गदा लिये हुए शीघ्रतापूर्वक कालिकाके पास पहुँचकर उनके ऊपर प्रहार करने लगा॥ ५६½ ॥

तब कालीने अपने करवाल (तलवार)-से उसके गदायुक्त तथा बाजूबन्दसे सुशोभित दाहिने हाथको हँसते-हँसते काट डाला॥ ५७½ ॥

इसके बाद वह शुम्भ कुपित होकर कालिकापर पैरसे प्रहार करनेके लिये शीघ्रतापूर्वक आगे बढ़ा। तभी कालिकाने अपनी तलवारसे तुरंत उसके दोनों पैर भी काट डाले॥ ५८½ ॥

हाथ-पैर कट जानेपर भी 'ठहरो-ठहरो' ऐसा कहता हुआ वह शुम्भ कालिकाको भयभीत करते हुए वेगपूर्वक दौड़ता हुआ उनकी ओर बढ़ा॥ ५९½ ॥

उसे आते देखकर कालिकाने उसके कमलसदृश मस्तकको काट दिया, जिससे उसके कण्ठसे रक्तकी अजस्र धारा बहने लगी। मस्तक कट जानेपर पर्वततुल्य वह शुम्भ जमीनपर गिर पड़ा और उसके प्राण शरीरसे निकलकर तत्काल प्रयाण कर गये॥ ६०-६१½ ॥

दैत्य शुम्भको इस प्रकार प्राणविहीन होकर गिरा हुआ देखकर इन्द्रसहित सभी देवता भगवती चामुण्डा तथा कालिकाकी स्तुति करने लगे॥ ६२½ ॥

सुखदायक पवन बहने लगा तथा सभी दिशाएँ अत्यन्त निर्मल हो गयीं। हवन करते समय [शुभ सूचनाके रूपमें] अग्निकी पवित्र ज्वालाएँ दाहिनी ओरसे उठने लगीं॥ ६३½ ॥

हे राजन्! जो दानव मरनेसे बच गये थे, वे सभी जगदम्बिकाको प्रणाम करके अपने-अपने आयुध त्यागकर पाताल चले गये॥ ६४½ ॥

देवीका उत्तम चरित्र, शुम्भ आदि दैत्योंका वध तथा देवताओंकी रक्षा—इन सबका वर्णन आपसे कर दिया। पृथ्वीपर रहनेवाले जो मनुष्य इस समस्त आख्यानका भक्तिभावसे निरन्तर पठन तथा श्रवण करते हैं, वे निश्चितरूपसे कृतार्थ हो जाते हैं। पुत्रहीनको पुत्र प्राप्त होते हैं, निर्धनको विपुल सम्पदा सुलभ हो जाती है तथा रोगी रोगसे मुक्त हो जाता है। वह सभी वांछित फल प्राप्त कर लेता है और उसे शत्रुओंसे किसी प्रकारका भय नहीं रह जाता है। जो मनुष्य इस पवित्र आख्यानका नित्य पठन तथा श्रवण करता है, वह अन्तमें मोक्षका भागी हो जाता है॥ ६५—६८॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत पंचम स्कन्धका 'शुम्भ-वध' नामक इकतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३१॥

बत्तीसवाँ अध्याय

देवीमाहात्म्यके प्रसंगमें राजा सुरथ और समाधि वैश्यकी कथा

जनमेजय बोले—हे मुने! आपने भगवती चण्डिकाकी महिमाका भलीभाँति वर्णन किया। अब आप यह बतानेकी कृपा करें कि तीन चरित्रोंका प्रयोग करके पहले किसने भगवतीकी आराधना की थी?॥ १॥

वे वरदायिनी भगवती किसके ऊपर प्रसन्न हुईं? सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाली देवीकी उपासना करके किसने महान् फल प्राप्त किया? हे कृपानिधान! यह सब बताइये॥ २॥

हे ब्रह्मन्! हे महाभाग! जगदम्बाकी उपासनाविधि, पूजाविधि तथा हवनविधिका भी विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये॥ ३॥

सूतजी बोले—राजाकी यह बात सुनकर सत्यवतीनन्दन कृष्णद्वैपायन प्रसन्न होकर उन्हें महामाया भगवतीका पूजन-विधान बताने लगे॥ ४॥

व्यासजी बोले—पूर्वकालमें स्वारोचिष-मन्वन्तरमें सुरथ नामक एक राजा हुए; जो परम उदार, प्रजापालनमें तत्पर, सत्यवादी, कर्मनिष्ठ, ब्राह्मणोंके उपासक, गुरुजनोंके प्रति भक्ति रखनेवाले, सदा अपनी ही भार्यामें अनुरक्त, दानशील, किसीके साथ विरोधभाव न रखनेवाले तथा धनुर्विद्यामें पूर्ण पारंगत थे॥ ५-६१/२॥

इस प्रकार प्रजापालनमें तत्पर रहनेवाले राजा सुरथसे कुछ पर्वतवासी म्लेच्छोंने अनायास ही शत्रुता ठान ली। हाथी, घोड़े, रथ तथा पैदल सैनिकोंसे सुसज्जित चतुरंगिणी सेना लेकर अभिमानमें चूर वे कोलाविध्वंसी सुरथके राज्यपर अधिकार करनेकी लालसासे वहाँ आ पहुँचे। सुरथ भी अपनी सेना लेकर सामने डट गये। उन महाभयंकर म्लेच्छोंके साथ राजा सुरथका भीषण युद्ध होने लगा॥ ७—९१/२॥

यद्यपि म्लेच्छोंकी सेना बहुत थोड़ी थी तथा राजाकी सेना अत्यन्त विशाल थी, फिर भी दैवयोगसे उन्होंने राजा सुरथको युद्धमें जीत लिया। इस प्रकार उनसे पराजित हुए राजा सुरथ हताश होकर अपने दुर्गवेष्टित सुरक्षित नगरमें आ गये॥ १०-११॥

तत्पश्चात् प्रतिभासम्पन्न तथा नीतिविशारद राजा सुरथ अपने मन्त्रियोंको शत्रुपक्षके अधीन देखकर अत्यन्त खिन्नमनस्क होकर विचार करने लगे कि मैं खाईं तथा किलेसे सुरक्षित किसी बड़े स्थानपर रहकर समयकी प्रतीक्षा करूँ अथवा मेरे लिये युद्ध करना उचित होगा। मेरे मन्त्री शत्रुके वशीभूत हो गये हैं, इसलिये वे अब परामर्श करनेयोग्य नहीं रह गये हैं, तो अब मैं क्या करूँ? वे राजा सुरथ पुनः मन-ही-मन विचार करने लगे। कदाचित् वे पापी तथा शत्रुके साथ मिले हुए मन्त्री मुझे पकड़कर शत्रुको सौंप देंगे, तब क्या होगा? पापबुद्धि पुरुषोंपर कभी भी विश्वास नहीं करना चाहिये; क्योंकि जो मनुष्य लोभके वशीभूत होते हैं वे क्या-क्या नहीं कर बैठते? लोभपरायण मनुष्य अपने भाई, पिता, मित्र, सुहृद, बन्धु-बान्धव, पूजनीय गुरु तथा ब्राह्मणसे भी सदा द्वेष करता है। अतएव इस समय शत्रुपक्षके आश्रयको प्राप्त अत्यन्त पापपरायण अपने मन्त्रिसमुदायपर मुझे बिलकुल विश्वास नहीं करना चाहिये॥ १२—१८॥

इस प्रकार अपने मनमें भलीभाँति विचार करके अत्यन्त दुःखीचित्त राजा सुरथ घोड़ेपर आरूढ होकर अकेले ही उस नगरसे निकल पड़े॥ १९॥

वे बिना किसी सहायकको साथ लिये ही नगरसे बाहर निकलकर एक घने जंगलमें चले गये। प्रतिभासम्पन्न राजा सुरथ सोचने लगे कि अब मुझे कहाँ चलना चाहिये?॥ २०॥

तपस्वी सुमेधाका पवित्र आश्रम यहाँसे मात्र तीन योजनकी दूरीपर है—यह जानकर राजा सुरथ वहाँ चले गये॥ २१॥

बहुत प्रकारके वृक्षोंसे युक्त, नदीके तटपर विराजमान, वैरभावसे रहित होकर विचरण करनेवाले पशुओंसे समन्वित, कोयलोंकी मधुर ध्वनिसे मण्डित, अध्ययनरत शिष्योंके स्वरसे निनादित, सैकड़ों मृगसमूहोंसे घिरे हुए, भलीभाँति पके हुए नीवारान्नसे परिपूर्ण, सुन्दर फल-फूलसे लदे हुए पादपोंसे सुशोभित, होमके सुगन्धित धूमसे प्राणियोंको सदा आनन्दित करनेवाले, निरन्तर वेदध्वनिसे परिव्याप्त तथा स्वर्गसे भी मनोहर उस आश्रमको देखकर वे राजा अत्यन्त आनन्दित हुए और उन्होंने भय त्यागकर मुनिके आश्रममें विश्राम करनेका निश्चय कर लिया॥ २२—२५॥

तत्पश्चात् अपने घोड़ेको एक वृक्षमें बाँधकर उन्होंने विनम्रतापूर्वक आश्रममें प्रवेश किया। वहाँ उन्होंने देखा कि मुनि एक सालवृक्षकी छायामें मृगचर्मके आसनपर बैठे हुए हैं, उनकी आकृति शान्त है, तपस्या करनेके कारण उनका शरीर क्षीण हो गया है, उनका स्वभाव अति कोमल है, वे शिष्योंको पढ़ा रहे हैं, वे वेद-शास्त्रोंके तत्त्वदर्शी विद्वान् हैं, क्रोध-लोभ आदि विकारोंसे मुक्त हैं, सुख-दुःख आदि द्वन्द्वोंसे परे हैं, ईर्ष्यारहित हैं, आत्मज्ञानके चिन्तनमें संलग्न हैं, सत्यवादी तथा जितेन्द्रिय हैं। उन्हें देखकर अश्रुपूरित नयनोंवाले राजा सुरथ प्रेमपूर्वक उनके आगे दण्डकी भाँति

भूतलपर गिर पड़े॥ २६—२९॥

तब मुनिने उनसे कहा—उठिये-उठिये, आपका कल्याण हो। तत्पश्चात् गुरुसे आदेश पाकर एक शिष्यने उन्हें आसन प्रदान किया॥ ३०॥

तब वे उठकर मुनिसे आज्ञा लेकर उस आसनपर बैठ गये। इसके बाद सुमेधाऋषिने अर्घ्य-पाद्य आदिसे उनका विधिपूर्वक सत्कार किया। मुनिने उनसे पूछा कि आप यहाँ कहाँसे आये हैं? आप कौन हैं तथा चिन्तित क्यों हैं? यहाँ आनेका जो भी कारण हो, उसे आप यथारुचि बतायें। आपके आगमनका प्रयोजन क्या है? आप अपने मनके विचारोंको अवश्य बताइये। आपका कोई असाध्य मनोरथ होगा तो उसे भी मैं पूर्ण करूँगा॥ ३१—३३॥

राजा बोले—मैं सुरथ नामवाला राजा हूँ। शत्रुओंसे पराजित होकर मैं राज्य, महल तथा स्त्री—सब कुछ छोड़कर आपकी शरणमें आया हूँ॥ ३४॥

हे ब्रह्मन्! अब आप मुझे जो भी आज्ञा देंगे, मैं श्रद्धापूर्वक वही करूँगा। इस पृथ्वीतलपर आपके अतिरिक्त अब कोई दूसरा मेरा रक्षक नहीं है॥ ३५॥

हे मुनिराज! हे शरणागतवत्सल! शत्रुओंसे मुझे महान् भय उपस्थित है, अतएव मैं आपके पास आया हूँ; अब आप मेरी रक्षा कीजिये॥ ३६॥

ऋषि बोले—हे राजेन्द्र! आप निर्भीक होकर यहाँ रहिये। यह निश्चित है कि मेरी तपस्याके प्रभावसे आपके पराक्रमी शत्रु यहाँ नहीं आ सकेंगे॥ ३७॥

हे नृपश्रेष्ठ! यहाँपर आपको हिंसा नहीं करनी चाहिये और वनवासियोंकी भाँति पवित्र नीवार तथा फल-मूल आदिके द्वारा जीवन-निर्वाह करना चाहिये॥ ३८॥

व्यासजी बोले—तब मुनिकी यह बात सुनकर राजा सुरथ निर्भय हो गये। अब वे फल-मूलका आहार करते हुए पवित्रताके साथ उस आश्रममें ही रहने लगे॥ ३९॥

किसी समय उस आश्रममें एक वृक्षकी छायामें बैठे हुए चिन्ताकुल राजा सुरथका चित्त घरकी ओर चला गया और वे सोचने लगे— ॥ ४०॥

निरन्तर पापकर्ममें लगे रहनेवाले म्लेच्छ शत्रुओंने मेरा राज्य छीन लिया है। उन दुराचारी तथा निर्लज्ज म्लेच्छोंके द्वारा मेरी प्रजा बहुत सतायी जाती होगी॥ ४१॥

मेरे सभी हाथी तथा घोड़े आहार न पाने तथा शत्रुसे प्रताड़ित किये जानेके कारण अत्यन्त दुर्बल हो गये होंगे; इसमें तो कोई सन्देह नहीं है॥ ४२॥

अपने जिन सेवकोंका मैंने पहले पालन-पोषण किया था, वे सब शत्रुओंके अधीन हो जानेके कारण कष्टका अनुभव करते होंगे॥ ४३॥

उन अति दुराचारी तथा अपव्यय करनेके स्वभाववाले शत्रुओंने मेरा धन द्यूत, मदिरालय एवं वेश्यालयोंमें निश्चित-रूपसे खर्च कर दिया होगा॥ ४४॥

वे पापबुद्धि मेरा समस्त राजकोष व्यसनोंमें नष्ट कर डालेंगे, सत्पात्रोंको दान देनेकी योग्यता भी उन म्लेच्छोंमें नहीं है और मेरे मन्त्री भी अधीनतामें रहनेके कारण उन्हींके जैसे हो गये होंगे॥ ४५॥

महाराज सुरथ वृक्षके नीचे बैठकर इसी चिन्तामें पड़े हुए थे कि उसी समय एक विषादग्रस्त वैश्य वहाँ आ पहुँचा॥ ४६॥

राजाने उस वैश्यको सामने देख लिया। उन्होंने उसे अपने समीपमें बैठा लिया और पुनः उससे पूछा—आप कौन हैं तथा इस वनमें कहाँसे आये हैं? आप कौन हैं, आप उदास क्यों हैं? चिन्ताग्रस्त रहनेके कारण आप तो पीले वर्णके हो गये हैं? हे महाभाग! सात पग एक साथ चलनेपर ही मैत्री समझ ली जाती है, अतः आप मुझे सब कुछ सच-सच बता दीजिये॥ ४७-४८॥

व्यासजी बोले—राजाका वचन सुनकर वह वैश्यश्रेष्ठ उनके पास बैठ गया और इसे सज्जनसमागम समझकर शान्तचित्त होकर उनसे कहने लगा॥ ४९॥

वैश्य बोला—हे मित्र! मैं वैश्यजातिमें उत्पन्न हूँ और समाधि नामसे प्रसिद्ध हूँ। मैं धनवान्, धर्मकार्योंमें निपुण, सत्यवादी और ईर्ष्यासे रहित हूँ, फिर भी धनके लोभी और कुटिल स्त्री-पुत्रोंने मुझे घरसे निकाल दिया (उन्होंने मुझे कृपण कहकर कठिनाईसे टूटनेवाला माया-बन्धन भी तोड़ दिया), अतः अपने कुटुम्बियोंसे परित्यक्त होकर मैं अभी-अभी इस वनमें आया हूँ। हे प्रिय! आप कौन हैं? मुझे बतायें; आप भाग्यवान् प्रतीत होते हैं॥ ५०-५१$^{1}/_{2}$॥

राजा बोले—मैं सुरथ नामका राजा हूँ, मैं दस्युओंसे पीड़ित हूँ। मन्त्रियोंके द्वारा ठगे जानेके कारण राज्यविहीन होकर मैं यहाँ आया हूँ। हे वैश्यश्रेष्ठ! भाग्यवश आप मुझे यहाँ मित्रके रूपमें मिल गये हैं। अब हम दोनों सुन्दर वृक्षोंसे युक्त इस वनमें विहार करेंगे। हे महाबुद्धिमान् वैश्य-श्रेष्ठ! चिन्ता छोड़िये और प्रसन्नचित्त होइये (अब आप मेरे साथ यहींपर इच्छानुसार सुखपूर्वक रहिये)॥ ५२—५४॥

वैश्य बोला—मेरा परिवार आश्रयरहित है, मेरे बिना परिवारके लोग अत्यन्त दुःखी होंगे। मेरे बारेमें चिन्ता करते हुए वे रोग तथा शोकसे व्याकुल हो जायँगे॥ ५५॥

हे राजन्! मेरी पत्नी तथा पुत्र शारीरिक सुख पा रहे होंगे अथवा नहीं, इसी चिन्तासे व्याकुल रहनेके कारण मेरा मन शान्त नहीं रह पाता॥ ५६॥

हे राजन्! मैं पुत्र, पत्नी, घर और स्वजनोंको कब देख सकूँगा? गृहकी चिन्तासे अत्यन्त व्याकुल मेरा मन स्वस्थ नहीं हो पाता है॥ ५७॥

राजा बोले—हे महामते! जिन दुराचारी तथा महामूर्ख पुत्र आदिके द्वारा आप घरसे निकाल दिये गये, उन्हें देखकर अब आपको कौन-सा सुख मिलेगा? दुःख देनेवाले सुहृदोंकी अपेक्षा सुख देनेवाला शत्रु श्रेष्ठ है; अतः अपने मनको स्थिर करके आप मेरे साथ आनन्द कीजिये॥ ५८-५९॥

वैश्य बोला—हे राजन्! दुर्जनोंके द्वारा भी अत्यन्त कठिनतासे त्यागे जानेवाले कुटुम्बकी चिन्तासे अत्यन्त दुःखित मेरा मन इस समय स्थिर नहीं हो पा रहा है॥ ६०॥

राजा बोले—राज्यसम्बन्धी चिन्ता मेरे मनको भी दुःखी करती रहती है। अतः अब हम दोनों शान्त प्रकृतिवाले मुनिसे शोकके नाशकी औषधि पूछें॥ ६१॥

व्यासजी बोले—ऐसा विचार करके राजा और वैश्य—दोनों ही अत्यन्त विनम्र होकर शोकका कारण पूछनेके लिये मुनिके पास गये॥ ६२॥

वहाँ जाकर राजा सुरथ आसन लगाकर शान्त बैठे हुए मुनिश्रेष्ठको प्रणाम करके स्वयं भी सम्यक् रूपसे आसनपर बैठकर शान्तिपूर्वक उनसे कहने लगे॥ ६३॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत पंचम स्कन्धका 'राजा सुरथ और समाधि वैश्यका मुनिके पास गमन' नामक बत्तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३२॥

तैंतीसवाँ अध्याय

मुनि सुमेधाका सुरथ और समाधिको देवीकी महिमा बताना

राजा बोले—हे मुने! ये वैश्य हैं, आज ही वनमें इनसे मेरी मित्रता हुई है। पत्नी और पुत्रोंने इन्हें निकाल दिया है और अब यहाँ इन्हें मेरा साथ प्राप्त हुआ है॥ १॥

परिवारके वियोगसे ये अत्यन्त दुःखी और विक्षुब्ध हैं; इन्हें शान्ति नहीं मिल पा रही है और इस समय मेरी भी ऐसी ही स्थिति है। हे महामते! राज्य चले जानेके दुःखसे मैं शोकसन्तप्त हूँ। व्यर्थकी यह चिन्ता मेरे हृदयसे निकल नहीं रही है—मेरे घोड़े दुर्बल हो गये होंगे और हाथी शत्रुओंके अधीन हो गये होंगे। उसी प्रकार सेवकगण भी मेरे बिना दुःखी रहते होंगे। शत्रुगण राजकोशको क्षणभरमें बलपूर्वक रिक्त कर देंगे॥ २-३॥

इस प्रकार चिन्ता करते हुए मुझे न निद्रा आती है और न मेरे शरीरको सुख मिलता है। मैं जानता हूँ कि यह सम्पूर्ण जगत् स्वप्नकी भाँति मिथ्या है, किंतु हे प्रभो! यह जानते हुए भी मेरा भ्रमित मन स्थिर नहीं होता। मैं कौन हूँ? ये हाथी-घोड़े कौन हैं? ये मेरे कोई सगे-सम्बन्धी भी नहीं हैं। न ये मेरे पुत्र हैं, और न मेरे मित्र हैं, जिनका दुःख मुझे पीड़ित कर रहा है। मैं जानता हूँ कि यह भ्रम है, फिर भी मेरे मनसे सम्बन्ध रखनेवाला मोह दूर नहीं होता, यह बड़ा ही अद्भुत कारण है! हे स्वामिन्! आप सर्वज्ञ और सभी संशयोंका नाश करनेवाले हैं, अतः हे दयानिधे! मेरे इस मोहका कारण बताएँ॥ ४—७$^{१}/_{२}$॥

व्यासजी बोले—तब राजाके ऐसा पूछनेपर मुनिश्रेष्ठ सुमेधा उनसे शोक और मोहका नाश करनेवाले परम

ज्ञानका वर्णन करने लगे॥ ८१/२ ॥

ऋषि बोले—हे राजन्! सुनिये, मैं बताता हूँ। महामायाके नामसे विख्यात वे भगवती ही सभी प्राणियोंके बन्धन और मोक्षकी कारण हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश, वरुण, पवन आदि सभी देवता, मनुष्य, गन्धर्व, सर्प, राक्षस, वृक्ष, विविध लताएँ, पशु, मृग और पक्षी—ये सब मायाके आधीन हैं और बन्धन तथा मोक्षके भाजन हैं। उन महामायाने ही इस जड़-चेतनमय सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि की है। जब यह जगत् सदा उन्हींके अधीन रहता है और मोहजालमें जकड़ा हुआ है, तब आप किस गणनामें हैं? आप तो मनुष्योंमें रजोगुणसे युक्त एक क्षत्रियमात्र हैं॥ ९—१३ ॥

वे महामाया ज्ञानियोंकी बुद्धिको भी सदा मोहित किये रहती हैं। ब्रह्मा, विष्णु और महेश आदि परम ज्ञानी होते हुए भी रागके वशीभूत होकर व्यामोहमें पड़ जाते हैं और संसारमें चक्कर काटा करते हैं॥ १४१/२ ॥

हे राजन्! प्राचीन कालमें स्वयं उन भगवान् नारायणने ब्रह्मविद्याकी प्राप्ति तथा अविनाशी सुखके लिये श्वेतद्वीपमें जाकर ध्यान करते हुए दस हजार वर्षोंतक घोर तपस्या की थी। हे राजेन्द्र! इसके साथ ही मोहकी निवृत्तिके लिये एक निर्जन प्रदेशमें ब्रह्माजी भी परम अद्भुत तपस्यामें संलग्न हो गये॥ १५—१७१/२ ॥

हे राजेन्द्र! किसी समय वासुदेव भगवान् श्रीहरिने दूसरे स्थानपर जानेका विचार किया और वे उस स्थानसे उठकर अन्य स्थलको देखनेकी इच्छासे चल दिये। ब्रह्माजी भी उसी प्रकार अपने स्थानसे निकल पड़े। चतुर्मुख ब्रह्माजी और चतुर्भुज भगवान् विष्णु मार्गमें मिल गये। तब वे दोनों एक-दूसरेसे पूछने लगे—तुम कौन हो, तुम कौन हो?॥ १८—२० ॥

ब्रह्माजी भगवान् विष्णुसे बोले—मैं जगत्का स्रष्टा हूँ। तब विष्णुने उनसे कहा—हे मूर्ख! अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाला मैं विष्णु ही जगत्का कर्ता हूँ। तुम कितने शक्तिशाली हो? तुम तो रजोगुणयुक्त और बलहीन हो! मुझे सत्त्वगुणसम्पन्न सनातन नारायण जानो॥ २१-२२ ॥

दोनों दानवों (मधु-कैटभ)-के द्वारा पीड़ित किये जानेपर तुम मेरी ही शरणमें आये थे, उस समय अत्यन्त भीषण युद्ध करके मैंने तुम्हारी रक्षा की। मैंने ही उन मधु-कैटभ दानवोंका वध किया है, अतः हे मन्दबुद्धि! तुम क्यों गर्व करते हो? इस अज्ञानका शीघ्र त्याग कर दो; क्योंकि इस सम्पूर्ण संसारमें मुझसे बढ़कर कोई नहीं है॥ २३-२४१/२ ॥

ऋषि बोले—इस प्रकार परस्पर विवाद करते हुए उन दोनों—ब्रह्मा-विष्णुके ओठ फड़कने लगे, वे क्रोधमें काँपने लगे और उनकी आँखें रक्तवर्ण हो गयीं। तभी विवादरत उन दोनोंके मध्य अचानक एक श्वेतवर्ण, अत्यन्त विशाल तथा अद्भुत लिंग प्रकट हो गया। तदनन्तर विवाद करते हुए उन दोनों महानुभावोंको सम्बोधित करके आकाशवाणी हुई—हे ब्रह्मन्! हे विष्णो! तुम दोनों परस्पर विवाद मत करो॥ २५—२८ ॥

इस लिंगके ऊपरी या निचले छोरका आप दोनोंमेंसे जो पता लगा लेगा, आप दोनोंमें वह सदैवके लिये श्रेष्ठ हो जायगा। इसलिये मेरी वाणीको प्रमाण मानकर तथा इस निरर्थक विवादका त्यागकर आपलोगोंमेंसे एक आकाश और दूसरा पातालकी ओर अभी जाय। इस विवादमें आप दोनोंको एक मध्यस्थ भी अवश्य कर लेना चाहिये॥ २९-३०१/२ ॥

ऋषि बोले—उस दिव्य वाणीको सुनकर वे दोनों चेष्टापूर्वक उद्यम करनेके लिये तैयार हो गये और अपने समक्ष स्थित उस देखनेमें अद्भुत लिंगको मापनेके लिये चल पड़े। अपने-अपने महत्त्वकी वृद्धिके लिये उस महालिंगको नापनेहेतु विष्णु पातालकी ओर और ब्रह्मा आकाशकी ओर गये॥ ३१-३२१/२ ॥

कुछ दूरतक जानेपर विष्णु पूर्णरूपसे थक गये। वे लिंगका अन्त नहीं प्राप्त कर सके और तब उसी स्थलपर वापस लौट आये। ब्रह्माजी ऊपरकी ओर गये और शिवके मस्तकसे गिरे हुए केतकी पुष्पको लेकर वे भी प्रसन्न हो लौट आये॥ ३३-३४१/२ ॥

तब अहंकारसे मोहित ब्रह्मा शीघ्रतापूर्वक आकर विष्णुको केतकी पुष्प दिखाकर यह झूठ बोलने लगे कि मैंने यह केतकी पुष्प इस लिंगके मस्तकसे प्राप्त किया है। आपके चित्तकी शान्तिके लिये पहचानचिह्नके रूपमें मैं इसे लेता आया हूँ॥ ३५-३६१/२ ॥

ब्रह्माजीके उस वचनको सुनकर और केतकी पुष्पको देखकर विष्णुने उनसे कहा—इसका साक्षी कौन है, बताइये। किसी विवादके उपस्थित होनेपर किसी सत्यवादी, बुद्धिमान्, सदाचारी, पवित्र और निष्पक्ष व्यक्तिको साक्षी बनाया जाता है॥ ३७-३८½ ॥

ब्रह्माजी बोले—इस समय इतने दूर देशसे कौन साक्षी आयेगा? जो सत्य बात है, उसे यह केतकी स्वयं कह देगी॥ ३९½ ॥

ऐसा कहकर ब्रह्माजीने केतकीको [साक्ष्यके लिये] प्रेरित किया। तब उसने शीघ्रतापूर्वक विष्णुको सम्बोधित करते हुए कहा कि शिव (लिंग)-के मस्तकपर स्थित मुझे ब्रह्माजी वहाँसे लेकर आये हैं। हे विष्णो! इसमें आपको किसी प्रकारका सन्देह नहीं करना चाहिये। ब्रह्माजी इस लिंगके पार गये हैं और शिवभक्तोंके द्वारा समर्पित की गयी मुझको लेकर आये हैं—यह मेरा कथन ही प्रमाण है॥ ४०—४२½ ॥

केतकीकी बात सुनकर भगवान् विष्णु मुसकराते हुए बोले कि मेरे लिये तो महादेव ही प्रमाण हैं। यदि वे ऐसी बात बोल दें तो मैं मान लूँगा॥ ४३½ ॥

ऋषि बोले—तब विष्णुकी बात सुनकर सनातन भगवान् महादेवने क्रुद्ध होकर केतकीसे कहा—असत्यभाषिणि! ऐसा मत बोलो। मेरे मस्तकसे गिरी हुई तुझे ब्रह्मा बीच में ही पा गये थे। तुमने झूठ बोला है, इसलिये अब मैंने सदैवके लिये तुम्हारा त्याग कर दिया। तब ब्रह्माजीने लज्जित होकर भगवान् विष्णुको नमस्कार किया। उसी दिनसे शिवद्वारा पुष्पोंमेंसे केतकीका त्याग कर दिया गया॥ ४४—४६½ ॥

हे राजन्! आप यह जान लीजिये कि मायाका बल ज्ञानियोंको भी मोहमें डाल देता है, तब दूसरे प्राणियोंके मोहित हो जानेकी क्या बात? स्वयं देवाधिदेव लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु देवताओंके कार्यकी सिद्धिके लिये पापका भय छोड़कर दैत्योंके साथ छल करते रहते हैं। वे ऐश्वर्यसम्पन्न भगवान् माधव अपने सुख और आनन्दको त्यागकर विविध योनियोंमें अवतार लेकर दैत्योंके साथ युद्ध करते हैं। देवताओंके कार्यहेतु अंशावतार ग्रहण करनेवाले सर्वज्ञ तथा जगद्गुरु भगवान् विष्णुमें भी यह मायाशक्ति अपना प्रभाव डालती है, तब हे राजन्! अन्यकी क्या बात! हे राजन्! वे परम प्रकृतिस्वरूपा महामाया ज्ञानियोंके मनको भी बलपूर्वक आकृष्ट करके मोहित कर देती हैं, जिन भगवतीके द्वारा स्थावर-जंगमात्मक यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है; वे ही ज्ञानदायिनी, मोहदायिनी तथा बन्धन एवं मोक्ष प्रदान करनेवाली हैं॥ ४७—५२½ ॥

राजा बोले—हे भगवन्! मुझे उनके स्वरूप, उत्तम बल, उनकी उत्पत्तिका कारण और उनके परम धामके विषयमें बताइये॥ ५३½ ॥

ऋषि बोले—हे राजन्! अनादि होनेके कारण उनकी कभी उत्पत्ति नहीं होती। नित्य और सर्वोपरि वे देवी समस्त कारणोंकी भी कारण हैं। हे नृप! वे शक्तिस्वरूपा भगवती सभी प्राणियोंमें सर्वात्मारूपसे विद्यमान रहती हैं। यदि प्राणी शक्तिसे रहित हो जाय तो वह प्राणी शवतुल्य हो जाता है; क्योंकि सभी प्राणियोंमें जो चैतन्य शक्ति है, वह इन्हींका रूप है। देवताओंकी कार्यसिद्धिके लिये ही उनका प्राकट्य और तिरोधान होता है॥ ५४—५६½ ॥

हे राजन्! जब देवता या मनुष्य उनकी स्तुति करते हैं, तब प्राणियोंके दुःखका नाश करनेके लिये ये भगवती जगदम्बा प्रकट होती हैं, वे देवी परमेश्वरी अनेक रूप धारण करके अनेक प्रकारकी शक्तियोंसे सम्पन्न होकर कार्य सिद्ध करनेके लिये स्वेच्छापूर्वक आविर्भूत होती हैं। हे राजन्! अन्य देवताओंकी भाँति वे भगवती दैवके अधीन नहीं हैं। सदा पुरुषार्थका प्रवर्तन करनेवाली वे देवी कालके वशमें नहीं हैं॥ ५७—५९½ ॥

यह सम्पूर्ण जगत् दृश्य है, परमपुरुष इसका द्रष्टा है, वह कर्ता नहीं है। वे सत्-असत्स्वरूपा देवी ही इस दृश्यमान जगत्की जननी हैं, वे स्वयं अकेले इस ब्रह्माण्डकी रचना करके परमपुरुषको आनन्दित करती हैं और उन परमपुरुषका मनोरंजन हो जानेके बाद वे भगवती शीघ्र ही सम्पूर्ण सृष्टि-प्रपंचका संहार भी कर देती हैं। वे ब्रह्मा, विष्णु और महेश तो निमित्तमात्र हैं। वे भगवती ही अपनी लीलासे उनकी रचना करती हैं और उन्हें अपने-अपने कार्यों (जगत्का सृजन, पालन और संहार)-में प्रवृत्त करती हैं। वे (देवी) उनमें अपने अंश (शक्ति)-का

आरोपणकर उन्हें बलवान् बनाती हैं। उन्होंने सरस्वती, लक्ष्मी और पार्वतीके रूपमें उन्हें अपनी शक्तियाँ दी हैं। अतः वे त्रिदेव उन्हीं पराम्बाको सृजन, पालन और संहार करनेवाली जानकर प्रसन्नतापूर्वक उनका ध्यान और पूजन करते हैं॥ ६०—६४½॥

हे राजन्! इस प्रकार मैंने अपनी बुद्धिके अनुसार देवीका यह उत्तम माहात्म्य आपसे कह दिया, मैं इसका अन्त नहीं जानता हूँ॥ ६५॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत पंचम स्कन्धका 'देवीके माहात्म्यका वर्णन' नामक तैंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३३॥

चौंतीसवाँ अध्याय

मुनि सुमेधाद्वारा देवीकी पूजा-विधिका वर्णन

राजा बोले—हे भगवन्! अब मुझे उन देवीकी आराधना-विधि भलीभाँति बताइये; साथ ही पूजा-विधि, हवनकी विधि और मन्त्र भी बताइये॥ १॥

ऋषि बोले—हे राजन्! सुनिये, मैं उनके पूजनकी शुभ विधि बताता हूँ, जो मनुष्योंको काम, मोक्ष और ज्ञानको देनेवाली तथा उनके दुःखोंका नाश करनेवाली है॥ २॥

मनुष्यको सर्वप्रथम विधिपूर्वक स्नान करके पवित्र हो श्वेत वस्त्र धारण कर लेना चाहिये। तत्पश्चात् वह सावधानीपूर्वक आचमन करके पूजास्थानको शुद्ध करनेके बाद लिपी हुई भूमिपर उत्तम आसन बिछाकर उसपर बैठ जाय और प्रसन्न होकर विधिपूर्वक तीन बार आचमन करे। अपनी शक्तिके अनुसार पूजाद्रव्यको सुव्यवस्थित ढंगसे रखकर प्राणायाम कर ले, उसके बाद भूतशुद्धि करके और पुनः मन्त्र पढ़कर समस्त पूजनसामग्रीका प्रोक्षण करके देवीमूर्तिकी प्राणप्रतिष्ठा करनी चाहिये। तत्पश्चात् देशकालका उच्चारणकर विधिपूर्वक न्यास करना चाहिये॥ ३—६॥

इसके बाद सुन्दर ताम्रपात्रपर श्वेत चन्दनसे षट्कोण यन्त्र तथा उसके बाहर अष्टकोण यन्त्र लिखना चाहिये। तदनन्तर नवाक्षर मन्त्रके आठ बीज अक्षर आठों कोणोंमें लिखना चाहिये और नौवाँ अक्षर यन्त्रकी कर्णिका (बीच)-में लिखना चाहिये। तदनन्तर वेदमें बतायी गयी विधिसे यन्त्रकी प्रतिष्ठा करके पूजा करे अथवा भगवतीकी धातुमयी प्रतिमामें शिवतन्त्रोक्त पूजामन्त्रोंसे प्रयत्नपूर्वक पूजन करना चाहिये। अथवा सावधान होकर आगमशास्त्रमें बतायी गयी विधिसे विधानपूर्वक पूजन करके ध्यानपूर्वक नवाक्षरमन्त्रका सतत जप करना चाहिये। जपका दशांश होम करना चाहिये, होमका दशांश तर्पण करना चाहिये और तर्पणका दशांश ब्राह्मणभोजन कराना चाहिये। प्रतिदिन तीनों चरित्रों (प्रथम चरित्र, मध्यम चरित्र तथा उत्तर चरित्र)-का पाठ करना चाहिये। इसके बाद विसर्जन करना चाहिये॥ ७—११½॥

हे राजन्! कल्याण चाहनेवालेको आश्विन और चैत्र माहके शुक्लपक्षमें विधिपूर्वक नवरात्रव्रत करना चाहिये। इन नवरात्रोंमें उपवास भी करना चाहिये॥ १२-१३॥

अनुष्ठानमें जपे गये मन्त्रोंके द्वारा शर्करा, घी और मधुमिश्रित पवित्र खीरसे विस्तारपूर्वक हवन करना चाहिये अथवा उत्तम बिल्वपत्रों, लाल कनैलके पुष्पों अथवा शर्करामिश्रित तिलोंसे हवन करना चाहिये। अष्टमी, नवमी एवं चतुर्दशीको विशेषरूपसे देवीपूजन करना चाहिये और इस अवसरपर ब्राह्मणभोजन भी कराना चाहिये। ऐसा करनेसे निर्धनको धनकी प्राप्ति होती है, रोगी रोगमुक्त हो जाता है, पुत्रहीन व्यक्ति सुन्दर और आज्ञाकारी पुत्रोंको प्राप्त करता है और राज्यच्युत राजाको सार्वभौम राज्य प्राप्त हो जाता है। देवी महामायाकी कृपासे शत्रुओंसे पीड़ित मनुष्य अपने शत्रुओंका नाश कर देता है। जो विद्यार्थी इन्द्रियोंको वशमें करके इस पूजनको करता है, वह शीघ्र ही पुण्यमयी उत्तम विद्या प्राप्त कर लेता है; इसमें सन्देह नहीं है॥ १४—१९॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र—जो भी भक्तिपरायण होकर जगज्जननी जगदम्बाकी पूजा करता है, वह सब

प्रकारके सुखका भागी हो जाता है। जो स्त्री अथवा पुरुष भक्तितत्पर होकर नवरात्रव्रत करता है, वह सदा मनोवांछित फल प्राप्त करता है॥ २०-२१॥

जो मनुष्य आश्विन शुक्लपक्षमें इस उत्तम नवरात्रव्रतको श्रद्धाभावसे करता है, उसकी सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं॥ २२॥

विधिपूर्वक मण्डलका निर्माण करके पूजा-स्थानका निर्माण करना चाहिये और वहाँपर विधि-विधानसे वैदिक मन्त्रोंद्वारा कलशकी स्थापना करनी चाहिये॥ २३॥

अत्यन्त सुन्दर यन्त्रका निर्माण करके उसे कलशके ऊपर स्थापित कर देना चाहिये। तत्पश्चात् कलशके चारों ओर उत्तम जौका वपन करके पूजा-स्थानके ऊपर पुष्पमालासे अलंकृत चाँदनी लगाकर देवीका मण्डप बनाना चाहिये तथा उसे सदा धूप-दीपसे सम्पन्न रखना चाहिये॥ २४-२५॥

अपनी शक्तिके अनुसार वहाँ [प्रातः, मध्याह्न तथा सायंकाल] तीनों समय पूजा करनी चाहिये। देवीकी पूजामें धनकी कृपणता नहीं करनी चाहिये। धूप, दीप, उत्तम नैवेद्य, अनेक प्रकारके फल-पुष्प, गीत, वाद्य, स्तोत्रपाठ तथा वेदपारायण—इनके द्वारा भगवतीकी पूजा होनी चाहिये। नानाविध वाद्य बजाकर उत्सव मनाना चाहिये। इस अवसरपर चन्दन, आभूषण, वस्त्र, विविध प्रकारके व्यंजनों, सुगन्धित तेल, हार तथा मनको प्रसन्न करनेवाले—इन पदार्थोंसे विधिपूर्वक कन्याओंका पूजन करना चाहिये। इस प्रकार पूजन सम्पन्न करके अष्टमी या नवमीको मन्त्रोच्चार-पूर्वक विधिवत् हवन करना चाहिये। तत्पश्चात् ब्राह्मण-भोजन कराना चाहिये। इसके बाद दशमीको पारण करना चाहिये। भक्तिनिष्ठ राजाओंको यथाशक्ति दान भी करना चाहिये॥ २६—३१॥

इस प्रकार पुरुष अथवा पतिव्रता सधवा या विधवा स्त्री जो कोई भी भक्तिपूर्वक नवरात्रव्रत करता है, वह इस लोकमें सुख तथा मनोभिलषित भोगोंको प्राप्त करता है और वह व्रतपरायण व्यक्ति देह-त्याग होनेपर परम दिव्य देवीलोकको प्राप्त करता है॥ ३२-३३॥

उसे जन्मान्तरमें देवी जगदम्बाकी अविचल भक्ति प्राप्त होती है और उत्तम कुलमें जन्म पाकर वह स्वभावतः सदाचारी होता है॥ ३४॥

नवरात्रव्रतको व्रतोंमें उत्तम व्रत कहा गया है; भगवती शिवाका आराधन सब प्रकारके उत्तम सुखको देनेवाला है॥ ३५॥

हे राजन्! इस विधिसे भगवती चण्डिकाकी आराधना कीजिये, इससे शत्रुओंको जीतकर आप अपना उत्तम राज्य पुनः प्राप्त कर लेंगे और हे भूप! अपनी स्त्री-पुत्र आदि स्वजनोंको प्राप्तकर आप अपने भवनमें परम उत्तम सुखका इसी शरीरसे उपभोग करेंगे; इसमें सन्देह नहीं है॥ ३६-३७॥

हे वैश्यश्रेष्ठ! आप भी आजसे समस्त कामनाओंको देनेवाली, सृष्टि और संहारकी कारणभूता विश्वेश्वरी देवी महामायाकी आराधना कीजिये। इससे आप अपने घर जानेपर अपने लोगोंमें मान्य हो जायँगे और मनोभिलषित सांसारिक सुख प्राप्त करके अन्तमें शुभ देवीलोकमें वास करेंगे—इसमें सन्देह नहीं है॥ ३८-३९ $^{1}/_{2}$॥

हे राजन्! जो मनुष्य भगवतीकी आराधना नहीं करते, वे नरकके भागी होते हैं। वे इस लोकमें अत्यन्त दुःखी, विविध व्याधियोंसे पीड़ित, शत्रुओंद्वारा पराजित, स्त्री-पुत्रसे हीन, तृष्णाग्रस्त और बुद्धिभ्रष्ट होते हैं॥ ४०-४१ $^{1}/_{2}$॥

बिल्वपत्रोंसे तथा कनैल, कमल और चम्पाके फूलोंसे जो जगज्जननीकी आराधना करते हैं, शक्तिस्वरूपा भगवतीकी भक्तिमें रत वे पुण्यशाली लोग विविध प्रकारके सुख प्राप्त करते हैं॥ ४२-४३॥

हे नृपश्रेष्ठ! जो लोग वेदोक्त मन्त्रोंसे भवानीका पूजन करते हैं, वे मानव इस संसारमें सब प्रकारके धन, वैभव तथा सुखसे परिपूर्ण, समस्त गुणोंके आगार, माननीय, विद्वान् और राजाओंके शिरोमणि होते हैं॥ ४४॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत पंचम स्कन्धका 'भगवतीकी पूजा-आराधनविधिका वर्णन' नामक चौंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३४॥

पैंतीसवाँ अध्याय

सुरथ और समाधिकी तपस्यासे प्रसन्न भगवतीका प्रकट होना और उन्हें इच्छित वरदान देना

व्यासजी बोले—उनका यह वचन सुनकर दुःखित हृदयवाले वैश्य और राजाने प्रसन्नतापूर्वक विनम्रभावसे मुनिके चरणोंमें प्रणाम किया। भक्तिपरायण चित्तवाले, शान्त स्वभाववाले तथा हर्षके कारण खिले हुए नेत्रोंवाले वे दोनों वाक्यविशारद राजा और वैश्य हाथ जोड़कर कहने लगे॥ १-२॥

हे भगवन्! हम दोनों दुःखी जनोंको आपकी सूक्तिरूपिणी वाणीने उसी प्रकार शान्त तथा पवित्र कर दिया, जैसे गंगाने राजा भगीरथको कर दिया था॥ ३॥

सज्जन लोग परोपकारपरायण, स्वाभाविक रूपसे गुणोंके भण्डार और सभी प्राणियोंको सुख देनेवाले होते हैं। पूर्वजन्मोंके पुण्यके कारण ही महान् दुःखका नाश करनेवाले आपके इस शुभ आश्रममें हम दोनोंका आना हुआ। पृथ्वीपर बहुत-से स्वार्थी मनुष्य होते हैं, परंतु दूसरोंके हितसाधनमें कुशल आप-जैसे कुछ ही लोग कहीं-कहीं मिलते हैं। हे मुनिश्रेष्ठ! मैं दुःखी हूँ और ये वैश्य अत्यन्त दुःखी हैं। हम दोनों इस संसारसे पीड़ित हैं। हे विद्वन्! आपके इस आश्रममें आकर प्रसन्नतापूर्वक आपके दर्शन और उपदेश-श्रवणसे हमारा शारीरिक तथा मानसिक क्लेश दूर हो गया॥ ४—८॥

हे ब्रह्मन्! आपकी अमृतमयी वाणीके रससे हम दोनों धन्य और कृतकृत्य हो गये। हे करुणासागर! आपने अपनी कृपासे हम दोनोंको पवित्र कर दिया॥ ९॥

हे साधो! हम दोनों थककर इस संसाररूपी महासागरमें डूब रहे हैं—यह जानकर अब आप हम दोनोंका हाथ पकड़िये और मन्त्रदान देकर भवसागरसे पार कर दीजिये॥ १०॥

अब अत्यन्त कठोर तपस्या करके हम दोनों सुख प्रदान करनेवाली जगदम्बाका आराधन करके उनका दर्शन प्राप्तकर अपने-अपने घरोंको वापस जायँगे॥ ११॥

आपके मुखसे देवीका नवाक्षरमन्त्र ग्रहण करके हम दोनों निराहार रहकर व्रत करेंगे और उस मन्त्रका जप करेंगे॥ १२॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार उन दोनोंके आग्रह करनेपर मुनिश्रेष्ठ सुमेधाने उन्हें ध्यान-बीजसहित देवीका मंगलकारी नवाक्षरमन्त्र प्रदान किया॥ १३॥

वे दोनों वैश्य और राजा मुनिसे मन्त्र, ऋषि, देवता आदिका ज्ञान प्राप्त करके नदीके अत्युत्तम तटपर चले गये॥ १४॥

अत्यन्त कृशकाय वे दोनों एकान्तमें निर्जन स्थानपर आसन लगाकर स्थिरचित्त होकर बैठ गये॥ १५॥

उन दोनोंने शान्तचित्त तथा ध्यानपरायण होकर मन्त्रजप और भगवतीके तीनों चरित्रोंका पाठ करते हुए एक मासका समय व्यतीत कर दिया॥ १६॥

उनके एक मासके व्रतसे ही उनमें भगवती भवानीके चरणकमलमें उत्तम प्रीति उत्पन्न हो गयी और उनकी बुद्धि स्थिर हो गयी॥ १७॥

वे दोनों नित्य जाकर एक बार महात्मा [सुमेधा] मुनिके चरणोंमें प्रणाम करते थे और वहाँसे लौटकर फिर अपने कुशासनपर बैठ जाते थे। वे दोनों अन्य कोई भी कार्य नहीं करते थे और सदैव देवीके ध्यान तथा मन्त्रजपमें संलग्न रहते थे॥ १८-१९॥

हे राजन्! इस प्रकार एक वर्ष पूर्ण होनेपर वे फलाहारका त्याग करके पत्तेके आहारपर रहने लगे। उन दोनों—वैश्य और राजाने एक वर्षतक सूखे पत्ते खाकर इन्द्रियोंको वशमें करके जप और ध्यानमें रत रहते हुए तप किया॥ २०-२१॥

इस प्रकार दो वर्ष व्यतीत होनेपर उन दोनोंको किसी समय स्वप्नमें भगवतीका मनोहारी दर्शन प्राप्त हुआ। राजाने स्वप्नमें देवी जगदम्बिकाको लाल वस्त्र धारण किये हुए तथा सुन्दर आभूषणोंसे अलंकृत देखा॥ २२-२३॥

स्वप्नमें देवीका दर्शन प्राप्तकर दोनों प्रेमभावसे परिपूर्ण हो गये। अब वे दोनों तीसरे वर्षमें मात्र जलके आहारपर रहने लगे॥ २४॥

इस प्रकार तीन वर्षतक तपस्या करनेके पश्चात् वे दोनों—राजा और वैश्य मनमें देवीके साक्षात् दर्शनकी लालसासे चिन्तित हो उठे॥ २५॥

अत्यन्त दुःखी तथा व्याकुल होकर उन दोनोंने निश्चय किया कि मनुष्योंको शान्ति प्रदान करनेवाली देवीका प्रत्यक्ष दर्शन नहीं प्राप्त हुआ, अतः अब हम शरीरका त्याग कर देंगे॥ २६॥

ऐसा मनमें विचारकर राजाने एक हाथ प्रमाणका त्रिभुजाकार, सुन्दर तथा सुस्थिर अग्निकुण्ड बनाया। उसमें अग्निकी स्थापना करके राजा अपना मांस काट-काटकर बार-बार

हवन करने लगे। साथ ही अत्यन्त भक्तिमान् वह वैश्य भी प्रदीप्त अग्निमें अपना मांस डालने लगा। तत्पश्चात् वे दोनों जब अपने रुधिरसे इन देवीको बलि देनेके लिये उद्यत हुए तब भगवतीने उन दोनोंको प्रत्यक्ष दर्शन देकर उन्हें भक्तिमें तन्मय और अत्यन्त दु:खी देखकर उनसे कहा— ॥ २७—३० ॥

देवी बोलीं—हे राजन्! अपना मनोभिलषित वर माँगो, मैं आज तुम्हारी तपस्यासे सन्तुष्ट हूँ। अब मैंने समझ लिया कि तुम मेरे भक्त हो। उसके बाद देवीने वैश्यसे कहा—हे महामते! मैं प्रसन्न हूँ। तुम्हारा अभीष्ट क्या है ? तुम्हारे मनमें जो भी हो माँग लो, मैं उसे दूँगी ॥ ३१-३२ ॥

व्यासजी बोले—उनके इस वचनको सुनकर प्रसन्न मनवाले राजाने उनसे कहा कि बलपूर्वक मैं शत्रुओंका नाशकर अपना राज्य प्राप्त करूँ—मुझे आज यह वरदान दीजिये ॥ ३३ ॥

तब देवीने उनसे कहा—हे राजन्! अपने घरको जाओ, तुम्हारे शत्रु शीघ्र ही क्षीण बलवाले होकर पराजित हो जायँगे। हे महाभाग! उनके मन्त्रिगण आकर तुम्हारे पैरोंपर गिरेंगे। अब आप अपने नगरमें सुखपूर्वक राज्य करें। हे राजन्! अपने विस्तृत साम्राज्यका दस हजार वर्षोंतक शासन करके देहत्यागके बाद सूर्यसे जन्म प्राप्त करके तुम [सावर्णि] मनु होओगे ॥ ३४—३६ ॥

व्यासजी बोले—शुद्धहृदय वैश्यने हाथ जोड़कर कहा—अब मुझे न घरकी आवश्यकता है, न धनकी और न पुत्रकी ही। ये सभी बन्धनमें डालनेवाले और स्वप्नकी भाँति नश्वर हैं, अत: आप मुझे बन्धनका नाश करनेवाला और मोक्ष देनेवाला दिव्य ज्ञान प्रदान करें। इस असार संसारमें अज्ञानी डूब जाते हैं और ज्ञानी पार उतर जाते हैं, इसलिये वे संसारकी इच्छा नहीं करते ॥ ३७—३९ ॥

व्यासजी बोले—तब अपने समक्ष खड़े वैश्यकी बात सुनकर देवी महामायाने कहा—हे वैश्यश्रेष्ठ! तुम्हें ज्ञान प्राप्त होगा, इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४० ॥

इस प्रकार उन दोनोंको वरदान देकर देवी वहीं अन्तर्धान हो गयीं। तब भगवतीके अन्तर्धान हो जानेपर राजा सुरथने उन मुनिश्रेष्ठको प्रणाम करके घोड़ेपर चढ़कर चलनेका निश्चय किया, तभी उनके प्रजाजन और मन्त्रिगण वहाँ आ गये। उन्होंने विनयपूर्वक हाथ जोड़कर प्रणाम करके राजासे कहा—हे राजन्! आपके पापी शत्रुगण युद्धमें मारे गये। अब आप अपने नगरमें चलकर निष्कण्टक राज्य कीजिये ॥ ४१—४३१/२ ॥

उनकी बात सुनकर राजा मुनिश्रेष्ठको प्रणाम करके उनसे आज्ञा लेकर मन्त्रियोंके साथ चल दिये। वे अपने राज्य, स्त्री और बन्धु-बान्धवोंको पाकर समुद्रपर्यन्त सम्पूर्ण पृथ्वीका राज्य भोगने लगे ॥ ४४-४५१/२ ॥

वैश्य भी ज्ञान प्राप्त करके सर्वथा आसक्तिरहित और बन्धनसे मुक्त होकर तीर्थोंमें भ्रमण करता हुआ तथा भगवतीके गुणोंका गान करता हुआ समय व्यतीत करने लगा ॥ ४६-४७ ॥

इस प्रकार देवीकी परम अद्भुत लीला तथा राजा और वैश्यद्वारा की गयी उनकी आराधना एवं फलप्राप्तिको मैंने यथार्थ रूपसे आपसे कहा। देवीके शुभ आविर्भाव और उनके द्वारा दैत्योंके विनाशकी कथा भी मैंने आपसे कही। भक्तोंको अभय प्रदान करनेवाली वे भगवती ऐसे प्रभाववाली हैं! ॥ ४८-४९ ॥

जो मनुष्य उनके इस उत्तम आख्यानको नित्य सुनता है, वह संसारमें अद्भुत सुख प्राप्त करता है, यह सत्य है। इस पवित्र और अद्भुत आख्यानका श्रवण करनेसे यह ज्ञान, मोक्ष, कीर्ति और सुख प्रदान करता है। यह मनुष्योंकी सभी कामनाओंकी पूर्ति करनेवाला तथा समस्त धर्मोंका सार और धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी प्राप्तिका परम कारण बताया गया है ॥ ५०—५२ ॥

सूतजी बोले—हे मुनिगण! राजा जनमेजयके पूछनेपर सभी अर्थ-तत्त्वोंको जाननेवाले सत्यवतीपुत्र वेदव्यासने उनसे यह दिव्य देवीभागवतसंहिता कही। परम दयालु भगवान् कृष्णद्वैपायन वेदव्यासने शुम्भदैत्यके वधकी कथापर आधारित देवी चण्डिकाके चरित्रका वर्णन किया था। समस्त पुराणोंका सारस्वरूप इतिहास मैंने आपलोगोंसे कह दिया ॥ ५३-५४ ॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत पंचम स्कन्धका 'राजा सुरथ और समाधि वैश्यको देवीकी भक्तिसे इष्टकी प्राप्तिका वर्णन' नामक पैंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ३५ ॥

॥ पंचम स्कन्ध समाप्त ॥

॥ श्रीजगदम्बिकायै नमः ॥

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण

षष्ठ स्कन्ध

पहला अध्याय

त्रिशिराकी तपस्यासे चिन्तित इन्द्रद्वारा तपभंगहेतु अप्सराओंको भेजना

ऋषिगण बोले—हे महाभाग सूतजी! आपकी वाणीरूपी अत्यन्त मधुर सुधाका पान करके अभी हम सन्तृप्त नहीं हुए हैं। कृष्णद्वैपायन वेदव्यासजीने जिस उत्तम श्रीमद्देवीभागवत-महापुराणका प्रणयन किया है; उस पुराणकी मंगलमयी, वेदवर्णित, मनोहर, प्रसिद्ध और पापोंका नाश करनेवाली कथाको हम आपसे पुनः पूछना चाहते हैं॥ १-२॥

त्वष्टाका वृत्रासुर नामसे विख्यात पराक्रमी पुत्र महात्मा इन्द्रके द्वारा क्यों मारा गया? त्वष्टा तो देवपक्षके थे और उनका पुत्र अत्यन्त बलवान् था, ब्राह्मणवंशमें उत्पन्न उस महाबलीका इन्द्रके द्वारा क्यों वध किया गया? पुराणों और शास्त्रोंके तत्त्वज्ञलोगोंने देवताओंको सत्त्वगुणसे, मनुष्योंको रजोगुणसे और पशु-पक्षी आदि तिर्यक् योनियोंको तमोगुणसे उत्पन्न कहा है, परंतु यहाँ तो महान् विरोध प्रतीत होता है कि बलवान् वृत्रासुर सौ यज्ञोंके कर्ता इन्द्रके द्वारा छलपूर्वक मारा गया और इसके लिये भगवान् विष्णुद्वारा प्रेरणा दी गयी जो कि स्वयं महान् सत्त्वगुणी हैं तथा वे परम प्रभु छलपूर्वक वज्रमें प्रविष्ट हुए! सन्धि करके उस महाबली वृत्रको पहले आश्वस्त कर दिया गया, किंतु पुनः विष्णु और इन्द्रने सत्य (सन्धिकी बात)-को छोड़कर जलके फेनसे उसे मार डाला!॥ ३—८॥

हे सूतजी! इन्द्र और विष्णुके द्वारा ऐसा दुःसाहस क्यों किया गया? महान् लोग भी मोहमें फँसकर पापबुद्धि हो जाते हैं॥ ९॥

श्रेष्ठ देवगण भी घोर अन्याय-मार्गके अनुगामी हो जाते हैं, जबकि सदाचारके कारण ही देवताओंको विशिष्टता प्राप्त है॥ १०॥

इन्द्रके द्वारा विश्वासमें लेकर वृत्रासुरकी हत्या कर दी गयी—ऐसे विशिष्ट धर्मके द्वारा उनका सदाचार कहाँ रह गया? उन्हें इस ब्रह्महत्याजनित पापका फल मिला या नहीं? आपने पहले कहा था कि वृत्रासुरका वध स्वयं देवीने ही किया था—इससे हमारा चित्त और भी मोहमें पड़ गया है॥ ११-१२½॥

सूतजी बोले—हे मुनिगण! वृत्रासुरके वधसे सम्बन्धित और उस हत्यासे इन्द्रको प्राप्त महान् दुःखकी कथा सुनें। ऐसा ही पूर्वकालमें परीक्षित्पुत्र राजा जनमेजयने सत्यवतीनन्दन व्यासजीसे पूछा था; तब उन्होंने जो कहा, उसे मैं कहता हूँ॥ १३-१४½॥

जनमेजय बोले—हे मुने! सत्त्वगुणसे सम्पन्न इन्द्रने भगवान् विष्णुकी सहायता लेकर वृत्रासुरको पूर्वकालमें छलपूर्वक क्यों मारा? देवीके द्वारा उस दैत्यका क्यों और किस प्रकार वध किया गया? हे मुनिश्रेष्ठ! एक व्यक्तिका दो लोगोंके द्वारा कैसे वध किया गया—इसे मैं सुनना चाहता हूँ; मुझे महान् कौतूहल है॥ १५—१७॥

कौन मनुष्य महापुरुषोंके चरित्रको नहीं सुनना चाहेगा! अतः आप वृत्रासुरके वधपर आधारित जगदम्बाके माहात्म्यको कहिये॥ १८॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! आप धन्य हैं, जो कि आपकी इस प्रकारकी बुद्धि पुराणश्रवणमें अत्यन्त आदरपूर्वक लगी हुई है। श्रेष्ठ देवगण अमृतका पान करके पूर्ण तृप्त हो जाते हैं, परंतु आप इस कथामृतका बार-बार पान करके

भी अतृप्त ही हैं। हे राजन्! महान् कीर्तिवाले आपका भक्तिभाव कथाओंमें दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है। श्रोता जब एकाग्रमनसे सुनता है तब वक्ता भी प्रसन्नमनसे कथा कहता है॥ १९-२०॥

पूर्वकालमें इन्द्र तथा वृत्रासुरका युद्ध और निरपराध शत्रु वृत्रासुरका वध करके देवराज इन्द्रद्वारा प्राप्त दुःखकी कथा वेद और पुराणमें प्रसिद्ध है॥ २१॥

जब मायाके बलसे मुनिगण भी मोहमें पड़ जाते हैं और वे पापभीरु होकर निरन्तर निन्दनीय कर्म करने लग जाते हैं तब हे राजन्! विष्णु और वज्रधारी इन्द्रने छलसे त्रिशिरा और वृत्रासुरका वध कर दिया तो इसमें आश्चर्यकी क्या बात है?॥ २२॥

सत्त्वगुणके मूर्तिमान् विग्रह होते हुए भी भगवान् विष्णुने जिनकी मायासे मोहित होकर सदैव छलपूर्वक दैत्योंका संहार किया तब भला ऐसा कौन प्राणी होगा जो सब लोगोंको मोहमें डाल देनेवाली उन भगवती भवानीको अपने मनोबलसे जीतनेमें सक्षम हो सके!॥ २३॥

भगवतीकी ही प्रेरणासे नरऋषिके सखा नारायण-भगवान् अनन्त हजारों युगोंसे मत्स्यादि योनियोंमें अवतार लेते हैं और कभी अनुकूल तथा कभी प्रतिकूल कार्य करते हैं॥ २४॥

यह मेरा शरीर है, यह मेरा धन है, यह मेरा घर है, ये मेरे स्त्री-पुत्र और बन्धु-बान्धव हैं—इस मोहमें पड़कर सभी प्राणी पुण्य तथा पापकर्म करते रहते हैं; क्योंकि अत्यन्त बलशाली मायागुणोंसे वे मोहित कर दिये गये हैं॥ २५॥

हे राजन्! इस पृथ्वीपर कार्य और कारणका विज्ञ कोई भी व्यक्ति [उन जगदम्बाकी मायाके] मोहसे छुटकारा नहीं पा सकता; क्योंकि भगवती महामायाके तीनों गुणोंसे मोहित होकर वह पूर्णरूपसे सदा उनके अधीन रहता है॥ २६॥

इसलिये [उन्हीं देवीकी] मायासे मोहित होकर अपना स्वार्थ साधनेमें तत्पर रहनेवाले विष्णु और इन्द्रने छलपूर्वक वृत्रासुरको मार डाला। हे पृथ्वीपते! अब मैं वृत्रासुर और इन्द्रके पारस्परिक पूर्ववैरके कारणकी कथा बताता हूँ॥ २७-२८॥

देवताओंमें श्रेष्ठ त्वष्टा नामके एक प्रजापति थे। वे महान् तपस्वी, देवताओंका कार्य करनेवाले, अति कुशल तथा ब्राह्मणोंके प्रिय थे॥ २९॥

उन्होंने इन्द्रसे द्वेषके कारण तीन मस्तकोंसे सम्पन्न एक पुत्र उत्पन्न किया, जो विश्वरूप नामसे विख्यात हुआ। वह परम मनोहर रूपवाला था॥ ३०॥

अपने तीन श्रेष्ठ तथा मनोहर मुखोंके कारण वह अत्यन्त शोभासम्पन्न दिखायी देता था। वह मुनि अपने तीन मुखोंसे तीन भिन्न-भिन्न कार्य करता था। वह एक मुखसे वेदाध्ययन करता था, एक मुखसे मधुपान करता था और तीसरे मुखसे सब दिशाओंका एक साथ निरीक्षण करता था॥ ३१-३२॥

वह त्रिशिरा भोगका त्याग करके मृदु, संयमी और धर्मपरायण तपस्वी होकर अत्यन्त कठोर तप करने लगा॥ ३३॥

ग्रीष्मकालमें पंचाग्नि तापते हुए, वर्षाऋतुमें वृक्षोंके नीचे रहकर, हेमन्त और शिशिर ऋतुमें जलमें स्थित होकर सब कुछ त्याग करके जितेन्द्रिय भावसे निराहार रहकर उस बुद्धिमान् [त्रिशिरा]-ने मन्दबुद्धि प्राणियोंके लिये अत्यन्त दुष्कर तपस्या आरम्भ कर दी॥ ३४-३५॥

उसको तप करते देखकर शचीपति इन्द्र दुःखित हुए। उन्हें यह विषाद हुआ कि कहीं यह इन्द्र न बन जाय॥ ३६॥

उस अत्यन्त तेजस्वी [विश्वरूप]-का तप, पराक्रम और सत्य देखकर इन्द्र निरन्तर इस प्रकार चिन्तित रहने लगे—उत्तरोत्तर वृद्धिको प्राप्त होता हुआ यह त्रिशिरा मुझे ही समाप्त कर देगा, इसीलिये बुद्धिमानोंने कहा है कि बढ़ते हुए पराक्रमवाले शत्रुकी कभी भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। इसलिये इसके तपके नाशका उपाय इसी समय करना चाहिये। कामदेव तपस्वियोंका शत्रु है, कामसे ही तपका नाश होता है। अतः मुझे वैसा ही करना चाहिये, जिससे यह भोगोंमें आसक्त हो जाय॥ ३७—३९½॥

ऐसा मनमें विचारकर बल नामक दैत्यका नाश करनेवाले उन बुद्धिमान् इन्द्रने त्वष्टाके पुत्र त्रिशिराको प्रलोभनमें डालनेके लिये अप्सराओंको आज्ञा दी। उन्होंने उर्वशी, मेनका, रम्भा, घृताची, तिलोत्तमा आदिको बुलाकर कहा—अपने रूपपर गर्व करनेवाली हे अप्सराओ! आज मेरा कार्य आ पड़ा है, तुम सब मेरे उस प्रिय कार्यको

सम्पन्न करो॥ ४०—४२॥

मेरा एक महान् दुर्धर्ष शत्रु तपस्या कर रहा है। शीघ्र ही उसके पास जाओ और उसे प्रलोभित करो; इस प्रकार शीघ्र ही मेरा कार्य करो॥ ४३॥

अनेक प्रकारके शृंगार-वेषों तथा शरीरके हाव-भावोंसे उसे प्रलोभित करो और मेरे मानसिक सन्तापको शान्त करो; तुमलोगोंका कल्याण हो॥ ४४॥

हे महाभागा अप्सराओ! उसके तपोबलको जानकर मैं व्याकुल हो गया हूँ, वह बलवान् शीघ्र ही मेरा पद छीन लेगा॥ ४५॥

हे अबलाओ! मेरे सामने यह भय आ गया है, तुम-लोग शीघ्र ही इसका नाश कर दो। इस कार्यके आ पड़नेपर तुम सब मिलकर आज मेरा उपकार करो॥ ४६॥

उनके इस वचनको सुनकर नारियों (अप्सराओं)-ने उन्हें नमन करते हुए कहा—हे देवराज! आप भय न करें, हम उसे प्रलोभनमें डालनेका प्रयत्न करेंगी॥ ४७॥

हे महातेजस्विन्! जिस प्रकारसे आपको भय न हो, हम वैसा ही करेंगी। उस मुनिको लुभानेके लिये हम नृत्य, गीत और विहार करेंगी। हे विभो! कटाक्षों और अंगोंकी विविध भंगिमाओंसे मुनिको मोहित करके उन्हें लोलुप, अपने वशीभूत तथा नियन्त्रणमें कर लेंगी॥ ४८-४९॥

व्यासजी बोले—इन्द्रसे ऐसा कहकर वे अप्सराएँ त्रिशिराके समीप गयीं और कामशास्त्रमें कहे गये विभिन्न प्रकारके हाव-भावका प्रदर्शन करने लगीं॥ ५०॥

वे अप्सराएँ मुनिके सम्मुख अनेक प्रकारके तालोंमें गाती और नाचती हुई उन्हें मोहित करनेके लिये विविध प्रकारके हाव-भाव करती थीं॥ ५१॥

किंतु उन तपस्वीने अप्सराओंकी चेष्टाको देखातक नहीं और इन्द्रियोंको वशमें करके वे गूँगे, अन्धे और बहरेकी तरह बैठे रहे॥ ५२॥

वे अप्सराएँ गान, नृत्य आदि मोहित करनेवाले प्रपंच करती हुई कुछ दिनोंतक उनके श्रेष्ठ आश्रममें रहीं॥ ५३॥

जब उनकी कामचेष्टाओंसे मुनि त्रिशिराका ध्यान विचलित नहीं हुआ, तब वे अप्सराएँ पुनः लौटकर इन्द्रके सम्मुख उपस्थित हुईं॥ ५४॥

अत्यन्त थकी हुई, दीन अवस्थावाली, भयभीत और उदास मुखवाली उन सबने हाथ जोड़कर देवराजसे इस प्रकार कहा— ॥ ५५॥

हे सुरेश्वर! हे महाराज! हे विभो! हमने बहुत प्रयत्न किये, परंतु हम उस दुर्धर्ष मुनिको धैर्यसे विचलित करनेमें समर्थ नहीं हो पायीं॥ ५६॥

हे पाकशासन! आपको कोई दूसरा ही उपाय करना चाहिये, उन जितेन्द्रिय तपस्वीपर हमारा कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ सकता॥ ५७॥

हमारा बड़ा भाग्य है कि तपस्यासे अग्निके समान प्रकाशित होनेवाले उन महात्मा मुनिने हमें शाप नहीं दिया॥ ५८॥

अप्सराओंको विदा करके क्षुद्रबुद्धि तथा पापबुद्धि इन्द्र उसके ही वधका अनुचित उपाय सोचने लगे॥ ५९॥

हे राजन्! लोक-लज्जा और महान् पापके भयको छोड़कर उन्होंने उसके वधके लिये अपनी बुद्धिको पापमय बना दिया॥ ६०॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत षष्ठ स्कन्धका 'त्रिशिराके तपको भंग करनेके लिये देवराज इन्द्रद्वारा अनेक प्रकारके उपायोंके चिन्तनका वर्णन' नामक पहला अध्याय पूर्ण हुआ॥ १॥

दूसरा अध्याय

इन्द्रद्वारा त्रिशिराका वध, क्रुद्ध त्वष्टाद्वारा अथर्ववेदोक्त मन्त्रोंसे हवन करके वृत्रासुरको उत्पन्न करना और उसे इन्द्रके वधके लिये प्रेरित करना

व्यासजी बोले—इस प्रकार लोभके वशीभूत होकर पापबुद्धि देवराज इन्द्रने ऐरावत हाथीपर सवार हो त्रिशिराके पास जाकर उस अमेय पराक्रमवाले मुनिको देखा॥ १॥

उसे दृढ़ आसनपर बैठे, वाणीको वशमें किये, पूर्ण समाधिमें स्थित और सूर्य तथा अग्निके समान तेजस्वी देखकर देवराज इन्द्र बहुत दुःखित हुए॥ २॥

यह मुनि निष्पापबुद्धि है; इसे मारनेमें मैं कैसे समर्थ हो सकूँगा? तपोबलसे अत्यन्त समृद्ध तथा मेरा आसन

प्राप्त करनेकी इच्छावाले इस शत्रुकी उपेक्षा भी कैसे करूँ—ऐसा सोचकर देवसंघके स्वामी इन्द्रने अपने तीव्रगामी तथा श्रेष्ठ आयुध वज्रको सूर्य-चन्द्रमाके समान तेजस्वी, तपमें स्थित मुनि त्रिशिराके ऊपर चला दिया॥ ३-४॥

उसके प्रहारसे घायल होकर वे तपस्वी उसी प्रकार पृथ्वीपर गिर पड़े और निष्प्राण हो गये, जैसे वज्रसे विदीर्ण होकर पर्वतोंके शिखर पृथ्वीपर गिर पड़ते हैं; यह घटना देखनेमें बड़ी अद्भुत थी॥ ५॥

उनको मारकर इन्द्र प्रसन्न हो गये, परंतु वहाँ स्थित अन्य मुनिगण आर्तस्वरमें चिल्लाने लगे कि हाय! हाय! सौ यज्ञ करनेवाले पापी इन्द्रने यह क्या कर डाला!॥ ६॥

पापबुद्धि और दुष्टात्मा शचीपति इन्द्रने इस निरपराध तपोनिधिको मार डाला। इस हत्याजनित पापका फल यह पापी अब शीघ्र ही प्राप्त करे॥ ७॥

उन्हें मारकर देवराज तुरंत ही अपने भवनको जानेके लिये उद्यत हुए। तेजके निधि वे महात्मा (त्रिशिरा) मर जानेपर भी जीवितकी भाँति प्रतीत होते थे॥ ८॥

उसे जीवितकी भाँति भूमिपर गिरा हुआ देखकर अति उदास मनवाले वे वृत्रहन्ता इन्द्र इस चिन्तामें पड़ गये कि कहीं यह फिर जीवित न हो जाय॥ ९॥

मनमें बहुत देरतक विचार करनेके बाद इन्द्रने सामने खड़े तक्षा (बढ़ई)-को देखकर अपने कार्यके अनुरूप बात कही॥ १०॥

हे तक्षन्! मेरा कहा हुआ करो; इसके सिर काट लो, जिससे यह जीवित न रहे। यह महातेजस्वी जीवित न होते हुए भी जीवितकी भाँति प्रतीत होता है। उनकी यह बात सुनकर तक्षाने धिक्कारते हुए कहा—॥ ११½॥

तक्षा बोला—ये अति विशाल कन्धेवाले प्रतीत हो रहे हैं। मेरा परशु इस कन्धेको काट नहीं सकेगा। अतः मैं इस निन्दनीय कार्यको नहीं करूँगा, आपने तो निन्दित और सत्पुरुषोंद्वारा गर्हित कर्म कर डाला है, मैं पापसे डरता हूँ; फिर मरे हुएको क्यों मारूँ? ये मुनि तो मर गये हैं, फिर इनका सिर काटनेसे क्या प्रयोजन? हे पाकशासन! कहिये, इनसे आपको क्या भय उत्पन्न हुआ है?॥ १२—१४½॥

इन्द्र बोले—यह निर्मल आकृतिवाली देह सजीवकी भाँति दिखायी देती है। यह मेरा शत्रु मुनि पुनः न जीवित हो जाय, इसलिये मैं डरता हूँ॥ १५½॥

तक्षा बोला—हे विद्वन्! क्या इस क्रूर कर्मको करते हुए आपको लज्जा नहीं आती? इस ऋषिपुत्रको मारकर क्या आपको ब्रह्महत्याका भय नहीं है?॥ १६½॥

इन्द्र बोले—मैं बादमें पापके नष्ट होनेके लिये प्रायश्चित्त कर लूँगा। हे महामते! शत्रुको तो सब प्रकारसे छलके द्वारा भी मार देना चाहिये॥ १७½॥

तक्षा बोला—हे इन्द्र! आप लोभके वशीभूत होकर पाप कर रहे हैं। हे विभो! बतायें, मैं उसके बिना पाप क्यों करूँ?॥ १८½॥

इन्द्र बोले—मैं सदैवके लिये तुम्हारे यज्ञभागकी व्यवस्था कर दूँगा। मनुष्य यज्ञभागके रूपमें पशुका सिर तुम्हें देंगे। इस शुल्कके बदलेमें तुम इसके सिर काट दो और मेरा प्रिय कार्य कर दो॥ १९-२०॥

व्यासजी बोले—देवराज इन्द्रका यह वचन सुनकर प्रसन्न हो बढ़ईने अपने सुदृढ़ कुठारसे उसके सिर काट डाले॥ २१॥

कटे हुए तीनों सिर जब भूमिपर गिरे तब उनमेंसे हजारों पक्षी शीघ्रतापूर्वक निकल पड़े। तब गौरैया, तित्तिर और कपिंजल पक्षी शीघ्रतापूर्वक उसके अलग-अलग मुखोंसे निकले॥ २२-२३॥

जिस मुखसे वह वेदपाठ और सोमपान करता था, उस मुखसे तत्काल बहुत-से कपिंजल पक्षी निकले; जिससे वह सभी दिशाओंका निरीक्षण करता था, उससे अत्यन्त तेजस्वी तित्तिर निकले और हे राजन्! जिससे वह मधुपान करता था, उस मुखसे गौरैया पक्षी निकले। इस प्रकार त्रिशिरासे वे पक्षी निकले॥ २४—२६॥

हे राजन्! इस प्रकार उन मुखोंसे पक्षियोंको निकला हुआ देखकर इन्द्रके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई; वे पुनः स्वर्गको चल दिये॥ २७॥

हे पृथ्वीपते! इन्द्रके चले जानेपर तक्षा भी शीघ्र ही अपने घर चल दिया। श्रेष्ठ यज्ञभाग पाकर वह बहुत प्रसन्न था॥ २८॥

इन्द्रने भी अपने महाबली शत्रुको मारकर अपने भवन जा करके ब्रह्महत्याकी चिन्ता न करते हुए अपनेको कृतकृत्य मान लिया॥ २९॥

उस परम धार्मिक पुत्रको मारा गया सुनकर त्वष्टाने मनमें अत्यन्त क्रोधित हो यह वचन कहा—जिसने मेरे निरपराध मुनिवृत्तिवाले पुत्रको मार डाला है, उसके वधके लिये मैं पुनः पुत्र उत्पन्न करूँगा। देवतालोग मेरे पराक्रम और तपोबलको देख लें; वह पापात्मा भी अपनी करनीका महान् फल जान ले॥ ३०—३२॥

ऐसा कहकर क्रोधसे अत्यन्त व्याकुल त्वष्टा पुत्रकी उत्पत्तिके लिये अथर्ववेदोक्त मन्त्रोंसे अग्निमें हवन करने लगे॥ ३३॥

आठ रात्रियोंतक प्रज्वलित अग्निमें हवन करनेपर सहसा अग्निसदृश एक पुरुष प्रकट हुआ॥ ३४॥

वेगपूर्वक अग्निसे प्रकट हुए और अग्निके सदृश प्रकाशमान तथा तेज-बलसे युक्त उस पुत्रको अपने सम्मुख देखकर त्वष्टाने कहा—हे इन्द्रशत्रु! मेरे तपोबलसे तुम शीघ्र बढ़ जाओ॥ ३५-३६॥

क्रोधसे जाज्वल्यमान त्वष्टाके ऐसा कहते ही अग्निके समान कान्तिवाला वह पुत्र द्युलोकको स्तब्ध करता हुआ बड़ा होने लगा॥ ३७॥

बढ़ते-बढ़ते वह पर्वताकार विशाल और काल पुरुषके समान भयानक हो गया। उसने अत्यन्त दुःखित

अपने पितासे कहा—मैं क्या करूँ? हे नाथ! मेरा नामकरण कीजिये। हे सुव्रत! मुझे कार्य बताइये, आप चिन्तित क्यों हैं? मुझे अपने दुःखका कारण बताइये। मैं आज ही आपके शोकका नाश कर दूँगा—ऐसा मेरा दृढ़ संकल्प है। जिस पुत्रके रहते पिता दुःखी हो, उस पुत्रसे क्या लाभ! मैं शीघ्र ही समुद्रको पी जाऊँगा, पर्वतोंको चूर-चूर कर दूँगा और उगते हुए प्रचण्ड तेजस्वी सूर्यको रोक दूँगा। मैं देवताओंसहित इन्द्रको तथा यमको अथवा अन्य किसी भी देवताको मार डालूँगा। इन सबको तथा पृथ्वीको भी उखाड़कर समुद्रमें फेंक दूँगा॥ ३८—४२॥

उसका यह प्रिय वचन सुनकर त्वष्टाने प्रसन्न हो पर्वतके समान विशाल उस पुत्रसे कहा— ॥ ४३॥

हे पुत्र! तुम अभी वृजिन (कष्ट)-से त्राण दिलानेमें समर्थ हो, इसलिये तुम्हारा 'वृत्र'—यह नाम प्रसिद्ध होगा। हे महाभाग! तुम्हारा त्रिशिरा नामका एक तपस्वी भाई था। उसके अत्यन्त शक्तिशाली तीन सिर थे। वह वेद-वेदांगोंके तत्त्वको जाननेवाला, सभी विद्याओंमें निपुण और तीनों लोकोंको आश्चर्यमें डाल देनेवाली तपस्यामें रत था। इन्द्रने वज्रका प्रहार करके उस निरपराधको मार डाला और उसके मस्तक काट डाले। इसलिये हे पुरुषसिंह! तुम उस ब्रह्महत्यारे, पापी, निर्लज्ज, दुष्टबुद्धि तथा मूर्ख इन्द्रको मार डालो॥ ४४—४८॥

ऐसा कहकर पुत्रशोकसे व्याकुल त्वष्टाने विविध प्रकारके दिव्य तथा प्रबल आयुधोंका निर्माण किया और इन्द्रका वध करनेके लिये उस महाबली (वृत्र)-को दे दिया। उनमें खड्ग, शूल, गदा, शक्ति, तोमर, शार्ङ्गधनुष, बाण, परिघ, पट्टिश, सुदर्शन चक्रके समान कान्तिमान् हजार अरोंवाला दिव्य चक्र, दो दिव्य तथा अक्षय तरकस और अत्यन्त सुन्दर कवच एवं मेघके समान श्याम आभावाला, सुदृढ़, भार सहनेमें समर्थ और तीव्रगामी रथ था। इस प्रकार हे राजन्! समस्त युद्धसामग्री तैयार करके क्रोधसे व्याकुल त्वष्टाने अपने पुत्रको देकर उसे भेज दिया॥ ४९—५३॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत षष्ठ स्कन्धका 'त्रिशिराके वधके अनन्तर वृत्रोत्पत्तिवर्णन' नामक दूसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ २॥

तीसरा अध्याय

वृत्रासुरका देवलोकपर आक्रमण, बृहस्पतिद्वारा इन्द्रकी भर्त्सना करना और वृत्रासुरको अजेय बतलाना, इन्द्रकी पराजय, त्वष्टाके निर्देशसे वृत्रासुरका ब्रह्माजीको प्रसन्न करनेके लिये तपस्यारत होना

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] वेदोंमें पारंगत ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराकर महाबली वृत्रासुर रथपर सवार हो इन्द्रको मारनेके लिये चला॥ १॥

उस समय बहुत-से क्रूर राक्षस जो पहले देवताओंसे पराजित हो गये थे, वृत्रासुरको महान् बलशाली जानकर उसकी सेवाके लिये आ गये॥ २॥

इन्द्रके दूत उसे युद्धके लिये आया देखकर शीघ्रतापूर्वक [इन्द्रके पास] आकर सम्पूर्ण वृत्तान्त और उसकी गतिविधि बताने लगे॥ ३॥

दूत बोले—हे स्वामिन्! वृत्र नामका आपका बलवान् और दुर्धर्ष शत्रु रथपर आरूढ़ होकर राक्षसोंके साथ शीघ्र ही यहाँ आ रहा है; पुत्रशोकसे सन्तप्त और क्रोधाभिभूत त्वष्टाने आपके नाशके लिये अभिचारकर्मसे उसे उत्पन्न किया है॥ ४-५॥

हे महाभाग! शीघ्र ही [रक्षाका] उपाय कीजिये। सुमेरु और मन्दराचलके समान अत्यन्त भयंकर प्रतीत होनेवाला वह (वृत्रासुर) घोर गर्जन करता हुआ अब शीघ्र यहाँ आ रहा है॥ ६॥

इसी बीच अत्यन्त भयभीत देवगण वहाँ आ करके दूतोंकी बात सुन रहे देवराज इन्द्रसे इस प्रकार कहने लगे॥ ७॥

गण बोले—हे इन्द्र! इस समय स्वर्गमें अनेक प्रकारके अपशकुन हो रहे हैं। पक्षियोंके बहुत ही डरावने शब्द हो रहे हैं। कौए, गिद्ध, बाज और चील आदि क्रूर पक्षी भवनोंके ऊपर बैठकर भयानक स्वरोंमें रोते हैं और अन्य पक्षी भी बार-बार चीची-कूची—ऐसे शब्द कर रहे हैं। [हाथी, घोड़े आदि] वाहनोंकी आँखोंसे लगातार जल (अश्रु)-की धाराएँ नीचे गिर रही हैं। हे महाभाग! भवनोंके ऊपरी भागमें रातमें रोती हुई राक्षसियोंका महाभयानक शब्द सुनायी देता है। हे मानद! हवाके बिना ही ध्वजाएँ टूट-टूटकर गिर पड़ती हैं। स्वर्ग, पृथ्वी और आकाशमें महान् उत्पात हो रहे हैं। काले वस्त्र धारण की हुई भयानक मुखवाली स्त्रियाँ 'निकल जाओ; घरसे शीघ्र निकल जाओ'—ऐसा कहती हुई घर-घरमें घूमती हैं। रातमें अपने घरमें सोयी हुई स्त्रियोंको भयभीत करती हुई भयानक राक्षसियाँ स्वप्नोंमें उनके बाल नोचती हैं॥ ८—१४॥

हे देवेन्द्र! इसी प्रकार भूकम्प और उल्कापात आदि उपद्रव भी हो रहे हैं, रात्रिमें हमारे भवनोंके आँगनमें सियार रुदन करते हैं। गिरगिटोंके समूह घर-घरमें उत्पन्न हो रहे हैं, सर्वथा अनिष्टके सूचक अंग-प्रस्फुरण आदि भी होते हैं॥ १५-१६॥

व्यासजी बोले—उन लोगोंका यह वचन सुनकर इन्द्र चिन्तित हो उठे और बृहस्पतिको बुलाकर उन्होंने अपनी मनोगत बात पूछी॥ १७॥

इन्द्र बोले—हे ब्रह्मन्! ये भयानक अपशकुन क्यों हो रहे हैं? भयानक आँधियाँ चलती हैं और आकाशसे उल्कापात होते हैं। हे महाभाग! आप सर्वज्ञ, विघ्नका नाश करनेमें समर्थ, बुद्धिमान्, शास्त्रोंके तत्त्वोंको जाननेवाले और देवताओंके गुरु हैं। इसलिये हे विधानज्ञ! आप हमारी शान्तिके लिये शत्रुओंका नाश करनेवाला कोई शान्तिकर्म कीजिये। जिस प्रकार मुझे दुःख न हो, आप वैसा कार्य कीजिये॥ १८—२०॥

बृहस्पति बोले—हे सहस्र नेत्रोंवाले इन्द्र! मैं क्या करूँ? तुमने बहुत बड़ा पाप कर डाला है। निरपराध मुनिको मारकर तुमने क्या लाभ प्राप्त कर लिया?॥ २१॥

पुण्य और पापका अत्यन्त उग्र फल शीघ्र ही प्राप्त होता है, इसलिये ऐश्वर्यकी इच्छा रखनेवालोंको विचारपूर्वक कार्य करना चाहिये। दूसरेको कष्ट पहुँचानेका कृत्य कभी नहीं करना चाहिये। दूसरेको कष्ट देनेमें संलग्न प्राणी कभी सुख नहीं पाता॥ २२-२३॥

हे इन्द्र! तुमने मोह और लोभके वशीभूत होकर ब्रह्महत्या कर डाली, उसी पापका यह फल आज सहसा

उपस्थित हो गया है॥ २४॥

वृत्र नामवाला यह असुर जन्मसे ही देवताओंसे अवध्य है; बहुत-से दानवोंसे घिरा हुआ वह तुम्हें मारनेके लिये चला आ रहा है॥ २५॥

हे इन्द्र! त्वष्टाके द्वारा दिये हुए उन सभी वज्रतुल्य तथा दिव्य आयुधोंको लेकर वह उपस्थित हो रहा है॥ २६॥

दुर्धर्ष तथा प्रतापी वह रथपर आरूढ़ होकर प्रलय मचाते हुए चला आ रहा है। हे देवन्द्र! उसकी मृत्यु नहीं होगी॥ २७॥

बृहस्पति ऐसा कह ही रहे थे कि वहाँ कोलाहल मच गया। गन्धर्व, किन्नर, यक्ष, मुनि, तपस्वी और सभी देवता अपने-अपने भवन छोड़कर भाग चले। उस महान् आश्चर्यको देखकर इन्द्र चिन्तित हो उठे॥ २८-२९॥

तब उन्होंने सेवकोंको सेना तैयार करनेका आदेश दिया। 'वसुओं, रुद्रों, अश्विनीकुमारों, आदित्यों, पूषा, भग, वायु, कुबेर, वरुण और यमको बुलाओ। सभी श्रेष्ठ देवता आयुधोंके साथ विमानोंपर आरूढ़ होकर यहाँ शीघ्र आ जायँ; क्योंकि अब शत्रु आने ही वाला है'—ऐसी आज्ञा देकर देवराज अपने श्रेष्ठ गजराज ऐरावतपर सवार होकर बृहस्पतिको आगे करके अपने भवनसे बाहर निकले॥ ३०—३२^१/२॥

वैसे ही अन्य सभी देवता भी हाथोंमें शस्त्र लेकर अपने-अपने वाहनोंपर सवार होकर युद्धका संकल्प करके चल पड़े। उधर, वृत्रासुर भी विशाल दानवी सेनाके साथ वृक्षोंसे सुशोभित, रमणीय तथा देवताओंसे सेवित मान-सरोवरके उत्तरवर्ती पर्वतपर आ गया। बृहस्पतिको आगे करके सभी देवताओंके साथ इन्द्रने भी उस मानसोत्तर पर्वतपर आकर संग्राम किया॥ ३३—३५^१/२॥

तब गदा, तलवार, परिघ, पाश, बाण, शक्ति और परशु आदि युद्धास्त्रोंके द्वारा वृत्रासुर और इन्द्रमें भयानक युद्ध हुआ। मनुष्यों और विशुद्ध हृदयवाले ऋषियोंके लिये अत्यन्त भयकारी वह युद्ध मानववर्षकी गणनासे सौ वर्षोंतक चला॥ ३६-३७^१/२॥

उस युद्धमें सबसे पहले वरुण और उसके बाद मरुद्गण पलायन कर गये। इसी प्रकार यम, अग्नि, इन्द्र—जो भी थे वे सभी युद्धसे निकल भागे। इन्द्र आदि प्रमुख देवताओंको भागकर जाते देखकर वृत्रासुर भी प्रसन्नतापूर्वक आश्रमस्थित अपने पिताके पास गया और उन्हें प्रणाम करके बोला—हे पिताजी! मैंने [आपका] कार्य कर दिया॥ ३८—४०॥

युद्धभूमिमें आये हुए इन्द्रसहित सभी देवता मुझसे पराजित हो गये। वे सब उसी प्रकार भयभीत होकर अपने स्थानोंको भाग गये, जैसे सिंहसे डरकर हाथी और मृग भाग जाते हैं। इन्द्र तो पैदल ही भाग गये; मैं हाथियोंमें श्रेष्ठ इस ऐरावतको ले आया हूँ। हे भगवन्! आप इस गजश्रेष्ठको ग्रहण करें॥ ४१-४२॥

मैंने उन सबको इसलिये नहीं मारा; क्योंकि डरे हुएको मारना अनुचित होता है। हे तात! आप पुनः आज्ञा कीजिये कि मैं आपका कौन-सा इच्छित कार्य करूँ?॥ ४३॥

सभी देवता भयभीत और युद्धश्रमसे क्लान्त होकर भाग गये; भयभीत इन्द्र भी ऐरावत छोड़कर भाग गया॥ ४४॥

व्यासजी बोले—पुत्रका यह वचन सुनकर त्वष्टाने प्रसन्न होकर कहा—आज मैं पुत्रवान् हो गया हूँ; मेरा जीवन सफल हो गया॥ ४५॥

हे पुत्र! तुमने आज मुझे पवित्र कर दिया; मेरा मानसिक सन्ताप चला गया। तुम्हारे अद्भुत पराक्रमको देखकर मेरा मन शान्त हो गया॥ ४६॥

हे पुत्र! सुनो, अब मैं तुम्हारे हितकी बात कह रहा हूँ। हे महाभाग! अब तुम दृढ़तापूर्वक आसनपर बैठकर सावधान होकर तपस्या करो॥ ४७॥

किसीका भी विश्वास मत करना। वह तुम्हारा शत्रु इन्द्र छल करनेवाला तथा अनेक प्रकारकी भेदनीतिमें निपुण है॥ ४८॥

तपसे लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है, तपसे उत्तम राज्यकी प्राप्ति होती है। तपसे बलकी वृद्धि होती है और संग्राममें विजयकी प्राप्ति होती है॥ ४९॥

भगवान् ब्रह्माकी आराधना करके उनसे उत्तम वर प्राप्तकर तुम उस दुराचारी और ब्राह्मणके हत्यारे इन्द्रको मार डालो॥ ५०॥

तुम सावधान और स्थिर होकर कल्याणकारी तथा वरदाता ब्रह्माजीकी आराधना करो। प्रसन्न होनेपर चार

मुखवाले वे ब्रह्माजी तुम्हें अभीष्ट वरदान देंगे॥ ५१॥

विश्वकी सृष्टि करनेवाले अमिततेजस्वी ब्रह्माजीको प्रसन्न करके अमरत्व प्राप्तकर तुम अपराधी इन्द्रको मार डालो॥ ५२॥

हे पुत्र! मेरे मनमें उस पुत्रघातीके प्रति वैर बना हुआ है, न मुझे शान्ति प्राप्त होती है और न ही मैं सुखसे सो पाता हूँ॥ ५३॥

उस पापीने मेरे निर्दोष तपस्वी पुत्रको मार डाला है, इसलिये मुझे शान्ति नहीं मिलती। हे वृत्र! तुम मुझ दुःखीका उद्धार करो॥ ५४॥

व्यासजी बोले—तब पिताका वचन सुनकर वृत्रासुर कुपित हो उठा। पितासे आज्ञा लेकर वह प्रसन्नतापूर्वक तपस्या करनेके लिये चला गया॥ ५५॥

गन्धमादनपर्वतपर पहुँचकर पवित्र और मंगलकारिणी देवनदी गंगाजीमें स्नान करके कुशका आसन बिछाकर वह दृढ़तापूर्वक बैठ गया॥ ५६॥

अन्न और जलका त्याग करके योगाभ्यासमें तत्पर होकर मनमें विश्वस्रष्टा ब्रह्माजीका ध्यान करता हुआ वह दृढ़भावसे आसनपर बैठा रहा॥ ५७॥

उसे तपस्या करता हुआ जानकर इन्द्र चिन्तासे व्यग्र हो उठे। तब [उसके तपमें] विघ्न डालनेके लिये इन्द्रने गन्धर्वों, अत्यन्त ओजस्वी यक्षों, नागों, सर्पों, किन्नरों, विद्याधरों, अप्सराओं और अनेक देवदूतोंको भेजा। उन मायावियोंद्वारा तपमें विघ्नके लिये भलीभाँति उपाय किये गये, किंतु परम तपस्वी त्वष्टापुत्र वृत्र ध्यानसे विचलित नहीं हुआ॥ ५८—६०॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत षष्ठ स्कन्धका 'ब्रह्माके समाराधनके लिये त्वष्टाका वृत्रको उपदेश देनेका वर्णन' नामक तीसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३॥

चौथा अध्याय

तपस्यासे प्रसन्न होकर ब्रह्माजीका वृत्रासुरको वरदान देना, त्वष्टाकी प्रेरणासे वृत्रासुरका स्वर्गपर आक्रमण करके अपने अधिकारमें कर लेना, इन्द्रका पितामह ब्रह्मा और भगवान् शंकरके साथ वैकुण्ठधाम जाना

व्यासजी बोले—उस वृत्रासुरको दृढ़प्रतिज्ञ देखकर तपमें विघ्न डालनेके लिये गये हुए देवगण अपने कार्यकी सिद्धिसे निराश होकर वापस लौट आये॥ १॥

सौ वर्ष पूर्ण होनेपर लोकपितामह चतुर्मुख ब्रह्मा हंसपर आरूढ़ हो शीघ्रतापूर्वक उसके पास आये॥ २॥

आकर उन्होंने उससे यह कहा—हे त्वष्टाके पुत्र! तुम सुखी होओ, ध्यानका त्यागकर वरदान माँगो, मैं तुम्हारा इच्छित वर दूँगा॥ ३॥

तुम्हें तपस्यासे अत्यन्त कृशकाय देखकर मैं प्रसन्न हूँ। तुम्हारा कल्याण हो, अब तुम अपना मनोभिलषित वर माँग लो॥ ४॥

व्यासजी बोले—अपने समक्ष खड़े जगत्के एकमात्र स्रष्टा [ब्रह्माजी]-की अत्यन्त गम्भीर और अमृतरसतुल्य वाणी सुनकर वह वृत्रासुर योग-ध्यान त्यागकर सहसा उठ खड़ा हुआ। हर्षातिरेकसे उसके नेत्रोंसे अश्रुधारा बहने लगी॥ ५॥

प्रेमपूर्वक विधाता ब्रह्माजीके चरणोंमें सिर रखकर प्रणाम करके दोनों हाथ जोड़कर वह उनके समक्ष स्थित

हो गया और तपस्यासे प्रसन्न तथा उत्तम वर देनेवाले ब्रह्माजीसे विनयावनत होकर प्रेमपूर्ण गद्गद वाणीमें कहने लगा— ॥ ६॥

हे प्रभो! मैंने आज समस्त देवताओंका पद प्राप्त कर

लिया जो कि मुझे शीघ्र ही आपका अत्यन्त दुर्लभ दर्शन प्राप्त हो गया। हे नाथ! हे कमलासन! आप सबके मनके भाव जानते हैं, फिर भी मेरे भक्तिपूर्ण मनमें एक दुर्लभ अभिलाषा है, उसे मैं आपसे कह रहा हूँ॥ ७॥

लोहे, काष्ठ, सूखे या गीले बाँसद्वारा निर्मित तथा अन्य किसी शस्त्रसे मेरी कभी मृत्यु न हो। मेरा पराक्रम अत्यन्त बढ़ जाय, जिससे युद्धमें मैं उन बलवान् देवताओंसे अजेय हो जाऊँ॥ ८॥

व्यासजी बोले—उसके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर ब्रह्माजी उससे हँसते हुए बोले—[हे वत्स!] उठो और [घर] जाओ, तुम्हारा मनोरथ निश्चय ही पूर्ण होगा। तुम्हारा कल्याण हो॥ ९॥

न सूखी, न गीली वस्तुसे, न तो पत्थर या लकड़ीद्वारा निर्मित शस्त्रसे ही तुम्हारी मृत्यु होगी—यह मैं सत्य कह रहा हूँ॥ १०॥

ऐसा वरदान देकर ब्रह्माजी अपने दिव्य लोकको चले गये और वृत्रासुर भी वरदान प्राप्तकर प्रसन्नतापूर्वक अपने घर चला गया॥ ११॥

महाबुद्धिमान् वृत्रासुरने पिताके सम्मुख उस वरदानको सुनाया, तब त्वष्टा भी पुत्रके वरदान प्राप्त करनेसे अत्यन्त प्रसन्न हो गये॥ १२॥

उन्होंने कहा—हे महाभाग! तुम्हारा कल्याण हो, मेरे शत्रु और त्रिशिराके हत्यारे पापी इन्द्रको मार डालो; उसे मारकर आ जाओ॥ १३॥

युद्धमें विजय प्राप्तकर तुम देवताओंके अधिपति बनो। पुत्रहत्यासे उत्पन्न मेरे महान् मानसिक सन्तापको तुम दूर करो॥ १४॥

जीवित [अवस्थामें] पिताकी आज्ञाका पालन करने, मृत्युतिथिपर पर्याप्त भोजन कराने तथा गयामें पिण्डदान करने—इन तीनोंसे ही पुत्रका पुत्रत्व सार्थक होता है॥ १५॥

अत: हे पुत्र! तुम मेरे बहुत बड़े दु:खको दूर करनेमें समर्थ हो; त्रिशिरा मेरे चित्तसे कभी हटता नहीं है॥ १६॥

उस सुशील, सत्यवादी, तपस्वी और वेदवेत्ताको बिना किसी अपराधके ही पापबुद्धिवाले उस इन्द्रने मार डाला॥ १७॥

व्यासजी बोले—उनकी ऐसी बात सुनकर परम दुर्जय वृत्रासुर रथपर सवार हो शीघ्र ही [अपने] पिताके घरसे निकल पड़ा। रणभेरियोंकी ध्वनि तथा महान् शंखनाद कराकर उस मदोन्मत्तने प्रस्थान किया॥ १८-१९॥

'इन्द्रको मारकर निष्कण्टक देव-राज्य अधिकृत कर लूँगा'—ऐसा सेवकोंसे कहते हुए वह नीतिवान् वृत्र निकल पड़ा॥ २०॥

ऐसा कहकर सैनिकोंके महान् घोषसे अमरावती (इन्द्रपुरी)-को भयभीत करता हुआ वह अपनी सेनाके साथ शीघ्रतापूर्वक निकला॥ २१॥

हे भारत! उसे आता हुआ जानकर भयभीत इन्द्र भी शीघ्रतापूर्वक सेनाकी तैयारी कराने लगे॥ २२॥

उन शत्रुदमन इन्द्रने शीघ्र ही सभी लोकपालोंको बुलाकर उन्हें युद्धकी तैयारी करनेके लिये प्रेरित किया, उस समय वे अत्यन्त कान्तिमान् लग रहे थे॥ २३॥

तत्पश्चात् गृध्रव्यूहका निर्माण करके इन्द्र युद्धके लिये डट गये; उसी समय शत्रुसेनाका विध्वंस कर डालनेवाला वृत्रासुर भी वहाँ वेगपूर्वक आ पहुँचा॥ २४॥

तब युद्धक्षेत्रमें अपने-अपने मनमें विजयकी इच्छा रखनेवाले इन्द्र तथा वृत्रासुरकी देव-दानव सेनाओंमें भीषण संग्राम होने लगा॥ २५॥

इस प्रकार परस्पर युद्धके उग्र और भयंकर हो जानेपर देवगण व्याकुल और दानव अत्यन्त प्रसन्न हो गये॥ २६॥

उस युद्धमें तोमर, भिन्दिपाल, तलवार, परशु और पट्टिश—इन अपने-अपने श्रेष्ठ आयुधोंसे देवता और दैत्य एक-दूसरेपर प्रहार कर रहे थे॥ २७॥

इस प्रकारके हो रहे रोमांचकारी और भयंकर संग्राममें क्रोधाभिभूत वृत्रासुरने अचानक इन्द्रको पकड़ लिया॥ २८॥

हे महाराज! वृत्रासुर इन्द्रको कवच-वस्त्र आदिसे रहित करके अपने मुँखमें डालकर स्थित हो गया और पूर्ववैरका स्मरण करते हुए वह अत्यन्त प्रसन्न हुआ॥ २९॥

वृत्रासुरके द्वारा इन्द्रको निगला गया देखकर देवता विस्मित हो गये और अत्यन्त दु:खी होकर 'हा इन्द्र! हा इन्द्र!' कहकर चिल्लाने लगे॥ ३०॥

जब देवताओंको यह ज्ञात हुआ कि इन्द्रको वृत्रने मुखमें रखकर छिपा लिया है तो वे अत्यन्त दु:खित

होकर बृहस्पतिके पास गये और उनसे दीन वाणीमें बोले— ॥ ३१ ॥

हे द्विजश्रेष्ठ! देवसेनासे सुरक्षित इन्द्रको वृत्रासुरने अपने मुखमें रख लिया है। अब हम क्या करें? आप हमारे परम गुरु हैं॥ ३२ ॥

इन्द्रके बिना हमलोग क्या करें, हम सब पराक्रमहीन हो गये हैं। हे विभो! इन्द्रकी मुक्तिके लिये आप शीघ्र ही अभिचार-क्रिया कीजिये॥ ३३ ॥

बृहस्पति बोले—हे देवताओ! क्या किया जाय? उसने इन्द्रको मुखमें रख लिया है, वृत्रासुरके द्वारा पीड़ित वे इन्द्र उस शत्रुके मुखमें भी जीवित हैं॥ ३४ ॥

व्यासजी बोले—इन्द्रको उस स्थितिमें प्राप्त देखकर चिन्तित देवताओंने भलीभाँति सोचकर उनकी मुक्तिके लिये शीघ्र ही एक उपाय किया॥ ३५ ॥

उन्होंने अत्यन्त शक्तिशालिनी और शत्रुनाशिनी जम्हाईका सृजन किया; इससे उसे जम्हाई आते ही उस वृत्रासुरका मुख खुल गया॥ ३६ ॥

तत्पश्चात् जम्हाई लेते हुए वृत्रासुरके मुखसे बल नामक दैत्यका नाश करनेवाले इन्द्र अपने अंगोंको संकुचित करके बाहर निकल आये॥ ३७ ॥

उसी समयसे संसारके सभी प्राणियोंके शरीरमें जम्हाई विद्यमान रहने लगी। इन्द्रको बाहर निकला हुआ देखकर सभी देवता हर्षित हो उठे॥ ३८ ॥

तब उन दोनोंमें तीनों लोकोंके लिये भयदायक, रोमांचकारी और भीषण युद्ध प्रारम्भ हो गया, जो दस हजार वर्षोंतक चला॥ ३९ ॥

युद्ध करनेके लिये संग्राममें एक ओर सभी देवता उपस्थित थे, तो दूसरी ओर त्वष्टाका बलशाली पुत्र वृत्रासुर डटा हुआ था॥ ४० ॥

वरदानके अहंकारसे उन्मत्त वृत्रासुरका उत्कर्ष जब रणमें प्रबल हो गया, तब उसके तेजसे पराक्रमहीन इन्द्र पराजित हो गये॥ ४१ ॥

उससे युद्धमें पराजय प्राप्त करके इन्द्रको बहुत व्यथा हुई और उन्हें पराजित देखकर देवगण भी विषादग्रस्त हो गये॥ ४२ ॥

तब इन्द्र आदि समस्त देवता युद्ध छोड़कर भाग गये और वृत्रासुरने शीघ्रतापूर्वक आकर अमरावतीपर अधिकार कर लिया॥ ४३ ॥

अब वह दानव समस्त देवोद्यानोंका बलपूर्वक उपभोग करने लगा। उस दैत्य वृत्रासुरके द्वारा गजश्रेष्ठ ऐरावत भी अधिकारमें कर लिया गया॥ ४४ ॥

हे राजन्! तत्पश्चात् उसने समस्त विमानोंको ग्रहण कर लिया और अश्वश्रेष्ठ उच्चैःश्रवाको भी अपने अधीन कर लिया॥ ४५ ॥

उसी प्रकार कामधेनु, कल्पवृक्ष, अप्सराओंका समूह तथा रत्न आदि जो कुछ था; वह सब उस त्वष्टापुत्र वृत्रने अपने अधिकारमें कर लिया॥ ४६ ॥

अब राज्यच्युत होकर सभी देवता पर्वतोंकी कन्दराओंमें रहकर अत्यन्त दुःख प्राप्त करने लगे। वे यज्ञभाग और देवसदन—दोनोंसे वंचित हो गये॥ ४७ ॥

वृत्रासुर देव-राज्य पाकर मदोन्मत्त हो गया। त्वष्टा भी अत्यन्त सुख प्राप्तकर पुत्रके साथ आनन्दपूर्वक रहने लगे॥ ४८ ॥

हे भारत! देवगण अपने कल्याणके लिये मुनियोंके साथ विचार-विमर्श करने लगे कि इस स्थितिके प्राप्त होनेपर अब हमें क्या करना चाहिये—ऐसा विचार करके भयमोहित वे देवगण इन्द्रके साथ कैलासपर्वतपर गये और वहाँ देवाधिदेव भगवान् शंकरको प्रणाम करके विनम्रतापूर्वक हाथ जोड़कर कहने लगे— ॥ ४९-५० ॥

हे देव! हे महादेव! हे कृपासागर! हे महेश्वर! वृत्रासुरसे पूर्णतः पराजित हम भयभीत देवताओंकी रक्षा कीजिये॥ ५१ ॥

हे देव! उस महाबलीने देवलोकपर अधिकार कर लिया है। हे शम्भो! हे शिव! अब हमें क्या करना चाहिये, आप हमें सही-सही बताइये॥ ५२ ॥

हे महेश्वर! हम राज्यभ्रष्ट क्या करें और कहाँ जायँ? हे ईश्वर! हम इस दुःखके विनाशके लिये कोई भी उपाय नहीं जान पा रहे हैं॥ ५३ ॥

हे भूतेश! हमारी सहायता कीजिये। हे कृपानिधान! हम सब बहुत दुःखी हैं। हे विभो! वरदानके प्रभावसे मदोन्मत्त वृत्रासुरका वध कीजिये॥ ५४ ॥

शिवजी बोले—ब्रह्माजीको आगे करके हमलोग

विष्णुलोक चल करके वहाँ उन श्रीहरिके पास जाकर उस वृत्रासुरके वधके उपायपर विचार करेंगे ॥ ५५ ॥

वे जनार्दन भगवान् विष्णु शक्तिशाली, छलकार्यमें निपुण, बलवान्, सबसे बुद्धिमान्, शरणदाता और दयाके सागर हैं ॥ ५६ ॥

उन देवदेवेशके बिना हमारा प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा, इसलिये सभी कार्योंकी सिद्धिके लिये हमें वहीं चलना चाहिये ॥ ५७ ॥

व्यासजी बोले—ऐसा विचारकर ब्रह्मा, शिव तथा इन्द्र आदि सभी देवता शरणदाता और भक्तवत्सल भगवान् विष्णुके लोक गये ॥ ५८ ॥

वैकुण्ठधाममें पहुँचकर वे देवता वेदोक्त पुरुषसूक्तसे उन परमेश्वर जगद्गुरु श्रीहरिकी स्तुति करने लगे ॥ ५९ ॥

तब भगवान् जगन्नाथ कमलापति विष्णु उनके सम्मुख उपस्थित हो गये और सभी देवताओंका सम्मान करके उनसे बोले— ॥ ६० ॥

हे लोकपालगण! आपलोग ब्रह्मा और शिवजीके साथ यहाँ क्यों आये हैं? हे श्रेष्ठ देवताओ! आप सभी अपने आगमनका कारण बतायें ॥ ६१ ॥

व्यासजी बोले—भगवान् विष्णुका यह वचन सुनकर भी देवगण उन रमापतिसे कुछ बोल न सके और वे चिन्तातुर होकर हाथ जोड़े खड़े ही रहे ॥ ६२ ॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत षष्ठ स्कन्धका 'ब्रह्माजीके नेतृत्वमें इन्द्रसहित देवताओंका विष्णुकी शरणमें जानेका वर्णन' नामक चौथा अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ४ ॥

पाँचवाँ अध्याय

भगवान् विष्णुकी प्रेरणासे देवताओंका भगवतीकी स्तुति करना और प्रसन्न होकर भगवतीका वरदान देना

व्यासजी बोले—हे राजन्! तब सभी तत्त्वोंके ज्ञाता माधव भगवान् विष्णु समस्त देवताओंको चिन्तासे व्याकुल तथा अत्यन्त प्रेमविह्वल देखकर कहने लगे ॥ १ ॥

विष्णु बोले—हे देवगण! आप सबने मौन धारण क्यों कर रखा है? आप सब अपने दुःखका सत्-असत् जो भी कारण हो बतायें, जिसे सुनकर मैं उसे दूर करनेका उपाय करूँगा ॥ २ ॥

देवता बोले—हे विभो! तीनों लोकोंमें कौन-सी वस्तु आपसे अज्ञात है, आप हमारा सारा कार्य [भली प्रकारसे] जानते हैं; तो क्यों बार-बार पूछ रहे हैं? ॥ ३ ॥

पूर्वकालमें आपने बलिको बाँध लिया था और इन्द्रको देवताओंका राजा बनाया था; आपने वामन-शरीर धारणकर तीनों लोकोंको अपने चरणोंसे नाप लिया था ॥ ४ ॥

हे विष्णो! आपने ही अमृत छीनकर दैत्योंका नाश किया था; आप सभी देवताओंकी समस्त विपत्तियोंको दूर करनेमें समर्थ हैं ॥ ५ ॥

विष्णु बोले—हे श्रेष्ठ देवताओ! आपलोग भयभीत न हों। मैं उस वृत्रासुरके वधका सुसंगत उपाय जानता हूँ, उसे मैं बताऊँगा, जिससे आपलोगोंको सुख होगा ॥ ६ ॥

अपनी बुद्धिसे, बलसे, धनसे या जिस किसी भी उपायसे मुझे आपलोगोंका हित अवश्य करना है ॥ ७ ॥

मित्रों और विशेषरूपसे शत्रुओंके प्रति [प्रयोगहेतु] तत्त्वदर्शियोंने साम, दान, दण्ड, भेद—ये चार उपाय बताये हैं ॥ ८ ॥

वृत्रासुरकी तपस्यासे प्रसन्न होकर ब्रह्माजीने इसे वरदान दिया है और उस वरदानके प्रभावसे यह दुर्जय हो गया है ॥ ९ ॥

त्वष्टाके द्वारा उत्पन्न किया गया यह वृत्रासुर समस्त प्राणियोंके लिये अजेय हो गया है। शत्रुओंके राज्यको जीत लेनेवाला वह अपनी शक्तिसे अधिक प्रबल हो गया है ॥ १० ॥

हे देवताओ! बिना सामनीतिके प्रयोगके वह वृत्रासुर देवताओंके लिये दुःसाध्य है, अतः पहले इसे प्रलोभन देकर वशमें करना चाहिये, तत्पश्चात् मार डालना चाहिये ॥ ११ ॥

हे गन्धर्वगण! जहाँ वह बलवान् वृत्रासुर रहता है, वहाँ तुमलोग जाओ और उसपर सामनीतिका प्रयोग करो; तभी उसपर विजय प्राप्त कर सकोगे॥ १२॥

वहाँ जाकर अनेक शपथें खाकर सन्धिके द्वारा उसे विश्वासमें ले करके और पुनः मित्रताकर बादमें उस प्रबल शत्रुको मार डालना चाहिये॥ १३॥

हे श्रेष्ठ देवगण! मैं अदृश्य रूपमें इन्द्रके श्रेष्ठ आयुध वज्रमें प्रवेश कर जाऊँगा और उनकी सहायता करूँगा॥ १४॥

हे देवताओ! अब आपलोग समयकी प्रतीक्षा करें, वृत्रासुरकी आयुके क्षीण होनेपर ही उसकी मृत्यु होगी, अन्य किसी भी प्रकारसे नहीं॥ १५॥

हे गन्धर्वगण! तुमलोग वेष बदलकर ऋषियोंके साथ उसके पास जाओ और वचनबद्धतापूर्वक इन्द्रके साथ उसकी मित्रता करा दो॥ १६॥

जिस प्रकारसे उसका विश्वास दृढ़ हो जाय, वैसा ही आप सबको करना चाहिये। मैं सुदृढ़ तथा आवरणयुक्त वज्रमें गुप्तरूपसे प्रवेश कर जाऊँगा॥ १७॥

जब वृत्रासुरको पूर्ण विश्वास हो जाय तभी इन्द्र उस शत्रुका वध करेंगे। उसके वधका अन्य कोई उपाय नहीं है। वे इन्द्र विश्वासघात करके मेरी सहायतासे वज्रद्वारा पीछेसे उस पापीको मार डालेंगे। इस दुष्ट शत्रुके साथ शठता करनेमें दोष नहीं है। अन्यथा वह बलवान् वीरधर्मसे नहीं मारा जा सकेगा। पूर्वकालमें मैंने भी वामनरूप धारणकर बलिको वंचित किया था और मोहिनीरूप धारणकर सभी दैत्योंको छला था॥ १८—२०१/२॥

हे देवताओ! अब आप सब लोग एक साथ देवी भगवती शिवाकी शरणमें जायँ और भावपूर्वक स्तोत्रों और मन्त्रोंसे उनकी स्तुति करें। वे भगवती योगमाया आपलोगोंकी सहायता करेंगी॥ २१-२२॥

हम सभी उन सात्त्विकी, परा प्रकृति, सिद्धिदात्री, कामनास्वरूपिणी, भक्तोंकी कामना पूर्ण करनेवाली और दुराचारियोंके लिये दुर्लभ देवीकी सदा वन्दना करते हैं॥ २३॥

इन्द्र भी उनकी आराधना करके युद्धमें शत्रुको मार डालेंगे। वे मोहिनी महामाया उस दानव वृत्रासुरको मोहित कर देंगी। तब मायासे मोहित वृत्रासुर सुगमतापूर्वक मारा जा सकेगा। उन पराम्बाके प्रसन्न होनेपर सब कुछ साध्य हो जायगा। अन्यथा किसीकी भी कामनाकी पूर्ति नहीं होगी। वे भगवती सबकी अन्तर्यामिस्वरूपिणी और सभी कारणोंकी भी कारण हैं। इसलिये हे श्रेष्ठ देवगण! शत्रुके विनाशके लिये सात्त्विक भावोंसे युक्त होकर उन प्रकृतिस्वरूपा जगज्जननीका परम आदरपूर्वक भजन कीजिये॥ २४—२७॥

पूर्वकालमें मैंने भी पाँच हजार वर्षोंतक अत्यन्त भीषण युद्ध करके मधु-कैटभका वध किया था। उस समय मैंने उन पराप्रकृतिकी स्तुति की थी, तब वे अत्यन्त प्रसन्न हो गयी थीं। तत्पश्चात् उनके द्वारा मोहित दोनों दैत्योंको मैंने छलपूर्वक मार डाला था। मोहित किये गये विशाल भुजाओंवाले वे दोनों दानव अत्यन्त मदोन्मत्त थे। इसीलिये आपलोग भी उसी प्रकार भावपूर्वक उन पराप्रकृतिका भजन कीजिये। हे देवगण! वे सब प्रकारसे कार्यकी सिद्धि करेंगी॥ २८—३०१/२॥

इस प्रकार भगवान् विष्णुसे परामर्श प्राप्त करके वे मन्दार वृक्षोंसे सुशोभित सुमेरुपर्वतके शिखरपर चले गये। वे देवता वहाँ एकान्तमें बैठकर ध्यान, जप और तप करके जगत्का सृजन-पालन-संहार करनेवाली, भक्तोंके लिये कामधेनुस्वरूपा एवं संसारके क्लेशोंका नाश करनेवाली पराम्बा भगवतीकी इस प्रकार स्तुति करने लगे॥ ३१—३३॥

देवता बोले—हे देवि! हे दीनोंके कष्ट दूर करनेवाली! हे परमार्थतत्त्वस्वरूपिणि! हमपर प्रसन्न हों, वृत्रासुरके द्वारा सताये गये, युद्धमें अत्यन्त पीड़ित किये गये तथा आपके चरणकमलकी शरणमें सदासे पड़े हुए हम देवताओंकी रक्षा कीजिये॥ ३४॥

हे माता! आप समस्त विश्वकी जननी हैं, शत्रुद्वारा उपस्थित किये गये इस संकटमें पड़े हुए हम सबका आप पुत्रोंके समान परिपालन कीजिये। आपसे तीनों लोकोंमें कुछ भी अज्ञात नहीं है, तो आप असुरोंके द्वारा पीड़ित देवताओंकी उपेक्षा क्यों कर रही हैं?॥ ३५॥

आपने ही इस सम्पूर्ण त्रिलोकीकी रचना की है। ब्रह्मा, विष्णु और शिव आपके ही संकल्पसे उत्पन्न हुए

हैं। आपके भृकुटि-विलासमात्रसे वे [सृजन, पालन तथा संहार] समस्त कार्य करते हैं और यथेच्छ विहार करते हैं; वे भी स्वतन्त्र नहीं हैं॥ ३६॥

हे देवि! माता प्रत्यक्ष अपराधवाले अपने दुःखी पुत्रोंकी भी कष्टसे सब प्रकारसे रक्षा करती है—यह रीति आपके ही द्वारा निर्मित है; तब हे करुणरसकी समुद्रस्वरूपिणि! आप अपने चरणोंकी शरणमें पड़े हुए हम निरपराध देवताओंका पालन क्यों नहीं कर रही हैं?॥ ३७॥

हे जननि! यदि आप सोचती हों कि मेरे चरणकमलोंकी आराधनासे राज्य प्राप्त करके देवता मेरी भक्ति छोड़कर वैभव-सुखोंके भोगमें आसक्त हो जायँगे और इन्हें मेरे कृपाकटाक्षकी आवश्यकता नहीं रह जायगी तो ऐसा सामान्यतः होता ही है, फिर भी जन्म देनेवाली माता अपने पुत्रके प्रति ऐसी भावना रखे—यह रीति कहीं देखी नहीं गयी॥ ३८॥

हे जननि! आपका भजन त्यागकर हमलोग जो भोगमें निमग्न हैं—इसमें हमारे चित्तमें अपना दोष नहीं प्रतीत होता; क्योंकि मोहकी रचना आपने ही की है और वह हमलोगोंको मोहित कर देता है। ऐसी परिस्थितिमें हे करुणामय स्वभाववाली! आप हमपर दया क्यों नहीं करतीं?॥ ३९॥

हे जननि! पूर्वकालमें आपने हमलोगोंके कल्याणार्थ सभीके लिये भयकारी महिषरूप धारण करनेवाले बलवान् दैत्यराजका वध किया था। हे माता! भय प्रदान करनेवाले वृत्रासुरका भी वध आप क्यों नहीं करतीं?॥ ४०॥

शुम्भ और उसके बलवान् भाई निशुम्भ—उन दोनों भाइयोंको आपने मार डाला था और उनके अनुचरोंका भी वध कर दिया था। उसी प्रकार हे दयासे आर्द्रहृदयवाली! अत्यन्त बलशाली, उन्मत्त तथा दुष्ट वृत्रासुरको भी मार डालिये। आप इसे विमोहित कर दें, जिससे यह भी उनकी तरह न हो सके। हे माता! असुरोंके द्वारा अत्यधिक पीड़ित किये गये तथा भयसे व्याकुल हम देवताओंका अब आप ही पालन कीजिये; क्योंकि तीनों लोकोंमें ऐसा कोई नहीं है जो देवताओंका दुःख दूर कर सके और अपनी शक्तिसे सम्पूर्ण कष्टके समूहको नष्ट कर सके॥ ४१-४२॥

यदि वृत्रासुरपर आपकी अत्यधिक दया हो तो भी आप हमलोगोंके लिये संतापकारक इस दुष्टको शीघ्र ही मार डालिये। हे भवानि! अपने बाणोंसे इसको पवित्र करती हुई आप पापसे इसका उद्धार कर दीजिये, अन्यथा यह दुष्टबुद्धि वृत्रासुर नरक प्राप्त करेगा॥ ४३॥

जिन दानवोंको युद्धमें आपने बाणोंद्वारा मारकर पवित्र बना दिया, वे नन्दनवनको प्राप्त हो गये। हे दयार्द्र स्वभाववाली! क्या आपने नरकमें गिरनेके भयसे उन शत्रुओंकी रक्षा नहीं की? तो फिर आप वृत्रासुरको क्यों नहीं मारती हैं॥ ४४॥

हम यह जानते हैं कि वह आपका सेवक नहीं, शत्रु ही है; क्योंकि वह दुष्ट पापबुद्धि हम सबको सदैव सताया करता है। आपके चरणकमलोंकी भक्तिमें रत हम देवताओंको पीड़ित करनेवाला वह (वृत्रासुर) आपका भक्त कैसे हो सकता है?॥ ४५॥

हे जननि! हे अम्ब! हम आज आपकी पूजा कैसे करें; क्योंकि पुष्पादि [पूजोपचार] तो आपके द्वारा ही बनाये गये हैं। मन्त्र, हमलोग तथा अन्य सब कुछ आपकी पराशक्तिके ही रूप हैं, अतः हे भवानि! हम केवल आपके चरणोंकी शरण ले सकते हैं॥ ४६॥

वे ही मनुष्य धन्य हैं, जो भवसागरसे पार उतारनेवाले पोतसदृश आपके चरणकमलका निरन्तर भक्तिभावसे भजन करते हैं और राग, मोह आदि विकारोंसे रहित मोक्षकामी योगी भी मनसे जिसका निरन्तर स्मरण करते हैं॥ ४७॥

समस्त वेदोंमें पारंगत वे यज्ञकर्ता भी निश्चय ही धन्य हैं, जो हवनके समय देवताओंको तृप्ति देनेवाली स्वाहा और पितरोंको तृप्ति देनेवाली स्वधाके रूपमें आपका निरन्तर स्मरण करते हैं॥ ४८॥

आप ही मेधा हैं, आप ही प्रभा हैं, आप ही कान्ति हैं, आप ही शान्ति हैं और मनुष्योंका महान् मनोरथ पूर्ण करनेवाली बुद्धि भी आप ही हैं। समस्त ऐश्वर्यकी रचना करके आप इस त्रिलोकीमें कृपा करके अपनी आराधना करनेवालेको वैभव प्रदान करती रहती हैं॥ ४९॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार देवताओंके स्तुति करनेपर वे भगवती प्रकट हो गयीं। उन्होंने सुन्दर रूप धारण कर रखा था, वे कोमल विग्रहवाली थीं और समस्त आभूषणोंसे

सुसज्जित थीं ॥ ५० ॥

वे पाश, अंकुश, वर और अभयमुद्रासे सुशोभित चार भुजाओंसे युक्त थीं, उनकी कमरमें बँधी हुई करधनीके घुँघरू बज रहे थे ॥ ५१ ॥

उन कान्तिमयी भगवतीकी ध्वनि कोयलके समान थी, उनके हाथोंके कंकण और चरणोंके नूपुर बज रहे थे। उनके मस्तकपर अर्धचन्द्र और रत्नमुकुट सुशोभित हो रहा था ॥ ५२ ॥

वे मन्द-मन्द मुसकरा रही थीं, उनका मुख कमलके समान सुशोभित हो रहा था, वे तीन नेत्रोंसे विभूषित थीं तथा पारिजातके पुष्प-नालकी भाँति उनके शरीरकी नील-कान्ति थी ॥ ५३ ॥

वे लाल रंगके वस्त्र धारण किये हुए थीं और उनके शरीरपर रक्त चन्दन अनुलिप्त था। करुणारसकी सागर वे भगवती प्रसन्न मुख-मण्डलसे शोभा पा रही थीं। वे समस्त शृंगार-वेषसे विभूषित थीं। वे देवी द्वैतभावके लिये अरणी-स्वरूपा, परा, सब कुछ जाननेवाली, सबकी रचना करनेवाली, सबकी अधिष्ठानस्वरूपा, सभी वेदान्तोंद्वारा प्रतिपादित और सच्चिदानन्दरूपिणी हैं। उन देवीको अपने सम्मुख स्थित देखकर देवताओंने उन्हें प्रणाम किया। तब उन प्रणत देवताओंसे भगवती अम्बिकाने कहा—आपलोग मुझे अपना कार्य बतायें ॥ ५४—५६ $^{1}/_{2}$ ॥

देवता बोले—आप देवताओंके लिये अत्यन्त दुःखदायी इस शत्रु वृत्रासुरको विमोहित कर दीजिये। उसे आप ऐसा विमोहित कर दें, जिससे वह देवताओंपर विश्वास करने लगे और हमारे आयुधमें इतनी शक्ति भर दीजिये, जिससे यह शत्रु मारा जा सके ॥ ५७-५८ ॥

व्यासजी बोले—तब 'तथास्तु'—ऐसा कहकर भगवती वहीं अन्तर्धान हो गयीं और देवता भी प्रसन्न होकर अपने-अपने भवनोंको चले गये ॥ ५९ ॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत षष्ठ स्कन्धका 'देवीकी समाराधनाके लिये देवताओंद्वारा की गयी स्तुतिका वर्णन' नामक पाँचवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ५ ॥

छठा अध्याय

भगवान् विष्णुका इन्द्रको वृत्रासुरसे सन्धिका परामर्श देना, ऋषियोंकी मध्यस्थतासे इन्द्र और वृत्रासुरमें सन्धि, इन्द्रद्वारा छलपूर्वक वृत्रासुरका वध

व्यासजी बोले—इस प्रकार वरप्राप्त उन देवता और तपस्वी ऋषिगणोंने (परस्पर मन्त्रणा करके वृत्रासुरके उत्तम आश्रमके लिये प्रस्थान किया) वहाँ तेजसे प्रकाशमान वृत्रासुरको देखा, जो तीनों लोकोंको भस्मसात् करने और देवताओंको निगल जानेके लिये उद्यत प्रतीत होता था। ऋषियोंने वृत्रासुरके समीप जाकर देवताओंकी कार्य-सिद्धिके लिये उससे सामनीतिपूर्ण तथा रसमय प्रिय वचन कहा ॥ १-२ $^{1}/_{2}$ ॥

ऋषि बोले—सब लोकोंके लिये भयंकर हे महाभाग वृत्रासुर! आपने इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको व्याप्त कर लिया है, परंतु इन्द्रके साथ आपका वैर आपके सुखको नष्ट करनेवाला है। यह आप दोनोंके लिये दुःखद और चिन्ता बढ़ानेका परम कारण है। न आप सुखसे सो पाते हैं, न ही इन्द्र सन्तुष्ट होकर सोते हैं; क्योंकि आप दोनोंको शत्रु-जन्य भय बना रहता है। आप दोनोंको युद्ध करते हुए भी बहुत समय व्यतीत हो गया है; इससे देवताओं, राक्षसों तथा मनुष्योंसहित समस्त प्रजाको कष्ट हो रहा है ॥ ३—६ $^{1}/_{2}$ ॥

इस संसारमें सुख ही ग्राह्य है और दुःख सर्वथा त्याज्य है—यही परम्परा है। वैर करनेवालेको सुख नहीं प्राप्त होता, यह निश्चित सिद्धान्त है। इसलिये युद्धप्रेमी वीरोंकी विद्वान् लोग प्रशंसा नहीं करते। शृंगाररसके प्रेमी युद्धको इन्द्रिय सुखको नष्ट करनेवाला मानते हैं। पुष्पोंसे भी युद्ध नहीं करना चाहिये, फिर तीक्ष्ण बाणोंकी तो बात ही क्या? ॥ ७—९ ॥

युद्धमें विजय ही हो—यह सन्देहास्पद है, परंतु उसमें बाणोंसे शरीरको पीड़ा प्राप्त होना निश्चित है। यह समस्त

विश्व दैवके अधीन है, उसी प्रकार जय-पराजय भी उसीके अधीन हैं। अतः इन्हें दैवाधीन जानकर युद्ध कभी नहीं करना चाहिये। समयपर स्नान, भोजन, शय्यापर शयन और पत्नीद्वारा सेवा ही संसारमें सुखके साधन हैं। बाणवर्षासे भयंकर, खड्ग-प्रहारसे अत्यन्त रौद्र तथा शत्रुको सुख प्रदान करनेवाले संग्राममें युद्ध करनेसे क्या सुख प्राप्त हो सकता है?॥ १०—१२१/२ ॥

ऐसा स्पष्ट कथन है कि युद्धमें मरनेसे स्वर्ग-सुखकी प्राप्ति होती है—यह तो प्रलोभन और प्रेरणा देनेवाला तथा निरर्थक वचन है। ऐसा कौन मन्दबुद्धि है जो शरीरको अस्त्र-शस्त्रोंसे घायल कराकर सियार और कौओंसे नोचवाकर स्वर्गसुखकी प्राप्तिकी कामना करेगा!॥ १३-१४१/२ ॥

हे वृत्र! इन्द्रके साथ तुम्हारी स्थायी मैत्री हो जाय, जिससे तुम्हें और इन्द्र—दोनोंको निरन्तर सुखकी प्राप्ति हो। आप दोनोंका वैर शान्त हो जानेसे हम सब तपस्वी और गन्धर्वगण भी अपने-अपने आश्रमोंमें सुखपूर्वक रह सकेंगे। हे धीर! आप दोनोंके दिन-रातके युद्धमें हम सभी मुनियों, गन्धर्वों, किन्नरों और मनुष्योंको कष्ट प्राप्त होता है। सभी लोगोंको शान्ति प्राप्त हो सके—इस कामनासे हम सब आप दोनोंमें मैत्री कराना चाहते हैं॥ १५—१८॥

हे वृत्र! मुनिगण, तुम्हें और इन्द्रको सुख प्राप्त हो। हमलोग तुम दोनोंकी मित्रता करानेमें मध्यस्थ बनेंगे। हम शपथ कराकर आप दोनोंको एक-दूसरेका प्रिय मित्र बना देंगे। आप जैसा कहेंगे, वैसे ही इन्द्र भी आपके सम्मुख शपथ लेकर आपके मनको प्रेमसे परिपूर्ण कर देंगे। सत्यके आधारपर ही यह पृथ्वी स्थित है, सत्यसे ही भगवान् सूर्य नित्य तपते हैं, सत्यसे ही समयके अनुसार वायु बहती है और सत्यके कारण ही समुद्र भी अपनी मर्यादाका परित्याग नहीं करता। इसलिये सत्यके आधारपर ही आज आप दोनोंमें मित्रता हो जाय, जिससे आपलोग सुखपूर्वक साथ-साथ शयन, क्रीडा, जलकेलि कर सकें और बैठ सकें। इसलिये आप दोनोंको एकत्रित होकर अवश्य ही मित्रता कर लेनी चाहिये। १९—२३१/२ ॥

व्यासजी बोले—उन महर्षियोंका वचन सुनकर अत्यन्त बुद्धिमान् वृत्रासुरने कहा—हे भगवन्! आप सभी तपस्वीगण मेरे मान्य हैं। आप मुनिगण कभी असत्य भाषण नहीं करते। आपलोग सदाचारी तथा अति शान्त स्वभाववाले हैं और छल करना नहीं जानते। किंतु वैरी, मूर्ख, जड़, कामी, कलंकित और निर्लज्जसे बुद्धिमान्को मित्रता नहीं करनी चाहिये। यह (इन्द्र) निर्लज्ज, दुराचारी, ब्राह्मणघाती, लम्पट और मूर्ख है—इस प्रकारके व्यक्तिका विश्वास नहीं करना चाहिये। आप सभी लोग कुशल हैं, किंतु द्रोह-बुद्धिवाले कभी नहीं हैं। आप सब शान्तचित्त होनेके कारण अतिवादियोंके मनकी बात नहीं जानते॥ २४—२८१/२ ॥

मुनि बोले—प्रत्येक प्राणी अपने किये हुए शुभाशुभ कर्मोंका फल भोगता है। जिसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी हो, वह द्रोह करके भी क्या शान्ति प्राप्त कर सकता है? विश्वासघात करनेवाले निश्चय ही नरकमें जाते हैं। विश्वासघाती निश्चितरूपसे दुःख प्राप्त करता है। ब्राह्मणकी हत्या करनेवालों और मद्यपान करनेवालोंके लिये तो प्रायश्चित्त है, परंतु विश्वासघातियों और मित्रद्रोहियोंके लिये कोई प्रायश्चित्त नहीं है। अतः हे सर्वज्ञ! आपने मनमें जो शर्त निश्चय कर रखी हो, उसे बताइये; जिससे उस शर्तके अनुसार आज ही आप दोनोंमें सन्धि हो जाय॥ २९—३२१/२ ॥

वृत्रासुर बोला—हे महाभाग! सभी देवताओंसहित इन्द्र न शुष्क या गीली वस्तुसे, न पत्थरसे, न काष्ठसे, न वज्रसे, न दिनमें और न रातमें मेरा वध कर सकें। हे विप्रेन्द्रो! इसी शर्तपर मैं इन्द्रसे सन्धि करना चाहता हूँ, अन्यथा नहीं॥ ३३-३४१/२ ॥

व्यासजी बोले—ऋषियोंने उससे आदरपूर्वक कहा—'ठीक है' और तत्पश्चात् देवराज इन्द्रको वहाँ बुलाकर उन्हें वह शर्त सुना दी। इन्द्रने भी मुनियोंकी उपस्थितिमें अग्निको साक्षी करके शपथें लीं और वे सन्तापसे मुक्त हो गये। वृत्रासुर भी उनकी बातोंसे विश्वासमें आ गया और इन्द्रके साथ मित्रकी भाँति व्यवहारपरायण हो गया॥ ३५—३७१/२ ॥

वे दोनों कभी नन्दनवनमें, कभी गन्धमादनपर्वतपर और कभी समुद्रके तटपर आनन्दपूर्वक विचरण करते थे। इस प्रकार सन्धि हो जानेपर वृत्रासुर बहुत प्रसन्न रहता था। लेकिन वधकी इच्छावाले इन्द्र उसके वधके उपाय सोचा

करते थे। इन्द्र उसकी कमजोरी ढूँढ़नेके लिये सदा उद्विग्न रहते थे॥ ३८—४०॥

इन्द्रके इस प्रकार विचार करते हुए कुछ समय बीत गया। वृत्रासुरको अत्यन्त क्रूर इन्द्रपर अत्यधिक विश्वास हो गया। इस प्रकार सन्धिके कुछ वर्ष बीत जानेपर इन्द्रने मन-ही-मन वृत्रासुरके मरणका उपाय सोच लिया॥ ४१-४२॥

एक बार त्वष्टाने इन्द्रपर बहुत अधिक विश्वास करनेवाले पुत्रसे कहा—हे पुत्र वृत्रासुर! हे महाभाग! मेरी हितकर बात सुनो, जिसके साथ शत्रुता हो चुकी हो, उसका विश्वास कभी नहीं करना चाहिये। इन्द्र तुम्हारा शत्रु है, वह दूसरोंके द्वारा तुम्हारे गुणोंमें सदा दोष ढूँढ़ा करता है॥ ४३-४४॥

वह सदा लोभसे उन्मत्त रहनेवाला, सबसे द्वेष रखनेवाला, दूसरोंका दुःख देखकर सुखी रहनेवाला, परस्त्रीगामी, पापबुद्धि, कपटी, छिद्रान्वेषी, दूसरोंसे द्रोह करनेवाला, मायावी और अहंकारी है, जिसने कि एक बार माताके उदरमें प्रवेश करके उसके गर्भको सात भागोंमें काट डाला। तब उन्हें रोते देखकर उस निर्दयीने उनके भी पृथक्-पृथक् सात भाग कर दिये।* इसलिये हे पुत्र! उसपर किसी प्रकार भी विश्वास नहीं करना चाहिये। हे पुत्र! पाप करनेवालेको दुबारा पाप करनेमें क्या लज्जा!॥ ४५—४७१/२॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार पिताद्वारा कल्याणकारी वचनोंसे समझाये जानेपर भी आसन्न-मृत्यु वृत्रासुरको कुछ भी चेत नहीं हुआ॥ ४८१/२॥

एक दिन उन्होंने (इन्द्रने) उस महान् दैत्यको समुद्रके तटपर देखा। उस समय संध्याकालका अत्यन्त भयंकर मुहूर्त उपस्थित था। तब इन्द्रने महात्मा मुनियोंद्वारा निर्धारित शर्त—वरदानपर यह विचार करके कि यह भयंकर संध्याकाल है, इस समय न दिन है, न रात है, अतः मुझे आज ही इसे अपनी शक्तिसे मार डालना चाहिये; इसमें सन्देह नहीं है॥ ४९—५१॥

यहाँ एकान्त है और यह अकेला है तथा समय भी अनुकूल है—ऐसा विचारकर उन्होंने अपने मनमें अविनाशी भगवान् श्रीहरिका स्मरण किया। [स्मरण करते ही] पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु वहाँ अदृश्यरूपसे आ गये और वे प्रभु श्रीहरि इन्द्रके वज्रमें प्रविष्ट होकर विराजमान हो गये॥ ५२-५३॥

तब इन्द्र वृत्रासुरको मारनेकी युक्ति सोचने लगे कि सभी देवताओं तथा दानवोंसे सर्वथा अजेय इस शत्रुको युद्धमें कैसे मारूँ? यदि छल करके इस महाबलीको आज नहीं मारता तो इस शत्रुके जीवित रहते किसी भी प्रकार कल्याण नहीं है। इन्द्र ऐसा विचार कर ही रहे थे तभी उन्होंने समुद्रमें पर्वतके समान जलफेनको देखा॥ ५४—५६॥

यह न सूखा है, न गीला है और यह न तो कोई शस्त्र है, [ऐसा विचारकर] इन्द्रने उस समुद्रफेनको लीलापूर्वक उठा लिया॥ ५७॥

तदनन्तर उन्होंने परम भक्तिपूर्वक, पराशक्ति जगदम्बाका स्मरण किया, तब स्मरण करते ही देवीने अपना अंश उस फेनमें स्थापित कर दिया॥ ५८॥

इन्द्रने भगवान् श्रीहरिसे युक्त वज्रको उस फेनसे आवृत कर दिया और उस फेनसे आवृत वज्रको वृत्रासुरके ऊपर फेंका॥ ५९॥

उस वज्रके अचानक प्रहारसे वह पर्वतकी भाँति गिर पड़ा। तब उसके मर जानेपर इन्द्र अत्यन्त प्रसन्नचित्त हो उठे और ऋषिगण विविध स्तोत्रोंसे देवराज इन्द्रकी स्तुति करने लगे। उस शत्रुके मारे जानेसे प्रसन्नचित्त इन्द्रने देवताओंके साथ उन भगवतीकी पूजा की तथा विविध स्तोत्रोंसे उन्हें प्रसन्न किया, जिनकी कृपासे शत्रु मारा गया॥ ६०—६२॥

तत्पश्चात् इन्द्रने देवोद्यान नन्दनवनमें पराशक्ति भगवतीका मन्दिर बनवाया और उसमें पद्मराग मणियोंसे निर्मित मूर्तिकी स्थापना की और सभी देवता भी तीनों समय उनकी महती पूजा करने लगे; तभीसे श्रीदेवी ही उन देवताओंकी कुलदेवी हो गयीं॥ ६३-६४॥

तब महापराक्रमी और देवताओंके लिये भयंकर वृत्रके मारे जानेपर इन्द्रने तीनों लोकोंमें श्रेष्ठ भगवान् विष्णुकी पूजा की। उस वृत्रासुरके मर जानेपर कल्याणकारी वायु बहने लगी तथा देवता, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और

* वे ही उनचास मरुद्गण बने।

किन्नरगण हर्षित हो उठे॥ ६५-६६॥

इस प्रकार भगवती पराशक्तिके समुद्रफेनसे संयुक्त होने और उनके द्वारा ही विमोहित किये जानेके कारण वृत्रासुर सहसा इन्द्रके द्वारा मारा गया। इसलिये वे भगवती देवी संसारमें 'वृत्रनिहन्त्री' इस नामसे विख्यात हुईं और वह वृत्रासुर चूँकि प्रकटरूपसे इन्द्रके द्वारा मारा गया था, इसलिये उसे इन्द्रके द्वारा मारा गया, ऐसा कहा जाता है॥ ६७-६८॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत षष्ठ स्कन्धका 'छलपूर्वक इन्द्रका फेनद्वारा पराशक्तिका स्मरण करते हुए वृत्रहनन-वर्णन' नामक छठा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ६ ॥

सातवाँ अध्याय

त्वष्टाका वृत्रासुरकी पारलौकिक क्रिया करके इन्द्रको शाप देना, इन्द्रको ब्रह्महत्या लगना, नहुषका स्वर्गाधिपति बनना और इन्द्राणीपर आसक्त होना

व्यासजी बोले—इस प्रकार उसे गिरा हुआ देखकर मन-ही-मन हत्याके भयसे सशंकित भगवान् विष्णु वैकुण्ठलोकको चले गये॥ १॥

तत्पश्चात् इन्द्र भी भयभीत होकर इन्द्रपुरीको चल दिये। उस शत्रु (वृत्रासुर)-के मारे जानेपर मुनिगण भी भयग्रस्त हो गये कि हमने छलपूर्ण यह कैसा पापकृत्य कर डाला। इन्द्रका साथ देनेसे हमारा 'मुनि' नाम व्यर्थ हो गया॥ २-३॥

हमारी ही बातोंसे वृत्रासुरको विश्वास आया; विश्वासघातीके संगसे हम सब भी विश्वासघाती हो गये॥ ४॥

पापकी जड़ और अनर्थकारी इस ममताको धिक्कार है, जिसके कारण हमलोगोंने छलपूर्वक शपथ ली और उस असुर (वृत्रासुर)-को धोखा दिया॥ ५॥

पाप करनेका परामर्श देनेवाला, पाप करनेके लिये बुद्धि देनेवाला, पापकी प्रेरणा देनेवाला तथा पाप करनेवालोंका पक्ष लेनेवाला भी निश्चय ही पापकर्ताके समान पापभाजन होता है॥ ६॥

वज्रमें प्रविष्ट होकर वृत्रकी हत्या करनेमें सत्त्वगुणके मूर्तरूप भगवान् विष्णुने इन्द्रकी सहायता की और उसे मारा, अतः उन्होंने भी पाप किया॥ ७॥

स्वार्थपरायण प्राणी पापसे भयभीत नहीं होता। विष्णुने इन्द्रका साथ देकर सर्वथा दुष्कृत कर्म किया॥ ८॥

चार पदार्थों (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष)-मेंसे दो ही रह गये हैं और दो समाप्त हो गये हैं। उनमें भी प्रथम पदार्थ धर्म और चतुर्थ पदार्थ मोक्ष दोनों त्रिलोकमें दुर्लभ ही हो गये हैं॥ ९॥

अर्थ और काम ही सबके प्रिय और प्रशस्त माने गये हैं। धर्म और अधर्मकी विवेचना—यह बड़े लोगोंका वाचिक दम्भमात्र ही रह गया है॥ १०॥

इस प्रकार मुनिगण भी बार-बार मनमें सन्ताप करके उदासमनसे हतोत्साह होकर अपने-अपने आश्रमोंको चले गये॥ ११॥

हे भारत! उधर अपने पुत्रको इन्द्रद्वारा मारा गया सुनकर त्वष्टा दुःखसे सन्तप्त होकर अत्यन्त दुःखित हो रोने लगे; उन्हें इससे बहुत वेदना हुई॥ १२॥

तदनन्तर जहाँ वह (वृत्र) गिरा पड़ा था, वहाँ जाकर उसे उस स्थितिमें देखकर त्वष्टाने विधिपूर्वक उसका पारलौकिक संस्कार कराया॥ १३॥

तत्पश्चात् स्नान करके, जलाञ्जलि देकर उसका और्ध्वदैहिक कर्म सम्पन्न करनेके पश्चात् उन शोकसन्तप्त त्वष्टाने पापी और मित्रघाती इन्द्रको इस प्रकार शाप दे दिया कि जिस प्रकार शपथोंसे प्रलोभितकर इन्द्रने मेरे पुत्रको मार डाला है, उसी प्रकार वह भी विधाताद्वारा दिये हुए महान् दुःख प्राप्त करे॥ १४—१५॥

इस प्रकार देवराज इन्द्रको शाप देकर सन्तप्त त्वष्टा सुमेरुपर्वतके शिखरका आश्रय लेकर अत्यन्त कठोर तपस्या करने लगे॥ १६॥

जनमेजय बोले—हे पितामह! वृत्रासुरको मारनेके बाद इन्द्रकी क्या दशा हुई? उन्हें बादमें सुख मिला या

दुःख, इसे मुझे बताइये॥ १७॥

व्यासजी बोले—हे महाभाग! तुम क्या पूछ रहे हो, [इस विषयमें] तुम्हें क्या सन्देह है? किये गये शुभ-अशुभ कर्मका फल तो अवश्य ही भोगना पड़ता है। देवता, राक्षस और मनुष्यसहित बलवान् या दुर्बल कोई भी हो—सभीको अपने द्वारा किये गये अत्यन्त अल्प या अधिक कर्मका फल सर्वथा भोगना ही पड़ता है॥ १८-१९॥

भगवान् विष्णुने वृत्रघाती इन्द्रको इस प्रकारकी मति प्रदान की थी। वे विष्णु उनके वज्रमें प्रविष्ट हुए थे तथा उनके सहायक बने थे; परंतु विपत्तिमें उन्होंने किसी भी तरह सहायता नहीं की। हे राजन्! इस संसारमें अच्छे समयमें सभी लोग अपने बन जाते हैं, किंतु दैवके प्रतिकूल होनेपर कोई भी सहायक नहीं होता। पिता, माता, पत्नी, सहोदर भाई, सेवक और औरस पुत्र—कोई भी दैवके प्रतिकूल हो जानेपर सहायता नहीं करता। पाप या पुण्य करनेवाला ही उसका भागी होता है॥ २०—२३१/२॥

वृत्रके मारे जानेपर अन्य सभी लोग चले गये; इन्द्र तेजहीन हो गये। सभी देवता उसकी निन्दा करने लगे और 'यह ब्रह्महत्यारा है'—ऐसा मन्द स्वरमें कहने लगे। कौन ऐसा होगा जो शपथ खाकर और वचन देकर अत्यन्त विश्वासमें आये हुए तथा मित्रताको प्राप्त मुनिको मारनेकी इच्छा करेगा! उसकी यह बात देवताओंकी सभामें, देवोद्यानमें तथा गन्धर्वोंके समाजमें सर्वत्र फैल गयी। हत्या करनेकी इच्छावाले इन्द्रने आज यह कैसा दुष्कृत कर्म कर डाला! मुनियोंके द्वारा विश्वास दिलाये गये वृत्रासुरको छलपूर्वक मार करके (मानो) इन्द्रने वेदोंकी प्रामाणिकताका त्यागकर सौगतोंका मत स्वीकार कर लिया। इन्द्रने छल करके अत्यन्त साहससे शत्रुको मार डाला। वचन देकर भी जिस प्रकार [छलपूर्वक] यह वृत्रासुर मारा गया, वैसा विपरीत आचरण इन्द्र और विष्णुके अतिरिक्त कौन होगा, जो कर सकता है! इस प्रकारकी कथाएँ तथा और भी बातें लोगोंमें व्यापक रूपसे होने लगीं॥ २४—३०॥

इन्द्र भी अपनी कीर्ति नष्ट करनेवाली तरह-तरहकी बातें सुनते रहे। संसारमें जिसकी कीर्ति नष्ट हो गयी, उसके कलुषित जीवनको धिक्कार है। रास्तेमें जाते हुए ऐसे व्यक्तिको देखकर शत्रु हँस पड़ता है। राजर्षि इन्द्रद्युम्नने कोई पाप नहीं किया था फिर भी कीर्ति नष्ट हो जानेसे वे स्वर्गसे गिर गये थे; तब पाप करनेवाला कैसे नहीं गिरेगा? राजा ययातिका बहुत थोड़ेसे अपराधपर पतन हो गया था। इसी प्रकार एक राजाको अठारह युगोंतक केकड़ेकी योनिमें रहना पड़ा था। भृगुकी पत्नीका मस्तक काटनेके कारण अच्युत भगवान् श्रीहरिको ब्रह्मशापसे मकर आदि रूपोंमें पशुयोनिमें जन्म लेना पड़ा। विष्णुको भी वामन होकर याचनाके लिये बलिके घर जाना पड़ा; तब यदि कुकर्मी मनुष्य दुःख पाये तो क्या आश्चर्य है! हे भारत! श्रीरामचन्द्रजीको भी भृगुके शापसे वनवासकालमें सीतासे वियोगका महान् कष्ट उठाना पड़ा। उसी प्रकार इन्द्रको भी ब्रह्महत्याके कारण महान् भय प्राप्त हुआ। समस्त सिद्धियोंसे युक्त राजप्रासादमें भी उन्हें सुख नहीं प्राप्त होता था। उन्हें दीर्घ श्वास लेते, भयग्रस्त, चेतनारहित, खिन्नमनस्क और सभामें न जाते देखकर शचीने पूछा—हे प्रभो! आजकल आप भयभीत क्यों रहते हैं, आपका भयंकर शत्रु तो मर गया है। हे कान्त! हे शत्रुहन्ता! आपको क्या चिन्ता है? हे लोकेश! साधारण मनुष्यकी भाँति लम्बी-लम्बी साँसें लेते हुए आप शोक क्यों करते हैं? आपका कोई बलवान् शत्रु भी तो नहीं है, जिससे आप चिन्ताकुल हों॥ ३१—४०१/२॥

इन्द्र बोले—हे राज्ञि! यद्यपि अब मेरा कोई बलवान् शत्रु नहीं है तथापि ब्रह्महत्याके भयसे मैं निरन्तर डरता रहता हूँ। घरमें रहते हुए भी मुझे न सुख है और न शान्ति। नन्दनवन, अमृत, घर तथा वन—कुछ भी मुझे सुखकर नहीं लगता। गन्धर्वोंका गान और अप्सराओंका नृत्य तथा यहाँतक कि तुम और अन्य देवांगनाएँ भी मुझे सुखकर नहीं लगतीं। न कामधेनु और न ही कल्पवृक्ष मुझे सुख प्रदान करते हैं। मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, मुझे शान्ति कहाँ मिलेगी? हे प्रिये! इसी चिन्तामें पड़ा हुआ मैं अपने मनमें शान्ति नहीं प्राप्त कर पा रहा हूँ॥ ४१—४४१/२॥

व्यासजी बोले—अत्यन्त घबरायी हुई अपनी प्रिय पत्नीसे ऐसा कहकर भयभीत और दुःखी इन्द्र घरसे निकलकर उत्तम मानसरोवरको चले गये और वहाँ एक कमलनालमें प्रविष्ट हो गये। पापकर्मोंसे पराभूत हुए देवराज इन्द्र ज्ञानशून्य हो गये थे। वे सर्पके समान चेष्टा करते हुए

जलमें छिपकर रह रहे थे। उस समय वे इन्द्र असहाय, चिन्तित और व्याकुल इन्द्रियोंवाले हो गये॥ ४५—४७१/२॥

ब्रह्महत्याके भयसे दु:खी होकर देवराज इन्द्रके अदृश्य हो जानेपर देवगण चिन्तातुर हो उठे तथा अनेक प्रकारके उत्पात होने लगे। ऋषि, सिद्ध और गन्धर्वगण भी अत्यन्त भयभीत हो गये। उपद्रवोंके होनेसे सम्पूर्ण जगत् अराजकतासे ग्रस्त हो गया। उस समय अनावृष्टि उपस्थित हो गयी और पृथ्वी वैभवशून्य हो गयी, नदियोंके स्रोत सूख गये और तालाब बिना जलके हो गये—इस प्रकारकी अराजकताको देखकर स्वर्गके देवताओं और मुनियोंने विचार करके नहुषको इन्द्र बना दिया॥ ४८—५११/२॥

राज्य प्राप्त करनेपर नहुष धर्मात्मा होते हुए भी राजसी वृत्तिके कारण कामबाणसे आहत हो विषयासक्त हो गये। हे भारत! देवोद्यानोंमें क्रीडारत रहते हुए वे सदा अप्सराओंसे घिरे रहते थे॥ ५२-५३॥

उस राजा नहुषके मनमें इन्द्राणी शचीके गुणोंको सुनकर उन्हें प्राप्त करनेकी इच्छा हुई। उसने ऋषियोंसे कहा—मेरे पास इन्द्राणी क्यों नहीं आती? आपलोग और देवताओंने मुझे इन्द्र बनाया, इसलिये हे देवताओ! शचीको मेरी सेवाके लिये भेजिये। हे मुनियो तथा देवताओ! आपलोगोंको मेरा प्रिय कार्य अवश्य करना चाहिये। इस समय मैं देवताओंका इन्द्र और समस्त लोकोंका स्वामी हूँ; शची शीघ्र ही आज मेरे भवनमें आ जायँ॥ ५४—५६१/२॥

उसकी यह बात सुनकर चिन्तासे व्याकुल देवता तथा ऋषिगण शचीके पास जाकर उन्हें प्रणाम करके कहने लगे—हे इन्द्रपत्नि! दुराचारी नहुष इस समय आपकी कामना करता है। उसने क्रुद्ध होकर हमसे यह बात कही है 'शचीको यहाँ भेज दीजिये।' उसके अधीन रहनेवाले हम कर ही क्या सकते हैं; क्योंकि उसे हमने ही इन्द्र बना दिया है॥ ५७—५९॥

यह सुनकर दु:खितमन शचीने बृहस्पतिसे कहा—'हे ब्रह्मन्! नहुषसे मेरी रक्षा कीजिये; मैं आपकी शरणमें हूँ'॥ ६०॥

बृहस्पति बोले—हे देवि! पापसे मोहित नहुषसे तुम्हें भय नहीं करना चाहिये। हे पुत्रि! मैं सनातनधर्मका त्यागकर तुम्हें उसको नहीं दूँगा॥ ६१॥

शरणमें आये हुए तथा दु:खी प्राणीको जो आश्रय नहीं देता, वह प्रलयपर्यन्त नरकमें वास करता है। अत: हे पृथुश्रोणि! तुम निश्चिन्त रहो, मैं तुम्हारा त्याग कभी नहीं करूँगा॥ ६२॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत षष्ठ स्कन्धका 'इन्द्रके कमलनालमें प्रवेशके बाद नहुषके देवेन्द्रपदपर अभिषेकका वर्णन' नामक सातवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ७॥

आठवाँ अध्याय

इन्द्राणीको बृहस्पतिकी शरणमें जानकर नहुषका क्रुद्ध होना, देवताओंका नहुषको समझाना, बृहस्पतिके परामर्शसे इन्द्राणीका नहुषसे समय माँगना, देवताओंका भगवान् विष्णुके पास जाना और विष्णुका उन्हें देवीको प्रसन्न करनेके लिये अश्वमेधयज्ञ करनेको कहना, बृहस्पतिका शचीको भगवतीकी आराधना करनेको कहना, शचीकी आराधनासे प्रसन्न होकर देवीका प्रकट होना और शचीको इन्द्रका दर्शन होना

व्यासजी बोले—वे शची देवगुरुकी शरणमें चली गयी हैं—ऐसा सुनकर कामबाणसे आहत नहुष अंगिरापुत्र बृहस्पतिपर बहुत कुपित हुआ और उसने देवताओंसे कहा—यह अंगिरापुत्र बृहस्पति आज मेरेद्वारा निश्चय ही मारा जायगा; क्योंकि मैंने ऐसा सुना है कि उस मूर्खने इन्द्राणीको अपने घरमें रखा है॥ १-२॥

इस प्रकार नहुषको क्रुद्ध देखकर प्रधान ऋषियोंसहित देवतागण उस दुष्टसे सामनीतियुक्त वचन बोले—॥ ३॥

हे राजेन्द्र! क्रोध दूर करो और पापकारिणी बुद्धिका त्याग करो। हे प्रभो! [मनीषियोंने] धर्मशास्त्रोंमें परस्त्रीगमनकी

निन्दा की है ॥ ४ ॥

इन्द्रकी पत्नी शची सदासे अत्यन्त साध्वी, सौभाग्यवती और पतिव्रता हैं; फिर अपने पतिके जीवित रहते वे कैसे दूसरेको पति बना सकती हैं? ॥ ५ ॥

हे विभो! आज इस समय आप तीनों लोकोंके स्वामी तथा धर्मके रक्षक हैं। आप-जैसा राजा अधर्ममें स्थित हो जाय तब तो निश्चितरूपसे प्रजाका नाश हो जायगा ॥ ६ ॥

राजाको सब प्रकारसे सदाचारकी रक्षा करनी चाहिये। यहाँ स्वर्गमें तो शचीके सदृश सैकड़ों प्रमुख अप्सराएँ हैं ॥ ७ ॥

महात्माओंने रतिको ही श्रृंगारका कारण बताया है, बलप्रयोग किये जानेपर तो रसकी हानि ही होती है ॥ ८ ॥

हे नृपश्रेष्ठ! जब [स्त्री-पुरुष] दोनोंमें एक समान प्रेम रहता है, तभी उन दोनोंको अधिक सुख प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

अतः हे देवेन्द्र! परस्त्रीगमनकी यह भावना छोड़ दीजिये और श्रेष्ठ आचरण कीजिये; क्योंकि आपको इन्द्र-जैसा अतिश्रेष्ठ पद प्राप्त है ॥ १० ॥

हे राजन्! पापसे सम्पत्तिका क्षय होता है और पुण्यसे महान् वृद्धि होती है, इसलिये पापकर्म छोड़कर सात्त्विक बुद्धिका आश्रय लीजिये ॥ ११ ॥

नहुषने कहा—हे देवताओ! जब देवराज इन्द्रने गौतमकी पत्नीके साथ और चन्द्रमाने बृहस्पतिकी पत्नीके साथ अनाचार किया था, तब तुमलोग कहाँ थे? ॥ १२ ॥

लोग दूसरोंको उपदेश देनेमें बहुत कुशल होते हैं, परंतु उपदेश देनेवाला तथा उसका पालन करनेवाला पुरुष दुर्लभ होता है ॥ १३ ॥

हे देवताओ! वह शची मेरे पास आ जाय, इसीमें आप सबका परम कल्याण है; इससे उसको भी अत्यन्त सुख मिलेगा ॥ १४ ॥

अन्य किसी भी प्रकारसे मैं सन्तुष्ट नहीं होऊँगा, यह मैं तुमलोगोंसे कह रहा हूँ। इसलिये विनयसे या बलपूर्वक तुमलोग उसे शीघ्र ही मुझे प्राप्त कराओ ॥ १५ ॥

उसकी यह बात सुनकर भयभीत देवताओं और मुनियोंने उस कामातुर नहुषसे कहा—हमलोग सामनीतिसे इन्द्राणीको आपके पास लायेंगे—ऐसा कहकर वे लोग बृहस्पतिके निवासपर चले गये ॥ १६-१७ ॥

व्यासजी बोले—तदनन्तर वे देवगण अंगिराके पुत्र बृहस्पतिके पास जाकर हाथ जोड़कर उनसे बोले—हमें ज्ञात हुआ है कि इन्द्राणीको आपके घरमें शरण प्राप्त है, उन्हें आज ही नहुषको देना है; क्योंकि वह इन्द्र बना दिया गया है। यह सुलक्षणा सुन्दरी उन्हें पतिके रूपमें वरण कर ले ॥ १८-१९ ॥

यह दारुण वचन सुनकर बृहस्पतिने देवताओंसे कहा—मैं शरणमें आयी हुई इस पतिव्रता शचीका त्याग नहीं करूँगा ॥ २० ॥

देवगण बोले—तब दूसरा कोई उपाय करना चाहिये, जिससे वह आज प्रसन्न हो जाय, अन्यथा क्रुद्ध होनेपर वह दुराराध्य हो जायगा ॥ २१ ॥

देवगुरु बोले—सुन्दरी शची वहाँ जाकर राजाको अपनी बातसे अत्यन्त मोहित करके यह शपथ ले कि 'अपने पतिको मृत जाननेके बाद ही मैं आपको अंगीकार करूँगी। अपने पति इन्द्रके जीवित रहते मैं किसी दूसरेको पति कैसे बना लूँ? इसलिये उन महाभागकी खोजके लिये मुझे जाना पड़ेगा।' इस प्रकार वह मेरे कथनके अनुसार शपथ लेकर और राजाको छलकर अपने पतिको लानेका प्रयत्न करे ॥ २२—२४ ॥

ऐसा विचार करके सभी देवता बृहस्पतिको आगे करके इन्द्रपत्नी शचीके साथ नहुषके पास गये ॥ २५ ॥

उन सभीको आया हुआ देखकर वह कृत्रिम इन्द्र नहुष हर्षित हुआ। उस शचीको देखकर वह आनन्दित हो गया और प्रसन्नतापूर्वक बोला—हे प्रिये! आज मैं इन्द्र हूँ, हे सुन्दर नेत्रोंवाली! मुझे पतिरूपमें अंगीकार करो। मैं देवताओंके द्वारा सम्पूर्ण लोकका पूज्य बना दिया गया हूँ ॥ २६-२७ ॥

नहुषके ऐसा कहनेपर शचीने लज्जित होकर काँपते हुए कहा—हे राजन्! हे सुरेश्वर! मैं आपसे एक वरप्राप्तिकी इच्छा करती हूँ। आप कुछ समयतक प्रतीक्षा करें, जबतक मैं यह निर्णय कर लूँ कि मेरे पति इन्द्र जीवित हैं या नहीं; क्योंकि इस बातका मेरे मनमें सन्देह है। मनमें इसका निश्चय करनेके अनन्तर मैं आपकी सेवामें उपस्थित होऊँगी। हे राजेन्द्र! तबतकके लिये क्षमा कीजिये; यह मैं

सत्य कह रही हूँ। अभी यह ज्ञात नहीं है कि इन्द्र नष्ट हो गये हैं या कहीं चले गये हैं॥ २८—३०१/२॥

इन्द्राणीके ऐसा कहनेपर नहुष प्रसन्न हो गया और 'ऐसा ही हो'—यह कहकर उसने उन देवी शचीको प्रसन्नतापूर्वक विदा किया। राजासे मुक्ति पाकर वह पतिव्रता शची शीघ्रतापूर्वक देवताओंके पास जाकर बोली—हे उद्यमशील देवताओ! आपलोग इन्द्रको ले आनेका प्रयास करें॥ ३१-३२१/२॥

हे नृपश्रेष्ठ! इन्द्राणीका पवित्र और मधुर वचन सुनकर सभी देवताओंने एकाग्र होकर इन्द्रके विषयमें विचार-विमर्श किया। तदनन्तर वे वैकुण्ठलोक जाकर शरणागतवत्सल आदिदेव भगवान् जगन्नाथकी स्तुति करने लगे। उन वाक्पटुविशारद देवताओंने उद्विग्न होकर इस प्रकार कहा—॥ ३३—३५॥

हे देवाधिदेव! ब्रह्महत्यासे पीड़ित देवराज इन्द्र सभी प्राणियोंसे अदृश्य होकर कहीं रह रहे हैं। हे प्रभो! आपके परामर्शसे ही उन्होंने ब्राह्मण वृत्रासुरका वध किया था। तब ब्रह्महत्या कहाँ हुई? हे भगवन्! आप ही उनकी और हम सबकी एकमात्र गति हैं। इस महान् कष्टमें पड़े हुए हम सबकी रक्षा कीजिये और उन इन्द्रके ब्रह्महत्यासे छूटनेका उपाय बताइये।॥ ३६-३७१/२॥

देवताओंका करुण वचन सुनकर भगवान् विष्णु बोले—इन्द्रके पापकी निवृत्तिके लिये अश्वमेधयज्ञ कीजिये; अश्वमेध करनेसे प्राप्त पुण्यसे इन्द्र पवित्र हो जायँगे। इससे वे पुनः देवताओंके इन्द्रत्वको पा जायँगे, फिर कोई भय नहीं रहेगा। अश्वमेधयज्ञसे भगवती श्रीजगदम्बिका प्रसन्न होकर ब्रह्महत्या आदि पाप निश्चितरूपसे नष्ट कर देंगी। जिनके स्मरणमात्रसे पापोंका समूह नष्ट हो जाता है, उन जगदम्बाकी प्रसन्नताके लिये किये गये अश्वमेधयज्ञका क्या कहना! इन्द्राणी भी नित्य भगवती जगदम्बाकी पूजा करें; भगवती शिवाकी आराधना सुखकारी होगी। हे देवताओ! नहुष भी जगदम्बिकाकी मायासे मोहित होकर शीघ्र ही अपने किये हुए पापसे अवश्य विनष्ट हो जायगा। अश्वमेधयज्ञसे पवित्र होकर इन्द्र भी शीघ्र ही अपने उत्तम इन्द्रपद और वैभवको प्राप्त करेंगे॥ ३८—४४१/२॥

अमित तेजवाले भगवान् विष्णुकी इस शुभ वाणीको सुनकर वे देवगण उस स्थानको चल दिये जहाँ इन्द्र रह रहे थे। बृहस्पतिके नेतृत्वमें देवताओंने इन्द्रको आश्वासन देकर सम्पूर्ण अश्वमेध महायज्ञ सम्पन्न कराया॥ ४५-४६१/२॥

तत्पश्चात् भगवान् विष्णुने ब्रह्महत्याको विभाजितकर वृक्षों, नदियों, पर्वतों, पृथ्वी और स्त्रियोंपर फेंक दिया। इस प्रकार उसको प्राणि-पदार्थोंमें विसर्जित करके इन्द्र पापरहित हो गये। सन्तापरहित होनेपर भी इन्द्र अच्छे समयकी प्रतीक्षा करते हुए जलमें ही ठहरे रहे। वहाँ सभी प्राणियोंसे अदृश्य रहते हुए जलमें वे एक कमलनालमें स्थित रहे॥ ४७—४९॥

देवगण उस अद्भुत कार्यको करके अपने स्थानको चले गये। तब शचीने दुःख और वियोगसे व्याकुल होकर देवगुरु बृहस्पतिसे कहा—यज्ञ करनेपर भी मेरे स्वामी इन्द्र क्यों अदृश्य हैं? हे स्वामिन्! मैं अपने प्रियको कैसे देख सकूँगी; आप मुझे उस उपायको बतायें॥ ५०-५१॥

बृहस्पति बोले—हे पौलोमि! तुम देवी भगवती शिवाकी आराधना करो। वे देवी तुम्हारे पापरहित पतिका तुम्हें दर्शन करायेंगी। आराधना करनेपर जगत्का पालन करनेवाली वे भगवती नहुषको शक्तिहीन कर देंगी। वे अम्बिका राजाको मोहित करके उसे उसके स्थानसे गिरा देंगी॥ ५२-५३॥

हे राजन्! बृहस्पतिजीके ऐसा कहनेपर पुलोमापुत्री शचीने देवगुरुसे पूजाविधिसहित देवीका मन्त्र विधिवत् प्राप्त कर लिया॥ ५४॥

गुरुसे मन्त्रविद्या प्राप्त करके देवी शचीने बलि, पुष्प आदि शुभ अर्चनोंसे भगवती श्रीभुवनेश्वरीकी सम्यक् आराधना की॥ ५५॥

अपने प्रिय पतिके दर्शनकी लालसासे युक्त शची समस्त भोगोंका त्यागकर तपस्विनीका वेश धारणकर देवीका पूजन करने लगीं॥ ५६॥

[आराधना करनेपर] कुछ समय बाद प्रसन्न होकर भगवतीने उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिया। वे वरदायिनी देवी सौम्य रूप धारण किये हुए हंसपर सवार थीं। वे करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान, करोड़ों चन्द्रमाओंके समान शीतल, करोड़ों विद्युत्के समान प्रभासे युक्त और चारों

वेदोंसे समन्वित थीं। उन्होंने अपनी भुजाओंमें पाश, अंकुश, अभय तथा वर-मुद्राएँ धारण कर रखी थीं, वे

चरणोंतक लटकती हुई स्वच्छ मोतियोंकी माला पहने हुए थीं। उनके मुखपर मधुर मुसकान थी और वे तीन नेत्रोंसे सुशोभित थीं। ब्रह्मासे लेकर कीटपर्यन्त सभी प्राणियोंकी जननी, करुणारूपी अमृतकी सागरस्वरूपा तथा अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंकी अधीश्वरी वे परमेश्वरी सौम्य थीं तथा अनन्त रसोंसे आपूरित स्तनयुगलसे सुशोभित हो रही थीं। सबकी अधीश्वरी, सब कुछ जाननेवाली, कूटस्थ और बीजाक्षर-स्वरूपिणी वे भगवती उद्यमशील इन्द्रपत्नी शचीसे प्रसन्न होकर मेघके समान अत्यन्त गम्भीर वाणीके द्वारा उन्हें परम हर्षित करती हुई कहने लगीं॥ ५७—६२१/२ ॥

देवी बोलीं—हे सुन्दर कटिप्रदेशवाली इन्द्रप्रिये! अपना अभिलषित वर माँगो, तुम्हारे द्वारा सम्यक् प्रकारसे पूजित मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ, मैं तुम्हें आज वरदान दूँगी। मैं वर प्रदान करनेके लिये आयी हूँ; मेरा दर्शन सहज सुलभ नहीं है। करोड़ों जन्मोंकी संचित पुण्यराशिसे ही यह प्राप्त होता है॥ ६३-६४१/२ ॥

भगवती परमेश्वरीके ऐसा कहनेपर इन्द्रपत्नी शचीने सम्मुख स्थित होकर उन प्रसन्न भगवती परमेश्वरीसे विनतभावसे कहा—हे माता! मैं अपने पतिका अत्यन्त दुर्लभ दर्शन, नहुषसे उत्पन्न भयका नाश और अपने पदकी पुनः प्राप्ति चाहती हूँ॥ ६५-६६१/२ ॥

देवी बोलीं—तुम [मेरी] इस दूतीके साथ मानसरोवर चली जाओ, जहाँ मेरी विश्वकामा नामक अचल मूर्ति प्रतिष्ठित है, वहीं तुम्हें भयभीत और दुःखी इन्द्रके दर्शन हो जायँगे। कुछ समय बाद मैं पुनः राजाको मोहित करूँगी। हे विशालाक्षि! तुम शान्तचित्त हो जाओ, मैं तुम्हारा अभिलषित कार्य करूँगी। मैं मोहग्रस्त राजा [नहुष]-को इन्द्रपदसे गिरा दूँगी॥ ६७—६९१/२ ॥

व्यासजी बोले—तदनन्तर इन्द्रपत्नीको लेकर देवीकी दूतीने शीघ्रतापूर्वक उनके पति इन्द्रके पास पहुँचा दिया। वहाँ परमेश्वरीके विग्रहका दर्शनकर तथा गुप्तरूपसे रहते हुए अपने पति देवराज इन्द्रको देखकर और देवीके वरदानसे अपनी बहुत दिनोंकी इच्छाकी पूर्तिसे वे शची अत्यन्त प्रसन्न हुईं॥ ७०-७१ ॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत षष्ठ स्कन्धका 'इन्द्राणीको शक्रका दर्शन' नामक आठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ८ ॥

नौवाँ अध्याय

शचीका इन्द्रसे अपना दुःख कहना, इन्द्रका शचीको सलाह देना कि वह नहुषसे ऋषियोंद्वारा वहन की जा रही पालकीमें आनेको कहे, नहुषका ऋषियोंद्वारा वहन की जा रही पालकीमें सवार होना और शापित होकर सर्प होना तथा इन्द्रका पुनः स्वर्गाधिपति बनना

व्यासजी बोले—विशाल नेत्रोंवाली अपनी शोकाकुल प्रिय पत्नीको वहाँ एकान्तमें देखकर इन्द्र आश्चर्यचकित हो गये और बोले— ॥ १ ॥

हे प्रिये! तुम यहाँ कैसे आयी? तुम्हें कैसे ज्ञात हुआ कि मैं यहाँ हूँ? हे शुभानने! मैं सभी प्राणियोंसे अज्ञात रहते हुए यहाँ निवास कर रहा हूँ॥ २ ॥

शची बोली—हे देव! देवी भगवतीकी कृपासे आप आज मुझे यहाँ ज्ञात हुए हैं। हे देवेन्द्र! उन्हींकी कृपासे मैं

शिव-पार्वतीद्वारा श्रीकृष्णको वरदान

आपको पुनः प्राप्त कर सकी हूँ॥ ३॥

देवताओं और मुनियोंने नहुष नामक राजर्षिको आपके आसनपर बैठा दिया है; वह मुझे नित्य कष्ट देता है। वह पापी मुझसे इस प्रकार कहता है—हे सुन्दरि! मुझ देवराज इन्द्रको अपना पति बना लो। हे बलार्दन! अब मैं क्या करूँ?॥ ४-५॥

इन्द्र बोले—हे वरारोहे! हे कल्याणि! जिस प्रकार मैं [अनुकूल] समयकी प्रतीक्षा करते हुए यहाँ रह रहा हूँ, वैसे ही तुम भी अपने मनको पूर्णरूपसे स्थिर करो॥ ६॥

व्यासजी बोले—अपने परम आदरणीय पतिके ऐसा कहनेपर लम्बी साँसें खींचती तथा काँपती हुई वे शची अत्यन्त दुःखित होकर इन्द्रसे कहने लगीं— ॥ ७॥

हे महाभाग! मैं कैसे रहूँ? वरदानके द्वारा मदोन्मत्त और अहंकारी बना हुआ वह पापात्मा मुझे अपने वशमें कर लेगा। उससे भयभीत सभी देवताओं और मुनियोंने मुझसे कहा—हे वरारोहे! तुम उस कामातुर देवराजको अंगीकार कर लो॥ ८-९॥

हे शत्रुसूदन! बृहस्पति भी निर्बल ब्राह्मण हैं; वे मेरी रक्षा करनेमें कैसे समर्थ हो सकते हैं; क्योंकि वे भी तो सदा देवताओंके ही अनुगामी हैं॥ १०॥

अतः हे विभो! मैं वशवर्तिनी नारी हूँ, मुझे यह महान् चिन्ता है कि भाग्यकी इस विपरीत अवस्थामें मैं अनाथ क्या करूँगी?॥ ११॥

मैं कुलटा नहीं हूँ अपितु आपका ही ध्यान करनेवाली पतिव्रता स्त्री हूँ। वहाँ मेरे लिये ऐसा कोई शरण नहीं है, जो मुझ दुःखितकी रक्षा करे॥ १२॥

इन्द्र बोले—हे वरानने! मैं एक उपाय बताता हूँ, तुम उसे इस समय करो। इससे दुःखके समयमें तुम्हारे शीलकी रक्षा हो जायगी॥ १३॥

करोड़ों उपाय करनेपर भी दूसरेके द्वारा रक्षित स्त्री पतिव्रता नहीं रह सकती; क्योंकि वह कामसे विचलित मनवाली तथा अत्यन्त चंचल होती है॥ १४॥

स्त्रियोंका शील ही पापसे इनकी रक्षा करता है। इसलिये हे पवित्र मुसकानवाली! तुम शीलका आश्रय लेकर धैर्य धारण करो॥ १५॥

जब दुष्ट राजा नहुष तुम्हें बलपूर्वक प्राप्त करनेकी चेष्टा करे तब तुम गुप्त प्रतिज्ञा करके राजाको धोखेमें डाल देना। हे मदालसे! तुम एकान्तमें उसके समीप जाकर कहो—हे जगत्पते! आप ऋषियोंके द्वारा वहन किये जानेवाले दिव्य वाहनसे मेरे पास आयें, ऐसा होनेपर मैं प्रेमपूर्वक आपके वशमें हो जाऊँगी—यह मेरी प्रतिज्ञा है। हे सुश्रोणि! तुम उससे ऐसा बोलना, तब मोहित और कामान्ध वह राजा मुनियोंको अपने वाहनमें लगायेगा; इससे तपस्वी अवश्य ही नहुषको शापसे दग्ध कर देंगे॥ १६—१९॥

भगवती जगदम्बा तुम्हारी सहायता करेंगी; इसमें सन्देह नहीं है। भगवती जगदम्बाके चरणोंका स्मरण करनेवालेको कभी संकट नहीं होता। यदि संकट उत्पन्न भी हो जाय तो उसे भी अपने कल्याणके लिये ही समझना चाहिये। अतः तुम गुरु बृहस्पतिके कथनानुसार पूर्ण प्रयत्नसे मणिद्वीपवासिनी भगवती भुवनेश्वरीका भजन करो॥ २०-२१½॥

व्यासजी बोले—उनके ऐसा कहनेपर 'वैसा ही होगा'—यह कहकर अत्यन्त विश्वस्त तथा भावी कार्यके प्रति प्रयत्नशील शची नहुषके पास गयीं। नहुष उन्हें देखकर प्रसन्न होता हुआ यह वचन बोला—हे कामिनि! तुम्हारा स्वागत है, मैं तुम्हारे सत्य वचनोंके कारण तुम्हारे अधीन हूँ। तुमने अपने वचनका सत्यतापूर्वक पालन किया, इसलिये मैं तुम्हारा दास हो गया हूँ। हे मितभाषिणि! तुम जब मेरे समीप आ गयी हो तो मैं सन्तुष्ट हो गया हूँ। तुम्हें अब लज्जा नहीं करनी चाहिये। हे सुन्दर मुसकानवाली! मुझ अनुरक्तको अंगीकार करो। हे विशाल नेत्रोंवाली! अपना कार्य बताओ; मैं तुम्हारा प्रिय करूँगा॥ २२—२५½॥

शची बोलीं—हे कृत्रिम वासव! आपने मेरा सम्पूर्ण कार्य कर दिया है। हे देव! हे विभो! इस समय मेरे मनमें एक अभिलाषा है, उसे आप सुनें। हे कल्याण! मेरा मनोरथ पूर्ण कर दीजिये; इसके बाद मैं आपकी वशवर्तिनी हो जाऊँगी, मैं बड़े उत्साहसे अपना मनोरथ कह रही हूँ, आप उसे पूरा करनेमें समर्थ हैं॥ २६-२७½॥

नहुष बोला—हे चन्द्रमुखि! तुम अपना कार्य बताओ, मैं तुम्हारा अभिलषित कार्य करता हूँ। हे सुभ्रु! यदि अलभ्य वस्तु होगी तो भी मैं तुम्हें दूँगा; मुझे बताओ॥ २८½॥

शची बोलीं—हे राजेन्द्र! मैं कैसे बताऊँ, मुझे आपका विश्वास नहीं है। हे राजेन्द्र! आप शपथ लें कि मैं तुम्हारा प्रिय करूँगा; क्योंकि पृथ्वीतलपर सत्यवादी राजा दुर्लभ हैं। हे राजन्! आपको सत्यसे बँधा जाननेके बाद ही मैं अपना अभिलषित बताऊँगी। हे राजन्! मेरी उस अभिलाषाको पूर्ण कर देनेपर मैं सदाके लिये आपकी वशवर्तिनी हो जाऊँगी। हे इन्द्र! यह मेरा सत्यवचन है॥ २९—३१ १/२ ॥

नहुष बोला—हे सुन्दरि! मैं यज्ञ, दान आदि कृत्योंसे संचित पुण्यकी शपथ लेकर कहता हूँ कि मैं तुम्हारे वचनका अवश्य पालन करूँगा॥ ३२ १/२ ॥

शची बोलीं—इन्द्रके वाहन अश्व, गज और रथ हैं। भगवान् विष्णुका वाहन गरुड़, यमराजका वाहन महिष, शिवका वाहन वृषभ, ब्रह्माका वाहन हंस, कार्तिकेयका वाहन मयूर और गजाननका वाहन मूषक है। हे सुराधिप! मैं चाहती हूँ कि आपका वाहन ऐसा विलक्षण हो जो विष्णु, रुद्र, असुरों तथा राक्षसोंके भी पास न हो ॥ ३३—३५ १/२ ॥

हे देवराज! अपने व्रतमें अटल रहनेवाले समस्त मुनिगण शिबिका (पालकी)-में आपको ढोयें—हे राजन्! यही मेरी इच्छा है। हे पृथ्वीपते! मैं आपको सभी देवताओंसे महान् समझती हूँ; इसीलिये मैं सावधान रहती हुई आपके तेजकी वृद्धि चाहती हूँ॥ ३६-३७ १/२ ॥

व्यासजी बोले—उनकी यह बात सुनकर महादेवीद्वारा उस समय मोहित कर दिया गया बुद्धिहीन राजा नहुष हँसकर इन्द्रप्रिया शचीको सन्तुष्ट करते हुए यह वचन कहने लगा—॥ ३८-३९ ॥

नहुष बोला—हे तन्वंगि! तुमने सत्य ही कहा है, यह वाहन मुझे भी रुचिकर है। हे सुन्दर केशपाशवाली! मैं तुम्हारे वचनोंका सम्यक् रूपसे पालन करूँगा॥ ४० ॥

हे पवित्र मुसकानवाली! जो अल्प पराक्रमवाला होता है, वही ऋषियोंको पालकी ढोनेमें नहीं लगा सकता; मैं [तुम्हारी इच्छाके अनुसार] वाहनपर आरूढ़ होकर तुम्हारे पास आऊँगा॥ ४१ ॥

मुझे तीनों लोकोंमें सबसे बड़ा तपस्वी और समर्थ जानकर सप्तर्षि तथा सभी देवर्षि मेरा वहन करेंगे॥ ४२ ॥

व्यासजी बोले—ऐसा कहकर परम सन्तुष्ट उस नहुषने उन इन्द्रप्रिया शचीको विदा किया, इसके बाद सभी मुनियोंको बुलाकर वह कामातुर उनसे इस प्रकार कहने लगा—॥ ४३ ॥

नहुष बोला—हे विप्रगण! मैं आज सर्वशक्तिसम्पन्न इन्द्र हूँ। आपलोग गर्वरहित होकर मेरा कार्य करें॥ ४४ ॥

इन्द्रपद मुझे प्राप्त हो गया है, परंतु इन्द्राणी अभी मुझे नहीं प्राप्त हो सकी हैं। उन्होंने मेरे पास आकर प्रेमपूर्वक यह बात कही है—'हे सुरेन्द्र! हे सुराधिप! मुनियोंद्वारा ढोयी जानेवाली पालकीसे आप मेरे पास आयें। हे देवाधिदेव! हे महाराज! हे मानद! आप मेरा यह प्रिय कार्य करें'॥ ४५-४६ ॥

हे श्रेष्ठ मुनिगण! मेरा यह कार्य अत्यन्त दुष्कर है, परंतु आप सब दयालुओंको मेरा यह कार्य अवश्य करना चाहिये। इन्द्रपत्नी शचीमें अत्यन्त आसक्त मेरे मनको काम जला रहा है, मैं आप सबकी शरणमें हूँ। अतः मेरे इस महान् कार्यको सम्पन्न करें॥ ४७-४८ ॥

अगस्त्य आदि प्रमुख ऋषियोंने उसकी यह अनादरपूर्ण बात सुनकर भावीवश उसे कृपापूर्वक स्वीकार कर लिया॥ ४९ ॥

उन तत्त्वदर्शी मुनियोंके द्वारा उस वचनके स्वीकार कर लिये जानेपर शचीके प्रति आसक्तचित्तवाला राजा नहुष प्रसन्न हो गया॥ ५० ॥

वह तुरंत एक सुन्दर पालकीपर चढ़कर उसमें बैठ गया और दिव्य मुनियोंको उसे ढोनेके लिये नियुक्तकर उन्हें 'सर्प-सर्प' (शीघ्र चलो-शीघ्र चलो) ऐसा कहने लगा॥ ५१ ॥

उस कामातुर मूर्खने मुनि अगस्तिके मस्तकका पैरसे स्पर्श कर दिया। कामबाणसे आहत तथा इन्द्राणीके द्वारा आकृष्टचित्तवाले उस राजा नहुषने शीघ्र चलो—ऐसा कहते

हुए वातापि नामक राक्षसका भक्षण करनेवाले तथा समुद्रको भी पी जानेवाले उन तपस्विश्रेष्ठ लोपामुद्रापति मुनि अगस्तिपर कोड़ेसे प्रहार भी किया॥ ५२-५३^{१}/२ ॥

तब उस कोड़ेके आघातका स्मरण करते हुए मुनिने उसे यह शाप दे दिया। हे दुराचारी! तुम वनमें भयंकर शरीरवाले विशाल सर्प हो जाओ, जहाँ तुम्हें हजारों वर्षोंतक बहुत कष्ट भोगते हुए विचरण करना पड़ेगा और अपने प्रभावसे तुम पुनः स्वर्ग प्राप्त करोगे। युधिष्ठिर नामवाले धर्मपुत्रका दर्शनकर और उनके मुखसे अपने प्रश्नोंके उत्तर सुनकर तुम्हारी मुक्ति हो जायगी॥ ५४—५६^{१}/२ ॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार शाप प्राप्तकर राजर्षि नहुष उन मुनिश्रेष्ठकी स्तुति करके अचानक स्वर्गसे गिर पड़ा और सर्परूपधारी हो गया॥ ५७^{१}/२ ॥

तब बृहस्पतिने शीघ्रतापूर्वक मानसरोवर जाकर इन्द्रसे सारा वृत्तान्त विस्तारपूर्वक कहा। हे महाराज (जनमेजय)! राजा नहुषके स्वर्गसे पतन आदिकी बात सुनकर इन्द्र बहुत प्रसन्न हुए। वे इन्द्र अब भी वहींपर स्थित रहे। सभी देवता और मुनि नहुषको पृथ्वीपर गिरा देखकर उसी सरोवरके पास गये, जहाँ इन्द्र रहते थे॥ ५८—६०^{१}/२ ॥

तत्पश्चात् उन शचीपति इन्द्रको आश्वासन देकर मुनियोंसहित सभी देवता उन्हें सम्मानपूर्वक स्वर्ग ले आये। तदनन्तर वापस आये हुए उन इन्द्रको सभी मुनियों और देवताओंने आसनपर स्थापित करके उनका पवित्र अभिषेक किया। इन्द्र भी अपने पदको प्राप्तकर प्रेमयुक्त शचीके साथ देवप्रासाद और मनोहर नन्दनवनमें क्रीड़ा करने लगे॥ ६१—६३^{१}/२ ॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! इस प्रकार इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले महामुनि विश्वरूप और वृत्रासुरको मारनेके कारण इन्द्रको अत्यन्त भीषण दुःख प्राप्त हुआ और देवीकी कृपासे उन्होंने पुनः अपना स्थान प्राप्त कर लिया॥ ६४-६५ ॥

हे राजन्! इस प्रकार आपने मुझसे जो पूछा था, वृत्रासुरवधपर आधारित वह सम्पूर्ण उत्तम आख्यान मैंने आपको कह दिया॥ ६६ ॥

जो जैसा कर्म करता है, उसे वैसा फल प्राप्त होता है। किये गये शुभ-अशुभ कर्मका फल अवश्य ही भोगना पड़ता है॥ ६७ ॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत षष्ठ स्कन्धका 'नहुषस्वर्गच्युतिवर्णन' नामक नौवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ९ ॥

दसवाँ अध्याय

कर्मकी गहन गतिका वर्णन तथा इस सम्बन्धमें भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनका उदाहरण

जनमेजय बोले—हे ब्रह्मन्! आपने अद्भुत कर्म करनेवाले इन्द्रका आख्यान कहा, जिसमें उनके पदच्युत होने और दुःख प्राप्त करनेका विशेषरूपसे वर्णन किया गया है तथा जिसमें देवताओंकी भी अधीश्वरी देवी भगवतीकी महिमा विस्तारसे वर्णित हुई है॥ १^{१}/२ ॥

मुझे महान् सन्देह है कि महान् तपस्वी इन्द्रको देवाधिपतिका पद प्राप्त होनेपर भी दारुण दुःख प्राप्त हुआ!॥ २^{१}/२ ॥

सौ यज्ञ करके देवताओंके स्वामीका उत्तम पद प्राप्त करके भी वे अपने स्थानसे कैसे च्युत हो गये?॥ ३^{१}/२ ॥

हे दयानिधे! इस सबका कारण सम्यक् रूपसे बताइये। हे मुनिश्रेष्ठ! आप सब कुछ जाननेवाले और पुराणोंके प्रवर्तक हैं, महापुरुषोंके लिये अपने श्रद्धालु शिष्यसे कुछ भी अकथ्य नहीं होता, इसलिये हे महाभाग! मेरे सन्देहका निवारण कीजिये॥ ४-५^{१}/२ ॥

सूतजी बोले—तब राजाके ऐसा पूछनेपर सत्यवतीपुत्र वेदव्यासजी प्रसन्नतापूर्वक उनके प्रश्नोंका क्रमसे उत्तर देने लगे॥ ६^{१}/२ ॥

व्यासजी बोले—हे नृपश्रेष्ठ! इसका अत्यन्त अद्भुत कारण सुनो। श्रेष्ठ तत्त्वज्ञानियोंने संचित, वर्तमान और प्रारब्धके भेदसे कर्मकी तीन गतियाँ बतलायी हैं। अनेक जन्मोंका संचित प्राक्तन कर्म संचित-कर्म कहा गया है;

फिर वे कर्म भी सात्त्विक, राजस और तामस—तीन प्रकारके होते हैं॥ ७—९॥

हे राजन्! बहुत समयके संचित शुभ या अशुभ कर्म पुण्य या पापके रूपमें अवश्य ही भोगने पड़ते हैं। जीवोंके प्रत्येक जन्मके संचित कर्म बिना भोग किये करोड़ों कल्पोंमें भी नहीं नष्ट होते॥ १०-११॥

जो कर्म वर्तमानमें किया जाता है, उसे क्रियमाण कहा जाता है, जीव देह प्राप्तकर शुभ या अशुभ कार्यमें प्रवृत्त होता है। संचित कर्मोंके कारण देह प्राप्त होनेपर काल जीवको पुनः कर्मके लिये प्रेरित करता है॥ १२-१३॥

प्रारब्ध कर्म उसे जानना चाहिये, जिसका भोगसे क्षय हो जाता है। प्राणियोंको यहाँ प्रारब्ध कर्म अवश्य भोगना पड़ता है; इसमें सन्देह नहीं है। हे राजेन्द्र! देवता, मनुष्य, असुर, यक्ष, गन्धर्व और किन्नर—इन सभीको पूर्वकालमें किये गये शुभ-अशुभ कर्मोंका फल भोगना पड़ता है—यह निश्चित है। हे महाराज! सबके देह-धारणका कारण उनका कर्म ही होता है। कर्मके समाप्त हो जानेपर प्राणियोंका जन्म लेना भी समाप्त हो जाता है—इसमें सन्देह नहीं है॥ १४—१६१/२॥

हे राजन्! ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र, देवता, दानव, यक्ष और गन्धर्व—ये सभी कर्मके वशीभूत हैं, अन्यथा जीवके सुख-दुःखमें भोगका जो कारणरूप देहसम्बन्ध है वह कैसे होता? इसीलिये किसी कालविपाकके योगसे यथासमय अनेक जन्मोंमें किये हुए संचित कर्मोंका प्रभाव प्रकट हो जाता है। उसी प्रारब्धकर्मके वशमें होकर ही मनुष्य पुण्य या पाप करता है, उसी प्रकार देवता आदि भी करते हैं॥ १७—२०१/२॥

हे राजन्! भगवान् विष्णुके अंशसे धर्मपुत्र नर और नारायण ही कृष्ण और अर्जुनके रूपमें प्रकट हुए। मुनियोंके द्वारा इस पौराणिक आख्यानका विवेचन किया गया है॥ २१-२२॥

जो अधिक वैभवशाली होता है, उसे देवांश जानना चाहिये। जो ऋषि नहीं है, वह काव्यकी रचना नहीं कर सकता; जो रुद्र नहीं है, वह रुद्रकी अर्चना नहीं कर सकता। जिसमें देवांश नहीं है, वह अन्नदान नहीं कर सकता और जिसमें विष्णुका अंश नहीं है, वह राजा नहीं हो सकता। हे राजन्! विष्णु, इन्द्र, अग्नि, यम और कुबेरसे प्रभुत्व, प्रभाव, कोप और पराक्रम प्राप्त करके ही निश्चितरूपसे यह शरीर बनता है॥ २३—२५॥

इस संसारमें जो कोई बलवान्, भाग्यवान्, भोगवान्, विद्यावान् या दानशील है, उसे देवांश कहा जाता है॥ २६॥

हे राजन्! उसी प्रकार मैंने पाण्डवोंको भी देवांश बताया था। वासुदेव श्रीकृष्ण तो नारायणके अंश और उन्हींके समान कान्तियुक्त थे॥ २७॥

प्राणियोंका शरीर सुख-दुःखका भाजन होता है; शरीरधारी सुख-दुःख प्राप्त करता रहता है॥ २८॥

कोई भी प्राणी स्वतन्त्र नहीं है, बल्कि सदैव दैवके अधीन रहता है। वह विवश होकर जन्म, मरण, सुख तथा दुःख प्राप्त करता है॥ २९॥

दैववश ही पाण्डव वन गये और पुनः उन्होंने अपना राज्य प्राप्त किया। तत्पश्चात् उन्होंने अपने बाहुबलसे राजसूय नामक उत्तम यज्ञ किया और बादमें अत्यन्त दुःखदायक वनवास उन्हें पुनः प्राप्त हुआ। वहाँ अर्जुनने अजितेन्द्रिय पुरुषोंके लिये दुष्कर तपस्या की। तब [उस तपस्यासे] सन्तुष्ट होकर देवताओंने उन्हें कल्याणकारी वरदान दिया। उस वनवास और नरावतारमें किया गया पुण्य कहाँ गया? नरावतारमें उन्होंने बदरिकाश्रममें उग्र तपस्या की थी, परंतु अर्जुनके रूपमें उन्हें उस तपस्याका फल नहीं मिला!॥ ३०—३३॥

प्राणियोंके देह-सम्बन्धी कर्मोंकी गति अत्यन्त गहन है; यह देवताओंके लिये भी दुर्ज्ञेय है तो मनुष्योंकी क्या बात!॥ ३४॥

वासुदेव श्रीकृष्ण भी अत्यन्त संकटमय कारागारमें उत्पन्न हुए और वसुदेवके द्वारा गोकुलमें नन्दगोपके घर ले जाये गये। हे भारत! वे वहाँ ग्यारह वर्षतक रहे और पुनः मथुरा जाकर उन्होंने बलपूर्वक उग्रसेनके पुत्र कंसका वध किया। तदनन्तर अत्यन्त दुःखित माता-पिताको बन्धनसे मुक्त किया तथा उग्रसेनको मथुरापुरीका राजा नियुक्त किया। पुनः वे म्लेच्छराज कालयवनके भयसे द्वारका चले गये। श्रीकृष्णने यह सब महान् पराक्रम दैवके अधीन होकर ही किया॥ ३५—३८॥

वे जनार्दन श्रीकृष्ण द्वारकामें अनेक कार्य करके और

प्रभासक्षेत्रमें देहका परित्यागकर अपने कुटुम्बसहित स्वर्ग चले गये। विप्रशापके कारण समस्त यादवगण पुत्रों, पौत्रों, मित्रों, भाइयों और बहनोंसहित प्रभासक्षेत्रमें नष्ट हो गये और वासुदेव श्रीकृष्ण भी व्याधके बाणसे निधनको प्राप्त हुए। हे राजन्! इस प्रकार मैंने आपसे कर्मकी गहन गतिका वर्णन कर दिया॥ ३९—४१॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत षष्ठ स्कन्धका 'कर्मोंकी गहन गतिका वर्णन' नामक दसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १०॥

ग्यारहवाँ अध्याय

युगधर्म एवं तत्सम्बन्धी व्यवस्थाका वर्णन

जनमेजय बोले—हे द्विजश्रेष्ठ! पृथ्वीका भार उतारनेके लिये बलराम और श्रीकृष्णके अवतारकी बात आपने कही, किंतु मेरे मनमें एक संशय है॥ १॥

द्वापरयुगके अन्तमें अत्यन्त दीन तथा आतुर होकर भारी बोझसे दबी हुई पृथ्वी गौका रूप धारण करके ब्रह्माजीकी शरणमें गयी॥ २॥

तब ब्रह्माजीने लक्ष्मीपति भगवान् विष्णुसे प्रार्थना की—'हे भगवन्! हे विभो! पृथ्वीका भार उतारनेके लिये और साधुजनोंकी रक्षाके लिये आप देवताओंके साथ भारतवर्षमें वसुदेवके घरमें अवतार लीजिये'॥ ३-४॥

ब्रह्माजीके द्वारा इस प्रकार प्रार्थना किये जानेपर भगवान् पृथ्वीका भार उतारनेके लिये बलरामके साथ देवकीके पुत्र हुए; तब उन्होंने अनेक दुष्टों तथा सभी दुराचारी और पापबुद्धि राजाओंको मारकर पृथ्वीका कितना भार उतारा?॥ ५-६॥

भीष्म मारे गये, द्रोणाचार्य मारे गये; इसी प्रकार विराट, द्रुपद, बाह्लीक, सोमदत्त और सूर्यपुत्र कर्ण मारे गये। परंतु जिन्होंने कृष्णकी पत्नियोंका हरण किया और उनका सारा धन लूट लिया, उन दुष्टोंको तथा जो करोड़ों आभीर, शक, म्लेच्छ और निषाद पृथ्वीतलपर स्थित थे उन सबको तब उन बुद्धिमान् श्रीकृष्णने नष्ट क्यों नहीं कर दिया? हे महाभाग! मेरे चित्तसे यह सन्देह नहीं हटता है; इस कलियुगमें तो समस्त प्रजा पापपरायण ही दिखायी देती है॥ ७—१०॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! जैसा युग होता है, कालप्रभावसे प्रजा भी वैसी ही होती है, इसके विपरीत नहीं होता; इसमें युगधर्म ही कारण है॥ ११॥

जो धर्मानुरागी जीव हैं, वे सत्ययुगमें हुए; जो धर्म और अर्थसे प्रेम रखनेवाले प्राणी हैं, वे त्रेतायुगमें हुए; धर्म, अर्थ और कामके रसिक प्राणी द्वापरयुगमें हुए, किंतु इस कलियुगमें तो सभी प्राणी अर्थमें आसक्ति रखनेवाले ही होते हैं॥ १२-१३॥

हे राजेन्द्र! युगधर्मका प्रभाव विपरीत नहीं होता है; काल ही धर्म और अधर्मका कर्ता है॥ १४॥

राजा बोले—हे महाभाग! सत्ययुगमें जो धर्मपरायण प्राणी हुए हैं, वे पुण्यशाली लोग इस समय कहाँ स्थित हैं? हे पितामह! त्रेतायुग या द्वापरमें जो दान तथा व्रत करनेवाले श्रेष्ठ मुनि हुए हैं, वे अब कहाँ विद्यमान हैं; मुझे बतायें। इस कलियुगमें जो दुराचारी, निर्लज्ज, देवनिन्दक और पापी लोग विद्यमान हैं, वे सत्ययुगमें कहाँ जायँगे? हे महामते! यह सब विस्तारपूर्वक कहिये; मैं इस धर्मनिर्णयके विषयमें सब कुछ सुनना चाहता हूँ॥ १५—१८॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! जो मनुष्य सत्ययुगमें उत्पन्न होते हैं, वे अपने पुण्यकार्योंके कारण देवलोकको चले जाते हैं॥ १९॥

हे नृपश्रेष्ठ! अपने-अपने वर्णाश्रमधर्मोंमें संलग्न रहनेवाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र अपने कर्मोंसे अर्जित लोकोंमें चले जाते हैं॥ २०॥

सत्य, दया, दान, एकपत्नीव्रत, सभी प्राणियोंमें अद्रोहभाव तथा सभी जीवोंमें समभाव रखना—यह सत्ययुगका साधारण धर्म है। सत्ययुगमें इसका धर्मपूर्वक पालन करके रजक आदि इतर वर्णके लोग भी स्वर्ग चले जाते हैं। हे

राजन्! त्रेता और द्वापरयुगमें यही स्थिति रहती है, किंतु इस कलियुगमें पापी मनुष्य नरक जाते हैं और वे वहाँ तबतक रहते हैं जबतक युगका परिवर्तन नहीं होता, उसके बाद मनुष्यके रूपमें पुनः पृथ्वीपर जन्म लेते हैं॥ २१—२४॥

हे राजन्! जब कलियुगका अन्त और सत्ययुगका आरम्भ होता है, तब पुण्यशाली लोग स्वर्गसे पुनः मनुष्यके रूपमें जन्म लेते हैं॥ २५॥

जब द्वापरका अन्त और कलियुगका प्रारम्भ होता है, तब नरकके सभी पापी पृथ्वीपर मनुष्यके रूपमें उत्पन्न होते हैं॥ २६॥

इस प्रकार युगके अनुरूप ही आचार होता है, उसके विपरीत कभी नहीं। कलियुग असत्-प्रधान होता है, इसलिये उसमें प्रजा भी वैसी ही होती है। दैवयोगसे कभी-कभी इन प्राणियोंके जन्म लेनेमें व्यतिक्रम भी हो जाता है। कलियुगमें जो साधुजन हैं, वे द्वापरके मनुष्य हैं। उसी प्रकार द्वापरके मनुष्य कभी-कभी त्रेतामें और त्रेताके मनुष्य सत्ययुगमें जन्म लेते हैं। जो सत्ययुगमें दुराचारी मनुष्य होते हैं, वे कलियुगके हैं। वे अपने किये हुए कर्मके प्रभावसे दुःख पाते हैं और पुनः युगप्रभावसे वे वैसा ही कर्म करते हैं॥ २७—३०॥

जनमेजय बोले—हे महाभाग! आप समस्त युगधर्मोंका पूर्णरूपसे वर्णन करें; जिस युगमें जैसा धर्म होता है, उसे मैं जानना चाहता हूँ॥ ३१॥

व्यासजी बोले—हे नृपशार्दूल! ध्यानपूर्वक सुनिये, इस सम्बन्धमें मैं एक दृष्टान्त कहता हूँ। साधुजनोंके मन भी युगधर्मसे प्रभावित होते हैं॥ ३२॥

हे राजेन्द्र! आपके महात्मा और धर्मज्ञ पिताकी भी बुद्धि कलियुगने विप्रका अपमान करनेकी ओर प्रेरित कर दी थी; अन्यथा ययातिके कुलमें पैदा हुए क्षत्रिय राजा परीक्षित् एक तपस्वीके गलेमें मरा हुआ सर्प क्यों डालते?॥ ३३-३४॥

हे राजन्! विद्वान्को इसे युगका ही प्रभाव समझना चाहिये। इसलिये विशेषरूपसे धर्माचरण ही प्रयत्नपूर्वक करना चाहिये॥ ३५॥

हे राजन्! सत्ययुगमें सभी ब्राह्मण वेदके ज्ञाता, पराशक्तिकी पूजामें तत्पर रहनेवाले, देवीदर्शनकी लालसासे युक्त, गायत्री और प्रणवमन्त्रमें अनुरक्त, गायत्रीका ध्यान करनेवाले, गायत्रीजपपरायण, एकमात्र मायाबीजमन्त्रका जप करनेवाले, प्रत्येक गाँवमें भगवती पराम्बाका मन्दिर बनानेके लिये उत्सुक रहनेवाले, अपने-अपने कर्मोंमें निरत रहनेवाले, सत्य-पवित्रता-दयासे समन्वित, वेदत्रयी कर्ममें संलग्न रहनेवाले और तत्त्वज्ञानमें पूर्ण निष्णात होते थे। क्षत्रिय प्रजाओंके भरण-पोषणमें संलग्न रहते थे। हे राजन्! उस पुण्यमय सत्ययुगमें वैश्यलोग कृषि, व्यापार और गो-पालन करते थे तथा शूद्र सेवापरायण रहते थे॥ ३६—४०॥

उस सत्ययुगमें सभी वर्णोंके लोग भगवती पराम्बाके पूजनमें आसक्त रहते थे। उसके बाद त्रेतायुगमें धर्मकी स्थिति कुछ कम हो गयी। सत्ययुगमें जो धर्मकी स्थिति थी, वह द्वापरमें विशेषरूपसे कम हो गयी। हे राजन्! पूर्वयुगोंमें जो राक्षस समझे जाते थे, वे ही कलियुगमें ब्राह्मण माने जाते हैं॥ ४१-४२॥

वे प्रायः पाखण्डी, लोगोंको ठगनेवाले, झूठ बोलनेवाले तथा वेद और धर्मसे दूर रहनेवाले होते हैं। उनमेंसे कुछ तो दम्भी, लोकव्यवहारमें चालाक, अभिमानी, वेदप्रतिपादित मार्गसे हटकर चलनेवाले, शूद्रोंकी सेवा करनेवाले, विभिन्न धर्मोंका प्रवर्तन करनेवाले, वेदनिन्दक, क्रूर, धर्मभ्रष्ट और व्यर्थ वाद-विवादमें लगे रहनेवाले होते हैं। हे राजन्! जैसे-जैसे कलियुगकी वृद्धि होती है, वैसे-वैसे सत्यमूलक धर्मका सर्वथा क्षय होता जाता है और वैसे ही क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और इतर वर्णोंके लोग भी धर्महीन, मिथ्यावादी तथा पापी होते हैं। ब्राह्मण शूद्रधर्ममें संलग्न और प्रतिग्रहपरायण हो जाते हैं॥ ४३—४७॥

हे राजन्! कलियुगका प्रभाव और बढ़नेपर स्त्रियाँ स्वेच्छाचारिणी तथा काम, लोभ और मोहसे युक्त हो जायँगी। हे राजन्! वे पापाचारिणी, झूठ बोलनेवाली, सदा कलह करनेवाली, अपने पतिको ठगनेवाली और नित्य धर्मका भाषण करनेमें निपुण होंगी। कलियुगमें इस प्रकारकी पापपरायण स्त्रियाँ होती हैं॥ ४८-४९½॥

हे राजन्! आहारकी शुद्धिसे ही अन्तःकरणकी शुद्धि होती है और हे नृपश्रेष्ठ! चित्त शुद्ध होनेपर ही धर्मका प्रकाश होता है। आचारसंकरता (दूसरे वर्णोंके अनुसार

आचरण)-दोषसे धर्ममें व्यतिक्रम (विकार) उत्पन्न होता है और धर्ममें विकृति होनेपर वर्णसंकरता उत्पन्न होती है। हे राजन्! इस प्रकार सभी धर्मोंसे हीन कलियुगमें अपने-अपने वर्णाश्रम-धर्मकी चर्चा भी कहीं नहीं सुनायी देती। हे राजन्! धर्मज्ञ और श्रेष्ठजन भी अधर्म करने लग जाते हैं। यह कलियुगका स्वभाव ही है; किसीके भी द्वारा इसका प्रतीकार नहीं किया जा सकता। अत: हे राजेन्द्र! इस कालमें स्वभावसे ही पाप करनेवाले मनुष्योंकी निष्कृति सामान्य उपायसे नहीं हो सकती॥ ५०—५४१/२ ॥

जनमेजय बोले—हे भगवन्! हे समस्त धर्मोंके ज्ञाता! हे समस्त शास्त्रोंमें निपुण! अधर्मके बाहुल्यवाले कलियुगमें मनुष्योंकी क्या गति होती है? यदि उससे निस्तारका कोई उपाय हो तो उसे दयापूर्वक मुझे बतलाइये॥ ५५-५६ ॥

व्यासजी बोले—हे महाराज! इसका एक ही उपाय है दूसरा नहीं है; समस्त पापोंके शमनके लिये देवीके चरणकमलका ध्यान करना चाहिये। हे राजन्! देवीके पापदाहक नाममें जितनी शक्ति है, उतने पाप तो हैं ही नहीं। इसलिये भयकी क्या आवश्यकता? यदि विवशतापूर्वक भी भगवतीके नामका उच्चारण हो जाय, तो वे क्या-क्या दे देती हैं, उसे जाननेमें भगवान् शंकर आदि भी समर्थ नहीं हैं!॥ ५७—५९ ॥

भगवती देवीके नामका स्मरण ही समस्त पापोंका प्रायश्चित्त है, इसलिये हे राजन्! मनुष्यको कलिके भयसे पुण्यक्षेत्रमें निवास करना चाहिये और पराम्बाके नामका निरन्तर स्मरण करना चाहिये। जो देवीको भक्तिभावसे नमस्कार करता है, वह प्राणियोंका छेदन-भेदन और सारे संसारको पीड़ित करके भी उन पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ ६०-६११/२ ॥

हे राजन्! यह मैंने आपसे सम्पूर्ण शास्त्रोंके रहस्यको कह दिया, इसपर भलीभाँति विचारकर आप देवीके चरणकमलकी आराधना करें। [वैसे तो] सभी लोग 'अजपा' नामक गायत्रीका जप करते हैं, लेकिन वे [मायासे मोहित होनेके कारण] उन महामायाकी महिमा और महान् वैभवको नहीं जानते। सभी ब्राह्मण अपने हृदयमें गायत्रीका जप करते हैं, परंतु वे भी उन महामायाकी महिमा और उनके महान् वैभवको नहीं जानते। हे राजन्! युगधर्मकी व्यवस्थाके विषयमें आपने जो कुछ पूछा था, यह सब मैंने कह दिया, अब आप और क्या सुनना चाहते हैं?॥ ६२—६५ ॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत षष्ठ स्कन्धका 'युगधर्मव्यवस्थावर्णन' नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ११ ॥

बारहवाँ अध्याय

पवित्र तीर्थोंका वर्णन, चित्तशुद्धिकी प्रधानता तथा इस सम्बन्धमें विश्वामित्र और वसिष्ठके परस्पर वैरकी कथा, राजा हरिश्चन्द्रका वरुणदेवके शापसे जलोदरग्रस्त होना

राजा बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! अब आप मुझे मनुष्यों और देवताओंके द्वारा सेवनीय इस पृथ्वीपर स्थित पुण्य तीर्थों, क्षेत्रों तथा नदियोंके विषयमें बताइये। उन तीर्थोंमें स्नान तथा दानका जैसा फल मिलता है, उसे और विशेषरूपसे तीर्थयात्राकी विधि तथा नियमोंको भी बताइये॥ १-२ ॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! सुनिये, मैं उन विविध तीर्थोंका वर्णन करूँगा, जिन तीर्थोंमें देवियोंके प्रशस्त मन्दिर विद्यमान हैं॥ ३ ॥

नदियोंमें गंगा श्रेष्ठ हैं, इसी प्रकार यमुना, सरस्वती, नर्मदा, गण्डकी, सिन्धु, गोमती, तमसा, कावेरी, चन्द्रभागा, पुण्या, शुभ वेत्रवती, चर्मण्वती, सरयू, तापी तथा साभ्रमती भी हैं—इन्हें मैंने बतला दिया। हे राजन्! इनके अतिरिक्त सैकड़ों अन्य नदियाँ भी हैं। उनमेंसे समुद्रमें गिरनेवाली नदियाँ पुण्यमयी हैं तथा समुद्रमें न गिरनेवाली नदियाँ अल्प पुण्यवाली हैं। समुद्रगामिनी नदियोंमें वे बहुत पवित्र हैं, जो

सदा जलपूरित होकर बहती हैं। श्रावण और भाद्रपद—इन दो महीनोंमें सभी नदियाँ रजस्वला होती हैं; क्योंकि उनमें वर्षाकालमें ग्रामीणजल प्रवाहित होता है॥ ४—७१/२॥

पुष्कर, कुरुक्षेत्र, धर्मारण्य, प्रभास, प्रयाग, नैमिषारण्य और विख्यात अर्बुदारण्य—ये अत्यन्त पवित्र तीर्थ हैं। इसी प्रकार श्रीशैल, सुमेरु और गन्धमादन पवित्र पर्वत हैं। सरोवरोंमें सर्वविख्यात मानसरोवर, श्रेष्ठ बिन्दुसर और पवित्र अच्छोदसरोवर पुण्य सरोवर हैं॥ ८—१०१/२॥

इसी प्रकार शुद्ध मनवाले मुनियोंके आश्रम भी पुण्यस्थल हैं। विख्यात बदरिकाश्रम सदैव पुण्यशाली आश्रमके रूपमें कहा गया है जहाँ नर-नारायण नामके दो मुनियोंने तपस्या की थी। ऐसे ही वामनाश्रम और शतयूपाश्रम भी विख्यात हैं। जिस ऋषिने जहाँ तपस्या की, वह आश्रम उसीके नामसे प्रसिद्ध हो गया॥ ११—१३॥

हे राजन्! इस प्रकार इस भूतलपर असंख्य पवित्र पुण्यस्थल हैं, जो मुनियोंद्वारा पवित्र कहे गये हैं। हे राजन्! इन सभी स्थानोंमें देवीके मन्दिर हैं, जो दर्शन कर लेने मात्रसे पापका हरण करते हैं, वहाँ बहुत-से भक्त नियमपूर्वक वास करते हैं। उन कतिपय स्थानोंका वर्णन आगे करूँगा॥ १४-१५१/२॥

हे राजन्! तीर्थ, दान, व्रत, यज्ञ, तपस्या और सभी पुण्यकर्म शुद्धिसापेक्ष हैं। द्रव्यशुद्धि, क्रियाशुद्धि और मानसिक शुद्धिके आधारपर ही तीर्थ, तप और व्रत पवित्र होते हैं। कभी द्रव्यशुद्धि और कभी क्रियाशुद्धि हो पाती है, लेकिन हे राजन्! मानसिक शुद्धि सबके लिये सदा ही दुर्लभ होती है; क्योंकि हे नृप! मन बड़ा चंचल है और अनेक विषयोंमें भटकता रहता है। तब हे राजन्! विविध विषयोंके आश्रित रहनेवाला मन कैसे शुद्ध रह सकता है?॥ १६—१९१/२॥

काम, क्रोध, लोभ, अहंकार तथा मद—ये सभी तपस्या, तीर्थसेवन और व्रतोंमें विघ्नकारी होते हैं। हे राजन्! अहिंसा, सत्य, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह और अपने धर्मका पालन—समस्त तीर्थोंका फल प्रदान करते हैं। नित्यकर्मके परित्याग और मार्गमें संसर्गदोषसे तीर्थमें जाना व्यर्थ हो जाता है, केवल पाप ही लगता है॥ २०—२२१/२॥

हे राजन्! तीर्थ तो केवल शरीरजन्य मलको ही धोते हैं, वे अन्तःकरणको धोनेमें समर्थ नहीं होते। यदि वे तीर्थ [मनको शुद्ध करनेमें] समर्थ होते तो गंगाके तटपर रहनेवाले विश्वामित्र और वसिष्ठसदृश ईश्वर-चिन्तनपरायण भक्त मुनि द्रोहभावसे युक्त क्यों होते? इस प्रकार तीर्थोंमें रहनेवाले लोग भी सदैव राग-द्वेषपरायण तथा काम-क्रोधसे व्याकुल रहते हैं। अतः चित्तशुद्धिरूपी तीर्थ गंगा आदि तीर्थोंसे भी अधिक पवित्र है॥ २३—२६॥

हे राजन्! यदि दैवयोगसे ज्ञाननिष्ठ पुरुषका सत्संग प्राप्त हो जाय तो वह आन्तरिक मैलको धो देता है। हे राजन्! वेद, शास्त्र, व्रत, तप, यज्ञ तथा दान—ये चित्तकी शुद्धिके कारण नहीं हैं॥ २७-२८॥

ब्रह्माजीके पुत्र वसिष्ठ वेदविद्यामें पारंगत थे और गंगाजीके तटपर रहते थे, फिर भी वे राग-द्वेषसे युक्त हो गये। विश्वामित्र और वसिष्ठके मध्य देवताओंको भी विस्मयमें डाल देनेवाला आडीबक नामक महायुद्ध हुआ, जो द्वेषके कारण व्यर्थ ही हुआ था। उस युद्धमें परम तपस्वी विश्वामित्र बक हुए थे, उन्हें वसिष्ठने हरिश्चन्द्रके कारण शाप दे दिया था। विश्वामित्रने भी वसिष्ठको शाप देकर आडी पक्षीके देहवाला बना दिया। इस प्रकार निर्मल कान्तिवाले वे दोनों मुनि शापके कारण आडी और बक पक्षीके रूपमें हो गये। वे मानसरोवरके तटपर रहने लगे और वहाँ नखों और चोंचके प्रहारसे भयंकर युद्ध करते रहे। वे दोनों ऋषि मदोन्मत्त सिंहोंके समान रोषयुक्त होकर दस हजार वर्षोंतक आपसमें युद्ध करते रहे॥ २९—३४॥

राजा बोले—श्रेष्ठ तपस्वी और धर्मपरायण वे दोनों मुनिश्रेष्ठ किस कारण परस्पर वैरपरायण हुए? उन दोनों बुद्धिमान् ऋषियोंने किस कारणसे एक-दूसरेको शाप दिया? जो मनुष्योंके लिये कष्टकारक और दुःखदायक सिद्ध हुए॥ ३५-३६॥

व्यासजी बोले—पूर्वकालमें सूर्यवंशमें त्रिशंकुके पुत्र हरिश्चन्द्र नामक एक श्रेष्ठ राजा हुए, जो रामचन्द्रजीके पूर्वज थे॥ ३७॥

वे राजर्षि सन्तानहीन थे, अतः पुत्रकी कामनासे वरुणदेवकी प्रसन्नताके लिये उन्होंने 'नरमेध' नामक दुष्कर

महायज्ञ करनेकी प्रतिज्ञा की। उस यज्ञका व्रत लेनेसे वरुणदेव उनपर प्रसन्न हो गये और राजाकी परम रूपवती भार्याने गर्भ धारण किया॥ ३८-३९॥

रानीको गर्भवती देखकर राजा प्रसन्न हुए और उन्होंने विधिपूर्वक गर्भको संस्कारित करनेवाला कर्म सम्पन्न कराया॥ ४०॥

हे राजन्! रानीने समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न पुत्रको जन्म दिया। पुत्रके उत्पन्न होनेपर राजा बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने जातकर्म आदि संस्कारकी उत्तम विधि सम्पन्न की। ब्राह्मणोंको विशेषरूपसे स्वर्ण और पयस्विनी गौएँ प्रदान कीं॥ ४१-४२॥

हे महाराज! जब घरमें जन्मोत्सव धूमधामसे मनाया जा रहा था। उसी समय ब्राह्मणका वेश धारण करके वरुणदेव आये, आसन प्रदान करके राजाने विधिवत् उनकी पूजा की। आगमनके विषयमें पूछे जानेपर 'मैं वरुण हूँ'—यह वाक्य उन्होंने राजासे कहा। हे राजेन्द्र! जैसा आपने संकल्प किया था, अब अपने पुत्रको बलिपशु बनाकर परम पवित्र यज्ञ कीजिये और सत्यवादी बनिये॥ ४३—४५॥

उनकी यह बात सुनकर राजा व्यथासे व्याकुल तथा विह्वल हो गये; पुनः अपनी व्यथाको उन्होंने श्रद्धापूर्वक हाथ जोड़कर वरुणदेवसे कहा—हे स्वामिन्! मैंने जिस यज्ञका संकल्प लिया है, उस यज्ञको मैं विधिपूर्वक करूँगा और सत्यवादी होऊँगा॥ ४६-४७॥

हे सुरश्रेष्ठ! एक माह पूर्ण होनेपर मेरी धर्मपत्नी [जननाशौचसे] शुद्ध हो जायँगी, पत्नीके शुद्ध हो जानेपर मैं उस पशुयज्ञको करूँगा॥ ४८॥

व्यासजी बोले—राजाके यह कहनेपर वरुणदेव अपने घर चले गये। अब राजा सन्तुष्ट हो गये, किंतु कुछ-कुछ चिन्तातुर रहने लगे॥ ४९॥

एक माह पूर्ण होनेपर वरुणदेव सुन्दर और मृदुभाषी ब्राह्मणका वेश बनाकर परीक्षा लेनेके लिये पुनः राजमहलमें आये॥ ५०॥

तब सम्यक् रूपसे पूजित होकर सुखदायी आसनपर विराजमान उन सुरश्रेष्ठ वरुणसे राजाने विनयपूर्वक उद्देश्यपरक यह बात कही—॥ ५१॥

हे स्वामिन्! पुत्र तो अभी संस्काररहित है, उसे यूपमें कैसे बाँधूँ? संस्कार करके उसे क्षत्रिय बनाकर मैं उस उत्तम यज्ञको सम्पन्न करूँगा॥ ५२॥

हे देव! संस्कारहीन बालकका कहीं भी अधिकार नहीं होता है, अतः यदि मुझपर दया करें तो मुझे अपना सेवक और दीन जानकर कुछ समय और दे दीजिये॥ ५३॥

वरुण बोले—हे राजन्! आप समयको आगे बढ़ाकर धोखा दे रहे हैं; निःसन्तान होनेके कारण आपका पुत्रस्नेह छोड़ना दुष्कर है—इसे मैं जानता हूँ। हे राजेन्द्र! आपकी मधुर वाणी सुनकर मैं घर जा रहा हूँ, कुछ समयतक प्रतीक्षा करके मैं पुनः आपके घर आऊँगा। हे तात! उस समय आपको अपनी बातको सत्य सिद्ध करना होगा, अन्यथा मैं क्रुद्ध होकर आपको शाप दे दूँगा॥ ५४—५६॥

राजा बोले—हे जलाधिनाथ! मैं समावर्तनसंस्कार हो जानेपर पुत्रको यज्ञ-पशु बनाकर विधिपूर्वक यज्ञ करूँगा॥ ५७॥

व्यासजी बोले—राजाका यह वचन सुनकर वरुणदेव प्रसन्न होकर 'ठीक है'—ऐसा कहकर तुरंत चले गये और राजा भी स्वस्थचित्त हो गये॥ ५८॥

इधर राजाका रोहित नामका वह पुत्र बड़ा हो गया; वह बुद्धिमान् और समस्त विद्याओंमें पारंगत हो गया॥ ५९॥

उसे यज्ञका सब कारण विस्तारपूर्वक ज्ञात हो गया। तब वह अपनी मृत्यु जानकर अत्यन्त भयभीत हो गया॥ ६०॥

[एक दिन] वह वीर भागकर राजमहलसे एक अगम्य पर्वतकी गुफामें चला गया और भयग्रस्त होकर वहाँ रहने लगा॥ ६१॥

समयपर वरुणदेव यज्ञकी अभिलाषासे राजमहलमें आये और राजासे बोले—हे राजन्! यज्ञ कीजिये॥ ६२॥

यह सुनकर उदास मुखवाले राजाने व्यथित होकर उनसे कहा—हे सुरश्रेष्ठ! मैं क्या करूँ? मेरा पुत्र कहीं चला गया है॥ ६३॥

राजाकी यह बात सुनकर जलचरोंके अधिपति वरुणदेवने क्रुद्ध होकर असत्यवादी राजाको शाप दे दिया—कपटविशारद हे राजन्! तुमने मुझे धोखा दिया है, अतः तुम्हारे शरीरमें जलोदर नामक रोग हो जाय॥ ६४-६५॥

ऐसा शाप देकर पाशधारी वरुणदेव अपने लोकको

चले गये और रोगसे पीड़ित होकर राजा अपने महलमें चिन्तित रहने लगे॥ ६६॥

जब शापजन्य रोगसे राजा बहुत व्यथित हो गये तब उनके पुत्रने भी पिताके रोग-पीड़ित होनेकी बात सुनी॥ ६७॥

किसी पथिकने उससे कहा—हे राजपुत्र! शापके कारण जलोदर रोगसे ग्रस्त तुम्हारे पिता बहुत अधिक दुःखी हैं॥ ६८॥

हे दुर्बुद्धि! तुम्हारा जीवन नष्ट हो गया, तुम्हारा जन्म लेना व्यर्थ है; क्योंकि तुम अपने पिताको दुःखी अवस्थामें छोड़कर पर्वतकी गुफामें छिपे हो॥ ६९॥

हे कुपुत्र! तुम्हारे इस शरीरसे तुम्हारे जन्म लेनेका क्या लाभ है, जो तुम अपने पिताको दुःखी करके यहाँ रह रहे हो?॥ ७०॥

राजा हरिश्चन्द्र तुम्हारे लिये दुःखी और व्याधिसे पीड़ित होकर विलाप कर रहे हैं। पिताके लिये सत्पुत्रको प्राणोंतकका त्याग कर देना चाहिये—यह सिद्धान्त है।॥ ७१॥

व्यासजी बोले—तब पथिककी धर्मसंगत बात सुनकर जैसे ही रोहितने पीडाग्रस्त अपने पिताको देखनेके लिये जानेका विचार किया, वैसे ही ब्राह्मणका रूप धारण करके इन्द्र वहाँ आ गये। हे भारत! उन्होंने दयालुकी भाँति एकान्तमें हितकी यह बात कही—हे राजकुमार! तुम मूर्ख हो, जो वहाँ जानेका व्यर्थ विचार कर रहे हो। तुम नहीं जानते कि तुम्हारे पिता तुम्हारे लिये क्यों दुःखी हैं?॥ ७२—७४॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत षष्ठ स्कन्धका 'हरिश्चन्द्रकी जलोदरव्याधिपीड़ाका वर्णन' नामक बारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १२॥

तेरहवाँ अध्याय

राजा हरिश्चन्द्रका शुनःशेपको यज्ञीय पशु बनाकर यज्ञ करना, विश्वामित्रसे प्राप्त वरुणमन्त्रके जपसे शुनःशेपका मुक्त होना, परस्पर शापसे विश्वामित्र और वसिष्ठका बक तथा आडी होना

इन्द्र बोले—पूर्वकालमें राजाने वरुणदेवसे यह प्रतिज्ञा की थी कि मैं अपने प्रिय पुत्रको यज्ञीय पशु बनाकर यज्ञ करूँगा—यह उन्होंने बड़ा साहस किया था॥ १॥

हे महामते! तुम्हारे वहाँ जानेपर रोगसे दुःखी तुम्हारे निर्दयी पिता तुम्हें यज्ञीय पशु बनाकर यूपमें बाँधकर मार डालेंगे॥ २॥

अमित तेजस्वी इन्द्रके द्वारा इस प्रकार रोक दिये जानेपर मायेश्वरीकी मायासे अत्यन्त मोहित होकर वह राजपुत्र वहीं रुक गया॥ ३॥

इस प्रकार जब-जब वह पिताको रोगसे पीड़ित सुनकर जानेका विचार करता था, तब-तब इन्द्र उसे रोक देते थे॥ ४॥

एक दिन राजा हरिश्चन्द्रने अत्यन्त दुःखी होकर एकान्तमें बैठे हुए सर्वज्ञ और कल्याणकारी गुरु वसिष्ठके पास जाकर पूछा—॥ ५॥

राजा बोले—हे भगवन्! मैं क्या करूँ? मैं अत्यन्त भयभीत और कष्टसे पीड़ित हूँ। इस महाव्याधिसे पीड़ित मुझ दुःखितचित्तकी रक्षा कीजिये॥ ६॥

वसिष्ठजी बोले—हे राजन्! सुनिये, रोगनाशका एक प्रशस्त उपाय है। धर्मशास्त्रमें तेरह प्रकारके पुत्र कहे गये हैं॥ ७॥

इसलिये किसी ब्राह्मणके उत्तम बालकको उसका मनोभिलषित धन देकर क्रय करके उसे ले आइये और उत्तम यज्ञको सम्पन्न कीजिये॥ ८॥

हे राजन्! इस प्रकार यज्ञ करनेसे आपका रोग नष्ट हो जायगा और वरुणदेव भी हर्षित होकर प्रसन्नचित्त हो जायँगे॥ ९॥

व्यासजी बोले—उनकी ऐसी बात सुनकर राजाने मन्त्रीसे कहा—हे महामते! इस विषयमें प्रयत्नपूर्वक पता लगाइये॥ १०॥

यदि कोई लोभी पिता अपने पुत्रको देता है तो वह जितना धन माँगे, उतना देकर उसे ले आइये॥ ११॥

सब प्रकारसे प्रयास करके यज्ञके लिये ब्राह्मणबालक लाना ही चाहिये। मेरे कार्यमें तुम्हें किसी भी प्रकारका बुद्धिशैथिल्य नहीं करना चाहिये॥ १२॥

तुम्हें प्रत्येक ब्राह्मणसे प्रार्थना करनी चाहिये कि धन लेकर राजाको पुत्र दे दीजिये, उसे यज्ञके लिये यज्ञीय पशु बनाना है॥ १३॥

उन राजासे यह आदेश प्राप्तकर मन्त्रीने यज्ञकार्यके लिये राज्यके प्रत्येक गाँव तथा घरमें पता लगाया॥ १४॥

इस प्रकार इस विषयमें पता लगाते हुए उसे अजीगर्त नामक एक दुःखी और निर्धन ब्राह्मण मिला, जिसके तीन पुत्र थे॥ १५॥

उस ब्राह्मणने जितना धन माँगा, उतना देकर वह मन्त्रिश्रेष्ठ उसके मझले पुत्र शुनःशेपको ले आया॥ १६॥

कार्यकुशल मन्त्रीने पशुयोग्य ब्राह्मणपुत्र शुनःशेपको लाकर राजाको समर्पित कर दिया॥ १७॥

इससे अत्यन्त प्रसन्न होकर राजाने वेदज्ञ ब्राह्मणोंको बुलाकर यज्ञके लिये सामग्री एकत्र करवायी॥ १८॥

यज्ञके प्रारम्भ होनेपर महामुनि विश्वामित्रने वहाँ शुनः-शेपको बँधा देखकर राजाको मना करते हुए कहा— ॥ १९॥

हे राजन्! ऐसा साहस न कीजिये, इस ब्राह्मणबालकको छोड़ दीजिये। हे आयुष्मन्! मैं प्रार्थना करता हूँ, इससे आपको सुखकी प्राप्ति होगी॥ २०॥

यह शुनःशेप क्रन्दन कर रहा है, अतः करुणा मुझे बहुत व्यथित कर रही है। हे राजेन्द्र! मेरी बात मानिये; हे नृप! दयावान् बनिये॥ २१॥

पूर्वकालमें स्वर्गके इच्छुक, पवित्रव्रती तथा दया-परायण जो क्षत्रियगण थे, वे दूसरोंके शरीरकी रक्षाके लिये अपने प्राण दे देते थे और आप अपने शरीरकी रक्षाके लिये बलपूर्वक ब्राह्मणपुत्रका वध कर रहे हैं। हे राजेन्द्र! पाप मत कीजिये और इस बालकपर दयावान् होइए॥ २२-२३॥

हे राजन्! अपने देहके प्रति सभीको एक-जैसी प्रीति होती है—यह बात आप स्वयं जानते हैं। यदि आप मेरी बातको प्रमाण मानते हैं तो इस बालकको छोड़ दीजिये॥ २४॥

व्यासजी बोले—दुःखसे अत्यन्त पीड़ित राजाने मुनिकी बातका अनादर करके उस बालकको नहीं छोड़ा; इससे वे तपस्वी मुनि उनके ऊपर अत्यन्त क्रुद्ध हो गये॥ २५॥

वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ उन दयालु विश्वामित्रने शुनःशेपको पाशधारी वरुणदेवके मन्त्रका उपदेश दिया। अपने वधके भयसे व्याकुल शुनःशेप भी वरुणदेवका स्मरण करते हुए उच्च स्वरसे बार-बार मन्त्रका जप करने लगा॥ २६-२७॥

जलचरोंके अधिपति करुणासिन्धु वरुणदेवने वहाँ आकर स्तुति करते हुए उस ब्राह्मणपुत्र शुनःशेपको छुड़ा दिया और राजाको रोगमुक्त करके वे वरुणदेव अपने लोकको चले गये। विश्वामित्रने मृत्युसे छूटे हुए उस शुनःशेपको अपना पुत्र बना लिया॥ २८-२९॥

राजाने महात्मा विश्वामित्रकी बात नहीं मानी, अतः वे गाधिपुत्र विश्वामित्र मन-ही-मन राजाके ऊपर बहुत क्रुद्ध हुए॥ ३०॥

एक समय राजा घोड़ेपर सवार होकर वनमें गये। वे सूअरको मारनेकी इच्छासे ठीक दोपहरके समय कौशिकी नदीके तटपर पहुँचे॥ ३१॥

वहाँ विश्वामित्रने वृद्ध ब्राह्मणका वेश धारण करके छलपूर्वक उनका सर्वस्व माँग लिया और उनके महान् राज्यपर अपना अधिकार कर लिया॥ ३२॥

जिससे [वसिष्ठके] यजमान राजा हरिश्चन्द्र अत्यन्त कष्ट पाने लगे। एक बार संयोगवश वनमें आये हुए विश्वामित्रसे वसिष्ठने कहा—हे क्षत्रियाधम! हे दुर्बुद्धे! तुमने व्यर्थ ही ब्राह्मणका वेश बना रखा है, बगुलेके समान वृत्तिवाले हे दाम्भिक! तुम व्यर्थमें गर्व क्यों करते हो?॥ ३३-३४॥

हे जाल्म! तुमने मेरे यजमान नृपश्रेष्ठ हरिश्चन्द्रको बिना अपराधके महान् कष्टमें क्यों डाल दिया?॥ ३५॥

तुम बगुलेके समान ध्यानपरायण हो। अतः तुम 'बक' (बगुला) हो जाओ। वसिष्ठके द्वारा इस प्रकार शापप्राप्त विश्वामित्रने उनसे कहा—हे आयुष्मन्! जबतक मैं बक रहूँगा, तबतक तुम भी आडी पक्षी बनकर

रहोगे॥ ३६१/२॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार क्रोधसे व्याकुल उन दोनोंने एक-दूसरेको शाप दे दिया और एक सरोवरके समीप वे दोनों मुनि 'आडी' और 'बक' के रूपमें अण्डोंसे उत्पन्न हुए। दिव्य मानसरोवरके तटपर एक वृक्षपर घोंसला बनाकर बकरूपधारी विश्वामित्र और एक दूसरे वृक्षपर उत्तम घोंसला बनाकर आडीरूपधारी वसिष्ठ परस्पर द्वेषपरायण होकर रहने लगे। वे दोनों कोपाविष्ट होकर प्रतिदिन घोर क्रन्दन करते हुए सभी लोगोंके लिये दुःखदायी युद्ध करते थे। वे दोनों चोंच और पंखोंके प्रहार तथा नखोंके आघातसे परस्पर चोट पहुँचाते थे। रक्तसे लथपथ वे दोनों खिले हुए किंशुकके फूल-जैसे प्रतीत होते थे। हे महाराज! इस प्रकार पक्षीरूपधारी दोनों मुनि शापरूपी पाशमें जकड़े हुए वहाँ बहुत वर्षोंतक पड़े रहे॥ ३७—४२१/२॥

राजा बोले—हे विप्रर्षे! वे दोनों मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ और विश्वामित्र शापसे किस प्रकार मुक्त हुए, यह मुझे बताइये, मुझे बड़ा कौतूहल है॥ ४३१/२॥

व्यासजी बोले—लोकपितामह ब्रह्माजी उन दोनोंको युद्ध करते देखकर समस्त दयापरायण देवताओंके साथ वहाँ आये। सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीने उन दोनोंको समझाकर

युद्धसे विरत करके परस्पर दिये गये शापसे भी मुक्त कर दिया॥ ४४-४५॥

इसके बाद सभी देवगण अपने-अपने लोकोंको चले गये, कमलयोनि प्रतापी ब्रह्माजी शीघ्र हंसपर आरूढ़ होकर सत्यलोकको चले गये और प्रजापतिके उपदेशसे परस्पर स्नेह करके विश्वामित्र तथा वसिष्ठजी भी अपने-अपने आश्रमोंको शीघ्र चले गये। हे राजन्! इस प्रकार मैत्रावरुणि वसिष्ठने भी अकारण ही विश्वामित्रके साथ परस्पर दुःखप्रद युद्ध किया था॥ ४६—४८१/२॥

इस संसारमें मनुष्य, देवता या दैत्य—कौन ऐसा है, जो अहंकारपर विजय प्राप्तकर सदा सुखी रह सके। अतः हे राजन्! चित्तकी शुद्धि महापुरुषोंके लिये भी दुर्लभ है। उसे प्रयत्नपूर्वक शुद्ध करना चाहिये; उसके बिना तीर्थयात्रा, दान, तपस्या, सत्य आदि जो कुछ भी धर्मसाधन है; वह सब निरर्थक है॥ ४९—५१॥

(सबके देहोंमें तथा प्राणियोंके धर्मकर्मोंमें सात्त्विकी, राजसी और तामसी—यह तीन प्रकारकी श्रद्धा कही गयी है। इनमें यथोक्त फल देनेवाली सात्त्विकी श्रद्धा जगत्में सदा दुर्लभ होती है। विधिविधानसे युक्त राजसी श्रद्धा उसका आधा फल देनेवाली कही गयी है। हे राजन्! काम-क्रोधके वशीभूत पुरुषोंकी श्रद्धा तामसी होती है। हे नृपश्रेष्ठ! वह फलविहीन होती है और कीर्ति करनेवाली भी नहीं होती।)

कलियुगके दोषोंसे भयभीत व्यक्तिको कथा-श्रवण आदिके द्वारा चित्तको वासनारहित करके देवीकी पूजामें तत्पर रहते हुए, वाणीसे देवीके नामोंको ग्रहण करते हुए, उनके गुणोंका कीर्तन करते हुए तथा उनके चरण-कमलका ध्यान करते हुए तीर्थ आदिमें नित्य वास करना चाहिये॥ ५२-५३॥

ऐसा करनेसे उसे कभी कलियुगका भय नहीं होगा, इससे पापी प्राणी भी अनायास ही संसारसे मुक्त हो जाता है॥ ५४॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत षष्ठ स्कन्धका 'आडीबकयुद्धसहित देवीमाहात्म्यवर्णन' नामक तेरहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १३॥

चौदहवाँ अध्याय

राजा निमि और वसिष्ठका एक-दूसरेको शाप देना, वसिष्ठका मित्रावरुणके पुत्रके रूपमें जन्म लेना

जनमेजय बोले—हे महाभाग! ब्रह्माके पुत्र मुनि वसिष्ठका 'मैत्रावरुणि'—यह नाम कैसे पड़ा? हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ! किस कर्म अथवा गुणके कारण उन्होंने यह नाम प्राप्त किया। उनके नाम पड़नेका कारण मुझे बताइये॥ १-२॥

व्यासजी बोले—हे नृपश्रेष्ठ! सुनिये, वसिष्ठजी ब्रह्माके पुत्र हैं, उन महातेजस्वीने निमिके शापसे वह शरीर त्यागकर पुनः जन्म लिया॥ ३॥

हे राजन्! उनका जन्म मित्र और वरुणके यहाँ हुआ था, इसीलिये इस संसारमें उनका 'मैत्रावरुणि'—यह नाम विख्यात हुआ॥ ४॥

राजा बोले—राजा निमिने ब्रह्माजीके पुत्र महात्मा वसिष्ठको शाप क्यों दिया? राजाका वह दारुण शाप मुनिको क्यों लग गया?॥ ५॥

हे मुने! निरपराध मुनिको राजाने क्यों शाप दे दिया; हे धर्मज्ञ! उस शापका कारण यथार्थरूपमें बताइये?॥ ६॥

व्यासजी बोले—इसका सम्यक् रूपसे निर्णीत कारण तो मैं आपको पहले ही बता चुका हूँ। हे राजन्! यह संसार मायाके तीनों गुणोंसे व्याप्त है॥ ७॥

राजा धर्म करें और तपस्वी तप करें—यह स्वाभाविक कर्म है, परंतु सभी प्राणियोंका मन गुणोंसे आबद्ध रहनेके कारण विशुद्ध नहीं रह पाता॥ ८॥

राजालोग काम और क्रोधसे अभिभूत रहते हैं और उसी प्रकार तपस्वीगण भी लोभ और अहंकारयुक्त होकर कठोर तपस्या करते हैं॥ ९॥

हे राजन्! क्षत्रियगण रजोगुणसे युक्त होकर यज्ञ करते थे, वैसे ही ब्राह्मण भी थे। हे राजन्! कोई भी सत्त्वगुणसे युक्त नहीं था॥ १०॥

ऋषिने राजाको शाप दिया और तब राजाने भी मुनिको शाप दे दिया। इस प्रकार दैववशात् दोनोंको बहुत दुःख प्राप्त हुआ॥ ११॥

हे राजन्! इस त्रिगुणात्मक जगत्में प्राणियोंके लिये द्रव्यशुद्धि, क्रियाशुद्धि और उज्ज्वल मनःशुद्धि दुर्लभ है॥ १२॥

यह पराशक्तिका ही प्रभाव है और कोई कभी इसका अतिक्रमण नहीं कर सकता। जिसपर वे भगवती कृपा करना चाहती हैं, उसे तत्काल मुक्त कर देती हैं॥ १३॥

ब्रह्मा, विष्णु और महेश आदि महान् देवता भी मुक्त नहीं हो पाते, किंतु सत्यव्रत आदि जैसे अधम भी मुक्त हो जाते हैं॥ १४॥

यद्यपि तीनों लोकोंमें भगवतीके रहस्यको कोई नहीं जानता है, फिर भी वे भक्तके वशमें हो जाती हैं—ऐसा निश्चित है॥ १५॥

अतः दोषोंके निर्मूलनके लिये उनकी भक्ति करनी चाहिये। यदि वह भक्ति राग, दम्भ आदिसे युक्त हो तो वह नाश करनेवाली होती है॥ १६॥

इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न निमि नामके एक राजा थे। वे रूपवान्, गुणवान्, धर्मात्मा और प्रजावत्सल थे, वे सत्यवादी, दानशील, यज्ञकर्ता, ज्ञानी और पुण्यात्मा थे। उन बुद्धिमान् और प्रजापालक राजा निमिको इक्ष्वाकुका बारहवाँ पुत्र माना जाता है॥ १७-१८॥

उन्होंने ब्राह्मणोंके लिये गौतममुनिके आश्रमके समीप जयन्तपुर नामका एक नगर बसाया॥ १९॥

उनके मनमें एक बार यह राजसी बुद्धि उत्पन्न हुई कि बहुत समयतक चलनेवाले और विपुल दक्षिणावाले यज्ञके द्वारा आराधना करूँ॥ २०॥

तब राजाने यज्ञकार्यके लिये अपने पिता इक्ष्वाकुसे आज्ञा लेकर महात्माओंके कथनानुसार समस्त यज्ञीय सामग्री एकत्र करायी॥ २१॥

इसके बाद राजाने भृगु, अंगिरा, वामदेव, गौतम, वसिष्ठ, पुलस्त्य, ऋचीक, पुलह और क्रतु—इन सर्वज्ञ, वेदमें पारंगत, यज्ञविद्याओंमें कुशल एवं वेदज्ञ मुनियों और तपस्वियोंको आमन्त्रित किया॥ २२-२३॥

समस्त सामग्री एकत्रकर धर्मज्ञ राजाने अपने गुरु वसिष्ठकी पूजा करके विनयसे युक्त होकर उनसे कहा— ॥ २४ ॥

हे मुनिश्रेष्ठ! मैं यज्ञ करना चाहता हूँ। अतः यज्ञ करानेकी कृपा करें। हे कृपानिधे! आप सर्वज्ञ हैं और मेरे गुरु हैं; इस समय आप मेरा कार्य सम्पन्न कीजिये ॥ २५ ॥

मैंने समस्त यज्ञीय सामग्री मँगवा ली है और उसका संस्कार भी करा लिया है। मेरा विचार है कि मैं पाँच हजार वर्षके लिये यज्ञ-दीक्षा ग्रहण कर लूँ ॥ २६ ॥

जिस यज्ञमें भगवती जगदम्बाकी आराधना होती हो, उस यज्ञको मैं उनकी प्रसन्नताके लिये विधिपूर्वक करना चाहता हूँ ॥ २७ ॥

निमिकी वह बात सुनकर वसिष्ठजीने राजासे कहा— हे नृपश्रेष्ठ! मैं इन्द्रके द्वारा यज्ञके लिये पहले ही वरण कर लिया गया हूँ। इन्द्र पराशक्ति नामक यज्ञको करनेके लिये तत्पर हैं और देवेन्द्रने पाँच सौ वर्षतक चलनेवाले यज्ञकी दीक्षा ले ली है। अतः हे राजन्! तबतक आप यज्ञ-सामग्रियोंकी रक्षा करें, इन्द्रके यज्ञके पूर्ण हो जानेपर उन देवराजका कार्य सम्पन्न करके मैं आ जाऊँगा। हे राजन्! तबतक आप समयकी प्रतीक्षा करें ॥ २८—३०½ ॥

राजा बोले—हे गुरुदेव! मैंने यज्ञके लिये दूसरे बहुत-से मुनियोंको निमन्त्रित कर दिया है तथा समस्त यज्ञीय सामग्रियाँ भी एकत्र कर ली हैं, मैं इन सबको [इतने समयतक] कैसे सुरक्षित रखूँगा? हे ब्रह्मन्! आप इक्ष्वाकुवंशके वेदवेत्ता गुरु हैं, आज मेरा कार्य छोड़कर आप अन्यत्र जानेके लिये क्यों उद्यत हैं? हे द्विजश्रेष्ठ! यह आपके लिये उचित नहीं है जो कि लोभसे व्याकुलचित्तवाले आप मेरा यज्ञ छोड़कर अन्यत्र जा रहे हैं ॥ ३१—३३½ ॥

राजाके इस प्रकार रोकनेपर भी वे गुरु वसिष्ठ इन्द्रके यज्ञमें चले गये। राजाने भी उदास होकर [अपना आचार्य बनाकर] गौतमऋषिका पूजन किया। उन्होंने हिमालयके पार्श्वभागमें समुद्रके निकट यज्ञ किया और उस यज्ञकर्ममें ब्राह्मणोंको बहुत दक्षिणा दी। हे राजन्! निमिने उस पाँच हजार वर्षवाले यज्ञकी दीक्षा ली और ऋत्विजोंको उनके इच्छानुसार धन और गौएँ प्रदान करके उनकी पूजा की, जिससे वे बहुत प्रसन्न हुए ॥ ३४—३६½ ॥

इन्द्रके पाँच सौ वर्षवाले यज्ञके समाप्त होनेपर वसिष्ठजी राजाके यज्ञको देखनेकी इच्छासे आये और आकरके राजाके दर्शनके लिये वहाँ रुके रहे ॥ ३७-३८ ॥

उस समय राजा निमि सोये हुए थे और उन्हें गहरी नींद आ गयी थी। सेवकोंने उन्हें नहीं जगाया, जिससे वे राजा मुनिके पास न आ सके। तब अपमानके कारण वसिष्ठजीको क्रोध आ गया। मिलनेके लिये निमिके न आनेसे मुनिश्रेष्ठ कुपित हो उठे। क्रोधके वशीभूत हुए उन मुनिने राजाको शाप दे दिया—'हे मूर्ख पार्थिव! मेरे द्वारा मना किये जानेपर भी तुम मुझ गुरुका त्याग करके दूसरेको अपना गुरु बनाकर शक्तिके अभिमानमें मेरी अवहेलना करके यज्ञमें दीक्षित हो गये हो, उससे तुम विदेह हो जाओगे। हे राजन्! तुम्हारा यह शरीर नष्ट हो जाय और तुम विदेह हो जाओ' ॥ ३९—४२½ ॥

व्यासजी बोले—उनका यह शापवचन सुनकर राजाके सेवकोंने शीघ्रतासे जाकर राजाको जगाया और उन्हें बताया कि मुनि वसिष्ठ बहुत क्रोधित हो गये हैं, तब उन कुपित मुनिके पास आकर निष्पाप राजाने मधुर शब्दोंमें युक्तिपूर्ण तथा सारगर्भित वचन कहा— ॥ ४३-४४½ ॥

हे धर्मज्ञ! इसमें मेरा दोष नहीं है, आप ही लोभके वशीभूत होकर मेरे बार-बार अनुरोध करनेपर भी मुझ यजमानको छोड़कर चले गये। हे विप्रवर! हे ब्राह्मण-श्रेष्ठ! ब्राह्मणको सदा सन्तोष रखना चाहिये—धर्मके इस सिद्धान्तको जानते हुए भी ऐसा निन्दित कर्म करके आपको लज्जा नहीं आ रही है। आप तो साक्षात् ब्रह्माजीके पुत्र और

वेद-वेदांगोंके सर्वश्रेष्ठ ज्ञाता हैं तो भी आप ब्राह्मणधर्मकी अत्यन्त कठिन और सूक्ष्म गतिको नहीं जानते। अपना दोष

मुझमें आरोपित करके आप मुझे व्यर्थ ही शाप देना चाहते हैं। सज्जनोंको चाहिये कि क्रोधका त्याग कर दें; क्योंकि यह अधिक दूषित है; क्रोधके वशीभूत होकर आपने मुझे व्यर्थ ही शाप दे दिया है। अत: आपकी भी यह क्रोधयुक्त देह आज ही नष्ट हो जाय॥ ४५—४९१/२॥

इस प्रकार राजाके द्वारा मुनि और मुनिके द्वारा राजा शापित हो गये और दोनों एक-दूसरेसे शाप पाकर बहुत दु:खी हुए। तब वसिष्ठजी अत्यधिक चिन्तातुर होकर ब्रह्माजीकी शरणमें गये और उन्होंने राजाके द्वारा प्रदत्त कठिन शापके विषयमें उनसे निवेदन किया॥ ५०-५११/२॥

वसिष्ठजी बोले—हे पिताजी! राजा निमिने मुझे शाप दे दिया है कि तुम्हारा यह शरीर आज ही नष्ट हो जाय। अत: शरीर नष्ट होनेसे प्राप्त कष्टके लिये मैं क्या करूँ? इस समय आप मुझे यह बतायें कि दूसरे शरीरकी प्राप्तिमें मेरे पिता कौन होंगे? हे पिताजी! दूसरे देहसे सम्बन्ध होनेपर भी मेरी स्थिति पूर्ववत् ही रहे। इस शरीरमें जैसा ज्ञान है, वैसा ही उस शरीरमें भी रहे। हे महाराज! आप समर्थ हैं; मुझपर कृपा करने योग्य हैं॥ ५२—५४१/२॥

वसिष्ठकी बात सुनकर ब्रह्माजी अपने उस पुत्रसे बोले—तुम मित्रावरुणके तेज हो, अत: इन्हींमें प्रवेश करके स्थिर हो जाओ। कुछ समय बाद तुम उन्हींसे अयोनिज पुत्रके रूपमें प्रकट होओगे; इसमें सन्देह नहीं है। इस प्रकार पुन: शरीर प्राप्त करके तुम धर्मनिष्ठ, प्राणियोंके सुहृद्, वेदवेत्ता, सर्वज्ञ और सबके द्वारा पूजित होओगे॥ ५५—५७॥

पिताके ऐसा कहनेपर वसिष्ठजी प्रसन्नतापूर्वक पितामह ब्रह्माजीकी परिक्रमा करके और उन्हें प्रणाम करके वरुणके वासस्थानको चले गये। वसिष्ठजीने अपने उत्तम देहका त्याग करके मित्र और वरुणके शरीरमें जीवांश-रूपसे प्रवेश किया॥ ५८-५९॥

हे राजन्! किसी समय परम सुन्दरी अप्सरा उर्वशी अपनी सखियोंके साथ स्वेच्छापूर्वक मित्रावरुणके स्थानपर आयी॥ ६०॥

हे राजन्! उस रूपयौवनसे सम्पन्न दिव्य अप्सराको देखकर वे दोनों देवता कामातुर हो गये और समस्त सुन्दर अंगोंवाली उस मनोरम देवकन्यासे कहने लगे—हे प्रशस्त अंगोंवाली! विवश तथा व्याकुल हम दोनोंका तुम वरण कर लो और हे वरवर्णिनि! तुम अपनी इच्छाके अनुसार यहाँ विहार करो। उनके इस प्रकार कहनेपर वह देवी उर्वशी मन स्थिर करके मित्रावरुणके घरमें उन दोनोंके साथ विवश होकर रहने लगी। प्रिय दर्शनवाली वह अप्सरा उन दोनोंके भावोंको समझकर वहीं रहने लगी॥ ६१—६४॥

दैववशात् वहाँ रखे हुए एक आवरणरहित कुम्भमें दोनोंका वीर्य स्खलित हो गया; और हे राजन्! उसमेंसे दो अत्यन्त सुन्दर मुनिकुमारोंने जन्म लिया। उनमें पहले अगस्ति थे और दूसरे वसिष्ठ थे। इस प्रकार मित्र और वरुणके तेजसे वे दोनों ऋषिश्रेष्ठ तपस्वी प्रकट हुए॥ ६५-६६॥

महातपस्वी अगस्ति बाल्यावस्थामें ही वन चले गये और महाराज इक्ष्वाकुने अपने पुरोहितके रूपमें दूसरे बालक वसिष्ठका वरण कर लिया॥ ६७॥

हे राजन्! आपका यह वंश सुखी रहे, इसलिये राजा इक्ष्वाकुने वसिष्ठका पालन-पोषण किया और विशेष-रूपसे इन्हें मुनि जानकर वे अत्यन्त प्रसन्न हुए॥ ६८॥

इस प्रकार शापके कारण मित्रावरुणके कुलमें वसिष्ठजीके अन्य शरीरकी प्राप्तिका समस्त आख्यान मैंने आपको बता दिया॥ ६९॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत षष्ठ स्कन्धका 'वसिष्ठके मैत्रावरुणि—इस नामका वर्णन' नामक चौदहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १४॥

पन्द्रहवाँ अध्याय

भगवतीकी कृपासे निमिको मनुष्योंके नेत्र-पलकोंमें वासस्थान मिलना तथा संसारी प्राणियोंकी त्रिगुणात्मकताका वर्णन

जनमेजय बोले—आपने वसिष्ठकी शरीर-प्राप्तिका वर्णन किया; निमिने पुनः किस प्रकार देह प्राप्त की; यह मुझसे कहिये॥ १॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! वसिष्ठने जिस प्रकार पुनः शरीर प्राप्त किया, उस प्रकार निमिको शापके बाद पुनः देह नहीं मिली॥ २॥

जब वसिष्ठजीने शाप दिया तो राजाके द्वारा यज्ञमें वरण किये गये ब्राह्मण और ऋत्विज विचार करने लगे—॥ ३॥

अहो, यज्ञमें दीक्षित ये धर्मनिष्ठ राजा शापसे दग्ध हो गये हैं और यज्ञ भी अपूर्ण ही रह गया है—ऐसेमें हम सबको क्या करना चाहिये? अब हम क्या करें? यह तो विपरीत कार्य हो गया। भवितव्यताके अवश्य होनेके कारण इसका निवारण करनेमें हम असमर्थ हैं॥ ४-५॥

तब उन महात्मा राजाकी देहको ऋत्विजोंने अनेक प्रकारके मन्त्रोंसे सुरक्षित रखा; उनकी श्वास मन्द गतिसे चल रही थी। मन्त्रशक्तिसे उनकी निर्विकार आत्माको देहमें प्रतिष्ठित करके ऋत्विजोंने उसे अनेक प्रकारके गन्ध, माल्य आदिसे सुपूजित कर रखा था॥ ६-७॥

हे राजन्! यज्ञके सम्पूर्ण होनेपर वहाँ सभी देवगण आये। ऋत्विजोंने उन सबकी स्तुति की, जिससे वे बहुत प्रसन्न हुए। मुनियोंके द्वारा राजाके विषयमें समस्त बातोंको जान लेनेपर स्तोत्रोंसे सन्तुष्ट देवताओंने दुःखी मनवाले राजासे कहा—हे राजन्! हे सुव्रत! हम प्रसन्न हैं; वर माँगिये। हे राजर्षे! इस यज्ञके कारण आपको श्रेष्ठ जन्म प्राप्त हो सकता है। देवशरीर, मनुष्यशरीर अथवा आपके मनमें जो इच्छा हो, उसे आप प्राप्त कर सकते हैं; जैसे कि आपके पुरोहित वसिष्ठ मर्त्यलोकमें सुखपूर्वक रह रहे हैं॥ ८—१०१/२॥

उनके ऐसा कहनेपर निमिकी आत्माने परम सन्तुष्ट होकर उनसे कहा—हे श्रेष्ठ देवगण! सर्वदा विनष्ट होनेवाली इस देहमें रहनेकी मेरी इच्छा नहीं है, सम्पूर्ण प्राणियोंकी दृष्टिमें मेरा निवास हो, जिससे मैं वायुरूप होकर समस्त प्राणियोंके नेत्रोंमें विचरण करूँ॥ ११-१२१/२॥

उनसे ऐसा कहे जानेपर देवताओंने निमिकी आत्मासे कहा—हे महाराज! आप कल्याणकारिणी तथा सबकी ईश्वरी भगवतीकी आराधना करें। आपके इस यज्ञसे प्रसन्न होकर वे आपका अभीष्ट अवश्य पूर्ण करेंगी॥ १३-१४॥

देवताओंके ऐसा कहनेपर उन्होंने अनेक प्रकारके दिव्य स्तोत्रोंद्वारा भक्तिपूर्वक गद्गद वाणीमें देवीकी प्रार्थना की॥ १५॥

तब प्रसन्न होकर देवीने उन्हें साक्षात् दर्शन दिया। उनके करोड़ों सूर्योंकी प्रभाके समान तथा लावण्यसे दीप्तिमान रूपको देखकर सभी कृतकृत्य हो गये और उनके मनमें परम प्रसन्नता हुई। हे राजन्! देवीके प्रसन्न हो जानेपर राजाने वर माँगा—मुझे वह विमल ज्ञान दीजिये, जिससे मोक्ष प्राप्त हो जाय तथा समस्त प्राणियोंके नेत्रोंमें मेरा निवास हो जाय॥ १६—१८॥

तब प्रसन्न हुई देवेश्वरी जगदम्बाने कहा—तुम्हें विमल ज्ञान प्राप्त होगा, परंतु अभी तुम्हारा प्रारब्ध शेष है। समस्त प्राणियोंके नेत्रोंमें तुम्हारा निवास भी होगा। तुम्हारे कारण ही प्राणियोंके नेत्रोंमें पलक गिरानेकी शक्ति होगी। तुम्हारे निवासके कारण ही मनुष्य, पशु तथा पक्षी 'निमिष' (पलक गिरानेवाले) तथा देवता 'अनिमिष' (पलक न गिरानेवाले) होंगे॥ १९—२१॥

इस प्रकार उन राजाको वर देकर और सब मुनियोंको बुलाकर वे श्रीवरदायिनी भगवती वहीं अन्तर्धान हो गयीं॥ २२॥

देवीके अन्तर्धान हो जानेपर वहाँ उपस्थित मुनिगण विधिवत् विचार करके निमिके शरीरको ले आये और पुत्रप्राप्तिके लिये उसपर अरणिकाष्ठ रखकर वे महात्मा मन्त्र पढ़कर मन्त्रहोमके द्वारा निमिके देहका मन्थन करने लगे॥ २३-२४॥
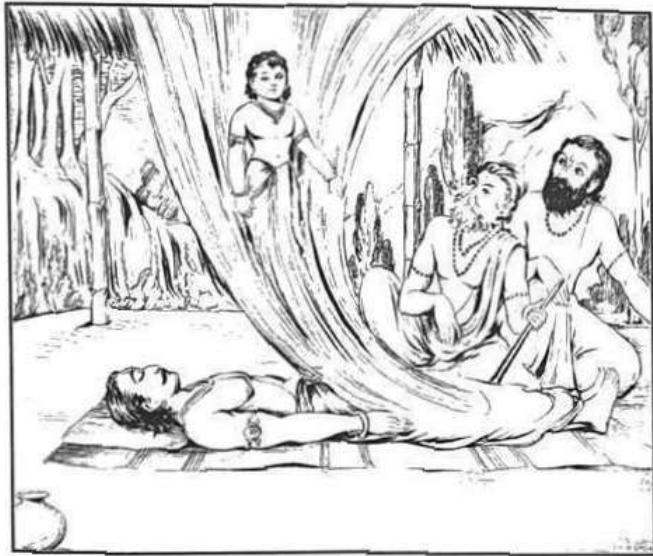
अरणिके मन्थनसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो समस्त लक्षणोंसे सम्पन्न और साक्षात् दूसरे निमिकी भाँति था। अरणिके मन्थनसे इसका जन्म हुआ था, अतः यह 'मिथि'—ऐसा कहा गया और जनकसे जन्म होनेके कारण 'जनक' यह नामवाला हुआ। राजा निमि विदेह हुए, अतः उनके कुलमें उत्पन्न सभी राजा 'विदेह' ऐसा कहे गये॥ २५—२७॥

इस प्रकार निमिके पुत्र राजा जनक प्रसिद्ध हुए। उन्होंने गंगाके तटपर एक सुन्दर नगरीका निर्माण कराया, जो मिथिला नामसे विख्यात है। यह गोपुरों, अट्टालिकाओं तथा धन-धान्यसे सम्पन्न और बाजारोंसे सुशोभित है॥ २८-२९॥

इस वंशमें जो अन्य राजा हुए, वे सभी जनक कहे गये; वे सभी विख्यात ज्ञानी और विदेह कहे जाते थे॥ ३०॥

हे राजन्! इस प्रकार निमिकी उत्तम कथाका मैंने आपसे वर्णन किया, शापके कारण उनके विदेह होनेको भी मैंने विस्तारसे कह दिया॥ ३१॥

राजा बोले—हे भगवन्! आपने निमिके शापका कारण बताया, इसे सुनकर मेरा मन संशयग्रस्त और अत्यन्त चंचल हो गया है॥ ३२॥

वसिष्ठजी श्रेष्ठ ब्राह्मण थे, राजाके पुरोहित थे और वे कमलयोनि ब्रह्माजीके पुत्र थे, तब राजा निमिने उन मुनिको कैसे शाप दिया? निमिने उन्हें गुरु और ब्राह्मण जानकर क्षमा क्यों नहीं किया। यज्ञ-जैसा शुभ कार्य करनेपर भी उन्हें क्रोध कैसे आ गया? धर्मका रहस्य जान करके भी इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न राजाने क्रोधके वशीभूत होकर अपने ब्राह्मण गुरुको शाप क्यों दिया?॥ ३३—३५॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! अजितेन्द्रिय प्राणियोंके लिये क्षमा अत्यन्त दुर्लभ है, विशेषरूपसे सामर्थ्यशाली व्यक्तिका क्षमाशील होना इस संसारमें दुर्लभ है॥ ३६॥

मुनिको चाहिये कि वह सभी आसक्तियोंका परित्याग करनेवाला, तपस्वी, निद्रा तथा भूखपर विजय प्राप्त करनेवाला और योगाभ्यासमें सम्यक् रूपसे निष्ठा रखनेवाला हो॥ ३७॥

काम, क्रोध, लोभ और चौथा अहंकार—ये शत्रु शरीरमें सदा विद्यमान रहते हैं जो सर्वथा दुर्ज्ञेय होते हैं। संसारमें न पहले कोई व्यक्ति हुआ है, न इस समय है और न तो आगे होगा जो इन शत्रुओंको जीत सके॥ ३८-३९॥

न स्वर्गमें, न पृथ्वीलोकमें, न ब्रह्मलोकमें, न विष्णुलोकमें और न तो कैलासमें भी ऐसा कोई व्यक्ति है, जो इन शत्रुओंको जीत सके॥ ४०॥

जो मुनिगण, ब्रह्माजीके सभी पुत्र तथा अन्य श्रेष्ठ तपस्वीलोग हैं, वे भी तीनों गुणोंसे बँधे रहते हैं, तो मर्त्यलोकके मनुष्योंकी बात ही क्या?॥ ४१॥

कपिलमुनि सांख्यशास्त्रके ज्ञाता, योगाभ्यासपरायण और शुद्ध चित्तवाले थे, किंतु उन्होंने भी दैववश सगर-पुत्रोंको भस्म कर दिया॥ ४२॥

अतः हे राजन्! कार्य-कारणस्वरूप अहंकारसे ही यह त्रिलोक उत्पन्न हुआ है, तो फिर मनुष्य उससे वियुक्त कैसे रह सकता है?॥ ४३॥

ब्रह्मा, विष्णु और शिव भी त्रिगुणसे बँधे हुए हैं; उनके भी शरीरोंमें गुणोंके पृथक्-पृथक् भाव उत्पन्न होते हैं। जब

एकमात्र सत्त्वप्रधान देवताओंकी भी यह स्थिति है तो फिर मनुष्योंकी क्या बात? हे राजन्! गुणोंका संकर (मेल) सर्वत्र विद्यमान है। कभी सत्त्वगुणकी वृद्धि होती है, कभी रजोगुणकी वृद्धि होती है, कभी तमोगुणकी वृद्धि हो जाती है और कभी तीनों गुण बराबर हो जाते हैं॥ ४४—४६॥

वे परमात्मा निर्गुण, निर्लेप, परम अविनाशी, सभी प्राणियोंसे अलक्ष्य, अप्रमेय और सनातन हैं। उसी प्रकार वे परमा शक्ति भी निर्गुण, ब्रह्ममें स्थित, अल्पबुद्धि प्राणियोंके द्वारा दुर्ज्ञेय, समस्त प्राणियोंकी आश्रय हैं। परमात्मा और पराशक्ति—उन दोनोंमें सदासे ऐक्य है। उनका स्वरूप अभिन्न है—यह जानकर प्राणी समस्त दोषोंसे मुक्त हो जाता है। इस ज्ञानसे मुक्ति हो जाती है—यह वेदान्तका डिंडिमघोष है। जो यह जान लेता है, वह इस त्रिगुणात्मक संसारसे मुक्त हो जाता है॥ ४७—५०॥

ज्ञान भी दो प्रकारका कहा गया है। प्रथम शाब्दिक ज्ञान बताया गया है। वह ज्ञान बुद्धिकी सहायतासे वेद और शास्त्रके अर्थविज्ञानद्वारा प्राप्त हो जाता है। बुद्धिवैभिन्न्यके अनुसार इस ज्ञानके भी बहुत-से भेद हो जाते हैं। (इनमेंसे कुछ ज्ञान कुतर्कसे और कुछ सुतर्कसे कल्पित होते हैं। कुतर्कोंसे भ्रान्तिकी उत्पत्ति होती है और विभ्रमसे बुद्धिनाश हो जाता है। बुद्धिनाशसे प्राणियोंका ज्ञान नष्ट हो जाना कहा गया है।) हे राजन्! अनुभव नामक वह दूसरा ज्ञान तो दुर्लभ होता है। वह ज्ञान तब प्राप्त होता है, जब उसके जाननेवालेका संग हो जाय। हे भारत! शब्दज्ञानसे कार्यकी सिद्धि नहीं होती, इसलिये अनुभवज्ञान अत्यन्त अलौकिक होता है। शब्दज्ञान अन्तःकरणके अन्धकारको दूर करनेमें उसी प्रकार समर्थ नहीं है जैसे दीपकसम्बन्धी वार्ता करनेसे अन्धकार नष्ट नहीं होता॥ ५१—५४½॥

कर्म वही है, जो बन्धन न करे और विद्या वही है जो मुक्तिके लिये हो। अन्य कर्म तो मात्र परिश्रमके लिये होता है तथा दूसरी विद्या तो मात्र शिल्पसम्बन्धी कौशल है। शील, परोपकार, क्रोधका अभाव, क्षमा, धैर्य और सन्तोष—यह सब विद्याका अत्यन्त उत्तम फल है। हे भूपते! विद्या, तपस्या अथवा योगाभ्यासके बिना काम आदि शत्रुओंका नाश कभी नहीं हो सकता। (हे राजन्! मन चंचल और स्वभावतः अति दुर्ग्रह होता है, तीनों लोकोंमें तीनों प्रकारके प्राणी उसी मनके वशमें रहते हैं) काम-क्रोध आदि भाव चित्तजन्य कहे गये हैं। ये सब उस समय नहीं उत्पन्न होते, जब मनपर विजय पा ली जाती है। हे राजन्! इसीलिये निमिने मुनिको उस प्रकार क्षमा नहीं किया, जिस प्रकार ययातिने अपराध करनेपर भी शुक्राचार्यको क्षमा कर दिया था। पूर्वकालमें भृगुपुत्र शुक्राचार्यने नृपश्रेष्ठ ययातिको शाप दे दिया था, लेकिन राजाने क्रोधित होकर मुनिको शाप नहीं दिया और स्वयं वृद्धावस्थाको स्वीकार कर लिया था॥ ५५—६०½॥

हे राजन्! कोई राजा शान्तस्वभाव और कोई क्रूर होता है। स्वभावमें भेद होनेके कारण इसमें किसका दोष कहा जाय? पूर्वकालमें हैहयवंशी क्षत्रियोंने ब्रह्महत्याजनित पापकी उपेक्षा करके धनके लोभसे भृगुवंशी ब्राह्मण पुरोहितोंका कोपाविष्ट होकर समूलोच्छेद कर दिया था ॥ ६१—६३॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत षष्ठ स्कन्धका 'देवीकी महिमामें नाना भावोंका वर्णन' नामक पन्द्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १५॥

सोलहवाँ अध्याय

हैहयवंशी क्षत्रियोंद्वारा भृगुवंशी ब्राह्मणोंका संहार

जनमेजय बोले—जिन हैहय क्षत्रियोंने ब्रह्महत्याकी लेशमात्र भी चिन्ता न करके भृगुवंशी ब्राह्मणोंका वध कर दिया, वे किसके कुलमें उत्पन्न हुए थे?॥ १॥

हे पितामह! उनके वैरका क्या कारण था, आप मुझे बतलाइये। श्रेष्ठजन किसी कारणविशेषके बिना क्रोध कैसे कर सकते हैं?॥ २॥

अपने ही पुरोहितोंके साथ उनकी शत्रुता किसलिये हो गयी थी? सम्भवतः उन क्षत्रियोंकी उस शत्रुताके पीछे कोई महान् कारण रहा होगा। अन्यथा पापसे भयभीत रहनेवाले वे पराक्रमी क्षत्रिय निरपराध एवं पूजनीय ब्राह्मणोंकी हत्या क्यों करते?॥ ३-४॥

हे मुनिश्रेष्ठ! ऐसा कौन श्रेष्ठ क्षत्रिय होगा, जो अल्प

अपराधके कारण ब्राह्मणोंका वध करेगा? मुझे तो इस विषयमें महान् शंका हो रही है, इसका कारण बतानेकी कृपा करें॥ ५॥

सूतजी बोले—तब राजा जनमेजयके इस प्रकार पूछनेपर सत्यवतीनन्दन व्यासजी परम प्रसन्न हुए और मनमें उस वृत्तान्तका स्मरण करके कहने लगे॥ ६॥

व्यासजी बोले—हे जनमेजय! मेरे द्वारा पूर्वकालमें सम्यक् प्रकारसे ज्ञात, क्षत्रियोंसे सम्बन्ध रखनेवाली इस आश्चर्यजनक प्राचीन कथाको आप सुनिये?॥ ७॥

कार्तवीर्य नामक एक हैहयवंशीय राजा हो चुके हैं। सदा धर्ममें तत्पर रहनेवाले उन बलवान् राजाकी हजार भुजाएँ थीं, वे अर्जुन भी कहे जाते थे॥ ८॥

वे भगवान् विष्णुके अवतारस्वरूप दत्तात्रेयके शिष्य, भगवतीके उपासक, परम सिद्ध, सब कुछ देनेमें समर्थ तथा भृगुवंशी ब्राह्मणोंके यजमान थे॥ ९॥

वे यज्ञ करनेवाले, धर्मनिष्ठ तथा सदैव दान देनेमें रुचि रखनेवाले थे। उन्होंने अनेक यज्ञ करके अपनी विपुल सम्पदा भृगुवंशी ब्राह्मणोंको दान कर दी थी। राजाके द्वारा दिये गये दानसे वे भृगुवंशी ब्राह्मण बड़े धनी हो गये। घोड़े तथा रत्न आदि सम्पदासे युक्त हो जानेके कारण जगत्‌में वे अतीव प्रसिद्ध हो गये॥ १०-११॥

हे राजन्! नृपश्रेष्ठ कार्तवीर्यार्जुनके दीर्घकालतक राज्य करनेके पश्चात् उनके स्वर्ग चले जानेपर हैहयवंशी क्षत्रिय धनहीन हो गये॥ १२॥

हे राजन्! किसी समय हैहय क्षत्रियोंको कार्यविशेषके लिये धनकी आवश्यकता पड़ गयी। तब वे धन माँगनेकी इच्छासे भृगुवंशी ब्राह्मणोंके पास गये॥ १३॥

उन क्षत्रियोंने अत्यधिक विनम्रतापूर्वक उन ब्राह्मणोंसे धनकी याचना की, किंतु लोभके वशीभूत उन ब्राह्मणोंने कुछ नहीं दिया और बार-बार कहते रहे—'मेरे पास नहीं है, मेरे पास नहीं है'॥ १४॥

हैहयवंशी क्षत्रियोंसे भयभीत होकर कुछ भृगुवंशी ब्राह्मणोंने अपनी प्रचुर सम्पत्ति जमीनमें गाड़ दी और कुछने अन्य ब्राह्मणोंको दे दी॥ १५॥

भयाक्रान्त तथा लोभके वशीभूत वे सभी भृगुवंशी ब्राह्मण अपना-अपना धन स्थानान्तरित करके अपने आश्रम छोड़कर अन्यत्र चले गये॥ १६॥

अपने यजमानोंको दुःखित देखकर भी लोभसे विमोहित ब्राह्मणोंने उन्हें कुछ भी नहीं दिया। उन सभीने भागकर पर्वतकी गुफाओंका आश्रय ग्रहण किया॥ १७॥

हे तात! तत्पश्चात् कष्ट झेल रहे अनेक हैहय क्षत्रियप्रमुख विशेष कार्यवश द्रव्यप्राप्तिके लिये भृगुवंशी ब्राह्मणोंके आश्रमोंपर पहुँचे॥ १८॥

अपने-अपने आश्रमको सुनसान छोड़कर भृगुवंशी ब्राह्मणोंको बाहर गया हुआ देखकर वे हैहय क्षत्रिय धनके लिये वहाँकी जमीन खोदने लगे॥ १९॥

तत्पश्चात् किसी ब्राह्मणके घरमें जमीन खोद रहे किसी क्षत्रियने कुछ पाया। अब परिश्रमके कारण क्षीणकाय सभी क्षत्रियोंने उस धनको देख लिया। उस समयसे जहाँ-जहाँ भी पता चलता, वे जमीन खोदकर समस्त धन ले लेते थे। धनके लोभसे आस-पास रहनेवाले ब्राह्मणोंके भी घरोंको खोदनेपर उन क्षत्रियोंको पर्याप्त धन दिखलायी पड़ा। इसपर सभी ब्राह्मण रोने-चिल्लाने लगे और भयभीत होकर क्षत्रियोंके शरणागत हो गये॥ २०—२२॥

बार-बार खोजते रहनेपर उन ब्राह्मणोंके घरसे प्रायः सभी धन निकल चुका था। फिर भी वे क्षत्रिय उन शरणागत ब्राह्मणोंपर कोप करके बाणोंसे प्रहार करते रहे॥ २३॥

इसके पश्चात् वे उन पर्वतकी गुफाओंमें पहुँच गये, जहाँ भृगुवंशी ब्राह्मण स्थित थे। इस प्रकार गर्भस्थ शिशुओंसहित ब्राह्मणोंको नष्ट करते हुए क्षत्रिय इस पृथ्वीमण्डलपर घूमने लगे॥ २४॥

उन्हें जहाँ कहीं भृगुवंशी बालक, वृद्ध तथा अन्य भी मिल जाते थे, वे पापकी परवा किये बिना उन सभीको तीक्ष्ण बाणोंसे मार डालते थे॥ २५॥

इस प्रकार इधर-उधर सभी भृगुवंशी ब्राह्मणोंके मार दिये जानेपर उन हैहय क्षत्रियोंने स्त्रियोंको पकड़-पकड़कर उनका गर्भ नष्ट कर डाला। पापकृत्यपर तुले हुए क्षत्रियोंके द्वारा जिन स्त्रियोंके गर्भ नष्ट कर दिये जाते थे, वे बेचारी अत्यन्त दुःखित होकर कुररी पक्षीकी भाँति विलाप करने लगती थीं॥ २६-२७॥

तब अन्य तीर्थवासी मुनियोंने भी अभिमानमें चूर उन

हैहयवंशी क्षत्रियोंसे कहा—हे क्षत्रियो! तुमलोग ब्राह्मणोंपर ऐसा भयंकर क्रोध करना छोड़ दो। हे क्षत्रियो! तुमलोगोंने तो अत्यन्त निन्दनीय तथा अनुचित कार्य आरम्भ कर दिया है जो कि तुमलोग भृगुवंशी ब्राह्मणोंकी पत्नियोंका गर्भोच्छेद कर रहे हो। अत्यन्त उग्र पाप अथवा पुण्यका फल इसी लोकमें प्राप्त हो जाता है। इसलिये कल्याणकी इच्छा रखनेवाले प्राणीको गर्हित कर्मका परित्याग कर देना चाहिये॥ २८—३०॥

तत्पश्चात् क्रोधमें भरे हुए उन हैहय क्षत्रियोंने उन परम दयालु मुनियोंसे कहा—आप सभी लोग साधु हैं, अतः पापकर्मोंका रहस्य नहीं जानते॥ ३१॥

छल-छद्मको जाननेवाले इन ब्राह्मणोंने कपट करके हमारे महात्मा पूर्वजोंका सारा धन उसी प्रकार छीन लिया था जैसे कोई लुटेरा किसी पथिकका धन छीन लेता है॥ ३२॥

ये सभी ठग, दम्भी तथा बकवृत्तिवाले (पाखण्डी) हैं। आवश्यक कार्य पड़नेपर हमने विनम्रतापूर्वक इनसे धनकी याचना की थी, किंतु इन्होंने नहीं दिया। यहाँतक कि चतुर्थांशवृद्धिपर भी धन माँगनेपर हम याचकोंको अत्यन्त दुःखित देखकर इन निष्ठुर ब्राह्मणोंने 'हमारे पास नहीं है'—ऐसा कहा॥ ३३-३४॥

महाराज कार्तवीर्यसे धन प्राप्त करके इन्होंने किस प्रयोजनसे धनकी रक्षा की? इन्होंने न तो यज्ञ किये और न तो याचकोंको ही प्रचुर दान दिया॥ ३५॥

ब्राह्मणोंको कभी भी धनका संग्रह नहीं करना चाहिये। यज्ञ करने, दान देने तथा सुखोपभोगमें यथेच्छ धनका उपयोग करना चाहिये॥ ३६॥

हे विप्रो! पासमें धन रहनेपर चोर, राजा, अग्नि तथा धूर्तोंसे महान् भय कहा गया है॥ ३७॥

जिस किसी भी उपायसे अपनी ही रक्षा करनेवालेको धन छोड़ देता है अथवा वह व्यक्ति धन छोड़कर स्वयं मर जाता है और दुर्गतिको प्राप्त होता है॥ ३८॥

हम सबने बड़ी विनम्रताके साथ इन लोगोंसे चतुर्थांश-वृद्धिपर धन माँगा था, फिर भी लोभके कारण संशयमें पड़े हुए पुरोहितोंने हमें धन नहीं दिया॥ ३९॥

दान, भोग तथा नाश—धनकी इस प्रकारकी गति होती है। पुण्यशाली प्राणियोंके धनकी गति दान तथा भोग है और दुष्ट आत्मावाले प्राणियोंके धनकी गति नाश है। जो कृपण व्यक्ति न दान करता है और न धनका उपभोग करता है, अपितु केवल धनके संग्रहमें लगा रहता है, वह वंचक प्राणी राजाके द्वारा सर्वथा दण्डनीय है और दुःखका भागी होता है॥ ४०-४१॥

इसीलिये इन वंचक गुरुओं तथा अधम ब्राह्मणोंको मारनेके लिये हम सभी उद्यत हुए हैं। आप महात्माजन इसके लिये हमपर कोप न करें॥ ४२॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार सहेतुक वचन कहकर उन मुनियोंको पूर्ण आश्वस्त करनेके बाद वे पुनः भृगुकुलकी स्त्रियोंको खोजते हुए भ्रमण करने लगे॥ ४३॥

भयार्त तथा अत्यन्त कृश शरीरवाली भृगुवंशीय पत्नियाँ हिमवान् पर्वतपर रोती तथा काँपती हुई पहुचीं॥ ४४॥

इस प्रकार धनलोलुप तथा पापकर्मोंसे अभिभूत हैहयोंने उन ब्राह्मणोंको बहुत पीड़ित किया तथा उनका संहार किया॥ ४५॥

लोभ मनुष्योंके देहमें रहनेवाला सबसे बड़ा शत्रु है। यह समस्त दुःखोंका आगार, दुःखदायी तथा प्राणोंका नाश करनेवाला कहा गया है॥ ४६॥

यह लोभ सम्पूर्ण पापोंकी जड़ तथा सभी दुःखोंका कारण है। लोभसे युक्त प्राणी सदा तीनों वर्णोंके लोगोंसे विरोध रखनेवाला होता है॥ ४७॥

लोभके वशीभूत प्राणी अपने सदाचार तथा कुलधर्मका भी परित्याग कर देते हैं। वे अपने माता, पिता, भाई, बान्धव, गुरु, मित्र, पत्नी, पुत्र तथा बहनतकका वध कर देते हैं। इस प्रकार लोभके वशीभूत मनुष्य पापसे विमोहित होकर कौन-सा दुष्कर्म नहीं कर डालता॥ ४८-४९॥

क्रोध, काम तथा अहंकारसे भी बढ़कर लोभ महान् शत्रु है। लोभमें पड़कर मनुष्य अपने प्राणतक गँवा देता है; फिर इसके विषयमें और क्या कहा जाय!॥ ५०॥

हे महाराज! आपके पूर्वज धर्मज्ञ तथा सत्पथपर चलनेवाले थे, किंतु वे पाण्डव तथा कौरव लोभके कारण ही मारे गये। जहाँ भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, वाह्लीक, भीमसेन, धर्मपुत्र युधिष्ठिर, अर्जुन तथा श्रीकृष्ण थे, फिर भी लोभके वशीभूत उन्होंने आपसमें भीषण युद्ध किया और अपने कुटुम्बका महाविनाश कर डाला। उस युद्धमें द्रोण, भीष्म, पाण्डवोंके पुत्र, भाई, पिता,

पुत्र सभी मारे गये॥ ५१—५४॥

अतएव लोभपरायण मनुष्य क्या नहीं कर डालता? [लोभके कारण ही] पापबुद्धि हैहयवंशी क्षत्रियोंने भृगुकुलके समस्त ब्राह्मणोंको मार डाला था॥ ५५॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत षष्ठ स्कन्धका 'हैहयोंद्वारा धनहरणके साथ भृगुवंशियोंके वधका वर्णन' नामक सोलहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १६ ॥

सत्रहवाँ अध्याय

भगवतीकी कृपासे भार्गव-ब्राह्मणीकी जंघासे तेजस्वी बालककी उत्पत्ति, हैहयवंशी क्षत्रियोंकी उत्पत्तिकी कथा

जनमेजय बोले—भृगुवंशकी स्त्रियोंका पुनः दुःखरूप समुद्रसे कैसे उद्धार हुआ और उन ब्राह्मणोंकी वंशपरम्परा किस प्रकार स्थिर रही?॥ १॥

लोभके वशीभूत तथा पापाचारी हैहय क्षत्रियोंने उन ब्राह्मणोंको मारनेके पश्चात् कौन-सा कार्य किया? उसे आप बताइये॥ २॥

हे ब्रह्मन्! आपके द्वारा कथित इस पवित्र, लोगोंके लिये सुखदायक तथा परलोकमें फल देनेवाले कथामृतका पान करते हुए मुझे तृप्ति नहीं हो रही है॥ ३॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! सुनिये, वे स्त्रियाँ उस भयावह दुःखसे जिस प्रकार मुक्त हुईं, अब मैं उस पापनाशिनी कथाका वर्णन करूँगा॥ ४॥

हे राजन्! जब क्षत्रिय हैहय भृगुकुलकी नारियोंको बहुत पीड़ित करने लगे तब वे भयभीत तथा निराश होकर हिमालयपर्वतपर चली गयीं॥ ५॥

उन्होंने वहाँ नदीके तटपर गौरीकी मृण्मयी प्रतिमा स्थापित करके निराहार रहते हुए [उपासनामें लीन होकर] अपने मरणके प्रति पूरा निश्चय कर लिया॥ ६॥

एक समय स्वप्नमें भगवती जगदम्बाने उन उत्तम

स्त्रियोंके पास पहुँचकर कहा—तुमलोगोंमेंसे किसीकी जंघासे एक पुरुष उत्पन्न होगा। मेरा अंशभूत वह शक्तिमान् पुरुष तुमलोगोंका कार्य सिद्ध करेगा। ऐसा कहकर पराम्बा भगवती अन्तर्धान हो गयीं॥ ७-८॥

जागनेपर वे सभी स्त्रियाँ बहुत प्रसन्न हुईं। उनमेंसे किसी चतुर, कामिनी स्त्रीने जो भयसे त्रस्त थी; वंशवृद्धिहेतु अपनी एक जंघामें गर्भ धारण किया॥ ९½॥

जब उन हैहय क्षत्रियोंने व्याकुल तथा तेजयुक्त उस स्त्रीको भागती हुई देखा तब वे उसके पीछे दौड़ पड़े॥ १०½॥

'यह गर्भ धारण करके वेगपूर्वक भागी जा रही है, इसे पकड़ लो और मार डालो'—इस प्रकार कहते हुए हाथमें तलवार लेकर वे उस स्त्रीके पास पहुँच गये॥ ११½॥

भयसे घबरायी हुई वह स्त्री अपने समीप आये हुए उन क्षत्रियोंको देखकर रोने लगी और पुनः गर्भरक्षाके लिये भयसे विह्वल होकर जोर-जोरसे विलाप करने लगी॥ १२½॥

तब दयनीय दशावाली, प्राणहीन-सी प्रतीत हो रही, आश्रयहीन, क्षत्रियोंसे पीडित होनेके कारण क्रन्दन करती हुई, सिंहके द्वारा पकड़ी गयी गर्भवती हिरनीके समान प्रतीत होनेवाली, आँसूभरे नेत्रोंवाली तथा थर-थर काँपती हुई माताका रुदन सुनकर वह सुन्दर गर्भस्थ बालक कुपित होकर अपने तेजसे क्षत्रियोंकी नेत्र-ज्योतिका हरण करता हुआ जंघाका भेदन करके दूसरे सूर्यकी भाँति शीघ्र ही बाहर निकल आया॥ १३—१५½॥

उस बालककी ओर देखते ही वे सभी दृष्टिहीन हो

गये। तत्पश्चात् वे क्षत्रिय जन्मान्धकी भाँति पर्वतकी गुफाओंमें इधर-उधर भटकने लगे। सभी क्षत्रिय मनमें विचार करने लगे कि इस समय यह क्या हो गया है कि हम सभी लोग बालकको देखनेमात्रसे चक्षुहीन हो गये। ऐसा प्रतीत होता है कि इसी ब्राह्मणीका यह प्रभाव है; क्योंकि सतीव्रत एक महान् बल है। अमोघ संकल्प-वाली दुःखित स्त्रियाँ क्षणभरमें न जाने क्या कर डालेंगी! ॥ १६—१८½ ॥

ऐसा मनमें सोचकर नेत्रहीन, निराश्रय तथा चेतनारहित हैहयवंशी क्षत्रिय उस ब्राह्मणीकी शरणमें गये और उन्होंने भयसे त्रस्त उस स्त्रीको दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम किया। वे श्रेष्ठ क्षत्रिय अपनी नेत्रज्योतिके लिये इस भयाकुल ब्राह्मणीसे कहने लगे— ॥ १९-२०½ ॥

हे सुभगे! हे माता! हम सब आपके सेवक हैं। अब आप हमारे ऊपर प्रसन्न हो जाइये। हे रम्भोरु! पाप बुद्धिवाले हम क्षत्रियोंने अपराध किया है। हे तन्वंगि! इसीलिये आपको देखते ही हम सब चक्षुविहीन हो गये। हे भामिनि! जन्मसे अन्धे व्यक्तिकी भाँति हम आपका मुखदर्शन कर पानेमें समर्थ नहीं हैं। आपका तप तथा पराक्रम अद्भुत है; हम पापपरायण कर ही क्या सकते हैं? हे मानदे! हम आपकी शरणमें हैं। हमें नेत्र दीजिये; क्योंकि नेत्रज्योतिसे विहीन हो जाना मृत्युसे भी कष्टकारक होता है। आप हमारे ऊपर कृपा कीजिये। फिरसे नेत्रज्योति देकर इन समस्त क्षत्रियोंको अपना सेवक बना लीजिये। इसके बाद पापकर्मसे रहित होकर हमलोग साथ-साथ चले जायँगे। अब हमलोग इस प्रकारका कर्म कभी नहीं करेंगे। अब हम सभी भार्गव ब्राह्मणोंके सेवक हो गये। हमलोगोंने अज्ञानवश जो भी पाप किया है, उसे आप क्षमा करें। हम हैहय क्षत्रिय शपथपूर्वक कहते हैं कि आजसे कभी भी भृगुवंशी ब्राह्मणोंके साथ हमें वैरभाव नहीं रखना चाहिये और यथोचित व्यवहार करना चाहिये। हे सुश्रोणि! आप पुत्रवती होवें। हम आपकी शरणमें हैं। हे कल्याणि! आप कृपा करें; हमलोग अब कभी भी द्वेषभाव नहीं रखेंगे ॥ २१—२८ ॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] उन क्षत्रियोंकी यह बात सुनकर ब्राह्मणी विस्मयमें पड़ गयी और उसने शरणागत तथा दुर्गतिको प्राप्त उन नेत्रहीन क्षत्रियोंको आश्वासन देकर कहा—हे क्षत्रियो! आपलोग निश्चितरूपसे जान लें कि मैंने आप सबकी दृष्टिका हरण नहीं किया है ॥ २९-३० ॥

मैं आपलोगोंपर कुपित नहीं हूँ। अब मैं वास्तविक कारण बता रही हूँ, आपलोग सुनिये। मेरी जंघासे उत्पन्न यह भृगुवंशी बालक आज आपलोगोंपर कुपित है। क्षत्रियोंके द्वारा अपने बान्धवों और यहाँतक कि गर्भस्थित बालकोंका वध किये जानेकी बात जानकर कोपाविष्ट इसी बालकने आपलोगोंके नेत्र स्तम्भित कर दिये हैं ॥ ३१-३२ ॥

जब आपलोग निरपराध, धर्मनिष्ठ तथा तपस्वी भार्गव ब्राह्मणों और गर्भस्थ बालकोंको भी धनलोलुपतामें पड़कर मार रहे थे तभी मैंने इसे अपनी जंघामें गर्भरूपसे एक सौ वर्षतक धारण किये रखा। भृगुवंशकी वृद्धिके लिये इस गर्भस्थ बालकने छहों अंगोंसहित सम्पूर्ण वेदोंका बड़े सहजभावसे अध्ययन कर लिया है और अब यह अपने पितृजनोंके वधसे अत्यन्त कुपित होकर आपलोगोंका संहार करना चाहता है ॥ ३३—३५ ॥

मेरा यह पुत्र भगवतीकी कृपासे उत्पन्न हुआ है, जिसके अलौकिक तेजने आपलोगोंके नेत्र हर लिये हैं ॥ ३६ ॥

अतएव आपलोग इसी समय मेरी जंघासे उत्पन्न इस बालकसे विनम्रतापूर्वक याचना कीजिये। चरणोंमें गिरनेसे प्रसन्न होकर यह बालक आपलोगोंकी नेत्रज्योति मुक्त कर देगा ॥ ३७ ॥

व्यासजी बोले—उस ब्राह्मणीका वचन सुनकर हैहयोंने जंघासे उत्पन्न बालकरूप मुनिश्रेष्ठको प्रणाम किया और वे विनयसे युक्त होकर उसकी स्तुति करने लगे॥ ३८॥

तत्पश्चात् प्रसन्न होकर उस बालकने उन नेत्रहीन क्षत्रियोंसे कहा—हे राजाओ! अब तुमलोग मेरी कही हुई बातपर विश्वास करके अपने घर लौट जाओ॥ ३९॥

दैवने जो विधान सुनिश्चित कर दिये हैं, वे अवश्य होकर रहते हैं; ज्ञानी व्यक्तिको इस विषयमें चिन्ता नहीं करनी चाहिये॥ ४०॥

सभी ऋषिगण पूर्वकी भाँति सुख प्राप्त करें तथा सभी क्षत्रिय भी अब क्रोधरहित होकर सुखपूर्वक अपने-अपने घरोंके लिये प्रस्थान करें॥ ४१॥

इस प्रकार उसके कहनेपर उन हैहयवंशी क्षत्रियोंको दृष्टि प्राप्त हो गयी और वे और्वसे आज्ञा लेकर आनन्दपूर्वक अपने-अपने घर चले गये॥ ४२॥

हे राजन्! वह ब्राह्मणी भी उस तेजस्वी तथा अलौकिक बालकको लेकर अपने आश्रम चली गयी और बड़ी सावधानीपूर्वक उसका पालन-पोषण करने लगी॥ ४३॥

हे राजन्! इस प्रकार भृगुवंशके विनाश तथा लोभके वशीभूत हैहय क्षत्रियोंने जो पापकर्म किया था; उसके विषयमें मैंने आपसे कहा॥ ४४॥

जनमेजय बोले—हे मुने! मैंने क्षत्रियोंके अत्यन्त दारुण कर्मके विषयमें सुन लिया। इहलोक तथा परलोकमें दु:ख देनेवाला वह लोभ ही इसमें मूल कारण है॥ ४५॥

हे सत्यवतीनन्दन! इस विषयमें कुछ पूछकर मैं अपनी शंकाका समाधान चाहता हूँ। ये क्षत्रिय इस जगत्में हैहय नामसे क्यों प्रसिद्ध हुए?॥ ४६॥

यदुसे यादव हुए तथा भरतसे भारत हुए। उसी प्रकार क्या उन क्षत्रियोंके वंशमें 'हैहय' नामधारी कोई प्रतिष्ठित राजा हुआ था?॥ ४७॥

हे करुणानिधान! उन हैहय क्षत्रियोंकी उत्पत्ति कैसे हुई तथा किस कर्मसे उनका यह नाम पड़ा? वह कारण मैं सुनना चाहता हूँ॥ ४८॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! अब मैं हैहयोंकी उत्पत्तिसे सम्बन्धित अति प्राचीन, पुण्यदायिनी तथा पापनाशिनी कथाका विस्तारपूर्वक वर्णन कर रहा हूँ, आप इसे सुनिये॥ ४९॥

हे महाराज! किसी समय अत्यन्त सुन्दर, रूपवान् तथा अपरिमित तेजवाले सूर्यपुत्र जो 'रेवन्त' नामसे विख्यात थे, अपने मनोहर अश्वरत्न उच्चै:श्रवापर आरूढ़ होकर भगवान् विष्णुके निवासस्थान वैकुण्ठलोक गये॥ ५०-५१॥

विष्णुके दर्शनके आकांक्षी वे भास्करनन्दन घोड़ेपर सवार होकर जब वहाँ पहुँचे तब लक्ष्मीजीकी दृष्टि अश्वपर विराजमान रेवन्तपर पड़ गयी॥ ५२॥

समुद्रसे प्रादुर्भूत अपने भाई अलौकिक उच्चै:श्रवा घोड़ेको देखकर वे महान् विस्मयमें पड़ गयीं और उसके रूपको स्थिर नेत्रोंसे देखती रह गयीं॥ ५३॥

भगवान् विष्णुने उस मनोहर रेवन्तको घोड़ेपर बैठकर आता हुआ देखकर लक्ष्मीजीसे प्रेमपूर्वक पूछा—हे सुन्दर अंगोंवाली! हे प्रिये! दूसरे कामदेवके समान तेजोमय शरीरवाला यह कौन है जो घोड़ेपर सवार होकर तीनों लोकोंको मोहित करता हुआ इधर चला आ रहा है॥ ५४-५५॥

उस समय घोड़ेको एकटक देखते रहनेसे दैववशात् उसीमें चित्तयोग हो जानेके कारण भगवान् विष्णुके बार-बार पूछनेपर भी लक्ष्मीजीने कुछ नहीं कहा॥ ५६॥

व्यासजी बोले—भगवान् विष्णु कामिनी, चपल नेत्रोंवाली तथा चंचला लक्ष्मीको अत्यन्त मोहित होकर अत्यधिक प्रेमके साथ निहारती हुई तथा उस अश्वमें अनुरक्त बुद्धिवाली देखकर क्रोधित हो उठे और उनसे बोले—हे सुलोचने! तुम क्या देख रही हो? इस घोड़ेको देखकर मोहित हुई तुम मेरे पूछनेपर भी उत्तर नहीं दे रही हो॥ ५७-५८॥

क्योंकि तुम्हारा चित्त सभी ओर रमण करता है अतएव 'रमा' और तुम्हारी चंचलताके कारण तुम 'चला' कही जाओगी; इसमें सन्देह नहीं है॥ ५९॥

जिस प्रकार सामान्य नारी चंचल होती है, उसी प्रकार हे कल्याणि! तुम भी कभी स्थिर स्वभाववाली नहीं रहोगी॥ ६०॥

मेरे पास रहनेपर भी तुम यदि एक अश्वको देखकर मोहित हो गयी हो तो हे वामोरु! तुम अत्यन्त

दारुण मर्त्यलोकमें घोड़ीके रूपमें जन्म ग्रहण करो॥ ६१॥

दैवयोगसे भगवान् विष्णुने जब देवी लक्ष्मीको ऐसा शाप दे दिया तब वे अत्यन्त भयभीत तथा दुःखी होकर काँपती हुई रोने लगीं॥ ६२॥

सुन्दर मुसकानवाली लक्ष्मीजी दुविधामें पड़ गयीं और अपने पति भगवान् विष्णुको विनयसे युक्त होकर मस्तक झुकाकर प्रणाम करके उनसे कहने लगीं— ॥ ६३॥

हे देवदेव! हे जगदीश्वर! हे करुणानिधान! हे केशव! हे गोविन्द! एक छोटेसे अपराधके लिये आपने मुझे ऐसा शाप क्यों दे दिया?॥ ६४॥

हे प्रभो! मैंने आपका ऐसा क्रोध पहले कभी नहीं देखा। मेरे प्रति आपका वह सहज तथा शाश्वत प्रेम कहाँ चला गया?॥ ६५॥

आपको वज्रपात शत्रुपर करना चाहिये न कि अपने स्नेहीजनपर। आपसे सदा वर पानेयोग्य मैं आज शापके योग्य कैसे हो गयी?॥ ६६॥

हे गोविन्द! मैं इसी समय आपके देखते-देखते आपके सामने प्राण त्याग दूँगी; क्योंकि आपसे वियुक्त होकर विरहाग्निमें जलती हुई मैं कैसे जीवित रह सकूँगी?॥ ६७॥

हे देवेश! मेरे ऊपर कृपा कीजिये। हे विभो! अब मैं इस दारुण शापसे मुक्त होकर आपका सुखदायी सांनिध्य कब प्राप्त करूँगी?॥ ६८॥

हरि बोले—हे प्रिये! हे तन्वंगि! जब पृथ्वीलोकमें तुम्हें मेरे समान एक पुत्रकी प्राप्ति हो जायगी तब पुनः मुझे प्राप्त करके तुम सुखी हो जाओगी॥ ६९॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत षष्ठ स्कन्धका 'हैहयोंकी उत्पत्तिके प्रसंगमें रमाविष्णुसंवादवर्णन' नामक सत्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १७॥

अठारहवाँ अध्याय

भगवती लक्ष्मीद्वारा घोड़ीका रूप धारणकर तपस्या करना

जनमेजय बोले—[हे मुने!] इस प्रकार कोप करके भगवान्‌के द्वारा शापित लक्ष्मीजीने घोड़ीके रूपमें किस प्रकार जन्म लिया और इसके बाद रेवन्तने क्या किया?॥ १॥

अपने पतिके प्रवासमें रहनेके कारण उसके वियोगमें एकाकिनी समय व्यतीत करनेवाली नारीकी भाँति लक्ष्मीजीने घोड़ीका रूप धारण करके किस देशमें समय व्यतीत किया?॥ २॥

हे आयुष्मन्! पतिसे वियुक्त रहते हुए लक्ष्मीजीने कितना समय बिताया और पुनः उस निर्जन वनमें रहती हुई उन्होंने क्या किया?॥ ३॥

समुद्रतनया लक्ष्मीको पुनः भगवान् विष्णुका समागम कब प्राप्त हुआ तथा विष्णुसे अलग रहते हुए उन्होंने किस प्रकार पुत्र प्राप्त किया?॥ ४॥

हे आर्येश! इस वृत्तान्तका वर्णन विस्तारके साथ कीजिये। हे विप्रवर! मैं इस अत्युत्तम पौराणिक आख्यानको सुनना चाहता हूँ॥ ५॥

सूतजी बोले—हे विप्रो! परीक्षित्‌पुत्र जनमेजयके ऐसा पूछनेपर व्यासजी इस अति विस्तृत कथाका वर्णन करने लगे॥ ६॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! सुनिये मैं अब वह शुभ, पवित्र, स्पष्ट अक्षरोंसे युक्त तथा कानोंको प्रिय लगनेवाली पौराणिक कथा कहूँगा॥ ७॥

कामिनी रमाको विष्णुद्वारा शापित की गयी देखकर रेवन्त भयके कारण जगत्पति वासुदेवको दूरसे ही प्रणाम करके चले गये॥ ८॥

जगन्नाथ विष्णुका यह क्रोध देखकर वे तत्काल अपने पिताके पास गये और उन सूर्यसे शापसे सम्बन्धित कथा बतायी॥ ९॥

इसके बाद कमलके समान नेत्रोंवाली वे दुःखित लक्ष्मीजी जगदीश्वर विष्णुजीसे आज्ञा लेकर उन्हें प्रणाम करके मृत्युलोकमें आ गयीं। सूर्यकी पत्नीने पूर्वकालमें सुपर्णाक्षकी उत्तरदिशामें यमुना-तमसा नदीके संगमपर सभी मनोरथ पूर्ण करनेवाले तथा सुन्दर वनोंसे सुशोभित जिस स्थानपर कठोर तपस्या की थी, वहीं वडवारूपधारिणी वे लक्ष्मीजी शीघ्र पहुँच गयीं॥ १०—१२॥

वहाँ रहकर वे लक्ष्मीजी समस्त कामनाएँ पूर्ण

करनेवाले, त्रिशूलधारी, चन्द्रशेखर, पाँच मुखोंवाले, दस भुजाओंवाले, गौरीके शरीरका अर्ध भाग धारण करनेवाले, कर्पूरके समान गौर शरीरवाले, नीले कण्ठसे सुशोभित, तीन नेत्रोंवाले, व्याघ्रचर्म धारण करनेवाले, हाथीके चर्मका उत्तरीय धारण करनेवाले, गलेमें नरमुण्डकी मालासे मण्डित तथा सर्पका यज्ञोपवीत धारण करनेवाले महादेव शंकरका एकाग्रमनसे ध्यान करने लगीं॥ १३—१५॥

सागरपुत्री लक्ष्मीजीने सुन्दर घोड़ीका रूप धारण करके उस तीर्थमें अत्यन्त कठोर तपस्या की॥ १६॥

हे राजन्! महादेव शंकरका ध्यान करते-करते लक्ष्मीजीके मनमें वैराग्यका प्रादुर्भाव हो गया। इस प्रकार [उनको तप करते हुए] एक हजार दिव्य वर्ष बीत गये॥ १७॥

तदनन्तर प्रसन्न होकर त्रिनेत्रधारी भगवान् शंकरने वृषभपर सवार होकर पार्वतीजीके साथ उन्हें साक्षात् दर्शन दिया॥ १८॥

भगवान् शंकरने अपने गणोंसहित वहाँ आकर तप करती हुई वडवारूपधारिणी महाभागा विष्णुप्रिया लक्ष्मीजीसे कहा—॥ १९॥

हे कल्याणि! हे जगज्जननि! आप तपस्या क्यों कर रही हैं? मुझे इसका कारण बतायें। आपके पति विष्णु तो स्वयं सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण करनेवाले तथा सभी लोकोंका विधान करनेवाले हैं॥ २०॥

हे देवि! भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाले जगत्पति वासुदेव जगन्नाथ विष्णुको छोड़कर इस समय आप मेरी आराधना किसलिये कर रही हैं?॥ २१॥

स्त्रियोंके लिये पति ही उनका देवता होता है—इस वेदोक्त वचनका उन्हें पालन करना चाहिये। किसी दूसरेमें कभी कहीं भी भावना नहीं करनी चाहिये॥ २२॥

पतिकी सेवा-शुश्रूषा ही स्त्रियोंका सनातन धर्म है। पति चाहे जैसा भी हो, कल्याणकी इच्छा रखनेवाली स्त्रीको निरन्तर उसकी सेवा करनी चाहिये॥ २३॥

भगवान् विष्णु तो सर्वदा सभी प्राणियोंकी आराधनाके योग्य हैं। अतएव हे सिन्धुजे! उन देवाधिदेवको छोड़कर आप मेरा ध्यान क्यों कर रही हैं?॥ २४॥

लक्ष्मी बोलीं—हे आशुतोष! हे महेशान! हे शिव! हे देवेश! हे दयानिधान! मेरे पतिने मुझे शाप दे दिया है; अतएव इस शापसे आप मेरा उद्धार कीजिये॥ २५॥

हे शम्भो! उस समय मेरे बहुत पूछनेपर दयालु भगवान् विष्णुने शापसे मुक्तिका यह उपाय भी बतला दिया था—'हे कमलालये! जब तुम्हें एक पुत्र उत्पन्न हो जायगा तब तुम शापसे मुक्त हो जाओगी और वैकुण्ठधाममें पुनः तुम्हारा वास होगा'॥ २६-२७॥

हे देव! श्रीविष्णुके इस प्रकार कहनेपर मैं तपस्या करनेके लिये इस तपोवनमें आ गयी और सम्पूर्ण कामनाओंकी पूर्ति करनेवाले आप परमेश्वरकी आराधना करने लगी॥ २८॥

हे देवदेव! मुझ निरपराध पत्नीको छोड़कर वे विष्णु तो वैकुण्ठमें विराजमान हैं; अतएव पतिके सांनिध्यके बिना मैं पुत्र कैसे प्राप्त कर सकती हूँ?॥ २९॥

हे देवेश! हे शंकर! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मुझे वर दीजिये। आप तथा श्रीहरिमें निश्चितरूपसे कोई भेद नहीं है॥ ३०॥

हे गिरिजाकान्त! हे हर! जब मैं पतिदेवके पास थी तभीसे मुझे यह ज्ञात है कि जो आप हैं, वही वे हैं तथा जो वे हैं, वही आप हैं; इसमें संशय नहीं है॥ ३१॥

[आप तथा श्रीविष्णुमें] एकत्व जानकर ही मैंने आपका स्मरण किया है, अन्यथा हे शिव! आपका आश्रय लेनेसे मुझे दोष ही लगता॥ ३२॥

शिव बोले—हे देवि! हे सुन्दरि! मेरे तथा उन विष्णुके एकत्वका ज्ञान तुम्हें किस प्रकार हुआ? हे सिन्धुजे! मुझे सच-सच बताओ॥ ३३॥

देवता, मुनि, ज्ञानी तथा वेदोंके तत्त्वदर्शी विद्वान् भी तरह-तरहके कुतर्कोंसे ग्रस्त पड़े रहनेके कारण इस ऐक्यभावको नहीं जानते॥ ३४॥

मेरे बहुत-से भक्त वासुदेव श्रीविष्णुके निन्दक हैं तथा श्रीविष्णुके बहुत-से भक्त मेरी निन्दामें लगे रहते हैं। हे देवि! कालभेदके कारण कलियुगमें ऐसे लोग विशेषरूपसे होंगे। हे भद्रे! दूषित आत्मावाले लोगोंद्वारा दुर्ज्ञेय इस एकत्वको आप कैसे जान गयीं? मेरे तथा श्रीविष्णुका ऐक्यभाव जान पाना सर्वथा दुर्लभ है॥ ३५-३६ $^{1}/_{2}$॥

व्यासजी बोले—प्रसन्न हुए भगवान् शंकरके इस प्रकार पूछनेपर अत्यन्त प्रसन्नमुखवाली हरिप्रिया लक्ष्मीजीने [उस एकत्वसे सम्बन्धित] ज्ञात प्रसंगको शिवजीसे कहना

प्रारम्भ किया॥ ३७-३८॥

लक्ष्मीजी बोलीं—हे देवदेवेश! एक बार भगवान् विष्णुको एकान्तमें पद्मासन लगाकर ध्यानस्थ हो तपस्या करते हुए जब मैंने देखा तब मुझे महान् विस्मय हुआ; और पुनः समाधिसे जगनेपर उन्हें अति प्रसन्न जानकर मैंने पतिदेवसे विनयपूर्वक पूछा—॥ ३९-४०॥

हे देवदेव! हे जगन्नाथ! हे प्रभो! जिस समय ब्रह्मा आदि सभी देवताओं तथा दैत्योंके द्वारा मथे जा रहे समुद्रसे मैं निकली, उस समय पतिकी इच्छासे मैंने सभीकी ओर देखा, सभी देवताओंकी अपेक्षा आप ही श्रेष्ठ हैं—ऐसा निश्चय करके मैंने आपका ही वरण किया था। अतः हे सर्वेश! आप किसका ध्यान कर रहे हैं? मुझे यह महान् सन्देह है। हे कैटभारे! आप मेरे प्रिय हैं। अतः अपने मनकी बात मुझे बतायें॥ ४१—४३॥

विष्णु बोले—हे प्रिये! मैं जिन सुरश्रेष्ठ, आशुतोष, महेश्वर तथा पार्वतीपति शंकरका ध्यान कर रहा हूँ, उनके विषयमें बताऊँगा; सुनो॥ ४४॥

असीम पराक्रमसम्पन्न देवाधिदेव भगवान् शंकर कभी मेरा ध्यान करते हैं और कभी मैं त्रिपुरासुरके संहारक देवेश शंकरका ध्यान करने लगता हूँ॥ ४५॥

शिवका प्रिय प्राण मैं हूँ तथा मेरे प्रिय प्राण वे हैं। इस प्रकार परस्पर अनुरक्त चित्तवाले हम दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है॥ ४६॥

हे विशालनयने! मेरे जो भक्त भगवान् शंकरसे द्वेष करते हैं वे निश्चितरूपसे नरकमें पड़ते हैं; मैं यह सत्य कह रहा हूँ॥ ४७॥

हे गिरिजावल्लभ! एकान्तमें मेरे पूछनेपर सर्वसमर्थ देवदेव भगवान् विष्णुने ऐसा बताया था। अतएव आपको विष्णुका परम प्रिय जानकर मैंने आपका ध्यान किया। हे महेशान! अब जैसे मुझे पतिसांनिध्य प्राप्त हो जाय, वैसा आप कीजिये॥ ४८-४९॥

व्यासजी बोले—लक्ष्मीजीका यह वचन सुनकर वाणीविशारद भगवान् शंकरने मधुर वचनोंसे उन्हें आश्वासन देकर कहा—हे पृथुश्रोणि! धैर्य रखो। मैं तुम्हारी तपस्यासे प्रसन्न हूँ। पतिसे तुम्हारा मिलन अवश्य होगा; इसमें सन्देह नहीं है॥ ५०-५१॥

वे भगवान् जगदीश्वर मुझसे प्रेरित होकर तुम्हारी कामना पूर्ण करनेके लिये अश्वका रूप धारण करके यहींपर आयेंगे॥ ५२॥

मैं उन मधुसूदनको इस प्रकार प्रेरित करूँगा, जिससे वे मदातुर होकर अश्वरूपमें तुम्हारे पास आयेंगे॥ ५३॥

हे सुभ्रु! उन्हीं नारायणके समान तुम्हें पुत्र उत्पन्न होगा। वह पृथ्वीपर राजाके रूपमें प्रतिष्ठित तथा सभी लोगोंसे नमस्कृत होगा॥ ५४॥

हे महाभागे! इस प्रकार पुत्र प्राप्त करके तुम उन्हींके साथ वैकुण्ठलोक चली जाओगी और वहाँ उनकी प्रिया हो जाओगी॥ ५५॥

आपका वह पुत्र एकवीर—इस नामसे लोकमें ख्याति प्राप्त करेगा। उसीसे पृथ्वीपर हैहयवंश विस्तारको प्राप्त होगा॥ ५६॥

किंतु मदान्ध एवं मदचित्त होकर तुमने हृदयमें सदा विराजमान रहनेवाली परमेश्वरी जगदम्बाका विस्मरण कर दिया है, उसीसे तुम्हें ऐसा फल मिला है। अतः हे सिन्धुपुत्रि! उस दोषके शमनके लिये तुम हृदयमें विराजमान रहनेवाली परम देवीकी शरणमें सर्वात्मभावसे जाओ; यदि तुम्हारा मन भगवतीमें लगा होता तो उत्तम घोड़ेपर क्यों जाता?॥ ५७-५८$^{१}/_{२}$॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार देवी लक्ष्मीको वरदान देकर गिरिजापति भगवान् शंकर पार्वतीसहित अन्तर्धान हो गये॥ ५९$^{१}/_{२}$॥

सुन्दर अंगोंवाली वे लक्ष्मीजी वहीं स्थित रहकर भगवती जगदम्बाके देवासुरोंके शिरोरत्न (मुकुट)-से घर्षित नखमण्डलवाले परम सुन्दर चरणकमलका ध्यान करने लगीं और अपने पति श्रीहरिके अश्वरूप धारण करके आनेकी प्रतीक्षा करती हुई प्रेमयुक्त गद्गद वाणीसे बार-बार उनकी स्तुति करती रहीं॥ ६०—६२॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत षष्ठ स्कन्धका 'शिवके प्रसादसे लक्ष्मीद्वारा भगवतीके समाराधनका वर्णन' नामक अठारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १८॥

उन्नीसवाँ अध्याय

भगवती लक्ष्मीको अश्वरूपधारी भगवान् विष्णुके दर्शन और उनका वैकुण्ठगमन

व्यासजी बोले—उन लक्ष्मीजीको वरदान देकर भगवान् शंकर देवगणोंसे सेवित तथा अप्सराओंसे सुशोभित रमणीक कैलासपर शीघ्र चले गये॥ १॥

वहाँ पहुँचते ही शंकरजीने लक्ष्मीका कार्य सिद्ध करनेके उद्देश्यसे अपने परम बुद्धिमान् गण चित्ररूपको वैकुण्ठ भेजा॥ २॥

शिवजी बोले—हे चित्ररूप! तुम विष्णुके पास जाकर मेरे शब्दोंमें यह बात कहो और इस प्रकार यत्न करना, जिससे वे अपनी दु:खी पत्नीको शोकमुक्त कर दें॥ ३॥

भगवान् शंकरके ऐसा कहनेपर वह चित्ररूप वैष्णवगणोंसे घिरे अनेक प्रकारके वृक्षसमूहोंसे युक्त, सैकड़ों बावलियोंसे सुशोभित, हंस-सारस, मोर, शुक तथा कोकिलोंसे सुसेवित, पताकाओंसे सुशोभित ऊँचे-ऊँचे भवनोंवाले, नृत्य तथा गायनकलामें प्रवीण जनोंसे युक्त, मन्दारवृक्षोंसे परिपूर्ण, बकुल-अशोक-तिलक-चम्पक आदि वृक्षोंकी पंक्तियोंसे मण्डित तथा पक्षियोंके कर्णप्रिय कलरवोंसे गुंजित परम धाम वैकुण्ठके लिये शीघ्र ही निकल पड़ा। वहाँ भगवान् विष्णुका भवन देखकर हाथमें दण्ड (छड़ी) धारण किये हुए द्वारपर स्थित जय-विजय नामक दो द्वारपालोंको प्रणाम करके चित्ररूपने उनसे कहा—॥ ४—८॥

चित्ररूप बोला—[हे द्वारपालो!] तुमलोग शीघ्र ही भगवान् विष्णुको सूचित कर दो कि शूलपाणि शिवद्वारा भेजा गया उनका दूत यहाँ आया है॥ ९॥

उसकी बात सुनकर परम बुद्धिमान् जय श्रीहरिके पास जाकर उन्हें प्रणाम करके दोनों हाथ जोड़कर बोला—हे देवदेव! हे रमाकान्त! हे करुणाकर! हे केशव! भगवान् शंकरका दूत आया हुआ है; वह द्वारपर खड़ा है। हे गरुडध्वज! आप आदेश दीजिये कि उसे प्रवेश कराया जाय अथवा नहीं। उसका नाम चित्ररूप है। मैं उसके आनेका प्रयोजन नहीं जानता॥ १०—१२॥

ऐसा सुनकर दूतके आनेका कारण पहलेसे ही जाननेवाले भगवान् विष्णुने जयसे कहा—द्वारपर स्थित शंकरके भृत्यको यहाँ ले आओ॥ १३॥

यह सुनकर शीघ्रतापूर्वक जाकर 'अंदर आइये'—ऐसा उस शंकरसेवक परम अद्भुत चित्ररूपसे जयने कहा॥ १४॥

अपने चित्ररूप नामके समान ही आकृतिवाले उसको जयने प्रवेश कराया। तब विष्णुको साष्टांग प्रणाम करके दोनों हाथ जोड़कर वहाँ उनके समक्ष वह खड़ा हो गया॥ १५॥

विनयसे युक्त तथा विचित्र रूप धारण करनेवाले उस शम्भुसेवकको देखकर गरुडध्वज भगवान् विष्णु विस्मयमें पड़ गये॥ १६॥

तत्पश्चात् रमापति विष्णुने मुसकराकर उस चित्ररूपसे पूछा—हे पुण्यात्मन्! सपरिवार देवाधिदेव शंकरजीका कुशल तो है॥ १७॥

तुम यहाँ किसलिये भेजे गये हो, शंकरजीका कौन-सा कार्य है अथवा देवताओंका कोई काम तो नहीं आ पड़ा, मुझे बताओ॥ १८॥

दूत बोला—हे गरुडध्वज! हे त्रिकालज्ञ! इस संसारकी कौन-सी बात आपको विदित नहीं है; तथापि इस समय जो बात है, उसे मैं आपसे कह रहा हूँ॥ १९॥

हे जनार्दन! उस बातको बतानेके लिये मैं शंकरजीके

द्वारा यहाँ भेजा गया हूँ। हे प्रभो! शिवजीके कहे गये शब्दोंमें मैं आपसे कह रहा हूँ॥ २०॥

हे देवेश! उन्होंने कहा है कि 'हे विभो! आपकी भार्या लक्ष्मीजी यमुना और तमसा नदीके संगमपर तपस्या कर रही हैं॥ २१॥

देवगण, मानव, यक्ष तथा किन्नरोंके द्वारा आराधनाके योग्य एवं समस्त मनोरथ पूर्ण करनेवाली वे देवी घोड़ीका रूप धारण किये हैं॥ २२॥

उन देवीके बिना इस जगत्‌का कोई भी प्राणी सुखी नहीं रह सकता। हे पुण्डरीकाक्ष! हे हरे! उनका परित्याग करके आप कौन-सा सुख प्राप्त कर रहे हैं?॥ २३॥

हे जगत्पते! दुर्बल तथा निर्धन व्यक्ति भी अपनी भार्याकी रक्षा करता है। तब हे विभो! आपने बिना अपराधके ही उन जगदीश्वरीका त्याग क्यों कर दिया है?॥ २४॥

हे जगद्गुरो! जिसकी भार्या संसारमें दुःख प्राप्त करती है, उसके जीवनको धिक्कार है। ऐसा व्यक्ति शत्रुसमुदायमें निन्दित होता है॥ २५॥

आपके स्वार्थी शत्रु इस समय लक्ष्मीजीको अत्यन्त दुःखित तथा आपको उनसे विलग देखकर दिन-रात हँसते होंगे॥ २६॥

हे देवेश! आप सभी लक्षणोंसे सम्पन्न, सुशीला तथा सुन्दर रूपवाली लक्ष्मीजीको अपने अंकमें विराजमान कीजिये और उनके साथ आनन्द प्राप्त कीजिये। सुन्दर मुसकानवाली प्रिया लक्ष्मीको प्राप्तकर आप सुखी हो जाइये॥ २७$^{1}/_{2}$॥

उदास रहता हुआ मैं ही स्त्रीवियोगसे उत्पन्न दुःखको समझता हूँ। हे विष्णो! हे कमलनयन! जब मेरी भार्या सती दक्षके यज्ञमें मृत हो गयी थी तब मुझे असहनीय दुःख भोगना पड़ा था। उसके विरहसे पीडित होकर मैं मनमें यह शोक करता था कि इस संसारमें मेरे-जैसा कोई अन्य व्यक्ति न हो। जो सती क्रोधवश दक्षके यज्ञमें जलकर भस्म हो गयी थी, उसे मैंने बहुत समयतक कठोर तपस्या करके गिरिजाके रूपमें पुनः प्राप्त किया था॥ २८—३१॥

हे हरे! आपने अपनी भार्याको छोड़कर एक हजार वर्षकी अवधितक अकेले रहते हुए कौन-सा सुख प्राप्त कर लिया?॥ ३२॥

अतः आप महाभागा लक्ष्मीके पास जायँ और उन्हें आश्वासन देकर अपने घर ले आयें। इस संसारमें कोई भी प्राणी उन रमा (लक्ष्मी)-से विमुक्त न होने पाये॥ ३३॥

हे आयुष्मन्! आप अभी अश्वरूप धारण करके पवित्र मुसकानवाली लक्ष्मीके पास जाइये और पुत्र उत्पन्न करके उन्हें [वैकुण्ठ] ले आइये॥ ३४॥

व्यासजी बोले—हे भारत! चित्ररूपकी वह बात सुनकर भगवान् विष्णुने 'ठीक है'—ऐसा कहकर उस दूतको शंकरजीके पास भेज दिया॥ ३५॥

तत्पश्चात् दूतके चले जानेपर भगवान् विष्णु मनोहर अश्वरूप धारणकर कामयुक्त होकर शीघ्र ही वैकुण्ठसे वहींपर पहुँचे जहाँ घोड़ीका रूप धारणकर सिन्धुतनया लक्ष्मीजी तपस्या कर रही थीं। विष्णुजीने उस स्थानपर पहुँचकर हयरूपधारिणी लक्ष्मीजीको विराजमान देखा। अश्वका रूप धारण किये हुए अपने पति गोविन्दको देखते ही लक्ष्मीजीने भी उन्हें पहचान लिया और वे साध्वी विस्मयमें पड़कर अश्रुपूरित नेत्रोंसे देखती हुई वहीं खड़ी रहीं॥ ३६—३८॥

यमुना और तमसाके लोकप्रसिद्ध पवित्र संगमपर कामार्त उन दोनोंका समागम हुआ॥ ३९॥

इस प्रकार वडवारूपधारिणी वे विष्णुप्रिया गर्भवती हो गयीं और वहींपर उन्होंने सद्गुणोंसे सम्पन्न तथा सुन्दर पुत्रको जन्म दिया॥ ४०॥

भगवान् विष्णुने हँसकर उनसे यह समयोचित बात कही—तुम अब अपना यह अश्वीरूप छोड़ दो और पहले जैसा शरीर धारण कर लो॥ ४१॥

हे सुलोचने! हम दोनों अपनी दिव्य देह धारण करके अपने वैकुण्ठधाम चलेंगे और तुमसे उत्पन्न यह कुमार अब यहीं रहे॥ ४२॥

लक्ष्मीजी बोलीं—हे देवश्रेष्ठ! अपने शरीरसे उत्पन्न पुत्रको छोड़कर मैं कैसे जाऊँ? अपने पुत्रके प्रति स्नेहका त्याग अत्यन्त ही कठिन है॥ ४३॥

हे अमेयात्मन्! इस निर्जन नदीतटपर इस लघुकाय, अनाथ तथा असमर्थ बालककी क्या गति होगी?॥ ४४॥

हे कमलनयन! हे स्वामिन्! इस आश्रयहीन पुत्रको छोड़कर मेरा दयालु मन यहाँसे जानेके लिये भला कैसे तैयार हो सकता है?॥ ४५॥

तत्पश्चात् लक्ष्मीजी तथा भगवान् विष्णु दोनों दिव्य

शरीर धारणकर उत्तम विमानपर विराजमान हुए; देवगण अन्तरिक्षमें उनकी स्तुति करने लगे॥ ४६॥

वैकुण्ठके लिये प्रस्थान करनेके इच्छुक भगवान् विष्णुसे लक्ष्मीजीने कहा—हे नाथ! मैं इस पुत्रका त्याग नहीं कर सकती, अतएव इसे भी साथ ले लीजिये। हे प्रभो! मेरा यह प्राणके समान प्रिय पुत्र कान्तिमें आपहीके सदृश है। हे मधुसूदन! इसे लेकर हम दोनों वैकुण्ठ चलेंगे॥ ४७-४८॥

हरि बोले—हे प्रिये! हे वरानने! इस पुत्रके विषयमें शोक करना तुम्हारे लिये उचित नहीं है। यह सुखपूर्वक यहीं रहे; मैंने इसकी रक्षाका उपाय कर दिया है॥ ४९॥

हे वामोरु! इस पुत्रके यहाँ छोड़नेके पीछे कोई महान् तथा आश्चर्यजनक कारण छिपा है। मैं उसे बता रहा हूँ; तुम जान लो॥ ५०॥

इस पृथ्वीपर ययातिके पुत्र तुर्वसु नामक एक प्रसिद्ध राजा हैं। उनके पिताने उनका लोकप्रसिद्ध हरिवर्मा—यह नाम रखा था। इस समय पुत्रकी कामनावाले वे नरेश एक पवित्र तीर्थमें तपस्या कर रहे हैं। उन्हें तप करते हुए पूरे एक सौ वर्ष बीत चुके हैं। हे कमलालये! उन्हींके लिये मैंने यह पुत्र उत्पन्न किया है। हे सुभ्रु! वहाँ राजाके पास जाकर मैं उन्हें इसी समय भेज दूँगा। हे प्रिये! पुत्रके अभिलाषी उन्हीं राजाको मैं यह पुत्र दे दूँगा और वे इस बालकको लेकर अपने घर चले जायँगे॥ ५१—५४॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार अपनी प्रिय भार्याको आश्वासन देकर तथा बालककी रक्षाका प्रबन्ध करके भगवान् विष्णु उत्तम विमानपर आरूढ़ होकर अपनी प्रियाके साथ चले गये॥ ५५॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत षष्ठ स्कन्धका 'पुत्रजन्मके अनन्तर अपने-अपने स्वरूपसे वैकुण्ठगमनवर्णन' नामक उन्नीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १९॥

बीसवाँ अध्याय

राजा हरिवर्माको भगवान् विष्णुद्वारा अपना हैहयसंज्ञक पुत्र देना, राजाद्वारा उसका 'एकवीर' नाम रखना

जनमेजय बोले—[हे मुनिवर!] मुझे इस विषयमें यह महान् संशय हो रहा है कि भगवान्ने उत्पन्न होते ही उस बालकका त्याग कर दिया। निर्जन वनमें उस असहाय बालककी देखभाल किसने की?॥ १॥

हे सत्यवतीनन्दन! उस बालककी क्या गति हुई? बाघ, सिंह आदि हिंसक जानवर उस छोटे-से बालकको उठा तो नहीं ले गये॥ २॥

व्यासजी बोले—जब भगवान् विष्णु तथा लक्ष्मीजी उस स्थानसे चले गये, उसी समय चम्पक नामक विद्याधर उत्तम विमानपर आरूढ़ होकर अपनी प्रेयसी मदनालसाके साथ इच्छापूर्वक विहार करते हुए संयोगवश वहाँ आ पहुँचा॥ ३-४॥

देवपुत्र-तुल्य उस उत्तम शिशुको पृथ्वीपर सुखपूर्वक अकेले खेलते हुए देखकर चम्पकने शीघ्रतापूर्वक विमानसे उतरकर झटसे उस बालकको उठा लिया और वह उसी प्रकार आनन्दित हो गया, जिस प्रकार कोई धनहीन व्यक्ति धनका खजाना पाकर आनन्दित हो जाता है॥ ५-६॥

कामदेवके समान अत्यन्त सुन्दर उस नवजात शिशुको उठाकर चम्पकने (अपनी पत्नी) मदनालसाको सौंप दिया॥ ७॥

उस बालकको लेते ही प्रेमसे रोमांचित तथा विस्मित मदनालसा हृदयसे लगाकर उस बालकका मुख चूमने लगी॥ ८॥

हे भारत! प्रीतिपूर्वक हृदयसे लगाने तथा चूमनेके पश्चात् उस तन्वंगी मदनालसाने उसे अपना पुत्र समझकर गोदमें ले लिया॥ ९॥

उसे गोदमें लेकर पति-पत्नी प्रसन्नतापूर्वक विमानपर आरूढ़ हो गये। तब कमनीय अंगोंवाली मदनालसाने हँसकर अपने पतिसे पूछा—हे कान्त! बालक किसका है तथा किसने इसे निर्जन वनमें छोड़ दिया है? त्रिनेत्रधारी भगवान् शंकरने इसे मुझे पुत्ररूपमें दिया है॥ १०-११॥

चम्पक बोला—हे प्रिये! मैं आज ही सब कुछ जाननेवाले इन्द्रके पास जाकर पूछूँगा कि यह बालक देवता है, दानव है अथवा गन्धर्व है। उनसे आदेश प्राप्त करनेके

बाद ही मैं वनमें प्राप्त इस बालकको अपना पुत्र बनाऊँगा; बिना उनसे पूछे मुझे कोई भी कार्य निश्चितरूपसे नहीं करना चाहिये॥ १२-१३॥

ऐसा कहकर उस मदनालसा तथा पुत्रको लेकर हर्षातिरेकके कारण उत्फुल्ल नेत्रोंवाले उस चम्पकने तुरंत विमानसे इन्द्रपुरीके लिये प्रस्थान किया। [वहाँ पहुँचकर] प्रेमपूर्वक इन्द्रके चरणोंमें प्रणामकर उस बालकको उन्हें समर्पित करके दोनों हाथ जोड़कर चम्पक खड़ा हो गया और बोला— ॥ १४-१५॥

हे देवदेव! कामदेवके समान प्रभावाला यह बालक मुझे परम पवित्र तीर्थ यमुना तथा तमसा नदीके संगम-स्थलपर प्राप्त हुआ था॥ १६॥

हे शचीपते! कान्तिसे सम्पन्न यह बालक किसका है; इसका त्याग क्यों कर दिया गया है? हे देवेश! यदि आपका आदेश हो तो मैं इस बालकको अपना पुत्र बना लूँ॥ १७॥

यह अत्यन्त सुन्दर बालक मेरी पत्नीका प्रिय पुत्र बन गया है। धर्मशास्त्रोंमें कृत्रिम पुत्र भी कहा गया है॥ १८॥

इन्द्र बोले—यह अश्वरूपधारी भगवान् विष्णुका पुत्र है। हे महाभाग! हैहयसंज्ञक यह परम तपस्वी बालक लक्ष्मीजीसे उत्पन्न हुआ है॥ १९॥

भगवान् विष्णुने ययातिके पुत्र राजा हरिवर्माको अर्पित करनेके उद्देश्यसे इस बालकको उत्पन्न किया है॥ २०॥

परम धार्मिक राजा हरिवर्मा भगवान् विष्णुसे प्रेरणा प्राप्तकर पुत्रके लिये आज ही उस पावन तीर्थमें पहुँचेंगे। अतएव जबतक भगवान् विष्णुके द्वारा प्रेरित होकर वे राजा उसे लेनेहेतु वहाँ पहुँच नहीं जाते, उससे पूर्व तुम इस सुन्दर बालकको लेकर वहींपर पहुँच जाओ॥ २१-२२॥

हे श्रेष्ठ! वहाँ जाकर इस बालकको छोड़ दो, विलम्ब मत करो; क्योंकि राजा हरिवर्मा [तुमसे पहले पहुँच गये तो] बालकको वहाँ न देखकर अत्यन्त दुःखी होंगे॥ २३॥

अतएव हे चम्पक! इस बालकको छोड़ आओ, जिससे राजा पुत्र प्राप्त कर लें। यह पृथ्वीलोकमें 'एकवीर'— इस नामसे प्रसिद्ध होगा॥ २४॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! इन्द्रकी यह बात सुनकर चम्पक शीघ्रतापूर्वक उस बालकको लेकर उस स्थानपर पहुँच गया। बालक पहले जहाँ पड़ा हुआ था, वहींपर उसने बालकको रख दिया और अपने विमानपर चढ़कर अपने स्थानको लौट गया॥ २५-२६॥

इसके तुरंत बाद कमलाकान्त जगद्गुरु भगवान् विष्णु लक्ष्मीजीके साथ श्रेष्ठ विमानपर आरूढ़ होकर राजाके यहाँ पहुँचे॥ २७॥

उस समय राजा हरिवर्माने भगवान् विष्णुको उत्तम विमानसे उतरते हुए देखा। भगवान्के दर्शनसे राजा अत्यन्त हर्षित हुए और दण्डकी भाँति उनके समक्ष पृथ्वीपर गिर पड़े॥ २८॥

'हे वत्स! उठो'—ऐसा कहकर भगवान् विष्णुने भूमिपर पड़े हुए अपने भक्तको आश्वासन दिया। इसके बाद राजा हरिवर्मा भी उल्लसित होकर अपने सामने खड़े वासुदेवकी भक्तिपूर्वक स्पष्ट वाणीमें स्तुति करने लगे— ॥ २९॥

हे देवाधिदेव! हे अखिललोकनाथ! हे कृपानिधे! हे लोकगुरो! हे रमेश! आपका जो दर्शन योगिजनोंके लिये भी अलभ्य है, वह मुझ अज्ञानीके लिये तो अत्यन्त ही दुर्लभ था॥ ३०॥

जो लोग कामनारहित तथा विषयोंसे मुक्त हैं, उन्हें ही आपका दर्शन हो सकता है। हे भगवन्! हे अनन्त! हे देवदेव! केवल आशापरायण मैं वास्तवमें आपके दर्शनके योग्य नहीं था॥ ३१॥

इस प्रकार उन राजाके स्तुति करनेपर भगवान् विष्णुने अमृतमयी वाणीमें उनसे कहा—हे राजन्! मैं तुम्हारी तपस्यासे प्रसन्न हूँ। अतः मैं तुम्हें मनोवांछित वरदान दूँगा; तुम माँग लो॥ ३२॥

तत्पश्चात् राजाने अपने सामने स्थित विष्णुके चरणोंमें सिर झुकाकर उनसे कहा—हे मुरारे! मैंने पुत्रप्राप्तिके लिये तपस्या की है। अतएव आप मुझे अपने ही सदृश पुत्र दीजिये॥ ३३॥

राजाकी प्रार्थना सुनकर आदिदेव भगवान् विष्णुने राजासे सार्थक वचन कहा—हे ययातिनन्दन! तुम इसी समय यमुना तथा तमसा नदीके उस पावन संगम तीर्थपर चले जाओ। हे राजन्! आप जैसा पुत्र चाहते हैं, वैसा ही पुत्र मैंने वहाँ रख दिया है। मेरे तेजसे प्रादुर्भूत वह पुत्र अमित प्रभाववाला है तथा लक्ष्मीजीने उसे उत्पन्न किया है। तुम्हारे लिये ही उसकी उत्पत्ति की गयी है, अत: तुम उसे ग्रहण करो॥ ३४-३५॥

भगवान् विष्णुकी अत्यन्त मधुर वाणी सुनकर राजाके मनमें प्रसन्नता हुई। राजाको यह वरदान देकर भगवान् विष्णु लक्ष्मीजीके साथ वैकुण्ठ चले गये॥ ३६॥

भगवान् विष्णुके चले जानेपर उनकी बात सुनकर आनन्दविभोर ययातिनन्दन राजा हरिवर्मा एक सुदृढ़ रथपर आरूढ़ होकर उस स्थानपर गये, जहाँ बालक स्थित था॥ ३७॥

वहाँ पहुँचनेपर परम तेजस्वी राजाने उस अति मनोहर बालकको एक हाथसे पैरका कोमल अँगूठा मुखमें डालकर भूमिपर खेलता हुआ देखा॥ ३८॥

लक्ष्मीजीसे उत्पन्न भगवान् विष्णुके अंशस्वरूप तथा उन्हींके समान प्रभावशाली एवं कामदेवके सदृश रूपवान् उस पुत्रको देखकर राजा हरिवर्माका मुखारविन्द हर्षसे खिल उठा। उस बालकको अपने करकमलोंसे बड़ी तेजीसे उठाते हुए राजा हरिवर्मा प्रेमसागरमें मग्न हो गये। प्रसन्नतापूर्वक उसका मस्तक सूँघकर उन राजाने पुत्रका आलिंगन किया और अत्यन्त आनन्द प्राप्त किया॥ ३९-४०॥

उस बालकका अत्यन्त मनोहर मुख देखकर प्रेमके अश्रुसे रुँधे कण्ठवाले राजाने उससे कहा—हे पुत्र! भगवान् विष्णु तथा माता लक्ष्मीके द्वारा तुम मेरे लिये प्रदान किये गये हो। हे पुत्र! नरकभोगके दु:खसे भयभीत होकर मैंने तुम्हारे लिये पूरे सौ वर्षोंतक अत्यन्त कठोर तपस्या की है। उसी तपसे प्रसन्न होकर रमाकान्त विष्णुने सांसारिक सुख भोगनेके लिये तुम्हें पुत्ररूपमें मुझे प्रदान किया है॥ ४१-४२॥

लक्ष्मीजी तुम्हारी जननी हैं; तुझ पुत्रको मेरे लिये छोड़कर वे भगवान् विष्णुके साथ वैकुण्ठ चली गयी हैं। अब वह माता धन्य होगी, जो तुझ-जैसे हँसते हुए पुत्रको अपनी गोदमें लेकर आनन्द प्राप्त करेगी। हे पुत्र! मेरे लिये संसारसागरको पार करनेके लिये तुम नौकास्वरूप हो, जिसे साक्षात् लक्ष्मीपति भगवान् विष्णुने उत्पन्न किया है। ऐसा कहकर राजा हरिवर्मा प्रसन्नतापूर्वक उस पुत्रको लेकर अपने घरकी ओर चले गये॥ ४३-४४॥

राजा नगरके समीप आ गये हैं—ऐसा सुनकर राजाके सभी सचिव तथा उनके प्रजावर्ग पुरोहितोंके साथ समस्त उपहार-सामग्री लेकर उनके पास पहुँच गये॥ ४५॥

सूत, बंदीजन तथा गायकगण भी राजाके सामने उनका यशोगान करते हुए शीघ्र ही आ गये। नगरमें आकर राजा हरिवर्मा अपने सम्मुख उपस्थित लोगोंको [स्नेहभरी] दृष्टि तथा [मधुर] वचनोंसे आश्वस्त करके नगरवासियोंद्वारा भलीभाँति पूजित होकर पुत्रके साथ नगरीमें प्रविष्ट हुए। नगरमें जाते समय रास्तेभर राजाके ऊपर लाजा तथा फूलोंकी वर्षा की जा रही थी॥ ४६-४७॥

सचिवोंके साथ अपने समृद्धिशाली महलमें पहुँचनेपर राजाने हर्षपूर्वक कामदेवके तुल्य कान्तिमान् तथा मनोहर नवजात पुत्रको दोनों हाथोंमें लेकर रानीको दे दिया॥ ४८॥

उस बालकको गोदमें लेकर पुण्यात्मा रानीने राजासे पूछा—हे राजन्! कामदेवके समान सुन्दर तथा उत्तम कुलमें उत्पन्न इस पुत्रको आपने कहाँसे प्राप्त किया? हे कान्त! आप शीघ्र बताइये कि किसने आपको यह बालक दिया है? इस पुत्रने अपने सौन्दर्यसे मेरे मनको वशीभूत कर लिया है। तब राजाने बड़ी प्रसन्नताके साथ कहा—हे प्रिये! हे चंचल नेत्रोंवाली! लक्ष्मीजीसे उत्पन्न तथा भगवान् जनार्दनका अंशस्वरूप यह महान् शक्तिशाली पुत्र मुझे स्वयं लक्ष्मीपति भगवान् विष्णुने ही दिया है। उस पुत्रको लेकर रानी परम आनन्दित हुईं और राजाने अद्भुत उत्सव मनाया॥ ४९—५१॥

राजाने याचकोंको दान दिया। इस अवसरपर गीत गाये गये तथा अनेक वाद्य बजाये गये। सम्यक् उत्सव करके राजाने अपने पुत्रका 'एकवीर'—यह प्रसिद्ध नाम रखा। वे सुख पाकर बहुत प्रसन्न हुए तथा आनन्दित हुए। इन्द्रके समान पराक्रमशाली राजा हरिवर्मा भगवान् विष्णुके सदृश रूपवान् तथा गुणी पुत्र पाकर वंशऋण (पितृऋण)-से मुक्त हो गये॥ ५२-५३॥

इस प्रकार समस्त देवताओंके अधिपति भगवान् विष्णुके द्वारा अर्पित किये गये उस सर्वगुणसम्पन्न पुत्रको प्राप्त करके इन्द्रके समान प्रतापी राजा हरिवर्मा अपनी भार्याके साथ नानाविध सुख भोगते हुए तथा विनोद करते हुए अपने महलमें रहने लगे॥ ५४॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत षष्ठ स्कन्धका 'एकवीराख्यानवर्णन' नामक बीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २०॥

इक्कीसवाँ अध्याय

आखेटके लिये वनमें गये राजासे एकावलीकी सखी यशोवतीकी भेंट, एकावलीके जन्मकी कथा

व्यासजी बोले—हे राजन्! तत्पश्चात् राजा हरिवर्माने बालकके जातकर्म आदि संस्कार किये। भलीभाँति पालित-पोषित होनेके कारण वह बालक दिनोंदिन शीघ्रतासे बढ़ने लगा॥ १॥

इस प्रकार पुत्रजनित सांसारिक सुख प्राप्त करके उन महात्मा नरेशने अपनेको अब तीनों ऋणोंसे मुक्त मान लिया॥ २॥

राजा हरिवर्माने छठें महीनेमें बालकका अन्नप्राशन-संस्कार करके तीसरे वर्षमें शुभ मुण्डन-संस्कार विधि-विधानके साथ सम्पन्न किया। इनमें ब्राह्मणोंकी सम्यक् पूजा करके उन्हें विविध धन-द्रव्यों तथा गौओंका दान किया गया और अन्य याचकोंको भी नानाविध दान दिये॥ ३-४॥

ग्यारहवें वर्षमें उस बालकका यज्ञोपवीत-संस्कार कराकर राजाने उसको धनुर्वेद पढ़वाया॥ ५॥

राजा हरिवर्माने उस पुत्रको धनुर्वेद तथा राजधर्ममें पूर्ण निष्णात हुआ देखकर उसका राज्याभिषेक करनेका निश्चय किया॥ ६॥

तत्पश्चात् श्रेष्ठ राजाने पुष्यार्क-योगसे युक्त शुभ दिनमें बड़े आदरके साथ अभिषेकहेतु सभी सामग्रियाँ एकत्र करवायीं॥ ७॥

सभी शास्त्रोंमें पूर्ण पारंगत तथा वेदवेत्ता ब्राह्मणोंको बुलाकर उन्होंने विधिवत् अपने पुत्रका अभिषेक सम्पन्न किया। सभी तीर्थों तथा समुद्रोंसे जल मँगाकर राजाने शुभ दिनमें पुत्रका स्वयं अभिषेक किया॥ ८-९॥

तत्पश्चात् ब्राह्मणोंको धन देकर तथा पुत्रको राज्य सौंपकर उन राजा हरिवर्माने स्वर्गप्राप्तिकी कामनासे वनके लिये शीघ्र ही प्रस्थान किया॥ १०॥

इस प्रकार एकवीरको राजा बनाकर तथा योग्य मन्त्रियोंको नियुक्तकर इन्द्रियजित् राजा हरिवर्माने अपनी भार्याके साथ वनमें प्रवेश किया॥ ११॥

मैनाकपर्वतके शिखरपर तृतीय आश्रम (वानप्रस्थ)-का आश्रय लेकर वे राजा प्रतिदिन वनके पत्तों तथा फलोंका आहार करते हुए भगवती पार्वतीकी आराधना करने लगे॥ १२॥

इस प्रकार अपनी भार्याके साथ वानप्रस्थ-आश्रमका पालन करके वे राजा प्रारब्ध कर्मके समाप्त हो जानेपर मृत्युको प्राप्त हुए और अपने पुण्यकर्मके प्रभावसे इन्द्रलोक चले गये॥ १३॥

पिता इन्द्रलोक चले गये—ऐसा सुनकर हैहय एकवीरने वैदिक विधानके अनुसार उनका और्ध्वदैहिक संस्कार सम्पन्न किया॥ १४॥

पिताकी सभी श्राद्ध आदि क्रियाएँ सम्पन्न करके सबकी सहमतिसे पिताद्वारा दिये गये राज्यपर वह मेधावी राजकुमार एकवीर शासन करने लगा॥ १५॥

उत्कृष्ट राज्य प्राप्त करके धर्मपरायण एकवीर सभी

मन्त्रियोंसे सम्मानित रहते हुए अनेकविध सुखोंका उपभोग करने लगे॥ १६॥

एक दिन प्रतापी राजा एकवीर मन्त्रियोंके पुत्रोंके साथ घोड़ेपर आरूढ़ होकर गंगाके तटपर गये। वहाँ उन्होंने कोकिलोंकी कूजसे गुंजित, भ्रमरोंकी पंक्तियोंसे सुशोभित तथा फलों-फूलोंसे लदे मनोहर वृक्षों, वेदपाठकी ध्वनिसे निनादित, हवनके धुएँसे आच्छादित आकाश-मण्डलवाले, मृगोंके छोटे शिशुओंसे आवृत दिव्य मुनि-आश्रमों; गोपिकाओंके द्वारा सुरक्षित तथा पके हुए शालिधान्यसे युक्त खेतों; विकसित कमलोंसे सुशोभित अनेक सरोवरों तथा मनको आकर्षित करनेवाले निकुंजोंको देखा। उन राजा एकवीरने प्रियाल, चम्पक, कटहल, बकुल, तिलक, कदम्ब, पुष्पित मन्दार, शाल, ताल, तमाल, जामुन और आम आदि वृक्षोंको देखते हुए कुछ दूर आगे जानेपर गंगाके जलमें उत्कृष्ट गन्धयुक्त एक खिला हुआ शतदल कमल देखा। राजाने उस कमलके दक्षिण भागमें कमलसदृश नेत्रोंवाली, स्वर्णके समान कान्तिवाली, सुन्दर केशपाशवाली, शंखतुल्य गर्दनवाली, कृश कटिप्रदेशवाली, बिम्बाफलके समान ओष्ठवाली, किंचित् स्फुट पयोधरवाली, मनोहर नासिकावाली तथा समस्त सुन्दर अंगोंवाली एक सुन्दरी कन्याको देखा। अपनी सखीसे बिछुड़ जानेसे व्याकुल होकर दुःखपूर्वक विलाप करती हुई, निर्जन वनमें आँखोंमें आँसू भरकर कुररी पक्षीकी भाँति क्रन्दन करती हुई उस कन्याको देखकर राजा एकवीरने उससे शोकका कारण पूछा॥ १७—२६॥

हे सुन्दर नासिकावाली! तुम कौन हो? हे सुमुखि! तुम किसकी पुत्री हो? हे सुन्दरि! तुम गन्धर्वकन्या हो अथवा देवकन्या? हे सुन्दरि! तुम क्यों रो रही हो? यह मुझे बताओ॥ २७॥

हे बाले! तुम यहाँ अकेली क्यों हो? हे पिकस्वरे! तुम्हें यहाँ किसने छोड़ दिया है? हे प्रिये! तुम्हारे पति अथवा पिता इस समय कहाँ चले गये हैं? मुझे बताओ॥ २८॥

हे वक्र भौंहोंवाली! तुम्हें क्या दुःख है? उसे मेरे सामने अभी व्यक्त करो। हे कृशोदरि! मैं सब प्रकारसे तुम्हारा दुःख दूर करूँगा॥ २९॥

हे तन्वंगि! मेरे राज्यमें कोई भी प्राणी किसीको पीड़ा नहीं पहुँचा सकता और हे कान्ते! कहीं न तो चोरोंका भय है और न राक्षसोंका ही भय है॥ ३०॥

मुझ नरेशके शासन करते हुए भीषण उत्पात नहीं हो सकते; बाघ अथवा सिंहसे किसीको भय नहीं हो सकता और किसीको कोई भी भय नहीं रहता॥ ३१॥

हे वामोरु! असहाय होकर तुम गंगातटपर क्यों विलाप कर रही हो, तुम्हें क्या दुःख है? मुझे बताओ॥ ३२॥

हे कान्ते! मैं जगत्‌के प्राणियोंके अत्यन्त भीषण दैविक तथा मानुषिक कष्टको भी दूर करता हूँ; यह मेरा अद्भुत व्रत है। हे विशालनयने! बताओ, मैं तुम्हारा वांछित कार्य करूँगा॥ ३३१/२॥

राजाके ऐसा कहनेपर उसे सुनकर मधुरभाषिणी कन्याने कहा—हे राजेन्द्र! सुनिये, मैं आपको अपने शोकका कारण बता रही हूँ। हे राजन्! विपदारहित प्राणी भला क्यों रोयेगा? हे महाबाहो! मैं जिसलिये रो रही हूँ, वह आपको बता रही हूँ। आपके राज्यसे भिन्न दूसरे देशमें रैभ्य नामक एक महान् धार्मिक राजा हैं, वे महाराज सन्तानहीन हैं, उनकी पत्नी रुक्मरेखा—इस नामसे प्रसिद्ध हैं। वे परम रूपवती, बुद्धिमती, पतिव्रता तथा समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न हैं। पुत्रहीन होनेसे दुःखित रहनेके कारण वे अपने पतिसे बार-बार कहा करती थीं—हे नाथ! मेरे इस जीवनसे क्या लाभ? इस जगत्‌में मुझ वन्ध्या, पुत्रहीन तथा सुखरहित नारीके इस व्यर्थ जीवनको धिक्कार है॥ ३४—३९॥

इस प्रकार अपनी भार्यासे प्रेरणा पाकर राजा रैभ्यने यज्ञके ज्ञाता ब्राह्मणोंको बुलाकर विधिवत् उत्तम यज्ञ सम्पन्न कराया ॥ ४० ॥

पुत्राभिलाषी राजा रैभ्यने शास्त्रोक्त रीतिसे प्रचुर धन दान दिया। घृतकी आहुति अधिक पड़ते रहनेसे तीव्र प्रभायुक्त अग्निसे सुन्दर अंगोंवाली, शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न, बिम्बाफलके समान ओष्ठवाली, सुन्दर दाँतों तथा भौंहोंवाली, पूर्ण चन्द्रमाके समान मुखवाली, स्वर्णके समान आभावाली, सुन्दर केशोंवाली, रक्त हथेलियोंवाली, कोमल, सुन्दर लाल नेत्रोंवाली, कृश शरीरवाली तथा रक्त पादतल [तलवे]-वाली एक कन्या प्रकट हुई ॥ ४१—४३ ॥

तब होताने अग्निसे उत्पन्न हुई उस कन्याको स्वीकार कर लिया। इसके बाद उस सुन्दर कन्याको लेकर होताने राजा रैभ्यसे कहा—हे राजन्! समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न इस पुत्रीको ग्रहण कीजिये। हवन करते समय अग्निसे उत्पन्न यह कन्या मोतियोंकी मालाके समान प्रतीत होती है। अतः हे राजन्! यह पुत्री जगत्में 'एकावली' नामसे प्रसिद्ध होगी। पुत्रतुल्य इस कन्याको प्राप्तकर आप सुखी हो जायँ। हे राजेन्द्र! सन्तोष कीजिये; भगवान् विष्णुने आपको यह कन्या दी है ॥ ४४—४६$^{१}/_{२}$ ॥

होताकी बात सुनकर राजाने उस सुन्दर कन्याकी ओर देखकर होताके द्वारा प्रदत्त उस कन्याको अति प्रसन्न होकर ले लिया। राजाने सुन्दर मुखवाली उस कन्याको ले करके अपनी पत्नी रुक्मरेखाको यह कहकर दे दिया कि हे सुभगे! इस कन्याको स्वीकार करो। कमलपत्रके समान नेत्रोंवाली उस मनोहर कन्याको पाकर रानी बहुत हर्षित हुईं; वे ऐसी सुखी हो गयीं मानो उन्हें पुत्र प्राप्त हो गया हो ॥ ४७—४९$^{१}/_{२}$ ॥

तत्पश्चात् राजाने उसके जातकर्म आदि सभी शुभ मंगल कार्य सम्पन्न किये तथा पुत्रजन्मके अवसरपर होनेवाले जो कुछ भी कार्य थे, वे सब उन्होंने विधिपूर्वक सम्पन्न कराये। यज्ञ सम्पन्न करके राजा रैभ्य ब्राह्मणोंको विपुल दक्षिणा देकर तथा सभी विप्रेन्द्रोंको विदाकर अत्यन्त आनन्दित हुए ॥ ५०-५१$^{१}/_{२}$ ॥

श्याम नेत्रोंवाली वह कन्या पुत्रवृद्धिके समान दिनोंदिन बढ़ने लगी। उसे देखकर उस समय रानी अपनेको पुत्रवती समझकर परम आनन्दित हुईं। उस दिन महलमें ऐसा उत्सव मनाया गया, जैसा पुत्रजन्मके अवसरपर मनाया जाता है। वह पुत्री उन दोनोंके लिये पुत्रके ही सदृश प्रिय हो गयी ॥ ५२-५३$^{१}/_{२}$ ॥

हे सुबुद्धे! हे कामदेवसदृश रूपवाले! मैं उन्हीं राजा रैभ्यके मन्त्रीकी पुत्री हूँ। मेरा नाम यशोवती है। मेरी तथा एकावलीकी अवस्था समान है। उसके साथ खेलनेके लिये राजाने मुझे उसकी सखी बना दिया। इस प्रकार मैं उसकी सहचरी बनकर प्रेमपूर्वक दिन-रात उसके साथ रहने लगी ॥ ५४-५५$^{१}/_{२}$ ॥

एकावली जहाँ भी सुगन्धित कमल देखती थी, वह बाला वहीं खेलने लग जाती थी; अन्यत्र कहीं भी उसे सुख नहीं मिलता था। [एक बार] गंगाके तटपर बहुत दूर कमल खिले हुए थे। राजकुमारी एकावली सखियोंसहित मेरे साथ घूमती हुई वहाँ चली गयी। [इससे चिन्तित होकर] मैंने महाराज रैभ्यसे कहा—हे राजन्! आपकी पुत्री एकावली कमलोंको देखती हुई बहुत दूर निर्जन वनमें चली जाती है। तब उसके पिताने घरपर ही अनेक जलाशयोंका निर्माण कराकर उनमें पुष्पित तथा भौंरोंसे आवृत कमल लगवाकर उसे दूर जानेसे मना कर दिया। इसपर भी मनमें कमलोंके प्रति आसक्ति रखनेवाली वह कन्या बाहर निकल जाती थी। तब राजाने उसके साथ हाथोंमें शस्त्र धारण किये हुए रक्षक नियुक्त कर दिये। इस प्रकार रक्षित होकर वह सुन्दरी मेरे तथा सखियोंसहित क्रीडाके लिये गंगातटपर प्रतिदिन आया-जाया करती थी ॥ ५६—६१ ॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत षष्ठ स्कन्धका 'एकावलीकन्याप्राप्तिवर्णन' नामक इक्कीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ २१ ॥

बाईसवाँ अध्याय

यशोवतीका एकवीरसे कालकेतुद्वारा एकावलीके अपहृत होनेकी बात बताना

यशोवती बोली—एक बार वह सुन्दरी एकावली प्रात:काल उठकर अपनी सखियोंके साथ चल दी। वह बहुत-से रक्षकोंसे रक्षित थी तथा उसके ऊपर चँवर डुलाये जा रहे थे। हे राजेन्द्र! वह सुन्दरी अनेक प्रकारके आयुधोंसे सुसज्जित रक्षकोंके साथ यहाँ सुन्दर कमलोंके पास क्रीड़ा करनेके लिये आयी॥ १-२॥

कमलोंसे खेलनेकी रुचिवाली इस कन्याके साथ मैं भी अप्सराओंसहित गंगाके तटपर आयी थी॥ ३॥

जब मैं तथा एकावली दोनों खेलनेमें व्यस्त हो गयीं, उसी समय हाथोंमें परिघ, तलवार, गदा, धनुष, बाण तथा तोमर धारण किये हुए बहुत-से राक्षसोंके साथ कालकेतु नामक बलवान् दानव वहाँ अकस्मात् आ पहुँचा॥ ४-५॥

उसने कमलोंके साथ क्रीडा करती हुई उस रूप-यौवनसम्पन्न तथा दूसरी कामपत्नी रतिकी भाँति प्रतीत हो रही एकावलीको देख लिया॥ ६॥

हे राजन्! मैंने एकावलीसे कहा—हे कमलनयने! यह कौन-सा दैत्य आ गया है! अब हम दोनों रक्षकोंके पास भाग चलें॥ ७॥

हे राजकुमार! इस प्रकार विचारविमर्श करके सखी एकावली तथा मैं भयभीत होनेके कारण शस्त्रधारी सैनिकोंके बीच तुरंत चली गयी॥ ८॥

वह कामातुर कालकेतु उस मोहिनी एकावलीको देखकर अपनी विशाल गदा लेकर दौड़ता हुआ पासमें आ गया और उसने रक्षकोंको हटाकर डरके मारे काँपती तथा रोती हुई कृश कटिप्रदेशवाली तथा कमलके समान नेत्रोंवाली एकावलीको पकड़ लिया॥ ९-१०॥

'इस राजकुमारीको छोड़ दो और मुझे ग्रहण कर लो'—ऐसा मेरे कहनेपर भी उसने मुझे स्वीकार नहीं किया और कामके वशीभूत वह दानव एकावलीको लेकर वहाँसे निकल गया॥ ११॥

रक्षकोंने 'ठहरो-ठहरो'—ऐसा कहते हुए उस महाबलीको रोककर उसके साथ विस्मयकारक युद्ध किया॥ १२॥

अपने स्वामीके कार्यमें पूर्ण तत्पर तथा हाथोंमें शस्त्र धारण किये उसके सभी क्रूर राक्षसोंने भी रक्षकोंके साथ भीषण युद्ध किया। तब उन रक्षकोंके साथ कालकेतुका संग्राम होने लगा। वह महाबली युद्धमें सभी रक्षकोंको मारकर तथा एकावलीको लेकर राक्षसी सेनाके साथ अपने नगरके लिये चल दिया। दानव कालकेतुके द्वारा अधिकारमें की गयी उस राजकुमारीको रोती हुई देखकर मैं उसके पीछे-पीछे वहीं पहुँच जाती थी, जहाँ कालकेतु मेरी सखीको लेकर जाता था जिससे कि रोती हुई वह मुझे अपने पीछे आते हुए देख ले॥ १३—१६॥

मुझे आयी हुई देखकर वह भी कुछ स्वस्थचित्त हुई तब मैं उसके पास जाकर उससे बार-बार बातें करने लगी॥ १७॥

हे राजन्! दु:खसे व्याकुल तथा पसीनेसे संसिक्त उस एकावलीने मुझे पकड़कर गलेसे लगा लिया और वह अत्यन्त दु:खित होकर रोने लगी॥ १८॥

तत्पश्चात् उस कालकेतुने प्रेम प्रदर्शित करते हुए मुझसे यह बात कही कि चंचल नेत्रोंवाली अपनी इस भयग्रस्त सखीको धीरज बँधाओ और अपनी इस सखीसे कहो—'हे प्रिये! देवलोकके समान अत्यन्त सुन्दर मेरा नगर अब आ ही गया है। तुम्हारे प्रेमके कारण मैं तुम्हारा दास हो चुका हूँ। तुम भयभीत होकर क्यों विलाप कर रही हो? हे सुलोचने! अब शान्त हो जाओ'—ऐसा कहकर उसी उत्तम रथमें सखीके पास मुझे भी बैठाकर प्रसन्नताके कारण खिले हुए कमलके समान मुखवाला दुष्ट कालकेतु अपनी भारी सेनाके साथ अपने सुन्दर नगरके लिये शीघ्र ही चल दिया॥ १९—२२॥

वहाँ उस दानवने मुझे तथा एकावलीको एक दिव्य महलमें ठहराकर उस महलकी रक्षाके लिये करोड़ों राक्षस नियुक्त कर दिये॥ २३॥

हे राजन्! दूसरे दिन उस कालकेतुने एकान्तमें मुझसे कहा—विरहसे दु:खित तथा शोक करती हुई अपनी

सुन्दर सखीको [मेरे शब्दोंमें] समझाओ—'हे सुश्रोणि! तुम मेरी पत्नी हो जाओ और फिर यथेच्छ सुखोपभोग करो। हे चन्द्रमुखि! अब यह राज्य तुम्हारा है और मैं सदाके लिये तुम्हारा सेवक बन गया हूँ'॥ २४-२५॥

हे प्रभो! उसका ऐसा दुर्वचन सुनकर मैंने उससे यह बात कही कि मैं ऐसा अप्रिय वाक्य नहीं कह सकती, अत: आप ही इससे कहिये॥ २६॥

मेरे ऐसा कहनेपर कामसे आहत चित्तवाले उस दुष्ट दानवने कृश उदरवाली मेरी उस प्रिय सखीसे विनयपूर्वक कहा—॥ २७॥

हे कृशोदरि! तुमने मेरे ऊपर कोई मन्त्र-प्रयोग कर दिया है। हे कान्ते! उसीसे आहत होकर मेरा मन तुम्हारे वशमें हो चुका है। उसी मन्त्रने मुझे अब तुम्हारा दास बना दिया है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। इसलिये कामबाणसे आहत मुझ अत्यन्त विवशको अब तुम स्वीकार कर लो। हे रम्भोरु! तुम्हारा दुर्लभ तथा चंचल यौवन व्यर्थ जा रहा है। इसलिये हे कल्याणि! मुझे पतिरूपमें स्वीकार करके इसे सफल कर लो॥ २८—३०॥

एकावली बोली—मेरे पिता राजकुमार हैहयको मुझे देनेका पहले ही निश्चय कर चुके हैं। मैंने भी उन महाभागका मनसे वरण कर लिया है॥ ३१॥

सनातनधर्मका त्याग करके तथा कन्याधर्म छोड़कर मैं दूसरेको पतिरूपमें कैसे स्वीकार करूँ? आप भी तो शास्त्रीय नियमको जानते ही हैं। पिता कन्याको जिसे सौंप दे, कन्या उसीको पति बना ले। कन्या इस विषयमें सदा पराधीन रहती है, उसे स्वतन्त्रता कभी नहीं रहती॥ ३२-३३॥

[हे राजकुमार!] उस एकावलीके ऐसा कहनेपर भी वह पापात्मा कालकेतु राजकुमारीपर मोहित रहनेके कारण अपने निश्चयसे विचलित नहीं हुआ और उसने विशाल नेत्रोंवाली एकावलीको तथा उसके पासमें स्थित मुझको नहीं छोड़ा॥ ३४॥

उस कालकेतुका नगर अनेक प्रकारके संकटोंसे युक्त एक पाताल-विवरमें विद्यमान है। वहींपर चारों ओर खाइयोंसे घिरा हुआ तथा राक्षसोंसे पूर्णतया रक्षित उसका सुन्दर दुर्ग है। मेरी प्राणप्यारी सखी एकावली वहींपर दुःखके साथ पड़ी हुई है। इसलिये उसके विरहसे अत्यन्त व्यथित होकर मैं यहाँ विलाप कर रही हूँ॥ ३५-३६॥

एकवीरने कहा—हे वरानने! उस दुष्टात्मा कालकेतुके नगरसे तुम यहाँ कैसे आ गयी? इस बातसे मैं बहुत ही आश्चर्यचकित हूँ; तुम मुझसे इस विषयमें बताओ॥ ३७॥

हे भामिनि! अभी तुमने जो कहा है कि एकावलीके पिताने उसका विवाह हैहयके साथ करनेका निश्चय किया है, वह बात मुझे अत्यन्त सन्देहास्पद प्रतीत हो रही है। हैहय नामका राजा मैं ही हूँ; अन्य कोई राजा नहीं है। सुन्दर नेत्रोंवाली वह तुम्हारी सखी अपने पिताके द्वारा कहीं मेरे लिये ही तो कल्पित नहीं की गयी है?॥ ३८-३९॥

हे सुभ्रु! हे भामिनि! तुम मेरे इस सन्देहको दूर करो। मैं उस अधम राक्षसका वध करके उस एकावलीको ले आऊँगा। हे सुव्रते! यदि तुम उस राक्षसका स्थान जानती हो तो वह स्थान मुझे दिखा दो। उसके पिता राजा रैभ्यको तुमने यह बताया अथवा नहीं कि वह अत्यन्त दुःखित है॥ ४०-४१॥

जिसकी ऐसी प्रिय पुत्री हो, क्या वह उसके हरणको नहीं जानता? और फिर उसने एकावलीकी मुक्तिके लिये क्या कोई प्रयास नहीं किया?॥ ४२॥

अपनी पुत्रीको बन्दी बनाया गया जाननेके बाद भी राजा स्थिरचित्त होकर कैसे चुप बैठे हैं? अथवा राजा कुछ कर पानेमें असमर्थ तो नहीं है? मुझे इसका कारण शीघ्र बताओ॥ ४३॥

हे कमलनयने! तुमने अपनी सखीके अलौकिक गुणोंको बताकर मेरे चित्तको हर लिया है तथा मैं पूर्ण-रूपसे कामके वशीभूत कर दिया गया हूँ॥ ४४॥

अब तो मेरे मनकी यही अभिलाषा है कि उस प्रियाको इस महान् संकटसे मुक्त करके मैं उसे कब देख लूँ॥ ४५॥

अब उस दानवके अत्यन्त दुर्गम नगरमें जानेका उपाय मुझे बताओ और यह भी बताओ कि उस महान् संकटसे छूटकर तुम यहाँ कैसे आयी?॥ ४६॥

यशोवती बोली—हे राजन्! मैंने बाल्यावस्थासे ही एक सिद्ध ब्राह्मणसे बीज तथा ध्यानसहित भगवतीका मन्त्र

प्राप्त किया है॥ ४७॥

हे राजन्! जब मैं कालकेतुके यहाँ थी तभी मैंने अपने मनमें सोचा कि अब मैं प्रचण्ड पराक्रमवाली भगवती चण्डिकाकी निरन्तर आराधना करूँ। वे भगवती पूर्णरूपसे आराधित होनेपर निश्चितरूपसे मुझे इस बन्धनसे मुक्त करेंगी; क्योंकि भक्तोंपर अनुकम्पा करनेवाली वे शक्तिस्वरूपा चण्डिका सब कुछ करनेमें समर्थ हैं। जो निराकार तथा निरालम्ब भगवती अपनी शक्तिसे जगत्का सृजन करती हैं तथा पालन करती हैं, वे ही कल्पके अन्तमें उसका संहार भी कर देती हैं। मनमें ऐसा सोचकर मैं विश्वकी अधिष्ठात्री, कल्याणकारिणी, लाल वस्त्र धारण करनेवाली, सौम्य विग्रहवाली तथा सुन्दर रक्त नयनोंवाली भगवतीका ध्यान करके मन-ही-मन उनके रूपका स्मरण करके मन्त्रका जप करनेमें तत्पर हो गयी। इस प्रकार मैं समाधि लगाकर एक माहतक भगवती जगदम्बाकी उपासना करती रही॥ ४८—५२॥

तत्पश्चात् मेरे भक्तिभावसे प्रसन्न होकर देवी चण्डिकाने मुझे स्वप्नमें दर्शन दिया और अमृतमयी वाणीमें मुझसे कहा—'तुम सोयी क्यों हो? उठो और तत्काल गंगाजीके मनोहर तटपर चली जाओ; वहींपर विशाल भुजाओंवाले तथा सभी शत्रुओंका दमन करनेवाले नृपश्रेष्ठ हैहय एकवीर आयेंगे। दत्तात्रेयजीने महाविद्या नामक मेरा श्रेष्ठ मन्त्र उन्हें प्रदान किया है। वे भी भक्तिपूर्वक निरन्तर मेरी उपासना करते रहते हैं। उनका मन सदा मुझमें लगा रहता है तथा वे सदा मेरी पूजामें रत रहते हैं। मेरे प्रति आसक्तिभाव रखनेवाले वे सभी प्राणियोंमें एकमात्र मुझे ही देखते हुए सदा मेरे ही परायण रहते हैं। वे महामति एकवीर ही तुम्हारा दुःख दूर करेंगे। वे लक्ष्मीपुत्र एकवीर घूमते हुए गंगातटपर आकर तुम्हारी रक्षा करेंगे और उस भयानक कालकेतुका वध करके मानिनी एकावलीको मुक्त करेंगे। इसके बाद तुम समस्त शास्त्रोंमें निष्णात उन्हीं सुन्दर राजकुमार एकवीरके साथ एकावलीका विवाह करवा देना'॥ ५३—५९॥

ऐसा कहकर देवी अन्तर्धान हो गयीं और मैं उसी समय जग गयी। तत्पश्चात् मैंने स्वप्नका वृत्तान्त तथा देवीकी आराधनाकी बात एकावलीको बतायी॥ ६०॥

सारी बातें सुनकर उस कमलनयनीके मुखमण्डलपर प्रसन्नता छा गयी। अत्यन्त सन्तुष्ट होकर पवित्र मुसकानवाली एकावलीने मुझसे कहा—हे प्रिये! तुम वहाँ शीघ्रतापूर्वक जाओ और मेरा कार्य सिद्ध करो। जो भगवती सत्य वाणीवाली हैं, वे हम दोनोंको मुक्त करेंगी॥ ६१-६२॥

हे राजन्! सखी एकावलीके इस प्रकार प्रेमपूर्वक आदेश देनेपर उस समय प्रस्थान कर देना उचित समझकर मैं उस स्थानसे तुरंत चल पड़ी। हे राजकुमार! भगवती जगदम्बाकी कृपासे मार्गकी जानकारी तथा द्रुतगतिसे चलनेकी क्षमता मुझे प्राप्त हो गयी थी॥ ६३-६४॥

हे वीर! इस प्रकार मैंने अपने दुःखी होनेका समस्त कारण आपको बता दिया। अब जिस प्रकार मैंने आपको अपने विषयमें बताया, उसी प्रकार आप भी बताइये कि आप कौन हैं तथा किसके पुत्र हैं?॥ ६५॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत षष्ठ स्कन्धका 'यशोवतीका एकावलीको छुड़ानेके लिये हैहय एकवीरसे देवीके स्वप्नका वर्णन' नामक बाईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २२॥

तेईसवाँ अध्याय

भगवतीके सिद्धिप्रदायक मन्त्रसे दीक्षित एकवीरद्वारा कालकेतुका वध, एकवीर और एकावलीका विवाह तथा हैहयवंशकी परम्परा

व्यासजी बोले—हे राजन्! उस यशोवतीकी बात सुनकर लक्ष्मीपुत्र प्रतापी एकवीरका मुखारविन्द प्रसन्नतासे खिल उठा और वे उससे कहने लगे—॥ १॥

राजा बोले—हे रम्भोरु! जो तुमने सुन्दर वाणीमें मेरा वृत्तान्त पूछा है, वह सुनो। एकवीर नामसे प्रसिद्ध लक्ष्मीपुत्र हैहय मैं ही हूँ॥ २॥

[एकावलीके विषयमें वर्णन करके] तुमने मेरे मनको परतन्त्र बना दिया है। विरहसे अत्यन्त पीडित मैं अब क्या करूँ, कहाँ जाऊँ?॥ ३॥

तुमने सर्वप्रथम एकावलीके सम्पूर्ण लोकको तिरस्कृत कर देनेवाले रूपका जो वर्णन किया है, उससे मेरा मन कामबाणसे आहत होकर व्याकुल हो उठा है॥ ४॥

तत्पश्चात् तुमने उसके जिन गुणोंका मुझसे वर्णन किया है, उनके द्वारा मेरा चित्त हर लिया गया है। पुन: तुमने जो बात कही, इससे मुझे बहुत विस्मय हो गया है। दानव कालकेतुके सामने एकावलीने यह बात कही थी कि मैं हैहयका वरण कर चुकी हूँ, उसके अतिरिक्त मैं किसी अन्यका वरण नहीं कर सकती; यह मेरा निश्चय है। हे तन्वंगि! एकावलीके इस कथनके द्वारा तुमने मुझे उसका दास बना दिया है। हे सुन्दर केशोंवाली! तुम्हीं बताओ, अब मैं तुम दोनोंके लिये क्या करूँ?॥ ५—७॥

हे सुलोचने! मैं उस दुष्टात्मा राक्षस कालकेतुके स्थानको नहीं जानता। और फिर उस नगरतक पहुँच सकनेकी मेरी सामर्थ्य भी नहीं है। हे विशाल नयनोंवाली! अब तुम्हीं उपाय बताओ। मुझे वहाँ पहुँचानेमें तुम्हीं समर्थ हो। अतएव जहाँ तुम्हारी सुन्दर सखी एकावली विराजमान है, वहाँ मुझे शीघ्र पहुँचाओ॥ ८-९॥

उस क्रूर राक्षसका वध करके मैं इसी समय विवश तथा शोक-सन्तप्त तुम्हारी प्रिय सखी राजकुमारी एकावलीको मुक्त करा लूँगा॥ १०॥

राजकुमारी एकावलीको संकटसे मुक्ति दिलाकर शीघ्र ही उसे तुम्हारे पुरमें पहुँचा दूँगा और उसके पिताको सौंप दूँगा॥ ११॥

तत्पश्चात् परम तपस्वी राजा रैभ्य अपनी पुत्रीका विवाह कर सकेंगे। हे प्रियंवदे! इस प्रकार तुम्हारे सहयोगसे मेरे तथा तुम्हारे मनकी कामना अब पूरी हो जायगी। तुम मुझे उस कालकेतुका नगर शीघ्र दिखा दो, फिर मेरा पराक्रम देखो। हे वरवर्णिनि! मैं जिस प्रकार उस दुराचारी तथा परस्त्रीका हरण करनेवाले कालकेतुका वध कर सकूँ, तुम वैसा ही उपाय करो; क्योंकि तुम हित-साधन करनेमें पूर्ण सक्षम हो। उस दानवके दुर्गम नगरका मार्ग तुम मुझे आज ही दिखाओ॥ १२—१४½॥

व्यासजी बोले—एकवीरकी यह प्रिय वाणी सुनकर यशोवती प्रसन्न हो गयी और वह लक्ष्मीपुत्र एकवीरसे नगर पहुँचनेका उपाय आदरपूर्वक बताने लगी—हे राजेन्द्र! पहले आप भगवती जगदम्बाके सिद्धिप्रदायक मन्त्रको ग्रहण कीजिये। तत्पश्चात् मैं आपको अनेक राक्षसोंद्वारा रक्षित उस कालकेतुका नगर आज ही दिखाऊँगी। हे महाभाग! एक विशाल सेनासे युक्त होकर आप मेरे साथ वहाँ चलनेके लिये तैयार हो जाइये। वहाँ युद्ध होगा। कालकेतु स्वयं महापराक्रमी है तथा बलवान् राक्षसोंसे युक्त रहता है। अतएव भगवतीका मन्त्र ग्रहण करके ही आप मेरे साथ वहाँ चलिये। मैं उस दुष्टात्माके नगरका मार्ग आपको दिखाऊँगी। अब आप उस पापकर्मपरायण दानवको मारकर मेरी सखीको शीघ्र मुक्त कीजिये॥ १५—१९½॥

उसका यह वचन सुनकर एकवीरने वहाँपर दैवयोगसे पधारे हुए पुण्यात्मा तथा ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ दत्तात्रेयजीसे त्रिलोकीका तिलक कहे जानेवाले योगेश्वरीके महामन्त्रको उसी क्षण ग्रहण कर लिया॥ २०-२१॥

उस मन्त्रके प्रभावसे एकवीरको सब कुछ जानने तथा सर्वत्र गमनकी क्षमता प्राप्त हो गयी। इसके बाद वे यशोवतीके साथ कालकेतुके दुर्गम नगरके लिये शीघ्र प्रस्थित हुए॥ २२॥

वह नगर राक्षसोंद्वारा इस प्रकार सुरक्षित था, जैसे सर्पोंद्वारा पातालकी निरन्तर सुरक्षा होती रहती है। कालकेतुके ऐसे नगरमें अब यशोवती तथा विशाल सेनाके साथ राजा एकवीर आ गये॥ २३॥

एकवीरको आते देखकर कालकेतुके दूत भयसे व्यग्र हो गये और चीखते-चिल्लाते हुए बड़ी तेजीसे भागकर उसके पास पहुँचे॥ २४॥

उस समय एकावलीके पास बैठकर अनेकविध विनती कर रहे कालकेतुको अत्यन्त काममोहित समझकर दूत एकाएक उससे कहने लगे॥ २५॥

दूतोंने कहा—हे राजन्! इस कामिनीकी सहचारिणी जो यशोवती नामकी स्त्री है, वह एक राजकुमारके साथ विशाल सेना लेकर आ रही है॥ २६॥

हे महाराज! पता नहीं, वह जयन्त है अथवा कार्तिकेय। बलके अभिमानसे मत्त वह राजकुमार सेनाके साथ चला आ रहा है॥ २७॥

हे राजेन्द्र! अब आप सावधान हो जाइये; क्योंकि युद्धकी स्थिति सामने आ गयी है। अब आप या तो इस देवपुत्रके साथ युद्ध कीजिये अथवा इस कमलनयनीको मुक्त कर दीजिये॥ २८॥

उसकी सेना यहाँसे मात्र तीन योजनकी दूरीपर है। अतएव हे राजन्! अब आप तैयार हो जाइये और रण-दुंदुभी बजानेकी तुरंत आज्ञा दीजिये॥ २९॥

व्यासजी बोले—दूतोंके मुखसे वैसी बात सुनकर कालकेतु क्रोधसे मूर्च्छित हो गया। उसने अपने सभी बलवान् तथा शस्त्रधारी राक्षसोंको उत्साहित करते हुए कहा—हे राक्षसो! तुम सब हाथोंमें शस्त्र लेकर शत्रुके सामने जाओ॥ ३०१/२॥

उन्हें आज्ञा देकर कालकेतुने अपने निकट बैठी हुई अत्यन्त विवश तथा दु:खित एकावलीसे विनम्रतापूर्वक पूछा—'हे तन्वंगि! तुम्हें लेनेके लिये सेनासहित यह कौन आ रहा है? ये तुम्हारे पिता हैं अथवा कोई अन्य पुरुष? हे कृशोदरि! सच-सच बताओ। यदि विरहसे व्यथित होकर तुम्हारे पिता तुम्हें लेनेके लिये आ रहे हों, तो यह जानकर कि ये तुम्हारे पिता हैं, मैं इनके साथ युद्ध नहीं करूँगा, अपितु उन्हें घर लाकर उनकी पूजा करूँगा तथा बहुमूल्य रत्न, वस्त्र तथा अश्व भेंट करके घरमें आये हुए उनका विधिवत् आतिथ्य करूँगा। यदि कोई अन्य व्यक्ति आया होगा तो मैं अपने तीक्ष्ण बाणोंसे उसे मार डालूँगा। निश्चित ही महान् कालने उसे मरनेके लिये यहाँ ला दिया है। अतएव हे विशाल नयनोंवाली! मुझ अपराजेय, कालरूप तथा अपार बलसम्पन्नके विषयमें न जानकर यह कौन मन्दमति चला आ रहा है? यह तुम मुझे बताओ'॥ ३१—३६१/२॥

एकावली बोली—हे महाभाग! मैं यह नहीं जानती कि इतनी तेजीसे यह कौन आ रहा है? आपके बन्धनमें पड़ी हुई मैं नहीं जानती कि यह कौन है? ये न तो मेरे पिता हैं और न मेरे भाई ही। यह दूसरा ही कोई महान् पराक्रमी पुरुष है, यह किसलिये यहाँ आ रहा है, यह भी मैं निश्चितरूपसे नहीं जानती॥ ३७-३८१/२॥

दैत्य बोला—ये दूत तो कह रहे हैं कि तुम्हारी सखी यशोवती ही प्रयत्नपूर्वक उस वीरको साथमें लेकर आयी है। हे कान्ते! कार्य सिद्ध करनेमें अत्यन्त चतुर तुम्हारी वह सखी कहाँ गयी? कोई अन्य मेरा शत्रु भी नहीं है, जो मेरा विरोधी हो॥ ३९-४०१/२॥

व्यासजी बोले—इसी बीच दूसरे दूत वहाँ आ गये। भयभीत उन दूतोंने महलमें बैठे कालकेतुसे तुरंत कहा—हे महाराज! आप निश्चिन्त क्यों हैं? शत्रुसेना समीप आ पहुँची है। आप एक विशाल सेनाके साथ शीघ्र ही नगरसे बाहर निकलिये। उनकी यह बात सुनकर महान् बलशाली कालकेतु शीघ्र ही रथपर चढ़कर अपने नगरसे बाहर निकल गया॥ ४१—४३१/२॥

कामिनी एकावलीके विरहसे व्याकुल प्रतापी एकवीर भी घोड़ेपर आरूढ़ होकर अचानक वहींपर आ गया। उन दोनोंका वृत्रासुर तथा इन्द्रकी भाँति युद्ध होने लगा। उस युद्धमें छोड़े गये विविध अस्त्र-शस्त्रोंसे दिशाएँ प्रकाशित हो उठीं॥ ४४-४५१/२॥

भीरुजनोंको भयभीत कर देनेवाले उस युद्धमें लक्ष्मीपुत्र

एकवीरने दानव कालकेतुपर अपनी गदासे प्रहार किया। गदाप्रहारसे वह कालकेतु वज्रसे आहत पर्वतकी भाँति प्राणहीन होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। तब भयभीत होकर अन्य सभी राक्षस भाग गये॥ ४६-४७१/२॥

तत्पश्चात् यशोवतीने विस्मयमें पड़ी एकावलीके पास जाकर प्रसन्नतापूर्वक मधुर वाणीमें उससे कहा—हे

सखि! इधर आओ। कालकेतुके साथ भीषण युद्ध करके धीरतासम्पन्न राजकुमार एकवीरने उस राक्षसको मार गिराया है। इस समय वे राजकुमार एकवीर थक जानेके कारण अपने शिविरमें विद्यमान हैं। तुम्हारे रूप तथा गुणोंके विषयमें सुनकर वे तुम्हारा दर्शन करना चाहते हैं। हे कुटिलापांगि! कामदेवसदृश उन राजकुमारको तुम देखो। मैं उनसे तुम्हारे विषयमें गंगातटपर पहले ही बता चुकी हूँ। इससे तुम्हारे प्रति उनका पूर्ण अनुराग हो जानेके कारण वे विरहातुर राजकुमार अब तुझ सुन्दर रूपवालीका दर्शन करना चाहते हैं॥ ४८—५२१/२॥

यशोवतीकी बात सुनकर कुमारी अवस्थामें होनेके कारण लज्जित होती हुई भी उसने अत्यन्त प्रेमपूर्वक वहाँ जानेका मन बना लिया। मैं एक अत्यन्त विवश कुमारी कन्या उनका मुख कैसे देखूँगी? वह साध्वी एकावली इससे चिन्तित हो उठी कि वे कामासक्त राजकुमार मुझे ग्रहण कर लेंगे। तब वह एकावली मलिन वस्त्र धारण करके अत्यन्त उदास होकर पालकीमें बैठकर यशोवतीके साथ उनके शिविरमें पहुँच गयी॥ ५३—५५१/२॥

उस विशाल नयनोंवाली एकावलीको वहाँ आयी हुई देखकर राजकुमारने उससे कहा—हे तन्वंगि! मुझे दर्शन दो। मेरे नेत्र तुम्हारे दर्शनके लिये तृष्णाकुल हैं॥ ५६१/२॥

एकवीरको कामातुर तथा एकावलीको लज्जासे युक्त देखकर नीतिका ज्ञान रखनेवाली तथा श्रेष्ठजनोंके मार्गका अनुसरण करनेवाली यशोवतीने उस एकवीरसे कहा—हे राजकुमार! इसके पिता भी इसे आपको ही देना चाहते हैं। यह एकावली भी आपके वशीभूत है; इसलिये इसके साथ आपका मिलन अवश्य होगा, किंतु हे राजेन्द्र! कुछ समय प्रतीक्षा करके पहले इसे इसके पिताके पास पहुँचा दीजिये। वे विधिपूर्वक विवाह करके इसे आपको निश्चितरूपसे सौंप देंगे॥ ५७—५९१/२॥

यशोवतीकी बातको उचित मानकर उन दोनों कन्याओं—एकावली तथा यशोवतीको साथमें लेकर सेना-सहित वे राजकुमार एकवीर उसके पिताके स्थानपर पहुँचे॥ ६०१/२॥

राजपुत्रीको आयी हुई सुनकर राजा रैभ्य प्रेमपूर्वक मन्त्रियोंके साथ उसके सम्मुख शीघ्रतासे पहुँच गये। मलिन वस्त्र धारण की हुई उस पुत्रीको राजाने बहुत दिनोंके बाद देखा, पुनः यशोवतीने रैभ्यको सारा वृत्तान्त विस्तारके साथ बताया। तत्पश्चात् एकवीरसे मिलकर राजा रैभ्य उन्हें आदरपूर्वक घर ले आये। पुनः उन्होंने
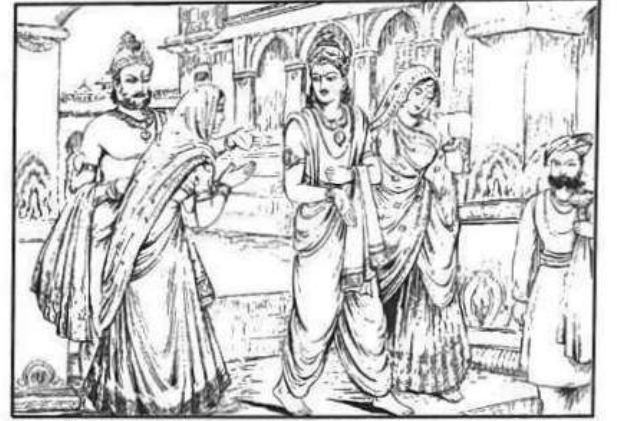
शुभ दिनमें विधिविधानसे दोनोंका विवाह सम्पन्न कराया। तदुपरान्त राजाने पर्याप्त वैवाहिक उपहार देकर एकवीरको भलीभाँति सम्मानित करके पुत्रीको यशोवतीसहित विदा कर दिया॥ ६१—६४१/२॥

इस प्रकार विवाह हो जानेपर लक्ष्मीपुत्र एकवीर हर्षित हो गये और घर पहुँचकर अपनी भार्या एकावलीके साथ नानाविध सुखोपभोग करने लगे। यथासमय उस एकावलीसे कृतवीर्य नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उस कृतवीर्यके पुत्र कार्तवीर्य हुए। इस प्रकार मैंने आपसे इस हैहयवंशका वर्णन कर दिया॥ ६५-६६॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत षष्ठ स्कन्धका 'एकवीर और एकावलीके विवाहका वर्णन' नामक तेईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २३॥

चौबीसवाँ अध्याय

धृतराष्ट्रके जन्मकी कथा

राजा बोले—हे भगवन्! आपके मुखारविन्दसे निर्गत इस अमृततुल्य दिव्य कथारसका निरन्तर पान करते रहनेपर भी मैं तृप्त नहीं हो पा रहा हूँ॥ १॥

आपके द्वारा मुझसे यह विचित्र आख्यान विस्तारपूर्वक कहा गया; हैहयवंशी राजाओंकी उत्पत्ति तो अत्यन्त आश्चर्यजनक है॥ २॥

मुझे इस विषयमें महान् कौतूहल हो रहा है कि देवाधिदेव जगत्पति लक्ष्मीकान्त भगवान् विष्णु स्वयं जगत्के उत्पत्तिकर्ता, पालनकर्ता तथा संहर्ता हैं; उन्हें भी अश्वरूप धारण करना पड़ गया? सर्वथा स्वतन्त्र रहनेवाले वे अच्युत पुरुषोत्तम भगवान् हरि परतन्त्र कैसे हो गये? हे ब्रह्मन्! इस समय मेरे इस सन्देहका निवारण करनेमें आप पूर्ण समर्थ हैं। हे मुनिवर! आप सर्वज्ञ हैं, अतएव इस अद्भुत वृत्तान्तका वर्णन कीजिये॥ ३—५॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! सुनिये, इस सन्देहका निर्णय पूर्व समयमें मैंने मुनिश्रेष्ठ नारदजीसे जैसा सुना है, वैसा ही आपको बता रहा हूँ॥ ६॥

नारदजी ब्रह्माजीके मानस पुत्र हैं। वे तपस्वी, सर्वज्ञानी, सर्वत्र गमन करनेवाले, शान्त, समस्त लोकोंके प्रिय एवं मनीषी हैं॥ ७॥

एक बार वे मुनिवर नारद स्वर तथा तानसे युक्त अपनी महती नामक वीणा बजाते हुए तथा सामगानके बृहद्रथन्तर आदि अनेक भेदों और अमृतमय गायत्र-सामका गान करते हुए इस पृथ्वीपर विचरण करते हुए मेरे आश्रमपर पहुँचे। वह शम्याप्रास महातीर्थ सरस्वतीके पावन तटपर विराजमान है। कल्याण और ज्ञान प्रदान करनेवाला वह तीर्थ प्रधान ऋषियोंका निवासस्थान है॥ ८—१०॥

ब्रह्माजीके पुत्र महान् तेजस्वी नारदजीको अपने आश्रममें आया देखकर मैं उठकर खड़ा हो गया और मैंने भलीभाँति उनकी पूजा आदि की॥ ११॥

अर्घ्य तथा पाद्य आदिसे उनका विधिपूर्वक पूजन करके आदरपूर्वक आसनपर विराजमान उन अमित तेजस्वी नारदके समीप मैं बैठ गया॥ १२॥

हे राजन्! तत्पश्चात् ज्ञानके पार पहुँचानेमें समर्थ मुनि नारदको मार्गश्रमसे रहित तथा शान्तचित्त देखकर मैंने उनसे वही प्रश्न पूछा था, जो आपने इस समय मुझसे पूछा है॥ १३॥

[मैंने उनसे पूछा—] हे मुने! इस सारहीन जगत्में प्राणियोंको क्या सुख प्राप्त होता है? विचार करनेपर मुझे तो कभी भी, कहीं भी तथा कुछ भी सुख नहीं दिखायी देता है॥ १४॥

मुझे ही देखिये, एक द्वीपमें जन्म लेते ही मेरी माताने मेरा त्याग कर दिया। तभीसे आश्रयहीन रहता हुआ मैं वनमें अपने कर्मके अनुसार बढ़ने लगा॥ १५॥

हे देवर्षे! तत्पश्चात् मैंने पुत्रप्राप्तिकी कामनासे एक पर्वतपर बहुत वर्षोंतक शंकरजीकी उपासना करते हुए कठोर तपस्या की॥ १६॥

तब ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ शुकदेव मुझे पुत्ररूपमें प्राप्त हुए। मैंने उन्हें आरम्भसे लेकर सम्यक् प्रकारसे वेदोंका सारभूत तत्त्व पढ़ा दिया॥ १७॥

हे साधो! आपके वचनोंसे ज्ञान प्राप्त करके मेरा वह पुत्र मुझ विरहातुरको रोता हुआ छोड़कर लोकलोकान्तरमें कहीं चला गया?॥ १८॥

तब पुत्रविरहसे सन्तप्त मैं महापर्वत सुमेरुको छोड़कर अपनी माताको मनमें याद करते हुए कुरुजांगल प्रदेशमें पहुँचा॥ १९॥

संसार मिथ्या है—ऐसा जानते हुए भी मायापाशमें बँधा हुआ मैं पुत्र-स्नेहके कारण शोकाकुल रहनेसे अत्यन्त

दुर्बल शरीरवाला हो गया॥ २०॥

तत्पश्चात् जब मैंने यह जाना कि वासवराजसुता मेरी कल्याणमयी माताका राजा शन्तनुने वरण कर लिया है, तब मैं सरस्वतीके पवित्र तटपर आश्रम बनाकर रहने लगा॥ २१॥

इसके बाद महाराज शन्तनुके स्वर्ग प्राप्त कर लेनेपर मेरी माँ विधवा हो गयीं। तब भीष्मने दो पुत्रोंवाली मेरी माताका पालन किया॥ २२॥

बुद्धिमान् गंगापुत्र भीष्मने चित्रांगदको राजा बनाया। किंतु कुछ ही समयमें कामदेवके सदृश कान्तिमान् मेरे भाई चित्रांगद भी मृत्युको प्राप्त हो गये॥ २३॥

पुत्र चित्रांगदके मर जानेपर मेरी माता सत्यवती अत्यन्त दुःखित होकर रोने लगीं और नित्य शोकके समुद्रमें निमग्न रहने लगीं॥ २४॥

हे महाभाग! उन पतिव्रताको दुःखित जानकर मैं उनके पास गया। वहाँ मैंने तथा महात्मा भीष्मने उन्हें बहुत सान्त्वना दी॥ २५॥

तब स्त्री तथा राज्यसे विमुख भीष्मने अपने दूसरे भाई पराक्रमी विचित्रवीर्यको राजा बना दिया॥ २६॥

तत्पश्चात् भीष्मने अपने बलसे राजाओंको जीतकर काशिराजकी दो सुन्दर पुत्रियोंको लाकर माता सत्यवतीको समर्पित कर दिया। पुनः शुभ मुहूर्तमें जब भाई विचित्रवीर्यका विवाह सम्पन्न हो गया तब मैं बहुत प्रसन्न हुआ॥ २७-२८॥

कुछ ही समयमें मेरे धनुर्धर भाई विचित्रवीर्य भी यक्ष्मा रोगसे ग्रस्त होकर युवावस्थामें ही निःसन्तान मर गये, जिससे मेरी माता दुःखित हुईं॥ २९॥

इधर जब काशिराजकी दोनों पुत्रियोंने अपने पतिको मृत देखा तब वे दोनों बहनें पातिव्रत्य धर्मके पालनके लिये तत्पर हुईं॥ ३०॥

वे दारुण दुःखके कारण रोती हुई अपनी साध्वी ससे कहने लगीं—हे श्वश्रु! हम दोनों चिताग्निमें अपने पतिके साथ ही जायँगी। आपके पुत्रके साथ स्वर्गमें जाकर हम दोनों अपने पतिसे युक्त होकर नन्दनवनमें सुखपूर्वक विहार करेंगी॥ ३१-३२॥

तब स्नेहभावका आश्रय लेकर मेरी माताने भीष्मके परामर्शसे उन दोनों वधुओंको महान् चेष्टा करनेसे रोक दिया॥ ३३॥

विचित्रवीर्यकी सभी और्ध्वदैहिक क्रिया सम्पन्न करके गंगातनय भीष्म तथा मेरी माताने आपसमें मन्त्रणा करके मुझे हस्तिनापुर आनेके लिये मेरा स्मरण किया॥ ३४॥

इस प्रकार माताके स्मरण करते ही उनके मनोगत भावको जानकर शीघ्र ही मैं हस्तिनापुरमें आ गया। सिर झुकाकर माताको प्रणाम करके मैं हाथ जोड़कर उनके समक्ष खड़ा हो गया और पुत्रशोकके कारण अत्यन्त दुर्बल तथा तप्त अंगोंवाली उन मातासे मैंने कहा— ॥ ३५—३६॥

हे माता! आपने अपने मनमें स्मरण करके यहाँ मुझे किसलिये बुलाया है? हे तपस्विनि! बड़े-से-बड़े कार्यके लिये मुझे आदेश दीजिये; मैं आपका दास हूँ, मैं क्या करूँ?॥ ३७॥

हे माता! मेरा परम तीर्थ तथा महान् परम देव आप ही हैं। आपके स्मरण करते ही मैं यहाँ उपस्थित हो गया हूँ। अब आप अपना प्रिय कार्य बताइये॥ ३८॥

व्यासजी बोले—हे मुने! ऐसा कहकर जब मैं माताके आगे खड़ा हो गया तब पास ही बैठे हुए भीष्मको देखती हुई वे मुझसे यह कहने लगीं॥ ३९॥

हे पुत्र! राजयक्ष्मा रोगसे ग्रस्त होकर तुम्हारे भाई विचित्रवीर्य मृत्युको प्राप्त हो गये हैं। अतएव वंशके नष्ट होनेके भयसे मैं दुःखी हूँ॥ ४०॥

हे प्रतिभाशाली पराशरनन्दन! इसी उद्देश्यकी पूर्तिके लिये मैंने भीष्मके परामर्शसे समाधिद्वारा तुम्हें यहाँ बुलाया है॥ ४१॥

इस नष्ट होते हुए वंशको तुम स्थापित करो, जिससे महाराज शन्तनुका नाम बना रहे। हे द्वैपायन कृष्ण! वंशच्छेदजन्य दुःखसे मेरी शीघ्र रक्षा करो॥ ४२॥

तुम्हारे सदाचारी लघुभ्राता विचित्रवीर्यकी रूप-यौवनसम्पन्न दो भार्याएँ हैं, जो काशिराजकी पुत्रियाँ हैं॥ ४३॥

हे मेधाविन्! उन दोनोंके साथ संसर्ग करके तुम पुत्र उत्पन्न करो, भरतवंशकी रक्षा करो; इसमें कोई दोष नहीं है॥ ४४॥

व्यासजी बोले—[हे नारद!] माताका यह वचन सुनकर मैं चिन्तामें पड़ गया और लज्जासे व्याकुल होकर मैंने

उनसे विनम्रतापूर्वक कहा—हे माता! परनारीसंगम महान् पापकर्म है। धर्ममार्गका सम्यक् ज्ञान रखते हुए भी मैं आसक्तिपूर्वक ऐसा कर्म कैसे कर सकता हूँ? और फिर छोटे भाईकी पत्नी कन्याके समान कही गयी है। ऐसी स्थितिमें सभी वेदोंका अध्ययन करके भी मैं ऐसा व्यभिचार कैसे करूँ? अन्यायसे कुलकी रक्षा कदापि नहीं करनी चाहिये; क्योंकि पाप करनेवालेके पितृगण संसार-सागरसे कभी नहीं पार हो सकते। जो समग्र पुराणोंका प्रवर्तक तथा लोगोंको उपदेश करनेवाला हो, वह जान-बूझकर ऐसा अद्भुत तथा निन्दनीय कार्य कैसे कर सकता है?॥ ४५—४९॥

तत्पश्चात् वंश-रक्षाकी कामनासे युक्त तथा पुत्रशोकसे सन्तप्त होकर विलाप करती हुई मेरी माताने समीपमें आकर मुझसे पुनः कहा—॥ ५०॥

हे पराशरनन्दन! हे पुत्र! मेरे कहनेपर ऐसा करनेसे तुम दोषभागी नहीं होओगे। शिष्टजनोंका आचार ही प्रमाण है—ऐसा मानकर मनुष्योंको गुरुजनोंके दोषपूर्ण वचनोंको भी उचित समझकर बिना कुछ सोच-विचार किये कर डालना चाहिये। हे पुत्र! मेरी बात मान लो! हे मानद! इससे तुम्हें दोष नहीं लगेगा। हे सुत! पुत्र उत्पन्न करके अत्यधिक सन्तप्त तथा शोकसागरमें निमग्न अपनी माताको सुखी करो॥ ५१—५३॥

माताकी यह बात सुनकर सूक्ष्मधर्मके निर्णयमें विशेष ज्ञान रखनेवाले गंगातनय भीष्मने मुझसे कहा—हे कृष्ण-द्वैपायन! तुम्हें इस विषयमें विचार नहीं करना चाहिये। हे पुण्यात्मन्! माताका वचन मानकर तुम सुखपूर्वक विहार करो॥ ५४-५५॥

व्यासजी बोले—[हे नारद!] भीष्मका यह वचन सुनकर तथा माताकी प्रार्थनापर मैं निःशंक भावसे उस निन्द्य कर्ममें प्रवृत्त हो गया॥ ५६॥

रात्रिमें मैं प्रसन्नतापूर्वक ऋतुमती अम्बिकाके साथ प्रवृत्त हुआ, किंतु मुझ कुरूप तपस्वीके प्रति उसके अनुरागहीन होनेके कारण मैंने उस सुश्रोणीको शाप दे दिया कि प्रथम संसर्गके समय ही तुमने अपनी दोनों आँखें बन्द कर ली थीं, अतः तुम्हारा पुत्र अन्धा होगा॥ ५७-५८॥

हे मुनिवर! दूसरे दिन माताने एकान्तमें मुझसे फिर पूछा—हे पुत्र! क्या काशिराजकी पुत्री अम्बिकाके गर्भसे पुत्र उत्पन्न होगा? तब लज्जाके कारण मुख नीचे किये हुए मैंने मातासे कहा—हे माता! मेरे शापके प्रभावसे नेत्रहीन पुत्र उत्पन्न होगा॥ ५९-६०॥

हे मुने! इसपर माताने कठोर वाणीमें मेरी भर्त्सना की—'हे पुत्र! तुमने शाप क्यों दिया कि तुम्हारा पुत्र अन्धा होगा'॥ ६१॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत षष्ठ स्कन्धका 'अम्बिकाका नियोगसे पुत्र-उत्पादनके लिये गर्भधारणका वर्णन' नामक चौबीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २४॥

पचीसवाँ अध्याय

पाण्डु और विदुरके जन्मकी कथा, पाण्डवोंका जन्म, पाण्डुकी मृत्यु, द्रौपदीस्वयंवर, राजसूययज्ञ, कपटद्यूत तथा वनवास और व्यासजीके मोहका वर्णन

व्यासजी बोले—मेरी वह बात सुनकर वासवराजकुमारी सत्यवती चकित हो गयीं और पुत्रके लिये अत्यन्त व्यग्र होकर मुझसे कहने लगीं—हे पुत्र! काशिराजकी श्रेष्ठ पुत्री वधू अम्बालिका विचित्रवीर्यकी भार्या है, जो विधवा तथा पतिशोकसे सन्तप्त है। वह सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न और रूप तथा यौवनसे युक्त है। तुम उसके साथ संसर्ग करके प्रिय पुत्र उत्पन्न करो॥ १—३॥

नेत्रहीनको राजा बननेका अधिकार नहीं हो सकता। इसलिये हे मानद! मेरी बात मानकर तुम उस राजपुत्रीसे एक मनोहर पुत्र उत्पन्न करो॥ ४॥

हे मुने! तब मैं माताजीके ऐसा कहनेपर वहीं हस्तिनापुरमें ठहर गया और जब सुन्दर केशपाशवाली

काशिराजकी पुत्री अम्बालिका ऋतुमती हुई तो अपनी सासके कहनेपर वह एकान्त शयनकक्षमें लज्जित होती मेरे पास आयी॥ ५-६॥

वहाँ मुझ जटाधारी, इन्द्रियनिग्रही तथा शृङ्गाररससे अनभिज्ञ तपस्वीको देखकर उसके मुखपर पसीना आ गया, शरीर पीला पड़ गया और उसका मन बहुत खिन्न हो गया॥ ७॥

तत्पश्चात् रात्रिमें सम्पर्कके लिये आयी हुई उस सुन्दरीको अपने पासमें बैठी देखकर मैं कुपित हो गया और रोषपूर्वक बोला—सुमध्यमे! मुझे देखकर यदि तुम अभिमानसे पीली पड़ गयी हो तो तुम्हारा पुत्र भी पीतवर्णका होगा॥ ८-९॥

ऐसा कहकर मैं उस अम्बालिकाके साथ रातभर वहीं रहा और फिर मातासे आज्ञा लेकर अपने आश्रमके लिये प्रस्थित हो गया॥ १०॥

तदनन्तर समय आनेपर उन दोनोंने अन्धे तथा पाण्डुवर्णके दो पुत्र उत्पन्न किये। वे दोनों धृतराष्ट्र तथा पाण्डु नामसे प्रसिद्ध हुए॥ ११॥

उन दोनों राजकुमारोंको इस प्रकारका देखकर मेरी माता खिन्नमनस्क हो गयीं। तत्पश्चात् एक वर्षके अनन्तर मुझे बुलाकर उन्होंने कहा—हे द्वैपायन! इस प्रकारके दोनों पुत्र राज्य करनेके योग्य नहीं हैं, अतएव तुम एक अन्य मनोहर पुत्र उत्पन्न करो, जो मुझे अत्यन्त प्रिय हो॥ १२-१३॥

'वैसा ही होगा'—मेरे इस प्रकार कहनेपर माता अत्यन्त प्रसन्न हो गयीं। इसके बाद ऋतुकाल आनेपर माताने पुत्रहेतु अम्बिकासे प्रार्थना की—हे पुत्रि! हे सुमुखि! व्यासके साथ समागम करके तुम कुरुवंश चलानेवाला तथा राज्य करनेयोग्य एक अद्वितीय पुत्र उत्पन्न करो॥ १४-१५॥

उस समय लज्जासे युक्त वधू अम्बिकाने कुछ भी नहीं कहा और मैं माताकी वह बात मानकर रातमें शयनागारमें चला गया॥ १६॥

तत्पश्चात् अम्बिकाने विचित्रवीर्यकी रूप-यौवनसम्पन्न दासीको सुन्दर आभूषण तथा वस्त्र पहनाकर मेरे पास भेज दिया॥ १७॥

शरीरपर चन्दन लगाये, फूलकी मालाओंसे विभूषित तथा सुन्दर केशोंवाली वह सुन्दरी हंसकी भाँति मन्द-मन्द चलती हुई बड़े हाव-भावसे मेरे पास आयी॥ १८॥

मुझे पलंगपर बैठाकर वह भी प्रेमपूर्वक मेरे पास बैठ गयी। हे मुने! उसके इस प्रेमपूर्ण हाव-भावसे मैं अत्यन्त प्रसन्न हुआ॥ १९॥

हे नारद! रात्रिमें मैंने उसके साथ प्रेमपूर्वक विहार किया और पुनः प्रसन्न होकर उसे वरदान दिया—हे सुभगे! तुम्हें सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न, रूपवान्, सभी धर्मोंका ज्ञाता, सत्यवादी तथा शान्त स्वभाववाला पुत्र उत्पन्न होगा॥ २०-२१॥

समय आनेपर विदुरके रूपमें वही पुत्र उत्पन्न हुआ। इस प्रकार मुझसे तीन पुत्रोंकी उत्पत्ति हुई। हे साधो! परक्षेत्रमें मेरेद्वारा उत्पन्न किये गये इन पुत्रोंके प्रति मेरी ममता बढ़ने लगी॥ २२॥

उन तीनों पुत्रोंको अत्यन्त बलवान् तथा वीर्यवान् देखकर मैं अपने शोकके एकमात्र कारण शुकसम्बन्धी वियोगको भूल गया॥ २३॥

हे ब्रह्मन्! माया बलवती होती है, आत्मज्ञानसे रहित पुरुषोंके लिये यह अत्यन्त दुस्त्यज है। रूपहीन तथा आलम्बरहित यह माया ज्ञानियोंको भी मोहित कर देती है॥ २४॥

हे मुनिवर! मातामें तथा उन पुत्रोंमें स्नेहासक्तिसे आबद्ध मेरे मनको वनमें भी शान्ति नहीं मिल पाती थी॥ २५॥

मेरा मन दोलायमान हो गया। वह कभी हस्तिनापुरमें रहता था तो कभी सरस्वतीनदीके तटपर चला आता था; इस प्रकार मेरा मन किसी जगह स्थिर नहीं रहता था॥ २६॥

कभी-कभी मनमें ज्ञानका उदय हो जानेपर मैं सोचने लगता था कि ये पुत्र कौन हैं, यह मोह कैसा? मेरे मर जानेपर ये मेरा श्राद्ध भी तो नहीं कर सकेंगे॥ २७॥

दुराचारसे उत्पन्न ये पुत्र मुझे कौन-सा सुख देंगे। माया बड़ी प्रबल होती है; यह मनमें मोह पैदा कर देती है॥ २८॥

हे मुने! कभी-कभी शान्तचित्त होकर एकान्तमें मैं यह सन्ताप करने लगता था कि मैं जान-बूझकर इस मोहरूपी अन्धकूपमें व्यर्थ ही गिर गया हूँ॥ २९॥

भीष्मकी सम्मतिसे जब बलवान् पाण्डुको राज्य प्राप्त हुआ, उस समय मेरा मन इस बातसे बहुत प्रसन्न हुआ कि मेरा पुत्र राजसिंहासनपर बैठा है॥ ३०॥

तत्पश्चात् सुन्दर रूपवाली कुन्ती तथा माद्री उनकी दो भार्याएँ हुईं। उनमें कुन्ती महाराज शूरसेनकी पुत्री थी तथा दूसरी रानी माद्री मद्रदेशके राजाकी कन्या थी॥ ३१॥

ब्राह्मणसे शाप प्राप्त करके राजा पाण्डु अत्यन्त दुःखित हुए और वे राज्यका परित्याग करके अपनी दोनों रानियोंके साथ वन चले गये॥ ३२॥

अपने पुत्रको वनमें स्थित सुनकर मुझे महान् शोक हुआ। मैं वहाँ पहुँच गया, जहाँ वे अपनी दोनों पत्नियोंके साथ रह रहे थे॥ ३३॥

वनमें उन पाण्डुको सान्त्वना देकर मैं पुनः हस्तिनापुर आ गया और वहाँ धृतराष्ट्रके साथ बातचीत करके सरस्वतीनदीके तटपर पुनः चला गया॥ ३४॥

वनमें अपने आश्रममें उन्होंने धर्म, वायु, इन्द्र तथा दोनों अश्विनीकुमारोंसे पाँच क्षेत्रज पुत्रोंको पाँच पाण्डवोंके रूपमें उत्पन्न कराया। धर्म, वायु तथा इन्द्रसे उत्पन्न हुए युधिष्ठिर, भीमसेन तथा अर्जुन—ये कुन्तीपुत्र कहे गये हैं। इसी तरह नकुल तथा सहदेव—ये दोनों माद्रीके पुत्र हुए॥ ३५-३६१/२॥

एक दिन महाराज पाण्डु एकान्तमें माद्रीका आलिंगन करके पूर्वशापके कारण मृत्युको प्राप्त हो गये। तत्पश्चात् मुनियोंने उनका दाह-संस्कार किया और माद्री सती होकर पतिके साथ प्रज्वलित अग्निमें प्रविष्ट हो गयी और पुत्रोंसे युक्त कुन्ती वहीं स्थित रह गयी। तत्पश्चात् मुनिलोग पतिविहीन उस दुःखित शूरसेन-पुत्री कुन्तीको उसके पुत्रोंसहित हस्तिनापुर ले आये और उसे भीष्म तथा महात्मा विदुरको सौंप दिया। यह सुनकर मैं उन पाण्डुपुत्रोंके कारण सुख-दुःखसे पीड़ित हो गया। पाण्डुके ये पुत्र हैं—ऐसा सोचकर भीष्म, मतिमान् विदुर तथा धृतराष्ट्र प्रेमपूर्वक उनका पालन-पोषण करने लगे॥ ३७—४११/२॥

धृतराष्ट्रके दुर्योधन आदि जो क्रूर हृदयवाले पुत्र थे, वे एक समूह बनाकर उनका घोर विरोध करने लगे। तत्पश्चात् द्रोणाचार्य वहाँ आये और भीष्मने उनका सम्मान किया। उन्होंने पुत्रोंको धनुर्विद्याकी शिक्षा देनेके लिये उन्हें उसी पुरमें रख लिया॥ ४२-४३१/२॥

कुन्तीने उत्पन्न होते ही जब बालक कर्णका परित्याग कर दिया तब अधिरथ नामक सूतने नदीमें बहते हुए उस कर्णको पाया और उसका पालन-पोषण किया। सर्वश्रेष्ठ वीर होनेके कारण कर्ण दुर्योधनका प्रिय हो गया। बादमें भीम तथा दुर्योधन आदिमें परस्पर विरोध भाव उत्पन्न हो गया॥ ४४-४५१/२॥

तब धृतराष्ट्रने अपने पुत्रों तथा उन पाण्डवोंके परस्पर संकटका विचार करके तथा उनके विरोध-भावको समाप्त करनेके उद्देश्यसे वारणावत नगरमें महात्मा पाण्डवोंको बसानेका निश्चय किया॥ ४६-४७॥

द्रोहके कारण दुर्योधनने अपने मित्र पुरोचनको वहाँ भेजकर दिव्य लाक्षागृहका निर्माण करा दिया॥ ४८॥

हे मुनिश्रेष्ठ! तत्पश्चात् कुन्तीसहित उन पाण्डवोंके उस लाक्षागृहमें दग्ध हो जानेका समाचार सुनकर उनके प्रति पौत्र-भाव होनेके कारण मैं दुःखके सागरमें डूब गया और उस निर्जन वनमें उन्हें दिन-रात खोजता हुआ अति शोकसन्तप्त रहता था। तभी मैंने दुःखके कारण अत्यन्त दुर्बल उन पाण्डवोंको एकचक्रा नगरीमें देखा। उन पाण्डवोंको देखकर मेरे मनमें अत्यधिक प्रसन्नता हुई और मैंने उन्हें तुरंत महाराज द्रुपदके नगरमें भेज दिया॥ ४९—५१॥

कृश शरीरवाले वे दुःखित पाण्डव मृगचर्म पहनकर ब्राह्मणका वेश धारण करके वहाँ गये और द्रुपदकी स्वयंवर-सभामें जा पहुँचे। वहाँपर अर्जुन अपने पराक्रमका प्रदर्शन करके द्रुपद-पुत्री द्रौपदीको जीतकर ले आये। पुनः माता कुन्तीके आदेशसे पाँचों भाइयोंने मानिनी द्रौपदीके साथ विवाह किया॥ ५२-५३॥

उनका विवाह देखकर मैं परम प्रसन्न हुआ। हे मुने! तत्पश्चात् वे सभी द्रौपदीसहित हस्तिनापुर चले आये॥ ५४॥

धृतराष्ट्रने उन पाण्डवोंके रहनेके लिये खाण्डवप्रस्थ देनेका निश्चय किया। हे द्विजश्रेष्ठ नारद! वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनके साथ अग्निदेवको सन्तुष्ट किया। पाण्डवोंने जब राजसूय यज्ञ किया तब मैं बहुत

प्रसन्न हुआ॥ ५५-५६॥

उन पाण्डवोंका वैभव तथा मय दानवद्वारा निर्मित की गयी सभाको देखकर दुर्योधन अत्यन्त दुःखित हुआ और उसने द्यूतक्रीडाकी योजना बनायी। शकुनि कपटपूर्ण द्यूतमें अति निपुण था तथा धर्मराज युधिष्ठिर पासेके खेलसे अनभिज्ञ थे। अतएव दुर्योधनने [द्यूतक्रीडाके माध्यमसे] पाण्डवोंका सम्पूर्ण राज्य तथा धन छीन लिया तथा द्रौपदीको भी अपमानित किया। दुर्योधनने द्रौपदीसहित पाँचों पाण्डवोंको बारह वर्षकी अवधितक वनमें निवास करनेके लिये निर्वासित कर दिया; इससे मुझे बहुत दुःख हुआ॥ ५७—५९॥

हे नारद! इस प्रकार सनातन धर्मको जानते हुए भी मैं सुख तथा दुःखसे पूर्ण इस संसारमें भ्रमसे ही बन्धनमें पड़ा हूँ। मैं कौन हूँ, ये किसके पुत्र हैं, यह किसकी माता है और सुख क्या है? जिससे मेरा मन मोहित होकर दिन-रात इन्हींमें भ्रमण करता रहता है॥ ६०-६१॥

मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ? किसी प्रकारसे भी मुझे सन्तोष नहीं मिलता। दोलायमान मेरा चंचल मन स्थिर नहीं हो पा रहा है॥ ६२॥

हे मुनिश्रेष्ठ! आप सर्वज्ञ हैं, अतएव मेरे सन्देहका निवारण कीजिये। आप कोई ऐसा उपाय कीजिये, जिससे मैं सन्तापरहित होकर सुखी हो जाऊँ॥ ६३॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत षष्ठ स्कन्धका 'व्यासका स्वकीय मोहवर्णन' नामक पचीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २५॥

छब्बीसवाँ अध्याय

देवर्षि नारद और पर्वतमुनिका एक-दूसरेको शाप देना, राजकुमारी दमयन्तीका नारदसे विवाह करनेका निश्चय

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] तब परमार्थवेत्ता नारदजी मेरी बात सुननेके पश्चात् मोहका कारण पूछनेवाले मुझसे मुसकराकर कहने लगे॥ १॥

नारदजी बोले—हे पुराणवेत्ता व्यासजी! आप क्या पूछ रहे हैं? यह पूर्णरूपसे निश्चित है कि इस संसारमें रहनेवाला कोई भी प्राणी मोहसे परे हो ही नहीं सकता॥ २॥

ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सनक तथा कपिल—ये सभी मायाके वशवर्ती होकर संसार-मार्गमें निरन्तर भ्रमण करते रहते हैं॥ ३॥

लोग मुझे ज्ञानी समझते हैं, किंतु मैं भी एक बार सभी लोगोंकी भाँति भ्रमित हो गया था। मैं अपना पूर्व वृत्तान्त यथार्थरूपसे बता रहा हूँ, सुनिये॥ ४॥

हे व्यासजी! स्त्री-प्राप्तिके लिये अपने द्वारा स्वयं उत्पन्न किये गये मोहके कारण मुझे पूर्वकालमें महान् कष्टका अनुभव करना पड़ा था॥ ५॥

एक बार मैं तथा पर्वतमुनि उत्तम भारतवर्षको देखनेके लिये देवलोकसे पृथ्वीलोकपर आये थे॥ ६॥

विभिन्न तीर्थों, पवित्र स्थानों तथा मुनियोंके पावन आश्रमोंको देखते हुए हम दोनों साथ-साथ पृथ्वीतलपर विचरण करने लगे॥ ७॥

देवलोकसे प्रस्थान करते समय हम दोनोंने आपसमें निश्चयपूर्वक सोच-विचारकर यह प्रतिज्ञा की थी कि जिसके मनमें जैसा भी पवित्र अथवा अपवित्र भाव उत्पन्न होगा, वह उसे कभी गोपनीय नहीं रखेगा॥ ८-९॥

भोजनकी इच्छा, धनकी इच्छा अथवा काम-विषयक इच्छा—इनमेंसे जिस तरहकी भी इच्छा जिसके मनमें होगी, एक-दूसरेको बता दी जानी चाहिये॥ १०॥

ऐसी प्रतिज्ञा करके हम दोनों स्वर्गलोकसे पृथ्वीतलपर आये और एकचित्त होकर मुनिरूपमें इच्छापूर्वक विचरण करने लगे॥ ११॥

इस प्रकार इस लोकमें विचरण करते हुए हम दोनों ग्रीष्म ऋतुके समाप्त हो जानेपर राजा संजयके सुरम्य नगरमें पहुँचे॥ १२॥

राजा संजयने हम दोनोंकी भक्तिपूर्वक पूजा की तथा अत्यधिक सम्मान दिया। महान् आत्मावाले उन्हीं संजयके भवनमें रहकर हम दोनों अपना चातुर्मास्य व्यतीत करने

लगे॥ १३॥

वर्षाकालके चार महीने मार्गमें बहुत कष्टकारक होते हैं, अतएव विज्ञजनोंको उस अवधिमें एक ही स्थानपर रहना चाहिये—ऐसा सिद्धान्त है॥ १४॥

द्विजको चाहिये कि वह आठ महीनेतक अपने कार्यवश देशान्तरमें प्रवास करे, किंतु सुख चाहनेवाले पुरुषको वर्षाकालमें प्रवासके लिये नहीं जाना चाहिये॥ १५॥

ऐसा सोचकर हम दोनों राजा संजयके भवनमें ठहर गये और उन महात्मा नरेशने हमलोगोंका सम्मानपूर्वक आतिथ्य किया॥ १६॥

उन राजा संजयकी परम सुन्दरी तथा मनोहर दाँतोंवाली दमयन्ती नामसे विख्यात एक कन्या थी; उन्होंने उसे हमलोगोंकी सेवाके लिये आदेश दे दिया॥ १७॥

विवेकका ज्ञान रखनेवाली तथा उद्यमी स्वभाववाली वह विशालनयना राजकुमारी सभी समय हम दोनोंकी सेवा करती रहती थी॥ १८॥

वह हमारे स्नानके लिये जल, दिव्य भोजन, मुख-शुद्धिके लिये सुगन्धित गन्ध-द्रव्य तथा और भी जो हमारा अभीष्ट रहता, उसे समयसे हमलोगोंको दिया करती थी॥ १९॥

वह कन्या हम दोनोंकी मनोभिलषित वस्तुएँ उपस्थित किया करती थी। वह व्यजन (पंखा), आसन तथा शय्या आदि मनोवांछित सामग्रियोंको उपलब्ध कराती रहती थी॥ २०॥

इस प्रकार उसके द्वारा सेवित होते हुए हम दोनों राजा संजयके भवनमें रहने लगे। वेदाध्ययनके स्वभाववाले हम दोनों मुनि सदा वेदव्रतमें संलग्न रहते थे॥ २१॥

मैं हाथमें वीणा धारणकर उत्तम स्वरकी साधना करके कानोंके लिये रसायनस्वरूप अत्यन्त मधुर गायत्र-सामका गान करता रहता था॥ २२॥

मनोहर सामगान सुनकर वह विदुषी राजकुमारी मेरे प्रति अनुरागयुक्त तथा प्रीतिमय हो गयी॥ २३॥

मेरे प्रति उस राजकुमारीका अनुराग दिनोंदिन बढ़ता ही चला गया और मुझमें प्रेम-भाव रखनेवाली उस कन्याके प्रति मेरा भी मन अत्यन्त आसक्त हो उठा॥ २४॥

मुझपर विशेष अनुराग रखनेवाली वह राजकुमारी मेरे तथा उस पर्वतमुनिके लिये किये जानेवाले भोजनादिके प्रबन्धमें तथा सेवा-कार्यमें कुछ भेद-भाव करने लगी॥ २५॥

स्नानके लिये मुझे उष्ण जल तथा पर्वतमुनिके लिये शीतल जल और इसी प्रकार मेरे लिये दही तथा पर्वतमुनिके लिये मट्ठेकी व्यवस्था करती थी॥ २६॥

वह मेरे लिये अत्यन्त प्रेमपूर्वक जैसा धवल आस्तरण (बिछौना) बिछाती थी, वैसा पर्वतके लिये नहीं॥ २७॥

वह सुन्दरी मुझे अत्यन्त प्रेमपूर्ण भावसे देखती थी, किंतु पर्वतमुनिको नहीं। तब मुनि पर्वत उस प्रकारका प्रेम-भेद देखकर मन-ही-मन विस्मित होकर सोचने लगे कि ऐसा क्यों हो रहा है? एकान्तमें उन्होंने मुझसे पूछा—हे नारद! मुझे भलीभाँति बताइये, यह राजकुमारी अत्यन्त प्रसन्न होकर आपसे अत्यधिक प्रेम करती है और स्नेहयुक्त होकर आपको नानाविध भोज्य-पदार्थ देती है, किंतु वैसा मेरे साथ नहीं करती है; यह भेद-भाव मेरे मनमें सन्देह उत्पन्न कर रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि राजा संजयकी पुत्री आपको निश्चय ही पति बनाना चाहती है॥ २८—३१॥

आपकी चेष्टाओंसे आपका भी वैसा ही भाव मुझे परिलक्षित हो रहा है; क्योंकि नेत्र तथा मुखके विकारोंसे प्रेमके कारणका पता चल जाता है॥ ३२॥

हे मुने! सच-सच कहिये। मिथ्या वचन मत बोलिये। स्वर्गसे प्रस्थान करते समय हम दोनोंने जो प्रतिज्ञा की थी, उसे इस समय याद कीजिये॥ ३३॥

नारदजी बोले—जब पर्वतमुनिने हठपूर्वक इसका कारण मुझसे पूछा तब मैं अत्यन्त लज्जित हो गया और पुन: बोला—हे पर्वत! विशाल नयनोंवाली यह राजकुमारी मुझे पति बनानेके लिये उद्यत है और उसके प्रति मेरे भी मनमें विशेष अनुराग भाव उत्पन्न हो गया है॥ ३४-३५॥

मेरा यह सत्य वचन सुनकर पर्वतमुनि कुपित हो उठे और उन्होंने मुझसे कहा, 'तुम्हें बार-बार धिक्कार है; क्योंकि प्रतिज्ञा करके पहले तुमने मुझे धोखा दिया है, अतएव हे मित्रद्रोही! मेरे शापसे तुम अभी बन्दरके मुखवाले हो जाओ'॥ ३६-३७॥

उस कुपित महात्मा पर्वतके ऐसा शाप देते ही मैं तत्काल भयंकर बन्दरकी मुखाकृतिवाला हो गया॥ ३८॥

तब मैंने भी अपने उस भगिनीपुत्र (भांजे) पर्वतको क्षमा नहीं किया। मैंने भी क्रोध करके उसे शाप दे दिया कि तुम भी अबसे स्वर्गके अधिकारी नहीं रहोगे॥ ३९॥

हे मन्दात्मन् पर्वत! क्योंकि मेरे छोटे-से अपराधके लिये तुमने मुझे ऐसा शाप दिया है, अतएव तुम्हारा भी अब मृत्युलोकमें निवास होगा॥ ४०॥

इसके बाद पर्वतमुनि अत्यन्त उदास मनसे उस नगरसे निकल पड़े और मैं भी उसी समयसे बन्दरके मुखवाला हो गया॥ ४१॥

वीणा सुननेकी उत्कट अभिलाषा रखनेवाली वह परम विलक्षण राजकुमारी मुझे भयंकर बन्दरके रूपमें देखकर अत्यन्त उदासमन हो गयी॥ ४२॥

व्यासजी बोले—हे ब्रह्मन्! तत्पश्चात् क्या हुआ, आपको शापसे छुटकारा कैसे मिला तथा आप पुनः मानवकी मुखाकृतिवाले किस प्रकार हुए? ये सभी बातें भलीभाँति बताइये॥ ४३॥

पर्वतमुनि कहाँ चले गये? आप दोनोंका पुनर्मिलन कब, कहाँ और कैसे हुआ? यह सब विस्तारपूर्वक बताइये॥ ४४॥

नारदजी बोले—हे महाभाग! क्या कहूँ? मायाकी गति बड़ी विचित्र होती है। पर्वतमुनिके कुपित होकर चले जानेके पश्चात् मैं अत्यन्त दु:खित हो गया॥ ४५॥

पर्वतमुनिके चले जानेपर मैं उसी भवनमें ठहरा रहा और वह राजकुमारी मेरी सेवामें पुनः तत्पर हो गयी॥ ४६॥

वानरके समान मुख हो जानेके कारण मैं दु:खी तथा उदास रहने लगा। अब मेरा क्या होगा? ऐसा सोच-सोचकर मैं विशेष चिन्तासे व्याकुल हो गया था॥ ४७॥

अपनी पुत्री राजकुमारी दमयन्तीको कुछ-कुछ प्रकट यौवनवाली देखकर उसके विवाहके सम्बन्धमें राजा संजयने मन्त्रीसे पूछा—अब मेरी पुत्रीका विवाह-योग्य समय हो गया है। अतएव योग्य वरके रूपमें कोई ऐसा राजकुमार आप मुझे बतलाइये, जो रूप-उदारता-गुण आदिसे सम्पन्न, पराक्रमी, उत्तम कुलमें उत्पन्न तथा सभीके लिये श्रेष्ठ हो। उसके साथ मैं अपनी पुत्रीका विधिवत् विवाह अभी कर दूँगा॥ ४८—५०॥

इसपर प्रधान सचिवने कहा—हे राजन्! आपकी कन्याके अनुरूप बहुतसे योग्य तथा सर्वगुणसम्पन्न राजकुमार इस पृथ्वीपर विद्यमान हैं॥ ५१॥

हे राजेन्द्र! जिसमें आपकी रुचि हो, उस राजपुत्रको बुलाकर बहुत-से हाथी, घोड़े, रथ और धनसहित अपनी कन्या उसे प्रदान कर दीजिये॥ ५२॥

नारदजी बोले—बातचीतमें परम कुशल दमयन्तीने पिताका अभिप्राय समझकर अपनी धायके मुखसे एकान्तमें स्थित राजासे कहलाया॥ ५३॥

धात्रीने कहा—हे महाराज! आपकी पुत्री दमयन्तीने मुझसे ऐसा कहा है—हे धात्रेयि! तुम मेरे वचनसे मेरे पिताजीसे यह सुखकर बात कह दो—नादसे मोहित मैं महती वीणा धारण करनेवाले प्रतिभासम्पन्न नारदका वरण कर चुकी हूँ; अन्य कोई भी मुझे प्रिय नहीं है॥ ५४-५५॥

हे तात! आप मेरी इच्छाके अनुरूप मुनिके साथ मेरा विवाह कर दीजिये। हे धर्मज्ञ! मैं नारदको छोड़कर किसी दूसरेको अपना पति नहीं बनाऊँगी॥ ५६॥

अब मैं घड़ियाल तथा भयंकर मत्स्य आदि जन्तुओंसे शून्य, खारेपनसे रहित, सुखसे परिपूर्ण एवं रसमय नादसिन्धुमें निमग्न हो गयी हूँ॥ ५७॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत षष्ठ स्कन्धका 'दमयन्तीविवाहप्रस्ताववर्णन' नामक छब्बीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २६॥

सत्ताईसवाँ अध्याय

वानरमुख नारदसे दमयन्तीका विवाह, नारद तथा पर्वतका परस्पर शापमोचन

नारदजी बोले—धात्रीके मुखसे अपनी कन्याका वह वचन सुनकर राजा संजय पास ही बैठी सुन्दर नेत्रोंवाली अपनी भार्या कैकेयीसे कहने लगे—॥ १॥

राजा बोले—हे प्रिये! धात्रीने जो बात कही है, वह तो तुमने सुन ही ली। बन्दरके समान मुखवाले नारद-मुनिका उसने वरण कर लिया है॥ २॥

पुत्रीने यह कैसा मूर्खतापूर्ण कार्य सोच लिया। इस वानरमुख मुनिको मैं अपनी कन्या कैसे दे दूँ?॥ ३॥

कहाँ भिक्षाटन करनेवाला यह कुरूप भिक्षुक और कहाँ मेरी पुत्री दमयन्ती! ऐसा विपरीत सम्बन्ध कभी नहीं करना चाहिये॥ ४॥

हे सुन्दर केशोंवाली! तुम मुनिपर आसक्त अपनी उस भोली पुत्रीको एकान्तमें शास्त्रों तथा वृद्ध पुरुषोंके मर्यादित वचन बतलाकर युक्तिपूर्वक इस हठसे मुक्त करो॥ ५॥

पतिकी बात सुनकर माताने उस कन्यासे कहा—कहाँ तुम्हारा ऐसा रूप और कहाँ वह धनहीन वानरमुख मुनि!॥ ६॥

तुम लताके समान कोमल देहवाली हो और यह मुनि भस्म लगानेके कारण कठोर देहवाला है; तुम बुद्धिमान् होकर भी उस भिक्षुकपर मोहित क्यों हो गयी हो?॥ ७॥

हे अनघे! वानरके समान मुखवाले इस मुनिके साथ तुम्हारा सम्बन्ध भला कैसे उचित होगा? हे पवित्र मुसकानवाली! इस निन्दित पुरुषपर तुम्हारी कौन-सी प्रीति हो सकेगी?॥ ८॥

तुम्हारा वर तो कोई राजकुमार होना चाहिये, तुम व्यर्थ हठ मत करो। धात्रीके मुखसे ऐसी बात सुनकर तुम्हारे पिताजीको बहुत दुःख हुआ है॥ ९॥

बबूलके वृक्षसे लिपटी हुई कोमल मालती लताको देखकर किस बुद्धिमान् व्यक्तिका मन दुःखित नहीं होगा? इस पृथ्वीतलपर ऐसा कौन मूर्ख होगा जो खानेके लिये ऊँटको कोमल पानके पत्ते देगा?॥ १०-११॥

विवाह होते समय नारदके पास बैठकर तुम्हें उसका हाथ पकड़े हुए देखकर किसका हृदय नहीं जल उठेगा?॥ १२॥

इस कुत्सित मुखवालेके साथ बात करनेमें कोई रुचि भी तो नहीं उत्पन्न होगी; फिर इसके साथ तुम मृत्युपर्यन्त अपना समय कैसे व्यतीत करोगी?॥ १३॥

नारदजी बोले—माताकी यह बात सुनकर मेरे प्रति दृढ़ निश्चयवाली उस कोमलांगी दमयन्तीने अत्यन्त व्याकुलतापूर्वक अपनी मातासे कहा—रसमार्गसे अनभिज्ञ तथा कलाज्ञानसे रहित मूर्ख राजकुमारके सुन्दर मुख, रूप, धन तथा राज्यसे मेरा क्या प्रयोजन?॥ १४-१५॥

हे माता! वनमें रहनेवाली वे हरिणियाँ धन्य हैं जो नादसे मोहित होकर अपने प्राण भी दे देती हैं, किंतु इस भूलोकमें रहनेवाले उन मूर्ख मनुष्योंको धिक्कार है, जो मधुर स्वरसे प्रेम नहीं करते हैं!॥ १६॥

हे माता! नारदजी जिस सप्तस्वरमयी विद्याको जानते हैं, उसे भगवान् शंकरको छोड़कर तीसरा अन्य कोई भी व्यक्ति नहीं जानता है॥ १७॥

मूर्खके साथ रहना प्रतिक्षण मृत्युके समान होता है। अतएव सुन्दर रूपसे सम्पन्न तथा सम्पत्तिशाली होते हुए भी गुणरहित पुरुषको सर्वदाके लिये त्याग देना चाहिये॥ १८॥

व्यर्थ गर्व करनेवाले मूर्ख राजाकी मित्रताको धिक्कार है; वचनोंसे सुख प्रदान करनेवाली गुणवान् भिक्षुककी मित्रता श्रेष्ठ है॥ १९॥

स्वरका ज्ञाता, ग्रामोंकी पूरी जानकारी रखनेवाला, मूर्च्छनाके भेदोंको सम्यक् प्रकारसे समझनेवाला तथा आठों रसोंको जाननेवाला दुर्बल पुरुष भी इस संसारमें दुर्लभ है॥ २०॥

जिस प्रकार गंगा तथा सरस्वती नदियाँ कैलास ले जाती हैं, उसी प्रकार स्वरज्ञानमें अत्यन्त प्रवीण पुरुष शिवलोक पहुँचा देता है॥ २१॥

जो व्यक्ति स्वरके प्रमाणको जानता है, वह मनुष्य होता हुआ भी देवता है, किंतु जो स्वरोंके सप्तभेदका ज्ञान नहीं रखता, वह पशुके समान होता है, चाहे इन्द्र ही क्यों न हो॥ २२॥

मूर्च्छना तथा तानमार्गको सुनकर जो आह्लादित नहीं होता, उसे साक्षात् पशु समझना चाहिये, बल्कि [स्वरप्रेमी] हरिणोंको पशु नहीं समझना चाहिये॥ २३॥

विषधर सर्प श्रेष्ठ है; क्योंकि वह कान न होनेपर भी मनोहर नाद सुनकर प्रफुल्लित हो जाता है, किंतु उन मनुष्योंको धिक्कार है, जो कर्णयुक्त रहनेपर भी नाद सुनकर आनन्दित नहीं होते॥ २४॥

मधुर स्वरसे गाये गये गीतको सुनकर बालक भी प्रसन्नचित्त हो जाता है, किंतु जो वृद्ध गानके रहस्यको नहीं जानते, उन्हें धिक्कार है॥ २५॥

क्या मेरे पिताजी नारदके बहुतसे गुणोंको नहीं जानते? तीनों लोकोंमें उनके समान साम-गान करनेवाला दूसरा कोई भी नहीं है। अतः नारदसे प्रेम हो जानेके कारण मैंने पहलेसे ही इनका वरण कर लिया है। गुणोंके निधान ये नारद शापवश बादमें वानरके समान मुखवाले हो

गये ॥ २६-२७ ॥

अश्वके समान मुखवाले किन्नर गानविद्यासे सम्पन्न होनेके कारण किसको प्रिय नहीं होते, किसीके सुन्दर मुखसे क्या प्रयोजन ? ॥ २८ ॥

हे माता! आप मेरे पिताजीसे कह दें कि मैं मुनिश्रेष्ठ नारदका वरण कर चुकी हूँ; अतएव हठ छोड़कर आप प्रसन्नतापूर्वक मुझे उन्हीं नारदको सौंप दें ॥ २९ ॥

नारदजी बोले—पुत्रीकी बात सुनकर तथा नारद-मुनिमें उसका अनुराग जानकर परम सुन्दरी रानीने राजासे कहा—हे राजेन्द्र! अब आप किसी शुभ दिनमें नारद-मुनिके साथ दमयन्तीका विवाह कर दीजिये; क्योंकि वह मन-ही-मन उन्हीं सर्वज्ञ मुनिका वरण कर चुकी है ॥ ३०-३१ ॥

नारदजी बोले—इस प्रकार रानी कैकेयीके प्रेरित करनेपर राजा संजयने विधि-विधानसे समस्त वैवाहिक क्रिया सम्पन्न की ॥ ३२ ॥

हे परन्तप! इस तरह विवाह हो जानेके पश्चात् वानरके समान मुखवाला मैं अत्यन्त दुःखी मनसे वहीं रहने लगा ॥ ३३ ॥

जब राजकुमारी दमयन्ती सेवाके लिये मेरे पास आती थी तब वानरसदृश मुखवाला मैं दुःखसे पीड़ित हो उठता था ॥ ३४ ॥

किंतु खिले हुए कमलके समान मुखवाली दमयन्ती मुझे देखकर मेरी वानर मुखाकृतिके लिये कभी भी शोक नहीं करती थी ॥ ३५ ॥

इस प्रकार कुछ समय बीतनेपर अनेक तीर्थोंमें भ्रमण करते हुए पर्वतमुनि मुझसे मिलनेके लिये अकस्मात् मेरे पास आये ॥ ३६ ॥

मैंने प्रेमपूर्वक उनका पर्याप्त सम्मान किया तथा विधिवत् पूजा की। दिव्य आसनपर विराजमान मुनि पर्वत मुझे देखकर अत्यन्त दुःखित हो उठे ॥ ३७ ॥

वानरमुख होनेके कारण विवाह करके अत्यन्त दयनीय, दुर्बल तथा चिन्तायुक्त दशाको प्राप्त मुझ अपने मामासे पर्वतमुनिने यह वचन कहा ॥ ३८ ॥

हे मुनिश्रेष्ठ नारद! क्रोधमें आकर मैंने तुम्हें शाप दे दिया था, किंतु मैं आज उस शापका निवारण करता हूँ, सुनो ॥ ३९ ॥

हे नारद! अब तुम मेरे पुण्यके प्रभावसे सुन्दर मुखवाले हो जाओ; क्योंकि इस समय राजकुमारीको देखकर मेरे मनमें करुणा-भाव उत्पन्न हो गया है ॥ ४० ॥

नारदजी बोले—उनकी बात सुनकर मैंने भी अपने मनको विनययुक्त करके उसी क्षण [अपने द्वारा उन्हें प्रदत्त] शापका मार्जन कर दिया। [मैंने कहा—] हे भागिनेय पर्वत! मैं तुम्हें मुक्त कर दे रहा हूँ। अब देवलोकमें तुम्हारा भी गमन हो; यह मैंने शापका विमोचन कर दिया ॥ ४१-४२ ॥

नारदजी बोले—पर्वतमुनिके वचनानुसार उनके देखते-देखते मैं सुन्दर मुखवाला हो गया। इससे राजकुमारी बहुत प्रसन्न हो गयी और शीघ्र ही मातासे बोली—हे माता! तुम्हारे परम तेजस्वी जामाता नारद अब सुन्दर मुखवाले हो गये हैं। मुनि पर्वतके वचनसे अब वे शापसे मुक्त हो चुके हैं ॥ ४३-४४ ॥

दमयन्तीकी बात सुनकर रानीने उसे राजासे कहा। तब प्रीतियुक्त होकर राजा संजय मुनिको देखनेके लिये वहाँ

गये ॥ ४५ ॥

तब सन्तुष्ट हुए महात्मा राजाने मुझे तथा भागिनेय पर्वतको बहुत सारा धन एवं उपहार-सामग्री प्रदान की ॥ ४६ ॥

जैसा मैंने मायाके बलकी महिमाका अनुभव किया है और जो पुरातन वृत्तान्त है, वह सब मैंने आपको बता दिया ॥ ४७ ॥

हे महाभाग! मायाके गुणोंसे विरचित इस मिथ्या जगत्में कोई भी जीव न सुखी रहा है, न सुखी है और न तो सुखी रहेगा ॥ ४८ ॥

काम, क्रोध, लोभ, ईर्ष्या, ममता, अहंकार और मद—इन महाशक्तिशाली विषयोंको कौन जीत सका है? ॥ ४९ ॥

हे मुने! सत्त्व, रज तथा तम—ये तीनों गुण ही प्राणियोंकी देहोत्पत्तिमें सर्वथा कारण होते हैं ॥ ५० ॥

हे व्यासजी! किसी समय भगवान् विष्णुके साथ वनमें जाता हुआ मैं परस्पर हास-परिहासमें सहसा स्त्रीभावको प्राप्त हो गया ॥ ५१ ॥

मायाके प्रभावसे विमोहित होकर मैं राजाकी पत्नी बन गया और उस राजाके भवनमें रहकर मैंने अनेक पुत्र उत्पन्न किये ॥ ५२ ॥

व्यासजी बोले—हे साधो! हे मुने! आपकी बात सुनकर मुझे यह महान् सन्देह हो रहा है कि आप महान् ज्ञानी होते हुए भी नारी-रूपमें कैसे परिणत हो गये? आप पुनः पुरुष किस प्रकार हुए? यह सब पूर्णरूपसे बताइये। आपने पुत्र कैसे उत्पन्न किये तथा किस राजाके घरमें आप भलीभाँति रहे? ॥ ५३-५४ ॥

आप उन महामायाके अत्यन्त अद्भुत चरित्रका वर्णन कीजिये, जिन्होंने स्थावर-जंगमात्मक समग्र जगत्को विमोहित कर रखा है ॥ ५५ ॥

सभी ग्रन्थोंके अर्थतत्त्वोंसे युक्त तथा समस्त संशयोंका नाश करनेवाले आपके कथामृतका श्रवण करता हुआ मैं तृप्त नहीं हो पा रहा हूँ ॥ ५६ ॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत षष्ठ स्कन्धका 'नारदका माया दमयन्तीके साथ विवाहवर्णन' नामक सत्ताईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ २७ ॥

अट्ठाईसवाँ अध्याय

भगवान् विष्णुका नारदजीसे मायाकी अजेयताका वर्णन करना, मुनि नारदको मायावश स्त्रीरूपकी प्राप्ति तथा राजा तालध्वजका उनसे प्रणय-निवेदन करना

नारदजी बोले—हे मुनिवर! अब आप मेरे द्वारा कही जा रही सत्कथाका श्रवण कीजिये। श्रेष्ठ योगवेत्ता मुनियोंके लिये भी माया का बल अत्यन्त दुर्ज्ञेय है ॥ १ ॥

उस अजेय तथा दुश्चिन्त्य मायाने ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त समस्त चराचर जगत्को मोहित कर रखा है ॥ २ ॥

किसी समय मैं स्वर तथा तानसे विभूषित महती वीणा बजाता हुआ एवं सप्त स्वरोंसे युक्त गायत्र-सामका गान करता हुआ अद्भुत कर्मवाले भगवान् विष्णुके दर्शनकी अभिलाषासे सत्यलोकसे मनोहर श्वेतद्वीपमें गया था ॥ ३-४ ॥

वहाँ मैंने देवाधिदेव विष्णुभगवान्को देखा। वे हाथमें चक्र तथा गदा धारण किये हुए थे, उनके वक्षःस्थलपर कौस्तुभमणि शोभायमान हो रही थी, वे मेघ-सदृश श्याम वर्णवाले थे, उनकी चार भुजाएँ थीं। वे पीत वस्त्र धारण किये हुए थे, मुकुट तथा बाजूबन्दसे सुशोभित थे तथा वे विलासमयी लक्ष्मीके साथ प्रमुदित होकर क्रीडा कर रहे थे ॥ ५-६ ॥

सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न, समस्त आभूषणोंसे अलंकृत, कान्तियुक्त, अपने रूप-यौवनपर गर्व करनेवाली, नारियोंमें सर्वश्रेष्ठ, भगवान् विष्णुको अतिप्रिय तथा स्वर्णके समान आभावाली भगवती लक्ष्मी मुझे देखकर उनके पाससे अन्तःपुरमें चली गयीं ॥ ७-८ ॥

व्यंजित अंगोंवाली लक्ष्मीजीको भवनमें गयी देखकर मैंने वनमाला धारण करनेवाले देवाधिदेव जगन्नाथ विष्णुसे पूछा—हे भगवन्! हे देवाधिदेव! हे पद्मनाभ! हे असुरविनाशन! मुझे आते हुए देखकर माता लक्ष्मीजी आपके पाससे क्यों चली गयीं? हे जगद्गुरो! मैं न तो कोई नीच हूँ और न धूर्त! हे जनार्दन! मैं इन्द्रियों, क्रोध तथा मायाको जीत लेनेवाला एक तपस्वी हूँ॥ ९—११॥

नारदजी बोले—मेरा कुछ-कुछ अभिमानपूर्ण वचन सुनकर भगवान् विष्णु मुसकराकर वीणाके समान मधुर वाणीमें मुझसे कहने लगे॥ १२॥

भगवान् विष्णु बोले—हे नारद! ऐसी नीति है कि पतिके अतिरिक्त अन्य किसी भी पुरुषके सांनिध्यमें स्त्रीको कभी नहीं रहना चाहिये॥ १३॥

हे विद्वन्! वायु (श्वास)-को जीत लेनेवाले योगियों, सांख्यशास्त्रके ज्ञाताओं, निराहार रहनेवाले तपस्वियों तथा जितेन्द्रिय पुरुषों एवं देवताओंके लिये भी माया अत्यन्त दुर्जय है। हे मुनिवर! अभी आपने जो कहा है कि 'मैंने मायापर विजय प्राप्त कर ली है' तो हे गीतज्ञ! आपको ऐसा कभी नहीं बोलना चाहिये॥ १४-१५॥

जब मैं, शिव, ब्रह्मा तथा सनक आदि मुनि भी उस अजन्मा मायापर विजय नहीं प्राप्त कर सके तब आप तथा अन्य कौन हैं, जो उसे जीतनेमें समर्थ हो सकते हैं?॥ १६॥

देवता, मानव तथा पशु-पक्षी अथवा जो कोई शरीर धारण करनेवाला प्राणी हो, वह उस अजन्मा मायाको कैसे जीत सकता है?॥ १७॥

वेदका ज्ञाता, योगी, सर्वज्ञ, जितेन्द्रिय एवं सत्त्व-रज-तमसे युक्त कोई भी पुरुष मायाको जीतनेमें कैसे समर्थ हो सकता है?॥ १८॥

काल भी उसी मायाका ही रूप है। वह रूपहीन होते हुए भी स्वरूप धारण कर लेता है। विद्वान्, मूर्ख अथवा मध्यम श्रेणीका कोई भी व्यक्ति हो, वह उसके वशमें रहता है॥ १९॥

कभी-कभी काल धर्मज्ञ पुरुषको भी उद्विग्न कर देता है। स्वभाव अथवा कर्मसे उस कालकी चेष्टा नहीं जानी जा सकती॥ २०॥

नारदजी बोले—ऐसा कहकर विष्णुके चुप हो जानेपर मेरा मन सन्देहसे भर गया और मैंने उन जगन्नाथ सनातन वासुदेवसे पूछा—हे रमाकान्त! आप मुझे यह बतायें कि उस मायाका रूप क्या है, उसकी आकृति कैसी है, उसमें कितनी शक्ति है, वह कहाँ रहती है तथा उसका आधार क्या है? हे महीधर! मैं उस मायाको देखना चाहता हूँ, अत: मुझे उसका शीघ्र दर्शन कराइये। हे लक्ष्मीकान्त! मैं उसके विषयमें सम्यक् जानना चाहता हूँ; मुझपर कृपा कीजिये॥ २१—२३॥

भगवान् विष्णु बोले—अखिल जगत्को धारण करनेवाली वह माया त्रिगुणात्मिका, सर्वज्ञा, सर्वसम्मता, अजेया, अनेकरूपा तथा सम्पूर्ण संसारको अपनेमें व्याप्त करके स्थित है॥ २४॥

हे नारद! यदि तुम्हारे मनमें उस मायाको देखनेकी इच्छा है तो मेरे साथ अभी गरुडपर आरूढ़ हो जाओ; हम दोनों अन्य लोकमें इसी समय चलते हैं॥ २५॥

हे ब्रह्मपुत्र! वहाँ मैं तुम्हें अजितात्माओंके लिये अजेय मायाका दर्शन कराऊँगा, किंतु उसे देखकर तुम अपने मनको विषादग्रस्त मत होने देना॥ २६॥

मुझसे ऐसा कहकर देवाधिदेव भगवान् विष्णुने विनतापुत्र गरुडका स्मरण किया। स्मरण करते ही गरुड भगवान् विष्णुके समक्ष उपस्थित हो गये॥ २७॥

गरुडको आया हुआ देखकर भगवान् विष्णु मुझे अत्यन्त आदरपूर्वक पीछे बैठाकर प्रस्थान करनेके लिये

उसपर आरूढ़ हो गये॥ २८॥

जिस वन-प्रदेशमें भगवान् विष्णु जाना चाहते थे, वहाँके लिये प्रेरित किये गये वायुसदृश वेगवान् विनतापुत्र गरुडने वैकुण्ठसे प्रस्थान किया॥ २९॥

गरुडपर आसीन हम दोनों बहुत-से विशाल वनों, दिव्य सरोवरों, नदियों, ग्राम-नगरों, पर्वतके आस-पासकी बस्तियों, गायोंके गोष्ठों, मुनियोंके मनोहर आश्रमों, सुन्दर बावलियों, छोटे-बड़े तालाबों, कमलोंसे सुशोभित विस्तृत तथा गहरे ह्रदों एवं मृगों तथा वराहोंके बहुतसे समूहोंको देखते हुए कान्यकुब्जनगरके पास पहुँच गये॥ ३०—३२॥

वहाँ कमलोंसे मण्डित, हंस तथा सारसोंसे युक्त, चक्रवाकोंसे सुशोभित, अनेक वर्णोंवाले खिले हुए कमलोंसे शोभायमान, झुण्ड-के-झुण्ड भौरोंकी ध्वनिसे गुंजित एवं पवित्र तथा मधुर जलवाला एक दिव्य तथा रमणीय सरोवर दिखायी पड़ा॥ ३३-३४॥

क्षीरसागरके मधुर दुग्धकी समानता करनेवाले विशिष्ट जलसे युक्त उस परम अद्भुत सरोवरको देखकर भगवान् विष्णु मुझसे कहने लगे॥ ३५॥

श्रीभगवान् बोले—हे नारद! सर्वत्र कमलोंसे आच्छादित, स्वच्छ जलसे परिपूर्ण तथा सारसकी ध्वनिसे निनादित हो रहे इस अगाध सरोवरको देखो॥ ३६॥

इसीमें स्नान करके हमलोग श्रेष्ठ नगर कान्यकुब्जमें चलेंगे—ऐसा कहकर भगवान् विष्णु मुझे शीघ्र ही गरुडसे उतारकर आगे ले गये॥ ३७॥

उन्होंने हँसते हुए मेरी तर्जनी अँगुली पकड़ी और बार-बार उस सरोवरकी प्रशंसा करते हुए वे मुझे तीरपर ले गये॥ ३८॥

वृक्षोंकी घनी छायावाले मनोहर तटभागपर कुछ समय विश्राम करनेके बाद भगवान् विष्णुने मुझसे कहा—हे मुने! आप इस स्वच्छ जलमें पहले स्नान कर लें, तत्पश्चात् मैं इस परम पवित्र सरोवरमें स्नान करूँगा। इस सरोवरका जल साधुजनोंके चित्तकी भाँति निर्मल तथा कमलोंके परागसे विशेषरूपसे सुगन्धित है॥ ३९-४०१/२॥

भगवान्के ऐसा कहनेपर मैंने स्नान करनेका मन बना लिया और अपनी वीणा तथा मृगचर्म वहीं रखकर मैं प्रेमपूर्वक तटपर चला गया॥ ४११/२॥

हाथ-पैर धोकर और शिखा बाँधकर मैंने हाथमें कुश ले लिया। पुनः पवित्र जलसे आचमन करके मैं उस जलमें स्नान करने लगा। जब मैं उस मनोहर जलमें स्नान कर रहा था, उसी समय भगवान्के देखते-देखते मैं अपना पुरुषरूप छोड़कर एक सुन्दर नारीके रूपमें परिणत हो गया॥ ४२-४३१/२॥

उसी क्षण मेरी वीणा तथा पवित्र मृगचर्म लेकर भगवान् विष्णु गरुडपर आरूढ़ होकर शीघ्र ही अपने धाम चले गये। इधर मैं सुन्दर भूषणोंसे भूषित होकर स्त्रीके रूपमें हो गया॥ ४४-४५॥

उसी समयसे मेरे मनमें पूर्वदेहकी विस्मृति हो गयी। मैं भगवान् विष्णु तथा अपनी महती वीणाको भी भूल गया॥ ४६॥

मोहिनीरूप प्राप्त करके मैं सरोवरसे बाहर निकला और स्वच्छ जलवाले तथा कमलोंसे परिपूर्ण उस सरोवरको देखने लगा॥ ४७॥

मैं मनमें बार-बार विस्मय कर रहा था कि 'यह क्या है!' नारीरूपको प्राप्त मैं ऐसा सोच ही रहा था कि मुझे तालध्वज नामक राजा अचानक दिखायी पड़े। हाथीके समूहोंसे घिरे हुए वे रथपर बैठे हुए थे। युवावस्थावाले तथा आभूषणोंसे सुशोभित राजा तालध्वज शरीर धारण किये साक्षात् कामदेवके समान प्रतीत हो रहे थे॥ ४८-४९१/२॥

पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान मुखवाली तथा दिव्य आभूषणोंसे मण्डित मुझ रमणीको देखकर राजाको महान् आश्चर्य हुआ और उन्होंने मुझसे पूछा—हे कल्याणि! तुम

कौन हो? हे कान्ते! तुम किस देवता, मनुष्य, गन्धर्व अथवा नागकी पुत्री हो? रूप तथा यौवनसे सम्पन्न युवती होते हुए भी तुम यहाँ अकेली क्यों हो?॥ ५०—५२॥

हे सुनयने! तुम सच-सच बताओ कि तुम विवाहिता हो अथवा कुमारी! हे सुकेशान्ते! हे सुमध्यमे! तुम इस सरोवरमें क्या देख रही हो?॥ ५३॥

हे पिकभाषिणि! मन्मथमोहिनि! तुम अपनी अभिलाषा व्यक्त करो। हे मरालाक्षि! हे कृशोदरि! मुझ उत्तम राजाको अपना पति बनाकर मेरे साथ तुम निःसन्देह मनोवांछित सुखोंका उपभोग करो॥ ५४॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत षष्ठ स्कन्धका 'नारदका स्त्रीत्वप्राप्तिवर्णन' नामक अट्ठाईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २८॥

उनतीसवाँ अध्याय

राजा तालध्वजसे स्त्रीरूपधारी नारदजीका विवाह, अनेक पुत्र-पौत्रोंकी उत्पत्ति और युद्धमें उन सबकी मृत्यु, नारदजीका शोक और भगवान् विष्णुकी कृपासे पुनः स्वरूपबोध

नारदजी बोले—हे विशाम्पते! राजा तालध्वजके यह पूछनेपर मैंने अपने मनमें सम्यक् प्रकारसे विचार करके उनसे कहा—हे राजन्! मैं निश्चितरूपसे नहीं जानती कि मैं किसकी कन्या हूँ, मेरे माता-पिता कौन हैं और मुझे इस सरोवरपर कौन लाया है॥ १-२॥

अब मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, मेरा कल्याण कैसे हो सकेगा, मैं आश्रयहीन हूँ। हे राजेन्द्र! यही बात सोचती रहती हूँ॥ ३॥

हे राजन्! दैव ही सर्वोपरि है; इसमें मेरा पौरुष व्यर्थ ही है। हे भूपाल! आप धर्मज्ञ हैं; आप जैसा चाहते हों, वैसा करें॥ ४॥

हे राजन्! मैं आपके अधीन हूँ; क्योंकि मेरा यहाँ कोई भी रक्षक नहीं है। मेरे न पिता हैं, न माता हैं, न बन्धु-बान्धव हैं और न तो मेरा कोई स्थान ही है॥ ५॥

मेरे ऐसा कहनेपर वे राजा तालध्वज कामासक्त हो उठे और मुझ विशाल नयनोंवालीकी ओर दृष्टि डालकर उन्होंने अपने सेवकोंसे कहा— ॥ ६॥

तुमलोग इस सुन्दर स्त्रीके आरोहणके लिये रेशमी वस्त्रसे आवेष्टित एक मनोहर पालकी ले आओ, जिसे ढोनेवाले चार पुरुष हों, उसमें कोमल आस्तरण बिछा हो तथा वह मोतियोंकी झालरोंसे सुशोभित हो, वह सोनेकी बनी हुई हो, चौकोर हो तथा पर्याप्त विशाल हो॥ ७-८॥

राजाकी बात सुनकर शीघ्रगामी सेवकोंने मेरे लिये वस्त्रसे ढकी हुई दिव्य पालकी लाकर उपस्थित कर दी॥ ९॥

उन राजा तालध्वजका प्रिय कार्य करनेकी इच्छासे मैं उस पालकीपर आरूढ़ हो गया। मुझे अपने भवन ले जाकर राजा तालध्वज अत्यन्त प्रसन्न हुए॥ १०॥

किसी शुभ लग्न तथा उत्तम दिनमें राजाने वैवाहिक विधि-विधानसे अग्निके साक्ष्यमें मेरे साथ विवाह कर लिया॥ ११॥

उस समय मैं उनके लिये प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय हो गया। उन्होंने वहाँ मेरा नाम सौभाग्यसुन्दरी—ऐसा रख दिया॥ १२॥

कामशास्त्रानुकूल अनेक प्रकारके भोग-विलासोंके द्वारा मेरे साथ रमण करते हुए राजाको आनन्द मिलता था॥ १३॥

राज्यके कार्योंको छोड़कर वे दिन-रात मेरे साथ क्रीडारत रहते थे। कामकलामें आसक्त उन राजाको समय बीतनेका भी बोध नहीं रहता था॥ १४॥

मनोहर उद्यानों, बावलियों, सुन्दर महलों, अट्टालिकाओं, श्रेष्ठ पर्वतों, उत्तम जलाशयों तथा रमणीक काननमें विहार करते हुए मधुपानसे उन्मत्त वे राजा समस्त कार्य छोड़कर मेरे अधीन हो गये॥ १५-१६॥

हे व्यासजी! उनमें मेरी भी पूर्ण आसक्ति हो गयी और मैं क्रीडारसके वशीभूत हो गया। मुझे अपने पूर्व पुरुष-शरीर तथा मुनि-जन्मका भी स्मरण नहीं रहा॥ १७॥

ये ही मेरे पति हैं तथा इनकी अनेक पत्नियोंमें मैं ही

इनकी प्रिय पतिव्रता भार्या हूँ, सम्पूर्ण विलासोंको जाननेवाली मैं इनकी पटरानी हूँ; इस प्रकार मेरा जीवन सफल है—ऐसा सोचती हुई मैं दिन-रात उन्हींके प्रेममें आबद्ध रहती थी तथा उनके साथ क्रीडारत रहती थी। इस तरह उनके सुखके लोभमें मैं सदा उन्हींके अधीन हो गयी। मेरा ब्रह्मविज्ञान, सनातन ब्रह्मज्ञान तथा धर्मशास्त्रका रहस्य पूर्णरूपसे विस्मृत हो गया और मैं उन्हींमें आसक्त-मन होकर रहने लगी॥ १८—२०॥

हे मुने! इस प्रकार कामक्रीडामें आसक्त मेरे वहाँ विहार करते हुए बारह वर्ष एक क्षणकी भाँति व्यतीत हो गये॥ २१॥

मेरे गर्भवती होनेपर राजाको परम प्रसन्नता हुई। राजाने विधिपूर्वक गर्भसम्बन्धी संस्कारकर्म सम्पन्न कराया॥ २२॥

गर्भके समय मेरी मनोवांछित वस्तुओंके विषयमें राजा मुझे प्रसन्न करते हुए बार-बार पूछा करते थे। तब अत्यन्त प्रसन्नचित्त मैं लज्जाके कारण कुछ भी नहीं कह पाती थी॥ २३॥

दस माह पूर्ण होनेपर ग्रह, नक्षत्र, लग्न तथा तारा-बलयुक्त शुभ दिनमें मुझे एक पुत्र उत्पन्न हुआ॥ २४॥

राजाके भवनमें पुत्र-जन्मका उत्सव मनाया गया। पुत्र-जन्मसे राजा परम प्रसन्न हो गये॥ २५॥

जननाशौच समाप्त होनेपर पुत्रका दर्शन करके राजाको असीम प्रसन्नता हुई। हे परन्तप! अब मैं राजा तालध्वजकी अत्यन्त प्रिय भार्या हो गयी॥ २६॥

दो वर्षके अनन्तर मैंने पुनः गर्भ धारण किया। [यथासमय] सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न दूसरा पुत्र उत्पन्न हुआ॥ २७॥

तदनन्तर ब्राह्मणोंका आदेश पाकर राजाने इस पुत्रका नाम 'सुधन्वा' तथा बड़े पुत्रका नाम 'वीरवर्मा' रखा॥ २८॥

इस प्रकार मैंने राजाके मनोनुकूल बारह पुत्र उत्पन्न किये। मैं मोहके वशीभूत होकर उनके लालन-पालनमें प्रेमपूर्वक लगी रही॥ २९॥

इसके बाद समय-समयपर मेरे परम रूपवान् आठ पुत्र और उत्पन्न हुए। इससे सुखका साधनभूत मेरा गार्हस्थ्य-जीवन सर्वथा पूर्ण हो गया॥ ३०॥

राजाने समयानुसार उचित रूपसे उनका विवाह कर दिया। इस प्रकार वधुओं तथा पुत्रोंसे युक्त मेरा परिवार बहुत बड़ा हो गया॥ ३१॥

फिर मेरे पौत्र उत्पन्न हुए, जो खेलकूदमें मग्न रहते थे तथा अनेक प्रकारकी बालक्रीडाओंसे मेरे मोहको बढ़ाते रहते थे। कभी सुख-समृद्धि मेरे सामने आती थी और कभी पुत्रोंके रोगग्रस्त होनेके कारण चित्तको अशान्त कर देनेवाला महान् दुःख भोगना पड़ता था॥ ३२-३३॥

कभी-कभी पुत्रों अथवा वधुओंमें परस्पर अत्यन्त भीषण विरोध हो जाता था, उससे मुझे सन्ताप होने लगता था॥ ३४॥

हे मुनिश्रेष्ठ! संकल्पसे उत्पन्न इस सुख-दुःखात्मक, तुच्छ, भयानक तथा मिथ्या व्यवहारवाले मोहमें मैं निमग्न रहता था॥ ३५॥

मेरा पूर्वकालिक विज्ञान विस्मृत हो गया तथा शास्त्र-ज्ञान भी समाप्त हो गया। स्त्रीभावमें होकर मैं घरके कार्योंमें ही सदा व्यस्त रहता था॥ ३६॥

मेरे ये पुत्र महान् पराक्रमी हैं तथा मेरी ये बहुएँ उत्तम कुलमें उत्पन्न हुई हैं—ऐसा सोचकर मेरे मनमें अति मोह बढ़ानेवाला अहंकार उत्पन्न हो जाया करता था॥ ३७॥

मेरे ये बालक पूर्ण तत्पर होकर घरमें खेल रहे हैं। अहो, इस संसारमें सभी नारियोंमें मैं अवश्य ही धन्य हूँ॥ ३८॥

'मैं नारद हूँ तथा भगवान्‌ने अपनी मायाके प्रभावसे मुझे वंचित कर रखा है'—ऐसा मैं अपने मनमें कभी सोच भी नहीं पाता था॥ ३९॥

हे व्यासजी! इस प्रकार मायासे मोहित हुआ मैं केवल यही सोचा करता था कि मैं उत्तम आचरणवाली

एक पतिव्रता राजमहिषी हूँ, मेरे बहुतसे पुत्र हैं तथा इस संसारमें मैं बड़ी धन्य हूँ॥ ४०॥

हे मानद! इसके बाद दूर देशमें रहनेवाले किसी महान् राजाने मेरे पतिके साथ शत्रुता ठान ली। वह हाथियों तथा रथोंसे अपनी सेना सुसज्जित करके कान्यकुब्जनगरमें आ गया और युद्धके विषयमें सोचने लगा॥ ४१-४२॥

उस राजाने अपनी सेनाके साथ मेरा नगर घेर लिया; तब मेरे पुत्र तथा पौत्र भी नगरसे बाहर निकल पड़े॥ ४३॥

मेरे उन पुत्र-पौत्रोंने उस राजाके साथ भयंकर युद्ध किया। कालयोगसे मेरे सभी पुत्र संग्राममें शत्रुके द्वारा मार डाले गये॥ ४४॥

तत्पश्चात् राजा तालध्वज हताश होकर युद्धस्थलसे अपने घर आ गये। मैंने सुना कि मेरे सभी पुत्र उस अत्यन्त भीषण संग्राममें मृत्युको प्राप्त हो गये॥ ४५॥

मेरे पुत्रों तथा पौत्रोंका संहार करके वह राजा सेनासहित चला गया। इसके बाद मैं विलाप करता हुआ युद्ध-भूमिमें जा पहुँचा॥ ४६॥

हे आयुष्मन्! वहाँ अपने पुत्रों तथा पौत्रोंको भूमिपर गिरा हुआ देखकर मैं दुःखसे अत्यन्त पीडित होकर शोक-सागरमें डूब गया तथा इस प्रकार विलाप करने लगा—हाय, मेरे पुत्र इस समय कहाँ चले गये? हाय, मुझे तो इस दुष्टात्मा, अति बलवान्, महापापी तथा दुर्लंघ्य दैवने मार डाला॥ ४७-४८॥

इसी बीच एक परम सुन्दर वृद्ध ब्राह्मणका रूप धारण करके मधुसूदन भगवान् विष्णु वहाँ पहुँच गये॥ ४९॥

हे वेदज्ञ! सुन्दर वस्त्रोंसे सुशोभित वे मेरे पास आये और युद्धभूमिमें अति विलाप करती हुई मुझ अबलासे बोले॥ ५०॥

ब्राह्मण बोले—हे तन्वङ्गि! हे पिकालापे! तुम क्यों विषाद कर रही हो? पति-पुत्रादिसे सम्पन्न गृहस्थीमें मोहके कारण ही यह भ्रम उत्पन्न हुआ है। तुम कौन हो, ये किसके पुत्र हैं तथा ये कौन हैं? तुम परम आत्मगतिपर विचार करो। हे सुलोचने! अब उठो और विलाप करना छोड़कर स्वस्थ हो जाओ॥ ५१-५२॥

हे कामिनि! मर्यादाके रक्षणार्थ अब अपने परलोक गये हुए पुत्रोंके निमित्त स्नान तथा तिलदान करो। धर्मशास्त्रका निर्णय है कि मृत बन्धुओंके निमित्त तीर्थमें ही स्नान करना चाहिये; घरमें कभी नहीं॥ ५३-५४॥

नारदजी बोले—उस वृद्ध ब्राह्मणने इस प्रकार कहकर मुझे समझाया। तत्पश्चात् मैं उठा और बन्धु-बान्धवों तथा राजाको साथ लेकर द्विजरूपधारी भगवान् विष्णुको आगे करके तत्काल परम पवित्र तीर्थके लिये चल पड़ा॥ ५५-५६॥

ब्राह्मणरूपधारी जनार्दन जगन्नाथ श्रीहरि भगवान् विष्णु मेरे ऊपर कृपा करके पुंतीर्थ सरोवरपर मुझको ले जाकर बोले—हे गजगामिनि! इस पवित्र सरोवरमें स्नान करो और निरर्थक शोकका परित्याग करो। अब पुत्रोंकी [तिलांजलि आदि] क्रियाका समय उपस्थित है॥ ५७-५८॥

जन्म-जन्मान्तरमें तुम्हारे करोड़ों पुत्र, पिता, पति, भाई तथा बहन हुए तथा वे मृत्युको भी प्राप्त हो गये। उनमेंसे तुम किस-किसका दुःख मनाओगी? यह तो मनमें उत्पन्न भ्रममात्र है, जो शरीरधारियोंको व्यर्थ ही स्वप्नके समान होकर भी दुःख पहुँचाता रहता है॥ ५९-६०॥

नारदजी बोले—उनका यह वचन सुनकर भगवान् विष्णुकी प्रेरणाके अनुसार स्नान करनेकी इच्छासे मैं उस पुरुषसंज्ञक तीर्थ (सरोवर)-में प्रविष्ट हुआ॥ ६१॥

उस तीर्थमें डुबकी लगाते ही मैं तत्क्षण पुरुषरूपमें हो गया तथा भगवान् विष्णु अपने हाथमें मेरी वीणा लिये हुए अपने स्वाभाविक स्वरूपमें सरोवरके तटपर विराजमान थे॥ ६२॥

हे द्विजश्रेष्ठ! स्नान करनेके पश्चात् मुझे तटपर कमललोचन भगवान्‌का दर्शन प्राप्त हुआ; तब मेरे चित्तमें सभी बातोंका स्मरण हो गया॥ ६३॥

मैं सोचने लगा कि मैं नारद हूँ और भगवान् विष्णुके

साथ यहाँ आया था; मायासे विमोहित होनेके कारण मैं स्त्रीभावको प्राप्त हो गया॥ ६४॥

जब मैं इस तरहकी बातें सोच रहा था, उसी समय भगवान् विष्णुने मुझसे कहा—हे नारद! यहाँ आओ, वहाँ जलमें खड़े होकर क्या कर रहे हो?॥ ६५॥

अपने अत्यन्त दारुण स्त्रीभावका स्मरण करके तथा किस कारणसे मैं पुनः पुरुषभावको प्राप्त हुआ—यह सोचकर मैं आश्चर्यचकित हो गया॥ ६६॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत षष्ठ स्कन्धका 'नारदका पुनः स्वरूपप्राप्तिवर्णन' नामक उनतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २९॥

तीसवाँ अध्याय

राजा तालध्वजका विलाप और ब्राह्मणवेशधारी भगवान् विष्णुके प्रबोधनसे उन्हें वैराग्य होना, भगवान् विष्णुका नारदसे मायाके प्रभावका वर्णन करना

नारदजी बोले—मुझ विप्ररूप नारदको देखकर वे राजा तालध्वज इस आश्चर्यमें पड़ गये कि मेरी वह पत्नी कहाँ चली गयी और ये मुनिश्रेष्ठ कहाँसे आ गये?॥ १॥

राजा तालध्वज बार-बार यह कहकर विलाप करने लगे—'हा प्रिये! मुझ वियोगीको विलाप करता हुआ छोड़कर तुम कहाँ चली गयी?'॥ २॥

हे विपुलश्रोणि! हे कमलसदृश नेत्रवाली! हे पवित्र मुसकानवाली! तुम्हारे विना मेरा जीवन, घर तथा राज्य—ये सभी व्यर्थ हैं। अब मैं क्या करूँ?॥ ३॥

तुम्हारे वियोगमें इस समय मेरे प्राण भी नहीं निकल रहे हैं। तुम्हारे विना प्राण धारण करनेसे प्रेम-धर्म भी सर्वथा विनष्ट हो गया॥ ४॥

हे विशाल नयनोंवाली! मैं विलाप कर रहा हूँ; तुम मुझे प्रिय उत्तर प्रदान करो। प्रथम-मिलनमें मेरे प्रति जो प्रीति थी, वह कहाँ चली गयी?॥ ५॥

हे सुभ्रु! क्या तुम जलमें डूब गयी? अथवा मछली या कछुए तुम्हें खा गये? या फिर मेरे दुर्भाग्यवश वरुणने तुम्हें शीघ्र ही अपने अधिकारमें कर लिया?॥ ६॥

हे सर्वांगसुन्दरि! हे अमृतभाषिणि! तुम धन्य हो, जो अपने पुत्रोंके साथ चली गयी; उन पुत्रोंके प्रति तुम्हारा वास्तविक प्रेम था॥ ७॥

यह तुम्हारे लिये उचित नहीं है जो कि दीन-दशाको प्राप्त मुझ पतिको इस प्रकार विलाप करता हुआ छोड़कर पुत्र-स्नेहरूपी पाशमें बँधी हुई तुम स्वर्ग चली गयी॥ ८॥

हे कान्ते! हे प्रिये! मेरे पुत्र तथा प्राणप्रिय तुम—ये दोनों ही चले गये फिर भी मुझ अत्यन्त दुःखितका मरण नहीं हो रहा है॥ ९॥

मैं क्या करूँ और कहाँ जाऊँ? इस समय पृथ्वीपर राम भी नहीं हैं; क्योंकि पत्नीवियोगजन्य दुःखको एकमात्र वे रघुनन्दन राम ही जानते हैं॥ १०॥

इस जगत्‌में निष्ठुर ब्रह्माने यह बहुत विपरीत कार्य किया है, जो कि वे समान चित्तवाले पति-पत्नीका मरण भिन्न-भिन्न समयोंमें किया करते हैं॥ ११॥

मुनियोंने नारियोंका अवश्य ही बड़ा उपकार कर दिया है, जो उन्होंने धर्मशास्त्रोंमें पतिके साथ पत्नीके भी जल जाने (सती होने)-का उल्लेख किया है॥ १२॥

इस प्रकार विलाप कर रहे उन तालध्वजको भगवान् विष्णुने अनेक प्रकारके युक्तिपूर्ण वचनोंसे सान्त्वना दी॥ १३॥

भगवान् बोले—हे राजेन्द्र! क्यों रो रहे हो? तुम्हारी प्रिय भार्या कहाँ चली गयी? क्या तुमने कभी शास्त्रश्रवण नहीं किया है अथवा विद्वज्जनोंकी संगति नहीं की है?॥ १४॥

वह तुम्हारी कौन थी? तुम कौन हो? कैसा संयोग तथा कैसा वियोग? प्रवहमान इस संसारसागरमें मनुष्योंका सम्बन्ध नौकापर चढ़े हुए मनुष्योंकी भाँति है॥ १५॥

हे नृपश्रेष्ठ! अब तुम घर जाओ। तुम्हारे व्यर्थ रोनेसे क्या लाभ? मनुष्योंका संयोग तथा वियोग सदा दैवके अधीन रहता है॥ १६॥

हे राजन्! विशाल नयनोंवाली इस कृशोदरी सुन्दर स्त्रीके साथ जो भोग करना था, उसे आपने कर लिया। अब इसके साथ आपके संयोगका समय समाप्त हो चुका है॥ १७॥

एक सरोवरपर इसके साथ आपका संयोग हुआ था; उस समय इसके माता-पिता आपको दिखायी नहीं पड़े थे। यह अवसर काकतालीय न्यायके अनुसार जैसे आया था, वैसे ही चला गया॥ १८॥

अतः हे राजेन्द्र! शोक मत कीजिये। कालका अतिक्रमण नहीं किया जा सकता है। अपने घर जाकर समयानुसार प्राप्त भोगोंका उपभोग कीजिये। वह सुन्दरी जैसे आयी थी वैसे ही चली भी गयी। आप जैसे पहले थे, अब वैसे ही हो गये। हे राजन्! अब आप घर जाइये और अपना कार्य कीजिये॥ १९-२०॥

आपके इस तरह रोनेसे वह स्त्री अब लौट तो आयेगी नहीं। आप व्यर्थ चिन्ता कर रहे हैं। हे पृथ्वीपते! अब आप योगयुक्त बनिये॥ २१॥

समयानुसार जिस प्रकार भोग आता है, उसी प्रकार चला भी जाता है। अतएव इस सारहीन भवमार्गके विषयमें शोक नहीं करना चाहिये॥ २२॥

न तो अकेले सुखका संयोग होता है और न तो दुःखका; घटीयन्त्रकी भाँति सुख तथा दुःखका भ्रमण होता रहता है॥ २३॥

हे राजन्! अब आप मनको स्थिर करके सुखपूर्वक राज्य कीजिये अथवा अपने उत्तराधिकारीको राज्य सौंपकर वनमें निवास कीजिये॥ २४॥

क्षणभरमें नष्ट हो जानेवाला यह मानवशरीर प्राणियोंके लिये अत्यन्त दुर्लभ है। इसके प्राप्त होनेपर सम्यक् प्रकारसे आत्मकल्याण कर लेना चाहिये॥ २५॥

हे राजन्! जिह्वा तथा जननेन्द्रियका आस्वाद तो पशुयोनियोंमें भी सुलभ होता है, किंतु ज्ञान केवल मानव-योनिमें ही सुलभ है, अन्य क्षुद्र योनियोंमें नहीं॥ २६॥

अतएव आप पत्नीवियोगसे उत्पन्न शोकका परित्याग करके घर चले जाइये। यह सब उन्हीं भगवतीकी माया है, जिससे सम्पूर्ण जगत् मोहित है॥ २७॥

नारदजी बोले—इस प्रकार भगवान् विष्णुके कहनेपर राजा तालध्वज उन लक्ष्मीपतिको प्रणाम करके भलीभाँति स्नान-विधि सम्पन्न करके अपने घर चले गये। अद्भुत वैराग्यको प्राप्त करके उन राजाने अपने पौत्रको राज्य सौंपकर वनके लिये प्रस्थान किया और उन्होंने तत्त्वज्ञान प्राप्त किया॥ २८-२९॥

राजा तालध्वजके चले जानेपर मुझको देखकर बार-बार हँस रहे उन जगत्पति भगवान् विष्णुसे मैंने कहा॥ ३०॥

हे देव! आपने मुझे भ्रमित कर दिया था; अब मायाकी महान् शक्तिको मैंने जान लिया। स्त्रीका शरीर प्राप्त होनेपर मैंने जो भी कार्य किया था, वह सब मैं अब याद कर रहा हूँ॥ ३१॥

हे देवाधिदेव! हे हरे! आप मुझे यह बताइये कि जब मैं सरोवरमें प्रविष्ट हुआ तब स्नान करते ही मेरी पूर्वस्मृति क्यों नष्ट हो गयी थी?॥ ३२॥

हे जगद्गुरो! स्त्रीशरीर पानेके पश्चात् उन उत्तम नरेश तालध्वजको पतिरूपमें प्राप्त करके मैं उसी प्रकार मोहित हो गया था, जैसे इन्द्रको पाकर शची॥ ३३॥

हे देवेश! मेरा मन वही था, चित्त वही था, वही प्राचीन देह था तथा वही लिंगरूप लक्षण भी था; तब हे हरे! मेरी स्मृतिका नाश कैसे हो गया?॥ ३४॥

हे प्रभो! उस समय अपने ज्ञानके नष्ट हो जानेके विषयमें मुझे अब महान् आश्चर्य हो रहा है। हे रमाकान्त!

इसका वास्तविक कारण बताइये॥ ३५॥

स्त्रीशरीर पाकर मैंने अनेक प्रकारके भोगोंका आनन्द लिया, नित्य मद्य-पान किया तथा निषिद्ध भोजन किया॥ ३६॥

उस समय मैं स्पष्टरूपसे यह नहीं जान सका कि मैं नारद हूँ। इस समय मैं जिस प्रकार जान रहा हूँ, वैसा उस समय मैं नहीं जानता था॥ ३७॥

विष्णु बोले—हे महामते नारद! देखो, यह सब खेल महामायाजनित है। उसीके प्रभावसे प्राणियोंके शरीरमें अनेक प्रकारकी अवस्थाएँ उपस्थित होती रहती हैं॥ ३८॥

जैसे शरीरधारियोंमें जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति तथा तुरीय—ये अवस्थाएँ होती हैं, उसी प्रकार दूसरे शरीरकी प्राप्ति भी होती है; इसमें सन्देह कैसा?॥ ३९॥

सोया हुआ प्राणी न जानता है, न सुनता है और न तो बोलता ही है, किंतु जाग जानेपर वही अपने सम्पूर्ण ज्ञात विषयोंको फिरसे जान लेता है॥ ४०॥

निद्रासे चित्त विचलित हो जाता है और स्वप्नसे उत्पन्न होनेवाले अनेक प्रकारके मनोभाव तथा मनोभेद उपस्थित होते रहते हैं॥ ४१॥

उस अवस्थामें प्राणी सोचता है कि हाथी मुझे मारने आ रहा है, किंतु मैं भागनेमें समर्थ नहीं हूँ। क्या करूँ? मेरे लिये कोई स्थान नहीं है, जहाँ मैं शीघ्र भाग चलूँ॥ ४२॥

कभी-कभी प्राणी स्वप्नमें अपने मृत पितामहको घरपर आया हुआ देखता है। वह समझता है कि मैं उनके साथ मिल रहा हूँ, बात कर रहा हूँ, भोजन कर रहा हूँ॥ ४३॥

जागनेपर वह समझ जाता है कि सुख-दुःख-सम्बन्धी ये बातें मैंने स्वप्नमें देखी हैं। उन बातोंको याद करके वह लोगोंको विस्तारपूर्वक उनके बारेमें बताता भी है॥ ४४॥

जिस प्रकार कोई भी प्राणी स्वप्नमें यह नहीं जान पाता कि यह निश्चय ही भ्रम है, उसी प्रकार मायाका ऐश्वर्य जान पाना अत्यन्त कठिन है॥ ४५॥

हे नारद! मायाके गुणोंकी अगम्य सीमाको न तो मैं जानता हूँ और न तो शिव तथा न ब्रह्मा ही जानते हैं तो फिर मन्दबुद्धिवाला दूसरा कौन मनुष्य उसे पूर्णतः जाननेमें समर्थ हो सकता है? इस जगत्का कोई भी प्राणी मायाके गुणोंको नहीं जान सका है॥ ४६-४७॥

यह सम्पूर्ण चराचर जगत् सत्त्व, रज तथा तम—इन तीनों गुणोंके संयोगसे विरचित है। इन गुणोंके बिना यह संसार क्षणभर भी स्थित नहीं रह सकता॥ ४८॥

मैं सत्त्वगुणप्रधान हूँ; रजोगुण और तमोगुण मुझमें गौणरूपमें विद्यमान हैं। तीनों गुणोंसे रहित होनेपर मैं अखिल भुवनका नियन्ता कभी नहीं हो सकता॥ ४९॥

उसी प्रकार आपके पिता ब्रह्मा रजोगुणप्रधान कहे जाते हैं। वे सत्त्वगुण तथा तमोगुणसे भी युक्त हैं; इन दोनों गुणोंसे रहित नहीं हैं॥ ५०॥

उसी प्रकार भगवान् शंकर भी तमोगुणप्रधान हैं तथा सत्त्वगुण और रजोगुण उनमें गौणरूपसे विद्यमान हैं। मैंने ऐसे किसी प्राणीके विषयमें नहीं सुना है, जो इन तीनों गुणोंसे रहित हो॥ ५१॥

अतएव हे मुनीश्वर! मायाके द्वारा विरचित, सारहीन, सीमारहित तथा परम दुर्घट इस संसारमें प्राणीको मोह नहीं करना चाहिये॥ ५२॥

आपने अभी-अभी मायाका प्रभाव देखा है; आपने अनेक प्रकारके भोगोंका उपभोग किया। तब हे महाभाग! आप उस महामायाके अद्भुत चरित्रके विषयमें मुझसे क्यों पूछ रहे हैं?॥ ५३॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत षष्ठ स्कन्धका 'मायाप्राबल्यवर्णन' नामक तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३०॥

इकतीसवाँ अध्याय

व्यासजीका राजा जनमेजयसे भगवतीकी महिमाका वर्णन करना

व्यासजी बोले—हे महाराज! मैंने नारदजीसे योगमायाके पवित्र अक्षरोंवाले जिस माहात्म्यको सुना है, उसे कहता हूँ; आप सुनें॥ १॥

महर्षि नारदकी नारी-देहसे सम्बन्धित कथा सुनकर मैंने उन सर्वज्ञशिरोमणि मुनिसे पुनः पूछा—हे नारदजी! अब आप यह बताइये कि इसके बाद भगवान् विष्णुने आपसे क्या कहा और आपके साथ वे जगत्पति लक्ष्मीकान्त कहाँ गये?॥ २-३॥

नारदजी बोले—उस अत्यन्त मनोहर सरोवरके तटपर मुझसे इस प्रकार कहकर भगवान् विष्णुने गरुडपर आरूढ़ होकर वैकुण्ठके लिये प्रस्थान करनेका विचार किया॥ ४॥

तदनन्तर रमापति विष्णुने मुझसे कहा—हे नारद! अब आप जहाँ जाना चाहें, जायँ। अथवा मेरे लोक चलिये। जैसी आपकी रुचि हो वैसा कीजिये॥ ५॥

इसके बाद मैं मधुसूदन श्रीविष्णुसे आज्ञा लेकर ब्रह्मलोक चला गया। गरुडासीन होकर वे देवेश भगवान् विष्णु भी मुझे आदेश देकर उसी क्षण बड़े आनन्दसे शीघ्र ही वैकुण्ठ चले गये॥ ६१/२॥

तत्पश्चात् श्रीविष्णुके चले जानेपर समस्त परम अद्भुत सुखों तथा दुःखोंके सम्बन्धमें विचार करता हुआ मैं अपने पिता ब्रह्माजीके भवनपर जा पहुँचा। हे मुने! वहाँ पहुँचकर पिताजीको प्रणाम करके ज्यों ही मैं उनके सामने खड़ा हुआ, तभी उन्होंने मुझे चिन्तासे व्यग्र देखकर पूछा॥ ७-८१/२॥

ब्रह्माजी बोले—हे महाभाग! आप कहाँ गये थे? हे सुत! आप क्यों इतने घबराये हुए हैं? हे मुनिश्रेष्ठ! आपका चित्त इस समय स्वस्थ नहीं दिखायी पड़ रहा है। क्या किसीने आपको धोखेमें डाल दिया है अथवा आपने कोई आश्चर्यजनक दृश्य देखा है? हे पुत्र! आज मैं आपको उदास तथा विवेकसे कुण्ठित क्यों देख रहा हूँ?॥ ९-१०१/२॥

नारदजी बोले—पिता ब्रह्माजीके ऐसा पूछनेपर मैंने आसनपर बैठकर मायाके प्रभावसे उत्पन्न अपना सम्पूर्ण वृत्तान्त उनसे कहा—हे पिताजी! महान् शक्तिशाली विष्णुने मुझे ठग लिया था। बहुत वर्षोंतक मैं स्त्रीशरीर धारण किये रहा और मैंने पुत्रशोकजनित भीषण दुःखका अनुभव किया॥ ११—१३॥

तत्पश्चात् उन्होंने ही अपने अमृतमय मधुर वचनसे मुझे समझाया और पुनः सरोवरमें स्नान करके मैं पुरुषरूप नारद हो गया॥ १४॥

हे ब्रह्मन्! उस समय मुझे जो मोह हो गया था, उसका क्या कारण है? उस समय मेरा पूर्वज्ञान विस्मृत हो गया था और मैं शीघ्र ही उन [राजा तालध्वज]-में पूर्णरूपसे अनुरक्त हो गया॥ १५॥

हे ब्रह्मन्! मैं मायाके इस बलको दुर्लंघ्य, ज्ञानकी हानि करनेवाला तथा मोहकी विस्तृत जड़ मानता हूँ॥ १६॥

मैंने सम्पूर्ण शुभ तथा अशुभ परिस्थितियोंका अनुभव किया तथा सम्यक् प्रकारसे उनके विषयमें जाना। हे तात! आपने उस मायाको कैसे जीता है? वह उपाय मुझे भी बताइये॥ १७॥

नारदजी बोले—हे व्यासजी! पिता ब्रह्माजीसे मेरे इस प्रकार बतानेपर वे मुसकराकर मुझसे प्रेमपूर्वक कहने लगे॥ १८॥

ब्रह्माजी बोले—सभी देवता, मुनि, महात्मा, तपस्वी, ज्ञानी तथा वायुसेवन करनेवाले योगियोंके लिये भी यह माया कठिनतासे जीती जानेवाली है॥ १९॥

उस महाशक्तिशालिनी मायाको सम्यक् प्रकारसे जाननेमें मैं भी समर्थ नहीं हूँ। उसी प्रकार विष्णु तथा उमापति शंकर भी उसे जाननेमें समर्थ नहीं हैं॥ २०॥

सृजन, पालन तथा संहार करनेवाली वह महामाया

सभीके लिये दुर्ज्ञेय है। काल, कर्म तथा स्वभाव आदि निमित्त कारणोंसे वह सदा समन्वित है॥ २१॥

हे मेधाविन्! अपरिमित बलसे सम्पन्न इस मायाके विषयमें आप शोक न करें। इसके विषयमें किसी प्रकारका विस्मय नहीं करना चाहिये। हमलोग भी मायासे विमोहित हैं॥ २२॥

नारदजी बोले—हे व्यासजी! पिताजीके ऐसा कहनेपर मेरा विस्मय दूर हो गया। इसके बाद उनसे आज्ञा लेकर उत्तम तीर्थोंका दर्शन करता हुआ मैं यहाँ आ पहुँचा हूँ॥ २३॥

अतएव हे श्रेष्ठ व्यासजी! कौरवोंके नाशसे उत्पन्न मोहका परित्याग करके आप भी इस स्थानपर सुखपूर्वक रहते हुए समय व्यतीत कीजिये॥ २४॥

किये गये शुभ तथा अशुभ कर्मका फल अवश्य भोगना पड़ता है—ऐसा मनमें निश्चय करके आनन्दपूर्वक विचरण कीजिये॥ २५॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! ऐसा कहकर मुझे समझानेके पश्चात् नारदजी वहाँसे चले गये। मुनि नारदने मुझसे जो वाक्य कहा था उसपर विचार करता हुआ मैं उस श्रेष्ठ सारस्वतकल्पमें सरस्वतीके तटपर ठहर गया। हे राजन्! समय व्यतीत करनेके उद्देश्यसे वहींपर मैंने सम्पूर्ण सन्देहोंको दूर करनेवाले, नानाविध आख्यानोंसे युक्त, वैदिक प्रमाणोंसे ओतप्रोत तथा पुराणोंमें उत्तम इस श्रीमद्देवीभागवतकी रचना की थी॥ २६—२८॥

हे राजेन्द्र! इसमें किसी तरहका संशय नहीं करना चाहिये। जिस प्रकार कोई इन्द्रजाल करनेवाला अपने हाथमें काठकी पुतली लेकर उसे अपने अधीन करके अपने इच्छानुसार नचाता है, उसी प्रकार यह माया चराचर जगत्‌को नचाती रहती है॥ २९-३०॥

ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त जितने भी पाँच इन्द्रियोंसे सम्बन्ध रखनेवाले देवता, मानव तथा दानव हैं; वे सभी मन तथा चित्तका अनुसरण करते हैं॥ ३१॥

हे राजन्! सत्त्व, रज तथा तम—ये तीनों गुण ही सभी कार्योंके सर्वथा कारण होते हैं। यह निश्चित है कि कोई भी कार्य किसी-न-किसी कारणसे अवश्य सम्बद्ध रहता है॥ ३२॥

मायासे उत्पन्न हुए ये तीनों गुण भिन्न-भिन्न स्वभाववाले होते हैं; क्योंकि ये तीनों गुण (क्रमशः) शान्त, घोर तथा मूढ-भेदानुसार तीन प्रकारके होते हैं॥ ३३॥

इन तीनों गुणोंसे सदा युक्त रहनेवाला प्राणी इन गुणोंसे विहीन कैसे रह सकता है? जिस प्रकार संसारमें तन्तुविहीन वस्त्रकी सत्ता नहीं हो सकती, उसी प्रकार तीनों गुणोंसे रहित प्राणीकी सत्ता नहीं हो सकती, यह पूर्णरूपेण निश्चित है। हे नरेश! जिस प्रकार मिट्टीके बिना घटका होना सम्भव नहीं है, उसी प्रकार देवता, मानव अथवा पशु-पक्षी भी गुणोंके बिना नहीं रह सकते। यहाँतक कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश—ये तीनों भी इन गुणोंके आश्रित रहते हैं। गुणोंका संयोग होनेसे ही वे कभी प्रसन्न रहते हैं, कभी अप्रसन्न रहते हैं तथा कभी विषादग्रस्त हो जाते हैं॥ ३४—३७॥

जब ब्रह्मा सत्त्वगुणमें स्थित रहते हैं तब वे शान्त, समाधिस्थ, ज्ञानसम्पन्न तथा सभी प्राणियोंके प्रति प्रेमसे युक्त हो जाते हैं। वे ही जब सत्त्वगुणसे विहीन होकर रजोगुणकी अधिकतासे युक्त होते हैं, तब उनका रूप भयावह हो जाता है और वे सबके प्रति अप्रीतिकी भावनासे युक्त हो जाते हैं। वे ही ब्रह्मा जब तमोगुणकी अधिकतासे आविष्ट हो जाते हैं, तब वे विषादग्रस्त तथा मूढ़ हो जाते हैं; इसमें संशय नहीं है॥ ३८—४०॥

सदा सत्त्वगुणमें स्थित रहनेवाले विष्णु इसी गुणके कारण शान्त, प्रीतिमान् तथा ज्ञानसम्पन्न रहते हैं। वे ही रमापति विष्णु रजोगुणकी अधिकताके कारण अप्रीतिसे युक्त हो जाते हैं और तमोगुणके अधीन होकर सभी प्राणियोंके लिये घोररूप हो जाते हैं॥ ४१-४२॥

इसी प्रकार रुद्र भी सत्त्वगुणसे युक्त होनेपर प्रेम तथा शान्तिसे समन्वित रहते हैं, किंतु रजोगुणसे आविष्ट होनेपर वे भी भयानक तथा प्रेमविहीन हो जाते हैं। इसी तरह तमोगुणसे आविष्ट होनेपर वे रुद्र मूढ तथा

विषादग्रस्त हो जाते हैं॥ ४३१/२॥

हे नृपश्रेष्ठ! यदि ये ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि तथा युग-युगमें जो सूर्यवंशी तथा चन्द्रवंशी चौदहों मनु कहे गये हैं—वे भी गुणोंके अधीन रहते हैं, तब इस संसारमें अन्य लोगोंकी कौन-सी बात? देवता, दानव तथा मानवसमेत यह सम्पूर्ण जगत् मायाका वशवर्ती है॥ ४४—४६॥

अतएव हे राजन्! इस विषयमें कदापि सन्देह नहीं करना चाहिये। प्राणी मायाके अधीन है और वह उसीके वशवर्ती होकर चेष्टा करता है॥ ४७॥

वह माया भी सदा संविद्रूप परमतत्त्वमें स्थित रहती है। वह उसीके अधीन रहती हुई उसीसे प्रेरित होकर जीवोंमें सदा मोहका संचार करती है॥ ४८॥

अत: विशिष्टमायास्वरूपा, प्रज्ञामयी, परमेश्वरी, मायाकी अधिष्ठात्री, सच्चिदानन्दरूपिणी भगवती जगदम्बाका ध्यान, पूजन, वन्दन तथा जप करना चाहिये। उससे वे भगवती प्राणीपर दया करके उसे मुक्त कर देती हैं और अपनी अनुभूति कराकर अपनी मायाको हर लेती हैं। समस्त भुवन मायारूप है तथा वे ईश्वरी उसकी नायिका हैं। इसीलिये त्रैलोक्यसुन्दरी भगवतीको 'भुवनेशी' कहा गया है। हे पृथ्वीपते! यदि उन भगवतीके रूपमें चित्त सदा आसक्त हो जाय तो सत्-असत्स्वरूपा माया अपना क्या प्रभाव डाल सकती है? अत: हे राजन्! सच्चिदानन्दरूपिणी भगवती परमेश्वरीको छोड़कर अन्य कोई भी देवता उस मायाको दूर करनेमें समर्थ नहीं है॥ ४९—५३१/२॥

एक अन्धकार किसी दूसरे अन्धकारको दूर करनेमें समर्थ नहीं हो सकता; किंतु सूर्य, चन्द्रमा, विद्युत् तथा अग्नि आदिकी प्रभा उस अन्धकारको मिटा देती है। अतएव मायाके गुणोंसे निवृत्ति प्राप्त करनेके लिये प्रसन्नतापूर्वक स्वयंप्रकाशित तथा ज्ञानस्वरूपिणी भगवती मायेश्वरीकी आराधना करनी चाहिये॥ ५४-५५१/२॥

हे राजेन्द्र! वृत्रासुर-वध आदिकी कथाके विषयमें आपने जो पूछा था, उसका वर्णन मैंने भलीभाँति कर दिया। अब आप और क्या सुनना चाहते हैं?॥ ५६१/२॥

हे सुव्रत! श्रीमद्देवीभागवतपुराणका पूर्वार्ध मैंने आपसे कहा, जिसमें देवीकी महिमाका विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। भगवती जगदम्बाका यह रहस्य जिस किसीको नहीं सुना देना चाहिये। भक्त, शान्त, देवीकी भक्तिमें लीन, ज्येष्ठ पुत्र तथा गुरुभक्तिसे युक्त शिष्यके समक्ष ही इसका वर्णन करना चाहिये॥ ५७—५९॥

इस संसारमें जो मनुष्य सम्पूर्ण पुराणोंके सार-स्वरूप, समस्त वेदोंकी तुलना करनेवाले तथा नानाविध प्रमाणोंसे परिपूर्ण इस श्रीमद्देवीभागवतपुराणका विशेष श्रद्धाके साथ भक्तिपूर्वक पाठ करता है तथा इसका श्रवण करता है, वह ऐश्वर्यसम्पन्न तथा ज्ञानवान् हो जाता है॥ ६०॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत षष्ठ स्कन्धका 'भगवतीमाहात्म्यवर्णन' नामक इकतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३१॥

॥ षष्ठ स्कन्ध समाप्त॥

॥ श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणका पूर्वार्ध समाप्त हुआ॥

नम्र निवेदन एवं क्षमा-प्रार्थना

पराम्बा भगवती महात्रिपुरसुन्दरीकी करुणामयी कृपासे इस वर्ष कल्याणका विशेषाङ्क '**श्रीमद्देवीभागवताङ्क**' पाठकोंकी सेवामें प्रस्तुत है। कल्याणकी परम्परामें पिछले वर्षोंमें यदा-कदा कई महापुराणों तथा उपपुराणोंका संक्षिप्त हिन्दी अनुवाद अथवा किसीका मूलसहित सानुवाद प्रकाशन विशेषाङ्कके रूपमें होता रहा है। आजसे लगभग सैंतालीस वर्षपूर्व सन् १९६० ई०में 'कल्याण' के विशेषाङ्कके रूपमें संक्षिप्त देवीभागवताङ्कका प्रकाशन हुआ था, जिसमें देवीभागवतकी कथाएँ साररूपमें हिन्दीमें प्रकाशित हुई थीं। भगवती जगदम्बाके प्रेमी पाठकोंका पिछले बहुत वर्षोंसे यह आग्रह था कि मूल देवीभागवतका सानुवाद प्रकाशन विशेषाङ्कके रूपमें किया जाय। इस दृष्टिसे मूल देवीभागवतके सानुवाद प्रकाशनकी योजना बनायी गयी, परंतु विशेषाङ्ककी पृष्ठ-संख्या सीमित होनेके कारण अठारह हजार श्लोकोंके इस बृहत्पुराणका मूलसहित सानुवाद प्रकाशन एक वर्षमें सम्भव नहीं था। अत: यह निर्णय लिया गया कि देवीभागवतके मूल श्लोक पुस्तकरूपमें प्रकाशित कर दिये जायँ तथा प्रत्येक श्लोकका अनुवाद श्लोक-संख्यासहित दो वर्षोंमें विशेषाङ्कके रूपमें सर्वसाधारणके लिये प्रकाशित किया जाय। तदनुसार सम्पूर्ण मूल देवीभागवत पुस्तकरूपमें प्रकाशित कर दी गयी है तथा इस वर्ष श्रीमद्देवीभागवत (पूर्वार्ध—प्रथमसे षष्ठ स्कन्धतक)-का हिन्दी अनुवाद विशेषाङ्कके रूपमें प्रकाशित किया जा रहा है। अगले वर्ष इस पुराणका उत्तरार्ध (सप्तम स्कन्धसे द्वादश स्कन्ध) विशेषाङ्कके रूपमें प्रकाशित करनेका विचार है।

श्रीमद्देवीभागवत पुराण-वाङ्मयका शिरोमणिरत्न है। श्रीमद्भागवतके ही समान अठारह हजार श्लोकोंसे युक्त एवं द्वादश स्कन्धोंमें विभक्त यह महापुराण है। '**तत्र भागवतं पुण्यं पञ्चमं वेदसम्मितम्।**' (श्रीमद्देवीभा० १।१।१६)—इस वचनके अनुसार इसकी गणना महापुराणके पाँचवें क्रमांकपर की जाती है और यह वेदसम्मत है। इसकी विशेषता यह है कि भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले श्रीमद्देवीभागवतपुराणको महर्षि वेदव्यासने स्वयं महाराज जनमेजयजीको सुनाया—'**देवीभागवतं तत्र पुराणं भोगमोक्षदम्। स्वयं तु श्रावयामास जनमेजयभूपतिम्॥**' (श्रीमद्देवीभा०, माहात्म्य १।१८)

इस पुराणके अनुसार महाशक्ति ही परब्रह्म परमात्मा हैं, जो विभिन्न रूपोंमें विविध लीलाएँ करती हैं। इन्हींकी शक्तिसे ब्रह्मा विश्वकी उत्पत्ति करते हैं, इन्हींकी शक्तिसे विष्णु सृष्टिका पालन करते हैं और शिव जगत्का संहार करते हैं अर्थात् ये ही सृजन, पालन और संहार करनेवाली आद्या पराशक्ति हैं। ये ही शक्तिमान् और ये ही शक्ति हैं, ये ही नर और नारी हैं एवं ये ही माता, धाता तथा पितामह भी हैं।

परमात्मारूपा महाशक्ति ही विविध शक्तियोंके रूपमें सर्वत्र क्रीड़ा कर रही हैं—'**शक्तिक्रीडा जगत्सर्वम्।**' जहाँ शक्ति नहीं, वहाँ शून्यता ही है। शक्तिहीनका कहीं भी समादर नहीं होता। दूसरे शब्दोंमें कहा जा सकता है कि समस्त विश्व महाशक्तिका ही विलास है। देवीभागवतमें स्वयं भगवती कहती हैं—'**सर्वं खल्विदमेवाहं नान्यदस्ति सनातनम्॥**' (श्रीमद्देवीभा० १।१५।५२) अर्थात् समस्त विश्व मैं ही हूँ, मुझसे अतिरिक्त कोई भी सनातन या अविनाशी तत्त्व नहीं है।

अपने यहाँ अपने उपास्यकी उपासना मातृरूपसे, पितृरूपसे अथवा स्वामिरूपसे—किसी भी रूपसे की जा सकती है, किंतु वह होनी चाहिये भावपूर्ण और अनन्य। लोकमें सम्पूर्ण जीवोंके लिये मातृभावकी महिमा विशेष है। व्यक्ति अपनी सर्वाधिक श्रद्धा स्वभावत: माँके चरणोंमें अर्पित करता है। भगवती महाशक्तिस्वरूपिणी देवी समष्टिरूपिणी माता और सारे जगत्की माता हैं, वे ही अपने समस्त बालकों (तथा समस्त संसार)-के लिये कल्याणपथ-प्रदर्शिका ज्ञानगुरु हैं।

मान्यता है कि भगवतीकी साधनासे सद्य: फलकी प्राप्ति होती है। पराम्बा भगवती राजराजेश्वरी अपने भक्तोंको भोग और मोक्ष—एक साथ प्रदान करती हैं, जबकि सामान्यत: दोनोंका साहचर्य नहीं देखा जाता। जहाँ भोग है वहाँ मोक्ष नहीं, जहाँ मोक्ष है वहाँ भोग नहीं रहता, फिर भी शक्ति-साधकोंके लिये दोनों एक साथ सुलभ हैं अर्थात् संसारके विभिन्न भोगोंको भोगता हुआ वह परमपद—मोक्षका अधिकारी हो जाता है।

भारतीय धर्म एवं संस्कृतिमें भोगोंका सर्वथा निषेध नहीं है, वरन् उनकी मानव-जीवनके क्षेत्रमें आवश्यकता बतायी गयी है, परंतु वे होने चाहिये धर्मके द्वारा नियन्त्रित तथा मोक्ष एवं भगवत्प्राप्तिके साधनरूप। केवल भोग तो आसुरी-सम्पदाकी वस्तु है और वह मनुष्यका अध:पतन करनेवाला है। कामोपभोगपरायणता मनुष्यको असुर-राक्षस बनाकर उसके अपने तथा जगत्के अन्यान्य प्राणियोंके लिये घोर सन्ताप, अशान्ति, चिन्ता, ताप तथा दुर्गतिकी प्राप्ति करानेवाली होती है। अपने देशमें इस अनर्थका उत्पादन

करनेवाली भोगपरायणताका विस्तार बड़े जोरोंसे हो रहा है। अतः इस समय इसकी बड़ी आवश्यकता है कि मानव पतनके प्रवाहसे निकलकर, पाप-पथसे लौटकर फिर वास्तविक उत्थान, प्रगति तथा पुण्यके पथपर आरूढ़—अग्रसर हों। इस दिशामें यदि उचितरूपसे श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणका अध्ययन तथा तदनुसार आचरण एवं उपासना की जाय तो यह विशेषाङ्क मानवके भौतिक एवं आध्यात्मिक उन्नतिमें बहुत कुछ सहायक सिद्ध हो सकेगा।

इस पुराणके आदि, मध्य और अन्त—सर्वत्र भगवती आद्याशक्तिकी महिमा तथा उनकी कथाओंका प्रतिपादन हुआ है। यहाँ परब्रह्म परमात्माके मातृरूप और उसकी उपासनाका वर्णन है। भगवती आद्याशक्तिकी लीलाएँ अनन्त हैं और उन लीलाकथाओंका प्रतिपादन ही ग्रन्थका प्रतिपाद्य-विषय है। पाठकोंकी सुविधाके लिये श्रीमद्देवीभागवत (पूर्वार्ध)-के भावोंका सार-संक्षेप इस विशेषाङ्कके प्रारम्भमें सिंहावलोकनके रूपमें प्रस्तुत किया गया है। इसके अवलोकनसे देवीभागवतके प्रमुख प्रतिपाद्य-विषय पंाठकोंके ध्यानमें आ सकेंगे। आशा है पाठकगण इससे लाभान्वित होंगे।

विशेषाङ्कके प्रकाशनमें कठिनाइयोंका आना तो स्वाभाविक ही है, परंतु परम करुणामयी पराम्बा भगवती जगदम्बाकी अनुकम्पासे सब कार्य सानन्द सम्पन्न हुआ। इस पुराणके अनुवाद करनेमें मूल श्लोकोंके भावोंको स्पष्ट करनेका विशेष ध्यान रखा गया है। भावोंके स्पष्टीकरणकी दृष्टिसे कुछ आवश्यक टिप्पणियाँ भी दी गयी हैं। अपने पुराणमें कुछ ऐसे भी स्थल हैं, जो सर्वसाधारणके लिये उपयोगी प्रतीत नहीं होते तथा उनकी समझकी क्षमताके बाहर भी हैं, इनके समावलोकनसे सामान्य लोगोंके मस्तिष्कमें संशय-विपर्ययकी स्थिति उत्पन्न हो सकती है, ऐसे स्थलोंके अनुवादको संक्षेप करना ही हितकर समझा गया।

इस पुराणके मूल श्लोकोंके अनुवादमें तथा इनके संशोधन एवं परिवर्धनमें 'कल्याण' के सहसम्पादक डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़ने पूर्ण परिश्रमपूर्वक अपना योगदान प्रदान किया। इसके साथ ही अनुवादके संशोधन तथा परिवर्धनसे सम्बन्धित शंकाओंका समाधान प्रयागराजके श्रीहरीराम-गोपालकृष्ण-सनातन धर्म संस्कृत महाविद्यालयके पूर्व प्राचार्य आदरणीय पं० श्रीरामकृष्णजी शास्त्रीने पूर्ण मनोयोगसे सम्पन्न किया। मैं इनके प्रति आभार व्यक्त करता हुआ इनके चरणोंमें प्रणति-निवेदन करता हूँ। वास्तवमें इन महानुभावोंके संरक्षणमें ही इस पुराणका अनुवाद तथा इसका संशोधन आदि कार्य सुचारुरूपसे सम्पन्न हुआ। 'कल्याण' के शुभचिन्तक और सहयोगी श्रीशिवकुमारजी गोयलको भी मैं विस्मृत नहीं कर सकता, जो निरन्तर समय-समयपर अपने लेख तथा सुझावोंसे प्रोत्साहित करते रहते हैं।

इस विशेषाङ्कके अनुवाद तथा उसकी आवृत्ति, प्रूफसंशोधन तथा सम्पादनके कार्योंमें सम्पादकीय विभागके मेरे सहयोगी विद्वानोंने तथा अन्य सभी लोगोंने मनोयोगपूर्वक सहयोग प्रदान किया है; फिर भी अनुवाद, संशोधन एवं छपाई आदिमें कोई भूल हो, इसके लिये हमारा अपना अज्ञान तथा प्रमाद ही कारण है। अतः इसके लिये हम अपने पाठकोंके प्रति क्षमाप्रार्थी हैं।

आस्तिकजन इस देवीभागवतको पढ़कर लाभ उठायें और लोक-परलोकमें सुख-शान्ति तथा मानव-जीवनके परम लक्ष्यको प्राप्त करें, भगवती पराम्बासे यही प्रार्थना है। मानव-जीवनका लक्ष्य है—'आत्मोद्धार'। इस लक्ष्यकी सिद्धि इस पुराणमें वर्णित आचारके श्रद्धापूर्वक सेवनसे प्राप्त हो सकती है। इस देवीभागवतके समस्त उपदेशों और कथानकोंका सार यही है कि हमें सांसारिक बन्धनोंसे मुक्त होनेके लिये एकमात्र पराम्बा भगवतीकी शरण ग्रहण करते हुए उनकी उपासनामें संलग्न होना चाहिये। इस लक्ष्यकी प्राप्ति पराम्बा भगवतीकी भक्तिद्वारा किस प्रकार हो सकती है, इसकी विशद व्याख्या भी इस पुराणमें वर्णित है। यदि इस विशेषाङ्कके अध्ययनसे जनता-जनार्दनको आत्मकल्याणकी प्रेरणा किसी भी रूपमें प्राप्त हुई तो यह भगवान्‌की बड़ी कृपा होगी, श्रम सार्थक होगा।

अन्तमें हम अपनी त्रुटियोंके लिये आप सबसे पुनः क्षमा-प्रार्थना करते हुए दीनवत्सला करुणामयी माँसे यह प्रार्थना करते हैं कि वे हमें तथा जगत्‌के सम्पूर्ण जीवोंको सद्‌बुद्धि प्रदान करें, जिससे हम सबकी अहैतुकी प्रीति माँके वरद चरणोंमें निरन्तर बढ़ती रहे। इन्हीं शब्दोंके साथ जगत्‌के अणु-अणुमें शक्तिरूपमें अवस्थित जगज्जननी भगवती पराम्बाके श्रीचरणोंमें बारम्बार नमस्कार।

या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥

—राधेश्याम खेमका
(सम्पादक)

॥ श्रीहरि: ॥

गीताप्रेस, गोरखपुर-प्रकाशन

कोड	मूल्य रु०

श्रीमद्भगवद्गीता

गीता-तत्त्व-विवेचनी—(टीकाकार-श्रीजयदयालजी गोयन्दका) २५१५ प्रश्न और उत्तर-रूपमें विवेचनात्मक हिन्दी-टीका, सचित्र, सजिल्द

- ■ 1 बृहदाकार १४०
- ■ 2 ,, ग्रन्थाकार विशिष्ट संस्करण ८० [बँगला, तमिल, ओड़िआ, कन्नड, अंग्रेजी, तेलुगु, गुजराती, मराठीमें भी]
- ■ 3 ,, साधारण संस्करण ५०

गीता-साधक-संजीवनी—(टीकाकार—स्वामी श्रीरामसुखदासजी) गीताके मर्मको समझनेहेतु व्याख्यात्मक शैली एवं सरल, सुबोध भाषामें हिन्दी-टीका, सचित्र, सजिल्द

- ■ 5 बृहदाकार, परिशिष्टसहित २१०
- ■ 6 ,, ग्रन्थाकार, परिशिष्टसहित १२० [मराठी, तमिल (दो खण्डोंमें), गुजराती, अंग्रेजी (दो खण्डोंमें), कन्नड (दो खण्डोंमें), बँगला, ओड़िआमें भी]
- ■ 8 गीता-दर्पण—(स्वामी श्रीरामसुखदासजीद्वारा) गीताके तत्त्वोंपर प्रकाश, गीता-व्याकरण और छन्द-सम्बन्धी गूढ़ विवेचन सचित्र, सजिल्द [मराठी, बँगला, गुजराती, ओड़िआमें भी] ५०
- ■1562 गीता-प्रबोधनी—पुस्तकाकार ३५ (बंगला, ओड़िआ, पंजाबीमें भी)
- ■1590 ,, पॉकेट, वि०सं० २०
- ■ 784 ज्ञानेश्वरी गूढार्थ-दीपिका (मराठी) १३०
- ■ 748 ,, मूल, गुटका (मराठी) ३०
- ■ 859 ,, मूल, मझला (मराठी) ४०
- ■ 10 गीता-शांकर-भाष्य ६०
- ■ 581 गीता-रामानुज-भाष्य ४०
- ■ 11 गीता-चिन्तन—(श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके गीता-विषयक लेखों, विचारों, पत्रों आदिका संग्रह) ३५
- ■ 17 गीता—मूल, पदच्छेद, अन्वय, भाषा-टीका, टिप्पणी प्रधान लेखसहित, सचित्र, सजिल्द [गुजराती, बँगला, मराठी, कन्नड, तेलुगु, तमिलमें भी] ३०
- ■ 16 गीता—प्रत्येक अध्यायके माहात्म्यसहित, सजिल्द, मोटे अक्षरोंमें (मराठीमें भी) ३०
- ■1555 गीता-माहात्म्य (वि०सं०) ४०
- ■ 19 गीता—केवल भाषा (तेलुगु, उर्दू, तमिलमें भी) ७
- ■ 18 गीता-भाषा-टीका, टिप्पणी-प्रधान विषय, मोटा टाइप [ओड़िआ, गुजराती, मराठीमें भी] १५
- ■ 502 गीता- ,, ,, (सजि०) २३ [तेलुगु, ओड़िआ, गुजराती, कन्नड, तमिलमें भी]
- ■ 20 ,, —भाषा-टीका, पॉकेट साइज ६ [अंग्रेजी, मराठी, बँगला, असमिया, ओड़िआ, गुजराती, कन्नड, तेलुगुमें भी]
- ■1566 गीता—भाषा-टीका, पॉकेट साइज, सजिल्द १२ [गुजराती, बँगला, अंग्रेजी भी]
- ■ 21 श्रीपञ्चरत्नगीता—गीता, विष्णुसहस्रनाम, भीष्मस्तवराज, अनुस्मृति, गजेन्द्रमोक्ष (मोटे अक्षरोंमें) [ओड़िआमें भी] १७
- ■1628 ,, (नित्यस्तुति एवं गजल-गीतासहित) पॉकेट साइज ५
- ■ 22 गीता—मूल, मोटे अक्षरोंवाली [तेलुगु, गुजरातीमें भी] ८
- ■ 23 गीता—मूल, विष्णुसहस्रनामसहित ३ [कन्नड, तेलुगु, तमिल, मलयालम, ओड़िआमें भी]
- ■1556 गीता—श्लोकार्थसहित—लघु आकार ५
- ■1602 गीता—सजिल्द (वि०सं०)—लघु आकार ८
- ■ 700 गीता—मूल, लघु आकार (ओड़िआ, बँगला, तेलुगुमें भी) २
- ■1392 गीता ताबीजी—(सजिल्द) (गुजराती, बँगला, तेलुगु, ओड़िआमें भी) ४
- ■ 566 गीता—ताबीजी एक पन्नेमें सम्पूर्ण गीता (१०० प्रति एक साथ) .२५
- ▲ 289 गीता-निबन्धावली
- ▲ 297 गीतोक्त संन्यास या सांख्ययोगका स्वरूप १
- ▲ 388 गीता-माधुर्य-सरल प्रश्नोत्तर-शैलीमें (हिन्दी) ८ [तमिल, मराठी, गुजराती, उर्दू, तेलुगु, बँगला, असमिया, कन्नड, ओड़िआ, अंग्रेजी, संस्कृतमें भी]
- ▲ 679 गीतामाधुर्य (केवल मूल) ६
- ■1242 पाण्डवगीता एवं हंसगीता ३
- ■1431 गीता-दैनन्दिनी (२००८) पुस्तकाकार, विशिष्ट संस्करण (बँगला, तेलुगु, ओड़िआमें भी) ५०
- ■ 503 गीता-दैनन्दिनी (२००८) रोमन, पुस्तकाकार प्लास्टिक जिल्द ३५
- ■ 506 गीता-दैनन्दिनी (२००८) पॉकेट साइज, (वि०सं०) २०
- ▲ 464 गीता-ज्ञान-प्रवेशिका १५
- ■ 508 गीता-सुधा-तरंगिनी

रामायण

- ■1389 श्रीरामचरितमानस—बृहदाकार (विशिष्ट संस्करण) ४००
- ■ 80 ,, बृहदाकार २८०
- ■1095 ,, ग्रन्थाकार (विशिष्ट सं०) (गुजरातीमें भी) २१०
- ■ 81 ,, ग्रन्थाकार सचित्र, सटीक, मोटा टाइप, १५० [ओड़िआ, बँगला, तेलुगु, मराठी, गुजराती, कन्नड, अंग्रेजी, नेपालीमें भी]
- ■1402 ,, सटीक, ग्रंथाकार (सामान्य) १२०
- ■1563 ,, मझला, सटीक विशिष्ट सं० ८५
- ■ 82 ,, मझला साइज, सटीक ७५ सजिल्द [गुजराती, अंग्रेजी भी]
- ■1318 ,, रोमन एवं अंग्रेजी अनुवादसहित २००
- ■ 456 ,, अंग्रेजी अनुवादसहित १२०
- ■ 786 ,, मझला ,, ,, ७०
- ■1436 ,, मूलपाठ बृहदाकार १६५
- ■ 83 ,, मूलपाठ, ग्रंथाकार ८० [गुजराती, ओड़िआ भी]
- ■ 84 ,, मूल, मझला साइज [गुजराती भी] ४५
- ■ 85 ,, मूल, गुटका [गुजराती भी] ३०
- ■1544 ,, मूल गुटका (विशिष्ट सं०) ३५
- ■ 790 ,, केवल भाषा ८०

[श्रीरामचरितमानस—अलग-अलग काण्ड (सटीक)]

- ■ 94 श्रीरामचरितमानस-बालकाण्ड २०
- ■ 95 ,, अयोध्याकाण्ड १८
- ■ 98 ,, सुन्दरकाण्ड [कन्नड, तेलुगु, बँगला भी] ५
- ■ 101 ,, लंकाकाण्ड १०
- ■ 102 ,, उत्तरकाण्ड १०
- ■ 141 श्रीरामचरितमानस-अरण्य, किष्किन्धा एवं सुन्दरकाण्ड ९
- ■1349 ,, सुन्दरकाण्ड सटीक मोटा टाइप (लाल अक्षरोंमें) (श्रीहनुमानचालीसासहित) [गुजरातीमें भी] १५
- ■1583 ,, सुन्दरकाण्ड, (मूल) मोटा (आड़ी) रंगीन ६
- ■ 99 ,, सुन्दरकाण्ड—मूल, गुटका [गुजराती भी] ३
- ■ 100 ,, सुन्दरकाण्ड—मूल, मोटा टाइप ५ [गुजराती, ओड़िआ भी]
- ■1378 ,, सुन्दरकाण्ड—मूल-मोटा टाइप (लाल रंगमें) ६
- ■ 858 ,, सुन्दरकाण्ड—मूल, लघु आकार [गुजराती भी] २
- ■1710 ,, किष्किन्धाकाण्ड २
- ■1376 मानस-गूढ़ार्थ-चन्द्रिका—(श्रीरामचरितमानसपर सुप्रसिद्ध तिलक, टीकाकार-प० प०प्रज्ञानानन्द सरस्वती (सातों खण्ड) ७६० (अलग-अलग खण्ड भी उपलब्ध)
- ■ 86 मानसपीयूष-(श्रीरामचरितमानसपर सुप्रसिद्ध तिलक, टीकाकार—श्रीअञ्जनीनन्दनशरण (सातों खण्ड) १२२५ (अलग-अलग खण्ड भी उपलब्ध)
- ■1291 श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण-कथा-सुधा-सागर
- ■75, 76 } श्रीमद्वाल्मीकीय-रामायण—सटीक, दो खण्डोंमें सेट [तेलुगु भी] २६०
- ■1337, 1338 } रामायण—भाषा (मोटा टाइप) दो खण्डोंमें सेट २४०
- ■ 77 ,, केवल भाषा १६०
- ■ 583 ,, (मूलमात्रम्) १००
- ■ 78 ,, सुन्दरकाण्ड, मूलमात्रम् [तमिल भी] १८
- ■1549 श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण सुन्दरकाण्ड-सटीक [तमिल भी] ५०
- ■452, 453 } श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण (अंग्रेजी अनुवादसहित दो खण्डोंमें सेट) ३००
- ■1002 सं० वाल्मीकीय-रामायणाङ्क
- ■ 74 अध्यात्मरामायण—सटीक [तमिल, तेलुगु, कन्नड, मराठी भी] ७०
- ■ 223 मूल रामायण [गुजराती, मराठी भी] २

☞ भारतमें डाक खर्च, पैकिंग तथा फारवर्डिंगकी देय राशि:—२ रुपया-प्रत्येक १० रु० या उसके अंशके मूल्यकी पुस्तकोंपर। —रजिस्ट्री / वी० पी० पी० के लिये २० रु० प्रति पैकेट अतिरिक्त। [पैकेटका अधिकतम वजन ५ किलो (अनुमानित पुस्तक मूल्य रु० २५०)]

☞ रंगीन चित्रोंपर २० रु० प्रति पैकेट स्पेशल पैकिंग चार्ज अतिरिक्त।

☞ रु० ५००/-से अधिकको पुस्तकोंपर ५% पैकिंग, हैण्डलिंग तथा वास्तविक डाकव्यय देय होगा।

☞ पुस्तकोंके मूल्य एवं डाकदरमें परिवर्तन होनेपर परिवर्तित मूल्य / डाकदर देय होगा।

☞ पुस्तक-विक्रेताओंके नियमोंकी पुस्तिका अलग है। विदेशोंमें निर्यातके अलग नियम हैं।

☞ रु० १५०० से अधिकको पुस्तकें एक साथ लेनेपर १५% छूट (▲चिह्नवाली पुस्तकोंपर ३०%) छूट देय। (पैकिंग, रेल भाड़ा आदि अतिरिक्त)।

नोट—अन्य भारतीय भाषाओंकी पुस्तकोंका मूल्य एवं कोड पृष्ठ-४९७ से ५०० पर देखें तथा अप्रैल २००७ से प्रकाशित नवीन प्रकाशनोंको पृष्ठ-५०० पर देखें।

सम्पर्क करें—व्यवस्थापक—गीताप्रेस, गोरखपुर

कोड		मूल्य रु०
▲1654	लवकुश-चरित्र	२०
▲ 401	मानसमें नाम-वन्दना	८
■ 103	मानस-रहस्य	३५
■ 104	मानस-शंका-समाधान	१२
	अन्य तुलसीकृत साहित्य	
■ 105	विनयपत्रिका—सरल भावार्थसहित	२८
■1701	विनयपत्रिका, सजिल्द	३५
■ 106	गीतावली— ,,	२५
■ 107	दोहावली—भावार्थसहित	१२
■ 108	कवितावली— ,,	१२
■ 109	रामाज्ञाप्रश्न— ,,	८
■ 110	श्रीकृष्णगीतावली ,,	५
■ 111	जानकीमंगल— ,,	४
■ 112	हनुमानबाहुक— ,,	३
■ 113	पार्वतीमंगल— ,,	३
■ 114	वैराग्य-संदीपनी एवं बरवै रामायण	३
	सूर-साहित्य	
■ 555	श्रीकृष्णमाधुरी	२०
■ 61	सूर-विनय-पत्रिका	२०
■ 62	श्रीकृष्ण-बाल-माधुरी	२०
■ 735	सूर-रामचरितावली	१८
■ 547	विरह-पदावली	१५
■ 864	अनुराग-पदावली—	२०
	पुराण, उपनिषद् आदि	
■ 28	श्रीमद्भागवत-सुधासागर [गुजराती भी]	१५०
■1490	,, (विशिष्ट संस्करण) (अंग्रेजी भी)	१८०
■ 25	श्रीशुकसुधासागर—बृहदाकार, बड़े टाइपमें	३२०
■1190, 1191	श्रीशुकसुधासागर, बड़े टाइपमें ग्रन्थाकार, दो खण्डोंमें सेट,	३००
■1535, 1536	श्रीमद्भागवतमहापुराण—सटीक, दो खण्डोंमें सेट, (विशिष्ट संस्करण)	३४०
■ 26, 27	श्रीमद्भागवतमहापुराण—सटीक, दो खण्डोंमें सेट (गुजराती, मराठी प्रथम खण्ड भी)	२६०
■ 564, 565	श्रीमद्भागवतमहापुराण—अंग्रेजी सेट	२५०
■ 29	,, मूल मोटा टाइप (तेलुगु भी)	११०
■ 124	,, मूल मझला	६५
■ 571	श्रीकृष्णलीलाचिन्तन	
■ 30	श्रीप्रेम-सुधासागर	६०
■ 31	भागवत एकादश स्कन्ध—सचित्र, सजिल्द [तमिल भी]	२५
■ 728	महाभारत—हिन्दी टीकासहित, सजिल्द, सचित्र [छः खण्डोंमें]सेट	१३५०
	(अलग-अलग खण्ड भी उपलब्ध)	
■ 38	महाभारत-खिलभाग हरिवंशपुराण—सटीक	२००
■1589	,, केवल हिन्दी	१७०
■ 637	जैमिनीय अश्वमेध पर्व	५०
■ 39, 511	संक्षिप्त महाभारत—केवल भाषा, सचित्र, सजिल्द सेट (दो खण्डोंमें)[बँगला भी]	२६०
■ 44	संक्षिप्त पद्मपुराण—सचित्र, सजिल्द	१५०
■1468	सं० शिवपुराण (विशिष्ट सं०)	१६५
■ 789	सं० शिवपुराण—मोटा टाइप [गुजराती भी]	१३०
■1133	सं० देवीभागवत [,,]	१५०

कोड		मूल्य रु०
■ 48	श्रीविष्णुपुराण—सटीक, सचित्र	१००
■1364	श्रीविष्णुपुराण (केवल हिन्दी)	६५
■1183	सं० नारदपुराण	१२०
■ 279	सं० स्कन्दपुराणाङ्क	२००
■ 539	सं० मार्कण्डेयपुराण	६०
■1111	सं० ब्रह्मपुराण	७०
■1113	नरसिंहपुराणम् —सटीक	६०
■1189	सं० गरुडपुराण	१००
■1362	अग्निपुराण (मूल संस्कृतका हिन्दी-अनुवाद)	१३०
■1361	सं० श्रीवराहपुराण	६०
■ 584	सं० भविष्यपुराण	११०
■1131	कूर्मपुराण—सटीक	८०
■ 631	सं० ब्रह्मवैवर्तपुराण	१२०
■1432	वामनपुराण— सटीक	७५
■ 557	मत्स्यमहापुराण—,,	१६५
■1610	देवीपुराण (महाभागवत) शक्तिपीठाङ्क	८०
■ 517	गर्गसंहिता	८०
■ 47	पातञ्जलयोग-प्रदीप	१२०
■ 135	पातञ्जलयोगदर्शन [बँगला भी]	११
■ 582	छान्दोग्योपनिषद्—सानुवाद शांकरभाष्य	७०
■ 577	बृहदारण्यकोपनिषद्—सानुवाद शांकरभाष्य	१००
■ 1421	ईशादि नौ उपनिषद्-(,,) एक ही जिल्दमें	१००
■ 66	ईशादि नौ उपनिषद्—अन्वय-हिन्दी व्याख्या [बँगला भी]	५०
■ 67	ईशावास्योपनिषद्-सानुवाद, शांकरभाष्य [तेलुगु, कन्नड भी]	४
■ 68	केनोपनिषद्—सानुवाद, शांकरभाष्य	१०
■ 578	कठोपनिषद्— ,,	१२
■ 69	माण्डूक्योपनिषद्— ,,	२२
■ 513	मुण्डकोपनिषद्— ,,	९
■ 70	प्रश्नोपनिषद्— ,,	१०
■ 71	तैत्तिरीयोपनिषद्— ,,	१८
■ 72	ऐतरेयोपनिषद्— ,,	८
■ 73	श्वेताश्वतरोपनिषद्- ,,	२०
■ 65	वेदान्त-दर्शन—हिन्दी व्याख्या-सहित, सजिल्द	३५
■ 639	श्रीनारायणीयम्—सानुवाद [तेलुगु, तमिल भी]	३५
	भक्त-चरित्र	
■ 40	भक्त चरिताङ्क-सचित्र, सजिल्द	१२०
■ 51	श्रीतुकाराम-चरित—जीवनी और उपदेश	३५
■ 121	एकनाथ-चरित्र	१७
■ 53	भागवतरत्न प्रह्लाद	१५
■ 123	चैतन्य-चरितावली-सम्पूर्ण एक साथ	१००
■ 751	देवर्षि नारद	१२
■ 167	भक्त भारती	
■ 168	भक्त नरसिंह मेहता [मराठी, गुजराती भी]	१३
■1564	महापुरुष श्रीमन्त शंकरदेव	८
■ 169	भक्त बालक-गोविन्द,मोहन आदिकी गाथा [तेलुगु, कन्नड, मराठी भी]	५
■ 170	भक्त नारी—मीरा, शबरी आदिकी गाथा	५
■ 171	भक्त पञ्चरत्न—रघुनाथ, दामोदर आदिकी (तेलुगु भी)	८
■ 172	आदर्श भक्त—शिबि, रन्तिदेव आदिकी गाथा [तेलुगु, कन्नड, गुजराती भी]	८

कोड		मूल्य रु०
■ 175	भक्त-कुसुम—जगन्नाथ आदि छ:भक्तगाथा	६
■ 173	भक्त सप्तरत्न-दामा, रघु आदिकी भक्तगाथा [गुजराती, कन्नड भी]	६
■ 174	भक्त चन्द्रिका—सखू, विट्ठल आदि छ: भक्तगाथा [गुजराती, कन्नड, तेलुगु, मराठी, ओड़िआ भी]	६
■ 176	प्रेमी भक्त-बिल्वमंगल, जयदेव आदि [गुजराती भी]	६
■ 177	प्राचीन भक्त—मार्कण्डेय, उत्तंक आदि	१२
■ 178	भक्त सरोज—गंगाधरदास, श्रीधर आदि (गुजराती भी)	८
■ 179	भक्त सुमन—नामदेव, राँका-बाँका आदिकी भक्तगाथा [गुजराती भी]	८
■ 180	भक्त सौरभ—व्यासदास, प्रयागदास आदि	८
■ 181	भक्त सुधाकर—रामचन्द्र, लाखा आदिकी भक्तगाथा [गुजराती भी]	८
■ 182	भक्त महिलारत्न—रानी रत्नावती, हरदेवी आदि [गुजराती भी]	८
■ 183	भक्त दिवाकर—सुव्रत, वैश्वानर आदिकी भक्तगाथा	८
■ 184	भक्त रत्नाकर—माधवदास, विमलतीर्थ आदि चौदह भक्तगाथा	८
■ 185	भक्तराज हनुमान्—हनुमान्जीका जीवनचरित्र [मराठी, ओड़िआ, तमिल, तेलुगु, कन्नड, गुजराती भी]	५
■ 186	सत्यप्रेमी हरिश्चन्द्र [ओड़िआ भी]	४
■ 187	प्रेमी भक्त उद्धव [तमिल, तेलुगु, गुजराती, ओड़िआ भी]	४
■ 188	महात्मा विदुर [गुजराती, तमिल, ओड़िआ भी]	४
■ 136	विदुरनीति	१०
■ 138	भीष्मपितामह [तेलुगु भी]	१०
■ 189	भक्तराज ध्रुव [तेलुगु भी]	४
	परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके शीघ्र कल्याणकारी प्रकाशन	
■683	तत्त्वचिन्तामणि— (सभी खण्ड एक साथ)[गुजराती भी]	८०
■814	साधन-कल्पतरु (१३ महत्त्वपूर्ण पुस्तकोंका संग्रह)	७०
▲1597	चिन्ता-शोक कैसे मिटें ?	८
▲1631	भगवान् कैसे मिलें ?	६
▲1653	मनुष्य-जीवनका उद्देश्य	६
▲1681	भगवत्प्राप्ति कठिन नहीं	६
▲1666	कल्याण कैसे हो ?	८
▲ 527	प्रेमयोगका तत्त्व—[अंग्रेजी भी]	१५
▲ 242	महत्त्वपूर्ण शिक्षा—[तेलुगु भी]	१८
▲ 528	ज्ञानयोगका तत्त्व [अंग्रेजी भी]	१४
▲ 266	कर्मयोगका तत्त्व—(भाग-१) (गुजराती भी)	१०
▲ 267	कर्मयोगका तत्त्व—(भाग-२)	१०
▲ 303	प्रत्यक्ष भगवद्दर्शनके उपाय [तमिल, गुजराती भी]	८
▲ 298	भगवान्के स्वभावका रहस्य [तमिल, गुजराती, मराठी भी]	९
▲ 243	परम साधन—भाग-१	९
▲ 244	,, ,, —भाग-२	८
▲ 245	आत्मोद्धारके साधन (भाग-१)	१०
▲ 335	अनन्यभक्तिसे भगवत्प्राप्ति—(आत्मोद्धारके साधन भाग-२) [गुजराती भी]	९
▲ 579	अमूल्य समयका सदुपयोग [तेलुगु, गुजराती, मराठी, कन्नड़, ओड़िआ भी]	७

कोड		मूल्य रु०
▲ 246	मनुष्यका परम कर्तव्य (भाग-१)	९
▲ 247	,, ,, (भाग-२)	९
▲ 611	इसी जन्ममें परमात्मप्राप्ति [गुजराती भी]	८
▲ 588	अपात्रको भी भगवत्प्राप्ति [,,]	९
▲1296	कर्णवासका सत्संग [तमिल भी]	७
▲1015	भगवत्प्राप्तिमें भावकी प्रधानता [गुजराती भी]	८
▲ 248	कल्याणप्राप्तिके उपाय- (त०चि०म०भा०१)[बँगला भी]	१३
▲ 249	शीघ्र कल्याणके सोपान-भाग-२, खण्ड-१ [गुजराती भी]	१०
▲ 250	ईश्वर और संसार—भाग-२, (खण्ड-२)	१२
▲ 519	अमूल्य शिक्षा—भाग-३, (खण्ड-१)	९
▲ 253	धर्मसे लाभ अधर्मसे हानि—भाग-३, (खण्ड-२)	९
▲ 251	अमूल्य वचन तत्त्वचिन्तामणि—भाग-४, (खण्ड-१)	१०
▲ 252	भगवद्दर्शनकी उत्कण्ठा—भाग-४ (खण्ड-२)	१२
▲ 254	व्यवहारमें परमार्थकी कला—त० चि० भाग-५, (खण्ड-१) [गुजराती भी]	१०
▲ 255	श्रद्धा-विश्वास और प्रेम—गुजराती, भाग-५, (खण्ड-२) [गुजराती भी]	१०
▲ 258	तत्त्वचिन्तामणि—भाग-६, (खण्ड-१)	९
▲ 257	परमानन्दकी खेती—भाग-६, (खण्ड-२)	९
▲ 260	समता अमृत और विषमता विष-भाग-७, (खण्ड-१)	१२
▲ 259	भक्ति-भक्त-भगवान्-भाग-७, (खण्ड-२)	१०
▲ 256	आत्मोद्धारके सरल उपाय	१२
▲261	भगवान्के रहनेके पाँच स्थान [मराठी, कन्नड, तेलुगु, तमिल, गुजराती, ओड़िआ, अंग्रेजी भी]	३
▲ 262	रामायणके कुछ आदर्श पात्र [तेलुगु, अंग्रेजी, कन्नड, गुजराती, ओड़िआ, तमिल, मराठी भी]	७
▲ 263	महाभारतके कुछ आदर्श पात्र [तेलुगु, अंग्रेजी, कन्नड, गुजराती, तमिल, मराठी भी]	६
▲ 264	मनुष्य-जीवनकी सफलता—भाग—१	१०
▲ 265	मनुष्य-जीवनकी सफलता—भाग—२	७
▲ 268	परमशान्तिका मार्ग—भाग-१(गुजराती भी)	९
▲ 269	परमशान्तिका मार्ग—भाग-२	९
▲ 543	परमार्थ-सूत्र-संग्रह [ओड़िआ भी]	८
▲1530	आनन्द कैसे मिले ?	६
▲ 769	साधन नवनीत [गुजराती, ओड़िआ, कन्नड भी]	८
▲ 599	हमारा आश्चर्य	८
▲ 681	रहस्यमय प्रवचन	८
▲1021	आध्यात्मिक प्रवचन [गुजराती भी]	८
▲1324	अमृत वचन [बँगला भी]	९
▲1409	भगवत्प्रेम-प्राप्तिके उपाय	८
▲1433	साधना पथ	६
▲1483	भगवत्पथ-दर्शन	८
▲1493	नेत्रोंमें भगवान्को बसा लें	६

कोड		मूल्य रु०
▲1435	आत्मकल्याणके विविध उपाय	६
▲1529	सम्पूर्ण दुःखोंका अभाव कैसे हो ?	६
▲1561	दुःखोंका नाश कैसे हो ?	८
▲1587	जीवन-सुधारकी बातें	८
▲1022	निष्काम श्रद्धा और प्रेम [ओड़िआ भी]	८
▲ 292	नवधा भक्ति [तेलुगु, मराठी, कन्नड भी]	६
▲ 274	महत्त्वपूर्ण चेतावनी	६
▲ 273	नल-दमयन्ती [मराठी, तमिल, कन्नड, गुजराती, ओड़िआ, तेलुगु भी]	३
▲ 277	उद्धार कैसे हो ?—५१ पत्रोंका संग्रह [गुजराती, ओड़िआ, मराठी भी]	५
▲ 278	सच्ची सलाह—८० पत्रोंका संग्रह	८
▲ 280	साधनोपयोगी पत्र	८
▲ 281	शिक्षाप्रद पत्र—	९
▲ 282	पारमार्थिक पत्र—	१०
▲ 284	अध्यात्मविषयक पत्र	७
▲ 283	शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ [अंग्रेजी, कन्नड, गुजराती, मराठी, तेलुगु, ओड़िआ भी]	६
▲1120	सिद्धान्त एवं रहस्यकी बातें	८
▲ 680	उपदेशप्रद कहानियाँ [अंग्रेजी, गुजराती, कन्नड, तेलुगु भी]	८
▲ 891	प्रेममें विलक्षण एकता [मराठी, गुजराती भी]	८
▲ 958	मेरा अनुभव [गुजराती, मराठी भी]	८
▲1283	सत्संगकी मार्मिक बातें [गुजराती भी]	७
▲1150	साधनकी आवश्यकता [मराठी भी]	८
▲ 320	वास्तविक त्याग	५
▲ 285	आदर्श भ्रातृप्रेम [ओड़िआ भी]	५
▲ 286	बालशिक्षा [तेलुगु, कन्नड, ओड़िआ, गुजराती भी]	४
▲ 287	बालकोंके कर्तव्य [ओड़िआ भी]	४
▲ 272	स्त्रियोंके लिये कर्तव्य-शिक्षा [कन्नड, गुजराती भी]	८
▲ 290	आदर्श नारी सुशीला [बँगला, तेलुगु, तमिल, ओड़िआ, गुजराती, मराठी भी]	३
▲ 291	आदर्श देवियाँ [ओड़िआ भी]	४
▲ 300	नारीधर्म	३
▲ 293	सच्चा सुख और.....[गुजराती भी]	२
▲ 294	संत-महिमा [गुजराती, ओड़िआ भी]	२
▲ 295	सत्संगकी कुछ सार बातें [बँगला, तमिल, तेलुगु, गुजराती, ओड़िआ, मराठी, अंग्रेजी भी]	२
▲ 301	भारतीय संस्कृति तथा शास्त्रोंमें नारीधर्म	२
▲ 310	सावित्री और सत्यवान् [गुजराती, तमिल, तेलुगु, ओड़िआ, कन्नड, मराठी भी]	२
▲ 299	श्रीप्रेमभक्ति-प्रकाश—ध्यानावस्थामें प्रभुसे वार्तालाप [तेलुगु व अंग्रेजी भी]	३
▲ 304	गीता पढ़नेके लाभ और त्यागसे भगवत्प्राप्ति—गजल-गीतासहित [गुजराती, असमिया, तमिल, मराठी भी]	२
▲ 623	धर्मके नामपर पाप (गुजराती भी)	२
▲ 309	भगवत्प्राप्तिके विविध उपाय—(कल्याणप्राप्तिकी कई युक्तियाँ) [ओड़िआ भी]	३
▲ 311	परलोक और पुनर्जन्म एवं वैराग्य [ओड़िआ भी]	२

कोड		मूल्य रु०
▲ 306	धर्म क्या है ? भगवान् क्या हैं ? [गुजराती, ओड़िआ व अंग्रेजी भी]	२
▲ 307	भगवान्की दया (भगवत्कृपा एवं कुछ अमृत-कण) [ओड़िआ, कन्नड, गुजराती भी]	२
▲ 316	ईश्वर-साक्षात्कारके लिये नाम-जप सर्वोपरि साधन है और सत्यकी शरणसे मुक्ति	२
▲ 314	व्यापार-सुधारकी आवश्यकता और हमारा कर्तव्य [गुजराती, मराठी भी]	२
▲ 315	चेतावनी और सामयिक चेतावनी [गुजराती भी]	२
▲ 318	ईश्वर दयालु और न्यायकारी है और अवतारका सिद्धान्त [गुजराती, तेलुगु भी]	२
▲ 271	भगवत्प्रेमकी प्राप्ति कैसे हो ?	२
▲ 270	भगवान्का हेतुरहित सौहार्द एवं महात्मा किसे कहते हैं ? (तेलुगु भी)	२
▲ 302	ध्यान और मानसिक पूजा [गुजराती भी]	२
▲ 326	प्रेमका सच्चा स्वरूप और शोकनाशके उपाय [ओड़िआ, गुजराती, अंग्रेजी भी]	२

परम श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार (भाईजी)-के अनमोल प्रकाशन

कोड		मूल्य रु०
■820	भगवच्चर्चा (ग्रन्थाकार) सभी खण्ड एक साथ	७०
■ 050	पदरत्नाकर	५०
■ 049	श्रीराधा-माधव-चिन्तन	५०
▲ 058	अमृत-कण	१८
▲ 332	ईश्वरकी सत्ता और महत्ता	२०
▲ 333	सुख-शान्तिका मार्ग	१५
▲ 343	मधुर	११
▲ 056	मानव-जीवनका लक्ष्य	१२
▲ 331	सुखी बननेके उपाय	१२
▲ 334	व्यवहार और परमार्थ	१२
▲ 514	दुःखमें भगवत्कृपा	१२
▲ 386	सत्संग-सुधा	१०
▲ 342	संतवाणी—ढाई हजार अनमोल बोल [तमिल भी, तीन भागमें]	१५
▲ 347	तुलसीदल	१२
▲ 339	सत्संगके बिखरे मोती	१२
▲ 349	भगवत्प्राप्ति एवं हिन्दू-संस्कृति	१५
▲ 350	साधकोंका सहारा—	१६
▲ 351	भगवच्चर्चा—(भाग-५)	१६
▲ 352	पूर्ण समर्पण	१७
▲ 353	लोक-परलोक-सुधार (भाग-१)	९
▲ 354	आनन्दका स्वरूप	१०
▲ 355	महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर—	१२
▲ 356	शान्ति कैसे मिले ?	१५
▲ 357	दुःख क्यों होते हैं ?	१४
▲ 348	नैवेद्य	१०
▲ 337	दाम्पत्य-जीवनका आदर्श [गुजराती, तेलुगु भी]	७
▲ 336	नारीशिक्षा [गुजराती, कन्नड भी]	८
▲ 340	श्रीरामचिन्तन	९
▲ 338	श्रीभगवन्नाम-चिन्तन	१०
▲ 345	भवरोगकी रामबाण दवा [ओड़िआ भी]	७
▲ 346	सुखी बनो	७
▲ 341	प्रेमदर्शन [तेलुगु, मराठी भी]	१०
▲ 358	कल्याण-कुंज (क० कुं० भाग-१)	६
▲ 359	भगवान्की पूजाके पुष्प—(क० कुं० भाग-२)	७

कोड		मूल्य रु०
▲ 360	भगवान् सदा तुम्हारे साथ हैं (क० कुं० भाग-३)	८
▲ 361	मानव-कल्याणके साधन (क० कुं० भाग-४)	१२
▲ 362	दिव्य सुखकी सरिता—(क० कुं० भाग-५) [गुजराती भी]	६
▲ 363	सफलताके शिखरकी सीढ़ियाँ—(क० कुं० भाग-६)	६
▲ 364	परमार्थकी मन्दाकिनी—(क० कुं० भाग-७)	५
▲ 366	मानव-धर्म—	५
▲ 526	महाभाव-कल्लोलिनी	५
▲ 367	दैनिक कल्याण-सूत्र—	४
▲ 369	गोपीप्रेम [अंग्रेजी भी]	३
▲ 368	प्रार्थना—प्रार्थना-पीयूष [ओड़िआ भी]	५
▲ 370	श्रीभगवन्नाम [ओड़िआ भी]	३
▲ 373	कल्याणकारी आचरण	१
▲ 374	साधन-पथ—सचित्र [गुजराती, तमिल भी]	४
▲ 375	वर्तमान शिक्षा	३
▲ 376	स्त्री-धर्म-प्रश्नोत्तरी	३
▲ 377	मनको वश करनेके कुछ उपाय [गुजराती भी]	१
▲ 378	आनन्दकी लहरें [बँगला, ओड़िआ, गुजराती, अंग्रेजी भी]	२
▲ 379	गोवध भारतका कलंक एवं गायका माहात्म्य	
▲ 380	ब्रह्मचर्य [ओड़िआ भी]	
▲ 381	दीन-दुःखियोंके प्रति कर्तव्य	१
▲ 382	सिनेमा मनोरंजन या विनाशका साधन	
▲ 344	उपनिषदोंके चौदह रत्न	६
▲ 371	राधा-माधव-रससुधा-(षोडशगीत) सटीक	३
▲ 384	विवाहमें दहेज—	१
▲ 809	दिव्य संदेश एवं मनुष्य सर्वप्रिय और जीवन कैसे बनें ?	१

परम श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजीके कल्याणकारी साहित्य

कोड		मूल्य रु०
■ 465	साधन-सुधा-सिन्धु [ओड़िआ, गुजराती भी] (४३ पुस्तकें एक ही जिल्दमें)	९५
▲1675	सागरके मोती	१०
▲1598	सत्संगके फूल	१०
▲1633	एक संतकी वसीयत [बँगला भी]	२
▲ 400	कल्याण-पथ	८
▲ 401	मानसमें नाम-वन्दना	८
▲ 605	जित देखूँ तित-तू [गुजराती, मराठी भी]	८
▲ 406	भगवत्प्राप्ति सहज है [अंग्रेजी भी]	७
▲ 535	सुन्दर समाजका निर्माण	९
▲1485	ज्ञानके दीप जले	१४
▲1447	मानवमात्रके कल्याणके लिये (मराठी, ओड़िआ, बँगला, गुजराती, अंग्रेजी, नेपाली भी)	१२
▲1175	प्रश्नोत्तर मणिमाला [बँगला, ओड़िआ, गुजराती भी]	९
▲1247	मेरे तो गिरधर गोपाल	६
▲ 403	जीवनका कर्तव्य [गुजराती भी]	८
▲ 436	कल्याणकारी प्रवचन [गुजराती, अंग्रेजी, बँगला, ओड़िआ भी]	६
▲ 405	नित्ययोगकी प्राप्ति [ओड़िआ भी]	७
▲1093	आदर्श कहानियाँ [ओड़िआ, बँगला भी]	७
▲ 407	भगवत्प्राप्तिकी सुगमता [कन्नड, मराठी भी]	६

कोड		मूल्य रु०
▲ 408	भगवान्से अपनापन [गुजराती, ओड़िआ भी]	५
▲ 861	सत्संग-मुक्ताहार [गुजराती, ओड़िआ भी]	४
▲ 860	मुक्तिमें सबका अधिकार [गुजराती भी]	१
▲ 409	वास्तविक सुख [तमिल, ओड़िआ भी]	५
▲1308	प्रेरक कहानियाँ [बँगला, ओड़िआ भी]	७
▲1408	सब साधनोंका सार [बँगला भी]	४
▲ 411	साधन और साध्य [मराठी, बँगला, गुजराती भी]	५
▲ 412	तात्त्विक प्रवचन [मराठी, ओड़िआ, बँगला, गुजराती भी]	५
▲ 414	तत्त्वज्ञान कैसे हो ? एवं मुक्तिमें सबका समान अधिकार [बँगला, गुजराती भी]	७
▲ 410	जीवनोपयोगी प्रवचन [अंग्रेजी भी]	६
▲ 822	अमृत-बिन्दु [बँगला, तमिल, ओड़िआ, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी, कन्नड भी]	७
▲ 821	किसान और गाय [तेलुगु भी]	२
▲ 417	भगवन्नाम [मराठी, अंग्रेजी भी]	४
▲ 416	जीवनका सत्य [गुजराती, अंग्रेजी भी]	५
▲ 418	साधकोंके प्रति [बँगला, मराठी भी]	४
▲ 419	सत्संगकी विलक्षणता [गुजराती भी]	४
▲ 545	जीवनोपयोगी कल्याण-मार्ग [गुजराती भी]	४
▲ 420	मातृशक्तिका घोर अपमान [तमिल, बँगला, मराठी, गुजराती, ओड़िआ भी]	३
▲ 421	जिन खोजा तिन पाइयाँ [बँगला भी]	५
▲ 422	कर्मरहस्य [बँगला, तमिल, कन्नड, ओड़िआ भी]	५
▲ 424	वासुदेवः सर्वम् [मराठी, अंग्रेजी भी]	४
▲ 425	अच्छे बनो [अंग्रेजी भी]	५
▲ 426	सत्संगका प्रसाद [गुजराती भी]	५
▲1019	सत्यकी खोज [गुजराती, अंग्रेजी भी]	६
▲1479	साधनके दो प्रधान सूत्र [ओड़िआ, बँगला भी]	४
▲1035	सत्यकी स्वीकृतिसे कल्याण	१
▲1360	तू-ही-तू	२
▲1434	एक नयी बात	२
▲1440	परम पितासे प्रार्थना	१
▲1441	संसारका असर कैसे छुटे ?	२
▲1176	शिखा (चोटी) धारणकी आवश्यकता और..[बँगला भी]	२
▲ 431	स्वाधीन कैसे बनें ?[अंग्रेजी भी]	२
▲ 702	यह विकास है या....	
▲ 589	भगवान् और उनकी भक्ति [गुजराती, ओड़िआ भी]	६
▲ 617	देशकी वर्तमान दशा तथा उसका परिणाम [तमिल, बँगला, तेलुगु, ओड़िआ, कन्नड, गुजराती, मराठी भी]	४
▲ 770	अमरताकी ओर [गुजराती भी]	६
▲ 434	शरणागति [तमिल, ओड़िआ, तेलुगु, कन्नड भी]	४
▲ 432	एकै साधे सब सधै [गुजराती, तमिल, तेलुगु भी]	५

कोड मूल्य रु०

▲ 427 गृहस्थमें कैसे रहें ? ६
[बँगला, मराठी, कन्नड, ओड़िआ, अंग्रेजी, तमिल, तेलुगु, गुजराती, असमिया, पंजाबी भी]
▲ 433 सहज साधना ४
[गुजराती, बँगला, ओड़िआ, मराठी, अंग्रेजी भी]
▲ 435 आवश्यक शिक्षा (सन्तानका कर्तव्य एवं आहारशुद्धि)
[गुजराती, ओड़िआ, अंग्रेजी, मराठी भी] ५
■1012 पञ्चामृत—(१०० पन्नोंका पैकेटमें) [गुजराती भी] १
■1037 हे मेरे नाथ मैं आपको भूलूँ नहीं (१०० पन्नोंका पैकेटमें) १
■1611 मैं भगवान्‌का अंश हूँ (१०० पन्नोंका पैकेटमें) १
■1612 सच्ची और पक्की बात (,,) १
▲1072 क्या गुरु बिना मुक्ति नहीं ? ४
[गुजराती, ओड़िआ भी]
▲ 515 सर्वोच्चपदकी प्राप्तिका साधन
[गुजराती, अंग्रेजी, तमिल, तेलुगु भी]
▲ 438 दुर्गतिसे बचो [गुजराती, बँगला (गुरुतत्त्वसहित), मराठी भी] २
▲ 439 महापापसे बचो [बँगला, तेलुगु, कन्नड, गुजराती, तमिल भी] २
▲ 440 सच्चा गुरु कौन ? [ओड़िआ भी] २
▲ 444 नित्य-स्तुति और प्रार्थना २
[कन्नड, तेलुगु भी]
▲ 729 सार-संग्रह एवं सत्संगके अमृत-कण [गुजराती भी] २
▲ 447 मूर्तिपूजा-नाम-जपकी महिमा २
[ओड़िआ, बँगला, तमिल, तेलुगु, मराठी, गुजराती भी]
▲ 445 हम ईश्वरको क्यों मानें ?
[बँगला भी] २
▲ 745 भगवत्तत्त्व [गुजराती भी] २
▲ 632 सब जग ईश्वररूप है ५
[ओड़िआ, गुजराती भी]

— नित्य पाठ-साधन-भजन एवं कर्मकाण्ड-हेतु —

■1593 अन्त्यकर्म-श्राद्धप्रकाश ७५
■ 592 नित्यकर्म-पूजाप्रकाश ४०
[गुजराती भी]
■1416 गरुडपुराण-सारोद्धार (सानुवाद) २०
■1627 रुद्राष्टाध्यायी-सानुवाद १८
■1417 शिवस्तोत्ररत्नाकर २०
■1623 ललितासहस्रनामस्तोत्रम् ६
[तेलुगु भी]
■ 610 व्रतपरिचय २८
■1162 एकादशी-व्रतका माहात्म्य—मोटा टाइप [गुजराती भी] १२
■1136 वैशाख-कार्तिक-माघमास-माहात्म्य २२
■1588 माघमासका माहात्म्य ५
■1367 श्रीसत्यनारायण-व्रतकथा ८
■ 052 स्तोत्ररत्नावली—सानुवाद २२
[तेलुगु, बँगला भी]
■1629 ,, ,, सजिल्द ३२
■1567 दुर्गासप्तशती—मूल, मोटा (बेड़िया) २५
■ 117 ,, मूल, मोटा टाइप [तेलुगु, कन्नड भी] १५
■ 876 ,, मूल गुटका ९

कोड मूल्य रु०

■1727 दुर्गासप्तशती—मूल, लघु आकार ८
■1346 ,, सानुवाद मोटा टाइप २२
■ 118 ,, सानुवाद [गुजराती, बँगला, ओड़िआ भी] १८
■ 489 ,, सानुवाद, सजिल्द २७
[गुजराती भी]
■1281 ,, ,, (विशिष्ट संस्करण) ३५
■ 866 ,, केवल हिन्दी १२
■1161 ,, केवल हिन्दी मोटा टाइप, सजिल्द ३५
■ 819 श्रीविष्णुसहस्रनाम—शांकरभाष्य १८
■ 206 श्रीविष्णुसहस्रनाम—सटीक ४
■ 226 श्रीविष्णुसहस्रनाम—मूल, [मलयालम, तेलुगु, कन्नड, तमिल, गुजराती भी] २
■ 509 सूक्ति-सुधाकर १५
■ 207 रामस्तवराज—(सटीक) ३
■ 211 आदित्यहृदयस्तोत्रम्—हिन्दी-अंग्रेजी-अनुवादसहित [ओड़िआ भी] २
■ 224 श्रीगोविन्ददामोदरस्तोत्र ४
[तेलुगु, ओड़िआ भी]
■ 231 रामरक्षास्तोत्रम्— २
[तेलुगु, ओड़िआ, अंग्रेजी भी]
■1594 सहस्रनामस्तोत्रसंग्रह ६५
■ 715 महामन्त्रराजस्तोत्रम् नामावलिसहितम् ४
■1599 श्रीशिवसहस्रनामस्तोत्रम् ५
■1600 श्रीगणेशसहस्रनामस्तोत्रम् ५
■1601 श्रीहनुमत्सहस्रनामस्तोत्रम् ५
■1663 श्रीगायत्रीसहस्रनामस्तोत्रम् ५
■1664 श्रीगोपालसहस्रनामस्तोत्रम् ५
■1665 श्रीसूर्यसहस्रनामस्तोत्रम् ५
■1706 श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रम् ५
■1704 श्रीसीतासहस्रनामस्तोत्रम् ५
■1705 श्रीरामसहस्रनामस्तोत्रम् ५
■1708 श्रीराधिकासहस्रनामस्तोत्रम् ५
■ 810 श्रीगोपालसहस्रनामस्तोत्रम् ३
■ 495 दत्तात्रेय-वज्रकवच—सानुवाद [तेलुगु, मराठी भी] ३
■ 563 शिवमहिम्नस्तोत्र [तेलुगु भी] ३
■ 054 भजन-संग्रह २५
■ 229 श्रीनारायणकवच २
[ओड़िआ, तेलुगु भी]
■ 230 अमोघ शिवकवच २
■ 140 श्रीरामकृष्णलीला-भजनावली १८
■ 142 चेतावनी-पद-संग्रह—(दोनों भाग) १८
■ 144 भजनामृत—६७ भजनोंका संग्रह ८
■1355 सचित्र-स्तुति-संग्रह ५
■1214 मानस-स्तुति-संग्रह १०
■1344 सचित्र-आरती-संग्रह १०
■1591 आरती-संग्रह—मोटा टाइप १०
■ 153 आरती-संग्रह ५
■ 208 सीतारामभजन ३
■ 221 हरेरामभजन—दो माला (गुटका) ३
▲ 385 नारद-भक्ति-सूत्र एवं शाण्डिल्य भक्ति-सूत्र, सानुवाद [बँगला, तमिल भी] २
■ 222 हरेरामभजन—१४ माला १२
■ 576 विनय-पत्रिकाके पैंतीस पद
■ 225 गजेन्द्रमोक्ष-सानुवाद, हिन्दी पद्य, भाषानुवाद [तेलुगु, कनड ओड़िआ भी] २
■1505 भीष्मस्तवराज
■ 699 गङ्गालहरी २
■1094 हनुमानचालीसा—हिन्दी भावार्थसहित ४

कोड मूल्य रु०

■1181 हनुमानचालीसा मूल (रंगीन) २
■ 227 ,,—(पॉकिट साइज) १.५०
[गुजराती, असमिया, तमिल, बँगला, तेलुगु, कन्नड, ओड़िआ भी]
■ 695 हनुमानचालीसा—(लघु आकार)
[गुजराती, अंग्रेजी, ओड़िआ भी] १
■1524 हनुमानचालीसा—विशिष्ट संस्करण (लघु आकार) १
■ 228 शिवचालीसा—(असमिया भी) २
■1185 शिवचालीसा—लघु आकार १
■1525 हनुमानचालीसा—अति लघु आकार [गुजराती भी] १
■ 232 श्रीरामगीता ३
■ 383 भगवान् कृष्णकी कृपा तथा दिव्य प्रेमकी.... २
■ 851 दुर्गाचालीसा, विन्ध्येश्वरीचालीसा २
■1033 ,, —लघु आकार १
■ 203 अपरोक्षानुभूति ३
■ 139 नित्यकर्म-प्रयोग १०
■ 524 ब्रह्मचर्य और संध्या-गायत्री ३
■1471 संध्या, संध्या-गायत्रीका महत्त्व और ब्रह्मचर्य ४
■ 210 सन्ध्योपासनविधि एवं तर्पण-बलिवैश्वदेवविधि—मन्त्रानुवादसहित [तेलुगु भी] ४
■ 236 साधकदैनन्दिनी ४
■ 614 सन्ध्या २

— बालोपयोगी पाठ्य पुस्तकें —

■ 573 बालक-अङ्क (कल्याण-वर्ष २७) ११०
■1316 बालपोथी (शिशु), रंगीन १०
■ 461 ,, ,, भाग-१ ३
■ 212 ,, ,, भाग-२ ३
■ 684 ,, ,, भाग-३ ३
■ 764 ,, ,, भाग-४ ८
■ 765 ,, ,, भाग-५ ८
■ 125 ,, ,, रंगीन, (भाग-१) ४
■1692 बालककी दिनचर्या रंगीन, ग्रन्थाकार १५
■ 216 बालककी दिनचर्या ४
■ 214 बालकके गुण ५
■ 217 बालकोंके सीख ४
■ 219 बालकके आचरण ४
■ 218 बाल-अमृत-वचन ३
■ 696 बाल-प्रश्नोत्तरी [गुजराती भी] ३
■ 215 आओ बच्चो तुम्हें बतायें ३
■ 213 बालकोंकी बोल-चाल ४
■ 145 बालकोंकी बातें ७
■ 146 बड़ोंके जीवनसे शिक्षा
[ओड़िआ भी] ८
■ 150 पिताकी सीख [गुजराती भी] १०
■ 396 आदर्श ऋषि-मुनि ५
■ 397 आदर्श देशभक्त ६
■ 398 आदर्श सम्राट् [गुजराती भी] ५
■ 402 आदर्श सुधारक ५
■ 399 आदर्श संत ६
■ 516 आदर्श चरितावली ५
■ 116 लघुसिद्धान्तकौमुदी, सजिल्द २७
■1437 वीर बालक (रंगीन) ८
■1451 गुरु और माता-पिताके भक्त बालक (रंगीन) ८
■1450 सच्चे-ईमानदार बालक (रंगीन) ६
■1449 दयालु और परोपकारी बालक-बालिकाएँ (रंगीन) ६
■1448 वीर बालिकाएँ (रंगीन) ८
■ 727 स्वास्थ्य, सम्मान और सुख ३

कोड मूल्य रु०

— सर्वोपयोगी प्रकाशन —

■ 698 मार्क्सवाद और रामराज्य—स्वामी करपात्रीजी ७५
■1673 सत्य एवं प्रेरक घटनाएँ १५
■1595 साधकमें साधुता २०
■ 202 मनोबोध ६
■1657 भलेका फल भला ३
■ 747 सप्त महाव्रत ३
■1300 महाकुम्भ पर्व ५
■ 542 ईश्वर ३
■ 196 मननमाला
■ 57 मानसिक दक्षता २०
■ 59 जीवनमें नया प्रकाश १७
■ 60 आशाकी नयी किरणें १८
■ 119 अमृतके घूँट १५
■ 132 स्वर्णपथ १४
■ 55 महकते जीवनफूल २४
■1381 क्या करें ? क्या न करें ?
[गुजराती भी] २०
■1461 हम कैसे रहें ? ८
■ 64 प्रेमयोग २२
■ 774 कल्याणकारी दोहा-संग्रह, गीताप्रेस-परिचयसहित ५
■ 387 प्रेम-सत्संग-सुधामाला १५
■ 668 प्रश्नोत्तरी २
■ 501 उद्धव-सन्देश १६
■ 191 भगवान् कृष्ण [तमिल, तेलुगु, मराठी, गुजराती भी] ५
■ 193 भगवान् राम [गुजराती भी] ५
■ 195 भगवान्पर विश्वास ५
■ 120 आनन्दमय जीवन १४
■ 130 तत्त्वविचार ९
■ 133 विवेक-चूडामणि [तेलुगु, बँगला भी] १२
■ 862 मुझे बचाओ, मेरा क्या कसूर ? १७
■ 131 सुखी जीवन १०
■ 122 एक लोटा पानी १२
▲ 701 गर्भपात उचित या...... ३
[ओड़िआ, बँगला, तमिल, तेलुगु, मराठी, अंग्रेजी, गुजराती, कन्नड़ भी]
■ 888 परलोक और पुनर्जन्मकी सत्य घटनाएँ [बँगला भी] १२
■1217 भवनभास्कर १०
■ 134 सती द्रौपदी १०
■1624 पौराणिक कथाएँ १०
■1669 पौराणिक कहानियाँ १०
■ 137 उपयोगी कहानियाँ [तेलुगु, तमिल, कन्नड़, गुजराती, बँगला भी] ९
■ 159 आदर्श उपकार—(पढ़ो, समझो और करो) १०
■ 160 कलेजेके अक्षर ,, १०
■ 161 हृदयकी आदर्श विशालता ,, १०
■ 162 उपकारका बदला ,, १०
■ 163 आदर्श मानव-हृदय ,, १०
■ 164 भगवान्‌के सामने सच्चा सो सच्चा (पढ़ो, समझो और करो) १०
■ 165 मानवताका पुजारी ,, १०
■ 166 परोपकार और सच्चाईका फल ,, १०
■ 510 असीम नीचता और असीम साधुता १०
■ 157 सती सुकला ४
■ 147 चोखी कहानियाँ [तेलुगु, तमिल, गुजराती, मराठी भी] ५
■ 129 एक महात्माका प्रसाद २०
[गुजराती भी]

कोड — मूल्य रु०

- ■ 827 तेईस चुलबुली कहानियाँ १०
- ■1688 तीस रोचक कथाएँ १०
- ■ 151 सत्संगमाला एवं ज्ञानमणिमाला १०
- ■1363 शरणागति रहस्य २०

चित्रकथा

- ■1114 श्रीकृष्णलीला (राजस्थानी-शैली, १८वीं शताब्दी) १००
- ■1647 देवीभागवतकी प्रमुख कथाएँ १५
- ■1646 महाभारतके प्रमुख पात्र १५
- ■ 190 बाल-चित्रमय श्रीकृष्णलीला १२
- ■ 868 भगवान् सूर्य (ग्रंथाकार) १५
- ■1156 एकादश रुद्र (शिव) ५०
- ■1032 बालचित्र-रामायण-पुस्तकाकार ४
- ■ 869 कन्हैया [बँगला, तमिल, गुजराती, ओड़िआ, तेलुगु भी] १०
- ■ 870 गोपाल [बँगला, तेलुगु, तमिल भी] १०
- ■ 871 मोहन [बँगला, तेलुगु, तमिल, गुजराती, ओड़िआ, अंग्रेजी भी] १०
- ■ 872 श्रीकृष्ण [बँगला, तमिल, तेलुगु भी] १०
- ■1018 नवग्रह—चित्र एवं परिचय [बँगला भी] १०
- ■1016 रामलला [तेलुगु, अंग्रेजी भी] १५
- ■1116 राजा राम [तेलुगु भी] १७
- ■1017 श्रीराम १७
- ■1394 भगवान् श्रीराम (पुस्तकाकार) १०
- ■1418 श्रीकृष्णलीला-दर्शन ,, १०
- ■1278 दशमहाविद्या [बँगला भी] १०
- ■1343 हर-हर महादेव १७
- ■ 829 अष्टविनायक [ओड़िआ, मराठी, गुजराती भी] १०
- ■ 204 ॐ नमः शिवाय [बँगला, ओड़िआ, कन्नड भी] १७
- ■ 787 जय हनुमान् [तेलुगु, ओड़िआ भी] १५
- ■ 779 दशावतार [बँगला भी] १०
- ■1215 प्रमुख देवता १०
- ■1216 प्रमुख देवियाँ १०
- ■1442 प्रमुख ऋषि-मुनि १७
- ■1443 रामायणके प्रमुख पात्र [तेलुगु भी] १५
- ■1488 श्रीमद्भागवतके प्रमुख पात्र [तेलुगु भी] १५
- ■1537 श्रीमद्भागवतकी प्रमुख कथाएँ १५
- ■1538 महाभारतकी प्रमुख कथाएँ १५
- ■1420 पौराणिक देवियाँ १०
- ■1307 नवदुर्गा—पॉकिट साइज ४
- ■ 205 नवदुर्गा [तेलुगु, गुजराती, असमिया, कन्नड, अंग्रेजी, ओड़िआ, बँगला भी] १०
- ■ 537 बाल-चित्रमय बुद्धलीला ७
- ■ 194 बाल-चित्रमय चैतन्यलीला [ओड़िआ, बँगला भी] ८
- ■ 693 श्रीकृष्णरेखा-चित्रावली
- ■ 656 गीता-माहात्म्यकी कहानियाँ [तमिल, तेलुगु भी] ८
- ■ 651 गोसेवाके चमत्कार [तमिल भी] १०

रंगीन चित्र-प्रकाशन

- ▲1695 चित्र—भगवती सरस्वती ८
- ▲ 237 जय श्रीराम—भगवान् रामकी सम्पूर्ण लीलाओंका चित्रण १५
- ▲1582 चित्र भगवान् श्रीकृष्ण ८
- ▲ 546 जय श्रीकृष्ण—भगवान् श्रीकृष्णकी सम्पूर्ण लीलाओंका चित्रण १५
- ▲1001 जगज्जननी श्रीराधा ८
- ▲1020 श्रीराधा-कृष्ण—युगल छवि ८
- ▲ 491 हनुमान्जी—(भक्तराज हनुमान्) ८
- ▲ 492 भगवान् विष्णु ८
- ▲1568 भगवान् श्रीराम-बालरूपमें ८
- ▲ 560 लड्डू गोपाल (भगवान् श्रीकृष्णका बालस्वरूप) ८
- ▲1674 ,, (प्लास्टिक कोटेड) १५
- ▲1351 सुमधुर गोपाल ८
- ▲ 776 सीताराम—युगल छवि ८
- ▲ 548 मुरलीमनोहर—(भगवान् मुरलीमनोहर) ८
- ▲ 782 श्रीरामदरबारकी झाँकी ८
- ▲1290 नटराज शिव ८
- ▲ 630 सर्वदेवमयी गौ ८
- ▲ 531 श्रीबाँकेबिहारी ८
- ▲ 812 नवदुर्गा (माँ दुर्गाके नौ स्वरूपोंका चित्रण) ८
- ▲ 437 कल्याण-चित्रावली—I ८
- ▲1320 कल्याण-चित्रावली—II ८

'कल्याण' के पुनर्मुद्रित विशेषाङ्क

- ■1184 श्रीकृष्णाङ्क १२०
- ■ 749 ईश्वराङ्क ९०
- ■ 635 शिवाङ्क
- ■ 41 शक्ति-अङ्क १२०
- ■ 616 योगाङ्क १००
- ■ 627 संत-अङ्क १५०
- ■ 604 साधनाङ्क १२०
- ■1104 भागवताङ्क
- ■1002 सं० वाल्मीकीय-रामायणाङ्क
- ■ 44 संक्षिप्त पद्मपुराण १५०
- ■ 539 संक्षिप्त मार्कण्डेयपुराण ६०
- ■1111 संक्षिप्त ब्रह्मपुराण ७०
- ■ 43 नारी-अङ्क १४०
- ■ 659 उपनिषद्-अङ्क १२५
- ■ 518 हिन्दू-संस्कृति-अङ्क १५०
- ■ 279 सं० स्कन्दपुराणाङ्क २००
- ■ 40 भक्त-चरिताङ्क १४०
- ■ 573 बालक-अङ्क ११०
- ■1183 सं० नारदपुराण १२०
- ■ 667 संतवाणी-अङ्क ११०
- ■ 587 सत्कथा-अङ्क १००
- ■ 636 तीर्थाङ्क १००
- ■ 574 संक्षिप्त योगवासिष्ठ १००
- ■1133 सं० देवीभागवत-मोटा टाइप १५०
- ■ 789 सं० शिवपुराण-(बड़ा टाइप) १३०
- ■ 631 सं० ब्रह्मवैवर्तपुराण १२०
- ■1135 भगवन्नाम-महिमा और प्रार्थना-अङ्क ९०
- ■ 572 परलोक-पुनर्जन्माङ्क १२०
- ■ 517 गर्ग-संहिता ८०
- ■1113 नरसिंहपुराणम्—सानुवाद ६०
- ■1432 वामनपुराण ८५
- ■1362 अग्निपुराण (मूल संस्कृतका हिन्दी-अनुवाद) १३०
- ■ 557 मत्स्यमहापुराण (सानुवाद) १६५
- ■ 657 श्रीगणेश-अङ्क ९०
- ■ 42 हनुमान-अङ्क ९०
- ■1361 सं० श्रीवाराहपुराण ७५
- ■ 791 सूर्याङ्क ७०
- ■ 584 सं० भविष्यपुराण ११०
- ■ 586 शिवोपासनाङ्क
- ■ 628 रामभक्ति-अङ्क
- ■ 653 गोसेवा-अङ्क ७५
- ■1131 कूर्मपुराण ८०
- ■ 448 भगवल्लीला-अङ्क ६५
- ■1044 वेद-कथाङ्क ८०
- ■1189 सं० गरुडपुराण १००
- ■1472 नीतिसार-अङ्क ८०
- ■1467 भगवत्प्रेम-अङ्क-सजि० (११ मासिक अङ्क उपहारस्वरूप) १००
- ■1548 व्रतपर्वोत्सव-अङ्क-सजिल्द १००
- ■1585 व्रतपर्वोत्सव-अङ्क-अजिल्द ८०
- ■1592 आरोग्य-अङ्क (परिवर्धित सं०) १३०
- ■1610 देवीपुराण (महाभागवत) शक्तिपीठाङ्क ८०
- ■1667 संस्कार-अङ्क ८५
- ■1734 अवतार-कथाङ्क ९०
- ■2100 कल्याण-मासिक-अङ्क (रियायती गतवर्षतकके) ४

Annual Issues of Kalyan-Kalpataru

- ■1395 Woman No. 40
- ■2017 Rāma No. 40
- ■1397 Manusmrti No. 40
- ■1398 Hindu Samskrti No. 40
- ■ 602 Divine Love Number 60
- ■1396 Gargasamhitā Number (Part-I) 80

अन्य भारतीय भाषाओंके प्रकाशन

बँगला

- ■1577 श्रीमद्भागवतपुराण सटीक, भाग-I १५०
- ■1662 श्रीचैतन्यचरितामृत १००
- ■1603 ईशादि नौ उपनिषद् ५०
- ■ 954 श्रीरामचरितमानस-ग्रन्थाकार १३०
- ■1574 संक्षिप्त महाभारत-भाग-I १२०
- ■1660 ,, ,, भाग-II १२०
- ■ 763 गीता-साधक-संजीवनी— परिशिष्टसहित १३०
- ■1118 गीता-तत्त्व-विवेचनी ८०
- ■ 556 गीता-दर्पण ४०
- ■1736 गीता-प्रबोधनी ३०
- ■1489 गीता-दैनन्दिनी (२००८) ५०
- ■ 013 गीता-पदच्छेद २५
- ■1444 गीता-ताबीजी—सजिल्द ४
- ■1455 गीता-लघु आकार २
- ■1322 दुर्गासप्तशती—सटीक १८
- ■1604 पातञ्जलयोगदर्शन ११
- ■1460 विवेक चूडामणि १०
- ■1075 ॐ नमः शिवाय (चित्रकथा) १७
- ■1043 नवदुर्गा (,,) १०
- ■1439 दश महाविद्या (,,) १०
- ■1292 दशावतार (,,) १०
- ■1096 कन्हैया (,,) १०
- ■1097 गोपाल (चित्रकथा) १०
- ■1098 मोहन (,,) १०
- ■1123 श्रीकृष्ण (,,) १०
- ■1495 बालचित्रमय चैतन्यलीला ७
- ■1393 गीता भाषा-टीका (पॉकिट साइज) सजि. १०
- ■1454 स्तोत्ररत्नावली २०
- ■1659 श्रीश्रीकृष्णेर अष्टोत्तरशतनाम १
- ■ 496 गीता-भाषा-टीका (पॉकिट साइज) ६
- ▲1581 गीतार-सारात्सार ६
- ■1496 परलोक और पुनर्जन्मकी सत्य घटनाएँ १०
- ▲ 275 कल्याण-प्राप्तिके उपाय १५
- ▲1305 प्रश्नोत्तर मणिमाला ८
- ▲ 395 गीतामाधुर्य ६
- ▲1102 अमृत-बिन्दु ६
- ■1356 सुन्दरकाण्ड—सटीक ५
- ▲ 816 कल्याणकारी प्रवचन ५
- ▲ 276 परमार्थ-पत्रावली (भाग-१) ५
- ▲1306 कर्तव्य साधनासे भगवत्प्राप्ति ५
- ▲1119 ईश्वर और धर्म क्यों? ९
- ▲1456 भगवत्प्राप्तिका पथ व पाथेय ८
- ▲1580 अध्यात्मसाधनाय कर्महीनतानय ६
- ▲1452 आदर्श कहानियाँ ७
- ▲1453 प्रेरक कहानियाँ ५
- ■1513 मूल्यवान् कहानियाँ ८
- ▲1469 सब साधनोंका सार ४
- ▲1478 मानवमात्रके कल्याणके लिये १०
- ▲1359 जिन खोजा तिन पाइयाँ ६
- ▲1115 तत्त्वज्ञान कैसे हो? ५
- ▲1303 साधकोंके प्रति ४
- ▲1358 कर्म रहस्य ४
- ▲1122 क्या गुरु बिना मुक्ति नहीं? ३
- ▲ 625 देशकी वर्तमान दशा.... ४
- ▲ 428 गृहस्थमें कैसे रहें ? ५
- ▲ 903 सहज साधना ३
- ▲1368 साधना ३
- ▲1415 अमृतवाणी ८
- ▲ 312 आदर्श नारी सुशीला ३
- ▲1541 साधनके दो प्रधान सूत्र ४
- ▲ 955 तात्त्विक प्रवचन ४
- ■1103 मूल रामायण एवं रामरक्षास्तोत्र ३
- ■1652 नवग्रह (चित्रकथा) १०
- ▲ 449 दुर्गतिसे बचो सच्चा गुरु कौन? ३
- ▲ 956 साधन और साध्य ४
- ▲1579 साधनार मनोभूमि ६
- ▲ 330 नारद एवं शांडिल्य-भक्ति-सूत्र २
- ▲ 762 गर्भपात उचित या अनुचित… ३
- ▲ 848 आनन्दकी लहरें २
- ■ 626 हनुमानचालीसा २
- ▲1319 कल्याणके तीन सुगम मार्ग २
- ▲1651 हे महाजीवन! हे महामरण! २
- ▲1293 शिखा धारणकी……… २
- ▲ 450 हम ईश्वरको क्यों मानें? २
- ▲ 849 मातृशक्तिका घोर अपमान १
- ▲ 451 महापापसे बचो २
- ▲ 469 मूर्तिपूजा १
- ▲ 296 सत्संगकी सार बातें १
- ▲ 443 संतानका कर्तव्य १
- ▲1140 भगवान्के दर्शन प्रत्यक्ष...... २

मराठी

- ■1314 श्रीरामचरितमानस सटीक, मोटा टाइप १५०
- ■1687 सुन्दरकाण्ड, सटीक ५
- ■1508 अध्यात्मरामायण ७०
- ■ 784 ज्ञानेश्वरी गूढार्थ-दीपिका १३०
- ■ 853 एकनाथी भागवत—मूल १२०
- ■1678 श्रीमद्भागवतमहापुराण, (खण्ड-१) १३०
- ■ 7 गीता-साधक-संजीवनी टीका १२०
- ■1304 गीता-तत्त्व-विवेचनी ७०
- ■1071 श्रीनामदेवांची गाथा ७०

कोड		मूल्य रु०
■1474	श्रीसकल संतवाणी (भाग-१)	७०
■1475	" " (भाग-२)	१८०
■ 859	ज्ञानेश्वरी—मूल मझला	४०
■ 15	गीता-माहात्म्यसहित	३५
■ 504	गीता-दर्पण	३५
■ 748	ज्ञानेश्वरी—मूल गुटका	३०
■ 14	गीता—पदच्छेद	३०
■1388	गीता—श्लोकार्थसहित (मोटा टाइप)	१०
■1257	गीता—श्लोकार्थसहित	७
■1168	भक्त नरसिंह मेहता	१०
■1671	महाराष्ट्रातील निवडक संतांची चरित्रे	८
▲ 429	गृहस्थमें कैसे रहें?	९
▲1703	क्या गुरु बिना मुक्ति नहीं?	४
▲1387	प्रेममें विलक्षण एकता	८
■ 857	अष्ट विनायक (चित्रकथा)	१०
▲ 391	गीतामाधुर्य	७
▲1099	अमूल्य समयका सदुपयोग	७
▲1335	रामायणके कुछ आदर्श पात्र	७
▲1155	उद्धार कैसे हो?	४
▲1074	आध्यात्मिक पत्रावली	६
▲1275	नवधा भक्ति	५
▲1386	महाभारतके कुछ आदर्श पात्र	५
▲1340	अमृत-बिन्दु	६
▲1382	शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ	६
▲1210	जित देखूँ तित-तू	७
▲1330	मेरा अनुभव	८
■1277	भक्त बालक	५
■1073	भक्त चन्द्रिका	५
■1383	भक्तराज हनुमान्	५
▲ 886	साधकोंके प्रति	५
▲ 885	तात्त्विक प्रवचन	५
■1607	रुक्मिणी स्वयंवर	१२
■1640	सार्थ मनाचे श्लोक	४
■1333	भगवान् श्रीकृष्ण	५
■1682	सार्थ सं० देवीपाठ	५
■1332	दत्तात्रेय-वज्रकवच	३
■1670	मूल रामायाण, पॉकिट साइज	३
■1679	मनाचे श्लोक, पॉकिट साइज	३
■1680	सार्थश्रीगणपत्यथर्वशीर्ष	२
■1683	सार्थ ज्ञानदेवी गीता	१०
■1645	हरीपाठ (सार्थ सविवरण)	८
■ 855	हरीपाठ	३
■1169	चोखी कहानियाँ	४
▲1385	नल-दमयंती	३
▲1384	सती सावित्री-कथा	२
▲ 880	साधन और साध्य	४
▲1006	वासुदेवः सर्वम्	४
▲1276	आदर्श नारी सुशीला	३
▲1334	भगवान्‌के रहनेके पाँच स्थान	३
▲ 899	देशकी वर्तमान दशा····	३
▲1339	कल्याणके तीन सुगम मार्ग और सत्यकी शरणसे मुक्ति	४
▲1428	आवश्यक शिक्षा	४
▲1341	सहज साधना	४
▲ 802	गर्भपात उचित या अनुचित फैसला आपका	२
▲ 882	मातृशक्तिका घोर अपमान	३
▲ 883	मूर्तिपूजा	२
▲ 884	सन्तानका कर्तव्य	२
▲1279	सत्संगकी कुछ सार बातें	२
▲1613	भगवान्‌के स्वभावका रहस्य	९
▲1642	प्रेमदर्शन	९
▲1641	साधनकी आवश्यकता	८
▲ 901	नाम-जपकी महिमा	२
▲ 900	दुर्गतिसे बचो	२
▲1171	गीता पढ़नेके लाभ	२
▲ 902	आहार-शुद्धि	२
▲1170	हमारा कर्तव्य	२
▲ 881	भगवत्प्राप्तिकी सुगमता	६
▲ 898	भगवन्नाम	४
▲1578	मानवमात्रके कल्याणके लिये	१४

गुजराती

कोड		मूल्य रु०
■1533	श्रीरामचरितमानस—बड़ी, सटीक (विशिष्ट सं०)	२१०
■ 799	" ग्रन्थाकार	१५०
■1430	" मूल, मोटा	६०
■1552	भागवत—सटीक (खण्ड-१)	१२०
■1553	भागवत—सटीक (खण्ड-२)	१२०
■1608	श्रीमद्भागवत-सुधासागर	२००
■1326	सं० देवीभागवत	१५०
■1286	संक्षिप्त शिवपुराण	१३०
■1650	तत्त्वचिन्तामणि, ग्रन्थाकार	८०
■1630	साधन-सुधा-सिन्धु	१००
■ 467	गीता-साधक-संजीवनी	१००
■1313	गीता-तत्त्व-विवेचनी	७०
■ 785	श्रीरामचरितमानस—मझला, सटीक	७०
■ 468	गीता-दर्पण	४५
■ 878	श्रीरामचरितमानस—मूल मझला	४०
■ 879	" —मूल गुटका	२५
■1637	सुन्दरकाण्ड-सटीक, मोटा टाइप	१७
■1365	नित्यकर्म-पूजाप्रकाश	४०
■1620	क्या करें? क्या न करें?	२०
■1565	गीता-मोटे अक्षरवाली सजिल्द	२५
■1668	एकादशीव्रतका माहात्म्य	१२
■ 12	गीता-पदच्छेद	२५
■1315	गीता—सटीक, मोटा टाइप	१८
■1366	दुर्गासप्तशती—सटीक	२०
■1634	" " सजिल्द	२७
■1227	सचित्र आरतियाँ	१०
■ 936	गीता छोटी—सटीक	७
■1034	गीता छोटी—सजिल्द	१०
■1636	श्रीमद्भगवद्गीता—मूल, मोटा टाइप	७
■1225	मोहन— (चित्रकथा)	१०
■1224	कन्हैया—(")	१०
■1228	नवदुर्गा—(")	१०
■1656	गीता-ताबीजी, मूल, सजिल्द	४
■ 948	सुन्दरकाण्ड—मूल मोटा	६
■1085	भगवान् राम—	५
■ 950	सुन्दरकाण्ड—मूल गुटका	३
■1199	सुन्दरकाण्ड—मूल लघु आकार	२
■1226	अष्ट विनायक (चित्रकथा)	१०
■ 613	भक्त नरसिंह मेहता	१२
▲1518	भगवान्‌के स्वभावका रहस्य	१०
▲1486	मानवमात्रके कल्याणके लिये	१०
▲1164	शीघ्र कल्याणके सोपान	१२
▲1146	श्रद्धा, विश्वास और प्रेम	१२
▲1144	व्यवहारमें परमार्थकी कला	८
▲1062	नारीशिक्षा	८
▲1129	अपात्रको भी भगवत्प्राप्ति	१०
■1400	पिताकी सीख	१०
■1425	वीर बालिकाएँ	५
■1423	गुरु, माता-पिताके भक्त बालक	६
■1424	दयालु और परोपकारी बालक-बालिकाएँ	५
■1422	वीर बालक	६
■1258	आदर्श सम्राट्	५
▲1128	दाम्पत्य-जीवनका आदर्श	७
▲1061	साधन नवनीत	९
▲1520	कर्मयोगका तत्त्व (भाग—१)	१०
▲1264	मेरा अनुभव	८
▲1046	स्त्रियोंके लिये कर्तव्य-शिक्षा	७
■1143	भक्त सुमन	७
■1142	भक्त सरोज	७
▲1211	जीवनका कर्तव्य	८
▲ 404	कल्याणकारी प्रवचन	७
▲ 877	अनन्य भक्तिसे भगवत्प्राप्ति	१०
▲ 818	उपदेशप्रद कहानियाँ	८
▲1265	आध्यात्मिक प्रवचन	८
▲1516	परमशान्तिका मार्ग (भाग-१)	१०
▲1504	प्रत्यक्ष भगवद्दर्शनके उपाय	१०
■1212	एक महात्माका प्रसाद	२०
▲1539	सत्संगकी मार्मिक बातें	७
▲1457	प्रेममें विलक्षण एकता	८
▲1655	प्रश्नोत्तर-मणिमाला	८
▲1503	भगवत्प्रेमकी प्राप्तिमें भावकी प्रधानता	८
▲1325	सब जग ईश्वररूप है	५
▲1052	इसी जन्ममें भगवत्प्राप्ति	६
■ 934	उपयोगी कहानियाँ	७
■1076	आदर्श भक्त	६
■1084	भक्त महिलारत्न	६
■ 875	भक्त सुधाकर	६
▲1067	दिव्य सुखकी सरिता	६
▲ 933	रामायणके कुछ आदर्श पात्र	९
▲1295	जित देखूँ तित-तू	७
▲ 943	गृहस्थमें कैसे रहें?	६
▲1260	तत्वज्ञान कैसे हो?	६
▲1263	साधन और साध्य	५
▲1294	भगवान् और उनकी भक्ति	५
▲ 932	अमूल्य समयका सदुपयोग	७
▲ 392	गीतामाधुर्य	८
■1082	भक्त सप्तरत्न	५
■1087	प्रेमी भक्त	५
▲1077	शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ	५
▲ 940	अमृत-बिन्दु	६
▲ 931	उद्धार कैसे हो?	५
▲ 894	महाभारतके कुछ आदर्श पात्र	५
▲ 413	तात्त्विक प्रवचन	५
■ 892	भक्त चन्द्रिका	४
■ 895	भगवान् श्रीकृष्ण	५
▲1126	साधन-पथ	४
▲ 946	सत्संगका प्रसाद	४
▲ 942	जीवनका सत्य	५
▲1145	अमरताकी ओर	६
▲1066	भगवान्से अपनापन	४
■ 806	रामभक्त हनुमान्	५
▲1086	कल्याणकारी प्रवचन-(भाग-२)	५
▲1287	सत्यकी खोज	५
▲1088	एकै साधे सब सधै	४
■1399	चोखी कहानियाँ	५
▲ 889	भगवान्‌के रहनेके पाँच स्थान	३
▲1141	क्या गुरु बिना मुक्ति नहीं?	४
▲ 939	मातृ-शक्तिका घोर अपमान	३
■ 890	प्रेमी भक्त उद्धव	३
▲1047	आदर्श नारी सुशीला	४
▲1059	नल-दमयन्ती	४
▲1045	बालशिक्षा	४
▲1063	सत्संगकी विलक्षणता	३
▲1064	जीवनोपयोगी कल्याण-मार्ग	४
▲1165	सहज साधना	४
▲1151	सत्संगमुक्ताहार	४
■1401	बालप्रश्नोत्तरी	३
■ 935	संक्षिप्त रामायण	२
▲ 893	सती सावित्री	२
▲ 941	देशकी वर्तमान दशा ·····	२
▲1177	आवश्यक शिक्षा	३
▲ 804	गर्भपात उचित या अनुचित····	२
▲1049	आनन्दकी लहरें	२
■ 947	महात्मा विदुर	३
■ 937	विष्णुसहस्रनाम	२
▲1058	मनको वश करनेके उपाय एवं कल्याणकारी आचरण	२
▲1050	सच्चा सुख	२
▲1060	त्यागसे भगवत्प्राप्ति और गीता पढ़नेके लाभ	२
■ 828	हनुमानचालीसा	२
▲ 844	सत्संगकी कुछ सार बातें	२
▲1055	हमारा कर्तव्य एवं व्यापार सुधारकी आवश्यकता	१.५०
▲1048	संत-महिमा	२
▲1310	धर्मके नामपर पाप	२
▲1179	दुर्गतिसे बचो	१.५०
▲1178	सार-संग्रह, सत्संगके अमृत कण	२
▲1152	मुक्तिमें सबका अधिकार	१.५०
▲1207	मूर्तिपूजा-नामजपकी महिमा	१.५०
▲1167	भगवतत्त्व	१.५०
▲1206	धर्म क्या है? भगवान् क्या है?	२
▲1500	सन्ध्या-गायत्रीका महत्त्व	२
▲1051	भगवान्‌की दया	१.५०
■1198	हनुमानचालीसा—लघु आकार	१
■1648	" —गुजराती, रोमन	३
■1649	हनुमानचालीसा, अति लघु आकार	१
■1229	पंचामृत	
▲1054	प्रेमका सच्चा स्वरूप और सत्यकी शरणसे मुक्ति	१.५०
▲ 938	सर्वोच्चपदप्राप्तिके साधन	१
▲1056	चेतावनी एवं सामयिक...	१
▲1053	अवतारका सिद्धान्त और ईश्वर दयालु एवं न्यायकारी	१.५०
▲1127	ध्यान और मानसिक पूजा	१.५०
▲1148	महापापसे बचो	२
▲1153	अलौकिक प्रेम	१.५०

तमिल

कोड		मूल्य रु०
■1426	साधक-संजीवनी (भाग-१)	७५
■1427	साधक-संजीवनी (भाग-२)	७५
■ 800	गीता-तत्त्व-विवेचनी	९०
■1534	वा० रा० सुन्दरकाण्ड	७०
■1256	अध्यात्मरामायण	६०
■ 823	गीता—पदच्छेद	४०
■ 743	गीता—मूलम्	१५
■ 795	गीता—भाषा	८
■1606	श्रीमन्नारायणीयम्, सटीक	६०
■1605	भागवत एकादश-स्कन्ध—सटीक	५५
■1618	वाल्मीकीयरामायण सुन्दरकाण्ड वचनमु	३०
■1619	वाल्मीकीयरामायण सुन्दरकाण्ड मूलम्	२५
▲ 389	गीतामाधुर्य	९
■ 365	गोसेवाके चमत्कार	१०
■1134	गीता-माहात्म्यकी कहानियाँ	१०
▲1007	अपात्रको भी भगवत्प्राप्ति	८
▲ 553	गृहस्थमें कैसे रहें?	९
▲ 850	संतवाणी—(भाग १)	७
▲ 952	" (" २)	७
▲ 953	" (" ३)	७
▲1353	रामायणके कुछ आदर्श पात्र	९
▲1354	महाभारतके कुछ आदर्श पात्र	८
■ 646	चोखी कहानियाँ	८
■ 608	भक्तराज हनुमान्	७
■1246	भक्तचरित्रम्	७
▲ 643	भगवान्‌के रहनेके पाँच स्थान	५
▲ 550	नाम-जपकी महिमा	१.५०
▲1289	साधन-पथ	५
▲1480	भगवान्‌के स्वभावका रहस्य	७
▲1481	प्रत्यक्ष भगवद्दर्शनके उपाय	७
▲1482	भक्तियोगका तत्त्व	७
■ 793	गीता मूल-विष्णुसहस्रनाम	६
▲1117	देशकी वर्तमान दशा...	५
▲1110	अमृत-बिन्दु	६
▲ 655	एकै साधे सब सधै	५
▲1243	वास्तविक सुख	६
■ 741	महात्मा विदुर	५
▲ 591	महापापसे बचो, संतानका कर्तव्य	३

कोड		मूल्य रु०
▲ 536	गीता पढ़नेके लाभ, सत्यकी शरणसे मुक्ति	४
▲ 609	सावित्री और सत्यवान्	३
▲ 644	आदर्श नारी सुशीला	३
▲ 568	शरणागति	३
▲ 805	मातृशक्तिका घोर अपमान	२
▲ 607	सबका कल्याण कैसे हो?	२
■ 794	विष्णुसहस्रनामस्तोत्रम्	३
■ 127	उपयोगी कहानियाँ	८
■ 600	हनुमानचालीसा	३
▲ 466	सत्संगकी सार बातें	२
▲ 499	नारद-भक्ति-सूत्र	१.५०
■ 601	भगवान् श्रीकृष्ण	७
■ 642	प्रेमी भक्त उद्धव	८
■ 647	कन्हैया (चित्रकथा)	१५
■ 648	श्रीकृष्ण— (,,)	१५
■ 649	गोपाल— (,,)	१५
■ 650	मोहन— (,,)	१५
■1042	पञ्चामृत	
▲ 742	गर्भपात उचित या....	२.५०
▲ 423	कर्मरहस्य	४
▲ 569	मूर्तिपूजा	१.५०
▲ 551	आहारशुद्धि	२
▲ 645	नल-दमयन्ती	६
▲ 606	सर्वोच्चपदकी प्राप्तिके साधन	२
▲ 792	आवश्यक चेतावनी	३

कन्नड़

कोड		मूल्य रु०
■1112	गीता-तत्त्व-विवेचनी	८०
■1369, 1370	गीता-साधक-संजीवनी (दो खण्डोंमें सेट)	१६०
■1558	अध्यात्मरामायण	७०
■1560	रामचरितमानस-सटीक	११०
■1559	श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण-सुन्दरकाण्ड	५५
■ 726	गीता-पदच्छेद	३०
■ 718	गीता-तात्पर्यके साथ	१५
■1372	गीता-माहात्म्य	९
■1723	श्रीभीष्मपितामह	१०
■1724	भक्त नरसिंह मेहता	१०
■1726	प्रेमी भक्त	६
■1720	कृष्ण-भक्त उद्धव	४
▲1721	क्या गुरु बिना मुक्ति नहीं?	४
■1725	महात्मा विदुर	४
▲1722	बालकोंके कर्तव्य	४
■1375	ॐ नमः शिवाय	१७
■1357	नवदुर्गा	१०
▲1109	उपदेशप्रद कहानियाँ	१२
▲ 945	साधन नवनीत	१०
■ 724	उपयोगी कहानियाँ	८
▲1499	नवधा भक्ति	५
▲1498	भगवत्कृपा	४
▲ 833	रामायणके कुछ आदर्श पात्र	९
▲ 834	स्त्रियोंके लिये कर्तव्य-शिक्षा	९
■1107	भगवान् श्रीकृष्ण	६
■1288	गीता—श्लोकार्थ	७
▲ 716	शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ	७
■ 832	सुन्दरकाण्ड (सटीक)	८
■ 840	आदर्श भक्त	७
■ 841	भक्त सप्तरत्न	८
■ 843	दुर्गासप्तशती—मूल	१०
▲ 390	गीतामाधुर्य	७
▲1625	नारीशिक्षा	८
▲1626	अमृत-बिन्दु	६
▲ 720	महाभारतके कुछ आदर्श पात्र	७
▲1374	अमूल्य समयका सदुपयोग	६
▲ 128	गृहस्थमें कैसे रहें ?	६
■ 661	गीता-मूल (विष्णुसहस्रनामसहित)	५
■ 721	भक्त बालक	६
■ 951	भक्त चन्द्रिका	८

कोड		मूल्य रु०
■ 835	श्रीरामभक्त हनुमान्	७
■ 837	विष्णुसहस्रनाम—सटीक	५
■ 842	ललितासहस्रनामस्तोत्र	५
■1373	गजेन्द्रमोक्ष	२
■1106	ईशावास्योपनिषद्	३
▲ 717	सावित्री-सत्यवान् और आदर्श नारी सुशीला	४
▲ 723	नाम-जपकी महिमा और आहारशुद्धि	३
▲ 725	भगवान्‌की दया एवं···	३
▲ 722	सत्यकी शरणसे मुक्ति, गीता पढ़नेके लाभ	३
▲ 325	कर्मरहस्य	४
▲ 597	महापापसे बचो	१.५०
▲ 719	बालशिक्षा	४
▲ 839	भगवान्‌के रहनेके पाँच स्थान	३
▲1371	शरणागति	४
▲ 836	नल-दमयन्ती	३
■ 737	विष्णुसहस्रनाम एवं सहस्रनामावली	३
▲ 838	गर्भपात उचित या अनुचित···	२
■ 736	नित्यस्तुतिः, आदित्यहृदयस्तोत्रम्	२
■1105	श्रीवाल्मीकिरामायणम्—संक्षिप्त	२
■ 738	हनुमत्-स्तोत्रावली	२
▲ 593	भगवत्प्राप्तिकी सुगमता	
▲ 598	वास्तविक सुख	४
▲ 831	देशकी वर्तमान दशा तथा···	३

असमिया

कोड		मूल्य रु०
■714	गीता—भाषा-टीका—पॉकिट साइज	७
■1222	श्रीमद्भागवतमाहात्म्य	७
■825	नवदुर्गा	५
▲624	गीतामाधुर्य—	६
▲1487	गृहस्थमें कैसे रहें ?	७
■1323	श्रीहनुमानचालीसा	२
■1515	शिवचालीसा	२
▲ 703	गीता पढ़नेके लाभ	१

ओड़िआ

कोड		मूल्य रु०
■1551	संत जगन्नाथदासकृत भागवत	१४०
■1121	गीता-साधक-संजीवनी	१३०
■1100	गीता-तत्त्व-विवेचनी	८०
■1463	रामचरितमानस—सटीक, मोटा टाइप	१५०
■1218	,, मूल, मोटा टाइप	७०
■1473	साधन-सुधा-सिन्धु	९०
■1298	गीता-दर्पण	४०
■1672	गीता-प्रबोधनी	३५
■ 815	गीता-श्लोकार्थसहित (सजिल्द)	२०
■1219	गीता-पञ्चरत्न	२०
■1702	गीता-ताबीजी	४
■1009	जय हनुमान् (चित्रकथा)	१७
■1250	ॐ नमः शिवाय (,,)	१५
■1010	अष्ट विनायक (,,)	१०
■1248	मोहन (,,)	१०
■1249	कन्हैया (,,)	१०
■ 863	नवदुर्गा (,,)	१०
■1494	बालचित्रमय चैतन्यलीला	७
■1157	गीता-सटीक, मोटे अक्षर	१५
■1465	गीता-अन्वयअर्थसहित पॉकिट साइज	१५
▲1511	मानवमात्रके कल्याणके लिये	१०
■1476	दुर्गासप्तशती-सटीक	१८
▲1251	भवरोगकी रामबाण दवा	९
▲1270	नित्ययोगकी प्राप्ति	६
▲1268	वास्तविक सुख	६
▲1209	प्रश्नोत्तर-मणिमाला	८
▲1464	अमृत-बिन्दु	७
▲1274	परमार्थ सूत्र-संग्रह	८

कोड		मूल्य रु०
▲1254	साधन नवनीत	९
■1008	गीता—पॉकिट साइज	८
▲ 754	गीतामाधुर्य	७
▲1208	आदर्श कहानियाँ	७
▲1139	कल्याणकारी प्रवचन	६
■1342	बड़ोंके जीवनसे शिक्षा	७
▲1205	रामायणके कुछ आदर्श पात्र	७
▲1506	अमूल्य समयका सदुपयोग	७
▲1272	निष्काम श्रद्धा और प्रेम	८
■1204	सुन्दरकाण्ड—मूल मोटा	५
▲1299	भगवान् और उनकी भक्ति	५
■ 854	भक्तराज हनुमान्	५
▲1004	तात्त्विक प्रवचन	५
▲1138	भगवान्‌से अपनापन	५
▲1187	आदर्श भ्रातृप्रेम	४
▲ 430	गृहस्थमें कैसे रहें ?	५
▲1321	सब जग ईश्वररूप है	५
▲1269	आवश्यक शिक्षा	५
▲ 865	प्रार्थना	३
▲ 796	देशकी वर्तमान दशा तथा उसका परिणाम	३
▲1130	क्या गुरु बिना मुक्ति नहीं ?	४
■1154	गोविन्ददामोदरस्तोत्र	३
■1200	सत्यप्रेमी हरिश्चन्द्र	३
▲1174	आदर्श नारी सुशीला	३
▲1507	उद्धार कैसे हो	५
■ 541	गीता-मूल, विष्णुसहस्रनामसहित	३
■1644	गीता-दैनन्दिनी-पुस्तकाकार, विशिष्ट संस्करण (२००८)	५०
▲1614	शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ	६
▲1635	प्रेरक कहानियाँ	६
▲1003	सत्संगमुक्ताहार	४
▲1512	साधनके दो प्रधान सूत्र	४
▲ 817	कर्मरहस्य	४
▲1078	भगवत्प्राप्तिके विविध उपाय	४
▲1079	बालशिक्षा	४
▲1163	बालकोंके कर्तव्य	४
▲1252	भगवान्‌के रहनेके पाँच स्थान	३
▲ 757	शरणागति	४
▲1186	श्रीभगवन्नाम	३
▲1267	सहज साधना	४
▲1005	मातृशक्तिका घोर अपमान	३
▲1203	नल-दमयन्ती	३
▲1253	परलोक और पुनर्जन्म एवं वैराग्य	३
▲1220	सावित्री और सत्यवान्	२
▲ 826	गर्भपात उचित या अनुचित फैसला आपका	२
▲ 798	गुरुतत्त्व	१.५०
■ 856	हनुमानचालीसा	२
■1661	,, ,, (लघु आकार)	१
▲ 797	सन्तानका कर्तव्य-	१.५०
■1036	गीता—मूल, लघु आकार	२
■1509	रामरक्षास्तोत्र	२
■1070	आदित्यहृदयस्तोत्र	२
■1068	गजेन्द्रमोक्ष	१.५०
■1069	नारायणकवच	१.५०
▲1089	धर्म क्या है? भगवान् क्या हैं?	१.५०
▲1039	भगवान्‌की दया एवं भगवत्कृपा	१.५०
▲1090	प्रेमका सच्चा स्वरूप	१.५०
▲1091	हमारा कर्तव्य	१.५०
▲1040	सत्संगकी कुछ सार बातें	१.५०
▲1011	आनन्दकी लहरें	२
▲ 852	मूर्तिपूजा-नामजपकी महिमा	१.५०
▲1038	संत-महिमा	१.५०
▲1041	ब्रह्मचर्य एवं मनको वश करनेके कुछ उपाय	२
▲1221	आदर्श देवियाँ	३
■1201	महात्मा विदुर	३
■1202	प्रेमी भक्त उद्धव	

कोड		मूल्य रु०
■1173	भक्त चन्द्रिका	५

उर्दू

कोड		मूल्य रु०
■1446	गीता उर्दू	
▲ 393	गीतामाधुर्य	
▲ 590	मनकी खटपट कैसे मिटे	०.८०

तेलुगु

कोड		मूल्य रु०
■1573	श्रीमद्भागवत—मूल मोटा टाइप	१२०
■1698	श्रीमन्नारायणीयम्—श्लोकार्थसहितम्	४०
■1699	श्रीमहाभागवत मकरंदालु	१५
■1632	महाभारत विराटपर्व	५५
■1352	रामचरितमानस-सटीक, ग्रन्थाकार	१२०
■1419	रामचरितमानस—केवल भाषा	८०
■1557	वाल्मीकिरामायण-(भाग १)	११०
■1622	,, ,, (भाग-२)	१३०
■1429	श्रीमद्वाल्मीकिरामायण सुन्दरकाण्ड (तात्पर्यसहित)	७५
■1477	,, ,, (सामान्य)	६५
■1714	गीता-दैनन्दिनी-पुस्तकाकार, विशिष्ट संस्करण (२००८)	५०
■1172	गीता-तत्त्व-विवेचनी	८०
■ 845	अध्यात्मरामायण	७५
■ 772	गीता-पदच्छेद-अन्वयसहित	३०
■ 914	स्तोत्ररत्नावली	२२
■1569	हनुमत्स्तोत्रावली	३
■1684	श्रीगणेशस्तोत्रावली	३
■1685	श्रीदेवीस्तोत्रावली	३
■1639	बालरामायण-लघु आकार	१
■1466	वाल्मीकीयरामायण-सुन्दरकाण्ड, मूल, पुस्तकाकार	३०
■ 924	,,सुन्दरकाण्ड-मूल गुटका	१८
■1532	,, वचनमु	३०
■1026	पंच सूक्तमुलु-रुद्रमु	५
■ 771	गीता—तात्पर्यसहित	२०
■ 910	विवेकचूडामणि	१५
▲ 904	नारद-भक्तिसूत्र मुलु (प्रेमदर्शन-)	१२
■ 959	कन्हैया (चित्रकथा)	१०
■ 960	गोपाल (,,)	१०
■ 961	मोहन (,,)	१०
■ 962	श्रीकृष्ण (,,)	१०
■ 963	रामलला (,,)	१५
■ 964	राजा राम (,,)	१५
■ 966	भगवान् सूर्य (,,)	१७
■ 965	दशावतार (,,)	१०
■1686	अष्टविनायक (,,)	१०
■ 967	रामायणके प्रमुख पात्र (,,)	१५
■ 968	श्रीमद्भागवतके प्रमुख पात्र (चित्रकथा)	१५
■ 887	जय हनुमान् (,,)	१७
■1301	नवदुर्गा (,,)	१०
■ 909	दुर्गासप्तशती—मूलम्	१२
■1029	भजन-संकीर्तनावली	१२
■1309	गीता-माहात्म्यकी कहानियाँ	१०
■1390	गीता तात्पर्य-पॉकिट साइज, मोटा टाइप	१०
■ 691	श्रीभीष्मपितामह	१०
▲1028	गीतामाधुर्य	१२
▲ 915	उपदेशप्रद कहानियाँ	१०
▲1572	शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ	६
▲ 905	आदर्श दाम्पत्य-जीवनमु	९
■1526	गीता-मूल मोटे अक्षर, पॉकिट साइज	८
■1570	गीता-ताबीजी	४
■1031	गीता—छोटी, पॉकिट साइज	७
■1571	गीता-लघु आकार	२
■ 929	महाभक्तुलु	८
■ 919	मंचि कथलु (उपयोगी कहानियाँ)	७
▲ 766	महाभारतके कुछ आदर्श पात्र	७

कोड		मूल्य रु०
■1502	श्रीनामरामायणम् एवं हनुमानचालीसा (लघु आकार)	१
▲ 768	रामायणके कुछ आदर्श पात्र	९
▲ 733	गृहस्थमें कैसे रहें?	७
■ 908	नारायणीयम्—मूलम्	१५
■ 682	भक्त पञ्चरत्न	७
■ 687	आदर्श भक्त	६
■ 767	भक्तराज हनुमान्	६
■ 917	भक्त चन्द्रिका	७
■ 918	भक्त सप्तरत्न	८
■ 641	भगवान् श्रीकृष्ण	६
■ 663	गीता भाषा	६
■ 662	गीता-मूल (विष्णुसहस्रनामसहित)	४
■ 753	सुन्दरकाण्ड— सटीक	५
■ 685	भक्त बालक	५
■ 692	चोखी कहानियाँ	५
▲ 920	परमार्थ-पत्रावली	५
■ 930	दत्तात्रेय-वज्रकवच	३
■ 846	ईशावास्योपनिषद्	३

कोड		मूल्य रु०
■ 686	प्रेमी भक्त उद्धव	४
■1023	श्रीशिवमहिम्नःस्तोत्रम्-सटीक	३
■ 973	शिवस्तोत्रावली	३
■ 972	शतकत्रयम्	५
■1025	स्तोत्रकदम्बम्	३
■ 674	गोविन्ददामोदरस्तोत्र	३
■ 675	सं०रामायणम्, रामरक्षास्तोत्रम्	३
▲ 906	भगन्तुडे आत्मेयुणु	३
■ 801	ललितासहस्रनाम	४
■ 974	,, ,, (लघु आकार)	३
■1024	श्रीनारायणकवचम् तात्पर्यसहितम्	३
■1030	सन्ध्योपासनविधि	१२
■ 688	भक्तराज ध्रुव	३
■ 670	विष्णुसहस्रनाम—मूल	२
■ 911	,, -मूल (लघु आकार)	१
■1527	विष्णुसहस्रनामस्तोत्रम् नामावलिसहितम्	४
■ 912	रामरक्षास्तोत्र, सटीक	२
■ 677	गजेन्द्रमोक्षम्	२

कोड		मूल्य रु०
■1531	गीता-विष्णुसहस्रनाम, मोटा टाइप	८
■ 732	नित्यस्तुतिः, आदित्यहृदयस्तोत्रम्	२
▲ 913	भगवत्प्राप्ति सर्वोत्कृष्ट साधनम्-नाम स्मरणमें	१.५०
▲ 923	भगवन्तु दयालु न्यायमूर्ति	२
▲ 760	महत्त्वपूर्ण शिक्षा	५
▲ 761	एकै साधे सब सधै	५
▲ 922	सर्वोत्तम साधन	५
▲ 759	शरणागति एवं मुकुन्दमाला	४
▲ 752	गर्भपात उचित या अनुचित फैसला आपका	२
▲ 734	आहारशुद्धि, मूर्तिपूजा	२
▲ 664	सावित्री-सत्यवान्	३
▲ 665	आदर्श नारी सुशीला	४
▲ 921	नवधा भक्ति	४
▲ 666	अमूल्य समयका सदुपयोग	७
▲ 672	सत्यकी शरणसे मुक्ति	२
▲ 671	नामजपकी महिमा	१
▲ 678	सत्संगकी कुछ सार बातें	१
▲ 731	महापापसे बचो	२

कोड		मूल्य रु०
▲ 925	सर्वोच्चपदकी प्राप्तिके साधन	१.५०
▲1547	किसान और गाय	२
▲ 758	देशकी वर्तमान दशा तथा उसका परिणाम	३
▲ 916	नल-दमयन्ती	५
▲ 689	भगवान्के रहनेके पाँच स्थान	४
▲ 690	बालशिक्षा	४
▲ 907	प्रेमभक्ति-प्रकाशिका	१.५०
▲ 673	भगवान्का हेतुरहित सौहार्द	१.५०
▲ 926	सन्तानका कर्तव्य	२

मलयालम

कोड		मूल्य रु०
■ 739	गीता-विष्णुसहस्रनाम, मूल	५
■ 740	विष्णुसहस्रनाम—मूल	२

पंजाबी

कोड		मूल्य रु०
▲1616	गृहस्थमें कैसे रहें?	७

नेपाली

कोड		मूल्य रु०
■1609	श्रीरामचरितमानस— सटीक, मोटा टाइप	१४०
▲1621	मानवमात्रके कल्याणके लिये	१२

Our English Publications

Code		Price
■1318	Śrī Rāmacaritamānasa (With Hindi Text, Transliteration & English Translation)	200
■1617	Śrī Rāmacaritamānasa A Romanized Edition with English Translation	80
■ 456	Śrī Rāmacaritamānasa (With Hindi Text and English Translation)	120
■ 786	.. .. Medium	70
■1550	Sundara Kāṇḍa (Roman)	12
■452, 453	Śrīmad Vālmīki Rāmāyaṇa (With Sanskrit Text and English Translation) Set of 2 volumes	300
■564, 565	Śrīmad Bhāgavata (With Sanskrit Text and English Translation) Set	250
■1159, 1160	Śrīmad Bhāgavata Mahāpurāṇa only English Translation set of 2 volumes	150
■1080, 1081	Śrīmad Bhagavadgītā Sādhaka-Sañjīvanī (By Swami Ramsukhdas) (English Commentary) Set of 2 Volumes	100
■ 457	Śrīmad Bhagavadgītā Tattva-Vivecanī (By Jayadayal Goyandka) Detailed Commentary	70
■ 455	Bhagavadgītā (With Sanskrit Text and English Translation) Pocket size	6
■ 534	.. (Bound)	10
■1658	Śrīmad Bhagavadgītā (Sanskrit text with Hindi and English Translation)	12
■ 824	Songs from Bhartṛhari	2
▲ 783	Abortion Right or Wrong You Decide	2
■1491	Mohana (Picture Story)	10
■1643	Rāmarakṣāstotram (With Sanskrit Text, English Translation)	2
■ 494	The Immanence of God (By Madan Mohan Malaviya)	
■1528	Hanumāna Cālīsā (Roman) (Pocket Size)	3
■1638	.. Small size	2
■1492	Rāma Lalā (Picture Story)	15
■1445	Virtuous Children	15
■1545	Brave and Honest Children	15

By Jayadayal Goyandka

Code		Price
▲ 477	Gems of Truth [Vol. I]	8
▲ 478	.. .. [Vol. II]	8
▲ 479	Sure Steps to God-Realization	12
▲ 481	Way to Divine Bliss	5
▲ 482	What is Dharma? What is God?	1
▲ 480	Instructive Eleven Stories	4
▲1285	Moral Stories	10
▲1125	Five Divine Abodes	3
▲1284	Some Ideal Characters of Rāmāyaṇa	8
▲1245	Some Exemplary Characters of the Mahābhārata	7
▲ 694	Dialogue with the Lord During Meditation	2
▲ 520	Secret of Jñānayoga	12
▲ 521	" " Premayoga	10
▲ 522	" " Karmayoga	12
▲ 523	" " Bhaktiyoga	15
▲ 658	" " Gītā	6
▲1013	Gems of Satsaṅga	2
▲1501	Real Love	4

By Hanuman Prasad Poddar

Code		Price
▲ 484	Look Beyond the Veil	8
▲ 622	How to Attain Eternal Happiness?	10
▲ 483	Turn to God	8
▲ 485	Path to Divinity	7
▲ 847	Gopis' Love for Śrī Kṛṣṇa	4
▲ 620	The Divine Name and Its Practice	3
▲ 486	Wavelets of Bliss & the Divine Message	

By Swami Ramsukhdas

Code		Price
▲1470	For Salvation of Mankind	12
▲ 619	Ease in God-Realization	5
▲ 471	Benedictory Discourses	6
▲ 473	Art of Living	6
▲ 487	Gītā Mādhurya	7
▲1101	The Drops of Nectar (Amṛta Bindu)	6
▲1523	Is Salvation Not Possible without a Guru?	5
▲ 472	How to Lead A Household Life	6
▲ 570	Let Us Know the Truth	4
▲ 638	Sahaja Sādhanā	5
▲ 634	God is Everything	4
▲ 621	Invaluable Advice	3
▲ 474	Be Good	10
▲ 497	Truthfulness of Life	2
▲ 669	The Divine Name	2
▲ 476	How to be Self-Reliant	
▲ 552	Way to Attain the Supreme Bliss	1
▲ 562	Ancient Idealism for Modernday Living	1

Special Editions

Code		Price
■1411	Gītā Roman (Sanskrit text, Transliteration & English Translation) Book Size	20
■1584	,, (Pocket Size)	12
■1407	The Drops of Nectar (By Swami Ramsukhdas)	10
■1406	Gītā Mādhurya (")	15
■1438	Discovery of Truth and Immortality (By Swami Ramsukhdas)	15
■1413	All is God (")	10
■1414	The Story of Mīrā Bāī (Bankey Behari)	15

अप्रैल २००७ से प्रकाशित नवीन प्रकाशन

कोड		मूल्य रु०
▲1733	संत-समागम	६
■1709	श्रीगंगासहस्रनामस्तोत्रम् (नामावलिसहित)	५
■1707	श्रीलक्ष्मीसहस्रनामस्तोत्रम्	५
■1773	गो-अङ्क	१२०
■1770	श्रीमद्देवीभागवत—मूल	१२०
■1748	संतानगोपालस्तोत्र	४
■1689	आओ बच्चों तुम्हें बताएँ—ग्रन्थाकार, रंगीन	१५
■1747	भगवत्प्राप्ति कैसे हो?	७
■1769	गीता-दैनन्दिनी (२००८) लघु आकार	१२
■1774	देवीस्तोत्ररत्नाकर	२२

असमिया

कोड		मूल्य रु०
▲1715	आदर्श नारी सुशीला	४

मराठी

कोड		मूल्य रु०
■1735	श्रीमद्भागवतमहापुराण-सटीक (खण्ड-२)	१३०
■1732	शिवलीलामृत	३०
■1768	श्रीशिवलीलामृतांतील (अकरावा अध्याय)	३
▲1716	भगवान् कैसे मिलें?	७
▲1719	चिन्ता, शोक कैसे मिटे?	८
■1746	मनोबोध भक्तिसूत्र	८
■1331	कृष्णभक्त उद्धव	४

कोड		मूल्य रु०
▲1749	श्रीप्रेमभक्तिप्रकाश व ध्यानावस्थामें प्रभुसे वार्तालाप	३

पंजाबी

कोड		मूल्य रु०
■1697	गीता प्रबोधनी	३०

कन्नड़

कोड		मूल्य रु०
■1728	सार्थज्ञानेश्वरी	१२०
■1739	श्रीमद्भागवतमहापुराण—सटीक (खण्ड-१)	१३०
■1740	श्रीमद्भागवतमहापुराण—सटीक (खण्ड-२)	१३०

बँगला

कोड		मूल्य रु०
▲1742	शरणागति	४
■1744	श्रीमद्भागवतमहापुराण—सटीक (खण्ड-२)	१५०
■1743	शिवचालीसा, लघु आकार	१

तेलुगु

कोड		मूल्य रु०
■1745	श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण (भाग ३)	१४५
■1738	श्रीमद्भागवतसंग्रहमु	८०

ओड़िआ

कोड		मूल्य रु०
■1750	सन्त जगन्नाथदासकृत श्रीमद्भागवत एकादश स्कन्ध	२०